ग्रामीण समाजशास्त्र
(RURAL SOCIOLOGY)

लेखक :
प्रो० रामेश्वरलाल रायपुरिया,
एम० ए०, साहित्यरत्न,
अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग,
जे० एस० हिन्दू डिग्री कालेज, अमरोहा
तथा
श्री द्वारका दास गोयल,
एम० ए०, बी०एड०, रिसर्चस्कालर,
महात्मा गाँधी विद्यालय,
अजमेर
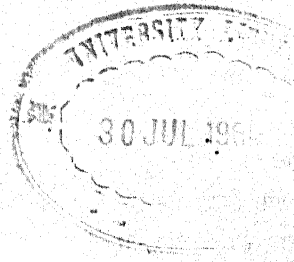
दत्त बन्धु प्राइवेट लिमिटेड,
अजमेर

हमारी बात

युग-युग से यह परम्परा रही है कि विद्वानो ने देश और काल की आवश्यकताओ को ध्यान में रखकर विभिन्न नये ज्ञान-विज्ञानों का उद्घाटन किया और विविध ग्रन्थ रचे। चाहे यह उत्सुकता उन्हें उनके अध्ययन अथवा अध्यापन काल में ही अनुभव क्यों न हुई हो। इसी प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र की यह रचना समाजशास्त्र के विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं के हाथ में देने का हमें भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वैसे भारत मे समाजशास्त्र का शैशवकाल है और इसके अग प्रत्यग समयानुसार अपनी गति पाकर विकसित हो रहे है। निरन्तर इस नवीन सामाजिक विज्ञान पर नई-नई रचनाओ का प्रकाशन हो रहा है। लेकिन ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र मे यत्र-तत्र रचनायें एक झलक बनकर ही रह गईं और विषय अपने में पूर्ण नहीं हो पाया। अतः विषय को सर्वांगीण रूप देने के उद्देश्य से यह रचना, जो भारतीय सन्दर्भ पर आधारित है, प्रस्तुत की जा रही है।

रचना आपके सम्मुख है, इसमें कोई विशेषता एवं मौलिकता है, ऐसा हम नहीं कह सकते। यदि संयोगवश हो, तो पाठकगण स्वय निर्णय कर लेंगे। इतना अवश्य है कि रचना के दृष्टिकोण एवं व्यवस्था से परिचय कराना हमने अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझा है। पुस्तक को तीन खण्डो मे विभाजित किया गया है, जो क्रमशः विषय प्रवेश, ग्रामीण सामाजिक सगठन तथा ग्रामीण पुर्ननिर्माण के नाम से हैं। प्रत्येक खण्ड में उपविभाग हैं। जैसे प्रथम खण्ड में ग्रामीण समाजशास्त्र और ग्रामीण स्वरूपशास्त्र (Rural Morphology), द्वितीय खण्ड में ग्रामीण सामाजिक संगठन, ग्रामीण संस्थाएँ और ग्रामीण सामुदायिक विघटन तथा तृतीय खण्ड में ग्रामीण पुर्ननिर्माण पर विचार किया गया है। कुल मिलाकर इस पुस्तक में ३३ अध्याय हैं, जो भारतीय ग्रामीण जीवन के प्रत्येक पहलू का दिग्दर्शन कराते हैं। इसके अतिरिक्त पुस्तक के अन्त मे अध्ययन की प्रणालियाँ एवं प्रश्न सूचियाँ हैं जिनके आधार पर तथ्य एकत्रित किये गये हैं। आशा है हमारी यह व्यवस्था एवं दृष्टिकोण पाठको को रुचिकर लगेगा। यह रचना एक प्रयास मात्र है न कि एक अधिकृत सार्वभौमिक विस्तृत

विश्लेषण। यदि यह रचना ग्रामीण जीवन के अध्ययन के प्रति नवीन अभिरुचि एवं समस्याओं के निराकरण हेतु उत्साह बढ़ा सकी तो हम अपने प्रयास को सफल मानेंगे।

हमारी धारणा है कि यह रचना न केवल भारत के प्रमुख विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र के विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी, बल्कि भारत जैसे ग्रामीण देश के आयोजन, सामुदायिक विकास, सहकारिता, पंचायत राज, भूदान व ग्रामदान आन्दोलन, खादी ग्रामोद्योग, समाज कल्याण, पुनर्निर्माण, पंचायत समितियों, जिला परिषदों, विकास खण्डों, कृषि-संस्थाओं, कुटीर उद्योग मण्डलों, वन्यजातीय कल्याण तथा शिक्षा विभागों आदि सभी सुधारवादी संस्थाओं में संलग्न कार्यकर्त्ताओं तथा अधिकारियों के लिये लाभप्रद प्रतीत होगी।

पुस्तक की रचना में हमें अनेक ग्रामीण समाजशास्त्रियों, विद्वान लेखकों एवं भारत सरकार के प्रकाशनों से सहयोग प्राप्त हुआ है, इन सब का हार्दिक आभार मानते हैं। इसके साथ ही हम अपने गुरुवर एवं समाजशास्त्र के प्रमुख लेखक प्रो० रामबिहारीसिंह तोमर के प्रति अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने निरन्तर मार्ग दर्शन एवं प्रेरणा प्रदान की। पुस्तक के प्रकाशन में दत्त बन्धु प्राइवेट लिमिटेड, अजमेर के प्रबन्ध संचालक श्री प्रकाशचंद्र जोशी, जिन्होंने न केवल प्रकाशन में तत्परता दिखाई बल्कि समय-समय पर अनेकानेक सुझाव देकर इसे सुन्दर व्यवस्था में उपस्थित करने का कष्ट किया। अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रीमति चन्द्रकान्ता गोयल ने अनुसन्धान की अवधि में जिस लगन व धीरज से समय-समय पर प्रेरणा एवं उत्साह प्रदान कर कार्यगति को अनवरत रखने में योग दिया है, उसके लिए वे भी बधाई की पात्र हैं। रीसर्च स्कालर श्री गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव व श्री एच० सी० अग्रवाल, बी० ए०, एल-एल० बी० ने हमारी पुस्तक के अनुसंधान कार्य में प्रश्नावलियों एवं सारणियों द्वारा तथ्य एकत्रित कर पुस्तक की शोभा व उपयोगिता को द्विगुणित करने में योग दिया है, इसके लिये हम उनके भी आभारी हैं। पुस्तक की पाण्डुलिपि लिखने व टाइप करने में श्री भँवरलाल के परिश्रम को भी हम नहीं भुला सकते।

समयाभाव के कारण पुस्तक में मुद्रण सम्बन्धी जो कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों उनके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। अन्त में हम विज्ञ अध्यापकों तथा विद्यार्थियों से अनुरोध करेंगे कि पुस्तक की उपादेयता बढ़ाने की दृष्टि से अपने बहुमूल्य सुझाव देकर हमें अनुगृहीत करें।

अजमेर
१५ अगस्त, स्वतन्त्रता दिवस, १९६२.

रामेश्वर लाल रायपुरिया
द्वारका दास गोयल

विषय-सूची

प्रथम खण्ड-उपविभाग प्रथम

विषय प्रवेश

(Introduction)

उपविभाग द्वितीय

ग्रामीण स्वरूपशास्त्र

(Rural Morphology)

द्वितीय खण्ड—उपविभाग प्रथम

ग्रामीण सामाजिक संगठन
(Rural Social Organisation)

उपविभाग द्वितीय

ग्रामीण सामाजिक संस्थाएँ

(Rural Social Institutions)

तृतीय खण्ड

परिशिष्ट—अ

परिशिष्ट—ब

परिशिष्ट—स

ग्रामीण भारत के पुनर्निर्माण में

जिज्ञासा रखने वाले

उन सभी

विद्यार्थियों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं

एवं

राष्ट्र प्रेमियों

को

सादर समर्पित

•

रा० गो०

प्रथम खण्ड

विषय प्रवेश
(Introduction)

उपविभाग प्रथम

प्रारम्भिक
(Introductory)

अध्याय १ : ग्रामीण समाजशास्त्र ।
२ : ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति ।
३ : ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र ।
४ : ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास ।
५ : ग्रामीण समाजशास्त्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञान ।
६ : ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व ।

अध्याय १

ग्रामीण समाजशास्त्र
(Rural Sociology)

आज का युग विज्ञान का युग है। मानव अपने चरण विज्ञान के क्षेत्र में दिन प्रतिदिन बढ़ाता जा रहा है। सामाजिक विज्ञानों (Social Sciences) में भी वैज्ञानिकता का विशेष प्रभाव पड़ने के फलस्वरूप इनकी गति व रूप में विकास एवं परिवर्तन होता जा रहा है। अब सामाजिक वैज्ञानिक (Social Scientists) समाज का अध्ययन विभिन्न सीमित विभागों में न करके एक पूर्ण इकाई के रूप में करने का प्रयास कर रहे हैं। वर्तमान युग में सामाजिक विज्ञानों को एक इकाई के रूप में प्रकट करने वाला शास्त्र, समाजशास्त्र (Sociology) के नाम से उपस्थित हुआ है। जिसमें सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इस शास्त्र का ध्येय समाज का एक इकाई के रूप में अध्ययन करना है। इस दिशा में पूर्ण आधुनिक प्रगति का श्रेय ग्रामीण समाजशास्त्र (Rural Sociology) को प्राप्त हुआ है। इस शास्त्र के द्वारा ग्रामीण समाज के सर्वांगीण स्वरूप को एक विशिष्ट समाजशास्त्र के रूप में परिणित करने का प्रयास किया जा रहा है। ग्रामीण समाजशास्त्रियों के मतानुसार, ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज के सर्वांगीण अध्ययन हेतु एक महत्वपूर्ण विज्ञान है। इन विद्वानों का विचार है कि ग्रामीण समाजशास्त्र की अनुपस्थिति में समाज का पूर्ण अध्ययन होना असम्भव है। वे कहते हैं कि मानव समाज का अधिकाँश भाग ग्रामीण समाज के नाम से ही पारिभाषित किया जा सकता है।

इस नवीन शास्त्र का ध्येय ग्रामीण वातावरण से प्रभावित समाज का सूक्ष्म, व्यवस्थित एवं स्पष्ट अध्ययन करना है। इसी उद्देश्य से ग्रामीण पर्यावरण में विभिन्न वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का विस्तृत विश्लेषण किया जा रहा है। ग्रामीण समाजशास्त्र के उदय एवं विकास का एक यह भी लक्ष्य निर्धारित किया जाता है कि यह शास्त्र न केवल समाज के इस प्रमुख तत्व का अध्ययन ही प्रस्तुत करेगा परन्तु साथ ही साथ विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत कर सुधार के उपायों को भी खोजने का प्रयास करेगा। अतः इस महत्वपूर्ण नवीन विज्ञान का विकास दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

इस प्रकार के महत्वपूर्ण शास्त्र के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए हम सर्वप्रथम इसके अर्थ को समझने का प्रयास करेंगे।

इस शास्त्र के प्रति कुछ विद्वानों में कुछ गलत धारणायें भी प्रचलित हैं। अधिकाँश व्यक्ति ग्रामीण समाजशास्त्र के उद्देश्य को निर्धारित करते हुए बतलाते हैं कि ग्राम्य जीवन में व्याप्त समस्याओं का अध्ययन ही ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य है। समस्याओं के अध्ययन के सम्बन्ध में भी दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं। नीचे हम इन दोनों दृष्टिकोणों का वर्णन करेंगे।

(१) एक समस्या का सिद्धान्त (Single Problem Theory)

इस दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों का विचार यह है कि ग्रामीण समस्याओं का आधार एक ही है। ग्रामीण समस्याओं का विश्लेषण एक समस्या के रूप में किया जाना चाहिए। इन लोगों का विचार है कि ग्रामीण समस्याओं का एक मात्र कारण ग्रामीण आर्थिक स्थिति का अवनत होना है। ग्राम्य निर्धनता (Rural Poverty) अथवा ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था ही एक ऐसा आधार है जिस पर समस्त समस्यायें अवलम्बित हैं। इस आर्थिक व्यवस्था में विघटन आने पर समस्त सामाजिक जीवन विघटित एवं अव्यवस्थित हो जाता है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का यह भी कथन है कि ग्रामीण ढांचे की अद्वितीय विशेषता ग्रामीण जीवन की सामाजिक एवं आर्थिक इकाईयों का सम्मिश्रण है अर्थात् वहाँ आर्थिक एवं सामाजिक संस्था नाम की कोई अलग इकाईयां कार्य नहीं करती वरन् सामाजिक और आर्थिक इकाई एक ही है। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक ढांचे के विघटित होने से समस्त सामाजिक जीवन बिखरा एवं पिछड़ा हुआ रहता है। अतः यदि ग्रामीण समस्याओं को सुलझाना है तो आर्थिक ढांचे को सुधारना होगा। इन लोगों का कथन है कि यदि ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का ढांचा पूर्ण रूप से पुनः संगठित कर दिया जाय तो इसमें तनिक भी शंका नहीं कि ग्रामीण सामाजिक जीवन पुनः एक संगठित एवं आत्मनिर्भर इकाई (Organised and Self sufficient Unit) के रूप में परिणित हो जायेगा। ग्रामीण क्षेत्र की उन्नति के सम्बन्ध में किये जाने वाले प्रारंभिक प्रयत्न इसी विचारधारा पर आधारित थे और ये प्रयत्न पूर्णरूपेण आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित थे। कृषि क्षेत्र में किये गये विभिन्न अन्वेषण भी इसी विचारधारा से प्रभावित थे।

(२) बहु-समस्याओं का सिद्धान्त (Multi-Problem Theory)

यह दृष्टिकोण उपरोक्त दृष्टिकोण से पूर्णतः भिन्न है। इस मत के

समर्थकों का कहना है कि ग्रामीण जीवन में अनेक समस्यायें व्याप्त हैं और इन अनेक समस्याओं का अध्ययन ही ग्रामीण समाजशास्त्र है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का कथन है कि "ग्रामीण समस्या" एक समस्या नहीं बल्कि अनेक समस्याओं का गुँथा हुआ जाल है। इस विचार के समर्थक ग्रामीण सामाजिक जीवन की विभिन्न समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन एवं उनका समाधान प्रस्तुत करना ही ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य बतलाते हैं। इनका मत है कि ग्रामीण सामाजिक जीवन में निर्धनता, बेकारी, असहयोग, जाति प्रथा, अंध-विश्वास, रूढ़िवादिता, भाग्यवादिता, निराशावादी दृष्टिकोण, अशिक्षा, रोग, गंदगी आदि अनेक समस्यायें व्याप्त हैं और केवल इन समस्याओं का अध्ययन एवं समाधान "ग्रामीण समाजशास्त्र" का विषय है। इस भाँति इस विचारधारा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण समाजशास्त्र के अस्तित्व का प्रश्न तभी उपस्थित होता है जबकि ग्रामीण जीवन में समस्यायें उत्पन्न हों और उनके समाधान का उद्देश्य भी सम्मुख हो। इन विद्वानों का मत है कि सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ ही ग्रामीण समाज का भी उत्थान होता आया है और विभिन्न सांस्कृतिक सम्बन्धों से नवीन सभ्यता का विकास हुआ है। आधुनिक नागरीकरण भी इसी बात का एक प्रमाण है। साँस्कृतिक सम्पर्क के कारण अनेकों समस्याओं का जन्म हुआ एवं सामाजिक जीवन में जटिलता उत्पन्न हो गई। परिणामस्वरूप इन समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण एवं समाधान की आवश्यकता आधुनिक युग में विशेष महत्वपूर्ण है। अतः यह स्वाभाविक है कि ग्रामीण समाजशास्त्र इनका अध्ययन प्रस्तुत करे। इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १९३७ ई० में हुए समाजशास्त्रीय अधिवेशन में भी यह विचारधारा सम्मुख आई कि ग्रामीण समाजशास्त्र की एक मात्र प्रमुख पद्धति यह निर्धारित की जा सकती है कि यह शास्त्र ग्रामीण जीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का वैज्ञानिक, विकसित एवं व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करे।

उपरोक्त दोनों विचारधाराओं के अनुसार यह तथ्य प्रकट होता है कि ग्रामीण जीवन का अध्ययन केवल समस्याओं के अध्ययन के लिए किया जाय। दूसरे शब्दों में इन विचारधाराओं के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन मात्र है। वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन का सम्पूर्ण एवं सर्वांगीण रूप से अध्ययन करता है न कि केवल समस्याओं का। अतः हम इस महत्वपूर्ण शास्त्र के सम्बन्ध में पूर्ण एवं वैज्ञानिक ज्ञान के लिए सर्व प्रथम हम इसके वैज्ञानिक अर्थ को समझने का प्रयास करेंगे।

ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ

(Meaning of Rural Sociology)

ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ स्पष्ट करने से पूर्व हमें "ग्रामीण समाजशास्त्र" शब्दों का विश्लेषण करना होगा। 'ग्रामीण' का अर्थ है गाँव सम्बन्धी, 'समाज' का अर्थ है सामाजिक सम्बन्ध, तथा 'शास्त्र' का अर्थ है वैज्ञानिक ज्ञान । अतः हम कह सकते हैं कि ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों का वैज्ञानिक ज्ञान ही ग्रामीण समाजशास्त्र है।

हम यह जानते हैं कि समाजशास्त्र (Sociology) समाज को एक पूर्ण इकाई के रूप में देखने का प्रयत्न करता है। सामाजिक घटना (Social Phenomenon) का सामान्य रूप से पूर्ण अध्ययन इसी विज्ञान के अन्तर्गत सम्भव है। समाजशास्त्र एक सामान्य सामाजिक विज्ञान (General Social Science) है, जिसमें घटना विशेष की विशिष्टताओं, प्रक्रियाओं (Processes) एवम् समस्याओं (Problems) का अनुसन्धान प्रस्तुत किया जाता है और समाज का सामान्य रूप दृष्टिगोचर होता है। परन्तु ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन के विभिन्न स्वरूपों का एक मात्र सर्वाङ्गीण अध्ययन है। यह समाज में ग्रामीण पर्यावरण की विशिष्टता का पता लगाता है। स्पष्ट शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि ग्रामीण कारकों (Rural Factors) के प्रभावों, ग्रामीण सामाजिक प्रक्रियाओं (Rural Social Processes) तथा अन्तःक्रियाओं (Interactions) आदि का अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र के नाम से परिभाषित किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि ग्रामीण सामाजिक संगठन (Rural Social Organisation), ग्रामीण ढांचा (Rural Structure), कार्य (Functions), प्रक्रिया (Process) तथा ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों (Rural Social Relations) आदि का क्रमिक एवं व्यवस्थित ज्ञान ही ग्रामीण समाजशास्त्र कहलाता है। हम यह भी जानते हैं कि समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। सामाजिक सम्बन्धों (Social Relations) का वैज्ञानिक अध्ययन ही समाजशास्त्र है। इसीलिये समाजशास्त्रियों ने ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों का विज्ञान माना है। श्री स्मिथ ने-इस शास्त्र को ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र कहकर पुकारा है। सामाजिक जीवन सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित है। सामाजिक सम्बन्धों की इन्हीं प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण समाजशास्त्र की विषय सामग्री है। इस विज्ञान की परिभाषा करते हुए स्मिथ ने लिखा है, "सम्भवतः ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों के व्यवस्थित

ज्ञान को ग्रामीण जीवन के समाजशास्त्र शीर्षक के अन्तर्गत निर्देशित करना अधिक तार्किक होगा।"[1]

यहाँ ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण जीवन का विज्ञान माना है। इसका अर्थ यह है कि सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को, पर्यावरण विशेष से अत्यधिक प्रभावित एवं सम्बन्धित मानकर सामाजिक जीवन के ग्रामीण व नागरिक कारकों पर विशेष बल दिया है। इस विचार के मतावलम्बियों के अनुसार समाज का अत्यधिक सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए मानवीय समाज को इन दो तत्वों के आधार पर विभाजित किया जाना अनिवार्य है। फलस्वरूप ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण पर्यावरण से सम्बन्धित व्यक्तियों के सामाजिक जीवन का अध्ययन माना है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि समाज व सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन विशेषतः ग्रामीण पृष्ठभूमि में ग्रामीण समाजशास्त्र के द्वारा ही सम्भव है।

सच पूछा जाय तो विश्व में ग्रामीण पर्यावरण का पूर्ण रूप से बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। आज जो नागरिक प्रक्रियाओं का रूप हमें देखने को मिल रहा है वह भी ग्रामीण प्रक्रियाओं (Rural Processes) से ही उदित एवं विकसित हुआ है। इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र इस बात की सम्भावना प्रस्तुत करता है कि समाज के इस अभौतिक रूप का पूर्ण एवं स्पष्ट अध्ययन किया जा सके। नागरीकरण (Urbanisation) ग्रामीण संस्कृति का भौतिक रूप है और सांस्कृतिक परिवर्तनों (Cultural changes) के आधार पर ही आज समाज के ये दो रूप नगर एवं ग्राम दिखाई देते हैं। आधारभूत विचारों से सोचें तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि सामाजिक जीवन के नागरिक (Urban) व ग्रामीण (Rural) दो प्रभावक कारक हैं, और समाज के सर्वाङ्गीण व सूक्ष्म अध्ययन के लिए यह अधिक उपयुक्त होगा कि इन विशिष्ट पृष्ठभूमियों में ही हम सामाजिक जीवन का पूर्ण अध्ययन करें। सामाजिक जीवन दो भिन्न पर्यावरणों में लक्षित है जो एक दूसरे के साध्य व साधन हैं। इसलिए यदि ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र कहकर पुकारें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अतः ग्रामीण पर्यावरण में रहनेवाले व्यक्तियों अथवा ग्रामीण कारकों से प्रभावित समूह तथा उनका सामाजिक जीवन ग्रामीण समाजशास्त्र की

---

[1] "Probably it is more logical, however, to refer to the systematical knowledge of rural social relationship under the heading, 'Sociology of Rural life." T. lynn Smith: 'The Sociology of Rural life'. Horper & Brothers, New York; p. 10.

विषय सामग्री है । इस सम्बन्ध में श्री स्मिथ ने अपने विचारों को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के उद्देश्य से ग्रामीण जीवन के समाजशास्त्र (Sociology of Rural life) में लिखा है, "इस पुस्तक में प्रदर्शित दृष्टिकोण बल देता है कि समस्त समाजशास्त्र एक एकता है। इसके आधारभूत तथ्य एवं सिद्धान्तों का प्रयोग साधारणतः सावधानीपूर्ण कथित सुरक्षित सीमाओं में होना चाहिए, अन्यथा भुलाये जाने पर कुछ अनुसन्धानकर्त्ता उन सामाजिक घटनाओं का ही अध्ययन करते हैं जो केवल ग्रामीण पर्यावरण में कृषि व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों में उपस्थित या विस्तृत रूप से सीमित हैं। इस प्रकार के समाजशास्त्रीय तथ्य एवं सिद्धान्त ग्रामीण समाजशास्त्र के रूप में प्रतिपादित किये जा सकते हैं, जो ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से उद्धृत किये गए हैं।"[2]

अतः ग्रामीण पर्यावरण में सामाजिक सम्बन्धों के जाल का वैज्ञानिक अध्ययन इसी प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र कहलाता है, जिस प्रकार सामान्य रूप से सामाजिक सम्बन्धों के जाल का वैज्ञानिक अध्ययन सामान्य समाजशास्त्र (General Sociology) कहलाता है। ग्रामीण पर्यावरण में व्यवसाय, रहनसहन, वेशभूषा, विचार, कला, साहित्य सभी में विशिष्टता होती है जो इस समाज विशेष को सामान्य समाजों से भिन्न करती है। ग्रामीण समाजशास्त्र में ग्रामीणता (Ruralism) का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसी आधार पर इस शास्त्र का अस्तित्व निर्धारित किया गया है।

ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुए स्टुअर्ट चैपलिन (Stuart Chaplin) ने भी कहा है, "ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र ग्रामीण जनसंख्या, ग्रामीण सामाजिक संगठन एवम् सामाजिक प्रक्रिया, जो ग्रामीण जीवन में कार्यान्वित है, का अध्ययन है।"[3] इस परिभाषा के अनुसार

---

2 "The point of view represented in this book holds that all Sociology is a unity. Its fundamental facts and principles must apply generally within the limits of carefully stated reservation else be abondoned. Some investigators study social phenomenon that are present only in a largely confined to the rural environment to persons engaged in the agricultural occupation. Such sociological facts and principles are derived from the study of rural social relationships may be referred to as Rural Sociology." T. lynn Smith : "The Sociology of Rural life." Horper & Bros., New York. p. 10.

3 "The Sociology of Rural Life is a study of rural population, rural social organisation and the social process operative in Rural Society." F. Stuart Chaplin: 'Rural Structure.'

तो यह निर्धारित किया जा सकता है कि ग्रामीण जीवन की सभी विशेषताओं का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन करने वाला शास्त्र ग्रामीण समाजशास्त्र है। अतः हम इस शास्त्र को ग्रामीण जीवन का दर्पण भी कह सकते हैं। ग्रामीण जनसंख्या अन्य कारकों पर निर्भर है और इसी प्रकार ग्रामीण सामाजिक संगठन भी अन्य कई विद्यमान् तत्वों पर अवलम्बित है। अतः प्राकृतिक रूप से ग्रामीण सामाजिक ढांचे व संगठन का अध्ययन करने के लिये हमें अन्य विद्यमान् कारकों का भी अध्ययन करना होगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र एक वह शास्त्र है जो सम्पूर्ण ग्रामीणता के तत्वों (Elements of Ruralism) का पूर्ण एवं वैज्ञानिक अध्ययन करता है।

ग्रामीणता
(Ruralism)

यहां हमें ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ की स्पष्ट व्याख्या करने के लिए ग्रामीणता (Ruralism) के तत्वों को समझना आवश्यक है। ग्रामीण समाजशास्त्र के अस्तित्व का आधारस्तम्भ ग्रामीणता ही है। यह एक मात्र ऐसा कारक है जिस पर यह सम्पूर्ण विज्ञान खड़ा है। इस प्रमुख तत्व को समझने के लिए हमें अपने सम्मुख नागरिकता (Urbanism) के तत्वों को आवश्यक रूप से रखना पड़ेगा। बिना नागरिक तत्वों के ज्ञान के हम ग्रामीण तत्वों की कल्पना नहीं कर सकते, क्योंकि दोनों तत्व एक दूसरे के पूरक हैं। इसी प्रकार नागरिक समाज व्यवस्था एवं संगठन की कल्पना हमारी तभी पूरी हो सकती है जब कि हम ग्रामीण समाज व्यवस्था की कल्पना अपने सम्मुख रख लें। अतः हम यहां पर सर्व प्रथम नागरिकता के तत्वों (Elements of Urbanism) की विवेचना करेंगे।

नागरिकता के तत्व
(Elements of Urbanism)

नागरिक जीवन में प्रमुखतः निम्न तत्त्व आवश्यक रूप से पाये जाते हैं।

(१) जनसंख्या की विभिन्नता (Heterogenity of Population)

जनसंख्या की विभिन्नता का अर्थ है कि जनसंख्या में अनेक धर्म, संस्कृति, जाति, वर्ग, देश, प्रान्त, प्रजाति, आयु एवं लिंग आदि के व्यक्ति होते हैं अर्थात् एक नगर में अनेक संस्कृतियों, देशों, जातियों, प्रान्तों, प्रजातियों, वर्गों के व्यक्तियों की उपलब्धि हो सकती है जब कि गाँव में हम सामान्यतः ऐसा नहीं पाते।

(२) जनसंख्या का आधिक्य (Surplus of Population)

नगर में जनसंख्या असीमित रहती है । वहां पर व्यक्तियों की संख्या ग्रामों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है। इसी कारण नगर प्रायः भीड़ से भरे हुए होते हैं, जहां मकानों आदि की समस्या प्रमुख रूप से रहती है।

(३) व्यवसायों का बाहुल्य (Multiplicity of Occupations)

नगरों में अनेक प्रकार के छोटे बड़े व्यवसाय पाये जाते हैं और अनेक व्यक्ति इन व्यवसायों में संलग्न रहते हैं।

(४) श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण
(Division of Labour and Specialisation)

नगरों में अनेक व्यवसाय बहुत विस्तृत रूप में होते हैं, इनमें कुशलता बनाये रखने के लिए श्रम विभाजन कर दिया जाता है और हर विभाग के व्यक्ति विशेष कुशल होते हैं। एक वृहत् चिकित्सालय में कान, नाक, आंख, गला आदि की चिकित्सा के लिए भिन्न-भिन्न चिकित्सक होते हैं और प्रत्येक अपने विभाग में विशेष निपुण होता है। ठीक इसी प्रकार व्यवसायों में भी श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण की प्रक्रिया कार्य करती है और यह नगर की प्रमुख विशेषता है।

(५) अन्योन्याश्रितता (Interdependence)

नगर में श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण के कारण प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों पर आश्रित रहना पड़ता है। केवल अपने काम से काम रखकर वह सुचारू रूप से कार्य कर ही नहीं सकता अतः प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर रहता है। अतः नगर में अन्योन्याश्रितता अत्यधिक सीमा तक पाई जाती है।

नागरिकता के तत्त्वों के विवेचन के पश्चात् हम ग्रामीणता के तत्त्वों को बड़ी सरलता से समझ सकते हैं और इसीलिए हमने पहले नागरिकता के तत्त्वों की विवेचना उचित समझी। ग्रामीणता के तत्त्वों की विवेचना से ग्रामीणता को स्पष्ट रूप से समझने में सहायता प्राप्त होगी।

ग्रामीणता के तत्त्व
(Elements of Ruralism)

नागरिकता के तत्त्वों से ग्रामीणता के तत्त्वों को समझने में सहायता मिलेगी। ग्रामीणता के तत्त्व नागरिकता के तत्त्वों से लगभग पूर्णतः भिन्न हैं।

(१) जनसंख्या की अनुरूपता (Homogenity of Population)

जनसंख्या की अनुरूपता से हमारा तात्पर्य यह है कि जनसंख्या में प्रायः एक ही तरह के व्यक्ति पाये जाते हैं। वर्गों, प्रजातियों, संस्कृतियों, धर्मों आदि की

भिन्नता ग्रामीण जीवन में नहीं पायी जाती। प्रायः एक ही सांस्कृतिक समुदाय के व्यक्ति ग्रामीण जीवन में पाए जाते हैं।

(२) न्यून जनसंख्या (Scarce Population)

न्यून जनसंख्या से तात्पर्य है कि व्यक्तियों की संख्या ग्रामीण जीवन में बहुत कम पाई जाती है। गांवों में कम व्यक्तियों के कारण किसी ने मकान-समस्या की बात सुनी भी न होगी। जनसंख्या की न्यूनता ग्रामीण जीवन में ही पाई जाती है।

(३) परिवार प्रधानता (Dominance of Family)

ग्रामीण जीवन में जनसंख्या की न्यूनता होने के कारण सामाजिक सम्पर्क अधिक नहीं हो पाता अतः व्यक्ति अपने परिवार से ही अधिक बंधा रहता है और उस पर परिवार की प्रधानता रहती है। ग्रामीण जीवन में व्यक्ति की नहीं, परिवार की प्रधानता है। परिवार से ही व्यक्ति को जाना जाता है।

(४) कृषि-मूल व्यवसाय(Fundamental occupation-Agriculture)

ग्रामीण जीवन में व्यवसायों की बहुलता नहीं पाई जाती। वहां का मूल व्यवसाय ही कृषि है। ग्रामीण जनता विशेष रूप से कृषि पर ही निर्भर रहती है। यद्यपि कृषि के अतिरिक्त भी कुछ व्यवसाय ग्रामीण जीवन में पाये जाते हैं, किन्तु मूल व्यवसाय कृषि ही होता है और गांव की अधिकांश जनता इसी पर निर्भर होती है।

(५) प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध (Intimate Relation with Nature)

ग्रामीण जीवन का मूल आधार कृषि है और कृषि प्रकृति पर आधारित है। कृषि के लिए भूमि, जलवायु, वर्षा, धूप आदि प्राकृतिक तत्व अत्यन्त महत्व रखते हैं। अतः कृषक कृषि के लिए इन प्राकृतिक तत्वों पर निर्भर करता है और ये तत्व उसके कार्यकलापों में भी परिलक्षित होने लगते हैं। इस भांति हम कह सकते हैं कि ग्रामीण जीवन का प्रकृति से घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

ऊपर हमने ग्रामीणता एवं नागरिकता के तत्वों का उल्लेख किया। नागरिक जीवन एवं ग्रामीण जीवन दोनों ही एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं। इस आधार पर कई समाजशास्त्रियों ने ग्रामीण समाजशास्त्र को तुलनात्मक अध्ययन के रूप में निर्धारित किया है अर्थात् ग्रामीण समाजशास्त्र वह शास्त्र है, जो सामान्य समाजशास्त्र को दो भागों में विभाजित करता है। प्रथम ग्रामीण समाजशास्त्र (Rural Sociology) और द्वितीय नागरिक समाजशास्त्र (Urban Sociology)।

अतः यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र, वह सामाजिक विज्ञान है, जिसमें ग्रामीणता का तत्व विशेष रूप से कार्य करता है, जहां जीवन के प्रत्येक पहलू में नागरिकता की प्राचीनता दृष्टिगोचर होती है। अनेक विद्वानों ने इन दोनों विज्ञानों को एक नाम से ही परिभाषित किया है जिसका नाम ग्रामीण नागरिक समाजशास्त्र (Rural Urban Sociology) रक्खा है। समाजशास्त्रियों का कथन है कि ग्रामीणता के तत्व न केवल समाज-शास्त्र के क्षेत्र में ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, वरन् यह प्रत्येक देश की नागरिकता, प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति तथा सामाजिक जीवन के भी द्योतक हैं। ग्रामीणता के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ग्रामीणता प्राकृतिक पर्यावरण में पलनेवाली एक विशेष संस्कृति है, जिसका आधार कृषि है तथा जो इस जीवन विशेष की सामाजिक-आर्थिक इकाई (Socio-Economic Unit) है। अब हम ग्रामीण समाजशास्त्र के ग्राम पुनर्निर्माण सम्बन्धी रूप की विवेचना करेंगे।

ग्रामीण समाजशास्त्र: ग्रामीण पुनर्निर्माण के समाजशास्त्र के रूप में
(Rural Sociology as Sociology of Rural Reconstruction)

ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ एवं ग्रामीणता के अध्ययन से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो गया होगा कि ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण जीवन का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करता है और विभिन्न ग्रामीण समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करता है। इसलिए अनेक विद्वानों ने इसे ग्रामीण पुनर्निर्माण के समाजशास्त्र का नाम भी दिया है।

ग्रामीणता के अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण कल्याण की कल्पना निर्धारित करना है। इस सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने उचित कहा है, "वास्तव में भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र अथवा विशिष्ट भारतीय सामाजिक संगठन को प्रशासित करनेवाला विधि-विज्ञान एक ऐसे विज्ञान का निर्माण करने को है जो भारतीय ग्रामीण समाज के पुनर्निर्माण का आधारभूत आदर्श स्थल है, जो कि समस्त भारतीय समाज के उत्थान के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।"* यहाँ ग्रामीण समाजशास्त्र को नियमों का विज्ञान एवं नवनिर्माण

* "In fact, Indian Rural Sociology or the Science of the laws governing the specific Indian Social Organisation has still to be created such a science is, however the basic promise for the revovation of the Indian Rural Society. So indispensable for the revovation of the Indian Society as a whole."
A. R. Desai : 'Rural Sociology in India'; p. 5.

का आवश्यक विधान कह कर पुकारा गया है। इसका कारण देश की विशेष आवश्यकता ही है। प्रत्येक शास्त्र व विज्ञान के अर्थ व परिभाषा पर देश, काल, व गति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। भारत देश में ग्रामीण समाजशास्त्र का जो अर्थ है; सम्भव है वह अन्य किसी देश-विशेष में लागू न हो सके, जहाँ ग्रामीण समाज का बाहुल्य न हो। फिर भी हम प्रो० देसाई द्वारा दिए गए अर्थ को सर्वोचित स्थान देने का साहस कर सकते हैं, चाहे देश-विशेष विकसित हो या अर्द्धविकसित एवं अविकसित हो, तो भी ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थों में प्रायः सामान्यता ही प्राप्त होगी। केवल भारत ही ऐसा कृषि प्रधान देश नहीं है, जहाँ ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ सुधार के विधान के रूप में निर्धारित किया जाता है। अमेरिका, रूस आदि औद्योगिक विकसित (Industrially Developed) देश भी ऐसे हैं जहाँ ग्रामीण समाजशास्त्र को पुनर्निर्माण व विकास का विधान कह कर पुकारा है। इस सम्बन्ध में हाऊस (House) महोदय ने एक स्थान पर विचार व्यक्त किया है कि समस्त समाजशास्त्रीय विज्ञानों का प्रारम्भ में यह ध्येय रहा है कि वे समाज के नवनिर्माण के कार्य में रचनात्मक योग दें। उन्होंने कहा है, "अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र अपनी प्रारम्भिक अवस्था में विस्तृत रूप से नैतिक मूल्यांकनों एवं ग्रामीण जीवन के उत्थान के रचनात्मक सुझावों से परिपूर्ण, जो कुछ समाजशास्त्र के लिए हो चुके थे, के समान था।"[5]

अतः ग्रामीण समाजशास्त्र का यह सदा से ध्येय रहा है कि न केवल वह ग्रामीण सामाजिक ढांचे (Rural Social Structure) का ही अध्ययन प्रस्तुत करे, अपितु ग्रामीण जीवन के कल्याण की विधियों का भी अन्वेषण करे। प्रत्येक देश का ग्रामीण जीवन पिछड़ा हुआ एवं अविकसित रहा है एक देश-विशेष में सदा से ग्रामीण उत्थान के प्रयत्न पर बल दिया गया है। अमरीका, जो इस शास्त्र का उदय स्थल है, वहाँ भी प्रारम्भ में इस शास्त्र का प्रयोग ग्राम विकास क्षेत्र में ही किया गया था। जबकि ग्रामीण समाजशास्त्र अपने पूर्ण अस्तित्व में उपस्थित भी नहीं हुआ था, उस समय भी ग्रामीण समस्याओं के अध्ययन व समाधानों पर बल दिया जाता था और ये प्रयत्न धीरे धीरे इस शास्त्र के रूप में विकसित हो गए।

इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र, दीर्घकाल से समाज उत्थान के क्षेत्र में कार्य करने वाला एक महत्वपूर्ण विज्ञान रहा है। इसी आधार पर कई ग्रामीण

---

2 "In its beginning, rural sociology, like much of the rest of what passed for sociology in the United States, consisted largely of ethical evaluations and practical proposals for the improvement of rural life.": House; 'Develpment of Sociology'; p. 341.

समाजशास्त्रियों ने इस शास्त्र को ग्रामीण पुनर्निर्माण का समाजशास्त्र (Sociology of Rural Reconstruction) कह कर पुकारा है। कई स्थानों पर इसे ग्राम परिवर्तन के समाजशास्त्र (Sociology of Rural Change) के अर्थों में भी प्रयुक्त किया गया है। जिम्मरमैन ने भी उचित कहा है, "भूतकाल में ग्रामीण समाजशास्त्रियों ने ग्रामीण जीवन में भविष्य में आवश्यक सुधारों की योजना बनाने का प्रयास किया, पूर्व इसके उन्होंने सुधार के उन सिद्धान्तों को विकसित किया जिन पर समस्त सुधार अवलम्बित हो सकते थे।"[6]

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण पर्यावरण से प्रभावित सामाजिक सम्बन्धों, समस्याओं, प्रक्रियाओं, घटनाओं आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण करने वाला तथा पुनर्निर्माण सम्बन्धी रचनात्मक सुझाव देने वाला विज्ञान है। अब हम ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ को भारतीय पृष्ठभूमि में भी अध्ययन करना आवश्यक समझते हैं।

भारतीय आधार पर ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ

(The meaning of Rural Sociology on Indian Patterns)

इस विवेचन के उपरान्त अब हमारा ध्यान इस शास्त्र के भारतीय अर्थ की ओर आकर्षित होता है। हम पहिले वर्णन कर चुके हैं कि यह शास्त्र सामान्य रूप से ग्रामीण समस्याओं का अन्वेषण करने वाला शास्त्र तो है ही, परन्तु हमारा देश भारतवर्ष एक ग्रामीण भारत (Rural India) होने के फलस्वरूप यहाँ यह अर्थ अधिक व्यापक हो जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने भी कहा है, "एक मात्र ग्रामीण समाजशास्त्र ही एक विशिष्ट ग्रामीण समाज और उसकी आगे विकसित होने वाली मनोवृत्तियों की एक सही उत्पत्ति, चेतन, सूक्ष्म, एवं बहुदृष्टीय ज्ञान प्रदान कर सकता है।"[7] इसका अर्थ यह हुआ कि यह शास्त्र ग्रामीण प्रक्रियाओं (Rural Processes) के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने वाला विज्ञान है और इसी आधार पर यह भी सम्भव हो सकता

---

[6] "Rural Sociologists in the past have attempted to plan the reforms future needed in rural life before they had developed the principles on which these reforms might be based." Zimmerman "Principles of Rural Urban Sociology;" New York, 1929.

[7] "Rural Sociology alone can provide a correct, origin, synthetic and Multisided knowledge of a specific rural society and the tendency of its further evolution." A. R. Desai : "Rural Sociology in India", The Indian Society of Agriculture Economics; Bombay (1959); p. 106.

है कि यह शास्त्र ग्रामीण समाज सुधार के क्षेत्र में एक उपयुक्त शास्त्र है।

यह तो हम सभी जानते हैं कि भारतवर्ष को इस समय इस शास्त्र के अधिक विस्तृत अर्थ की आवश्यकता है, क्योंकि वर्तमान युग में भारतीय ग्रामीण रचना अत्यधिक गम्भीर समस्याओं से परिपूर्ण हैं। इस देश को अन्य देशों के ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक स्तर (Rural Socio-Economic Standard) के समान आने के लिए इस शास्त्र के विस्तृत रूप की आवश्यकता होगी। इस बात पर श्री देसाई ने भी बल देते हुए कहा है कि ग्रामीण समाजशास्त्र एक अति अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण निर्देशिका (Indispensable Guide) है। इस शास्त्र के अर्थ को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है कि "समाज के सावधानीपूर्वक परिवर्तन के लिए हमारे पास समाज का विज्ञान होना चाहिए। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज का ही विज्ञान है। ग्रामीण समाज के संरचनात्मक विकास के नियम तो साधारण रूप से विशिष्ट ग्रामीण समाज को प्रशासित करने वाले विशेष नियमों के अन्वेषण में योग दे सकते हैं।"[8]

इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र भारत का वह शास्त्र होगा जो समाज के समाजवादी रूप (Socialistic Pattern of Society) की कल्पना को साकार बनाने में योग देगा। इस प्रकार भारत का ग्रामीण समाजशास्त्र केवल ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन मात्र ही नहीं होगा,अपितु समस्याओं के अवलोकन के साथ-साथ निवारण का वैज्ञानिक ढंग खोजने का प्रयास करेगा।

इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र की उपयोगिता भारत जैसे देश के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। यह शास्त्र ग्रामीण क्षेत्र में कार्यान्वित सभी विचारधाराओं, प्रवृत्तियों एवं क्रियाओं का निर्देशन करने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकेगा, ऐसी आशा की जाती है। ग्रामीण समाजशास्त्र, श्री देसाई के शब्दों में वह निर्देशिका (Guide Book) होगी, जो ग्रामीण पुनर्निर्माण के सभी कार्य-कर्त्ताओं का मार्ग प्रदर्शन करेगी।

अतः हमारे सम्मुख स्पष्ट हो गया है कि ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्राम समाज के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करने के साथ समस्याओं एवं समाधानों से परिपूर्ण शास्त्र है। अब हम इस शास्त्र की प्रकृति पर अपना ध्यान आकर्षित करते हैं।

---

[8] "To change society consciously, we must have a science of society. Rural Sociology is the science of rural society. The Laws of the structural development of rural society in general can aid us in discovering of the special laws governing a particular rural society." A. R. Desai :"Rural Sociology in India"; p. 106.

अध्याय २

ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति
(Nature of Rural Sociology)

प्रत्येक सामाजिक विज्ञान (Social Science) का अध्ययन करने के लिये हम उसे विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास करते हैं। इसी उद्देश्य से हमने गत अध्याय में ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ पर विवेचन किया। अतः इस शास्त्र के मन्तव्य को अधिक स्पष्ट रूप से जानने के लिये हम यहां पर इस शास्त्र की प्रकृति पर विचार करेंगे।

ग्रामीण समाजशास्त्र के एक नवीन विज्ञान होने के कारण, इसकी प्रकृति के सम्बन्ध में लोगों में पूर्ण परिचय का अभाव है और विचारों में विभिन्न भ्रान्तियाँ भी हैं। प्रत्येक समाजशास्त्री इसको भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास करता है और भिन्न रूप में ही इसकी प्रकृति निर्धारित की जाती है। उदाहरणार्थ गत परिच्छेद में हमने देखा कि एक विद्वान ग्रामीण समाजशास्त्र को सामाजिक जीवन के विधान के रूप में प्रस्तुत करते हैं तो दूसरे ग्रामीण सामाजिक जीवन की निर्देशिका (Guide) के रूप में। इसी प्रकार एक स्थान पर इसे ग्रामीण जीवन का अध्ययन बताया जाता है तो दूसरे स्थान पर इसे ग्रामीण सुधारों का विज्ञान पुकारा जाता है।

इस भांति ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति जानने के लिये सर्व प्रथम हमें ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ स्पष्ट रूप से जान लेना आवश्यक है। ग्रामीण शब्द से हमारा तात्पर्य एक विशेष पर्यावरण (Environment) से है। जहां मूल व्यवसाय-कृषि, जनसंख्या में न्यूनता एवं अनुरूपता तथा प्रकृति से घनिष्टता पाई जाती है। ग्रामीण समाज में संस्कृति एवं सभ्यता का प्राचीन रूप उपलब्ध होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज के ग्रामीण पर्यावरण के अध्ययन की प्रक्रियात्मक व्यवस्था के विज्ञान को ग्रामीण समाजशास्त्र कहते हैं। स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह वह शास्त्र है जो ग्रामीण पर्यावरण में उपलब्ध समाज अथवा सामाजिक संगठन में ग्रामीण कारणों (Rural Factors) के प्रभावों का अध्ययन करता है। यह शास्त्र ग्रामीण समस्याओं के कारणों एवं कार्यों का पता लगाता है और इनका समाधान प्रस्तुत करने के

साथ ही साथ सामाजिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणी भी प्रस्तुत करता है।

इस विश्लेषण के आधार पर हमको इस शास्त्र की प्रकृति निर्धारित करने के लिये इस बात का पता लगाने का प्रयास करना पड़ेगा कि समस्याओं के कारण व कार्यों का सम्बन्ध बताने में यह वैज्ञानिक प्रवृत्तियों का पालन करता है अथवा नहीं। यह शास्त्र विज्ञान की परिभाषा से विभूषित किया जा सकने योग्य है अथवा नहीं। इससे पूर्व कि हम ग्रामीण समाजशास्त्र को विज्ञान की कसौटी पर कसें हमारे लिए यह समझाना अधिक आवश्यक है कि विज्ञान क्या है?

विज्ञान क्या है? (What is Science?)

सामान्यतया किसी वस्तु के क्रमबद्ध एवं विस्तृत ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। विज्ञान, ज्ञान विशेष का क्रमबद्ध रूप होता है। प्राय: साधारण व्यक्ति विज्ञान (Science) से केवल उसी ज्ञान को लेते हैं जिसका विश्लेषण भौतिक अनुसंधानशाला में होता है। जैसे रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, जीवशास्त्र, भूगर्भशास्त्र आदि। परन्तु वर्तमान युग में विज्ञान का अर्थ केवल इन्हीं भौतिक शास्त्रों के अनुसंधानित ज्ञान से नहीं है। किसी प्रकार का व्यवस्थित ज्ञान जिसे प्राप्त करने में वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Methodology) का प्रयोग किया गया हो, विज्ञान की परिधि में आता है। स्मिथ ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "विज्ञान वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग से प्राप्त तथ्यों व सिद्धान्तों का एक व्यवस्थित व क्रमिक रीति से संचय है।"[1] इन्होंने व्यवस्था एवं वैज्ञानिक पद्धति पर ही बल दिया है। इसी प्रकार अन्य समाजशास्त्री वेनवर्ग और शेवत (Weinberg and Shabat) ने भी लिखा है, "विज्ञान संसार की ओर देखने की एक विशेष पद्धति है।"[2]

इन्होंने विज्ञान को ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति विशेष माना है। इससे स्पष्ट है कि पद्धति विशेष से प्राप्त ज्ञान ही विज्ञान है। चर्चमेन तथा अकोफ ने विज्ञान

---

1 "Science is the accumulation, arranged in orderly fashion, of facts and principles which have been derived from the application of the scientific method." T. lynn Smith : 'The Sociology of Rural Life'; p. 3.

2 "Science is a certain way of looking at the world". Weinberg and Shabat :'Society and man'; Prontice-Hall Inc. (1956); p. 11.

के सम्बन्ध में लिखा है, "विज्ञान कार्यदक्ष अनुसंधान है।"[3] व्हाइट ने लिखा है, "विज्ञान वैज्ञानीकरण है।"[4] इन आधारों पर हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि विज्ञान एक विशिष्ट पद्धति में निहित है। वह ज्ञान, जो व्यवस्थित रूप से प्राप्त किया जाता हो और जिसमें व्यवस्थित रूप से होने के कारण निष्पक्षता एवं कर्म-विषयकता आदि गुण हों, विज्ञान कहलाता है।

विज्ञान के सम्बन्ध में अनेक गलत धारणायें प्रयोगशाला से सम्बन्धित भी प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि केवल प्रयोग शालाओं में प्राप्त ज्ञान ही विज्ञान है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन के लिये हम कृत्रिम प्रयोगशालाओं का निर्माण नहीं कर सकते, क्योंकि सामाजिक सम्बन्ध अभौतिक एवं अमूर्त्त हैं। कार (Carr) ने उचित ही लिखा है, "प्रत्येक विज्ञान संसार के प्रति एक धारणा, एक दृष्टिकोण, एक प्रमाणित एवं व्यवस्थित ज्ञान की ओर खोज करने की एक पद्धति है।"[5]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि विज्ञान वह ज्ञान है, जो वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा व्यवस्थित रूप से प्राप्त किया जाता हो एवं जिसमें कर्मविषयता, निष्पक्षता आदि गुण उपलब्ध हों। अब हम ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति निर्धारित करने से पूर्व वैज्ञानिक पद्धति एवं विज्ञान के प्रमुख गुणों की विवेचना करेंगे।

वैज्ञानिक पद्धति

(Scientific Method)

उपर हमने विज्ञान के अर्थ के विवेचन के समय यह देखा कि विज्ञान केवल वैज्ञनिक पद्धति द्वारा प्राप्त ज्ञान है इसलिए स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आखिर यह वैज्ञानिक पद्धति है क्या? वैज्ञानिक पद्धति ज्ञान प्राप्त करने की एक निश्चित व्यवस्था है, जिसके द्वारा प्राप्त ज्ञान मानव कमजोरियों, जैसे मन की चंचलता (Caprice) एवं एच्छिक विचारधारा (Wishfull

---

[3] "Science is an efficient enquiry." C. Churchman & Ackoff : 'Methods of Inquiry.' p. 10.

[4] "Science is Sciencing." L. A. White: 'Science Culture'; New York; (1949) p. 1.

[5] "Every Science is at once an attitude towards the world, a point of viewing, a systematic body of verifiable knowledge and a way of finding." Carr, Lavell J: 'Analytical Sociology'; p. 1.

Thinking) आदि से दूर होता है तथा जिसमें कर्मविषयता एवं निष्पक्षता आदि गुण पाये जाते हैं। लुण्डवर्ग (Lundberg) ने लिखा है, "विस्तृत भाषा में वैज्ञानिक पद्धति तथ्यों का व्यवस्थित अवलोकन, वर्गीकरण एवं निर्वचन है।"[6]

वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण
(Main steps of Scientific methods)

वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरणों में विभिन्न विद्वानों के विचारों के आधार पर भिन्नता प्रदर्शित होती है। नीचे हम कुछ विद्वानों के द्वारा उल्लेखित चरणों का वर्णन करेंगे।

(क) लुण्डवर्ग[7] (Georg A. Lundberg) **के अनुसार :**

(१) काम चलाऊ उपकल्पना (The working hypothesis)
(२) स्वीकृत तथ्यों का अवलोकन एवं लेखन (The observation and Recording of data).
(३) स्वीकृत तथ्यों का वर्गीकरण एवं संगठन (The classification & Organisation of data).
(४) सामान्यीकरण (Generalization)

(ख) यंग[8] (P. V. Young) **के अनुसार :**

(१) एक काम चलाऊ उपकल्पना का निर्माण (Formulation of a working hypothesis).
(२) स्वीकृत तथ्यों का अवलोकन, संग्रहण, एवं लेखन (Observation, collection and Recording of Data).
(३) लिखित तथ्यों का श्रेणियों अथवा/और क्रमों में वर्गीकरण (Classification of Recorded Data into series and/or sequences).

---

6 "Broadly speaking, scientific method consists of systematic operation, classification and interpretation of data." Georg A. Lundberg : 'Social Research'; (1942) p. 5.

7 Georg A. Lundberg : Op. Cit. p. 8.

8 P. V. Young : 'Scientific Social Surveys & Research'; (1953) p. 126–133.

(४) वैज्ञानिक सामान्यीकरण एवं सामाजिक नियमों का निर्माण (Scientific generalization and formulation of Social laws).

(ग) एगलबर्नर[१] (Eigelberner) के अनुसार :

(१) समस्या की व्याख्या एवं काम चलाऊ उपकल्पना (Analysis of Problem and working hypothesis).

(२) यथार्थ तथ्यों का संग्रहण (Collection of pertinent facts)

(३) वर्गीकरण एवं सारणीयन (Classification and Tabulation of Data).

(४) निष्कर्ष निकालना (Formulation of conclusions).

(५) निष्कर्षों की परीक्षा एवं सत्यापन (Testing and verifying the conclusions).

ऊपर हमने विभिन्न विद्वानों के द्वारा दिये गए प्रमुख चरणों का उल्लेख किया। नीचे हम वैज्ञानिक पद्धति के सामान्यत: मान्य चरणों का उल्लेख करेंगे।

१. उपकल्पना का निर्माण (Making a Hypothesis)

प्रत्येक अनुसन्धान में यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम विषयवस्तु की स्पष्ट व्याख्या एवं परिभाषा की जाय। समस्या विशेष की सूक्ष्म व्याख्या एवं उपकल्पना पद्धति का सबसे आवश्यक एवं प्रथम तत्व है। इससे अनुसन्धान की प्रक्रिया में काफी सरलता हो जाती है।

२. यन्त्र चुनाव (Selection of Apparatus)

वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) में वास्तविकता तथा सुगमता लाने के लिये विशिष्ट यन्त्रों का प्रयोग व लेखन क्रिया भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उपकल्पना निर्धारण के उपरांत तथ्य एकत्रण एवं निरीक्षण आदि के समय इस प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के यन्त्रों के सहयोग से तथ्यों (Facts) में सूक्ष्मता, व्यवस्था तथा वास्तविकता आदि बातें प्राप्त करने के लिये बड़ी सुविधा होती है। यह बड़ा आवश्यक कार्य है। वैज्ञानिक पद्धति के क्षेत्र में इस प्रकार के विभिन्न यन्त्र आविष्कृत हो चुके हैं।

---

[१] J. Eigelberner : The investigation of Business Problem (1926) p. 13.

३. अवलोकन (Observation)

उपकल्पना के निर्माण के उपरान्त तथ्यों का वास्तविक अवलोकन अथवा निरीक्षण किया जाता है। इस कार्य में अनुसन्धान/संकलनकर्त्ता क्षेत्रस्थल पर जाकर तथ्यों व आंकड़ों का संकलन करता है। कभी-कभी इस कार्य में आंकड़े सांख्यीकिकीय (Statistical) ढंग से निकालने के लिए विशिष्ट यन्त्रों का प्रयोग भी किया जाता है।

४. वर्गीकरण (Classification)

वैज्ञानिक पद्धति में यह भी आवश्यक है कि प्राप्त तथ्यों (Facts) एवं आंकड़ों (Figures) का विषयानुसार एवं क्रमानुसार वर्गीकरण किया जाय। एकत्रित सामग्री को नियमित एवं व्यवस्थित रूप से संगठित करने के लिए यह कार्य आवश्यक है। सामाजिक सम्बन्धों के प्रतिमान उत्पन्न करने के लिए तथ्यों को तार्किक समूह में वितरित किया जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिकता का पुट सामग्री को प्राप्त हो जाता है और वे स्वीकृत तथ्य (Sanctioned data) बन जाते हैं। इस प्रकार से सामान्य अनुमान (Generalisation) निकालने में बड़ी सुगमता हो जाती है।

५. सामान्यीकरण (Generalisation).

स्वीकृत तथ्यों के आधार पर अनुसन्धान की विषय सामग्री के सम्बन्ध में सामान्य नियम निर्धारित करने में बड़ी सुगमता आ जाती है। अतः समस्याओं के सुधारों अथवा नियमों की भविष्यवाणी करने के लिये अथवा वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं नियमों (Scientific laws) आदि का निर्माण करने के लिए सामान्यीकरण करना बड़ा आवश्यक हो जाता है। इसकी अनुपस्थिति में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता है।

इस प्रकार एक विशिष्ट अनुसन्धानित ज्ञान को विज्ञान के आसन पर बैठाने के लिये उसके अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति के उपरोक्त चरणों का पालन करना आवश्यक है। इसके उपरान्त ही प्राप्य सामग्री तथा तथ्य नियम निर्माण तथा सिद्धान्त निरूपण के योग्य हो सकते हैं। यह कार्य एक विज्ञान के लिये अति अनिवार्य है। परन्तु इस प्रमुख दृष्टिकोण को कार्य रूप में परिणत करने के साथ ही साथ इस वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोगात्मक क्षेत्र में अनुसन्धान-कर्त्ता में व्याप्त भावनाओं व आदर्शों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अनुसन्धान का समस्त भार वैज्ञानिक पर ही निर्भर है। सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में तो इस कार्य में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है क्योंकि वह स्वयं समाज से पूर्ण प्रभावित होता है। वह स्वयं समाज का एक अंग होता है। इसके साथ-साथ

सामाजिक व्यवहारों की परिवर्त्तनशीलता तथा उसका मनोवैज्ञानिक आधार भी एक जटिल समस्या है। इसलिये हम यहाँ पर वैज्ञानिक पद्धति में वैज्ञानिक विशेषत: सामाजिक वैज्ञानिक (Social Scientist) की विशेषताओं का निरूपण करना आवश्यक समझते हैं। सामान्यत: हम निम्न विशेषताएं प्रत्येक वैज्ञानिक में आवश्यक समझते हैं :—

(क)	कर्म विषयता	(Objectivity)
(ख)	जिज्ञासा	(Curiosity)
(ग)	धैर्य	(Patience)
(घ)	साहस	(Courage)
(ङ)	निष्पक्षता	(Impartiality)
(च)	कठोर परिश्रम	(Hard Work)
(छ)	निर्णय क्षमता	(Judging Capacity)
(ज)	निर्माणक कल्पना	(Creative Imagination)

वास्तव में उपरोक्त विशेषतायें एक प्रकार से वैज्ञानिक पद्धति की आत्मा है। इस सम्बन्ध में श्री सीर्ल्स (Searles) ने लिखा है, "तथ्यों के सामने एक छोटे बच्चे के समान बैठ जाओ, और उन्हें वहां ले जाने दो जहाँ वे तुम्हें ले जाना चाहें।"[10]

इस पूर्ण विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि प्रत्येक शास्त्र की प्रकृति तभी वैज्ञानिक हो सकती है जबकि उक्त बातों का उसमें अनिवार्य रूप से समावेश हो। अत: अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि ग्रामीण समाजशास्त्र कहाँ तक वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) का अनुसरण करता है। इस निश्चय के उपरान्त ही हम इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति अन्य सामाजिक विज्ञानों के समान वैज्ञानिक है, और यह एक पूर्ण रूपेण विज्ञान है।

ग्रामीण समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति

(Scientific Nature of Rural Sociology)

यह तो हम पहले ही निश्चय कर चुके हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समुदाय का एक सामाजिक शास्त्र (Social Science) है, जो

---

10 "Sit down before the facts as a little child, and let them lead you where they will." Horbert. D. Searles : 'Logic and Scientific Method'; The Ronaldpress Company; New York; (1948); p. 126.

ग्रामीण पर्यावरण में सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन करता है।

विज्ञान एवं वैज्ञानिक पद्धति के विवेचन के पश्चात् हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम ग्रामीण समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति की विवेचना करें। हम यह देख ही आये हैं कि एक शास्त्र को विज्ञान का रूप देने की अथवा विज्ञान के आसन पर बैठाने की क्या पद्धति है। अतः हम ग्रामीण समाजशास्त्र को वैज्ञानिक कसौटियों पर कस कर देखेंगे कि ग्रामीण समाजशास्त्र एक विज्ञान है अथवा नहीं।

१. ग्रामीण समाजशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है (Rural Sociology uses the Seientific Method).

ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन का एक विशिष्ट भाग ग्रामीण पर्यावरण (Rural Environment) में समाज का अध्ययन है। अतः इस अध्ययन में विभिन्न तथ्यों की खोज के लिये तथा ग्रामीण जीवन के प्रतिमानों (Patterns of Rural life) को जानने के लिये अनेक वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। जिसमें से प्रमुख सामाजिक सांख्यिकी (Social Statistics), सामाजिक पर्यवलोकन (Social Survey), वैयक्तिक विषय अध्ययन पद्धति (Case Study Method), सामुदायिक अध्ययन (Community Study), अवलोकन पद्धति (Observation Method) हैं। अतः ग्रामीण जीवन के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग होता है। वैज्ञानिक पद्धतियों के अभाव में कोई भी ज्ञान, विज्ञान नहीं हो सकता। अध्ययन के अभाव में कोई भी देश ग्रामीण क्षेत्र में किसी भी प्रकार की विकास की योजनायें नहीं चला सकता। उसे ग्रामीण समस्याओं के निवारण के लिये सामाजिक विश्लेषण की आवश्यकता होगी ही। आयोजन (Planning), सामुदायिक विकास योजना (Community Development) आदि सभी विकास योजनायें वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अध्ययन के पश्चात् ही कार्य रूप में परिणित की गई हैं।

ग्रामीण समाजशास्त्र समाज के एक अंग का विशिष्ट अध्ययन है। यह अध्ययन इतना यांत्रिक (Technological), जटिल एवं प्रायोगिक (Practical) है कि वैज्ञानिक पद्धति के अभाव में यह सम्भव नहीं हो सकता। ग्रामीण समाजशास्त्र इस बात पर भी बल देता है कि इसके सामाजिक अध्ययन के लिये ग्रामीण पर्यावरण की उपकल्पनाओं (Hypothesis of Rural Environment) का भी निर्माण किया जाय। उदाहरणार्थ "ग्रामीण जीवन में प्रत्येक संस्कृति की पुनीतता दृष्टिगोचर होती है।" "मानव उदय की प्रारम्भिक

प्रक्रिया के स्थल ग्राम हैं।" इन उपकल्पाओं के उपरान्त ही सांस्कृतिक एवं सभ्यता के उत्थान के लिये इस विशिष्ट भाग की समस्याओं का अध्ययन किया जाना चाहिये। इस कार्य में विभिन्न प्रवृत्तियो (Agencies) एवं यन्त्रों (Apparatus) का भी प्रयोग होता है। इस प्रकार तथ्यों के वर्गीकरण और सामान्यीकरण तथा आदर्श उपस्थित करने की प्रक्रिया चलती है। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास (Development of rural areas) में इसी क्रम का प्रयोग हो रहा है।

२. ग्रामीण समाजशास्त्र 'क्या है' का वर्णन करता है
(Rural Sociology describes 'what is' ?).

ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में पाये जानेवाले सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, प्रक्रियाओं आदि का अध्ययन करता है। यह इन सामाजिक सम्बन्धों को यथावत् रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। यह ग्रामीण पर्यावरण में जो कुछ भी पाया जाता है उसका ही वर्णन करता है। यह इस 'क्या है' का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत करता है।

३. ग्रामीण समाजशास्त्र सार्वभौमिक सिद्धान्तों का निर्माण करता है।
(Rural Sociology makes the universal principles).

ग्रामीण समाजशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर ग्रामीण पर्यावरण में सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है और इस अध्ययन का वर्गीकरण आदि के पश्चात् सामान्यीकरण करता है। इस भांति ग्रामीण समाजशास्त्र जिन सिद्धान्तों का निर्माण करता है वे सार्वभौमिक होते हैं और समान पर्यावरण में प्रत्येक स्थान पर सामान्य रूप से लागू किये जा सकते हैं।

४. ग्रामीण समाजशास्त्रीय सिद्धान्त प्रमाणित होते हैं तथा पुनः प्रमाणित किये जा सकते हैं
(Rural Sociological principles are based on facts and can be reverified).

ग्रामीण समाजशास्त्रीय सिद्धान्त वैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात् ही बनाये जाते हैं इसलिये ये प्रमाणों पर आधारित होते हैं। बिना प्रमाण के इन सिद्धान्तों का निर्माण नहीं होता। इसके साथ ही इन सिद्धान्तों की परीक्षा करके इन्हें पुनः प्रमाणित किया जा सकता है। कोई भी वैज्ञानिक इनका अध्ययन कर इनकी सत्यता की परीक्षा कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये सिद्धान्त सत्य होते हैं और इनकी सत्यता जांची जा सकती है।

५. ग्रामीण समाजशास्त्र कार्यकारण के सम्बन्ध की व्याख्या करता है : (Rural Sociology explains the cause and effect relationship)

ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में जिन घटनाओं का अध्ययन करता है उनके कारणों का पता लगता है और इस भांति कार्य कारणों की व्याख्या करता है तथा उनमें सम्बन्ध स्थापित करता है। यह घटनायें कैसे घटित होती हैं ? प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करता है। इस भांति यह कारणों का पता लगाकर समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करता है। ग्रामीण समाजशास्त्र का यह प्रथम लक्ष्य है कि वह विकास के साधनों के लिये सुझाव प्रस्तुत करे। जैसा कि हाऊस तथा जिमरमेन (House and Zimmerman) ने इस शास्त्र को ग्रामीण पुनर्निर्माण का श्रोत बताया है।

६. ग्रामीण समाजशास्त्र "क्या होगा" की ओर संकेत करता है (Rural Sociology points out 'What will be').

ऊपर हम यह लिख चुके हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र 'क्या है' का वर्णन करता है। इस "क्या है" के वर्णन के द्वारा ग्रामीण समाजशास्त्र यह भी अनुमान लगाता है कि परिस्थितियों के समान रहने पर इस "है" का रूप 'क्या होगा' अर्थात् यह भविष्यवाणी करता है कि वर्तमान रूप का भविष्य में अमुक रूप हो जायेगा। ये भविष्यवाणियां समान परिस्थितियों के रहने पर सत्य भी होती हैं। इन्हीं भविष्यवाणियों के आधार पर यह ग्रामीण समस्याओं के सुधार की योजनायें भी प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र पूर्ण रूप से वैज्ञानिक नियमों का पालन करता है। इस शास्त्र में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक सामाजिक विज्ञान में अनिवार्य होते हैं। अतः हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र एक विज्ञान है और इस शास्त्र की प्रकृति पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है।

ग्रामीण समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति पर आपत्तियां

(Objections ragarding the Scientific nature of rural Sociology)

इस प्रकार हमने ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति को समझने के लिये इसको विभिन्न दृष्टिकोणों से देखकर यह निश्चय किया है कि ग्रामीण

समाजशास्त्र पूर्ण रूप से विशुद्ध विज्ञान है । इसका अर्थ यह नहीं कि इस क्षेत्र में कुछ अभाव नहीं है । इस शास्त्र में विभिन्न अभाव भी दृष्टिगोचर होते हैं अतः अब हम यहां इसकी वैज्ञानिक प्रकृति के अभावों पर विचार करेंगे ।

१. ग्रामीण एवं नागरिक पर्यावरण में स्पष्ट अन्तर रेखा खींचना असंभव (Impossible to draw the difference line between rural and urban environment.)

ग्रामीण समाजशास्त्र एक नवीन विज्ञान होने के कारण इसमें समूहों और सामूहिक आचरणों के नियमों तथा घटनाओं (Phenomienons) का स्पष्ट निर्धारण नहीं किया जा सकता । नागरिक व ग्रामीण घटनाओं में एक विशुद्ध अन्तर रेखा खींचना अत्यन्त दुष्कर है । नागरिक जीवन में ग्रामीण जीवन के विभिन्न सामान्य कारणों की उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है । और इसी भांति ग्रामीण जीवन में नागरिक जीवन के तत्व पायें जाते हैं । गिस्ट हेलवर्ट ने लिखा है, "अतः ग्रामीण जीवन और नागरिक जीवन का सुपरिचित विभाजन सामुदायिक जीवन के तथ्यों पर आधारित होने की अपेक्षा अधिकांश रूप से एक सैद्धान्तिक धारणा है ।"[11] इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन दोनों में अन्तर की स्पष्ट रेखा खींचना एक कठिन कार्य है किन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि नागरिक एवं ग्रामीण जीवन में एक स्पष्ट अन्तर पाया जाता है । साधारण व्यक्ति भी इस बात का अनुभव करता है और दोनों में अन्तर प्रदर्शित करने की भी चेष्टा करता है । ग्रामीण एवं नागरिक सामाजिक ढांचे में, सामाजिक जीवन में, समस्याओं में एक स्पष्ट अन्तर होता है, इसमें सन्देह नहीं है ।

२. अविकसित (Undeveloped)

ग्रामीण समाजशास्त्र के लिए यह आपत्ति उठाई गई है कि यह विज्ञान अभी तक अविकसित है । वास्तव में देखा जाय तो समाजशास्त्र जैसे विज्ञान की उत्पत्ति को २०० वर्षों से अधिक समय नहीं हुआ है और ग्रामीण समाजशास्त्र तो समाजशास्त्र का ही एक अंग है । इसलिये इसका जन्म तो और भी बाद को हुआ है । इसलिये यदि इसके प्रति यह आरोप लगाया जाता है तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि यह असत्य है किन्तु इस आपत्ति से इसकी वैज्ञानिक प्रकृति को

---

[11] "Thus the familiar dichatomy between 'rural' and 'Urban' is more of a theoritical concept than a division based upon the facts of community life." Gist and Helbert: 'Urban Society'; (1954).,3.

कोई हानि नहीं उत्पन्न होती है। वरन् इसके विकास की आवश्यकता की ओर ही यह तथ्य संकेत करता है। अभी तक ग्रामीण समाजशास्त्रियों के प्रयत्नों को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई है। इस दिशा में विकास की आवश्यकता है।

३. प्रयोगशाला का अभाव (No Laboratory)

अन्य सभी सामाजिक विज्ञानों की भांति ग्रामीण समाजशास्त्र पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि ग्रामीण विषय सामग्री (Rural Subject matter) के लिये कोई अनुसंधानशाला नहीं है परन्तु यहां पर हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रत्येक सामाजिक विज्ञान के लिये भौतिक अनुसंधानशाला की आवश्यकता नहीं है। सामाजिक विज्ञानों की विषय सामग्री ही ऐसी नहीं होती कि उसे भौतिक अनुसंधान शाला की आवश्यकता हो। ग्रामीण सामाजिक व्यवहारों के लिये ग्रामीण समाज ही अनुसंधानशाला है। संसार के जिस स्थान में भी ग्रामीण सामाजिक जीवन पाया जाये वही स्थान ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रयोगशाला है और यह हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि केवल प्रयोगशाला ही किसी ज्ञान को विज्ञान नहीं बनाती वरन् अध्ययन प्रणाली ही उस ज्ञान को विज्ञान बनाती है।

४. कर्म विषयता का अभाव (Lack of objectivity)

सामाजिक वैज्ञानिक ग्रामीण समाजशास्त्र में यह भी अभाव बताते हैं कि यह शास्त्र पक्षपात रहित तथ्य पारित करने में असमर्थ रहता है। लेकिन इस स्थान पर हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि सामाजिक विज्ञानों के सिद्धान्तों का अवलोकन एवं प्रयोग उतनी कर्मविषयता से नहीं हो पाता जितना भौतिक विज्ञानों में सम्भव एवं अनिवार्य भी है। इसी आरोप को दूर करने के लिये ग्रामीण समाजशास्त्र में अनेक वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है जिनसे कर्मविषयता का अभाव अधिकांश सीमा तक दूर किया जा सके और निष्पक्षता लाई जा सके। इन पद्धतियों का उल्लेख हम वैज्ञानिक पद्धति की विवेचना करते समय कर आये हैं।

५. सामाजिक अनुसन्धान केन्द्रों की परिवर्तनशीलता (Changing nature of the centres of Social Investigations)

हम यह निर्धारित कर आये हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र की अनुसंधान-शाला ग्राम और वहां के ग्रामीण हैं। ग्रामीण व्यक्तियों के व्यवहारों में परिवर्तन-शीलता होना अवश्यम्भावी है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस तथ्य की विशेषता पाई जाती है। इसलिये शीघ्र तथ्य निकलना तथा नियम निर्धारित करना मुश्किल है।

परन्तु यहां हमको एक विशेषता अवश्यमेव दृष्टिगोचर होती है कि अनुसन्धानकर्त्ता नागरिक पर्यावरण का होने के कारण उतना शीघ्र प्रभावित नहीं होता जितना सामान्यतः सम्भव होता है। इस आधार पर निष्पक्ष तथ्य निकालने में सफलता मिल सकती है।

५. विषय सामग्री मापने में असमर्थ
(Incapable in measuring the Subject matter)

अन्य समाजशास्त्रों की तुलना में ग्रामीण समाजशास्त्र को एक विशिष्ट सामाजिक विज्ञान की संज्ञा देने में यह भी भ्रान्ति पाई जाती है कि यह शास्त्र अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की भांति ग्रामीण पर्यावरण के सामाजिक जीवन को तत्परता से मापने में असमर्थ है। यह धारणा मिथ्या है क्योंकि सामाजिक विज्ञानों के साथ यह बात लागू नहीं होती है कि यह शास्त्र इस सम्बन्ध में समर्थ हो। साथ ही इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये कि विज्ञान का मापने से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। वह अन्य विभिन्न साधनों से तथ्य निर्धारित कर सकता है। ग्रीन (Green) ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "विज्ञान और माप के बीच वास्तव में कोई भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है।"[12]

इस प्रकार विभिन्न आरोपों एवं भ्रान्तियों के विश्लेषण के उपरान्त हम इस निश्चय पर पहुँच सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र के सम्बन्ध में अनेक मिथ्या धारणायें प्रचलित हैं। यद्यपि यह कुछ सीमा तक सत्य भी है कि ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री इतनी जटिल है कि इसमें वैज्ञानिकता लाना दुष्कर है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समाजशास्त्र के अत्यन्त नवीन होने के कारण इस क्षेत्र में अभी इतने वैज्ञानिक प्रयोग नहीं हुए हैं। फलस्वरूप तथ्यों के अनुसंधान में स्थायित्वता नहीं आ पायी है। यदि समाजशास्त्री इस विशिष्टता से घबराकर इसको विज्ञान की संज्ञा नहीं देते तो यह उनकी भूल है। वास्तव में यह शास्त्र विकास की ओर उन्मुख है। इसे पूर्णतः वैज्ञानिक बनाया जा रहा है।

अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अन्य सामाजिक शास्त्रों की भांति ग्रामीण समाजशास्त्र एक विज्ञान है। इसके पूर्ण विकास के उपरान्त शीघ्र ही इसके विशिष्ट सामाजिक विज्ञान बन जाने की सम्भावना है।

---

12 "There is actually no direct relationship between science and measurement." Green : 'Sociology'; p. 2.

अध्याय ३

ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र
(Scope of Rural Sociology)

ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ और प्रकृति जान लेने के उपरान्त यह आवश्यक हो जाता है कि हम इसके क्षेत्र के विषय में भी जानकारी प्राप्त करें। समाजशास्त्रियों के मध्य जिस प्रकार से हमने इसके अर्थ व प्रकृति में भिन्नता देखी उसी प्रकार क्षेत्र के सम्बन्ध में भी सबकी सहमति नहीं पाई जाती। इस शास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में विभिन्न विवाद हैं।

कई लोग ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र निर्धारित करते समय इसे ग्रामीण सामाजिक घटना (Rural Social Phenomenon) का वैज्ञानिक अध्ययन बतलाते हैं। वे यह भी कहते हैं कि इस शास्त्र का क्षेत्र ग्रामीण सामाजिक जीवन की प्रक्रियाओं (Processes of Rural Social Life) का प्रतिवेदन करना है। इसी प्रकार अन्य लोगों ने इसे सामाजिक नियमों का विज्ञान मानते हुए इसका क्षेत्र ग्रामीण सुधार करना निर्धारित किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण समाजशास्त्री इस शास्त्र के क्षेत्र निर्धारण में एक मत नहीं हैं। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर देसाई ने भी लिखा है, "क्या ग्रामीण समाजशास्त्र को केवल ग्रामीण समाज का वैज्ञानिक ज्ञान और उसके विकास को प्रशासित करने वाले नियम प्रदान करने चाहिये? अथवा क्या उस समाज के आर्थिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक क्षेत्रों के पुनर्निर्माण में अथवा सुधार के क्रियात्मक कार्यक्रमों के सुझाव देने में एक निर्देशिका के रूप में सेवा करनी चाहिए।"[1] प्रो० देसाई ने अपने मतों में इस शास्त्र के क्षेत्र सम्बन्धी विवाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि वास्तव में इस शास्त्र का कार्य ग्रामीण सामाजिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना है। दूसरे स्थान में उन्होंने कहा है कि ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण जीवन के

---

[1] "Should Rural Sociology only provide scientific knowledge about rural society and laws governing its development or should it also serve as guide and suggest practical programme of reforms or reconstruction of that Society in the economic, social or cultural fields ?" A. R. Desai : 'Rural Sociology in India' . p. 8.

सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पुर्नोत्थान में भी सहयोग देना चाहिये। यह ग्रामीण सुधारों के नियमां को नियंत्रित (Governing) करने वाला विधान है। इस दृष्टि से हम इस विचार पर पहुँचते हैं कि श्री देसाई ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र निर्धारित करने में ग्रामीण सामाजिक जीवन के अध्ययन के साथ-साथ पुनर्निर्माण के पक्ष पर भी बल देते हैं। इनका तात्पर्य यह है कि ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र की यह विशिष्टता रहेगी कि यह ग्रामीण जीवन के वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत करने के साथ साथ क्रियात्मक रूप से सुधारों के उपायों का भी प्रतिवेदन करेगा।

अब तक जितने भी सामाजिक विज्ञानों का उदय हुआ है उनका क्षेत्र केवल तथ्यों का वैज्ञानिक ज्ञान प्रस्तुत करना ही रहा है न कि सुधार के उपायों का क्रियात्मक पक्ष प्रस्तुत करना। इतिहास का कार्य भूतकालीन घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत करना है न कि भविष्य में होनेवाली घटनाओं का शुद्ध रूप प्रस्तुत करना। इसी प्रकार राजनीति-शास्त्र, भूगोल-शास्त्र आदि भी हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र इस दिशा में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस शास्त्र के क्षेत्र की यह विशेषता है कि यह ग्रामीण पर्यावरण में सामाजिक तथ्यों का उद्घाटन करने के साथ सुधारों का उपाय भी प्रदर्शित करना है। यह अब भी विवाद का ही विषय है क्योंकि ग्रामीण समाजशास्त्री इस विषय में एक मत नहीं हैं। इस सम्बन्ध में दो सम्प्रदाय प्रचलित हैं। प्रथम विचारधारा के अनुसार ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण सम्बन्धों का सामान्य अध्ययन (General Study) है। द्वितीय के अनुसार यह ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों (Study of forms) का अध्ययन है। इन विवादास्पद विचारधाराओं का कारण यह है कि ये लोग समाज के रूप को दो अवस्थाओं में प्रतिलक्षित होता देखते हैं। प्रथम नागरिक, द्वितीय ग्रामीण। इसमें सन्देह नहीं कि समाज की इन अवस्थाओं के ये दो स्वरूप बाह्य रूप से एक दूसरे से काफी भिन्न प्रतीत होते है, परन्तु यदि हम इनका आन्तरिक निरीक्षण करें तो हमें प्रतीत होगा कि सैद्धान्तिक रूप से कोई स्थाई भिन्नता नहीं है। इस प्रकार भ्रमात्मक विचारों के निवारणार्थ ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र निर्धारित करते समय हमें इन विचारकों की उद्देश्यात्मक भिन्नता का निश्चित पता लगाना चाहिये।

प्रत्येक समाजशास्त्री इस बात पर एक मत है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य ग्रामीण जीवन का अध्ययन वैज्ञानिक रीति से प्रस्तुत करना है। इस आधार पर हम यह निश्चय कर रहे हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण है। ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र पर लिखते हुए स्मिथ ने लिखा है, "सबके सब यह निर्विरोध घोषणा

करते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र का मुख्य लक्ष्य ग्रामीण सामाजिक संगठन, इसके ढांचे, कार्य एवं विकास की कर्मविषयक प्रवृत्तियों आदि का वैज्ञानिक, व्यवस्थित एवं अर्थपूर्ण अध्ययन होना चाहिये और इस अध्ययन का आधार इसके विकास के नियमों का अन्वेषण होना चाहिये।"[2] प्रत्येक सामाजिक एवं प्राकृतिक शास्त्रों का ध्येय सामाजिक पर्यावरण में अदृश्य वस्तुओं का अध्ययन करना होता है। स्मिथ के मतानुसार ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र नागरिक कारकों के तुलनात्मक अध्ययन से ग्रामीण सामाजिक जीवन की गहराइयों का अध्ययन करना है तथा इस विशिष्ट जीवन के विकास के सुझाव भी प्रस्तुत करना है। इस प्रकार स्मिथ के अनुसार ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य ग्रामीण जीवन का अध्ययन एवं इस जीवन के विकास के साधनों को जुटाना है।

प्रत्येक सामाजिक विज्ञान का यह कार्य होता है कि वह समाज में व्याप्त विशृंखलताओं एवं विशेषताओं की खोज कर समाज के सम्मुख रक्खे। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र का यह क्षेत्र निर्धारित करना स्वाभाविक है कि वह ग्रामीण जीवन की विशेषताओं को प्रगट करे। साथ ही साथ इसके सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक विकास के साधनों को जुटाये। इस दिशा में अभी तक कोई ऐसा शास्त्र नहीं था जिसने यह कार्य अपनाया हो। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री की यही विशेषता है। इसीलिये इसके क्षेत्र की विस्तार की सम्भावना और भी है। ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों में बड़ी जिज्ञासा है। उत्तरोत्तर इस शास्त्र का क्षेत्र विकसित किया जा रहा है। ग्रामीण समस्याओं के निवारण के उपाय भी वर्तमान युग में सम्मिलित किये गये हैं।

कुछ लोग ग्रामीण समाजशास्त्र के उद्देश्य के विषय में सोचते हुए सांस्कृतिक आधारो को अपनाते हैं। ये लोग सांस्कृतिक पवित्रता अथवा अभौतिक संस्कृति की खोज करना इस शास्त्र का क्षेत्र निर्धारित करते हैं। इन लोगों का कहना

---

2 "All of them unanimously declare that the prime objective of Rural Sociology should be to make a scientific, systematic and comprehensive study of the rural social organisation, of its structure, functions and objective tendencies of development and on the basis of such a study, to discover the law of its development." T. Lynn. Smith : 'The Sociology of Rural life'; p. 10.

है कि सम्पूर्ण समाज एक इकाई है जिसकी संस्कृति के दो रूप हैं। भौतिक संस्कृति और अभौतिक संस्कृति। इस प्रकार ग्रामीण समाज की संस्कृति अभौतिक बतलाई जाती है। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र अभौतिक संस्कृति के कारकों को भी प्रसारित करने का कार्य करता है। इसके साथ ही साथ यह भी आशा की जाती है कि इस शास्त्र के अन्तर्गत भौतिक संस्कृति के प्रभावों अर्थात् नागरीकरण (Urbanisation) के कारकों का अध्ययन भी किया जाय।

इस प्रकार विभिन्न मत इस शास्त्र के क्षेत्र के निर्धारण में प्रचलित हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण तत्व विशेष स्थान रखते हैं। इस कथन को स्पष्ट समझने के लिए हम निम्न कारकों को आधार बनाते हैं। इन पृष्ठभूमियों में ऐसी आशा की जाती है कि हम इस शास्त्र के क्षेत्र को स्पष्टतया समझ सकेंगे।

(१) ग्रामीण ढाँचा (Rural Structure)

उक्त प्रतिवेदनों से हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र ग्रामीण तत्वों की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करना है। इन तत्वों में सबसे महत्वपूर्ण ग्रामीण ढांचा (Rural Structure) है। वर्तमान युग के विद्यार्थियों को ग्रामीण जीवन का पूर्ण ज्ञान कराने हेतु यह आवश्यक है कि उन्हें ग्रामीण ढांचे का ज्ञान हो। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र के लिये ग्रामीण ढाँचे का अध्ययन प्रस्तुत करना अनिवार्य है क्योंकि समाजशास्त्रीय क्षेत्र में ग्रामीण ढांचे का, अर्थात् ग्रामीण स्थानापन्न (Settlement) का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि ग्रामीण स्थानापन्न के द्वारा सारे सामाजिक सम्बन्ध निर्धारित होते हैं। जब मानव घुमक्कड़ अवस्था में था उस समय कोई समाज व्यवस्था नहीं थी। ग्राम रचना और ग्रामीण स्थानापन्न की परस्पर सामाजिक व्यवस्था में भी बड़ा अंतर आ गया है। संगठित गाँवों में जिस प्रकार की समाज व्यवस्था होती हैं वह ढाणियों (Hamlets) में नहीं होती। इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र के द्वारा ग्रामीण ढांचे का अध्ययन करना आवश्यक है। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण ढांचे के रूपों, स्वरूपों एवं अन्य सम्बन्धित तथ्यों व समस्याओं का अध्ययन करता है।

(२) ग्रामीण सामाजिक संगठन (Rural Social Organisation)

ग्रामीण समाजशास्त्र का यह सबसे प्रमुख कार्य है कि वह ग्रामीण सामाजिक संगठन का ज्ञान प्रस्तुत करे। सामाजिक संगठन उन सम्बन्धों को द्योतित करता है जो एक समूह के व्यक्तियों के बीच पाये जाते हैं। ग्रामीण

परिवार एवं उसके कार्य, संगठन, विवाह व उसके प्रकार, सामाजिक जातियाँ एवं वर्ग, शिक्षा संगठन आदि सब ग्रामीण समाजशास्त्र के प्रमुख अंग हैं। ग्रामीण सामाजिक संगठन का सम्पूर्ण ज्ञान प्रस्तुत करना इस शास्त्र का विषय है। इसी के अन्तर्गत ग्रामीण सामाजिक संगठन के आवश्यक तत्वों तथा उनकी विशिष्टता आदि का ज्ञान इस शास्त्र से प्राप्त करने की आशा की जाती है। ग्रामीण सामाजिक संगठन के आवश्यक तत्व मतैक्य एवं सामाजिक नियंत्रण हैं। ग्रामीण सामाजिक संगठन के दो रूप पाये जाते हैं। प्रथम व्यवस्थापित किये हुए (Enacted) और द्वितीय विकसित हुए (Creseive). । इसी प्रकार ग्रामीण समाज में जातिगत (Communal) और वर्गीय (Class based) आदि सामाजिक सगठनों का महत्वपूर्ण स्थान है।

(३) ग्रामीण सामाजिक समूह (Rural Social Groups)

समाज एवं समूह में रहने की मूल प्रवृत्ति के फलस्वरूप ही ग्राम रचना हुई है। मानव इस अवस्था के पूर्व भी समूह में रहता था। ग्राम रचना के उपरान्त वह समूह के आधिपत्य में और भी अधिक हो गया अर्थात् सामान्य स्वार्थों की मात्रा बढ़ गई। इसका कारण पूर्वजों से सम्बन्ध, विवाह, धर्म, रीतिरिवाज आदि संस्थाओं से ग्रामीण मानव का सम्बन्ध बढ़ जाना है। वास्तव में ग्रामीण सामाजिक संगठन में ग्रामीण समूहों का विशेष महत्व है। अतः ग्रामीण समूहों का अध्ययन भी ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित है।

(४) ग्रामीण सामाजिक संस्थायें (Rural Social Institutions)

ग्रामीण समाजशास्त्र की विषयवस्तु में ग्रामीण संस्थाओं का भी आवश्यक स्थान है। संस्थायें (Institutions) कार्य प्रणालियों के वे ढांचे होते हैं जो एक स्वार्थ की पूर्ति के लिये विकसित हो जाते हैं। इनके अन्तर्गत नियम व कार्य प्रणालियाँ आदि आते हैं। इसके अन्तर्गत आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक संस्थायें आदि आती हैं और इनका अध्ययन भी ग्रामीण समाजशास्त्र के द्वारा किया जाता है।

(५) नागरिक ग्रामीण भेद (Rural Urban differences)

ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र निर्धारित करने वाले यह भी कहते हैं कि इस शास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण नागरिक तत्वों की भिन्नता का अध्ययन भी किया जाता है। ग्रामीण नागरिक वर्ग रचना का तुलनात्मक ज्ञान प्रस्तुत करना इस शास्त्र का ध्येय है। इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि इस शास्त्र की विषय सामग्री प्रमुखतः यही है कि वह ग्रामीण समाज पर अन्य कारकों के

प्रभावों को देखे। ग्रामीण कारकों के प्रभाव का अध्ययन भी इस शास्त्र का विषय है। इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण एवं नागरिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन भी कहते हैं। इस सम्बन्ध में जिम्मर मेन (Zimmerman) ने भी लिखा है, "ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र, जैसा कि कोई भी अपनी केन्द्रीय धारणा के लिए ले सकता है, जनसंख्या पर नागरीकरण एवं ग्राम्यीकरण का प्रभाव तथा यांत्रिकवाद है। बाद में इसी प्रसंग में वे इस परिभाषा को विस्तृत करते हुए इसके अन्तर्गत, व्यवहारों में ग्रामीण नागरिक विभेदों एवं पर्यावरण के चुनाव के कारण इन विभेदों की व्याख्या तथा साथ ही साथ नागरीकरण तथा ग्राम्यीकरण की यांत्रिकता भी सम्मिलित करते हैं।"[3]

इस प्रकार से ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र में नागरीकरण व ग्राम्यीकरण के तुलनात्मक प्रभावों का समावेश होना अनिवार्य है। वास्तव में देखा जाय तो हम इस तुलनात्मक अध्ययन के बिना किसी भी कारक का पूर्ण अध्ययन नहीं कर सकते। ग्राम्यीकरण का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें नागरीकरण की कल्पना अपने सम्मुख अवश्यमेव रखनी होगी।

(६) ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन
(A Study of Rural problems)

ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि के विश्लेषण से ज्ञात होगा कि इस क्षेत्र में सबसे प्रथम प्रयास ग्रामीण समस्याओं का प्रतिवेदन करना ही था। इस दिशा में जो अध्ययन प्रारम्भ हुआ था उनका उद्देश्य ग्रामीण समस्याओं का ही अनुसन्धान करना था। समस्या के दृष्टिकोण के समर्थक ग्रामीण समस्याओं का आधार आर्थिक विघटन मानते हैं। इसी आधार पर वे ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक इकाईयों (Rural Socio-Economic Units) को संगठित व सम्बन्धित बतलाते हैं। उन्होंने इस आधार पर ग्रामीण सामाजिक अर्थशास्त्र (Rural Social Economics) को भी जन्म दिया। प्राथमिक अवस्था

---

3. "The field of rural sociology as one having for its central concept, the mechanism and effects of urbanisation and ruralisation upon a population, later in the same contex, he elaborates this definition to include the study of rural urban differences in behaviour and the explanation of these differences in terms of environmental causation and selection as well as the mechanism of urbanisation and ruralisation." Zimmerman : 'op. cit' pp. 254-256.

में आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण ही इस शास्त्र का उद्देश्य था। ग्राम समस्याओं के प्रति बहु समस्याओं के सिद्धान्त का भी वर्णन हम प्रथम अध्याय में कर आये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र में ग्रामीण समस्याओं को सम्मिलित करना आवश्यक है।

(७) ग्रामीण सामाजिक जीवन (Rural Social life)

प्रो० स्मिथ (Smith) ने ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र पुकारा है। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण जीवन का सामाजिक अध्ययन अथवा ग्रामीण सामाजिक जीवन का अध्ययन इस शास्त्र का प्रमुख कार्य है। ग्रामीण जन (Rural people), ग्रामीण जन संख्या (Rural Population) एवं उसका घनत्व (Density), ग्रामीण पर्यावरण, रहन सहन का स्तर, व्यवसाय, आर्थिक स्थिति आदि इसके अन्तर्गत आते हैं। इसके साथ साथ ग्रामीण पर्यावरण में सामाजिक स्वरूपों (Social forms) का दर्शन हो जाता है। ग्रामीण जाति व ग्रामीण वर्गों आदि के अध्ययन से सामाजिक जीवन का अध्ययन पूर्ण होता है। इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्री इस शास्त्र का क्षेत्र निर्धारित करते समय सामाजिक जीवन के इन तत्वों पर बड़ा बल देते हैं। जाति व्यवस्था भारतीय ग्रामों के सामाजिक जीवन की प्रमुख विशेषता मानी जाती है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र इतना विशाल है कि यह ग्रामीण सामाजिक जीवन का सर्वांगीण अध्ययन कर लेता है। ग्रामीण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, भौतिक तथा अभौतिक आदि सभी अंगों का अध्ययन करने का प्रयास भी ग्रामीण समाजशास्त्र करता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि ग्रामीण सामाजिक जीवन की कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं बचती जिसका अध्ययन इस शास्त्र के अन्तर्गत न होता हो।

(८) ग्रामीण आयोजन एवं पुनर्निर्माण (Rural planning and Re-construction)

वैज्ञानिक युग में नवनिर्माण के प्रत्येक कार्य में आयोजन का उपयोग किया जाता है। सामाजिक नवनिर्माण सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के मूल्यांकन एवं विश्लेषण के द्वारा होता है। ग्रामीण समाजशास्त्र इस क्षेत्र में भी अपना कदम रखता है। ग्रामीण सामाजिक समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा, नवीन सामाजिक मूल्यों का निर्माण करना अत्यन्त लाभप्रद है। इस प्रकार के

प्रयत्नों से पुनर्निर्माण सर्वव्यापी और अधिक सफल माना जाता है। सामाजिक निर्माण में नैतिक मूल्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र सामाजिक पुनर्निर्माण हेतु नैतिक मूल्यों का अध्ययन प्रस्तुत कर आयोजन एवं पुनर्निर्माण की कल्पना निर्धारित करता है। इस सम्बन्ध में श्री हाउस ग्रामीण समाजशास्त्र को सामाजिक विधान की परिभाषा देते हुए लिखते हैं, "अमेरिका में समाजशास्त्र के लिए जो कुछ भी स्वीकृत था उसी के समान ग्रामीण समाजशास्त्र अपने प्रारम्भ में अधिकांशतः ग्रामीण समाजशास्त्र नैतिक मूल्यांकनों एवं ग्रामीण जीवन के उत्थान के रचनात्मक सुझावों से विस्तृत रूप में परिपूर्ण था।"[4]

इस प्रकार इन मूल्यांकनों के उपरान्त ही नवनिर्माण की योजनायें सम्भव होती हैं। नवनिर्माण की योजनायें तभी सफल होती है जबकि उन्हें सामाजिक सिद्धान्तों पर आधारित किया जाय, इस सम्बन्ध में ग्रामीण समाजशास्त्री श्री जिम्मरमैन ने भी लिखा है, "भूतकाल में ग्रामीण समाजशास्त्रियों ने ग्रामीण जीवन में आवश्यक सुधारों की योजनाओं का प्रयत्न किया। पूर्व इसके उन्होंने उन सिद्धान्तों को विकसित किया, जिन पर ये सुधार आधारित हो सकते थे।"[5]

अतः यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र नैतिक मूल्यों के मूल्यांकन से नवनिर्माण की योजनायें बनाना भी है। ग्रामीण समाजशास्त्र सामाजिक पुनर्निर्माण (Social Re-construction) के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान रखता है। ग्रामीण सामाजिक पुनर्निर्माण से ग्रामीण जीवन का जो वर्तमान स्वरूप है उसमें एक महत्वपूर्ण परिवर्तन लाना होगा और इस परिवर्तन के पश्चात् ही वर्तमान ग्रामीण जीवन सम्पूर्ण सामाजिक संगठन में योग देगा। वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र इस ओर प्रयत्नशील भी है और विभिन्न ग्रामीण समाज-

---

4. "In its beginning, rural sociology, like much of the rest of what passed for sociology in the united states consisted largely of ethical evaluation and practical proposals for the improvement of Rural life." Floyed Nelson House: 'Research in American Sociology'; p. 340.
5. "Rural Sociologists in the past have attempted to plan the reforms that they felt needed in Rural life, before they have developed the principles on which these reforms may be based." Zimmerman: 'Principles of Rural Urban Sociology'; New York; 1929.

शास्त्री भी ग्रामीण समाजशास्त्र से पुनर्निर्माण की आशा रखते हैं। इस भांति यह शास्त्र विकास कार्यों में लगे हुए सभी विज्ञानों, संस्थाओं, प्रवृत्तियों, एवं कार्य कर्त्ताओं के लिये उपयोगी है। इस सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने उचित ही लिखा है, "ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण कार्यकर्ताओं को ग्रामीण समस्याओं के सही विश्लेषण में सहायता करेगा और आगे समस्याओं को समाप्त करने हेतु सही उपचार करने अथवा कार्यक्रम बनाने के योग्य बनायेगा। यदि इन समस्याओं का विश्लेषण मिथ्या अथवा अपूर्ण रहा तो उपचार के उपाय स्वतः ही अवैज्ञानिक एवं इस भांति व्यर्थ होंगे। अप्रशिक्षित ग्रामीण कार्यकर्ता, ग्रामीण सामाजिक संगठन के दोषों एवं समस्याओं के सुधार हेतु अऐतिहासिक एवं अनुपयुक्त साधन ग्रहण करेगा।"[6]

इस प्रकार से हमने देखा कि ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र कितना विस्तृत है। यदि हम यह कहें कि ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इसमें ग्रामीण जीवन का पूर्ण चित्रण है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस शास्त्र के क्षेत्र की विशालता का महत्व कृषि प्रधान देशों के लिये और भी विस्तृत हो जाता है। यदि हम भारत का ही उदाहरण अपने सम्मुख रखें तो हमें अनुभव होगा कि इस शास्त्र का क्षेत्र कितना विस्तृत होना चाहिये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण विकास की समस्या एक प्रमुख समस्या बनी हुई है। ऐसे समय ग्रामीण समाजशास्त्र की उपयोगिता एवं क्षेत्र के विस्तार की आवश्यकता का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। अपने मन्तव्य को और भी स्पष्ट करने के लिये हम भारत में इस शास्त्र के क्षेत्र की विवेचना करेंगे।

भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र
(Scope of Rural Sociology in India)

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान एवं गांवों का देश है, इस कल्पना मात्र से ही हम ग्रामीण समाजशास्त्र की व्यापकता एवं क्षेत्र विशालता का विचार कर

6. "Rural Sociology will help the rural worker to make a correct diagnosis of its ills and will further enable him to envolve a correct prescription or programme to overcome these ills. If the diagnosis of the ills is erroneous or imperfect the prescription itself will be un-scientific and therefore fertile. The uninformed rural worker will adopt un-historical and in-appropriate means to cure defects of Rural Social organisation and reform the problems." A. R. Desai :'Rural Sociology in India'.

सकते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त ग्रामीण जीवन के अध्ययन एवं विकास की सम्पूर्ण विषय सामग्री इस शास्त्र का आवश्यक अंग बन गई है। इस कथन की स्पष्ट व्याख्या करने के लिये हमें इसके वास्तविक पहलू पर विचार करना होगा। इस प्रसंग में सबसे प्रथम प्रमाण तो यही है कि भारत की संस्कृति के मूल श्रोत एवं आधार शिलायें गांव एवं ग्रामीण जीवन ही है। भारतवर्ष का ८० प्रतिशत जन समुदाय ग्रामीण कहलाने का अधिकारी है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक तथा पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में सिन्ध बिलोचिस्थान तक लगभग सात लाख गांवों का एक छत्र राज्य है। इस आधार पर यदि हम अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिये यह कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस प्रकार भारतीय जीवन के उत्तरोत्तर विकास के सभी साधन हमें ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री के अन्तर्गत जुटाने होंगे। भारत में प्रत्येक प्रकार का सामाजिक नवनिर्माण और समस्याओं का वैज्ञानिक दिग्दर्शन इसी शास्त्र के अन्तर्गत सम्भव है। भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र की अनुपस्थिति में किसी भी योजना अथवा विकास के आयोजन का सफल होना असम्भव है। अतः यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र में इस देश की उन्नति के वे सभी कारक व सिद्धान्त सम्मिलित होने चाहिये जिन पर देश के नवनिर्माण की कल्पना अवलम्बित है।

अतः हम भारत के विकास की सभी योजनाओं एवं पद्धतियों को भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन करने का प्रयास करेंगे। इस शास्त्र की विषय सामग्री में इन सभी योजनाओं को सम्मिलित करने का प्रयास किया जा रहा है। अतः भारत के ग्रामीण समाजशास्त्र के लिये यह अनिवार्य है कि वह ग्रामीण समुदाय में होने वाले सभी कार्यक्रमों का वैज्ञानिक विश्लेषण करे। नीचे हम इन कार्यक्रमों का उल्लेख करना अनुचित नहीं समझेंगे।

(१) पंचवर्षीय योजना (Five Year Plans)

ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ एवं परिभाषा के अन्तर्गत हम यह निश्चय कर आये हैं कि यह शास्त्र सम्पूर्ण ग्रामीण सामाजिक जीवन का अध्ययन है। इसमें ग्रामीण समस्याओं का वैज्ञानिक विश्लेषण भी किया जाता है। इस प्रकार ग्रामीण विकास की सभी योजनाओं पर विचार होना इसमें अनिवार्य है। भारत में पंचवर्षीय आयोजनों का प्रमुख झुकाव ग्रामीण विकास की ओर ही है। अतः यह विषय ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत अवश्य आना चाहिये।

ग्रामीण विकास का कोई भी आयोजन बिना समस्याओं के विश्लेषण के सम्भव नहीं होता है। पंचवर्षीय आयोजनों के लिये यह अनिवार्य है कि ग्रामीण सामाजिक जीवन एवं ग्रामीण ढांचों का विस्तृत अध्ययन किया जावे। यह बात केवल ग्रामीण समाजशास्त्र से ही सम्भव है। अतः हम स्पष्टतया कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र में ग्रामीण सुधारों के प्रतिवेदन करने के फलस्वरूप पंचवर्षीय आयोजनों का इसी शास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन करना अनिवार्य है।

इस प्रकार से यह शास्त्र ग्रामीण विकास के क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इस शास्त्र का सदा से यह ध्येय रहा है कि यह ग्रामीण विकास की योजनाओं का प्रतिवेदन करे। अतः भारतीय पंचवर्षीय आयोजना का अध्ययन इस शास्त्र के अन्तर्गत बड़ी सुगमता से किया जा सकता है और यह बड़ा लाभ प्रद भी है। वर्तमान पंचवर्षीय योजनायें विशेष रूप से आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित हैं और इन योजनाओं के निर्माण में अर्थशास्त्र का आधार लिया गया है। समाजशास्त्र का आधार लेने पर इन योजनाओं में निश्चय ही सामाजिक विकास पर विशेष बल होता।

(२) सामुदायिक विकास योजनायें
(Community development projects)

ग्रामीण क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की जागृति एवं प्रेरणा देने वाला कार्यक्रम सामुदायिक योजना है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण जीवन को उन्नत बनाने की आकांक्षा की जाती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कार्यकर्ता ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर उनकी समस्याओं का हल निकालते हैं। इस प्रकार से ग्रामीण जीवन का ज्ञान इस कार्यक्रम के लिये वांछनीय है। यदि हम इस कार्यक्रम को ग्रामीण समाजशास्त्र का आवश्यक अंग कहें तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। सामुदायिक योजना के अन्तर्गत ग्रामीण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विकास की आशा की जाती है। भारत के ग्रामीण समाजशास्त्री को इन कार्यक्रमों का विस्तृत ज्ञान अति अनिवार्य है। इस प्रकार से भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र में इन योजनाओं का विस्तृत विश्लेषण अवश्यमेव होना चाहिये जिसे हम विस्तृत रूप से अगले अध्यायों में प्रस्तुत करेंगे। ग्रामीण विकास की इन योजनाओं के बिना यह शास्त्र अधूरा है। इन योजनाओं में ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन एक आधार शिला का कार्य करता है और तभी इनके ध्येय की सफलता सम्भव है।

(३) लोकतांन्त्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation).

ग्रामीण जीवन में प्रशासनिक सुधारों के सम्बन्ध में अत्यन्त आधुनिक

क्रान्तिकारी विचार आज भारत में प्रचलित किये गये हैं। इसका उद्देश्य जनता में स्वशासन की जागृति उत्पन्न करना है। ग्रामीण भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण नाम की संस्था आज विशेषरूप से कार्य कर रही है। इसका उद्देश्य ग्रामीण भारत में पुरातन पंचायतों के पुनर्गठन, ग्रामीण लोगों में स्वनवनिर्माण, स्थानीय स्वराज्य एवं विकास की भावना को जागृत करना है। इस योजना की सफलता तभी सम्भव है जबकि भारतीय ग्रामीण का समुचित रूप से हृदय परिवर्तन किया जाय और इस उद्देश्य पूर्ति के लिये हमें ग्रामीण समाजशास्त्र का सहयोग लेना ही होगा।

(४) ग्रामीण पंचायतों व पंचायत राज का अध्ययन (Study of village panchayats and Panchayat Raj.)

आज भारत में ग्रामीण विकास के लिये पंचायतों का पुनर्गठन आवश्यक हो गया है। इसीलिये प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) पर बड़ा बल दिया जा रहा है। ग्रामीण उत्थान में सदा से इन संस्थाओं का बड़ा योग रहा है। ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत सभी सामाजिक संस्थाओं (Social Institutions) का अध्ययन किया जाता है। आज के युग में इस संस्था का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः इस शास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण पंचायतों का विस्तृत अध्ययन अनिवार्य है। इस दिशा में वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा सुझाव उपस्थित होने पर उनकी उपादेयता निःसन्देह अधिक होगी।

अतः भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत ग्रामीण पंचायतों का अध्ययन एक आवश्यक अंग है। ग्रामीण जीवन में सदा से इन पंचायतों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वहां का सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक जीवन इन्हीं संस्थाओं से प्रभावित होता है। पंचायतों के सुचारू रूप से कार्य करने के लिये नेतृत्व की शिक्षा भी आवश्यक है जिसे समाजशास्त्र की समाजीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन लेकर अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

(५) ग्रामीण सहकारी आन्दोलन (Rural Co-Operative Movement)

भारतीय ग्रामीण विकास के क्षेत्र में इस आन्दोलन का भी एक अद्वितीय स्थान है। ग्रामीण जीवन को संगठित बनाने की धारणा से परिपूर्ण यह एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। ग्रामीण आर्थिक-सामाजिक विकास के क्षेत्र में इस आन्दोलन ने महत्वपूर्ण कार्य किये है। ग्रामीण जीवन को सुव्यवस्थित, आत्मनिर्भर एवं संगठित बनाने के समस्त कार्यों को इसने बड़ा बल दिया है। इसके अन्तर्गत

सामूहिक कृषि (Co-operative farming), सहकारी बाजार (Co-operative Marketing) आदि कार्य-क्रम मुख्य हैं। इस प्रकार विभिन्न सहकारी समितियां (Co-operative Societies) के संगठन से ग्रामीण जीवन के स्तर को उन्नत बनाना इनका ध्येय है।

अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र को इस कार्यक्रम का अध्ययन भी प्रस्तुत करना अनिवार्य है। ग्रामीण क्षेत्र में विकास के विभिन्न कार्यक्रमों का अध्ययन करना भारतीय समाजशास्त्र का प्रमुख ध्येय है। इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र का यह ध्येय रहा है कि इस सहयोगी आन्दोलन का भी वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करे। ग्रामीण समाजशास्त्र इस कार्यक्रम को सब प्रकार का योग प्रदान कर सकता है। इस दृष्टि से सहकारी आन्दोलन का अध्ययन इस शास्त्र की विषय सामग्री है और इस शास्त्र की सहायता से इसकी सफलता सम्भावित है। उदाहरण के लिये हम जाति प्रथा के तथ्य को सामने रक्खें तो ज्ञात होगा कि जाति विरोधी आन्दोलनों एवं छुआछूत आन्दोलनों के होते हुए भी ग्रामीण जनों को जाति प्रथा सम्बन्धी व्यवहारों में कट्टर पाते हैं। अतः वे निम्न जाति के सदस्यों के साथ किसी भी प्रकार का कार्य सहयोग एवं सहकारिता के आधार पर नहीं कर सकते। यह एक कारण है कि जिससे इन कार्यक्रमों की सफलता की गति अवरूद्ध है। यह कार्य ग्रामीण समाजशास्त्र की सहायता से सरलता से किया जा सकता है जिसमें सामाजिक जीवन के वैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात् ही ये योजनायें बनाई जाती हैं।

(६) भूदान आन्दोलन और ग्राम राज्य
(Bhoodan movements and gram Rajya).

सन्त विनोबा द्वारा संचालित यह कार्यक्रम भी ग्रामीण जगत में सर्वोपरि स्थान लिये हुए है। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में ग्रामों का पुनःनिर्माण निहित है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक इकाई (Socio-Economic unit) को नया रूप देना है। ग्रामीण जगत में बेकारी, निर्धनता, अशिक्षा आदि सभी समस्याओं के निवारण की चेतना इसमें निहित है। ग्रामीण रचना का समाजवादी रूप इस कार्यक्रम का प्रमुख अंग है। भारत में इस आन्दोलन पर भी बड़ा बल दिया जा रहा है। ग्रामीण समाज रचना से सम्बधिन्त होने के कारण से ग्रामीण समाजशास्त्र का यह भी एक आवश्यक अंग है। ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी कार्यक्रम ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र में निहित हैं। इस प्रकार से भूदान आन्दोलन व सर्वोदय स्थापना इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

क्रान्तिकारी विचार आज भारत में प्रचलित किये गये हैं। इसका उद्देश्य जनता में स्वशासन की जागृति उत्पन्न करना है। ग्रामीण भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण नाम की संस्था आज विशेषरूप से कार्य कर रही है। इसका उद्देश्य ग्रामीण भारत में पुरातन पंचायतों के पुनर्गठन, ग्रामीण लोगों में स्वनवनिर्माण, स्थानीय स्वराज्य एवं विकास की भावना को जागृत करना है। इस योजना की सफलता तभी सम्भव है जबकि भारतीय ग्रामीण का समुचित रूप से हृदय परिवर्तन किया जाय और इस उद्देश्य पूर्ति के लिये हमें ग्रामीण समाजशास्त्र का सहयोग लेना ही होगा।

(४) ग्रामीण पंचायतों व पंचायत राज का अध्ययन (Study of village panchayats and Panchayat Raj.)

आज भारत में ग्रामीण विकास के लिये पंचायतों का पुनर्गठन आवश्यक हो गया है। इसीलिये प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) पर बड़ा बल दिया जा रहा है। ग्रामीण उत्थान में सदा से इन संस्थाओं का बड़ा योग रहा है। ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत सभी सामाजिक संस्थाओं (Social Institutions) का अध्ययन किया जाता है। आज के युग में इस संस्था का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः इस शास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण पंचायतों का विस्तृत अध्ययन अनिवार्य है। इस दिशा में वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा सुझाव उपस्थित होने पर उनकी उपादेयता निःसन्देह अधिक होगी।

अतः भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत ग्रामीण पंचायतों का अध्ययन एक आवश्यक अंग है। ग्रामीण जीवन में सदा से इन पंचायतों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वहां का सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक जीवन इन्हीं संस्थाओं से प्रभावित होता है। पंचायतों के सुचारू रूप से कार्य करने के लिये नेतृत्व की शिक्षा भी आवश्यक है जिसे समाजशास्त्र की समाजीकरण की प्रकिया का अध्ययन लेकर अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

(५) ग्रामीण सहकारी आन्दोलन (Rural Co-Operative Movement)

भारतीय ग्रामीण विकास के क्षेत्र में इस आन्दोलन का भी एक अद्वितीय स्थान है। ग्रामीण जीवन को संगठित बनाने की धारणा से परिपूर्ण यह एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। ग्रामीण आर्थिक-सामाजिक विकास के क्षेत्र में इस आन्दोलन ने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। ग्रामीण जीवन को सुव्यवस्थित, आत्मनिर्भर एवं संगठित बनाने के समस्त कार्यों को इसने बड़ा बल दिया है। इसके अन्तर्गत

सामूहिक कृषि (Co-operative farming), सहकारी बाजार (Co-operative Marketing) आदि कार्य-क्रम मुख्य हैं। इस प्रकार विभिन्न सहकारी समितियां (Co-operative Societies) के संगठन से ग्रामीण जीवन के स्तर को उन्नत बनाना इनका ध्येय है।

अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र को इस कार्यक्रम का अध्ययन भी प्रस्तुत करना अनिवार्य है। ग्रामीण क्षेत्र में विकास के विभिन्न कार्यक्रमों का अध्ययन करना भारतीय समाजशास्त्र का प्रमुख ध्येय है। इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र का यह ध्येय रहा है कि इस सहयोगी आन्दोलन का भी वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करे। ग्रामीण समाजशास्त्र इस कार्यक्रम को सब प्रकार का योग प्रदान कर सकता है। इस दृष्टि से सहकारी आन्दोलन का अध्ययन इस शास्त्र की विषय सामग्री है और इस शास्त्र की सहायता से इसकी सफलता सम्भावित है। उदाहरण के लिये हम जाति प्रथा के तथ्य को सामने रक्खें तो ज्ञात होगा कि जाति विरोधी आन्दोलनों एवं छुआछूत आन्दोलनों के होते हुए भी ग्रामीण जनों को जाति प्रथा सम्बन्धी व्यवहारों में कट्टर पाते हैं। अतः वे निम्न जाति के सदस्यों के साथ किसी भी प्रकार का कार्य सहयोग एवं सहकारिता के आधार पर नहीं कर सकते। यह एक कारण है कि जिससे इन कार्यक्रमों की सफलता की गति अवरुद्ध है। यह कार्य ग्रामीण समाजशास्त्र की सहायता से सरलता से किया जा सकता है जिसमें सामाजिक जीवन के वैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात् ही ये योजनायें बनाई जाती हैं।

(६) भूदान आन्दोलन और ग्राम राज्य
(Bhoodan movements and gram Rajya).

सन्त विनोबा द्वारा संचालित यह कार्यक्रम भी ग्रामीण जगत में सर्वोपरि स्थान लिये हुए है। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में ग्रामों का पुनःनिर्माण निहित है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक इकाई (Socio-Economic unit) को नया रूप देना है। ग्रामीण जगत में बेकारी, निर्धनता, अशिक्षा आदि सभी समस्याओं के निवारण की चेतना इसमें निहित है। ग्रामीण रचना का समाजवादी रूप इस कार्यक्रम का प्रमुख अंग है। भारत में इस आन्दोलन पर भी बड़ा बल दिया जा रहा है। ग्रामीण समाज रचना से सम्बन्धित होने के कारण से ग्रामीण समाजशास्त्र का यह भी एक आवश्यक अंग है। ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी कार्यक्रम ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र में निहित हैं। इस प्रकार से भूदान आन्दोलन व सर्वोदय स्थापना इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

(७) बुनियादी शिक्षा (Basic Education)

ग्रामीण नवनिर्माण की कल्पना पर आधारित यह भी एक क्रान्तिकारी प्रयास है। इसके प्रवर्तक महात्मा गाँधी थे। यह ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में क्रान्ति लाने वाली शिक्षा के नाम से प्रसिद्ध है। ग्राम में बेकारी, अछूतोद्धार, उद्योग, श्रमदान, अशिक्षा आदि तत्वों से भरी एक सामाजिक क्रान्ति के रूप में इसका भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत भी ग्रामीण पुनर्निर्माण की विभिन्न योजनायें निहित हैं।

शिक्षा एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। सदा से शिक्षा का सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। शिक्षा संस्था द्वारा भी विशिष्ट समाज रचना की कल्पना साकार की जाती है।. अतः भारतीय ग्रामीण जीवन के पुनर्निर्माण में इस बुनियादी शिक्षा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र का यह भी आवश्यक अंग बनी हुई है।

(८) समाज शिक्षा (Social Education)

भारतीय ग्रामीण कल्याण सम्बन्धी विभिन्न योजनाओं में समाज शिक्षा का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से इसका विवेचन भी ग्रामीण समाजशास्त्र में उल्लेखनीय है। ग्रामीण समाज को शिक्षित किये बिना समाज कल्याण की समस्त कल्पना निरर्थक है। इसलिये ग्रामीण जीवन में अशिक्षा के अन्धकार को शीघ्रातिशीघ्र मिटाने की आवश्यकता है। अतः हमें ग्रामीण जीवन की विभिन्न विकासवादी योजनाओं के अध्ययन के अन्तर्गत इस विषय का भी अध्ययन करना चाहिये। समाज शिक्षा के अन्तर्गत ग्रामीण प्रौढ़ों के लिये नागरिक शिक्षा की व्यवस्था की आवश्यकता है जिसके परिणामस्वरूप ही भारत शिक्षित व विकसित हो सकता है।

(९) समाज सेवा (Social Service)

ग्रामीण सामाजिक कल्याण की विभिन्न योजनाओं में समाज सेवा आन्दोलन का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस आन्दोलन का ध्येय ग्रामीण समाज में व्याप्त समस्याओं एवं असुविधाओं का स्वश्रम से निवारण करना है। समाज सेवा के अन्तर्गत ग्रामीण तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति आर्थिक बचत के दृष्टिकोण से करना है जिसमें ग्रामीण व्यक्तियों के सहयोग से शारीरिक श्रमदान द्वारा, श्रम पर व्यय होने वाले धन की बचत करते हुए विभिन्न निर्माण कार्य करना है। उदाहरणार्थ पंचायत भवन, पाठशाला, औषधालय, मनोरंजन केन्द्र, वाचनालय, पुस्तकालय, सड़कें, कुओं आदि का निर्माण किया जाता है। इस जन सहयोग

आन्दोलन को सुव्यवस्थित एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए ग्रामीण समाज के वैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता है जो ग्रामीण समाजशास्त्र के सहयोग से ही पूर्ण होती है।

(१०) **वन्यजातीय कल्याण** (Tribal Welfare)

संसार की समस्त वन्य जातियाँ ग्रामों में ही निवास करती हैं। ग्रामीण कल्याण एवं पुनर्निर्माण के लिए हमें ग्रामीण समाजशास्त्र में वन्यजातीय समस्याओं का भी समावेश करना होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वन्यजातीय कल्याण विशेष रूप से मानवशास्त्र के अन्तर्गत आता है किन्तु यह भी सत्य है कि ग्रामीण समाजशास्त्र की पूर्णता तभी होगी जब कि हम वन्यजातीय समस्याओं का विश्लेषण एवं कल्याण भी इसमें सम्मिलित करें। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र की परिधि में इस विषय पर भी सोचा जाता है। वन्यजातीय कल्याण के लिए हमें ग्रामीण कारकों का भी अध्ययन करना होगा क्योंकि इनकी निवास व्यवस्था, ग्रामीण पर्यावरण से प्रभावित है। अतः वन्यजातीय कल्याण ग्रामीण समाजशास्त्र का विषय है।

इस प्रकार हमने यह देखा कि ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र में ग्रामीण समाज से सम्बन्धित सभी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, आयोजन सम्बन्धी, कल्याण सम्बन्धी, उत्थान तथा विकास एवं पुनर्निर्माण सम्बन्धी सभी घटनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण एवं सामान्यीकरण आता है। भारत की वर्तमान स्थिति का वैज्ञानिक अध्ययन करने पर इस बात की अतीव आवश्यकता है कि ऐसे शास्त्र (ग्रामीण समाजशास्त्र) के अध्ययन का विकास किया जावे।

अध्याय ४

ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति और विकास

(The origin and development of Rural Sociology)

सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ-साथ ज्ञान का विकास भी होता जाता है। उत्तरोतर मानव स्वयं के बारे में अधिक सोचने का प्रयास करता है। वह विभिन्न अनुभवों एवं अनुसन्धानों के बाद किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचना चाहता है। प्रत्येक नवीन ज्ञान की पृष्ठभूमि में उन कारणों का समावेश होता है जिनके फलस्वरूप उस विशिष्ट ज्ञान का उदय हुआ है। आज संसार में हमें जितने भी वाद प्रतिवाद देखने को मिलते हैं, उनकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई निश्चित उद्देश्य व कारण हैं। प्रत्येक प्रकार का दर्शन (Philosophy) किसी न किसी विशिष्ट कारण एवं परिणाम पर आधारित है। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में ग्रामीण समाजशास्त्र नाम के नवीन विज्ञान का उदय भी विभिन्न उद्देश्यों व कारणों के फलस्वरूप हुआ है।

ग्रामीण समाजशास्त्र:ग्रामीण आर्थिक समस्याओं का अध्ययन

(Rural Sociology : A study of rural economic Problems)

१९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यूरोपीय औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप विभिन्न आर्थिक समस्याओं का जन्म हो गया था। जनसंख्या की वृद्धि, खाद्य समस्या, बेकारी आदि विभिन्न विपदायें मानव समाज के सम्मुख आई। इस कारण नागरिक व ग्रामीण जीवन में भीषण विषमताओं का प्रकोप बढ़ने लगा। इस तरह इन समस्याओं के निवारणार्थ औद्योगिक क्षेत्र में तथा कृषि के क्षेत्र में विभिन्न अनुसन्धान प्रारम्भ किये गये। इस क्षेत्र में अमेरिका का कार्य उल्लेखनीय माना जा सकता है। यहाँ पर ही सर्व प्रथम ग्रामीण क्षेत्र में अनुसंधान प्रारम्भ हुए और यही इस शास्त्र का मूल श्रोत है। यहाँ ग्राम ही समस्त सामाजिक आर्थिक ढांचे के आधार थे और इस दृष्टि से ग्रामों के उत्थान की ओर विशेष आकर्षण होना स्वाभाविक ही था।

ग्रामीण समाजशास्त्र कृषि महाविद्यालयों में

(Rural Sociology in Agricultural Colleges

अमेरिका में सर्व प्रथम ग्रामीण समाजशास्त्र विभागों व कृषि कालेजों

में कृषि उत्थान हेतु अनुसन्धान प्रारम्भ किये गये। इन अनुसन्धानों के परिणामों के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र की अन्य समस्याओं का भी प्रतिवेदन एवं विश्लेषण प्रारम्भ हुआ। जिससे सभी औद्योगिक विचारक, दर्शनशास्त्री व समाज सुधारक ग्रामीण ढांचे के पुनर्निर्माण के बारे में सोचने को विवश हुए। इस विवशता का एक कारण और भी था। प्रथम विश्व युद्ध से भी समाज के सामाजिक ढांचे की अवस्था विघटित हो गई थी जिसके कारण समाज में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विघटन उपस्थित हो गए थे। अपराधों की संख्या बढ़ गई थी। सामाजिक जीवन में विशृंखलता उत्पन्न हो चुकी थी और इस अवस्था को दूर करने का एक मात्र उपाय तत्कालीन सामाजिक जीवन के वैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा समाधान प्रस्तुत किया जाना ही हो सकता था।

इस प्रकार से औद्योगिक व कृषि के क्षेत्र में लोगों का आकर्षण बढ़ना प्राकृतिक था। इन समस्याओं की ओर प्रारम्भ में धार्मिक नेताओं का ध्यान भी गया था जिन्होंने सर्व प्रथम ग्रामीण क्षेत्रों की ओर सहानुभूति प्रदर्शित की थी। अतः कृषि व छोटे उद्योगों की समस्याओं के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्र की अन्य समस्याओं पर भी अनुसन्धान प्रारम्भ हो गये। इस प्रकार प्राप्त तथ्यों से ग्रामीण समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रारम्भ किया गया। हाऊस (House) ने अमेरिका के कृषि विद्यालयों के बारे में लिखा है, "यदि सब नहीं तो अधिकांश कृषि महाविद्यालयों में पूर्ण समय कार्य करने वाले कर्मचारियों में कम से कम एक सदस्य स्वयं को पूर्ण रूप से ग्रामीण समाजशास्त्र में संलग्न रखता है।"[1]

ग्रामीण समाजशास्त्रः ग्रामीण सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के रूप में

(Rural Sociology : As a study of Rural social Problems)

अमेरिका के कृषि कालेजों में ही सर्व प्रथम ग्रामीण समाजशास्त्रीय अनुसन्धानों का प्रारम्भ हुआ। इस तरफ ग्रामीण समस्याओं के अध्ययन ने ही ग्रामीण समाजशास्त्र का वर्तमान रूप धारण कर लिया है। इन अनुसन्धानों का उद्देश्य तत्कालीन स्थिति में महायुद्ध व क्रांतियों के फलस्वरूप उत्पन्न ग्रामीण ढांचे की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना था। इसीलिए प्रारम्भ में ग्रामीण समाजशास्त्र का रूप एक सुधारवादी शास्त्र के रूप में था। इस शास्त्र के प्रारम्भिक रूप के विषय में श्री हाऊस (House) ने लिखा है, "अमेरिका में

1. "In most of, if not all, agricultural colleges at least one full time member of the staff devotes himself to rural Sociology".House,Floyd Nelson : 'Research in American Sociology'.

समाजशास्त्र के लिए जो कुछ भी स्वीकृत था उसी के समान ग्रामीण समाजशास्त्र अपने प्रारम्भ में अधिकांशतः नैतिक मूल्यांकनों एवं ग्रामीण जीवन के विकास के क्रियात्मक सुझावों से विस्तृत रूप में परिपूर्ण था।"[2] ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय ग्रामीण समस्याओं के निवारणार्थ ही हुआ था। ऐसा अधिकांश समाजशास्त्री मानते हैं। ग्रामीण पर्यावरण में विघटन के फलस्वरूप ही पुनर्निर्माण की आवश्यकता अनुभव हुई थी। इस प्रकार से ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रारम्भिक रूप सुधारवादी निर्धारित किया जा सकता है। श्री देसाई ने भी इस शास्त्र को पुनर्निर्माण की निर्देशिका (Guide Book of reconstruction) कहकर पुकारा है। भौगोलिक शास्त्री एवं ग्रामीण समाजशास्त्री श्री जिम्मरमेन (Zimmerman) ने भी इस विषय में कहा है, "भूतकाल में ग्रामीण समाज शास्त्रियों ने पहले उन सुधारो के आयोजनों का प्रयत्न कर लिया था, जिनको उन्होंने ग्रामीण जीवन में आवश्यक समझा, पूर्व इसके उन्होंने उन सिद्धान्तों को विकसित कर लिया था जिन पर ये सुधार आधारित हो सकते थे।"[3]

इस प्रकार हमने देखा कि ग्रामीण क्षेत्र में कृषि व अन्य समस्याओं के अध्ययन ने ग्रामीण समाजशास्त्र की नींव रक्खी। सर्व प्रथम चिकागो विश्वविद्यालय में यह एक विज्ञान के रूप में पारित हुआ। इस सम्बन्ध में हाऊस (House) ने लिखा है "एक बार प्रो० हेंडरसन ने सन् १८९४-१८९५ ई० में चिकागो विश्वविद्यालय में ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रथम पाठ्यक्रम ग्रहण किया। इस शाखा के निर्देश अब विस्तृत हो गये हैं। महाविद्यालयों में ग्रामीण समाजशास्त्र के पाठ्यक्रम के लिए अनेक पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं और यह कहना सुरक्षित है कि आज अमेरिका में महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं कृषि महाविद्यालयों में ग्रामीण समाजशास्त्र

2. "In its beginning Rural Sociology, like much of the rest of what passed for Sociology in the United States, consisted largely of ethical evaluation and the practical proposals for the improvement of the rural life." Floyd Nelson House :'Research in American Sociology';pp.340 and 341.

3. "Rural Sociologists in the past have to plan the reforms that they felt were needed in rural life, before they had developed the principles on which these reforms may be based". Zimmerman : 'Principles of Rural Urban Sociology' : New York; (1929).

का पाठ्यक्रम अधिकांश रूप से ग्रहण किया जाता है।"[4] ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय स्थल चिकागो विश्वविद्यालय था जहां ग्रामीण क्षेत्र से व कृषि क्षेत्र में सुधार होते-होते ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति हो गई। इसी विश्वविद्यालय में श्री बटरफील्ड (Butter field) ने भी इस शास्त्र के विकास में अकथनीय योग दिया है।

अतः इस शास्त्र की उपयोगिता एवं महत्व का शीघ्र प्रचार होने के कारण अमेरिका के अन्य विश्वविद्यालयों में भी इसका प्रसार हुआ। इस प्रकार मिचीगन (Michigan) विश्वविद्यालय में श्री गिडिग्स (H. Giddings) के निर्देशन में व कोलम्बिया विश्वविद्यालय में श्री टेलर (Tailor) के निर्देशन में व विसक्सिन आदि अनेकों विश्वविद्यालयों में यह विज्ञान विकसित हो गया।

ग्रामीण समाजशास्त्रीय साहित्य एवं संगठन

(Rural Sociological Literature and organisations)

बीसवीं शताब्दी में इस विज्ञान का विकास अधिक तीव्र गति से बढ़ने लगा। विशेषज्ञों की इस क्षेत्र में रुचि निरन्तर बढ़ती गई और इस विज्ञान को और भी व्यवस्थित करने के प्रयास होने लगे। फलस्वरूप "ग्रामीण समाजशास्त्र" (Rural Sociology) अथवा "ग्रामीण जीवन की समस्या" (Problems of Rural life) नाम से विज्ञान पारित होने लगे। १८०६ ई० में जे० एम० विलियम्स (J. M. Williams) की 'ए अमेरिकन टाउन' (A American Town) और डबल्यू० एल० ऐन्डरसन की 'ए कंट्री टाउन' (A Country Town) नाम की रचनायें प्रकाशित हुई। इन्हीं रचनाओं को इस क्षेत्र में प्रथम व्यवस्थित रचनायें कहा जा सकता है।

इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि प्रारम्भ में नागरिक समाजशास्त्र (Urban Sociology) पर अधिक बल दिया जाने लगा। इस शास्त्र

4. "Once professor Henderson offered the first course in rural sociology at the university of Chicago in 1894–1895, instruction in this branch has become widespread. A number of text books for college course in rural sociology have been published and to-day it is safe to say that course in rural sociology are offered in the majority of colleges, universities, and agricultural colleges in the united states." Floyd Nelson House : 'The Development of Sociology' p. 341.

का उद्देश्य गन्दी बस्तियों (Slums) को सुधारने का था। परन्तु सन् १८९४-१८९५ ई० में ग्रामोदय की विचारधारा ने शीघ्र ही ग्रामीण जीवन के ज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान दे दिया। इस प्रकार इस शास्त्र का विकास दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। सन् १९०६ ई० में ग्रामीण तथा नागरिक रचनाओं के प्रकाशन ने इस शास्त्र की विशिष्टता को और भी बढ़ावा दिया। इस प्रकार सन् १९२५ ई० से तो असंख्य रचनाओं का इस क्षेत्र में विस्तार हो गया। इस सम्बन्ध में हाउस ने लिखा है, "प्रारम्भ में सन् १९१३ ई० में जान एम० गिल्टी (John M. Gillitte) की 'रचनात्मक समाजशास्त्र', १९१७ ई० में पोल एल. वोग्ट की 'ग्रामीण समाजशास्त्र की भूमिका', १९१८ ई० में गालपिन की 'ग्रामीण जीवन' और १९२५ ई० से तो अनेक ऐसी पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित हो गई।"[5]

ग्रामीण समाजशास्त्री सोरोकिन, जिम्मरमेन और गालपिन द्वारा संपादित A systematic Source book in Rural Sociology का भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में देखा जाय तो ग्रामीण समस्याओं में पूर्ण जागृति इसी रचना ने की है। इस प्रकार से २० वीं शताब्दी में ग्रामीण जीवन आयोग के प्रतिवेदन (Reports of Country life Commission) ने इस क्षेत्र में अकथनीय कार्य कर इस शास्त्र के विकास में बड़ा योग दिया है। १९१७ ई० में तो विभिन्न मतों ने सम्मिलित होकर ग्रामीण समाज को प्रथम स्थान देने के लिये अमेरिकन समाजशास्त्रीय समिति (American Sociological Society) का संगठन किया। इस संगठन का एक भाग ग्रामीण समाजशास्त्रीय समिति (Rural Sociological Society) भी है। A systemetic source book in Rural Sociology in 1930 आदि रचनाओं ने जो विकास इस क्षेत्र में प्रस्तुत किया है उसके सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने लिखा है, 'यह रचना प्रकाशित करती है कि ग्रामीण समाज के मूल लक्षणों एवं ग्रामीण जीवन को परिवर्तित करने वाली प्रमुख समस्याओं ने किस भांति प्राचीन, मध्यकालीन एवं प्रारम्भिक वर्तमानकालीन प्रमुख विचारकों के ध्यान एवं रुचि पर अधिकार कर लिया है और उन्हें समाजशास्त्रीय पुनरावर्तन

5. "The earliest were John M. Gillitte, Constructive Rural Sociology, 1913; Paul L. Vogt, Introduction to rural sociology, 1917; C. J. Galpin, Rural life, 1918. Since 1925 a considerable number of such text books have been published". Floyd Nelson House : Ibid; p. 340.

के निर्माण के लिये बाध्य किया है।"[6] इसी प्रकार ग्रामीण जीवन आयोग (Country life Commission) ने भी ग्रामीण जीवन के अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डाला है। इसने इस शास्त्र को ग्रामीण जीवन के अध्ययन के लिये बाध्य किया है।

इसी तरह इस विज्ञान के विकास में संयुक्त राज्य अमेरिका का ग्रामीण जीवन आयोग (Country life Commission of U. S. A.) भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कहा जाता है कि इस आयोग ने ५००,००० प्रश्नावलियों (Questionnaires) के द्वारा ग्रामीण जीवन के तथ्य एकत्रित किये। तदोपरान्त वैज्ञानिक अनुसन्धानों के द्वारा इस विज्ञान की स्वीकृति प्रदान की। इस प्रकार से परनल एक्ट सन् १६२५ ई० (Purnell act of 1925) पास करके इस शास्त्र के विकास को और भी सरल कर दिया गया। इस एक्ट के अनुसार प्रत्येक कृषि कालेज में अनुसंस्थान केन्द्र (Experiment station) खोले गये। इन केन्द्रों में ६०,००० डालर वार्षिक ग्रामीण जीवन के विज्ञान पर अनुसन्धान के लिये व्यय करने की अनुमति दी गई।

फलतः सन् १६३५ ई० में ग्रामीण समाजशास्त्र पर एक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया और सन् १६३६ ई० में एक ग्रामीण समाजशास्त्रीय समिति भी बनी। इस प्रकार इस शास्त्र का विकास उत्तरोत्तर होता ही गया। इसके विकास के बारे में प्रो० देसाई ने लिखा है, "यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र एक नया विज्ञान है और अभी अपरिपक्व अवस्था में ही है किन्तु फिर भी वर्तमान सामाजिक विचारकों में अत्यधिक विस्तृत रूचियों को नियंत्रित करता जा रहा है और उस देश में आठ सौ से अधिक प्राध्यापक एवं अन्वेषक इस विज्ञान के विकास में संलग्न हैं।"[7]

---

6. It reveals how some of the basic features of rural society and urgent problems of changing rural life had commanded the interest and attention of earnest social thinkers of ancient,medieval and early modern periods and impelled them to make sociological reflections". A. R. Desai : 'Rural Sociology in India'; p. 6.

7 "In the U. S. A., rural sociology, though a new science and still in a state of immaturity, is commanding wider and wider interest among social thinkers of to-day. More than eight hundred professors and research workers are engaged in developing that science in that country." A. R. Desai: Ibid; p. 8.

इस प्रकार हमने देखा कि ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास में अमेरिका का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अमेरिका में इस सम्बन्ध में अभी तक अनुसन्धान चल रहे हैं और इस शास्त्र को विकसित करने के निरन्तर प्रयास चल रहे हैं। इसी प्रकार अन्य देशों में भी इस क्षेत्र में कार्य हुआ है। राष्ट्र संघ (League of Nations) के प्रयत्न भी इस क्षेत्र में अद्वितीय स्थान रखते हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पांडित्यपूर्ण लेखों (Monographs) को एकत्रित किया गया था। इसी तरह यूनेस्को (UNESCO) आदि के प्रयास वर्तमान युग में प्रसिद्ध हैं।

अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस शास्त्र के विकास में शीघ्रातिशीघ्र प्रगति हुई है और हो रही है। यह शास्त्र समस्त सामाजिक शास्त्रों से नवीन होते हुए भी अन्य शास्त्रों की तुलना में अकथित प्रगति का पात्र बना हुआ है। इस शास्त्र की नींव पड़ते ही यह विश्व के विभिन्न देशों में फैल गया। अब हम भारत में इस शास्त्र की प्रगति का क्रम देखेंगे।

भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र
(Rural Sociology in India)

वास्तव में देखा जाय तो भारत की सभ्यता एवं संस्कृति अति प्राचीन है। यहां ज्ञान का विस्तार सर्व प्रथम हुआ और प्राचीन युग में यह देश सर्वोपरि था। विदेशी शासन के कारण इस देश की सामाजिक, आर्थिक अवनति होती गई। परिणामस्वरूप गत शताब्दियों में यहां कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ। सामाजिक विज्ञानो की ओर तो इस देश का ध्यान अभी हाल में ही आकर्षित हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय कांग्रेस सरकार द्वारा इस दिशा में कुछ विशेष प्रयत्न हुए हैं। यहां कुछ ही वर्षों से समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रारम्भ हुए हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र को तो छः-सात वर्षों से ही विश्वविद्यालयों में स्वीकृति प्राप्त हुई है। यद्यपि अब दिन प्रतिदिन इसकी महत्ता बढ़ती जा रही है। भारत के समाजशास्त्रियों का ध्यान अब ग्रामीण जीवन के प्रति बड़ी तीव्र गति से आकर्षित हो रहा है। ग्रामीण जनता का महत्व अब लोगों को ज्ञात हुआ है। इस विषय में श्री देसाई ने कहा है, "दीर्घकालीन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में ग्रामीण जनता का विस्तृत योग और एक ऐसा प्रभावशाली उन्माद जगत में फैला है जिसका परिणाम विभिन्न प्रान्तों की ग्रामीण जनसंख्या के बड़े अंश की जड़ें हिला रहा है।"[8]

8 "The extensive participation of the rural masses in the long drawn out national liberation struggle as also the

इस प्रकार से ग्रामीण समस्याओं के प्रति जागरूकता बढ़ती जा रही है और ग्रामीण समस्याओं के निवारण एवं इसकी विघटित अवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस दिशा में सामुदायिक विकास योजना आदि द्वारा प्रायौगिक व रचनात्मक कार्य करने का प्रयास किया जा रहा है। इस समस्त कार्य के द्वारा ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास दिन प्रतिदिन महत्वशाली स्थान ग्रहण करता जा रहा है। श्री देसाई ने एक स्थान पर इस सम्बन्ध में भी कहा है, "सांख्यिकीशास्त्री, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं राजकीय संस्थाओं ने भौतिक एवं सांस्कृतिक निर्धनता की दशाओं के मध्य ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले भारतीय मानव जीवन की घटनाओं के अध्ययन की ओर अपना ध्यान अत्यधिक विस्तृत रूप से केन्द्रित किया है।"[9]

इस तरह से भारत में भी ग्रामीण जीवन के प्रति जागरूकता इस विज्ञान के क्षेत्र में बढ़ती जा रही है। इसका प्रमुख कारण यही है कि भारत का प्रमुख रूप ग्रामीण भारत है। ग्रामीण जीवन का उदय भारत का उदय है। इस पक्ष में भारत के ग्रामीण समाजशास्त्रियों ने कहा है, "वे जो रचनात्मक सामाजिक रूप परिवर्तन करने का आन्दोलन करने की इच्छा रखते हैं उन्हें अपने मस्तिष्क में यह ध्यान रखना ही होगा कि भारत विस्तृत व विशेष रूप से एक कृषि प्रधान देश है।"[10] अब लोगों का ध्यान केवल भारतीय ग्रामीण

---

devasting communal frenzy which swept over the rural social world and resulted in the uprooting of a great section of the village population in a number of provinces." A. R. Desai; Ibid.

9 "Statisticians, economists, sociologists, social workers and government agencies have, hitherto, overwhelmingly focussed their attention on the study of the phenomenon and problems of Indian humanity lives in the rural area amidst conditions of material and cultural poverty." A. R. Desai : Ibid.

10. "Those who desire to strive for such a creative social transformation have to bear in mind that India is overwhelmingly an agrarian country." Quoted by A. R. Desai: Ibid.

जीवन के अध्ययन की ओर ही आकर्षित नहीं हुआ है बल्कि विभिन्न रूपों से इस ज्ञान को व्यवस्थित किये जाने के प्रयत्न भी प्रारम्भ हो गये हैं। भारत में भी अमेरिका की भांति इसे एक विशिष्ट विज्ञान के रूप में पारित किया जा रहा है। इस संदर्भ में श्री देसाई ने कहा है, "ग्रामीण सामाजिक संगठन, इसके ढाँचे, कार्य मूल्यांकन का व्यवस्थित अध्ययन केवल आवश्यक ही नहीं हो गया है बल्कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अति आवश्यक भी हो गया है।"[11]

इस प्रकार से वास्तविक रूप से देखा जाय तो ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ है। इसके विकास की सम्भावनायें भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र की आयु अल्पकालीन है। राजस्थान विश्वविद्यालय में यह विषय गत ३-४ वर्षों से ही पाठ्यक्रम में आया है। इस प्रकार हम भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र के उदय के सम्बन्ध में इतना ही कह सकते हैं कि यह शास्त्र यहां अभी प्रारम्भ ही हुआ है।

यह अध्ययन अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। इस दृष्टि से इसमें एकरूपता का अभाव होना स्वाभाविक है। हमारे देश के विस्तृत होने के कारण भी भाषा, विचार, धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति में भिन्नता पाई जाती है। अत: ग्रामीण समाजों के इस प्रकार के अध्ययन में एकरूपता नहीं पाई जा सकती। इसलिये इस सम्बन्ध में श्री देसाई ने भी कहा है, "भारतीय ग्रामीण समाज का अध्ययन जो कि विभिन्न राज्यों में यहां तक कि विभिन्न जिलों में भी उनकी ठेठ विस्तृत भौगोलिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, नैतिक व अन्य विशेषताओं के कारण भिन्न है।"[12] इन्हीं भारतीय ग्रामीण विशिष्टताओं के कारण ही भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास में बाधायें आ रही हैं। इसलिये इस क्षेत्र के कार्यकर्ताओं को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। जितनी सफलता इस क्षेत्र में अथवा ग्रामीण समाजशास्त्र की रचना में मिलनी चाहिये

---

11. "A systematic study of Rural Social organisation of its structure, function and evaluation, has not only become necessary but also urgent after the advant of Independence." A. R. Desai : Ibid.

12. "The study of Indian Rural Society, which varies from state to state, from even district to district, due to their extreme geographical, economic, historical, ethnic and other peculiarities." A. R. Desai : Ibid

थी नहीं मिल पाई है। इसलिये ग्रामीण समाजशास्त्र को अपनी तरूण अवस्था प्राप्त करने के लिये अत्यधिक प्रयास करने होंगे। हमें विभिन्न अनुसन्धानों के आयोजन करने होंगे तभी हम ग्रामीण समाजशास्त्र की वास्तविक रूपरेखा निर्धारित कर सकते हैं। इस पृष्ठभूमि में ग्रामीण समाजशास्त्रियों का कहना है कि वास्तव में भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र अथवा भारतीय ग्रामीण विशिष्ट सामाजिक संगठनों के नियमों का विज्ञान अभी विकसित होने को है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत का ग्रामीण समाजशास्त्र अभी तक अविकसित है। हमारे देश की स्थिति को देखते हुए हमें ग्रामीण जीवन के उत्थान हेतु विभिन्न योजनायें पारित करनी होंगी। आज सरकार व जनता का ध्यान गांवो की ओर लगा है। इससे ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास शीघ्र सम्भव लगता है। भारत जैसे देश में तो ग्रामीण तत्वों के आधिक्य के कारण इसे प्राथमिकता मिलनी ही चाहिये।

अध्याय ५

ग्रामीण समाजशास्त्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञान

(Rural Sociology and other Social Sciences)

सामाजिक विज्ञानों का यह ध्येय होता है कि वे समाज का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करें। इस ध्येय की पूर्ति के लिये प्रत्येक सामाजिक विज्ञान अपने अपने क्षेत्र का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। समाज की विभिन्न इकाईयों का अध्ययन निश्चित करने के लिये विभिन्न समाज विज्ञान पारित हो चुके हैं। भौतिक वैज्ञानिकों के समान सामाजिक विज्ञानों की अनुसन्धान शाला सम्पूर्ण समाज होता है। समस्त सामाजिक विज्ञान सामाजिक सम्बन्धों के विविध रूपों का अध्ययन करते हैं। जैसे राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं आर्थिक आदि। समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है और सामाजिक विज्ञान इन सम्बन्धों का वैज्ञानिक ज्ञान उपस्थित करते हैं। सामाजिक सम्बन्धों के सम्पूर्ण अध्ययन को व्यक्त करने वाला शास्त्र समाजशास्त्र है। यह शास्त्र सामाजिक सम्बन्धों को एक इकाई के रूप में देखता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य सभी सामाजिक विज्ञान व्यर्थ हैं। विशिष्ट सामाजिक विज्ञान (Special Social Sciences) समाज का अपने क्षेत्र विशेष के दृष्टिकोण से अध्ययन करते हैं। राजनीति शास्त्र राजनैतिक दृष्टिकोण से, अर्थशास्त्र आर्थिक दृष्टिकोण से और इसी भांति अन्य सामाजिक विज्ञान अपने पृथक दृष्टिकोण से ही समाज का आंगिक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। इन आंगिक अध्ययनों को सम्मिलित करते हुए सामान्य दृष्टिकोण से समाज का सम्पूर्ण अध्ययन समाजशास्त्र करता है। इस समाजशास्त्रीय अध्ययन को विशिष्टता प्रदान करने के लिये समाज-शास्त्र के ही अनेक विभाग विकसित हो गये हैं। इन विभागों में प्रमुखतः ग्रामीण समाजशास्त्र, नागरिक समाजशास्त्र, पारिवारिक समाज-शास्त्र, आर्थिक समाजशास्त्र, राजनैतिक समाजशास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान आदि हैं। ये सभी विभाग समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अपने क्षेत्र का विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। इसलिये समाजशास्त्र के ही अन्तर्गत आते हैं। इन्हें समाजशास्त्र के प्रमुख विभाग मानने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि इनके अध्ययन का दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण है।

ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्र का एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण अङ्ग है। यह ग्रामीण पर्यावरण में व्याप्त सम्पूर्ण सामाजिक सम्बन्धों को एक इकाई मानकर

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से सामान्य अध्ययन प्रस्तुत करता है किन्तु पर्यावरण विशेष से सम्बन्धित होने के कारण यह विशिष्ट समाजशास्त्र है और इसीलिये एक सामाजिक विज्ञान भी।

क्या ग्रामीण समाजशास्त्र एक पृथक् सामाजिक विज्ञान है ?

(Is Rural Sociology a Separate Social Science ?)

ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण समाज का सम्पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करता है। अतः हम कह सकते हैं कि यह एक सामाजिक विज्ञान है। इस सम्बन्ध में विद्वानों में दो मत हो ही नहीं सकते। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या ग्रामीण समाजशास्त्र एक पृथक् सामाजिक विज्ञान है ? इस सम्बन्ध में विद्वानों के मध्य कुछ मतभेद पाया जाता था। अनेक विद्वान इसे समाजशास्त्र का एक अंग मानने पर बल देते हैं। इन लोगों का विचार है कि समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का एक इकाई के रूप में सामान्य अध्ययन (General Study) प्रस्तुत करता है और इसी अध्ययन को ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण की पूर्णता में दिग्दर्शित करता है। अन्य विद्वान इसे पृथक् विशिष्ट सामाजिक विज्ञान मानने के लिये तत्पर हैं। इन लोगों का कथन है कि ग्रामीण समाजशास्त्र समाज का ग्रामीण पर्यावरण के विशिष्ट दृष्टिकोण से अध्ययन करता है। इसलिये विशिष्ट सामाजिक विज्ञान है। हम ऊपर लिख ही आये हैं कि यह समाजशास्त्र का एक विशेष अङ्ग है। किसी भी विज्ञान की पृथकता उसकी विषय वस्तु से न होकर उसके अध्ययन के दृष्टिकोण से होती है। अतः अध्ययन के दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण इसे हम पृथक विज्ञान कह सकते हैं।

आज कोई भी विज्ञान पूर्ण रूप से पृथक एवं स्वतन्त्र नहीं है। प्रत्येक विज्ञान को अन्य विज्ञानों की सहायता की आवश्यकता होती है और यह आवश्यकता उस समय भी बढ़ जाती है जब किसी विज्ञान के अध्ययन का दृष्टिकोण सामान्य हो। ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन का दृष्टिकोण सामान्य तो है ही किन्तु विशिष्ट भी है क्योंकि यह विशिष्ट पर्यावरण का सामान्य अध्ययन प्रस्तुत करता है। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र का भी अन्य विज्ञानों से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। यह ग्रामीण समाज का अध्ययन होने के कारण सम्बन्धित्त विशिष्ट विज्ञानों की सहायता भी लेता है और उन्हें सहायता प्रदान करता भी है। अतः अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि ग्रामीण समाजशास्त्र का अन्य विज्ञानों से क्या सम्बन्ध है ?

ग्रामीण समाजशास्त्र एवं समाजशास्त्रीय विज्ञान

(Rural Sociology and Sociological Sciences)

ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्र का ही एक अङ्ग है इसलिये इसका समाजशास्त्र एवं समाजशास्त्र के अन्य अङ्गों से विशेष सम्बन्ध है जिसे हम यहां स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। समाजशास्त्रीय विज्ञानों में हम प्रमुखतः समाजशास्त्र, नागरिकशास्त्र, पारिवारिक समाजशास्त्र, सामाजिक मानवशास्त्र तथा सामाजिक मनोविज्ञान को लेकर ग्रामीण समाजशास्त्र के सम्बन्धों की विवेचना करेंगे।

१. ग्रामीण समाजशास्त्र एवं समाजशास्त्र (Rural Sociology and Sociology)

ग्रामीण समाजशास्त्र और समाजशास्त्र की घनिष्टता इन शास्त्रों के नाम से ही स्पष्ट प्रतिलक्षित होती है। इन दोनों शास्त्रों का एक रूप व ध्येय है। केवल अन्तर पर्यावरण (Environment) का है। हमें समाज का सम्पूर्ण ढांचा दो प्रमुख स्वरूपों में दृष्टिगोचर होता है। समाज के ये स्वरूप एक दूसरे से साध्य एवं साधन का सम्बन्ध रखते हैं। समाजशास्त्र इन रूपों को एक सम्मिलित इकाई के रूप में अध्ययन करता है। समाजशास्त्रीय विवेचन को और अधिक स्पष्ट रूप से देखने के लिये ग्रामीण समाजशास्त्र इन सामाजिक सम्बन्धों को भिन्न रूपों में विभाजित कर एक रूप का अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसी उद्देश्य से ग्रामीण समाजशास्त्र, नागरिक समाजशास्त्र आदि समाजशास्त्रों का उदय हुआ है। इस समाजशास्त्रीय विश्लेषण को और अधिक विशिष्ट बनाने के लिये पारिवारिक समाजशास्त्र का उदय हुआ है। इन सब समाजशास्त्रों की इकाई समाजशास्त्र है। इस सम्बन्ध में श्री स्मिथ ने समस्त समाजशास्त्रों को एक इकाई के रूप में सम्बन्वित बताया है। उन्होंने इन समाजशास्त्रों का रूप समाजशास्त्र ही निर्धारित किया है। उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा है, "इस पुस्तक में प्रदर्शित दृष्टिकोण बल देता है कि समस्त समाजशास्त्र एक एकता है। इसके आधारभूत तथ्य एवं सिद्धान्तों का प्रयोग साधारणतः सावधानी पूर्ण कथित सुरक्षित सीमाओं में होना चाहिए अन्यथा भुलाये जाने पर कुछ अनुसंधानकर्ता उन सामाजिक घटनाओं का ही अध्ययन करते हैं जो केवल ग्रामीण पर्यावरण में कृषि व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों में उपस्थित या विस्तृत रूप से सीमित है। इस प्रकार के समाज शास्त्रीय तथ्य एवं सिद्धान्त ग्रामीण समाजशास्त्र के रूप में प्रतिपादित किये जा सकते हैं जो ग्रामीण

सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से उद्धृत किये गये हैं।"[1]

इस प्रकार से ग्रामीण समाजशास्त्र एवं समाजशास्त्र का गठबन्धन होना आवश्यक है। ग्रामीण समाजशास्त्र को हम समाजशास्त्र का विशिष्ट अध्ययन मान सकते हैं। समाज की पर्यावरण सम्बन्धी विशिष्टता का अध्ययन करने के लिए ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास किया गया है। समाजशास्त्र सामयिक रूप से सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन है और इसी प्रकार से ग्रामीण पर्यावरण में अथवा ग्रामीण समाज के सम्बन्ध का अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र है। दोनो शास्त्रों के आधारभूत तत्व, पद्धति, क्षेत्र, उद्देश्य समान हैं। इस भांति हम स्पष्ट रूप से यह कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र और समाजशास्त्र का अति निकट सम्बन्ध है।

(२) ग्रामीण समाजशास्त्र तथा नागरिक समाजशास्त्र (Rural Sociology and Urban Sociology)

हम पहले देख चुके हैं कि समाज प्रमुखतः दो कारकों से विशेषतः प्रभावित है। तात्पर्य यह है कि समाज का रूप हम दो दृष्टिकोणों में देख सकते हैं और इनमें पहला नागरिक रूप और दूसरा ग्रामीण रूप है। ये रूप एक दूसरे के पूरक हैं। यदि हमको किसी एक रूप को देखना है तो हमें प्राकृतिक रूप से दूसरे रूप को देखना ही होगा। इस सम्बन्ध में समाजशास्त्री श्री जिम्मरमैन (Zimmerman) ने भी कहा है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का यही प्रमुख लक्ष्य है कि वह यह बताये कि समाज पर किस कारक का कितना प्रभाव है। इस शास्त्र की विषय सामग्री का प्रमुख भाग वर्तमान जनसंख्या पर नागरीकरण व ग्राम्यीकरण के प्रभावों को देखने पर ही आधारित है। इसी संदर्भ में यह भी बताया जाता है कि ग्रामीण समाजशास्त्र नागरिक एवं ग्रामीण व्यवहारों

1. "The point of view represented in this book holds that all sociology is a unity. Its fundamental facts and principles must apply generally within the limits of carefully stated reservation or else be abandoned. Some Investigator study social phenomena that are present only in or largely confined to the rural environment to persons engaged in the agricultural occupation. Such Sociological facts and principles as are derived from the study of rural social relationship may be referred to as rural sociology:" T. Lynn Smith : 'The Sociology of Rural Life'; Harper and Bros. New York.

का अध्ययन हैं। इस दृष्टिकोण से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण व नागरिक एक समाज के दो रूप हैं। इनके आधारभूत तत्वों में गहरा गठबन्धन है। हमें समाज के ग्रामीण व्यवहारों का अध्ययन करने के लिये नागरिक व्यवहारों का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। इसलिये नागरिक समाजशास्त्र व ग्रामीण समाजशास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं। इन शास्त्रों का अस्तित्व एक दूसरे पर पूर्ण रूप से आधारित है। प्रारम्भ में दोनों शास्त्र एक ही नाम से पारित भी थे। इस सम्बन्ध में हाउस ने भी एक स्थान पर कहा है, "ग्रामीण नागरिक समाजशास्त्र, ग्रामीण नागरिक विभिन्नताओं के ही द्योतक नहीं, अपितु ये शास्त्र ग्रामीण नागरिक अन्तःक्रियाओं का भी वर्णन प्रस्तुत करते हैं।"[2] इस प्रकार निर्विवाद रूप से ग्रामीण नागरिक समाजशास्त्र पूर्ण रूपेण सम्बन्धित हैं।

इस सम्बन्ध में हमें यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि इन दोनों शास्त्रों में सैद्धान्तिक रूप से काफी अन्तर भी है। सबसे पहली बात तो हमारे सम्मुख यही है कि जितना विकसित नागरिक समाजशास्त्र हो चुका है उतना ग्रामीण समाजशास्त्र नहीं। नागरिक समाजशास्त्र अमेरिका के समाजशास्त्रीय क्षेत्र, शहरों व गन्दी बस्तियों की समस्याओं से प्रारम्भ हुआ। जब १८९४-९५ में सर्वप्रथम ग्रामीण समाजशास्त्र का विधिवत् पाठ्यक्रम निर्धारित हुआ था उस समय तक नागरिक समाजशास्त्र ने काफी प्रगति कर ली थी। नागरिक समाजशास्त्र के विषय में लुण्डबर्ग (George Lundberg) ने कहा है, "हम नागरिक समाजशास्त्र का प्रारम्भ गन्दी बस्तियों के निवारणार्थ निरन्तर युद्धों से अलग नहीं कर सकते।"[3]

इस प्रकार विकास सम्बन्धी भेदों के उपरांत भी इन दोनों शास्त्रों का गठबन्धन भुलाया नहीं जा सकता। हम यदि यह कहें कि एक शास्त्र के बिना दूसरे का अध्ययन सम्भव नहीं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आधार भूत सैद्धांतिक रूप से इन दोनों शास्त्रों का घनिष्ट सम्बन्ध है।

---

2. House : 'Principles of Rural Urban Sociology' (1929).
3. "We can not separate the beginnings of urban sociology from the parennial battle to wipe out the slums." 'Trends in Urban Sociology,' George A. Lundberg : 'Trends in American Sociology'; p. 270; See also pp. 267 ff.

(३) ग्रामीण समाजशास्त्र तथा पारिवारिक समाजशास्त्र
(Rural Sociology and Sociology of family)

समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान के रूप में विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों के वर्गों में सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उन सामान्य लक्षणों का अध्ययन करता है जो सब विभागों में सामाजिक सम्बन्धों के लिये सामान्य हैं। पारिवारिक समाजशास्त्र (Sociology of family) भी समाजशास्त्र के इस विस्तृत विषय क्षेत्र में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय क्षेत्र रखता है। परिवार संस्था का समाजशास्त्रीय अध्ययन इस शास्त्र की विषय सामग्री है। इस दृष्टि से पारिवारिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र का एक प्रमुख अंग है। इसमें लिंग (Sex), विवाह (Marriage) तथा परिवार की संस्था (Institution of family) आदि तथ्यों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है।

पारिवारिक समाजशास्त्र एवं ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रथम सम्बन्ध तो यही है कि ये दोनों शास्त्र समाजशास्त्र के प्रमुख अंग हैं। द्वितीय ये शास्त्र समाज की विशिष्ट इकाईयों का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। समाज के क्षेत्र विशेष का समाजशास्त्रीय सूक्ष्म अध्ययन इन शास्त्रों का ध्येय है। इस दृष्टि से इन शास्त्रों के मध्य अटूट सम्बन्ध स्थापित होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त परिवार संस्था (Institution of Family) एवं परिवार समूह (Family Group) का अध्ययन दोनों शास्त्रों के अन्तर्गत किया जाता है। इतना ही नहीं ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण पर्यावरण में प्रभावित परिवार तथा इसके प्रमुख अंगों का अध्ययन करता है। अतः इन दोनों शास्त्रों में घनिष्ट सम्बन्ध है।

(४) ग्रामीण समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र।
(Rural Sociology and Social Anthropology.)

मानवशास्त्र मानव एवं उसके कार्य का सम्पूर्ण अध्ययन करता है। पुरातन कालीन वन्य जातियों का अध्ययन इसकी विषय सामग्री है। सामाजिक मानवशास्त्र समाज में मानव का पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह मानवशास्त्र का ही एक अंग है जो व्यक्ति का सामाजिक, सांस्कृतिक रूप समाज में देखता है। इस शास्त्र के अन्तर्गत वन्य जातियों के आचार, विचार, भाषा, कला, साहित्य, रूढ़ियां, प्रथाओं आदि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक वन्य जाति (Tribe), व प्रजाति (Race) का प्राकृतिक घटना (Natural phenomenon) से अत्यधिक सम्बन्ध है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति का इन पर आधिपत्य रहता है।

इसी प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र भी समाज का प्राकृतिक पर्यावरण में अध्ययन करता है। यह शास्त्र प्रकृति पर अवलंबित जनसंख्या के सामूहिक व्यवहारों के आधार पर समाजशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करता है। प्राकृतिक वातावरण में रहने वाले सामाजिक वर्गों के रीति रिवाज,कला,मनोरंजन,अर्थ व्यवस्था आदि बातें इस शास्त्र का क्षेत्र है। अत: एक से पर्यावरण में रहने वाले व्यक्तियों का ये दोनों शास्त्र अध्ययन करते हैं।

अत: इन दोनों शास्त्रों में सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। हम सामाजिक मानवशास्त्र को ग्रामीण समाजशास्त्र का अंग भी मान सकते हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र वन्य जातियों के बारे में सामाजिक अध्ययन प्रस्तुत करता है साथ ही इस शास्त्र का यह भी ध्येय है कि वन्यजातीय कल्याण (Tribal welfare) के कार्य क्रम भी प्रस्तुत करे। हम ग्रामीण समाजशास्त्र के विस्तृत अध्ययन में इस बात पर स्पष्ट प्रकाश डालेंगे।

मानवशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र तथा ग्रामीण समाजशास्त्र में निकट सम्पर्क है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इन शास्त्रों में कोई भिन्नता नहीं। हम निम्न दृष्टिकोणों से इन शास्त्रों की विभिन्नताओं को भी देख सकते हैं।

(१) ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में समाज का अध्ययन करता है जबकि सामाजिक मानव-शास्त्र अपना ध्यान केवल आदिम (Primitive) व वन्य जातियों पर ही केन्द्रित रखता है।

(२) ग्रामीण समाजशास्त्र समाज सुधार की सम्मतियां एवं सुझाव भी प्रस्तुत करता है। परन्तु सामाजिक मानवशास्त्र इस प्रकार का कार्य नहीं करता। क्लक होन ने लिखा है, "समाजशास्त्रीय प्रकृति का झुकाव क्रियात्मक और वर्तमान की ओर है जबकि मानवशास्त्रीय झुकाव विशुद्ध ज्ञान शक्ति एवं भूत की ओर है।"[4]

(३) सामाजिक मानवशास्त्र समाज के भौतिक ढांचे के आधार पर प्रागैतिहासिक आर्थिक व्यवस्था, राजनीति, धर्म, कला, उद्योग आदि तत्वों पर विहंगम दृष्टि डालता है। ग्रामीण समाजशास्त्र एक विशेषज्ञ के रूप में

---

4. "The sociological attitude has tended towards the practical and the present, the anthropological towards pure understanding and the past." Kluck Hohn : 'Mirror for man' ; p. 269.

सामाजिक समस्याओं का अध्ययन प्रस्तुत करने के साथ साथ विवाह विच्छेद, वैश्यावृत्ति, पारिवारिक कलह, विघटन आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण भी करता है। इस सम्बन्ध में श्री श्रीवास्तव ने लिखा है, "समाजशास्त्री अपना अध्ययन कर्त्ता व परिस्थिति के सम्बन्धों पर केन्द्रित करता है। जो सामाजिक उद्देश्यों के हेतु होते हैं। इस तरह समाजशास्त्री सामाजिक अन्तःक्रियाओं का प्रसंग निर्माण करते हैं।"[5]

(५) ग्रामीण समाजशास्त्र एवं सामाजिक मनोविज्ञान
(Rural Sociology and Social Psychology.)

समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक (Psychological) अध्ययनों में समानता होने के कारण सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology) नामक विज्ञान उत्पन्न हुआ। इस शास्त्र की परिभाषा करते हुए क्रच और क्रचफिल्ड ने लिखा है, "सामाजिक मनोविज्ञान समाज में व्यक्ति के व्यवहार का ज्ञान है।"[6] इसी प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र भी ग्रामीण पर्यावरण में व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करता है। इस दृष्टि से इन शास्त्रों के मध्य सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। क्लाइनवर्ग ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "इसी समय यह भी सत्य है कि समाजशास्त्री का मौलिक सम्बन्ध समूह के व्यवहार से है और सामाजिक मनोविज्ञान का सामूहिक परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार से।"[7]

इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि समाजशास्त्री एवं सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन व्यक्ति का समूह अथवा समाज में व्यवहार का विश्लेषण

---

5. "Sociologists focus their study on the relation between actor and situation comprising 'a social object' thus sociologists frame of reference is social interaction." Shrivastava's article; 'Forwards intregrated approach in social sciences' in The Journal of Social Sciences; Vol No. Jan. 1958 p. 13.
6. "Social Psychology is the Science of behaviour of the individual in Society." Krech and Crutchfield; 'Theory and problems of social psychology.' p. 7.
7. "At the same time it remains true that the primary concern of the sociologist is group behaviour, and that of the Social psychologist is the behaviour of the individual in the group situation." Otto Klineberg;' 'Social Psychology'; Henry Holt and Co. New York, Rev. Ed. (1956).pp. 6–7.

प्रस्तुत करते हैं । अतः ग्रामीण समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान के मध्य सम्बन्ध स्थापित होना स्वाभाविक है । ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में सामाजिक सम्बन्धों के विश्लेषण करने में सामाजिक मनोविज्ञान की सहायता ग्रहण करता है और इसी प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन से सामाजिक मनोविज्ञान को भी योग मिलता है। इस भांति ये दोनों विज्ञान एक दूसरे से सम्बन्धित हैं ।

ग्रामीण समाजशास्त्र एवं विशिष्ट सामाजिक विज्ञान
(Rural Sociology and Special Social Sciences)

ऊपर हमने ग्रामीण समाजशास्त्र का समाजशास्त्रीय विज्ञानों से सम्बन्ध देखा । यहां पर हम अन्य विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों से ग्रामीण समाजशास्त्र का सम्बन्ध देखेंगे । यह अन्य विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों से भी घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है ।

(१) ग्रामीण समाजशास्त्र एवं राजनीति शास्त्र
(Rural Sociology and Political Science)

ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत हम ग्रामीण जीवन में सामाजिक प्रवृत्तियों (Social Instincts), सामाजिक प्रतिक्रियाओं (Social reactions), सामाजिक अन्तःक्रियाओं (Social Interactions) तथा सामाजिक सस्थाओं (Social Institutions) आदि का विषद् अध्ययन करते हैं । हम यह भी जानते हैं कि सामाजिक व्यवहारों में सामाजिक संस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान है ।

ग्रामीण जीवन में राजनैतिक संस्थाओं का, जो सामाजिक संस्थाओं की एक अंग हैं, महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत अन्य सामाजिक संस्थाओं में पंचायत राजनैतिक संस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। यह संस्था समस्त राजनैतिक क्रियाओं का श्रोत है। साथ ही साथ ग्रामीण राजनीति में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार से इस शास्त्र को राजनीतिशास्त्र से सम्बन्धित बताने में दो मत नहीं हो सकते । राजनीतिशास्त्र समाजशास्त्र का ही अंग है। जिस प्रकार से ग्रामीण शिक्षा, धर्म, अर्थ व्यवस्था, मनोविज्ञान आदि ग्रामीण समाजशास्त्र के अंग हैं उसी प्रकार राजनैतिक संस्थायें भी इस शास्त्र का अंग हैं ।

राजनीतिशास्त्र उन सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन करता है जिनका सम्बन्ध, प्रशासन, सरकार, व्यवस्था, सहयोग, दण्ड, नियम आदि से हो ।

राजनीतिशास्त्र के सम्बन्ध में बेनवर्ग और शेबत ने लिखा है, "राजनीतिशास्त्र उन पद्धतियों का अध्ययन है जिनसे एक समाज अपने को संगठित और राज्य को संचालित करता है।"[8]

ग्रामीण समाज-संगठन एवं राज्य संचालन की सामाजिक संस्था पंचायत है। यहां न केवल यह संस्था राजनैतिक संचालन ही करती है बल्कि समाज की भी व्यवस्था करती है। इस राजनैतिक संगठन का आधार सामाजिक स्तर (Social Status) के लिये महत्वपूर्ण है।

इस दृष्टि से हम ग्रामीण समाजशास्त्र को राजनैतिक क्रियाओं से अलग नहीं कर सकते। हमें यहां समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुकूल ही ग्रामीण राजनीति-शास्त्र का अध्ययन करना होगा। ग्रामीण राजनीति (Rural Politics) का विकास अभी इतना अधिक नहीं हो पाया है कि इसे समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों से अलग किया जा सके। इस सम्बन्ध में गिलक्राइस्ट (Gilchrist) ने लिखा है, "राजनीतिशास्त्र में हमें मानवीय समूह के तथ्य व नियमों को ग्रहण करना चाहिये जिनका अध्ययन व निर्धारण करना समाजशास्त्र का कर्तव्य है।"[9]

अतः हम समाजशास्त्रीय अध्ययन को राजनैतिकशास्त्र से अलग नहीं कर सकते। विशेषतः ग्रामीण समाजशास्त्र को तो ग्रामीण राजनीति (Rural Politics) और ग्रामीण नेतृत्व (Rural Leadership) से लेशमात्र भी अलग नहीं कर सकते।

(२) ग्रामीण समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र
(Rural Sociology and Economics)

यह सर्व विदित तथ्य है कि ग्रामीण जीवन की आर्थिक इकाई कृषि है। ग्रामीण जीवन की सम्पूर्ण संरचना कृषि पर आधारित है। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण समाज में आर्थिक इकाई अलग रूप से कार्य नहीं करती।

---

8. "Political Science is the study of the ways in which a society organises and operates a state." Weinberg and Shabat: 'Society and man'; p.13.
9. "In politics we must assume the facts and laws of human association, which facts and laws it is the duty of sociology to study and determine." R. N. Gilchrist: 'Principles of Political Science'; Orient Longmans Ltd; Seventh Edition (1935);p.11.

औद्योगीकरण (Industrialisation) का यहां अत्यधिक अभाव है। फलस्वरूप यह सामाजिक-आर्थिक (Socio-Economic) इकाई में संगठित है। ग्रामीण अर्थशास्त्र (Rural Economics) की यही विशेषता है कि वह पूर्ण रूप से आर्थिक (Economic) अथवा विशुद्ध आर्थिक (Pure Economic) नहीं है। परन्तु सामाजिक-आर्थिक (Socio-Economic) है। इस दृष्टि से ग्रामीण अर्थ व्यवस्था एवं समाज व्यवस्था में गहरा गठबन्धन है।

यहां कृषि का सामाजिक जीवन से अधिक संबंध है। पूर्ण परिवार रचना ही व्यवसाय के आधार पर हैं। आर्थिक क्षेत्रो में सामाजिक रचना व स्थापना (Settlements) है। इसलिये सामाजिक-शास्त्र व आर्थिक-शास्त्र का अध्ययन यहां समन्वित रूप से किया जायगा। ग्रामीण अध्ययन के लिए कृषि अर्थशास्त्र (Agricultural Economics) आदि का उदय हो गया है। इस शास्त्र के सम्बन्ध में श्री सयाना (Sayana) ने लिखा है, "कृषि अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का वह भाग है जो मनुष्य द्वारा कृषि से सम्बन्धित प्राकृतिक साधनों के उपयोग से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अध्ययन करता है।"[10] इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र एव अर्थशास्त्र का परस्पर सम्बन्वित होना अनिवार्य है। ग्रामीण समाजशास्त्र में आर्थिक संस्थाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण स्थान रखता है अतः अर्थशास्त्र की सहायता ली जाती है।

(३) ग्रामीण समाजशास्त्र और इतिहास
(Rural Sociology and History)

जिस प्रकार से ग्रामीण समाजशास्त्र का ध्येय सामाजिक अध्ययन करना है उसी प्रकार इतिहास भी समाज की महत्वपूर्ण घटनाओं का अध्ययन करना है। दोनों शास्त्र सामाजिक विज्ञान हैं। ये इस दृष्टि से तो सम्बन्धित हैं ही परन्तु प्रत्येक शास्त्र एक दूसरे से सहायता ग्रहण करते है। सामाजिक व्यवहारों में ऐतिहासिक घटनाओं का हमेशा प्रभाव पड़ता रहता है। इसी प्रकार सामाजिक घटनाओं का इतिहास पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ भारतीय समाज में धार्मिक आधार को लेते हुए सन् १८५७ ई० का विप्लव हुआ था।

इसी प्रकार से ग्रामीण समाजशास्त्र का इतिहास से सम्बन्धित होना अवश्यम्भावी है। ग्रामीण समाज में ऐतिहासिक घटनाओं का भी वही महत्वपूर्ण

10. "Agricultural Economics is that part of Economics which deals with problems arising out of man's use of natural resources to agriculture.' V. V. Sayana: 'Readings in Rural Problems'; p. 2.

स्थान है जो सामाजिक घटनाओं का है। इस दृष्टि से दोनों शास्त्र सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र और इतिहास का सम्बन्ध निर्धारित करते समय हमें केवल यह बात याद रखनी चाहिये कि इतिहास घटनाओं का अध्ययन करता है तो समाजशास्त्र घटनाओं के सामाजिक कार्य-कारणों का अन्वेषण करता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि इतिहास व्यवहारों और घटनाओं का साक्षात् क्रियात्मक चित्रण करता है और ग्रामीण समाजशास्त्र सैद्धान्तिक। इस अन्तर के होते हुए भी इनका गठबन्धन स्थायी कहा जा सकता है।

(४) ग्रामीण समाजशास्त्र एवं प्रागैतिहासिक पुरातत्व शास्त्र (Rural Sociology and Pre-historic Archaeology)

प्रागैतिहासिक पुरातत्व शास्त्र प्रागैतिहासिक युग की संस्कृतियों का अध्ययन करता है। पुरातन समाज की कला, भाषा, वेशभूषा, विचार, संगीत आदि का अध्ययन इसी शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। प्रत्येक देश की पुरातन संस्कृति के श्रोत ग्राम हैं। यहीं साँस्कृतिक पवित्रता व्याप्त होती है। भारतवर्ष के उदाहरण से हम पुरातन संस्कृति का रूप ग्रामों में स्पष्ट देख सकते हैं। इस प्रकार से यह शास्त्र ग्रामीण सामाजशास्त्र के समान अपना सम्पर्क ग्राम से ही रखता है। इस शास्त्र के कार्यक्षेत्र भी ग्राम हैं। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र और पुरातत्व प्रागैतिहासिक शास्त्र में सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। ग्रामीण समाजशास्त्र को यदा कदा प्रागैतिहासिक शास्त्र का सहयोग लेना पड़ता है।

इस साम्यता के साथ साथ इन दोनों शास्त्रों में अन्तर भी है। ग्रामीण समाजशास्त्र अपना ध्यान समाज के वर्तमान रूप की ओर केंद्रित करता है। इसके विपरीत प्रागैतिहासिक-शास्त्र भूत की ओर। इस अन्तर के साथ साथ इन दोनों शास्त्रों में एक यह भी भिन्नता पाई जाती है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन कर समाधानों को पारित करना है जब कि प्रागैतिहासिक-शास्त्र अपना ध्यान पुरातन संस्कृति की ओर ही केन्द्रित कर देता है।

इस औपचारिक भिन्नता के साथ साथ हम निर्विवाद रूप से यह निर्धारित कर सकते हैं कि इन दोनों शास्त्रों का कार्यक्षेत्र समान होन के कारण ये दोनों शास्त्र काफी साम्यता रखते हैं। इस साम्यता का सबसे प्रभावशाली आधार समाज की पुरातन संस्कृति है जो ग्रामों में ही निवास करती है।

(५) ग्रामीण समाजशास्त्र और भूगोल (Rural Sociology and Geography)

मानवीय जीवन में पर्यावरण का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पर्यावरण

के कारण से व्यक्ति की भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी दशाओं में परिवर्तन हो जाता है। ग्रामीण समाजशास्त्र में पर्यावरण का बड़ा महत्व है। नागरिक व ग्रामीण समाजशास्त्रों के अस्तित्व का मूल आधार ही पर्यावरण है। ग्रामीण समाजशास्त्र प्राकृतिक पर्यावरण में रहने वाले व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन करता है। इस दृष्टि से भौगोलिक कारकों का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इसी उद्देश्य से श्री लीप्ले ने भौगोलिक सम्प्रदाय (Geograhical School) को स्थापित किया।

सामाजिक दशाओं में भौगोलिक दशाओं का अकथनीय प्रभाव पड़ता है। इस उद्देश्य से ग्रामीण समाजशास्त्री को भूगोल का ज्ञान होना अनिवार्य है। इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र व भूगोल का बड़ा जटिल सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध के फलस्वरूप सामाजिक भूगोल (Social Geography) तथा मानव भूगोल (Human Geography) आदि विषय पारित हो चुके हैं। इन तथ्यों के साथ सामाजिक परिवर्तन में भौगोलिक कारक भी विशेषता रखते हैं। सामाजिक ढांचे के परिवर्तन में यह कारक सदा से ही प्रभावशील रहा है।

इस प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र और भूगोल का सम्बन्ध घनिष्ट है। ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन के लिये हमें भूगोल का अध्ययन आवश्यक है। अन्य समाजशास्त्रों की तुलना में ग्रामीण समाजशास्त्र का सम्बन्ध भूगोल से अधिक घनिष्ट है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण भौगोलिक कारकों का ही ग्रामीण समाज पर प्रभाव देखता है। इस भांति इन दोनों विज्ञानों में घनिष्ट सम्बन्ध है।

(६) ग्रामीण समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान
(Rural Sociology and Psychology)

प्रत्येक सामाजिक-शास्त्र का ध्येय होता है कि वह समाज के व्यक्तियों के व्यवहारों एवं सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त करे। ग्रामीण समाजशास्त्र की अनुसन्धानशाला ग्रामीण समाज है। यह समाज मानव मस्तिष्क के कार्य पर ही आधारित है। मानव मस्तिष्क का शास्त्र मनोविज्ञान है। सामूहिक रूप में मस्तिष्क का अध्ययन समूह मनोविज्ञान (Crowd Psychology) में किया जाता है। स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक समाज-शास्त्र को मनोविज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। मनोविज्ञान समाज की भावनाओं, प्रवृतियों, इच्छाओं, रूचियों व व्यवहारों का अध्ययन करता है।

यदि हम यह कहें कि प्रत्येक समाजशास्त्री का मनोवैज्ञानिक होना अनिवार्य है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

हम यह जानते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र केवल ग्रामीण सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन ही नहीं करता बल्कि सुधारों का प्रतिवेदन भी करता है। इस दृष्टि से मनोविज्ञान से यह शास्त्र और भी अधिक सम्बन्धित है क्योंकि समस्याओं के निवारण हेतु मनोवैज्ञानिक उपायों का प्रयोग करना पड़ता है। प्रो० तोमर (Tomar) ने भी इस सम्बन्ध में लिखा है कि "आधुनिक युग में मानव समाज की समस्याओं को सुलझाने के लिये मनोवैज्ञानिक उपायों का प्रयोग एक फैशन हो गया है। अतः समाजशास्त्र में मनोविज्ञान का महत्व है।"[11] इस प्रकार से हम ग्रामीण समाज में मनोविज्ञान का योग आवश्यक मानते हैं, क्योंकि मनोविज्ञान मानवीय अनुभवों एवं व्यवहारों का विज्ञान है। यह प्रत्येक पर्यावरण में व्यवहारों का अध्ययन करता है। सामाजिक मनोविज्ञान का उदय भी इसलिये हुआ है जिसका वर्णन हम पीछे इसी अध्याय में कर आये हैं।

इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समाजशास्त्रों से मनोविज्ञान अटूट सम्बन्ध रखता है। प्रत्येक समाजशास्त्री को मनोविज्ञान का अध्ययन करना आवश्यक है। इस बात की पुष्टि हेतु श्री क्लाइन बर्ग (Klineberg) ने भी कहा है, "इसी समय यह भी सत्य है कि समाजशास्त्रियों का मौलिक सम्बन्ध समूह व्यवहारों से है और सामाजिक मनोविज्ञान का सामूहिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहारों से।"[12] इस प्रकार हम मनोविज्ञान को समाजशास्त्रों से अलग नहीं कर सकते हैं। इसी आधार पर हम यह भी निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान का भी अटूट सम्बन्ध है।

(७) ग्रामीण समाजशास्त्र एवं धर्मशास्त्र
(Rural Sociology and Science of Religion)

ग्रामीण समाजशास्त्र और धर्म शास्त्र में भी सम्बन्ध पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में वन्यजातीय धर्म (Primitive Religion) पाया जाता

11. प्रो० तोमर : 'सामाजिक मनोविज्ञान प्रथम भाग'।
12. "At the same time it remains true that the primary concern of the Sociologists is group behaviour, and that of social psychologist is the study of the individual in the group situation". Otto. Klineberg : Ibid pp. 6-7.

है । ग्रामीण धर्म की यह भी विशेषता है कि वह अन्धविश्वास व जादू (Magic) से सम्बन्धित होता है ।

ग्रामीण धर्म का प्रतिवेदन ग्रामीण संस्थाओं के अन्तर्गत किया जाता है । इसलिये धर्मशास्त्र व ग्रामीण समाजशास्त्र में सम्बन्ध होना अनिवार्य है । वैदिक काल के धर्मशास्त्रों में भारतीय ग्रामीण जीवन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है । इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र का धर्म से सम्बन्ध होना स्वाभाविक है । ग्रामीण समाजशास्त्रियों का तो यहां तक कहना है कि ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में धर्म का विशिष्ट स्थान है जो संकीर्ण एवं अन्धविश्वासी है । वहां प्राकृतिक जीवन होने के कारण प्राकृतिक पूजा पर बल दिया जाता है । ग्रामीण जीवन का आधार कृषि है जो प्रकृति पर आधारित है ।

(८) ग्रामीण समाजशास्त्र एवं नीतिशास्त्र
(Rural Sociology and Ethics)

हम वर्णन कर आये हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य ग्रामीण जीवन के उत्थान हेतु आदर्श उपस्थित करना है । ग्रामीण समस्याओं एवं बुराईयों का निवारण करना तथा नवनिर्माण हेतु साधन प्रस्तुत करना भी ग्रामीण समाजशास्त्र का ध्येय है । इन ध्येयों की पूर्ति हेतु ग्रामीण समाजशास्त्र को नीतिशास्त्र एवं आचारशास्त्र का सहयोग प्राप्त करना होता है । ग्रामीण समाजशास्त्र को सामाजिक मूल्यों (Social values) के निर्धारण में नीतिशास्त्र का सहयोग लेना आवश्यक है । इन सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों (Ideals) पर ही समाज रचना आधारित होती है । समाजशास्त्रों का नीतिशास्त्र से सम्बन्ध बताते हुए मेकाइवर ने भी लिखा है, "बिना मूल्यों के समझे समाज को नहीं समझा जा सकता है ।"[13] ग्रामीण समाज में आचार, विचार का महत्वपूर्ण स्थान होने से तथा सामाजिक जीवन में धर्म का बाहुल्य होने से नीतिशास्त्रीय तत्वों का ज्ञान होना आवश्यक है । इस प्रकार हम नीतिशास्त्र और ग्रामीण समाजशास्त्र का सम्बन्ध निर्धारित कर सकते हैं ।

(९) ग्रामीण समाजशास्त्र एवं न्यायशास्त्र
(Rural Sociology and Jurisprudence)

प्रो० तोमर ने न्यायशास्त्र की परिभाषा बताते हुए लिखा है, "न्यायशास्त्र न्याय के सिद्धान्तों के अध्ययन को कहते हैं । यह न्याय के भौतिक सिद्धान्तों की

13. "Society without values can not be understood." R. N. MacIver : 'Community' p. 60.

विवेचना करता है।"[14] इस प्रकार न्याय व प्रशासन के सिद्धान्तों का निरूपण करने वाला शास्त्र न्यायशास्त्र है। ग्रामीण समाजशास्त्र को इसका भी सहयोग लेना आवश्यक है, जो तर्क व नियम पर आधारित होता है। इस प्रकार ग्रामीण शासन विधान का अध्ययन करते समय हमें इसका योग लेना आवश्यक है।

सामाजिक जीवन में भी तर्क का महत्वपूर्ण स्थान है। इस सम्बंध में सेठना ने भी कहा है, "जिस प्रकार मानवीय ढांचे में रीढ़ की हड्डी होती है उसी भांति न्याय के ढांचे के लिये तर्क है। बिना तर्क के विधियों का अस्तित्व नहीं रहेगा और जब इनका तर्क ही समाप्त हो जाता है तो विधि भी स्वयं ही समाप्त हो जाती है।"[15]

इस प्रकार से हमने देखा कि न्यायशास्त्र में तर्क का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। न्यायशास्त्र का समाज से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। समाज के विकसित अस्तित्व के साथ ही साथ समाज सम्विदा आदि का विकास होता है, फलस्वरूप न्यायशास्त्र एवं विधानशास्त्र का उदय आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार से समाज में चाहे वह ग्रामीण पर्यावरण में हो अथवा नागरिक पर्यावरण में विधियों एवं सामाजिक नियमों का निर्माण करना ही पड़ता है। इस प्रकार से न्यायशास्त्र सामाजिक नियंत्रण (Social Control) के क्षेत्र में प्रयुक्त होता है। सामाजिक नियंत्रण (Social Control) प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था के लिये अनिवार्य अंग है। जिसका विकास समाज के विकास के साथ साथ होता है। इस तरह से न्यायशास्त्र का समाजशास्त्रों से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिये विधि समाजशास्त्र (Sociology of law), सामाजिक अपराध शास्त्र (Social Criminology), सामाजिक दन्डशास्त्र, (Social penology) आदि नये शास्त्रों का विकास हो रहा है। इसलिये प्रो० बलसारा ने लिखा है, "समाजशास्त्र के जन्म एवं विकास के कारण न्यायशास्त्र को एक नवीन जागृति प्रदान की गई है।"[16]

---

14. प्रो० रामबिहारीसिंह तोमर: 'समाजशास्त्र की रूपरेखा भाग १' (१९६०) पृष्ठ १०७।
15. "Just as the spinal cord is to the human frame so is reason to the entire body of law. Without reason a law will not stand; and when the logic of it ceases; the law itself ceases." Dr. M. J. Sethna : 'Jurisprudence.'
16. "By the birth and growth of sociology a new orientation has been given to jurisprudence." --F. N. Balsara : 'Sociology'; p. 73.

इस प्रकार हम देखते है कि समाज का न्याय से अत्यधिक सम्बन्ध है। ग्रामीण समाज का न्याय अत्यधिक सुलभ एवं साधारण है और ग्रामीण समाजशास्त्र इसके लिये अधिक सहयोग प्राप्त नहीं करता है तो भी इसका सहयोग इस शास्त्र के लिये आवश्यक है। ग्रामीण जीवन में यद्यपि स्वशासन व आत्मनिर्भर प्रणाली के रूप में सामाजिक नियन्त्रण है, परन्तु ग्राम पंचायतों आदि क्षेत्र में इसका प्रयोग विस्तृत हो रहा है। आज के युग में पंचायतों आदि के गठन में तर्क का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामीण नेतृत्व (Rural leadership) में तर्क के कारकों का महत्व बढ़ गया है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र को न्याय-शास्त्र का पूरा योग लेना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि न्यायशास्त्र प्रत्येक संगठित समाज के रूप के लिये आवश्यक है क्योंकि यह सदा उन सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति करता है जिनका प्रत्येक समाज को पालन करना होता है चाहे उस समाज का रूप ग्रामीण हो अथवा नागरिक। अतः न्यायशास्त्र और ग्रामीण समाजशास्त्र का सम्बन्ध घनिष्ट है।

इस प्रकार इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण समाज-शास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध होना आवश्यक है। हमने यह भी देखा कि इस शास्त्र का सम्बन्ध अन्य समाजशास्त्रों के साथ भी हैं।

प्रत्येक समाजशास्त्र का सम्बन्ध आपस में होना तो अनिवार्य है ही तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों से भी होना अनिवार्य है। प्रत्येक सामाजिक शास्त्रों को विषय सामग्री समाज ही है। अतः समाजशास्त्र को सभी सामाजिक-शास्त्रों को समन्वय करने वाला विज्ञान कहा जा सकता है। श्री मैकाइवर का कहना है, "जिस प्रकार समितियों का क्षेत्र समुदाय के अन्तंगत होता है वैसे ही सामाजिक विज्ञान अपना क्षेत्र समाजशास्त्र के अन्तंगत रखते हैं।"[17] इस कथन से पूर्ण स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का सम्बन्ध अन्य सामाजिक शास्त्रों से होना अनिवार्य है।

---

17. "The Social Sciences have their sphere within Sociology, just as associations have their sphere within community." R. M. MacIver : 'Community'; p. 49.

अध्याय ६

ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व

(The Importance of Rural Sociology)

अब तक हमने ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ, उत्पत्ति, विकास, विषयक्षेत्र, प्रकृति आदि पर प्रकाश डाला जिससे यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया होगा कि ग्रामीण समाजशास्त्र क्या है ? विभिन्न स्थानों पर हम ग्रामीण समाजशास्त्र की आवश्यकता, कार्य एवं महत्व की भी संक्षिप्त विवेचना कर आये हैं। इस अध्याय में हम ग्रामीण समाजशास्त्र के कार्य एवं महत्व पर तनिक विस्तार से विवेचना करेंगे।

ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति पर हम विचार कर ही आये हैं कि ग्रामीण समस्याओं के समाधान के लिए इन समस्याओं में अध्ययन के रूप में इस शास्त्र की उत्पत्ति हुई और इसी रूप से विकसित होकर यह वर्तमान धारणा के रूप में विकसित हुआ। कई बार प्रश्न उपस्थित होता है कि इसे एक स्वतन्त्र शास्त्र बनाने की क्या आवश्यकता थी ? देखा जाय तो अन्य सामाजिक विज्ञान ही ग्रामीण समाज का अध्ययन कर लेते हैं फिर ग्रामीण समाजशास्त्र के लिये क्या बाकी रह जाता है जिसके अध्ययन के लिये इस शास्त्र की आवश्यकता हुई ! हम यहाँ पर इन्हीं तथ्यों की विवेचना करते हुए इसके महत्व एवं कार्य पर प्रकाश डालेंगे।

सभी सामाजिक एवं समाजशास्त्रीय विज्ञान मानव समाज का अध्ययन करते हैं। सामाजिक विज्ञान तो मानव समाज का अध्ययन अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से करते हैं और समाजशास्त्रीय विज्ञान अपने सामान्य दृष्टिकोण से मानव समाज का अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्र का एक अंग है और ग्रामीण पर्यावरण में निवास करने वाले समाज का यह सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसे इतने स्पष्ट एवं विशिष्ट रूप में अन्य कोई विज्ञान प्रस्तुत नहीं करता। अतः वास्तविकता यह है कि ग्रामीण समाजशास्त्र के अभाव में मानव ज्ञान कोष में एक कमी रह जाती और इस कमी की पूर्ति ग्रामीण समाजशास्त्र ही करता है। आज संसार में सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हो गये हैं और आर्थिक क्रांति ने तो सामाजिक

सम्बन्धों के पूर्ण ढांचे को ही अत्यधिक प्रभावित किया है। सभ्यता एवं संस्कृति का स्वरूप भी आदिकाल की अपेक्षा वर्तमानकाल में अपने एक विशिष्ट रूप में है। भौतिक उन्नति के द्वारा मानव चन्द्र और मंगल लोक तक पहुँचने में प्रयत्नशील हैं। इन सभी कारकों ने मिलकर वर्तमान सामाजिक संबन्धों को इतना जटिल बना दिया है कि इसे सरलता से तो क्या विशेष श्रम करने पर भी समझना अत्यन्त दुष्कर है। ऐसे समय इस ज्ञान के लिये वैज्ञानिक विधियां विकसित हो रही हैं जिससे इसे सरलता से समझा जा सके और आने वाली समस्याओं एवं वर्तमान समस्याओं का समाधान किया जा सके। इसी दृष्टिकोण से समाज के विभिन्न अंगों का विशिष्ट अध्ययन विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों द्वारा तथा सामान्य अध्ययन समाजशास्त्रीय विज्ञानों द्वारा किया जा रहा है। ग्रामीण समाजशास्त्र भी इसी ध्येय की पूर्ति में संलग्न है। ग्रामीण समाजशास्त्र के प्रमुख उद्देश्य भी इसी ध्येय की पूर्ति करते हैं। नीचे हम इन प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन करेंगे।

ग्रामीण समाजशास्त्र के उद्देश्य
(Aims of Rural Sociology)

ग्रामीण समाजशास्त्र ने मानव ज्ञान कोष की वृद्धि के चरम ध्येय से अपने अनेक उद्देश्य निर्धारित किये हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति यह अपने अध्ययन से करता है और इस भांति अपने चरम ध्येय की पूर्ति की ओर अग्रसर होता है। ग्रामीण समाजशास्त्र के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं:—

(१) ग्रामीण सामाजिक जीवन का विश्लेषण
(Analysis of Rural Social Life)

ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण पर्यावरण में उपलब्ध सामाजिक जीवन का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत करना है। ग्रामीण पर्यावरण में उपलब्ध ग्रामीण सामाजिक ढांचे का विस्तृत अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र करता है। स्टुअर्ट चैपलिन (Stuart Chaplin) ने भी उचित ही लिखा है, "ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र, ग्रामीण जनसंख्या, ग्रामीण सामाजिक संगठन एवं सामाजिक प्रक्रिया जो ग्रामीण जीवन में कार्यान्वित है, का अध्ययन है।"[1] इस

---

1. "The Sociology of Rural Life is a study of rural population, rural social organisation and the social process oparative in rural society." F. Stuart Chaplin : 'Rur Structure'.

भाँति ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सामाजिक जीवन, सामाजिक ढांचे, संस्थाओं, कार्यों, जनसंख्या, सामाजिक संगठन, प्रक्रियाओं आदि का विश्लेषण प्रस्तुत करके सामान्यीकरण करता है। अतः हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र का ध्येय ग्रामीण जीवन का विश्लेषण है। इस विश्लेषण के द्वारा केवल वर्तमानकालीन अथवा भविष्य में आने वाली समस्याओं का ही समाधान करना नहीं है वरन् यह एक सतत प्रयत्न है जिससे इस ज्ञान कोष में वृद्धि होती रहे।

(२) ग्रामीण सामाजिक संगठन का अध्ययन
(Study of Rural Social Organisation)

ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सामाजिक संगठन का अध्ययन करता है। ग्रामीण सामाजिक संगठन में आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, जातीय, वर्गीय आदि सभी संगठन आ जाते हैं और इन सभी संगठनों का ग्रामीण समाजशास्त्र समग्र रूप में अध्ययन प्रस्तुत करता है। ग्रामीण समाजशास्त्र इन संगठनों के द्वारा होने वाले सामाजिक नियन्त्रणों का भी अध्ययन करता है और अपना उद्देश्य सामाजिक नियन्त्रण को सफल बनाने का रखता है। इस भाँति ग्रामीण समाजशास्त्र सामाजिक संगठनों का अध्ययन कर ग्रामीण सामाजिक नियन्त्रण के साधनों का अध्ययन प्रस्तुत करता है और सामाजिक नियन्त्रण के साधनों के प्रयोग के लिये सुझाव भी देता है। इस भांति ग्रामीण समाजशास्त्र सम्पूर्ण ग्रामीण समाज के संगठित जीवन का अध्ययन प्रस्तुत कर उसे विघटित होने से रोकने का उपाय बतलाता है तथा विघटन का विश्लेषण कर उसके कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर करने का प्रयास करता है। इस भांति ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य ग्रामीण सामाजिक संगठन का अध्ययन प्रस्तुत करना है।

(३) ग्रामीण समस्याओं का विश्लेषण एवं समाधान
(Analysis and solution of Rural Problems)

ग्रामीण समाजशास्त्र का जन्म प्रारम्भ में ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के उद्देश्य से ही हुआ था और इसी उद्देश्य के साथ धीरे धीरे अन्य उद्देश्य सम्मिलित होते गए और ग्रामीण समाजशास्त्र की वर्तमान धारणा विकसित हो गई। अमेरिका के चिकागो विश्वविद्यालय में समस्याओं के अध्ययन के दृष्टिकोण से ही इस विज्ञान का जन्म हुआ था। वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन में व्याप्त सामाजिक समस्याओं का विस्तृत अध्ययन के द्वारा विश्लेषण करता है और इनके कारणों का पता लगाकर इन कारणों को दूर करने का उपाय एवं इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। इस भांति हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन में व्याप्त सभी सामाजिक

समस्याओं का अध्ययन प्रस्तुत कर इनका समाधान ढूंढता है। इन समस्याओं के अध्ययन ने ग्रामीण समाजशास्त्र के महत्व को निर्विवाद रूप से विस्तृत किया है। इस सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने उचित ही लिखा है, "यह रचना प्रकाशित करती है कि ग्रामीण समाज के मूल लक्षणों एवं ग्रामीण जीवन को परिवर्तित करने वाली प्रमुख समस्याओं ने किस भांति प्राचीन, मध्यकालीन एवं प्रारम्भिक वर्तमान-कालीन प्रमुख विचारकों के ध्यान एवं रूचि पर अधिकार कर लिया है और उन्हें सामाजिक पुनरावर्तन के निर्माण के लिये बाध्य किया है।"[2]

(४) ग्रामीण पुनर्निर्माण (Rural Reconstruction)

ग्रामीण समाजशास्त्र का एक उद्देश्य ग्रामीण जीवन का पुनर्निर्माण करना भी है। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण ढांचे का अध्ययन करता है, ग्रामीण समस्याओं एवं ग्रामीण सामाजिक संगठन का भी अध्ययन करता है। ऐसी अवस्था में यह विघटन, समस्याओं आदि के कारणों का पता लगाकर इनका समाधान प्रस्तुत करता है और ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य में सहयोग देता है। प्रो० देसाई ने भी लिखा है, "ग्रामीण समाज का उच्च आधारों पर पुनर्निर्माण करने के लिये हमें यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम केवल आर्थिक शक्तियों का ही अध्ययन न करें बल्कि सामाजिक, आदर्शवादी व अन्य शक्तियों का भी अध्ययन करें जो ग्रामीण जीवन में कार्य करती हैं।"[3] वास्तव में यदि ग्रामीण समाज-शास्त्र पुनर्निर्माण के क्षेत्र की ओर अपना ध्यान केन्द्रित न करे तो इसका अध्ययन इतना महत्वपूर्ण नहीं हो पायेगा। इस पुनर्निर्माण के उद्देश्य ने ही ग्रामीण समाजशास्त्र को इतना महत्वशाली शास्त्र बना दिया है।

(५) अहम्वाद का निराकरण (Elimination of Egoism)

ग्रामीण समाजशास्त्र विभिन्न ग्रामीण समाजों का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करता है। विभिन्न संस्कृतियों से प्रभावित ग्रामीण जीवन का भी अध्ययन

---

2. "It reveals how some of the basic features of rural society and urgent problems of changing rural life had commanded the interest and attention of earnest social thinkers of ancient, medieval and early modern periods and impelled them to make sociological reflections." A. R. Desai :'Rural Sociology in India' p. 6.
3. "To reconstruct such a rural society on a higher basis it is urgently necessary to study not only the economic forces but also the social, the ideological and other forces operating in that society." A. R. Desai : Ibid. p. 5.

इसमें सम्मिलित है। ऐसी अवस्था में ग्रामीण व्यक्ति केवल अपनी संस्कृति, अपने ग्राम को ही सर्वोच्च समझ कर अहम्‌वाद के शिकार न बन जायें यह धारणा ग्रामीण समाजशास्त्र के द्वारा समाप्त होती है और सभी संस्कृतियों के व्यक्तियों के प्रति विश्व बन्धुत्व की भावना का प्रसार होता है। वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र निष्पक्ष अध्ययन प्रस्तुत कर इस अहम्‌वाद का निराकरण करता है।

(६) नवीन ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था
(New Rural Social System)

ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के विघटन को समाप्त कर नवीन सामाजिक व्यवस्था ग्रामीण समाज को प्रदान करना है और यह कार्य यह विज्ञान समस्याओं के समाधान, पुनर्निर्माण आदि के द्वारा करता है। ग्रामीण जीवन में कृषि-क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति, नागरीकरण आदि प्रक्रियाओं ने विघटन ला दिया है और ग्रामीण जीवन वर्तमान संस्कृति एवं सभ्यता के समकक्ष नहीं रह गया है वरन् पिछड़ गया है। ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य है कि इस पिछड़ेपन को समाप्त कर ग्रामीण समाज को वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया जाय और इस भांति ग्रामीण समाज को नवीन व्यवस्था प्रदान की जाय।

ग्रामीण समाजशास्त्र के उक्त प्रमुख उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों के अध्ययन से ग्रामीण समाजशास्त्र की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है कि ग्रामीण समाजशास्त्र इतने महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति करता है जो किसी अन्य विज्ञान द्वारा नहीं किये जाते। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र की वर्तमान मानव समाज को अत्यन्त आवश्यकता है। अब हम ग्रामीण समाजशास्त्र के विभिन्न कार्यों का उल्लेख करेंगे।

ग्रामीण समाजशास्त्र के कार्य
(Functions of Rural Sociology)

ग्रामीण समाजशास्त्र अनेक कार्य मानव समाज के लिये करता है। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज के अध्ययन के द्वारा अनेक कार्य करता है। इन कार्यों में निम्न कार्य प्रमुख हैं:—

(१) पारिभाषिक कार्य (Defining Functions)

ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रमुख कार्य है ग्रामीण पर्यावरण से प्रभावित सामाजिक जीवन का पारिभाषिक ज्ञान कराना। यह शास्त्र ग्रामीण जीवन

में प्रयुक्त होने वाली धारणाओं की व्याख्या करके सार्वभौमिक परिभाषा निर्धारित करता है। यह इन धारणाओं की सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत करता है। साधारण जनता इनका वैज्ञानिक अर्थ समझने में असमर्थ होती है अतः यह शास्त्र इनकी परिभाषा एवं सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत करता है जिससे हमें उस धारणा विशेष को समझने में सहायता प्राप्त होती है।

(२) परिचयात्मक कार्य (Introductory Functions)

ग्रामीण समाजशास्त्र हमें ग्रामीण सामाजिक जीवन, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक ढांचे, सामाजिक सम्बन्धों, प्रक्रियाओं आदि से परिचित कराता है। हम ग्रामीण समाज और उसकी समस्याओं से परिचित हो जाते हैं। साथ ही हम उसके समाधान के तरीकों से भी परिचित होते हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन की सम्पूर्ण झांकी प्रस्तुत कर हमें ग्रामीण पर्यावरण एवं जीवन से परिचित कराता है।

(३) सूचनात्मक कार्य (Informational Functions)

ग्रामीण समाजशास्त्र हमें ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित सभी सूचनायें प्रदान करता है। ग्रामीण जीवन की क्या प्रवृत्ति है? वह किस दिशा में संचालित हो रही है? उसके क्या कारण हैं? आदि बातों की सूचना यह शास्त्र देता है। इसके साथ ही यह कारणों का विश्लेषण करता है। यह शास्त्र हमें ज्ञान देता है कि अमुक योजना अमुक ग्रामीण समाज में कार्यान्वित हो रही है। इसके अमुक प्रभाव हुए हैं। इन प्रभावों का मूल्यांकन करके यह शास्त्र इनके औचित्य एवं अनौचित्य, सफलता एवं विफलता आदि की सूचना भी प्रदान करता है। यह सांस्कृतिक भिन्नता के आधार पर ग्रामीण जीवन की भिन्नता भी प्रदर्शित करता है। ग्रामीण जनसंख्या का आकार, घनत्व, स्वरूप आदि की सूचना देता है और इस भांति यह ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचना देने का कार्यालय कहा जा सकता है।

(४) सहिष्णुतात्मक कार्य (Tolerance Functions)

ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन का अध्ययन विशिष्ट समाजों, संस्कृतियों, समूहों, प्रजातियों का ध्यान रखे बिना प्रस्तुत करता है। इससे व्यक्तियों को ग्रामीण जीवन की सार्वभौमिकता एवं समानता का ज्ञान होता है और अहम्वाद की भावना का निराकरण होकर सहिष्णुता की भावना से "विश्वबन्धुत्व" एवं "वसुधैव कुटुम्बकम्" की धारणा विकसित होती है। विभिन्न संस्कृतियों के ग्रामीण जीवन में पर्याप्त भिन्नता भी पाई जाती है किन्तु

इस अध्ययन के द्वारा इस भिन्नता का ज्ञान होने पर वैज्ञानिक विचार विकसित होते हैं और सहिष्णुता की धारणा विकसित होती है । विभिन्न सामाजिक मूल्यों के आधार पर "स्वयं केन्द्रित ज्ञान" के प्रति व्यक्तियों में वैज्ञानिकता विकसित होती है और सहिष्णुता बढ़ती है । इस आधार पर ग्रामीण समाजशास्त्र व्यक्ति को आदर्श नागरिक के रूप में भी प्रस्तुत करने का कार्य करता है ।

(५) सांस्कृतिक कार्य (Cultural Functions)

ग्रामीण समाजशास्त्र संस्कृतियों का ज्ञान प्रस्तुत करता है और इस भांति यह विभिन्न देशों की ग्रामीण एवं नागरिक संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है । यह शास्त्र बतलाता है कि ग्रामीण संस्कृति क्या है ? उसका यह रूप क्यों है ? इसे कैसे परिवर्तित किया जा सकता है ? इसे किस रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए ? इस सांस्कृतिक रूप के पिछड़ जाने से ग्रामीण समाज में क्या विघटन आ गया है ? आदि तथ्यों का अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र करता है और ग्रामीण संस्कृति का ज्ञान देने के साथ ही साथ यह उस संस्कृति के विकास में भी योग देता है और इस भांति यह सांस्कृतिक विकास एवं पुनर्निर्माण का भी कार्य करता है ।

(६) प्रजातांत्रिक कार्य (Democratic Functions)

ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज का अध्ययन प्रस्तुत कर ग्रामीण जीवन का ज्ञान देता है परिणामस्वरूप व्यक्तियों को यह ज्ञान होता है कि यह सभी कुछ मानव द्वारा निर्मित है । इसलिये स्वयं की योग्यता का महत्व बढ़ जाता है और व्यक्ति योग्यता के आधार पर समाज में अपना एक स्थान बना लेता है तथा कार्य करता है । इस भांति इस धारणा के विकास से प्रजातांत्रिक विचारधारा प्रसारित होती है क्योंकि प्रजातन्त्र के मूल आधार भी समानता, बन्धुत्व एवं स्वतन्त्रता ही है । यह समानता की भावना प्रजातांत्रिक विचारों को विकसित करती है और इस भावना का विकास ग्रामीण समाजशास्त्र के द्वारा अधिक सरलता से सम्भव है ।

(७) सुधारात्मक कार्य (Reformatry Functions)

ग्रामीण समाजशास्त्र सुधारात्मक कार्य भी करता है । यह ग्रामीण जीवन में व्याप्त सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करके विश्लेषण करता है और इस विश्लेषण के द्वारा उनका समाधान प्रस्तुत करता है । यह ग्रामीण सामाजिक कुरीतियों, बुराईयों आदि को दूर करने का प्रयत्न करता है । ग्रामीण समाजशास्त्र पूर्ण रूप से व्यर्थ होता यदि यह सुधारात्मक कार्य नहीं लेता ।

ग्रामीण समाजशास्त्र के जन्म पर विवेचना करते समय हम लिख ही आये हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र का जन्म ही सुधार के दृष्टिकोण से हुआ था। इस भांति यह शास्त्र ग्रामीण सामाजिक जीवन का विश्लेषण कर उसमें व्याप्त बुराइयों को दूर कर सुधार प्रस्तुत करता है।

(८) रचनात्मक कार्य (Constructive Functions)

ग्रामीण समाजशास्त्र सुधारात्मक कार्य के साथ साथ नवीन रचना का कार्य भी करता है। यह ग्रामीण समस्याओं का रचनात्मक एवं प्रायौगिक समाधान प्रस्तुत करता है। यह ग्रामीण जनता में शिक्षा, सामाजिक शिक्षा आदि के द्वारा नवीन सामाजिक व्यवस्था की रचना करता है और इस भांति रचनात्मक कार्य करता है। वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण सेवा करता है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण इसका उत्तम उदाहरण है।

(९) पुनर्निर्माणात्मक कार्य (Reconstructive Functions)

पुनर्निर्माणात्मक और रचनात्मक कार्यों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। पुनर्निर्माणात्मक कार्यों के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जिनमें प्राचीन व्यवस्था के सुधार के रूप में पुनर्निर्माण होता है और रचनात्मक के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जिनमें नवीन रचना होती है। पुनर्निर्माण के अन्तर्गत ग्रामीण समाजशास्त्र प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का सुधार कर उन्हीं का पुनर्निर्माण करता है। जैसे प्राचीन भारत में ग्राम एक आत्मनिर्भर इकाई के रूप में थे। आज पुनः ग्राम का यही रूप निर्माण करने का प्रयत्न किया जा रहा है। ये कार्य पुनर्निर्माण से सम्बन्धित हैं।

(१०) प्रशिक्षणात्मक कार्य (Functions regarding Training)

ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण व्यक्तियों एवं ग्रामीण सामाजिक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देने का कार्य भी करता है जिससे वे ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक निपुणता से कार्य कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ग्रामीण समाजशास्त्र अनेकों सामाजिक कार्यकर्ताओं को ग्रामीण क्षेत्रों के सम्बन्ध में ज्ञान देकर वहां कार्य करने की प्रणालियों का व्यवहारिक एवं प्रायौगिक ज्ञान देता है जिससे ये सामाजिक कार्यकर्ता ऐसे स्थानों पर जाकर कार्य करने में सक्षम होते हैं और ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्य सुचारू रूप से करने में समर्थ होते हैं।

ग्रामीण समाजशास्त्र के उपरोक्त कार्यों से ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व एवं आवश्यकता पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाते हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र का

अध्ययन उपरोक्त उद्देश्यों एवं कार्यों के आधार पर समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ग्रामीण समाजशास्त्र के नियमों का सामाजिक उन्नति के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसके नियमों से समाज में व्याप्त समस्याओं का समाधान कर सामाजिक एवं साँस्कृतिक प्रगति की जा सकती है। यही कारण है कि इतने अल्प समय में यह विज्ञान इतनी अधिक प्रगति कर गया है। अब हम ग्रामीण समाजशास्त्र के महत्व की विवेचना करेंगे।

ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व
(Importance of Rural Sociology)

ग्रामीण समाजशास्त्र के महत्व को हम कुछ प्रमुख विभागों में विभाजित करके अध्ययन करेंगे जिससे इस शास्त्र के महत्व का पूर्ण स्पष्टीकरण हो जायेगा।

(१) समाजशास्त्रीय महत्व (Sociological Importance)

यह तो हम जानते ही हैं कि संसार की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है। यदि ग्रामीण ढांचा ही विघटित, अव्यवस्थित होगा तो यह स्वाभाविक ही है कि संसार का अधिकांश सामाजिक जीवन अव्यवस्थित और विघटित हो। अतः संसार के सामाजिक जीवन के दृष्टिकोण से ग्रामीण समाजशास्त्र का अत्यधिक महत्व है। इङ्गलैण्ड और वेल्स में २० प्रतिशत, फ्रांस में ५१ प्रतिशत, उत्तरी आयरलैंड में ४६.२ प्रतिशत, कनाडा में ४६.३ प्रतिशत, संयुक्तराज्य अमेरिका में २० प्रतिशत तथा भारत में ८२.७ प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। अन्य देशों से भी यदि ये तथ्य एकत्रित किये जायें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि संसार में लगभग ५० प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है और इस वृहत् भाग के अध्ययन का विश्लेषण करने का कार्य ग्रामीण समाजशास्त्र ही करता है।

ग्रामीण सामाजिक समस्याओं का अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र करता है और उसका समाधान भी प्रस्तुत करता है। सामाजिक समस्याओं के दृष्टिकोण से भी ग्रामीण समाजशास्त्र का अपना विशेष महत्व है। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्राम्यीकरण एवं नागरीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन करता है। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सुधार, ग्रामीण पुनर्निर्माण आदि कार्यों को भी करता है अतः इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व और भी बढ़ जाता है। यह शास्त्र ग्रामीण संस्कृति के विकास एवं प्रगति के सम्बन्ध में भी सुझाव प्रस्तुत करता है। यह

विज्ञान ग्रामीण समाज का विश्लेषण कर ग्रामीण जनता को उससे परिचित कराता है। ग्रामीण सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए दिशा निर्देशन एवं प्रशिक्षण देने का कार्य करता है। इस भांति ग्रामीण समाजशास्त्र समाज के लिए महत्वपूर्ण कार्य करता है। यह ग्रामीण समाज के सदस्यो को ग्रामीण समाज के उद्देश्यों एवं आदर्शो के प्रति जागरूक और प्रयत्नशील बनाता है। ग्रामीण समाज की प्रचलित परम्पराओं, प्रथाओं, रूढ़ियो, संस्थाओं आदि का विश्लेषण कर उन्हे सामाजिक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करता है। उदाहरण के लिये ग्रामीण जनता में प्रचलित अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों के प्रति अन्ध भक्ति को लीजिये। इस अन्ध भक्ति से ये लोग नवीनता का विरोध करते हैं, किसी भी सुधार के लिये तैयार नहीं होते, ग्रामीण कार्यकर्ताओ के साथ सुव्यवहार नहीं करते। परिणामत: अनेक कठिनाइयां उपस्थित हो जाती हैं। इसी भांति अन्धविश्वासों के कारण रोगों की चिकित्सा ठीक भांति से नहीं होती, झाड़ फूँक में लगे रहते हैं। ओझाओं, भूतों, प्रेतों, आदि पर विश्वास करते हैं। डाक्टरी सहायता लेना अनुचित समझते हैं। इस समस्या का हल अच्छी शिक्षा की व्यवस्था ही है और इस दिशा में निरन्तर प्रयत्नों की आवश्यकता है। शिक्षा का भी ये लोग विरोध करेंगे यदि शिक्षा का उद्देश्य इनकी सामाजिक व्यवस्था के अनुसार न हुआ। बेसिक शिक्षा इस दिशा में कुछ सीमा तक सफल हुई है किन्तु इसमें भी अभी अत्यधिक कमियाँ हैं। वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन मे इन समस्याओं का समुचित समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है जो प्रायौगिक आधारों पर ही होगा। अत: स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व कितना अधिक है।

ग्रामीण समाजशास्त्री ग्रामीण समाज का विश्लेषण समस्याओं के समाधान के रूप में ही प्रस्तुत नहीं करता वरन् यह सामाजिक अभियन्ता (Social Engineer) के रूप में भी कार्य करता है और ग्रामीण सुधार के लिये रचनात्मक तथा पुनर्निर्माणात्मक कार्य करता है। इस भांति स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने लिखा है, "ग्रामीण समाज का उच्च आधारों पर पुनर्निर्माण करने के लिये हमें यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम केवल आर्थिक शक्तियों का ही अध्ययन न करें बल्कि सामाजिक, आदर्शवादी व अन्य शक्तियों का भी अध्ययन करें जो ग्रामीण जीवन में कार्य करती हैं।"[4] इस प्रकार के कार्य में ग्रामीण समाजशास्त्र ही

4. "To reconstruct such a rural society on a higher basis it is urgently necessary to study not only the economic

पूर्ण रूप से सहयोगी है। श्री स्मिथ ने कहा है, "यह पुस्तक ग्रामीण समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई थी, लेकिन यह पुस्तक भूमि पर रहने वाले व्यक्तियों के कल्याण कार्य में लगे हुए विशेषतः उन कर्मचारियों से भी सम्बन्धित है जो कृषि सम्बन्धी नीति निर्माण एवं निर्देशन के लिये तथा राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माण के लिये उत्तरदायी हैं।"[5] उपरोक्त अवतरणों से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया होगा कि ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व कितना अधिक है।

(२) शैक्षणिक महत्व (Educational Importance)

ग्रामीण समाजशास्त्र का शैक्षणिक दृष्टि से भी अत्यधिक महत्व है। यह मानव ज्ञान कोष की वृद्धि तो करता ही है साथ ही यह इस ज्ञान के प्रयोग के उपाय भी बतलाता है। यह ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक, साँस्कृतिक सम्बन्धों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह परिभाषायें प्रस्तुत करता है। यह ग्रामीण सामाजिक जीवन से भी परिचित कराता है। यह ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचना प्रसारित करता है। यह विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत कर हमें सांस्कृतिक ज्ञान प्रदान करता है। यह प्रजातांत्रिक भावना का प्रसार करता है और जनता में जागृति उत्पन्न कर उनको अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति जागरूक करता है। इस भांति ग्रामीण समाजशास्त्र, शैक्षणिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अतः हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र शैक्षणिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण विज्ञान है।

(३) व्यावसायिक महत्व (Vocational Importance)

समाजशास्त्रीय व शैक्षणिक महत्व के साथ ही साथ ग्रामीण समाजशास्त्र का व्यावसायिक (Vocational) महत्व भी दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

---

forces, but also the social, the ideological and other forces operating in that society." A. R. Desai : 'Rural Sociology in India'; p. 5.

5. "This book was written for the students of Rura Sociology; but it is also addressed to all workers engaged in activities designed to increase the welfare of the people on land and specially to the public servants who are responsible for planning, guiding and carrying out the agricultural politics of the Nation." Smith :'Rural Sociology', Preface to first edition.

यहाँ हम इस शास्त्र के विशेषज्ञ को निम्न विभागों के हेतु उपयुक्त पाते हैं—

(१) सरकार के अनुसन्धान (Survey) विभाग में।
(२) योजना आयोग के विभिन्न विभागों में।
(३) सामुदायिक विकास योजना क्षेत्र में।
(४) ग्रामीण कल्याण (Rural Welfare) विभाग में।
(५) समाज शिक्षा व बुनियादी शिक्षा क्षेत्र में।
(६) सामाजिक सेवा (Social Service) कार्यक्रमों में।
(७) ग्राम विकास (Rural Development) के विभागों में।
(८) कृषि अनुसन्धानशालाओं (Agricultural Laboratories) में।
(९) ग्राम पुनर्निर्माण (Rural Reconstruction) आन्दोलन में।
(१०) भूदान व ग्राम राज्य के कार्यक्रमों में।
(११) सहकारिता (Co-operative) विभागों में।
(१२) पंचायत विभाग में पंचायत अधिकारी (Panchayat Officer) तथा पंचायत निरीक्षक (Panchayat Inspector) के रूप में।
(१३) वन्यजाति कल्याण विभाग (Tribal Welfare Department) में।
(१४) समाज कल्याण (Social Welfare) में अधिकारी (Welfare Officers) के स्थान पर।
(१५) क्षेत्रीय योजना विभाग (Field Planning Department) के अधिकारी के रूप में।
(१६) कामदिलाऊ कार्यालय (Employment Offices) में कार्य दिलाऊ अधिकारी तथा उपाधिकारी के रूप में।
(१७) ग्रामीण उत्तर सेवागृहों (Rural After Care Homes) के संचालक के रूप में।
(१८) विभिन्न राज्यों हेतु ग्रामीण समाजशास्त्री के रूप में।
(१९) ग्रामीण अपराधियों के सुधार विभाग में प्रोबेशन (Probation) और पेरोल अधिकारी (Parole Officer) के रूप में।
(२०) ग्रामीण परिवार नियोजन (Rural Family Planning) विभाग में अधिकारी एवं उपाधिकारी के रूप में।
(२१) सामाजिक विज्ञान संस्थाओं (Institutes of Social Sciences) के विभिन्न ग्रामीण प्रोजेक्ट्स (Rural Projects) के संचालन क्षेत्र में।
(२२) क्षेत्र प्रचार (Field Publicity) व जनसम्पर्क विभाग (Public Relation Office) आदि विभिन्न विभागो में।

(२३) न्याय पंचायत व पंचायत समिति तथा प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) के कार्यक्रमों में ।

(२४) ग्रामीण योजना संस्थाओं (School of Rural Planning) तथा समाज कार्य संस्थाओं में।

(२५) केन्द्रीय सामुदायिक विकास अध्ययन एवं अनुसन्धानशालाओं (Central Institute of study and Research in C. D.) में अध्ययन व अध्यापन हेतु ।

(२६) ग्रामीण समाजशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में ।

(२७) ग्रामीण कार्यकर्ता (Rural Worker) के रूप में ।

(२८) ग्रामीण समाज सुधारक के रूप में ।

(२९) समाज सुरक्षा (Social Security) की विभिन्न योजनाओं एवं विभागों में ।

(३०) सामाजिक बीमा (Social Insurance and Assistance) के विभागों में तथा ग्रामीण श्रमिकों के कल्याण क्षेत्र में ।

(३१) ग्राम नेता शिक्षण संस्थाओं (Rural Leadership Training Schools) के विभिन्न पदों पर ।

(३२) कार्यक्रम मूल्यांकन अधिकारी (Programme Evaluation Officer) के रूप में ।

(३३) ग्रामीण संस्थाओं (Rural Institutes) के विभिन्न पदों पर ।

उपरोक्त विवरण से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का कितना अधिक महत्व है तथा यह कितने महत्वपूर्ण उद्देश्यों को लिए हुए कितने महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करता है। यदि इस आधार पर हम यह कहें कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज के ज्ञान का सम्पूर्ण एवं वृहत् कोष है तो अतिशयोक्ति न होगी। वास्तव में, ग्रामीण समाजशास्त्र है भी इसी योग्य कि इसे ग्रामीण ज्ञान का सम्पूर्ण एवं वृहत् कोष माना जाय। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र केवल ज्ञान की ही वृद्धि नहीं करता वरन् व्यावसायिक दृष्टिकोण से भी व्यक्तियों के लिये महत्वपूर्ण है। ग्रामीण समाजशास्त्र के उपरोक्त विवेचन के उपरांत अब हम ग्रामीण समाजशास्त्र के भारत में विशेष महत्व पर विवेचना करेंगे। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उपरोक्त विवेचना को हम भारत के लिए नहीं ले सकते । उपरोक्त महत्व को तो हम भारत के लिये सामान्य रूप से ले ही सकते हैं किन्तु भारतीय परिस्थितियों के विशेष आधार पर हम इसके विशिष्ट महत्व की ही संक्षिप्त विवेचना करेंगे ।

भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व
(Importance of Rural Sociology in India)

ग्रामीण समाजशास्त्र के उपरोक्त वर्णित महत्व से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ग्रामीण समाजशास्त्र न केवल भारत के लिए वरन् समस्त संसार के लिए ही एक महत्वपूर्ण विज्ञान है जिसके अध्ययन से मानव जीवन को अनेक लाभ होते हैं। यहां पर हम ग्रामीण समाजशास्त्रीय अध्ययनों का भारत में महत्व बतलायेंगे।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां के ग्राम ही भारतीय संस्कृति के मूलश्रोत एवं आधार शिलायें हैं। यहां ८० प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक तथा पूर्व में बंगाल से पश्चिम में बिलोचिस्थान तक गावों का एकछत्र राज्य है। ऐसी अवस्था में यदि हम यह कहें कि भारत ग्रामों का देश है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। ऐसी अवस्था में ग्रामीण समाज के अध्ययन की आवश्यकता स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है कि इतनी बृहत् जनसंख्या वाले देश का अध्ययन करना एवं समस्याओं का समाधान करना कितना आवश्यक कार्य है और यह भी कल्पना की जा सकती है कि इस कार्य को करने वाला विज्ञान कितना महत्वपूर्ण होगा। ग्रामीण समाजशास्त्री प्रो० देसाई[6] ने लिखा है कि भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय व महत्व आदिकालीन है।

हमारा भारत प्राचीन काल से ही आत्मनिर्भर ग्रामीण इकाईयों में विभाजित था, जहां भाषा, वेशभूषा, सभ्यता एवं संस्कृति में भिन्नता पाई जाती थी। भारतीय ग्रामों की इस विशिष्टता के बारे में कुरेनसन (Kuryenson) ने भी लिखा है, "पुरातन ग्राम केवल आर्थिक व प्रशासनिक इकाई ही नहीं थे बल्कि वे सहयोगिक एवं सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र भी थे। उनके पास अपने त्यौहार, पर्व, लोक-गीत, नृत्य, खेल व मेले थे, जिन्होंने जनता को जीवन दिया और उनके उत्साह को बनाये रक्खा है।"[7] यह विशेषता भारत

6. A. R. Desai : Ibid; p. 6.
7. "Villages of old were not merely economic or administrative units, they were centres of cooperative life and culture. They had their festivals and festivities, folksongs and folkdances, sports and melas, which gave life to the people and sustained their enthusiasm." Kuryenson : 'Rural Reconstruction.' p. 7.

में प्राकृतिक रूप से विद्यमान थी। विदेशी शासन ने इस सुन्दर व्यवस्था को खंडित कर दिया। आत्मनिर्भरता का सर्वश्रेष्ठ गुण विदेशी शासन के प्रभाव एवं विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के परिणामस्वरूप समाप्त हो गया। नागरीकरण की प्रक्रिया से गाँव उजड़ने लगे। औद्योगीकरण ने ग्रामीण उद्योग धन्धों को समाप्त कर दिया। अंग्रेजों की शोषण एवं जमींदारी प्रथा ने ग्रामीण शरीर का रक्त चूस कर मात्र हड्डियों का पंजर शेष रहने दिया। गांवों की आर्थिक दशा गिरने से सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक दशायें भी लुप्त होकर निम्न स्तर पर आने लगी। ग्रामीण भारत अशिक्षा, भूख, बेकारी, ऋण, मद्यपान, मुकदमेबाजी आदि राक्षसों से घिर गया। ग्रामीण पंचायतों की समाप्ति से न्यायालय व्यवस्था ने ग्रामीण समाज को और भी अधिक पीड़ित किया। इस सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने उचित ही लिखा है, "अंग्रेजी शासकों ने इस भांति पुरातन आधार प्रविधियां एवं उत्पादन के प्राचीन संगठनों को शिथिल कर दिया लेकिन उनके स्थान पर स्वरूप एवं स्थाई नवीनता को सीमित अंश में भी विकसित नहीं किया।"[8] वास्तव में यदि अंग्रेज शासक इस दिशा में तनिक कार्य करते तो भारत की यह दशा नहीं होती, जो हो गई है। ऐसी परिस्थितियों में ग्रामीण समाजशास्त्र ही एक ऐसा विज्ञान था जिसके द्वारा ग्रामीण जनता तक प्रकाश की किरणें पहुँचाई जा सकती थीं किन्तु देश में इस शास्त्र के ज्ञान एवं प्रसार के अभाव ने इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाने से वंचित रक्खा। परिणामस्वरूप विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक आधार पर भारतीय स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। इसमें सन्देह नहीं कि इन अर्थशास्त्रियों के ये प्रयत्न कुछ सीमा तक सफल भी हुए किन्तु फिर भी ग्रामीण समाज के लिये ग्रामीण समाजशास्त्रीय अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तो यह आवश्यकता और भी बढ़ गई है। इस सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने भी लिखा है, "ग्रामीण सामाजिक संगठन व इसके ढांचे, कार्य एवं मूल्यांकन का व्यवस्थित अध्ययन स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त केवल आवश्यक ही नहीं अपितु अति आवश्यक हो गया है।"[9]

---

8. "The British rulers, thus weakened the old motif, old techniques and the old organisations of production but did not replace them by healthy new ones to any extensive degree." A. R. Desai : 'Rural Sociology in India'; p.127.
9. "A Systematic study of the rural social organisation, of its structure, function and evaluation has not

इस प्रकार से ग्रामीण सामाजशास्त्र, ग्रामीण जीवन में व्याप्त ग्रामीण समस्याओं के निवारण हेतु अति महत्वपूर्ण विज्ञान है। कोई भी समस्या, समाजशास्त्रीय क्षेत्र में, सामाजिक अध्ययन बिना सुलझाई नहीं जा सकती है। प्रत्येक समस्या सुलझाने के लिये वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। समस्या विशेष के कार्य व कारण के ज्ञान के बिना उपयुक्त समाधान करना अत्यन्त ही दुष्कर कार्य है। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व अति आवश्यक रूप से बढ़ गया है और वर्तमान युग में तो यहां इसकी अत्यधिक आवश्यकता है।

इस प्रकार हमारे ग्रामीण ढांचे के विघटित रूप को पुनर्संगठित व आत्मनिर्भर बनाने के लिये समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन अत्यन्त ही आवश्यक है। वास्तव में देखा जाय तो ग्रामीण समाजशास्त्र ही इस गम्भीर स्थिति को सुधारने में साधक हो सकता है। श्री नेल्सन और टेलर[10] ने लिखा है कि भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य देशवासियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैनिक एवं साँस्कृतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन कर सुधार प्रस्तुत करना है। ग्रामीण समाजशास्त्र का कार्य अधिकांशतः व्यावहारिक खोजों में निहित है। यह शास्त्र ग्रामीण जनसंख्या और खेतों के सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा उचित सामाजिक तथ्यों का उद्घाटन करता है।

भारत के एक ग्राम प्रधान देश होने की दृष्टि से यहां के प्रत्येक नागरिक को इस शास्त्र का ज्ञान होना अनिवार्य है। भारतीय विश्वविद्यालयों में यह विज्ञान अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाना चाहिये ताकि आज के युवक गांवों के जीवन से अपरिचित न रहें। अधिकांशतः यह देखा जाता है कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा से उत्तीर्ण होकर कार्यकर्ता गांवों में जाते हैं तो वे सफल नहीं होते। विश्वविद्यालय से निकले युवक ग्रामीण जिन्दगी से घृणा करते हैं। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र का व्यावहारिक दृष्टिकोण भारत के लिये महत्वपूर्ण है। हमारी वर्तमान सरकार जबकि ग्राम विकास की ओर लगी हुई है तब तो इस प्रकार के ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिये निम्न विभागीय कर्मचारियों एवं अधिकारियों को ग्रामीण समाजशास्त्र का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

---

only become necessary but also urgent after the Independence." A. R. Desai : 'Rural Sociology in India'; p. 1.

10. Nelson and Tailor : Ibid.

(१) भारतीय योजना विभाग (Indian Planning department)

भारतीय योजना के कार्य में लगे हुए प्रत्येक अधिकारी को विशेषत: योजना आयोग के प्रत्येक सदस्य को ग्रामीण समाजशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है । ग्रामीण भारत के उत्थान हेतु जितनी पंचवर्षीय योजनायें बनाई जा रही हैं उनका अधिकांश भाग ग्रामों में ही कार्यान्वित होता है । यदि योजना विभाग के कार्यकर्ताओं को ग्रामीण जीवन व समस्याओं का पूर्ण व्यावहारिक परिचय नहीं होगा तो उनकी योजनायें कदापि सफल नहीं हो सकती । इसलिये योजना आयोग व योजना मन्त्रालय के लिए इस प्रकार के शास्त्र का अध्ययन आवश्यक कर देना चाहिये ताकि वे सही व क्रियात्मक कार्यक्रमों का निर्माण कर सकें ।

(२) सामुदायिक विकास कार्यक्रम
(Community development Programmes)

भारतीय सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का सीधा सम्बन्ध ग्रामों से है । ग्राम विकास की यह अत्यन्त प्रभावशाली क्रान्ति है । इस विभाग व मन्त्रालय के प्रत्येक सदस्य को ग्रामीण जीवन का निकट से परिचय होना आवश्यक है । यद्यपि सामुदायिक विकास ओरियेन्टेशन ट्रेनिंग (Orientation training in Community Development) के अन्तर्गत ग्रामीण समाजशास्त्र का विषय निर्धारित कर दिया गया है परन्तु इस दिशा में जितना प्रभावशाली कदम उठाया जाना चाहिये वह नहीं हो सका है । ग्रामीण जीवन की प्रमुख समस्याओं के वैज्ञानिक ज्ञान के बिना कोई भी प्रशिक्षा पूर्ण नहीं हो सकती । अत: पूर्ण सफलता के लिये इस दिशा में महत्वपूर्ण एवं ठोस कदम सरकार को उठाना चाहिये ।

(३) पंचायत विभाग (Panchayat Department)

भारत में प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत पंचायतों व पंचायत समितियों तथा जिला परिषदों का संगठन किया जा रहा है । इस कार्यक्रम का उद्देश्य भी ग्रामीण जीवन को पुनर्संगठित करना है । पंचायतों का कार्य ग्रामीण समस्याओं का निवारण करना निर्धारित किया गया है । इस दृष्टि से इस विभाग के कार्यकर्ताओं के लिये भी ग्रामीण समाजशास्त्र का ज्ञान बड़ा उपयोगी है । ग्रामीण क्षेत्रीय समाज व वहां की सामाजिक समस्याओं की विशिष्टता इसी शास्त्र के द्वारा जानी जा सकती है । इस दृष्टि से इस विभाग के लिये ग्रामीण समाजशास्त्र का अनिवार्य रूप से अध्ययन वांछनीय है ।

(४) ग्राम कल्याण विभाग (Rural Welfare Departments)

समाज कल्याण के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार नियोजन, महिला केन्द्र व शिशु शालाओं का कार्यक्रम रखा जाता है। इस प्रकार ग्राम कल्याणकारी योजना की सफलता भी प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं पर निर्भर है। ग्रामीण समाज के जाति, वर्ग, रीति-रिवाज, प्रथायें, भाषा, संस्कृति का परिचय होना इस क्षेत्र में भी बड़ा आवश्यक है। इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र समाज कल्याण व ग्राम कल्याण की योजनाओं में लगे हुए कार्यकर्ताओं के लिये बड़ा महत्वपूर्ण है।

(५) वन्यजातीय कल्याण विभाग (Tribal Welfare Department)

यद्यपि वन्य जातियों का पूर्ण अध्ययन मानवशास्त्र (Anthropology) के अन्तर्गत किया जाता है लेकिन भारतीय वन्य जातियों के ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने के फलस्वरूप इनका सामाजिक अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत भी आता है। मानवशास्त्र केवल इस प्रकार की जातियों का मानवशास्त्रीय अध्ययन करने में ही समर्थ होता है। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में इन वन्यजातियों का विस्तृत सामाजिक अध्ययन करने में समर्थ है। फलस्वरूप इस विभाग के कार्यकर्ताओं के लिये भी इसका ज्ञान उपयोगी है। ग्राम पुरातन संस्कृति व सभ्यता के श्रोत हैं, यहां हमें सामान्य रूप से वन्यजातीय संस्कृति (Primitive culture) के दर्शन होते हैं। इस आधार पर ग्रामीण समाज-शास्त्र अन्य ग्रामीण समस्याओं के उत्थान के कार्यक्रम प्रस्तुत करने के साथ साथ वन्यजातीय कल्याण का कार्यक्रम भी प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। अतः इस विभाग में भी इस शास्त्र का अध्ययन उपादेय है।

(६) भूदान, ग्रामदान तथा ग्रामराज्य
(Bhoodan, Gramdan and Gram Rajya)

भूदान व ग्रामदान आन्दोलनों का ध्येय ग्रामीण ढांचे का पुनर्निर्माण करना है। ग्रामीण जीवन की सभी सामान्य समस्याओं का दर्शन इस आन्दोलन के अन्तर्गत करना पड़ता है। इस आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ताओं को गांव गांव घूम कर भूमिदान, अर्थदान, सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, वस्त्रदान आदि चर्चा करनी होती है। यह ग्रामीण क्षेत्रों की एक समाजवादी क्रान्ति है। ब्रिटिश शासन से विघटित ग्रामीण ढांचे का पुनर्निर्माण करने का आदर्श इस क्रान्ति में निहित है। ग्रामीण समाजशास्त्र किसी भी सीमा तक अपने आपको इस कार्यक्रम से असम्बन्धित नहीं पाता है। प्रत्येक भूदानी कार्यकर्ता को ग्रामीण समाज का अध्ययन वांछनीय है। ग्रामीण जनता से निकट सम्पर्क स्थापित कर उनकी समस्याओं को हल

करने वाले कार्यकर्ता ग्रामीण समाजशास्त्र में उत्तम व रचनात्मक आदर्श प्राप्त कर सकते हैं ।

ग्रामीण पुनर्निर्माण की अन्य शाखायें
(Other agencies of Rural Reconstruction)

सहकारिता, शिक्षा, ग्राम स्वास्थ्य आदि सभी विभागों का उद्देश्य ग्रामीण पुनर्निर्माण से ओतप्रोत है । उन्हें ग्रामीण जीवन को उन्नत बनाने का आदर्श अपने सम्मुख रखना पड़ता है । इस दृष्टि से ग्रामीण समस्याओं का वैज्ञानिक दर्शन उनके लिये आवश्यक है । अतः ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन करना उनके लिये बड़ा महत्वपूर्ण है । इस सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने भी कहा है, "अत्यधिक भौतिक एवं सांस्कृतिक निर्धनता की दशाओं के मध्य ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली भारतीय जनता की समस्याओं एवं घटनाओं के प्रति विभिन्न राजकीय संस्थाओं, सांख्यिकी-शास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं ने अपना ध्यान विस्तृत रूप से केन्द्रित कर रक्खा है।"[11]

इस प्रकार हम इस विस्तृत विवेचन के उपरान्त इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र न केवल अमेरिका में ही सर्वोपरि स्थान रखता है बल्कि अन्य कृषिप्रधान देशों के लिये भी महत्वपूर्ण है । भारत जैसा देश जो लम्बी दासता के कारण ग्रामीण समस्याओं का केन्द्र बन गया है उसके लिये तो इस विज्ञान की ओर भी आवश्यकता है । सरकार इस ओर विशेष प्रयत्नशील है । ग्राम क्षेत्रों की उन्नति के लिये इस विज्ञान का विस्तृत प्रसार वांछनीय है ।

11" Statistician, economists, sociologists, social workers and Government agencies have hitherto, overwhelmingly focussed their attention on the study of the phenomena and problems of Indian humanity, lives in the rural areas amidt condition of immense material and cultural poverty." A. R. Desai : 'Rural Sociology in India'; p. 2.

प्रथम खण्ड

विषय प्रवेश
(Introduction)

उपविभाग द्वितीय

ग्रामीण स्वरूपशास्त्र
(Rural Morphology)

अध्याय ७

ग्राम : अर्थ, विकास और प्रारूप

(Village : Meaning, evolution and Types)

ग्रामीण समाजशास्त्र के विषय में प्राथमिक ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद अब हम ग्रामीण संरचना की विवेचना करेंगे। ग्रामीण समाजशास्त्र का केन्द्र ग्राम है। ग्राम रूपी अनुसन्धान शाला में ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त करना इस शास्त्र का उद्देश्य है। ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों के विषद् ज्ञान प्राप्त करने के लिये सर्व प्रथम इसके ढांचे का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। ग्रामीण ढांचे पर ही समस्त सम्बन्धों का जाल अवलम्बित है। ग्रामीण जीवन के भौतिक ढांचे में ग्राम सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ग्रामीण समाज व सामाजिक सम्बन्धों के नियन्त्रण व संचालन में ग्राम को ही सर्व प्रथम श्रेय प्राप्त होता है। 'ग्राम' नाम की व्यवस्था ने ही मानव जीवन के सामाजिक सम्बन्धों को स्थायी किया है। इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन में ग्राम का पूर्ण अध्ययन करना अत्यन्त अनिवार्य है। अतः सर्व प्रथम हम 'ग्राम' शब्द के अर्थ की विवेचना करेंगे।

ग्राम का अर्थ

(Meaning of Village)

ग्राम शब्द का प्रयोग आदिकाल से होता आया है। सामाजिक सम्बन्धों को स्थायित्व प्रदान करने वाले संगठन को सर्वप्रथम ग्राम के अर्थों में ही प्रयोग किया गया था। ऋग्वेद में परिवार का रूप सबसे आदिकालीन बताया गया है और इसके उपरान्त ग्रिहा (Girha) अर्थात गिरोह झुंड के अर्थों से ही 'ग्राम' शब्द का उदय निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार ग्रिहा के रूप ने गोत्र को उत्पन्न किया और गोत्र के अनुसार ग्राम रचना प्रारंभ हुई। इस प्रकार महाभारत में भी 'ग्राम' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस शास्त्र में समूह स्थापन (group Settlement) को यालो (yali) अर्थात एक सुरक्षित स्थान कहकर पुकारा है। इस संगठन का मुखिया ग्रामीण था जिस पर दो मील के क्षेत्र में रहने वाले समस्त परिवारों की सुरक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व था। उसका क्षेत्र ग्राम कहलाता था। इसी प्रकार मनुस्मृति में भी सामाजिक संगठन की इकाईयों को

पुर अर्थात ग्राम के अर्थों में प्रयोग किया है। यहां भी छोटी से छोटी इकाई को ग्राम व गांव के नाम से पुकारा है।

इस प्रकार प्रारम्भ से ही सामाजिक संगठन की प्रारम्भिक कल्पना को ग्राम के नाम से ही परिभाषित किया है। ग्राम अथवा गांव व पुर वे स्थान हैं जहां आदि मानव ने अपने अस्थाई जीवन को स्थाई रूप प्रदान करना प्रारम्भ किया था। अतः सामूहिक जीवन की गति को स्थिर करने की संज्ञा को ग्राम कहा जा सकता है। ग्रामीण सामाजिक ढांचे की महत्वपूर्ण इकाई को ग्राम कह कर पुकारा जा सकता है। स्पष्ट शब्दों में ग्राम उस स्थान को कहा जा सकता है, जहां सर्व प्रथम कृषि होना प्रारम्भ हुआ हो क्योंकि कृषि ने ही मानव को स्थायित्व प्रदान किया और इसी स्थायित्व के आधार पर हुई स्थापना (Settlements) को ग्राम अथवा गांव की संज्ञा दी गई है। भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्री श्री कर्वे ने इन स्थापनाओं (Settlements) को ग्रामीण ढाँचे के प्रमुख व (Gestalt of Rural Structure) संगठित रूप (Gestalt) ही बतलाया है। ग्रामीण रूपों में विभिन्नता होने के कारण ये ग्राम के रूप में भिन्नता प्रकट करते हैं। उन्होने लिखा है, "एक आकस्मिक अवलोकनकर्ता के लिये एक क्षेत्रीय निवास गांव कहलाते हैं जहां अधिकांश रूप से खेती हो और इन खेतों का वितरण हो गया हो और कई रूपों में विभिन्नता आ गई हो और अब भी वे गांव कहलाते हैं जो गावों में रहते हैं अथवा उनके पड़ौसी हों वे अपने उद्देश्यात्मक सीमा व विषयात्मक विचार रखते हैं।"[1] इस आधार पर इस प्रकार कहा जा सकता है कि ग्राम शब्द का प्रयोग कृषि के प्रारंभ से नहीं हुआ बल्कि कृषि में भूमि वितरण एवं अन्य विभिन्नताओं ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है। श्री कर्वे ने निवास व्यवस्था अथवा स्थापना में विभिन्नता के रूप को ग्राम बताया है। समाज का एक विशेष भाग जो अपने विशेष उद्देश्यों की सीमा में व विषयात्मक (Subjective) विचारों में रहता हो, ग्राम कहलाता है। इसी प्रकार इन स्थापनाओं को सिम्स (Sims) ने भी गांव कहकर पुकारा है। उन्होंने कहाहै, "गांव वह नाम है जो

---

1. "For a casual observer the habitation area are called a village has gross farming in most cases. These farms get distributed and becomes distinct in certain ways and still same thing called a 'village', remain with its objective boundaries and its subjective feelings for those who live in a village and also for those who are its neighbours". Irawati Karve : 'Daccan Bulletin', Vol. XVII.

प्राचीन कृषकों की स्थापना को साधारणतः दर्शाता है।"[2] इन्होंने पुरातन संस्कृति के सामाजिक संगठन को ग्राम बताया है। इनके अनुसार मानवोदय से ही संगठन का कोई न कोई रूप हमें अवश्य दिखाई देता है। लेकिन इन संगठनों को एक स्थाई ढांचे के रूप में लाने वाले ग्राम ही हैं। जिसका आधार सिम्स के अनुसार कृषि है। श्री देसाई ने ग्राम शब्द का प्रयोग समस्त ग्रामीण इकाई के रूप में किया है। उनके मतानुसार ग्रामीण समाज को संगठित करने वाले ग्राम हैं। ग्राम स्वयं ग्रामीण समाज के संगठन करने वाले हैं। उन्होंने लिखा है, "गांव ग्रामीण समाज की इकाई हैं, यह वह रंगमंच है जहां ग्रामीण जीवन का प्रमुख भाग स्वयं प्रगट होता है और कार्य करता है।"[3]

इस प्रकार से ग्रामीण विभिन्नता, कृषि स्थापना का केन्द्र एवं ग्रामीण जीवन की इकाई ग्राम ही है जो अपने सीमित जीवन में पूर्णरूपेण आत्म निर्भर है। उक्त तीनों ग्रामीण समाजशास्त्रियों ने भिन्न रूप से ग्राम के अर्थ का प्रयोग किया है। कृषि, विभिन्नता, व जीवन इकाई आदि को क्रमानुसार ग्राम का आधार बताया है। श्री देसाई ने अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिये इस बात पर भी जोर दिया है कि "ग्राम सामूहिक निवास व्यवस्था की प्रथम स्थापना है और कृषि अर्थ-व्यवस्था की उत्पत्ति है।"[4]

अतः यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि ग्राम शब्द के आधार सामूहिकता, कृषि और भिन्नता हैं। इन्हीं के आधार पर ग्राम का अस्तित्व सम्भव है। यदि सामूहिक जीवन की भावना नहीं होगी तो समूह नहीं हो सकता है। समूह के जीवन को निरन्तर रखने के लिए भरण पोषण की सर्व प्रथम जो आवश्यकता है, वह है कृषि। तदोपरान्त विकास हेतु विभिन्नता भी। इस तरह ग्राम के इन आवश्यक तत्वों का होना आवश्यक है।

---

2. "The village is the name commonly used to designate the settlements of ancient agriculturists." Sims: "The village community."

3. "The village is the unite of the rural society. It is the theatre wherein the quantum of rural life unfold itself and function". A. R. Desai : 'The Introduction of rural Sociology in India'.

4. "The village is the first settled of collective human habitation and the product of the growth of Agricultural Economy." A. R. Desai; Ibid p. 15.

श्री देसाई ने इस विभिन्नता को विकास के पक्ष में बताते हुए गाँव को ऐतिहासिक वर्ग का रूप बताया है। उन्होंने कहा है, "प्रत्येक सामाजिक घटना के समान ग्राम एक ऐतिहासिक वर्ग का रूप है।"[5] ग्राम एक परिवर्तनशील क्रिया में निरन्तर परिवर्तित हो जाता है। इसका भौतिक ढांचा समान नहीं रहता। आज गाँव का जो रूप हमें दिखाई देता है वह पुरातन काल में नहीं था। ग्राम संगठन में प्रक्रिया चलती रहती है। ग्राम स्थापना में कभी इकाइयां संगठित हो जाती हैं तो कभी ढाणों (Hamlets) में बिखर जाती है। घुमक्कड़ व शिकारी प्रवृत्ति के कारण ग्राम संरचना का अत्यन्त ही अस्थाई रूप हमें पुरातन काल में दृष्टिगोचर होता था। कृषि के उदय ने इसके भौतिक ढांचे को अल्पकालीन स्थायित्व में बदला। छोटे उद्योगों व जाति प्रथा ने ग्राम का ढांचा कुछ और ही कर दिया। इस प्रकार से सामाजिक ढांचे के परिवर्तन के साथ साथ ग्राम के भौतिक ढांचे में निरन्तर प्रक्रिया चलती रही है। घुमक्कड़ काल (Nomadic) में गावों का जो रूप हमें दृष्टिगोचर होता है वह 'हो' हल के आविष्कार ने बिल्कुल नष्ट कर दिया। ग्रामीण समाजशास्त्रियों का तो यहां तक मत है कि हम 'ग्राम' शब्द की कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि ग्रामीण ढांचे की परिवर्तनशील प्रवृत्ति के कारण इसका सही व स्थाई अर्थ नहीं निकाला जा सकता। गांव का बाह्य रूप हमें कुछ दृष्टिगोचर होता है और जब हम आन्तरिक रूप को देखते हैं तो कुछ और ही दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण ढांचे में परिवर्तन का कारण वहाँ की उद्देश्यात्मक व विषयात्मक विचार-धाराओं में भिन्नता है। इस कारण ग्रामीण जनता की सामाजिक स्थितियों(Social Conditions) में परिवर्तन आ जाता है। अतः ग्रामीण रूप की कोई निश्चित् कल्पना नहीं की जा सकती। इस कारण ग्राम का सही अर्थ निर्धारित करने में विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

'ग्राम' शब्द के सामान्य अर्थों के प्रति कठिनाई अनुभव करते हुए श्री कर्वे (Karve) ने लिखा है, "महायुद्ध के कुछ क्षेत्रों में कुछ क्षेत्रीय कार्यों में गाँव के प्रमुख रूपों के तत्वों को बाह्य रूप से अनुभव करना पड़ा। मेरे सम्मुख नकारात्मक प्रश्न उपस्थित हुए। जब मैंने कुछ गाँवों को देखा तथा उनमें से गुजरा तो मैंने स्वयं को यह प्रश्न करते पाया कि यह क्षेत्र गाँव क्यों कहलाता था?"[6] इसमें कोई सन्देह नहीं कि ग्राम की परिभाषा करना अत्यन्त

5. "Like every social phenomenon the village is historical category." A. R. Desai : Ibid; p. 14.
6. "In some recent field work in certain areas of Maharastra I felt forcibly the gestalt aspect of the entity

कठिन है। ग्राम की परिभाषा करते हुए डा० अर्गल ने लिखा है, "ग्राम एक सहवासी समुदाय है और एक सहवासी समुदाय वह क्षेत्रीय समुदाय है जिसके सदस्यों का जीवन एक दूसरे के साथ सम्बन्धित रहता है। इन क्षेत्रों में रहने वालों का कोई विशिष्ट लक्ष्य नहीं होता है, परन्तु ये जीवन के विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति साथ रह कर करते हैं और अपनी सहवासिता के कारण दूसरे समुदायों से भिन्न मालूम पड़ते हैं। इनकी संस्कृति, इनका सामाजिक संगठन, इनके आचार व्यवहार दूसरे क्षेत्रों से अलग ही दिखाई देते हैं। सामाजिक जीवन की मूल आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना इसका मुख्य कार्य होता है। इसके सदस्यों में निवास के कारण निकटता की भावना रहती है। इसके सदस्यों में सहवासी भावना अनिवार्य रूप से होती है।"[7] डा० अर्गल ने ग्राम की परिभाषा करते हुए ग्राम को और ग्रामीण समुदाय को लगभग मिला दिया है। ग्राम से ग्राम समुदाय एक भिन्न धारणा है। ग्राम समुदाय को समुदाय की धारणा के आधार पर कुछ सीमा तक समझा जा सकता है जबकि ग्राम का प्रमुख आधार भौगोलिक है। "ग्राम" की परिभाषा करते हुए श्री पाटिल ने लिखा है, "ग्रामीण क्षेत्र में सामान्य ग्राम्य स्थान पर समीपस्थ गृहों में निवास करने वाले परिवारों के समूह को सामान्यतः ग्राम की अभिव्यक्ति के रूप में समझा जा सकता है।"[8] इस परिभाषा में श्री पाटिल ने गाँव की परिभाषा कुछ सीमा तक उचित ही की है। पाटिल ने समीपस्थ गृहों एवं ग्राम्य स्थान का महत्व भी दिया है, किन्तु 'परिवारों के समूह' के स्थान पर जनसंख्या या समुदाय शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता था क्योंकि इस दृष्टि से देखा जाय तो सम्पूर्ण विश्व ही परिवारों का समूह है फिर समुदाय, जाति, वर्ग, जनसंख्या, जनता आदि

---

we call a village. The question presented itself to me in a negative way as I viewed certain villages and walked through them I found myself asking why the area was called a village." Irawati Karve: 'The Indian Village'; Reproduced from Daccan Bulletin Vol. XVIII (Taraporewala volume).

7. Dr. Rajeshwar Argal : 'Samaj Shastra'.
8. "The expression, 'Village', is commonly understood as a group of purities living in the rural area in adjoining houses on a common village site." R. K. Patil in his article, 'Why one village, one co-operative Society' published in 'Kurukshetra' (1960) published by publication Division Delhi, p. 10.

जानवरों की भांति था। इस घुमक्कड़ एवं अस्थायी जीवन में प्रथम सुरक्षा की भावना जागृत हुई और सामूहिक जीवन विकसित हुआ। अग्नि, पशु पालन, कृषि आदि के ज्ञान ने स्थायी जीवन को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप गांव की रचना हुई। हम यहां अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिये गांव की उत्पत्ति के प्रमुख कारकों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

गांव की उत्पत्ति के कारक

(Factors of Origin of Village)

भूगोलशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने गांव की उत्पत्ति के विभिन्न कारकों का उल्लेख किया है। गांव की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि में इन कारकों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये कारक निम्न हैं:—

(१) प्रादेशिक कारक (Regional Factors)

गांव की उत्पत्ति का आधार मानवीय आवश्यकताओं एवं ज्ञान की वृद्धि है। कृषि के ज्ञान ने तथा पशुपालन की प्रवृत्ति ने आदि मानव को प्राकृतिक अवस्थायें, जलवायु, ऊपज, भूमि की दशा, पानी के साधन, चरागाह आदि तथ्यों पर सोचने को बाध्य किया। जिस स्थान पर इन बातों की सुविधा प्राप्त हुई अथवा जब तक हुई, मानव अस्थायी, अर्द्धस्थायी एवं स्थायी रूप में बसने लगा।

(२) आर्थिक कारक (Economic Factors)

गांव की उत्पत्ति का दूसरा कारक आर्थिक व्यवस्था का विकास है। जिस स्थान पर अधिक उपज व कृषि के साधन उपलब्ध हुए, मानव उस स्थान की ओर आकर्षित हुआ। इसके अतिरिक्त सभ्यता के विकास ने उसको यह भी सोचने को बाध्य किया कि जीवन की अन्य आवश्यकतायें पूर्ण करने के लिये यातायात की सुगमता, आर्थिक संस्थाओं का निर्माण, आदान-प्रदान, कुटीर उद्योग आदि की सुविधाओं को प्राप्त करने के लिये गाँव की संरचना आवश्यक है।

(३) सामाजिक कारक (Social Factors)

गांव की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि में सामाजिक कारक भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सुरक्षा, शान्ति, और स्थिरता के तत्व इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। समाज के स्थायी स्वरूप से सुरक्षा एवं शान्ति प्राप्त होती है। इन भावनाओं ने ही ग्रामीण समुदाय को गांव संरचना के लिये बाध्य किया जिसमें भूमि विभाजन, भूमि सम्बन्ध आदि समस्यायें हल की जा सकती थी।

अतः यह स्पष्ट है कि कृषि, पशुपालन, सुरक्षा, सामूहिक जीवन तथा भोजन समस्या ही ग्राम की उत्पत्ति के प्रमुख कारक हैं। उक्त प्रमुख कारकों के अतिरिक्त भी ऐसे अनेक कारक हैं जिनके फलस्वरूप गांव की उत्पत्ति हुई है। इस दिशा में कुछ विद्वानों ने गांव की उत्पत्ति के कुछ सिद्धान्त भी पारित किये हैं। हम उनका भी यहां उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं।

गांव की उत्पत्ति के सिद्धान्त

(Theories of Village Origin)

यद्यपि गांव की उत्पत्ति के सिद्धान्तों के प्रति विद्वान एक मत नहीं हैं। सामान्यतः निम्न सिद्धान्त इस दिशा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं:—

(१) कृषि सिद्धान्त (Agricultural Theory)

इस सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि कृषि ने ही गांव की उत्पत्ति की है। यदि आदि मानव को कृषि ज्ञान नहीं होता तो गांव संरचना का कदापि उदय ही नहीं होता। इन लोगों का यह भी मत है कि समस्त गांवों की संरचना का आधार कृषि ही है।

(२) उद्विकासीय सिद्धान्त (Evolutionary Theory)

इस धारणा के मतावलम्बियों का विश्वास है कि मानबीय विकास की प्रक्रिया ने ही गांव को जन्म दिया। सभ्यता के विकास के कारण गांव की उत्पत्ति हुई। इस विकास के सिद्धान्त के अन्तर्गत ये विद्वान मानते हैं कि चरागाह कृषि अदि के द्वारा सभ्यता के विकास के साथ ग्रामों की उत्पत्ति हुई।

(३) ऐतिहासिक सिद्धान्त (Historical Theory)

इस विचार के समर्थक विद्वानों का विचार है कि गांव की उत्पत्ति नव-पाषाण काल में हुई थी। पाषाणकालीन सभ्यता के समय ही गुफाओं आदि के निवास के द्वारा, ये लोग इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

(४) चरागाह सिद्धान्त (Pastoral Theory)

चरागाह सिद्धान्त के समर्थकों का विचार है कि ग्राम की उत्पत्ति चरागाह अवस्था में, पशुपालन की मनोवृत्ति के कारण हुई। पशुपालन में चरागाह अत्यन्त आवश्यक थे। इसलिये जब तक पशुओं के लिये चारा उपलब्ध होता रहा तब तक अस्थायी रूप से व्यक्तियों को इन स्थानों पर निवास करना पड़ा। इस निवास की व्यवस्था के फलस्वरूप ही गांव की उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार हमने देखा कि विभिन्न विद्वान गांव की उत्पत्ति के भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं। भूगोल शास्त्रियों ने भी गांव की उत्पत्ति के विभिन्न आधार बतलाये हैं। लेकिन हम यह स्पष्टतया कह सकते हैं कि गांव की उत्पत्ति का प्रमुख आधार सभ्यता का विकास है। सभ्यता के विकास ने मनुष्य के ज्ञान को विकसित किया जिसके फलस्वरूप विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मनुष्य ने विभिन्न प्रयत्न प्रारम्भ किये और विभिन्न अनुभवों एवं प्रयत्नों के उपरान्त सन्तोष प्राप्त किया। यह प्रक्रिया कालान्तर में निरन्तर रही और वर्तमान गांव संरचना में कस्बों, नगरों और शहरों की संरचना हुई। अब हम ग्रामों के विकास की विवेचना करेंगे।

ग्राम का विकास

(Evolution of the Village)

ग्रामीण संगठन का ज्ञान प्राप्त करने के लिये 'ग्राम' का सर्वांगीण अध्ययन करना आवश्यक है। इसी हेतु हमने गत पृष्ठों में ग्राम के अर्थ को जानने का प्रयास किया। अब हमें ग्राम के विकास अर्थात् इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। ग्रामीण जीवन के भौतिक संगठन में ग्राम एक केन्द्रीय इकाई के रूप में कार्य करता है। इसकी प्रकृति बड़ी परिवर्तनशील है। इसी कारण ग्राम के अर्थ व परिभाषा में हमें विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

ग्राम के विकास के बारे में भी एक मत प्राप्त नहीं होता। कई लोग ग्राम का अभ्युदय मानव के उदय से बतलाते हैं। इसके विपरीत भूगोलशास्त्रियों का यह मत है कि कृषि के उदय के बाद ग्राम संगठन दृष्टिगोचर होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्राम के विकास के बारे में भी एक मत प्राप्त नहीं है। इसका कारण यह है कि ग्रामीण कारक इतने समीपवर्ती और अस्पष्ट हैं कि इनसे कोई स्थाई कल्पना निर्धारित नहीं की जा सकती। हमें ग्रामीण उदय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये कुछ परिवर्तनीय कारकों व उनकी विशेषताओं को जानना आवश्यक हो जाता है। जैसे हम पहले भी कह आये हैं कि ग्राम निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया में रहता है। ये परिवर्तन प्रौद्योगिक-आर्थिक (Techno-Economic), सामाजिक-आर्थिक (Socio-Economic) और सामाजिक-राजनैतिक (Socio-Political) आदि शक्तियों के कारण से होते रहते हैं। इस समस्या के निवारण हेतु भी विभिन्न विचारकों ने अपने मत प्रकट किये हैं। प्रो० देसाई ने कहा है, "पर्यावरणीय एवं क्षेत्रीय प्रयत्न प्रमुख

ग्राम प्रारूपों एवं ग्राम सामाजिक संरचना में विभेद करने में सहायता करेंगे। ये प्रमुख प्रादेशीय, जिले सम्बन्धी एवं क्षेत्रीय इकाईयों के वैज्ञानिक वर्गीकरण में भी सहायक होंगे। ये विशिष्ट सांस्कृतिक क्षेत्रों के निर्माण के आधारभूत तत्वों की स्थापना में भी सहायक होंगे और अन्त में ये सम्पूर्ण रूप में भारतीय समाज के व्यवस्थित वर्णन को विकसित करने में सहायक होंगे।"[10] इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रयास ग्राम विकास को निर्धारित करने के लिये किये और इसी कारण ग्राम के विकास के सम्बन्ध में विभिन्न विचार पारित हो चुके हैं। श्री देसाई ने लिखा है, "ग्राम का उदय इतिहास में कृषि अर्थ व्यवस्था के उदय के साथ सम्बद्ध है। ग्राम का उदय यह निर्देशित करता है कि मानव सामूहिक घुमक्कड़ जीवन से गुजर कर स्थायी जीवन में आया है। यह मूलरूप से उत्पादन के यन्त्रों के सुधार के परिणामस्वरूप हुआ। जिसने कृषि का निर्माण किया और इस भांति एक निश्चित सीमित क्षेत्र में स्थायी जीवन को सम्भव और आवश्यक बनाया।"[11] जो व्यक्ति कृषि उदय को ही ग्रामोदय का आधार मानते हैं उनका विश्वास है कि गांवों का उदय सभ्यता के उदय के साथ हुआ। उनका यह भी कथन है कि कृषि विकास से ही सभ्यता प्रारम्भ हुई। गांव सामूहिक स्थापना का प्रथम रूप है और ग्रामीण कृषि व्यवस्था को उत्पत्ति है। कृषि में उत्पत्ति बढ़ने के अतिरिक्त खाद्य सामग्री के बच जाने से व्यक्ति अन्य उद्योगों की ओर बढे और कस्बों व नगरों की स्थापना हुई।

---

10. "The environmental and regional approach will help to distinguish chief village types and village social structures. It will also assist in scientifically, classifying principle regional, district and provincial units. It will also aid in locating the underlying factors which have operated to create distinct culture-areas. And finally it will help to evolve a systematic account of the evolution of Indian Society as a whole." A. R. Desai : 'Rural Sociology in India'; p.19.
11. "The rise of the village is round up with the rise of agricultural economy in History. The emergence of the village signified that man had passed from the nomadic mode of collective life to the settled one. This was basically due to the improvement of tools of production which made agriculture and hence settled life on a fixed teritorial zone possible and necessary." A. R. Desai : Ibid; p.14.

अन्य लोग कृषि के अतिरिक्त गांवों का उदय मानवीय जीवन के उदय के साथ भी निर्धारित करते हैं परन्तु भूगोलशास्त्री कृषि के कारण पर ही अधिक बल देते हैं। वास्तव में जब मानव की सामूहिक व घुमक्कड़ प्रवृत्ति को यांत्रिक व स्थायी खेती का साधन प्राप्त हुआ उसी समय से निवास व्यवस्था ने भी स्थायी रूप धारण किया, फलतः गांवों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि शिकारी (Hunting) व घुमक्कड़ अर्थात् भोजन ढूंढने की अवस्था को 'हो' (Heo) के आविष्कार ने स्थाई रूप में परिवर्तित किया है। इस परिवर्तन के उपरांत पशुओं का पालन व ग्राम संगठन प्रारम्भ हुआ। ग्रामीण समाजशास्त्री श्री सिम्स ने भी लिखा है, "ग्राम प्राचीन कृषकों की स्थापना को प्रदर्शित करने के लिये सामान्यतः प्रयोग किया जाने वाला नाम है।"[12] भूगोल शास्त्रियों का यह मत है कि कृषि ने मानवीय जीवन में सुरक्षा तथा स्थायित्व प्रदान किया है। कृषि के उपरांत ही सभ्यता का विकास एवं ग्राम संरचना में वृद्धि हुई है।

ग्रामीण समाज के विकास के बारे में यहां प्रो० जे० बी० रोज (Prof. J. B. Rose) के विचार भी उल्लेखनीय हैं। उन्होंने लिखा है, "प्रथम अवस्था अग्रगामी काल था जो प्रारम्भिक स्थापनाओं के काल से पूर्व में लग गया। सन् १८०० ई० से सन् १८३५ ई० तक तथा बाद में मध्य पश्चिम के विभिन्न भागों में प्रसारित हुआ। दूसरी अवस्था जो भूमि जोतने का काल कहलाती है, ने अग्रगामी काल का उत्तराधिकार लिया और साधारणतः १८६० ई० तक रही। यह काल ग्रामीण समाज का विशिष्ट काल कहलाता है, क्योंकि इसी समय निवास स्थानों की सुव्यवस्था, स्कूल व धर्मस्थानों का आयोजन हुआ था। तीसरी अवस्था विनाश अथवा विध्वंश काल कहलाती है जो सन् १८६० ई० से मध्य पश्चिम से प्रारम्भ हुआ और सन् १६२० ई० तक समस्त देश में फैल गया। यह काल भूमि वरदान और विशेषीकरण के काल के नाम से परिभाषित किया जाता है।"[13] इस तरह से रोज के विचारानुसार कृषि के पूर्व भी समाज स्थापना की

---

12. "The village is the name commonly used to designate the settlement of ancient agriculturists." Sims; 'Elements of Rural Sociology.' p. 26.

13. "The first stage was the pioneer period dating from the earliest settlements to about 1800 in the east to 1835 and later in various section of the middle west. The second stage called the land farming period succeeded the pioneer era and generally run its course by 1890. This has been called the classical period of rural

प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी और कृषि का कार्य बाद में अर्थात् दूसरी अवस्था में प्रारम्भ हुआ था। डा० विलसन (Wilson), जिन्होंने कृषि के उदय के साथ ही गांवों का उदय निर्धारित किया, के मत का विरोध करते हुए श्री सिम्स ने लिखा है, "ग्रामीण समुदाय की उत्पत्ति हमें पीछे सभ्यता के प्रारम्भ की ओर स्वयं स्थायी स्थापनों की ओर ले जाती है।"[14] सभ्यता के उदय व स्थायित्व ने सामूहिक जीवन को कृषि के लिए बाध्य किया और तदोपरान्त ही उपज का संकलन प्रारम्भ हुआ। मानव अपनी क्षुधा तृप्ति हेतु ही इधर उधर घूमता था। क्षुधा तृप्ति ही उसका तथा उसके जीवन का सर्व प्रथम लक्ष्य था। स्थायी जीवन के साथ ही उसे इस दिशा की ओर प्रयास करना अनिवार्य था। कृषि एवं गांव का एक सम्मिलित रूप इसीलिए ही आज हमें दृष्टिगोचर होता है। इसी दृष्टि से प्राचीन गांव कृषि व कृषक के नाम से ही सम्बोधित किये जाते हैं।

सिम्स महोदय ने गांव के प्रारम्भिक ढांचे के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हुए बताया है कि प्रारम्भ में ग्राम रक्त सम्बन्धों के आधार पर समूह में संगठित होना प्रारम्भ हुए थे। इन रक्त सम्बन्धों के आधार पर ही संयुक्त परिवार का ढांचा निर्मित हुआ। दक्षिण भारत में आज भी इस रूप को जाद्रुगा (Zadruga) के नाम से पुकारते हैं। जहां एक परिवार में ७०–८० व्यक्ति होते हैं। इस सम्बन्ध में सिम्स ने लिखा है कि चरागाह अथवा झुण्ड व्यवस्था में ही गोत्रों ने पितृसत्तात्मक परिवारों में विकास किया। इसने रक्त सम्बन्धों को शिथिल किया और स्थायी स्थापना होते-होते समाप्त हो गये। इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गांवों की स्थापना के पहले रक्त सम्बन्धों का गठन बड़ा जटिल था। लेकिन ग्राम स्थापना ने कृषि व्यवसाय का उत्थान किया और ग्राम कृषि अर्थ-व्यवस्था पर आधारित हो गये। कृषि ने ही सर्वप्रथम मानव जाति को निरन्तर क्षुधा तृप्ति का आश्वासन दिया और इसी स्थायी व्यवस्था की प्रेरणा लेकर ग्रामीण संरचना का विकास सम्भव हो सका। इससे मानव तकनीकी, कला,

---

society, for well established homes, schools and Churches prevailed. The Third stage known as the "exploiter period" begain about 1890 in the middle west and spread over the country untill 1920. It was characterised by a land boon and specialisation." J. B. Ross; 'The Agrarion Revolution'; Sept. 1909.

41. "The origin of the village community takes us back to the beginning of the civilisation itself is to the beginning of permanent settlements." Sims : 'Elements of Rural Sociology'; p. 28.

विज्ञान और दर्शन की ओर आकर्षित हुआ और सभ्यता का विकास सम्भव हो सका।

इससे स्पष्ट है कि गांव की रचना का प्रारम्भ रक्त सम्बन्धों व गोत्रीय आधारों पर हुआ था। इसलिये ऋगवेद में इस प्रकार के संगठन को ग्रिहा नाम से सम्बोधित किया गया है। सम्भव है इसी शब्द का अपभ्रंश 'ग्राम'हो। महाभारत ने ग्रामा के संचालन हेतु 'ग्रामीनी' शब्द का प्रयोग किया है। इस तथ्य के साथ क्षुधा तृप्ति की शान्ति ने मानव को स्वतन्त्र कर स्वछन्द चिन्तन का अवसर प्रदान किया। अतिरिक्त उत्पादन ने कृषि अर्थ व्यवस्था एवं नागरीकरण का रूप भी प्रस्तुत किया। इङ्गलैएड के विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सेक्सन (Saxson) देहातों के उदाहरण में यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। इनके अनुसार सन् ५०० ई० से सन् १५०० ई० तक ग्रामीण जीवन में अर्थ व्यवस्था की स्थापना बतलाई जाती है। सेक्सन ग्राम इसीलिये प्रारम्भ में सोते, झरने व नदियों के किनारे बसे थे। कृषि ज्ञान ने भूमि को आर्थिक और साथ ही साथ आर्थिक-सामाजिक भावनाओं का केन्द्रस्थल बना दिया था। इस प्रकार के गांवों को प्रारम्भ में घाटी सभ्यता के नाम (Villages of Velley Civilization) से भी सम्बोधित किया गया है।

अतः गांवों के क्रमिक विकास के सम्बन्ध में विचार करते हुए हमें यह भी देखना आवश्यक है कि प्रारम्भ में ग्रामीण संरचना का क्या ढंग था? आज जो ग्रामीण रचना हमें दृष्टिगोचर हो रही है वह तो प्राचीन काल का परिवर्तित रूप है जो निरन्तर परिवर्तनशील प्रक्रिया से गुजरता आया है। इस परिवर्तन में भौगोलिक व भूगर्भीय कारक प्रमुख हैं इसके अतिरिक्त कृषि और उसमें यांत्रिकता का उपयोग भी उल्लेखनीय है। औद्योगिक क्रांति एवं सामाजिक उद्विकास के कारण प्राचीन रूप पूर्णरूपेण परिवर्तित हो गया है। प्रारम्भ में गांवों की रचना पानी के समीप, उपजाऊ एवं ढलाऊ तथा सुरक्षित स्थानों को चुनकर की गई। इस प्रकार से खेतों के समीप ही अस्थाई झोंपड़ियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ जो क्षुधा व सुरक्षा के विचारों से परिपूर्ण था। कहने का तात्पर्य यह है कि झोपड़ियां एक पंक्ति में बनाई गई जिससे प्रत्येक समय एक दूसरे का ध्यान रह सके और सामूहिक जीवन सम्भव हो सके। इस प्रकार की संरचना जंगली जानवरों, मानवीय आक्रमणों एवं प्राकृतिक विडम्बनाओं से बचने के लिए की गई थी। इस विषय में रूरल इण्डिया (Rural India) में लिखा है, "गाँवों का स्थापन, जैसा कि अब हम उन्हें पाते हैं, विभिन्न कारकों से प्रभावित था जो विशेष महत्वपूर्ण थे। सैंकड़ों वर्ष पूर्व जब घुमक्कड़ परिवारों ने निश्चय

किया कि हमें पैतृक बन्धन व निश्चित गोत्रीय बन्धनों से पृथक् होना है तो छोटे समूहों में ग्रामों में संगठित हो गये।[15]

ग्रामों के विकास के सम्बन्ध में उपरोक्त विभिन्न मतों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ग्राम का विकास किसी एक मत के आधार पर व्यक्त नहीं किया जा सकता। मानव प्रारम्भ में अपनी घुमक्कड़ अवस्था में था और वह विभिन्न स्थानों पर भोजन की खोज में घूमता था। सभ्यता का विकास हुआ और पशु पालन की अवस्था ने पशुओं के भोजन उपलब्ध होने तक उसे भूमि से अस्थायी रूप में बांधना प्रारम्भ किया। सभ्यता के विकास में कृषि युग आया और कृषि की प्रारम्भिक अवस्था ने उसे अपेक्षाकृत अधिक स्थायी रूप से भूमि से बांध दिया। इस अवस्था में मानव अपने परिवारों के बन्धन में था। एक एक परिवार की सदस्य संख्या १००—२०० तक होती थी और भूमि भी सामूहिक सम्पत्ति (Collective Wealth) के रूप में परिवार की या तत्कालीन समुदाय की होती थी जो कि विशेष रूप से एक विस्तृत परिवार या गोत्र समूह होता था। गाँव का जन्म उसी समय हो गया जबकि मनुष्य ने भूमि पर स्थायी निवास के दृष्टिकोण से झोपड़ों, गुफाओं या पेड़ों के साये में रहने की व्यवस्था की। ग्राम का यह रूप ही विकसित होकर वर्तमान ग्रामों के रूप में प्रकट हुआ है। जिसमें कृषि आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी प्रारम्भिक अवस्था में थी यद्यपि आधुनिक युग में कृषि व्यवस्था में अनेक परिवर्तन आ गये हैं और ग्रामों में अनेक उद्योगों का विकास भी हो गया है। ग्राम विकास की प्रक्रिया में ग्रामों के विभिन्न रूप भी विकसित हुए हैं। अब हम इन विभिन्न प्रकारों का वर्णन करेंगे।

ग्राम के प्ररूप
(Types of Village)

ग्राम का अर्थ, उत्पत्ति व विकास आदि का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद हमें ग्राम के प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने हेतु अपना ध्यान इसके प्रकारों एवं वर्गीकरण के आधारों एवं वर्गीकरण की आवश्यकता आदि बातों पर

15. "Location of the village as we find them now were influenced by various factors which were quite important. Hundreds of years back when wandering families decided to separate themselves from parent stock and settle clans are organised in small group in village." "Rural India" Monthly Magazine, Devoted to planning and community Project. Bombay.

आकर्षित करना चाहिये। तभी ग्रामीण ढांचे का ज्ञान, जिस पर ग्रामीण समाजशास्त्र की समस्त संरचना आधारित है, पूर्ण हो सकेगा।

ग्रामों के विभिन्न रूप हमें देखने को मिलते हैं इसका प्रमुख कारण भौगोलिक पर्यावरण की भिन्नता ही है परन्तु साथ ही साथ ग्रामों की भिन्नता के अन्य कारण भी हैं जैसे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि। इस आधार पर हमें आज संसार में विभिन्न प्रकार के ग्राम दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरणार्थ इङ्गलैण्ड के सेक्सन ग्राम (Saxon Villages of England), जर्मनी के मार्क (Mark of German), रूस के मिर (Mir of Russia) और भारत के आत्मनिर्भर ग्राम (Self Sufficient Grama of India)। इसी प्रकार राष्ट्रीय ग्राम, सहयोगिक ग्राम, वर्तमान व प्राचीन ग्राम आदि नाम दृष्टिगोचर होते हैं। पर्यावरण की ग्रामीण भिन्नता के आधार पर यू. एस. ए. के ग्राम, पश्चिमी यूरोप के ग्रामों से काफी भिन्नता रखते हैं। इसी प्रकार वर्तमान एशिया के ग्रामों व रूस के ग्रामों में, जो सामूहिक कृषि व्यवस्था पर आधारित हैं, काफी अन्तर है। ग्राम को विकास की विभिन्न अवस्थाओं में से गुजरना पड़ा है। अब हम विभिन्न आधारों पर ग्राम के प्रमुख प्रकारों का वर्णन करेंगे।

(क) स्थायित्व के आधार पर ग्रामों का वर्गीकरण—

स्थायित्व के आधार पर ग्रामों को निम्न रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है :—

(१) स्थान परिवर्तनीय ग्राम (Migratory agricultural Villages)—ये ग्राम कृषि के साथ साथ परिवर्तित हो जाते हैं। इन ग्रामों की अवधि अल्पकालीन होती है। इस प्रकार के ग्राम बिलकुल अस्थायी होते है। इनको स्थानान्तरित गांव (Transferable Villages) भी कहा जा सकता है।

(२) अर्घ-स्थायी कृषि ग्राम (Semi-permanent agricultural Villages)—इस प्रकार के ग्राम भूमि की उर्वरा शक्ति पर आधारित होते हैं। जब तक भूमि के समीप पानी व सिंचाई के साधनों का प्रादुर्भाव रहता है तब तक ये ग्राम भी अपना अस्तित्व रखते हैं। कृषि व क्षुधा पूर्ति के साधनों का अभाव होने से ये गांव समाप्त हो जाते हैं।

(३) स्थायी कृषि ग्राम (Permanent agricultural Village) इस प्रकार के गांवों में जनसंख्या का निवास पीढ़ी दर पीढ़ी व शताब्दी दर शताब्दी तक चलता है। बिना अप्राकृतिक परिवर्तन के ये गांव अपने स्थान पर स्थायी रहते हैं।

(ख) स्थापना के आधार पर ग्रामों का वर्गीकरण—

स्थापना का आधार भी महत्वपूर्ण आधार है। गांव के आकार व ढांचे सम्बन्धी संगठनों के द्वारा ग्राम के प्रकार निर्धारित किये जा सकते है। इस आधार को क्षेत्रीय (Area) आधार भी कहते हैं कि गांव की झोंपड़ियां किस क्षेत्र में स्थापित हैं। इस आधार पर गांव के निम्न दो प्रकार निश्चित किये जाते हैं:—

(१) समूह ग्राम (Grouped nucleated Village)—इस प्रकार के ग्राम में जन संख्या का क्षेत्रफल (Area) बड़ा थोड़ा होता है। इस ग्राम में ग्रामीण एक सुरक्षित ऊँचे स्थान पर रहते हैं। ये लोग गांव से बाहर विस्तृत रूप के क्षेत्र में अपने खेत बनाते हैं। कृषक दिन को खेतों में जाते हैं तथा कार्य करने के बाद अपने अपने सामान सहित ग्राम में आ जाते हैं। फसल के समय इस प्रकार के गांवों की सामूहिक रूप से खेतों में झोंपड़ियां बना ली जाती हैं। इस प्रकार के गाँवों का जीवन सहयोगी व परस्पर अत्यधिक सम्बन्वित होता है। कभी कभी इस प्रकार ग्रामीण जनता की भाषा, वेषभूषा, आदतें आदि में अत्यधिक समानता होती है।

(२) बिखरे हुए ग्राम (Scattered Village)—इस प्रकार के गांवों में कृषक अपने खेतों में रहते हैं, जो विस्तृत रूप से फैले हुए होते हैं। इस प्रकार के ग्रामों को राजस्थान में गढ़िया या गड़ी (Hamlets) कहते हैं। सामूहिकता एवं सहयोगी जैसी कोई चीज इस प्रकार के गांवों में नहीं पाई जाती है। उनका सामाजिक जीवन संगठित व भिन्न होता है।

(ग) सामाजिक अन्तर, स्तरण व भूमि स्वामित्व के आधार पर ग्रामों का वर्गीकरण—

प्रो॰ देसाई द्वारा प्रस्तुत ग्राम के प्रकारों का यह तीसरा आधार है। इस आधार के अनुसार जाति व वर्ण व्यवस्था के आधार पर ग्रामीण ढांचा निर्धारित किया जा सकता है। इससे भूमि स्वामित्व तथा जनसंख्या के स्थायित्व आदि पर ग्रामों के प्रकार निर्धारित किये जाते हैं। इस आधार पर गांव ७ प्रकार के होते हैं जो निम्न हैं:—

(१) कृषकों का सामूहिक स्वामित्व ग्राम (Peasants joint ownership Village).

(२) कृषकों के सामूहिक किरायेदारी ग्राम (Peasants joint tenants Village).

(३) कृषकों के व्यक्तिगत स्वामित्व ग्राम (Peasants Individual ownership Village).

(४) कृषकों की व्यक्तिगत किरायेदारी ग्राम (Peasants Individual tenants Villages).

(५) व्यक्तिगत कृषक मजदूरों के ग्राम (Private peasants employees Village).

(६) एक बड़े भू-स्वामी के कर्मचारियों वाले ग्राम (Landlord Servants Village).

(७) राज्य व चर्च कृषक मजदूरों के ग्राम (State and church peasants employees Village).

(घ) संरचनात्मक आधार पर ग्रामों का वर्गीकरण—

समाजशास्त्री श्री कर्वे (Karve) ने भी ग्रामों के प्रकार का आधार व्यक्त किया है। इन्होंने ग्राम ढांचे पर बड़ा बल दिया है। ग्राम के ढांचे का ज्ञान क्लिष्ट व अस्पष्ट है। ग्रामीण ढांचे में निरन्तर प्रक्रिया होने से इसके ढांचे के आन्तरिक व बाह्य रूप में बड़ा अन्तर दिखाई देता है। इस दृष्टि से ढांचे के आधार पर ग्राम के प्रकारों का बड़ा महत्व है। ग्रामीण संरचना (Rural Structure) के आधार पर प्रमुखतः ग्रामों के तीन प्रकार निर्धारित किये जा सकते हैं जो निम्न हैं:—

(१) अत्यन्त संकीर्ण ग्राम (Tightly Nucleated Village)—इस प्रकार के ग्रामों में एक संकीर्ण क्षेत्रफल (Area) में व्यक्ति बस जाते हैं और चारों और विस्तृत रूप से कृषि होती है। प्रो० देसाई के अनुसार समूह ग्राम (Grouped Village) का यह सीमित रूप है। इस प्रकार के ग्राम दक्षिण भारत के ऊँचे पठारों में पाये जाते हैं।

(२) पंक्तिनुमा ग्राम (Strung Village)—इस प्रकार के ग्राम भारत में पश्चिमी किनारे पर कोनकान (Konkan) के समीप पाये जाते हैं। ये ग्राम लम्बाई में पंक्तियों में बसे होते हैं। इस प्रकार के ग्राम सड़क पर पंक्तिनुमा सड़क के किनारे बसाये जाते हैं। इन ग्रामों की सीमा नारियल के पेड़ व फलदार वृक्षों से बंटी हुई होती है। इस प्रकार के ग्रामों में फलों के अलावा चावल की खेती भी झोंपड़ियों से दूर की जाती है। इस प्रकार के गांवों में कृषि व रहने की व्यवस्था में न निकट सम्पर्क है, न विशेष अन्तर।

(३) गढ़ी ग्राम (Hamlets Village)—इस प्रकार के ग्राम प्रायः भारत में सब जगह पाये जाते हैं। विशेषतः राजस्थान व उत्तर पश्चिम की सतपुड़ा पर्वत श्रेणियों में इस प्रकार के गांव बसे हैं। इस प्रकार के गांव अपने अपने खेतों में दो व तीन झोंपड़ियों में बसे होते हैं। इन ग्रामों में पारिवारिक सम्बन्ध ही सामाजिक सम्बन्ध माने जाते हैं। एक ही पीढ़ी के लोग इस प्रकार के ग्रामों का निर्माण कर लेते हैं। इस प्रकार के ग्रामों की सीमा जल के सोते व पर्वत श्रेणियाँ होती हैं।

(च) भूमि व्यवस्था के आधार पर ग्रामों का वर्गीकरण—

बेड़न पावेल (Baden Powell) द्वारा पारित ग्रामों के प्रकार भी इस स्थान पर उल्लेखनीय हैं। इन्होंने भूमि व्यवस्था (Land Tenure) के आधार पर ग्राम के दो प्रकार बताये हैं। प्रो० बेडन पावेल ने भूमि स्वामित्व से ही सम्बन्धित भूमि व्यवस्था के आधार पर ग्राम के प्रकार निर्धारित किये हैं। इनके मतानुसार वे ग्राम जहां सामूहिक सहयोग भी न हो अत्यधिक बाह्य नियन्त्रण भी न हो, उन गांवों का वर्गीकरण इसके अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार के ग्रामों को Manorial Village तथा Overlordship Village भी कहते हैं। प्रमुखतः ग्राम के निम्न दो प्रकार हैं :—

(१) रैयतवारी ग्राम (Severalty Village)—इस प्रकार के ग्रामों में एक मुखिया होता है जो व्यक्तिगत आधार पर कृषि का संचालन देखता रहता है। इस प्रकार के ग्रामों में सामूहिकता का बिलकुल अभाव रहता है। इसका मुखिया वंशानुक्रमण से निर्धारित होता जाता है। ये बंगाल, बिहार के अतिरिक्त केन्द्रीय भारत में तथा पश्चिम व दक्षिण भारत में पाते जाये हैं। इस प्रकार के गांवों का सारा विधान प्राकृतिक होता है।

(२) सामूहिक ग्राम (Joint Village)—इस प्रकार के गांवों में कोई मुखिया नहीं होता। कृषि व्यवस्था सहयोगी व सामूहिक होती है। उत्पत्ति, विनिमय व वितरण तीनों में सामूहिक साझेदारी होती है। ग्राम में बेकार भूमि व चरागाह सर्व साधारण के माने जाते हैं।

(छ) जनसंख्या के आधार पर ग्रामों का वर्गीकरण—

जनसंख्या के आधार पर भी ग्रामों का वर्गीकरण किया गया है। यह वर्गीकरण निम्न है:—

(१) छोटे ग्राम जिनकी जनसंख्या ५०० से कम है।

(२) मध्यम आकार के ग्राम जिनकी जनसंख्या ५०० से २००० तक है।

(३) बड़े ग्राम जिनकी जनसंख्या २००० से ५००० तक है।
(४) बहुत बड़े ग्राम जिनकी जनसंख्या ५००० से ऊपर है।

ये चार प्रकार के ग्राम जनसंख्या के आधार पर वर्गीकृत किये गये हैं। ग्रामीण जनसंख्या का लगभग २६.५ प्रतिशत, ४८.८ प्रतिशत, १९.४ प्रतिशत तथा ५.३ प्रतिशत भाग उपरोक्त प्रकार के ग्रामों में क्रमशः पाया जाता है।

इस प्रकार गांवों के विभिन्न रूप हमने देखे। इस आधार पर हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्रमुखतः भूमि स्वामित्व, ढांचे, कृषि, भूमि व्यवस्था के आधार पर ग्रामों का वर्गीकरण किया जा सकता है। ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र का एक आवश्यक अंग ग्राम होने के कारण इसके व्यवस्थित वर्गीकरण का ज्ञान आवश्यक है। भारत जैसे विस्तृत देश में, जहां पर्यावरणीय, भौगोलिक, ढांचे तथा कृषि सम्बन्धी विशेष भिन्नता पाई जाती है, वर्गीकरण का ज्ञान अति आवश्यक है। इस सम्बन्ध में प्रो० देसाई ने लिखा है, "भारतीय ग्रामीण इकाईयों का उक्त आधार पर व्यवस्थित वर्गीकरण के अध्ययन का इतिहास भारत के समुदायों के सम्बन्ध में बहुमूल्य सूचना देगा।"[16] अतः ग्राम के सर्वांगीण अध्ययन में ग्राम के प्रकार का ज्ञान बड़ा महत्वपूर्ण है।

---

16. "A Systematic classification of Indian village aggregates on the basis of the above criteria and a study of their history will provide valuable information about the village communities in India." A. R. Desai : "Rural Sociology in India." p. 17.

अध्याय ८

ग्रामीण जनता एवं जनसंख्या
(Rural People and Population)

ग्रामीण समाजशास्त्र के विद्यार्थी को ग्रामीण जीवन के अध्ययन में सभी ग्रामीण विशेषताओं का अध्ययन करना पड़ता है। ग्रामीण समाज में ग्रामीण जनता एक केन्द्रीय अनुभूति है। यहाँ के समस्त सामाजिक सम्बन्धों का प्रमुख आधार ग्रामीण जन है। इस दृष्टि से ग्रामीण जन व ग्रामीण जनसंख्या का ज्ञान परमावश्यक है। साधारण जनता से ग्रामीण जनता काफी भिन्न दृष्टि-गोचर होती है। ग्रामीण समाजशास्त्र ही इस जनसंख्या की विशेषताओं का पता लगाने में समर्थ होता है। ग्रामीण जनता के अध्ययन के महत्व व आवश्यकताओं के बारे में समाजशास्त्रियों ने सदा से प्रकाश डाला है। इस सम्बन्ध में श्री स्मिथ ने लिखा है, "क्योंकि ग्रामीण समाज व ग्रामीण जीवन का कोई भी विशिष्ट ज्ञान विस्तृत रूप से ग्रामीण जनता की स्वयं की विशेषताओं के पूर्ण ज्ञान पर अवलम्बित है।"[1] आगे उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया है कि ग्रामीण जनता के सम्पूर्ण अध्ययन के बिना ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन ही अधूरा माना जाता है। ग्रामीण जनता साधारण जनता से विभिन्न बातों में भिन्न होने के कारण इनका अध्ययन अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन करता है। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र में ग्रामीण जनता का अध्ययन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

वर्तमान युग में ग्रामीण समाज व ग्रामीण जनता के अध्ययन पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है। ग्रामीण जनता में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, संस्थात्मक व आदर्शवादी समस्याओं के निवारण हेतु भी यह अध्ययन आवश्यक है। ग्रामीण जनता के विकास के लिये भी इसके अस्पष्ट रूप का गहन अध्ययन लाभप्रद है। इस सम्बन्ध में श्री देसाई ने कहा है, "उपस्थित प्रबन्ध इस उद्देश्य से भारतीय संघ की जनसंख्या का विभिन्न कोणीय

---

1. "Because any through going understanding of rural society and rural life is largely dependent upon a rather full knowledge of the characteristics of the Rural people themselves." T. Lynn Smith : 'The Sociology of Rural Life'; p. 41.

सूक्ष्म विश्लेषण के प्रयास प्रस्तुत करता है जिससे कि विस्तृत भारतीय समाज का विरोध करने वाली विभिन्न सामाजिक धाराओं एवं प्रतिधाराओं के आधार पर पृष्ठभूमि उपयुक्त एवं स्पष्ट रूप से प्रस्तुत की जा सके।"[2] इस दृष्टिकोण से ग्रामीण जनता का अध्ययन वांछनीय है। ग्रामीण जनता के महत्व के बारे में इस बात के अतिरिक्त भी श्री स्मिथ ने लिखा है, "ग्रामीण जनसंख्या राष्ट्र व राष्ट्रीय कल्याण के लिये विभिन्न रूपों में आधारभूत महत्व की है।"[3] इस पक्ष में सबसे पहला कारण तो यही प्रस्तुत किया जाता है कि समस्त जनसंख्या का अधिकांश भाग ग्रामीण जनता से ही निर्मित हो जाता है। यह बात अमेरिका जैसे औद्योगिक देश में भी समान रूप से सत्य है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय जनशक्ति व कल्याण का श्रोत भी ग्रामीण जनसंख्या ही है जहाँ नगरों का विकास व स्वरूप निर्धारित होता है।

ग्रामीण जनता का अध्ययन किस पद्धति व विधि के आधार पर किया जाय इस प्रश्न पर विभिन्न विद्वानों ने विशिष्ट रूपरेखायें निर्धारित की हैं। जनसंख्या एवं जनता के अध्ययन की विधि के सम्बन्ध में श्री देसाई ने कहा है, "इस उद्देश्य के लिये विभिन्न प्रयास प्रसिद्ध विचारकों द्वारा सुझाये गये हैं। राजकीय जनगणना विभाग द्वारा ग्रहण किये वर्गीकरण को प्रायः विभिन्न देशों में सामान्यतः विशेष सुविधाजनक माना गया है। यद्यपि यह एक देश से दूसरे देश में भिन्न हो सकता है।"[4] अतः जनसंख्या के अध्ययन की विधियां देश

---

2. "The present essay represents an attempt to make a brief analysis of the population of the Indian union from various angles with a view to provide a back-ground on the basis of which the numerous social currents and cross currents that are agitating the extent Indian Society may be adequately compre-hended." A. R. Desai : 'Rural Sociology in India'; p. 116.

3. "The rural population is of fundamental importance to the nation and national welfare in a number of ways." T. Lynn Smith Ibid. p. 66.

4. "Various approaches have been suggested for that purpose by eminent thinkers. Classification adopted by government census department in various countries is however, generally accepted as the most convenient, though it may vary from one country to another." A. R. Desai : Ibid. p. 21.

व काल के अनुसार निश्चित की जा सकती हैं। हम ग्रामीण जनता का अध्ययन निम्न रूपरेखाओं में करने का प्रयत्न करेंगे। हम सर्व प्रथम ग्रामीण जनता की परिभाषा करेंगे।

ग्रामीण जनता की परिभाषा

(Definition of Rural people)

यद्यपि ग्रामीण जनता के स्पष्ट अर्थ के बारे में आज कोई भी समाज-शास्त्री एकमत नहीं है, बल्कि ग्रामीण जनता की विशिष्टताओं के आधार पर ही ग्रामीण घटना (Rural Phenomena) का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह मत तो सर्वसम्मत है कि ग्रामीण जनता एक विशिष्ट जनता है जो सर्वसाधारण से विभिन्न बातों में असमानता रखती है। श्री स्मिथ ने लिखा है, "यह स्वतन्त्रतापूर्वक कहा जाता है कि ग्रामीण समाज पूर्ण सन्तुष्ट है, इसमें गतिशीलता का अभाव है, यह निरन्तर परम्परागत धाराओं को मानता है।"[5] इस प्रकार ग्रामीण जन परम्परागत रीतिरिवाजों के माननेवाले व अगतिशील सामाजिक ढांचे में रहने वाला समूह है। इस प्रकार की जनता में किसी प्रकार का सम्मिश्रण नहीं होता। ग्रामीण जनता स्थानीय तथ्यों से ही निर्मित होती है। ग्रामीण जनता को कृषक जनता कहकर भी पुकारा जा सकता है। विशेषरूप से चीन व भारत की जनता व जनसंख्या तो पूर्ण रूप से ग्रामीण है। भारतीय ग्रामीण जनता के विषय में श्री देसाई ने कहा है कि भारत विशेषरूप से ग्रामीण जनता का देश है। ३५.७ करोड़ जनता में से २६.५ करोड़ अर्थात् ८२.७ प्रतिशत ज़नता ५,५८,०८१ गांवों में रहती है।

ग्रामीण जनता का अर्थ करते समय इसके साथ कृषि का सम्बन्ध, विशेष रूप से जोड़ा जाता है क्योंकि ग्रामीण जनता की यह विशेषता है कि वह सामान्य रूप से यही कार्य करती है। ग्रामीण जन व कृषि जन में भेद करना बड़ा दुष्कर है। इस क्षेत्र में उपयुक्त साहित्य का अभाव है। इस प्रकार से ग्रामीण जनता की वैज्ञानिक परिभाषा करना कठिन है फिर भी ग्रामीण जनता की परिभाषा करते हुए हम कह सकते हैं कि ग्रामीण पर्यावरण में रहने तथा कृषि अथवा कृषि से सम्बन्धित अथवा अन्य कुटीर उद्योगों में व्यस्त

---

5. "It is frequently asserted that rural society is complacent, that it takes dynamics, that is constant to follow along traditional grooves." T. Lynn. Smith : 'Sociology of Rural Life'; p. 41.

परम्परात्मक जीवन व्यतीत करने से सामाजिक गतिशीलता की कमी वाले व्यक्तियों का समूह ही ग्रामीण जनता है।

ग्रामीण जनता की उत्पत्ति

(Origin of Rural people)

प्रत्येक देश में ग्रामीण जनता का उदय आदिकालीन है। सभ्यता के प्रथम चरण में मानव का रूप ग्रामीण ही था और सर्व प्रथम वह ग्रामीण जन ही कहलाया। इसी प्रकार विभिन्न प्रजातियों व वन्यजातियों के सामाजिक व सांस्कृतिक सम्मिश्रण से ग्रामीण जनता ने रूप ग्रहण किया। जिस प्रकार अमेरिका में ग्रामीण जनता के विकास में ब्रिटिश आईल्स (British Isles) क्वेकर्स आफ पेनशेलवेनिया (Quakers of Pennsylvahia) और केवेलियर ऑफ वरजिनिया (Cavaliers of Virginia) आदि का सम्मिश्रण है। इसी प्रकार भारतीय ग्रामीण जनता की उत्पत्ति भी पूर्व पाषाणीय (Peolithic) एवं उत्तर पाषाणीय (Neolithic) कालों के समूहों से हुई है। ये समूह द्रविड़ भाषा बोलते थे जिनका विकास हूण, शक, सीथियन (Scythians), बैक्ट्रीयन्स (Bactrians), ग्रीक, मुस्लिम व इसाइयों आदि के सम्मिश्रण से वर्तमान रूप में विकसित हुआ। इस प्रकार से ग्रामीण जनता की उत्पत्ति में विभिन्न कारकों का समावेश है। सांस्कृतिक विशेषताओं का निर्माण सांस्कृतिक सम्बन्धों एवं सामाजिक अन्त:क्रियाओं से हुआ। जनता के निर्माण में देशान्तर-गमन व देशागमन, युद्ध, रोग एवं अन्य विभिन्न संकट एवं कारक महत्वपूर्ण योग देते हैं।

ग्रामीण जनता की रचना

(Composition of Rural People)

ग्रामीण जनता की रचना से हमारा तात्पर्य है कि ग्रामीण जनता एक विशिष्ट प्रकार की होती है और साधारण जनता से भिन्न है। अत: ग्रामीण जनता की रचना में विभिन्न कारक महत्वपूर्ण हैं। किसी देश के आदिम निवासी ही ग्रामीण जनता का निर्माण करते हैं। कभी कभी अन्य देशों के व्यक्ति भी किसी देश या टापू का अन्वेषण करते समय उस देश या टापू की ग्रामीण जनता का निर्माण करते हैं। नीचे हम ग्रामीण जनता की रचना में सहायता प्रदान करने वाले प्रमुख कारकों का वर्णन करेंगे।

(१) प्रजातीय कारक (Racial Factors)

ग्रामीण जनता की रचना में प्रजातीय तत्व सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। स्वयं भारत में ही तो निग्रिटो, प्रोटो-आस्ट्रेलायड, आर्यन, द्रविडियन आदि विभिन्न प्रजातियों के व्यक्ति पाये जाते हैं। इसी भांति संसार के सभी देशों में विभिन्न प्रजातियों के सम्मिश्रण से ही ग्रामीण जनता का निर्माण हुआ है। काकसायड, मंगोलायड, नीग्रोयायड प्रजातियाँ प्रमुख प्रजातियां हैं और इनकी विभिन्न शाखायें हैं। इन सभी प्रजातियों, उपप्रजातियों आदि के सम्मिश्रण से ही ग्रामीण जनता की रचना हुई है।

(२) सामाजिक कारक (Social Factors)

ग्रामीण जनता के निर्माण में केवल प्रजातीय कारण ही महत्वपूर्ण नहीं हैं वरन् सामाजिक कारक भी महत्वपूर्ण हैं। वर्ग व्यवस्था, जाति व्यवस्था, श्रेष्ठता एवं निम्नता के विचार भी ग्रामीण जनता के निर्माण में प्रभाव डालते एवं सहायता करते हैं। भारतवर्ष में जाति, वर्ग, ऊँच-नीच की भावना के अतिरिक्त छुआछूत आदि के तत्वों ने भी ग्रामीण जनता के निर्माण में सहायता दी है।

(३) सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors)

ग्रामीण जनता के निर्माण में विभिन्न सांस्कृतिक कारक भी सहायना प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिये धर्म, सांस्कृतिक जीवन, अन्य संस्कृतियों का प्रभाव आदि तत्व ऐसे हैं जो ग्रामीण जनता के विशिष्ट स्वरूप के निर्धारण में सहायता प्रदान करते हैं। इस संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप भी ग्रामीण जनता का एक विशिष्ट रूप विकसित हो जाता है।

(४) व्यावसायिक कारक (Occupational Factors)

व्यवसाय के आधार पर ग्रामीण जनता में स्वामी, श्रमिक, कृषक, उद्योगी आदि व्यक्तियों का निर्माण होता है। एक व्यक्ति यदि कृषि का कार्य करता है तो कृषक; वह वेतन लेता है तो श्रमिक और यदि उसके पास स्वयं के पास ही खेत है और लोगों से कार्य लेता है तो स्वामी होता है। अतः ग्रामीण जनता के निर्माण के व्यावसायिक तत्व भी महत्वपूर्ण हैं।

(५) पर्यावरण सम्बन्धी कारक (Environmental Factors)

ग्रामीण जनता का अर्थ ही ग्राम पर्यावरण में निवास करने वाली जनता है। अतः पर्यावरण भी इसके निर्माण में महत्वपूर्ण है। ग्रामीण जनता नागरिक जनता से अनुकूलन नहीं कर पाती। यदि एक ग्रामीण को नागरिक पर्यावरण में रहना

पड़े तो वह उससे अनुकूलन नहीं कर पायेगा क्योंकि ये दोनों पर्यावरण एक दूसरे से पूर्ण भिन्न हैं। प्रकृति पर आधारित होने से ग्रामीण जनता का एक विशिष्ट स्वरूप हो जाता है। ग्रामों में आत्मनिर्भरता, एकान्तता आदि तत्व भी ग्रामीण जनता की रचना में महत्वपूर्ण होते हैं। ग्रामीण जनता की रचना में प्रमुख कारक पर्यावरण सम्बन्धी कारक ही हैं। ग्रामीण व्यक्ति की अनुकूलन क्षमता बहुत ही कम होती है। फिर प्राकृतिक पर्यावरण में रहने के कारण उसका जीवन भी अकृत्रिम होता है। अतः उसमें एक विशिष्टता विकसित हो जाती है।

ग्रामीण जनता के निर्माण में उपरोक्त प्रमुख कारक सहायता प्रदान करते हैं जिससे ग्रामीण जनता का रूप नागरिक जनता से भिन्न हो जाता है। अब हम ग्रामीण जनसंख्या का वर्णन करेंगे।

ग्रामीण जनसंख्या की रचना
(Composition of Rural Population)

ग्रामीण जनता के साथ ही साथ ग्रामीण जनसंख्या का अध्ययन भी ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र में उल्लेखनीय स्थान रखता है। संसार के समस्त सामाजिक चक्र का केन्द्र स्थल ग्रामीण जनसंख्या ही है। ग्रामीण जनसंख्या के महत्व पर प्रकाश डालते हुए स्मिथ ने लिखा है, "ग्रामीण जनसंख्या द्वारा संस्थायें और विशेषतः ग्रामीण परिवार, ग्रामीण पाठशाला, ग्रामीण धर्म संस्थान, सुरक्षित रखे जाते हैं क्योंकि वहां राष्ट्र की भविष्य में आने वाली जनसंख्या का प्रशिक्षण होता है।"[6]

राष्ट्रीय जनशक्ति, राष्ट्र-भक्ति व संस्कृति के श्रोत ग्राम व ग्रामीण जनसंख्या है। समस्त आर्थिक ढांचे का आधार स्तम्भ भी ग्रामीण जनसंख्या ही है। समस्त विश्व का भरण पोषण भी इसी के हाथों में है। इन दृष्टिकोणों से समाजशास्त्रीय क्षेत्र में ग्रामीण जनसंख्या के अध्ययन का महत्व बढ़ता जा रहा है। अतः हम यहां पर ग्रामीण जनसंख्या, उसका घनत्व, मानसिक व शारीरिक रूप, मृत्यु व जन्म दर आदि का अध्ययन करने का प्रयास करेंगे। श्री स्मिथ ने इस अध्ययन के विकास के बारे में कहा है, "ग्रामीण जनसंख्या का अध्ययन सम्पूर्ण समाज-

6. "Because the Institutions maintained by rural population and specially the rural family, the rural school, and the rural church, are those in which the oncoming population of the nation are nourished and trained." T. Lynn. Smith : 'Sociology of Rural Life'; p. 67.

शास्त्र के क्षेत्र में से एक अत्यधिक विकसित अंग है। इस कारण से यह विस्तृत उपचार के योग्य है।"[7]

भारत में १९५१ की जनगणना के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या ८२·७ प्रतिशत तथा कुल जनसंख्या २९.५ करोड़ है। इसे निम्न तालिका स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करेगी।

भारतीय ग्रामीण जनसंख्या १९२१ : १९५१[8]

वर्ष	कुल जनसंख्या (लाखों में)	संपूर्ण जनसंख्या का प्रतिशत	जनसंख्या में वृद्धि दर का प्रतिशत्
१९२१	२१९९	८८·७ प्रतिशत	....
१९३१	२४२०	८७·९ प्रतिशत	१०·१ प्रतिशत
१९४१	२७१०	८६·१ प्रतिशत	१२·० प्रतिशत
१९५१	२९५०	८२·७ प्रतिशत	८·९ प्रतिशत

ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात (Ratio of Rural population)

ग्रामीण जनसंख्या के अध्ययन में सबसे महत्वपूर्ण अंग, जो हमें ज्ञात करना है, वह है नागरिक ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात। अधिकांशतः जनसंख्या का अनुपात आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक कारकों से प्रभावित होता है। जैसे ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात हम कृषि व्यवसाय के अनुपात से शीघ्र लगा लेते हैं। अनुपात सामाजिक संरचना, समाजसुधार के क्षेत्र, कृषि उत्थान एवं औद्योगिक प्रगति में बड़ा सहायक है। उदाहरणार्थ भारत में औद्योगिक एवं कृषि योजनाओं की सफलता के लिये हमें इस व्यवसाय विशेष में संलग्न व्यक्तियों एवं जनसंख्या का अनुपात बड़ा सहायक होगा। इस प्रकार से ग्रामीण जनसंख्या के अनुपात से हम समस्याओं विशेष का सही व मूल कारण पता लगाकर सुधार की योजनायें पारित करने में सफल हो सकते हैं। भारत में ७२.२ प्रतिशत किसान व १०.५ प्रतिशत कारीगर हैं हमें यहां कृषि पर अधिक महत्व देना चाहिये। इसी प्रकार भाषा, धर्म, लिंग आदि आधारों पर प्राप्त अनुपात भी

7. "The study of rural population is one of the most advanced phases of the entire field of sociology. For this reason it deserves detailed treatment." T. Lynn Smith : Ibid pp. 40–46.
8. Abstract from 'India'; a reference publication, Govt. of India, New Delhi.

सामाजिक क्षेत्रों में लाभप्रद है। व्यवसाय के आधार पर ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात निम्न प्रकार है :—

व्यवसाय	प्रतिशत
१. कृषक भूस्वामी	२२.२ प्रतिशत
२. कृषक किरायेदार	२७.२ प्रतिशत
३. कृषक मजदूर	३०.४ प्रतिशत
४. अन्य कारीगर	२०.२ प्रतिशत
योग	१०० प्रतिशत

ग्रामीण क्षेत्रों में व्यावसायिक जनसंख्या के अनुपात का विवरण देने के उपरान्त हम ग्रामीण एवं नागरिक जनसंख्या का तुलनात्मक अनुपात देना अनुचित नहीं समझेंगे। यह अनुपात निम्न तालिका से पूर्ण स्पष्ट हो जावेगा।

ग्रामीण तथा नागरिक जनसंख्या का अनुपात[9]

वर्ष	प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या	प्रतिशत नागरिक जनसंख्या	गत दस वर्षों में ग्रामीण जनसंख्या में ह्रास
१८७२	९१.३	८.७	....
१८८१	९०.७	९.३	—०.६
१८९१	९०.६	९.४	—०.१
१९०१	९०.०	१०.०	—०.६
१९११	९०.६	९.४	+०.६
१९२१	८८.७	११.३	—१.९
१९३१	८७.९	१२.१	—०.८
१९४१	८६.१	१३.९	—१.८
१९५१	८२.७	१७.३	—३.४

उपरोक्त तालिका में नागरिक जनसंख्या के अनुपात में ग्रामीण जनसंख्या का क्रमिक ह्रास हो रहा है, और इसका कारण नागरीकरण की प्रक्रिया ही है।

9. Figures from the year 1872 to 1911 are quoted from Kingsley Davis : 'Population of India and Pakistan' and from 1921 onwards from 'India', 1957.

ग्रामीण जनसंख्या का घनत्व
(Density of the Rural population)

समाजशास्त्रीय विश्लेषण में जनसंख्या का घनत्व भी एक प्रमुख समस्या है। यदि किसी एक स्थान पर औसत अनुपात से अधिक जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाता है तो विभिन्न सामाजिक समस्याओं का उद्रेक सम्भव है। घनत्व उत्पादन एवं वितरण के कारकों को तो प्रभावित करता ही है साथ ही विभिन्न सामाजिक प्रतिक्रियाओं से समस्त सामाजिक ढांचों को भी प्रभावित करता है। इसी तरह आगे जनसंख्या का घनत्व जीवन स्तर को भी प्रभावित करता है। आधुनिक युग में ग्रामों में जनसंख्या का घनत्व कम होता जा रहा है और नगरों में बढ़ता जा रहा है।

समाजशास्त्री देश काल की परिस्थिति के अनुसार औसत घनत्व (Average Density) निर्धारित करते हैं। यदि निश्चित औसत से जनसंख्या बढ़ती है तो अनुचित माना जाता है। अत: ग्रामीण समाजशास्त्री के लिये ग्रामीण जनसंख्या का घनत्व पता लगाना आवश्यक है तभी वह ग्रामीण समस्याओं को हल करने में सफल हो सकता है। भारतवर्ष जैसे देश के लिये जो अत्यधिक विस्तृत होने के साथ साथ भाषा, धर्म, विचार, वेशभूषा, खानपान आदि बातों में बड़ी असमानता रखता है, जनसंख्या के घनत्व का ज्ञान आवश्यक है। तभी यहां के अस्पष्ट ग्रामीण संगठन का स्पष्ट चित्र उपस्थित हो सकता है। ग्रामीण जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारक हैं। इन कारकों में प्रादेशिक (Regional) कारक सबसे अधिक बलवान है। इस दृष्टि से हम यहां भारत के प्रादेशिक जनसंख्यात्मक घनत्व को निम्न सारिणी में देखने का प्रयास करेंगे:—

प्रदेश	जनसंख्या का घनत्व
उत्तरी भारत	८६.३
पूर्वी भारत	६०.०
दक्षिणी भारत	८८.०
पश्चिमी भारत	६५.०
केन्द्रीय भारत	८०.०
उत्तरी-पश्चिमी भारत	८०.०

ग्रामीण मृत्यु एवं जन्म दर (Rural death and birth Rate)

ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक मृत्यु एवं जन्म दर भी है। मृत्यु एवं जन्म दर में हत्यायें, आत्म हत्यायें, रोग एवं अन्य तात्कालिक दुर्घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। इसके अतिरिक्त जन्म दर के प्रभावक तत्व आदि का उल्लेख समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं।

इस प्रकार के अध्ययन का तुलनात्मक ज्ञान अन्य सामाजिक-आर्थिक कारकों के अध्ययन में बड़ा लाभप्रद होता है। इस प्रकार के ज्ञान से ग्रामीण जनसंख्या के गुणात्मक एवं संख्यात्मक वृद्धि अथवा ह्रास का स्पष्ट परिचय मिलता है। इससे विशिष्ट सामाजिक वर्गों के मूल्यों, आदर्शों एवं अन्य सामाजिक नियन्त्रणों आदि का स्पष्ट आधार प्राप्त हो जाता है। आर्थिक विकास में भी जन्म दरों के आंकड़े पूर्ण रूप से स्थायी सामग्री प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिये यदि भारत की ग्रामीण जनसंख्या के जन्म व मृत्यु दरों का विश्लेषण करेंगे तो हमें मालूम होगा कि यहां शीघ्र ही परिवार नियोजन (Family plauning) की आवश्यकता पड़ेगी। ग्रामीण क्षेत्र में भी जन्म दर अधिक है और अब तक ७१२ परिवार नियोजन केन्द्र विभिन्न ग्रामों में खोले जा चुके हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में २००० केन्द्र खोलने का आयोजन था। इस दृष्टि से जन्म व मृत्यु दरों के अध्ययन का न केवल समाज-शास्त्रों में ही महत्व है बल्कि अन्य आर्थिक विकास में भी बड़ा हितकारी है।

प्राकृतिक एवं सामाजिक प्रवरण (Natural and Social Selection)

ग्रामीण जनसंख्या को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण तथ्य प्रवरण भी है। रोग, भूकम्प, अकाल, अनावृष्टि, और अतिवृष्टि के फलस्वरूप जनसंख्या में कमी होती है तो प्राकृतिक प्रवरण और जब युद्धों आदि के द्वारा जनसंख्या में कमी होती है तो सामाजिक प्रवरण कहलाता है। सामाजिक एवं प्राकृतिक प्रवरण दोनों ही ग्रामीण जनसंख्या के आकार को प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक विपदायें जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, अकाल, रोग आदि ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक पाई जाती है और सामाजिक प्रवरण में संतति निरोध का उपाय तो नहीं पाया जाता, वरन् केवल युद्ध के समय ग्रामीण क्षेत्रों की अधिकांश जनता युद्ध में भाग लेती है। अतः सामाजिक प्रवरण में युद्ध का रूप ही ग्रामीण जनसंख्या को प्रभावित करता है।

लिंग एवं आयु समूह (Sex amd age group)

मृत्यु व जन्म दरों के उपरान्त यदि आवश्यक समस्या है तो वह है जीवित

व्यक्तियों के लिंग एवं आयु ज्ञान की। आज के युग में प्रत्येक प्रगतिशील माता-पिता शिशु के जन्म होते ही उसके लिंग का ध्यान करते हैं। इसका प्रमुख कारण सामाजिक जीवन में लिंग का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक क्षेत्र में जितने परित्याग, आत्महत्यायें आदि दृष्टिगोचर होते हैं उनकी पृष्ठभूमि के प्रमुख कारणों में से एक लिंग है। स्मिथ ने कहा है, "एक दी हुई जनसंख्या का लिंग अनुपात भी उनके निर्माण में एक महत्वपूर्ण विशेषता है"।[10] इसी सामाजिक संरचना में जनसंख्या के आयु अनुपात का भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यदि नागरिक एवं ग्रामीण भिन्नता एवं विशेषताओं का प्रतिपादन करें तो हमें आयु वर्ग के महत्व का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि इनकी सामाजिक विशिष्टताओं का यह एक महत्वपूर्ण आधार है। इस सम्बन्ध में श्री देसाई का कथन उल्लेखनीय है, "आयु वर्गों का विश्लेषण हमें व्यक्तियों के अनुपात का सही ज्ञान देता है जो कि उर्वर आयु में हैं और जो समाज द्वारा प्रमाणित होने को हैं। इसी भांति लिंग रचना का विश्लेषण भी अत्यन्त आवश्यक है। जबसे कि यह समाज-शास्त्रियों द्वारा साधारणतः स्वीकृत कर लिया गया है।"[11]

जनसंख्या की गतिशीलता (Mobility of population)

जनता की गतिशीलता अथवा जनसंख्या का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना भी सामाजिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पुरातन काल में यह गतिशीलता समूह के रूप में थी जो सामाजिक ढांचे को बिलकुल भी प्रभावित नहीं करती थी। लेकिन आज के युग में व्यक्तिगत गतिशीलता एवं निवास स्थानान्तरण आदि शामाजिक बन्धनों को विशेष प्रभावित करते हैं। जनसंख्या की गतिशीलता का विषय एक अत्यन्त विषद् विषय है। ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रायः चार प्रकार की गतिशीलता का अध्ययन जरूरी है। प्रथमः ग्रामीण नागरिक जनसंख्यात्मक आदान-प्रदान; द्वितीयः राज्यों का परस्पर जनसंख्यात्मक

---

10. "The proportion of the sexes in a given population is also a very Important Characteristic in its make up." T. Lynn Smith. p. 80. Ibid.

11. "The Analysis of age group gives us a correct understanding of the proportion of the people who are of productive age and those who are to be substained by the society. Similarly the analysis of the sex composition is also essential, since it is generally recognised by sociologists." A. R. Desai :'Rural Sociology in India'; p. 22.

आदान-प्रदान; तृतीयः खेतों से खेतों की गतिशीलता और चतुर्थः कृषि मजदूरों की गतिशील प्रवृत्ति।

ग्रामीण क्षेत्रों की ओर से नागरिक क्षेत्रों में जनसंख्या का जाना, जो नागरीकरण (Urbanisation) कहलाता है, सामाजिक रहस्यों से पूर्ण है। यह ग्रामीण जीवन के समस्त सामाजिक ढांचे को तथा सामाजिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है। वर्तमान युग में नागरीकरण की प्रक्रिया विशेषतः उल्लेखनीय है। अमेरिका में सं० १९२२ ई० से १९२९ ई० तक २ करोड़ व्यक्ति वार्षिक नगरों में स्थानान्तरित हुए थे। भारत में भी, यद्यपि यह कृषि प्रधान देश है तथापि नागरीकरण अत्यधिक बढ़ा हुआ है इससे भारतीय शहरों में जनसंख्या का घनत्व अधिक बढ़ गया है जिससे बेकारी, भुखमरी फैली हुई है।

हम जनसंख्या के घनत्व के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर आये हैं कि औसत क्षमता से अधिक यदि एक स्थान पर जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाता है तो विभिन्न सामाजिक विपदाओं का उद्रेक हो जाता है। इस दृष्टि से ग्रामीण जनसंख्या के अध्ययन में हमें ग्रामीण गतिशील का ज्ञान करना भी आवश्यक है।

ग्रामीण जनसंख्या की भौतिक विशेषता
(Physical Characteristics of Rural population)

ग्रामीण जनसंख्या के भौतिक आधारों पर ही प्रजातीय समूह आधारित होते हैं। यह प्रजातीय आधार ही सामाजिक स्तरणों व रंग भेदों को उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त भौतिक अथवा शारीरिक ढांचे का सम्बन्ध सामाजिक स्तर व अन्य मानसिक शक्तियों को प्रभावित करने के कारण भी महत्वपूर्ण है। लोम्ब्रोसो (Lombrosso) ने शारीरिक आधारों पर अपराध प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया था। इस दृष्टि से ग्रामीण जनसंख्या के भौतिक रूप का ज्ञान ग्रामीण समाजशास्त्र के लिये आवश्यक है। इस सम्बन्ध में श्री देसाई ने लिखा है, "ग्रामीण जनता में मृत्यु एवं जन्म दरों के अतिरिक्त ग्रामीण व्यक्तियों की जीवन शक्ति को निर्धारित करने वाले अन्य साधन भी हैं जैसे उनके सामान्य स्वास्थ्य का अध्ययन।[12] इसी प्रकार से ग्रामीण जनसंख्या की शक्ति एवं क्षमता का बड़ा

12. "Apart from a study of the death and survival rates prevailing among the rural people there are also another means to determine their vitality such as study of their general health." A. R. Desai : 'Rural Sociology in India', p. 22.

स्पष्ट चित्र प्रस्तुत हो जाता है। ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्ग, बूढ़े, बच्चे, पुरुष स्त्रियां, किसान, मजदूर, मालिक के जीवन काल का पृथक् अध्ययन सम्भव हो जाता है। इस आधार पर सुधार हेतु महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। उदाहरण के लिये यदि हम भारत की ग्रामीण जनता की शारीरिक कुशलता का माप दण्ड देखें तो नगरों की तुलना में प्रायः क्षीण, रोगी व कमजोर पायेंगे। इस आधार पर उनका मानसिक स्तर भी बड़ा निम्न कोटि का होगा। इस दृष्टि से शारीरिक मूल्यांकन जनसंख्या के विषद ज्ञान के लिये अति अनिवार्य विषय है।

इसी प्रकार से शारीरिक ढांचे (Physical Structure) के आधार पर ग्रामीण समाज के सामाजिक वर्गों का निर्माण होता है। सोरोकिन ने विभिन्न अनुसन्धानों के उपरान्त इस तथ्य का पता लगाया था। इनकी सिर की आकृति, बालों का रंग व बनावट, मुखाकृति, चर्म रंग आदि भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय महत्व रखते हैं।

अतः स्वास्थ्य व रोगों का प्रकोप आदि कृषि जीवन में अति आवश्यक विषय हैं, इस दृष्टि से प्रगतिशील देश में रोग व स्वास्थ्य सम्बन्धी गणना की जाती है जिससे जनसंख्या को विभिन्न हानियों से बचाया जा सके। ग्रामीण जनसंख्या को प्रभावित करने वाले अनेक सामाजिक दोष भी हैं जैसे वंशानुगत कुबड़ापन, जन्म से पैर खराब होना (Club-footedness), हाथ की ऊंगलियों का खराब होना, क्षय (T.B.), आतशक, सुजाक आदि कुप्रसंगज रोग। इन्हें दूर करने के लिये प्रजनन सम्बन्धी आयोजन करना चाहिये तभी जनसंख्या के ये दोष दूर हो सकते हैं। सुप्रजनशास्त्रीय कार्यक्रम (Engenic Programmes) अपनाने से ये दोष दूर किये जा सकते हैं। ग्रामीण जनसंख्या का स्वास्थ्य भी अत्यन्त निम्न होता है क्योंकि इन्हें पूर्ण पोषण नही मिल पाता। अतः भोजन एवं पोषण का ध्यान रखना आवश्यक है।

जनसंख्या की मनोवैज्ञानिक विशेषता एवं मानसिक स्वास्थ्य
(Mental Health and Psychological characteristics of Population)

जनता की शारीरिक एवं भौतिक ढांचे से ही सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक विशेषतायें एवं मानसिक स्वास्थ्य है। यद्यपि इस दिशा में सही आकड़ों का प्राप्त होना असम्भव है। फिर भी इस दिशा के प्रयत्न समाजशास्त्रीय दृष्टि से बड़े उल्लेखनीय हैं। मनोवैज्ञानिाक विशेषताओं एवं मानसिक स्वास्थ्य से

बुद्धि (Intelligence) का विकास सम्बन्धित है। यदि इन दोनों बातों का किसी विशिष्ट जनसंख्या में अभाव है तो प्राकृतिक रूप से उन लोगों की बुद्धि भी क्षीण होगी। बुद्धिमता के बारे में सारोकिन एवं जिम्मरमेन ने लिखा हैं, "बुद्धिमता उन मानसिक कारकों का सम्मिश्रण है जिनके प्रयोग की आशा व्यक्ति से कुछ आदर्शों अथवा उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये अथवा नवीन परिस्थितियों में अनुकूल न करने की योग्यता प्राप्त करने के लिये की जाती है।"[13]

ग्रामीण समाजशास्त्री श्री मेकमेहन (Mcmahan) ने बुद्धिमता, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य तथा लिंग व आयु वर्गों के आधार पर अनुसन्धान किया। इस अनुसन्धान में उन्होंने नागरिक ग्रामीण जनता में निम्न भिन्नता पाई। ग्रामीण जनता की तुलना में नागरिक जनता पूर्ण व्यवस्थित संवेग, समर्पण प्रवृत्ति, साहसी, अच्छे व्यक्तित्व, कुशाग्र बुद्धि, पूर्ण सहयोगी, सैद्धान्तिक विचार, आत्म प्रदर्शन आदि में उच्च व उद्योग में निम्न, विनम्र, संगीत क्षमता के पाये गये। इस प्रकार से शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व मानसिक शक्तियों का ज्ञान बड़ा लाभप्रद है।

भारत में ग्रामीण जनसंख्यात्मक समस्यायें
(Rural population Problems in India)

भारत में लगभग ५,५८,०८८ ग्राम हैं जिनमें ५०० और इससे कम आबादी के ३,८०,०१९ ग्राम हैं, और ५०० से १००० के बीच की आबादी के १,०४,२६८ ग्राम हैं अर्थात् ग्रामों में जनसंख्या की अधिकता का प्रश्न उनकी निवास व्यवस्था के दृष्टिकोण से उठता ही नही। अति जनसंख्या की समस्या तो समस्त भारत के आधार पर है। ग्रामीण क्षेत्रों में भारत की अधिकांश जनता निवास करती है अतः खाद्यान्न की दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्र भी अति जनसंख्या की समस्या से पीड़ित है।

अति जनसंख्या के कारण से भारत के ग्रामीण व्यक्तियों को न पर्याप्त

---

13. "Intelligence is that combination of mental factors which the Individual is supposed to use in achieving some aim, or goal or ability to adjust itself adequately to a new situation." P.A. Serokin and C. Zimmerman : 'Principles of Rural Urban Sociology'; New York; 1929 p. 235.

भोजन उपलब्ध है और न जीवन के सामान्य रहन सहन का स्तर ही। ग्रामीण जनता निर्धन है। वह ग्रामीण जनता निर्धन है जो अन्य लोगों के लिये अन्न उत्पन्न करती है। बेकारी की समस्या केवल शहरों में ही नहीं वरन् ग्रामों में भी पूर्ण रूप से उपलब्ध है। अनेकों ग्रामीण व्यक्ति अधिकांश समय बेकार रहते हैं। वे वर्ष में लगभग ४ माह तो बेकार रहते ही हैं। रोजगार की दृष्टि से ग्रामीण व्यक्ति शहरों की ओर जाते हैं वहां भी उन्हें पूरा कार्य नहीं मिल पाता और हर वर्ष २० लाख की संख्या की वृद्धि होने से बेकारी बढ़ जाती है। अति जनसंख्या से भारत के ग्रामों में छोटे छोटे खेतों की व्यवस्था है। प्रत्येक व्यक्ति के पास खेत तो है लेकिन बहुत ही छोटा। परिणामतः कृषि के लिये आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रयोग असम्भव है और कृषि की उन्नति के प्रयत्न व्यर्थ रहते हैं। उत्पादन बढ़ने के स्थान पर कम और हो जाता है। फलतः देशकी निर्धनता में वृद्धि होती है। पर्याप्त भोजन न मिलने से, जीवन का रहन सहन निम्न होने से, निर्धनता तथा बेकारी से ग्रामीण जनता का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रह पाता। स्वास्थ्य ठीक न होने से कार्यकुशलता नहीं रह पाती। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी जनसंख्या के आधिक्य से अनेक दुष्प्रभावों का प्रचार हुआ है और इन दुष्परिणामों को रोकने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न पुनर्निर्माण के प्रयत्न किये जा रहे हैं जिनका विस्तार में वर्णन हम उस खंड में करेंगे।

जनसंख्या सम्बन्धी समस्यायें प्रमुख रूप से भारत में निम्न पाई जाती हैं। इन समस्याओं के निवारण से जनसंख्या सीमित की जा सकती है और सीमित जनसंख्या के परिणामस्वरूप अन्य समस्याएं स्वयं ही समाप्त हो जायेंगी।

१. उच्च जन्म दर (High Birth Rate)

भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षा जन्म दर बहुत अधिक है। सन् १९५३ में इंगलैण्ड में एक वर्ष में प्रति १००० व्यक्ति के पीछे १५.९ बच्चे, इटली में १७.२, अमेरिका में २४.७, जापान में २१.५, चीन में ३७ तथा भारत में ४० बच्चे जन्म लेते थे। इससे प्रतीत होता है कि भारत में जन्म दर बहुत ही उच्च है। हम इसके लिये उर्वराशक्ति (Fertility) को देखें तो यह और भी स्पष्ट हो जायेगा। प्रायः जनसंख्या की उर्वराशक्ति ज्ञात करने के लिये निम्न नियम का प्रयोग होता है —

$$\frac{\text{जन्म संख्या}}{\text{जनसंख्या}} \times १००० = \text{उर्वराशक्ति (Fertility)}$$

उर्वराशक्ति पर जलवायु, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक स्तर आदि अनेक

तत्व प्रभाव डालते हैं। अमेरिका में सन् १९२९ ई० में उर्वरा शक्ति को ज्ञात करने के लिये ४६ राज्यों की जन्म दरों का पता लगाया तो १९ प्रतिशत अन्तर प्रकट हुआ। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि ग्रामीण क्षेत्र जन संख्या की उत्पत्ति करने वाले हैं और नागरिक क्षेत्र उनका उपयोग करनेवाले हैं। भारत में भी उर्वरा शक्ति अधिक है। जिसके स्वाभाविक परिणामस्वरूप भारतीय ग्रामों का जीवन स्तर अत्यन्त निम्न है। भारतवर्ष में इस उच्च जन्म दर के अनेक कारण हैं। इनमें से प्रमुख कारण निम्न हैं:—

(क) अधिक विवाह (More Marriages)

भारतवर्ष में विवाह एक धार्मिक एवं सामाजिक आवश्यकता है। अतः अधिकांश व्यक्ति विवाहित हैं। १९५१ की जनगणना के अनुसार कुल जन संख्या का केवल ४४.१ प्रतिशत भाग ही अविवाहित है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में तो विवाह का आधिक्य है। अक्षय तृतीया के अवसर पर भारत के ग्रामों में अत्यधिक संख्या में विवाह होते हैं। ४४.१ प्रतिशत भाग में ३७.१३ प्रतिशत की आयु १४ वर्ष तक है अर्थात् लगभग ७ प्रतिशत व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी आयु १४ वर्ष से अधिक है और जो विवाहित हैं।

(ख) बाल-विवाह (Child Marriages)

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बाल-विवाहों की संख्या अत्यधिक बढ़ी हुई हैं। विवाह के प्रतिशत से यह स्पष्ट हो ही गया होगा कि लगभग २०.३ प्रतिशत पुरुष तथा ६.४ प्रतिशत स्त्रियां १५ वर्ष की आयु के बाद अविवाहित थे। इससे ज्ञात होता है कि जनसंख्या का कितना भाग १५ वर्ष की आयु में या इससे पूर्व ही विवहित हो चुका था।

(ग) प्रति माता अधिक बच्चे (Improvident maternity)

भारतवर्ष में छोटी आयु में ही स्त्रियों का विवाह हो जाने के परिणाम-स्वरूप स्त्रियों के बच्चे पैदा करने की क्षमता अधिक समय तक रहती है। बाल-विवाह के परिणामस्वरूप स्त्री १४ वर्ष की आयु में ही गर्भवती हो जाती है जबकि अधिक आयु में विवाह करने पर यह आयु बढ़ जाती है। परिणाम-स्वरूप यह होता है कि एक स्त्री ही अनेक बच्चे पैदा करती है। भारत में ४२.८ प्रतिशत स्त्रियाँ तीन से अधिक बच्चों को जन्म देती हैं। इस संख्या से अनुमान लगाया जा सकता है कि जन्म दर कितनी बढ़ जाती है।

(घ) सन्तानों का अधिक महत्व
(More Importance of Children)

भारतवर्ष में धार्मिक आधार पर सन्तानों का बड़ा महत्व है। पुत्र के बिना स्वर्ग प्राप्ति हो ही नहीं सकती; सन्तानें ईश्वर की देन है; पिता के गृह में स्त्री के रजस्वला होने से पिता को ब्रह्महत्या का पाप लगता है, आदि विचार-धारायें भारत में प्रचलित हैं। ऐसी अवस्था में भारत में यदि जन्म दर में वृद्धि हो तो क्या आश्चर्य है!

(च) निर्धनता (Poverty)

निर्धनता का तत्व भी जन्म दर बढ़ाता है। बच्चे अपने घरेलू कार्यों में निःशुल्क श्रमिकों के रूप में भीख मांगने में सहायक के रूप में होने के परिणाम में निर्धनता को दूर करने में सहायक होते हैं। साथ ही मनोरंजन के उपयुक्त साधनों के अभाव के परिणामस्वरूप स्त्रियां ही मनोरंजन का साधन रह जाती हैं और परिणाम अधिक सन्तानोत्पत्ति होती है।

(छ) शिक्षा का अभाव (Lack of Education)

शिक्षा के अभाव के भी परिणामस्वरूप स्वस्थ मनोरंजन के लाभ, भाग्यवादिता के दुष्परिणाम, धार्मिक अन्धविश्वासों को मानव समाज समझने में असमर्थ रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो घोर अशिक्षा है। परिवारनियोजन के महत्व को भी ये लोग नहीं समझ पाते, परिणाम यही होता है कि जन्म दर बढ़ती ही चली जाती है।

उपरोक्त सभी कारक जन्म दर को प्रोत्साहित करने में सहायक होते हैं। जन्म दर को कम करने का सबसे अच्छा उपाय परिवार आयोजन ही है।

२. उच्च मृत्यु दर (High Death Rate)

भारत में अन्य देशों की तुलना में मृत्यु दर भी बढ़ी हुई है और इस अधिक मृत्यु दर का प्रमुख कारण है स्वास्थ्य रक्षा साधनों का अभाव। मृत्यु दर किसी देश की जनसंख्यात्मक तथ्यों को ही नहीं बतलाती वरन् समाज कल्याण तथा औषधि सम्बन्धी सेवाओं का भी ज्ञान देती है। ग्रामीण क्षेत्रों में मृत्युदर नागरिक क्षेत्रों की अपेक्षा कम है। ऐमन हेनसन (Ammon Hansen) आदि जर्मनी के स्कालरों ने कुछ शहरों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि ग्रामीण जीवन की तुलना में नागरिक जीवन में नश्वरता अधिक पाई जाती है। भारतवर्ष में चिकित्सा की सुविधा न होने से बच्चों

की अत्यधिक मृत्यु होती है। लगभग १/४ बच्चे जन्म के प्रथम वर्ष में समाप्त हो जाते हैं। कुल मृत्यु संख्या का ४६ प्रतिशत १० वर्ष से कम बच्चों की मृत्यु का है अर्थात् १०० बच्चों में से २५ प्रथम वर्ष में, ४० प्रतिशत ५ वर्ष की आयु तक मर जाते हैं एवं केवल १५ प्रतिशत ६० वर्ष की आयु तक पहुँच पाते हैं। इसी भांति प्रजननत्वयस की स्त्रियों तथा प्रसूतियों की मृत्यु दर है। स्वास्थ्य का उचित प्रबन्ध न होने से यह मृत्यु दर बढ़ी हुई है। माताओं की मृत्यु दर भी २ प्रतिशत है। भारत में लगभग २.५ स्त्रियों की प्रतिवर्ष मृत्यु होती है। अतः यह स्पष्ट है कि अन्य देशों की तुलना में भारत में मृत्यु-दर उच्च है। पिछले वर्षों की तुलना में यह निरन्तर घटती जा रही है परिणामतः जनसंख्या बराबर बढ़ती चली जा रही है।

३. जीवन की कम अवधि (Low Expectation of Life)

भारतवर्ष में जनसंख्यात्मक प्रमुख समस्या जीवन की कम अवधि है। यहाँ औसत आयु ३६ वर्ष है जबकि अमेरिका में ५६ वर्ष, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड में ६७ वर्ष है। अतः स्पष्ट है कि बहुत कम व्यक्ति ही ७० वर्ष की अवस्था तक जीवित रह पाते हैं। अधिकांश व्यक्ति उस समय संसार को छोड़ देते हैं जबकि देश के हित में उनका उपयोग होने को होता है। इस कम अवधि का प्रमुख कारण चिकित्सा सुविधाओं का अभाव एवं पोषण की न्यूनता है।

(४) जनसंख्या की अति दुर्बलता एवं क्षीणता
(Low health and defficiency of Population)

भारत की जनसंख्या अत्यन्त क्षीण एवं दुर्बल है, उन्हें न पर्याप्त भोजन मिलता है न जीवन के रहन सहन की सामान्य सुविधायें ही। अतः ये लोग रोगों के आक्रमण आदि को सहन करने में असमर्थ रहते हैं। कृषकों को देखें तो केवल मात्र हड्डियों के ढांचे दिखाई देंगे। ३५—४० वर्ष की अवस्था में ही अपने पूर्ण रूप में वृद्ध जीवन झलक उठेगा। नीचे हम इन्डियन कौंसिल आफ मेडिकल रिसर्च द्वारा प्रस्तुत की गई तालिका देंगे जिससे ज्ञात होगा कि प्रत्येक ग्रामवासी को एक दिन में पूरी कैलोरी प्रोटीन आदि को प्राप्त करने के लिये अन्न, दाल, दूध, फल, घी आदि की कितनी आवश्यकता है और उसे वास्तविकता से कितना कम मिल पाता है।

खाद्य पदार्थ	कितने औंस दैनिक मिलना चाहिये ?	कितने औंस दैनिक मिल रही है ?	कितने प्रतिशत ग्राम-वासियों को आवश्यकता है ? अर्थात् कितना कम खाद्य पदार्थ मिल रहा है ।
अन्न	१४	१३.२	४१.६
दालें	३	१	७३.३
पत्तीं वाली सब्जियां	४	२	७५.८
पत्तों रहित सब्जियां	६	२	७५.१
घी और तेल	२	०.५	७६.५
फल	३	....	३०.७
दूध	१०	२	६७.२
मांस	४	....	५९.७
चीनी तथा गुड़	२	....	६४.४

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारतीय ग्राम वासियों की दशा कितनी निम्न है । इन लोगों के घर में दूध, घी आदि पोषक वस्तुयें बनती हैं फिर भी ये इनका उपयोग नहीं कर पाते । अतः ऐसी स्थिति में यदि स्वास्थ्य क्षीण हो और कार्यकुशलता न पायी जाये तो आश्चर्य ही क्या है ?

जनसंख्यात्मक समस्याओं के रोकने का उपाय
(Measures for Checking the Populational Problems)

उपरोक्त जनसंख्यात्मक समस्याओं को एक में मिला दिया जाय तो अति जनसंख्या का कारक ही ऐसा उपलब्ध होगा जिसे रोकने के शीघ्र ही उपाय किये जाने चाहिए। जनसंख्या को रोकने के लिये सबसे अधिक आवश्यकता है परिवार नियोजन की। किन्तु यह जान कर दुःख होगा कि भारतवर्ष की ८४ प्रतिशत जनसंख्या सन्ततिनिरोध के उपायों को कोई महत्व नहीं देती। इस सम्बन्ध में ग्रामीण जनता में शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता है जिससे उनके धार्मिक अन्ध-विश्वास, भाग्यवादिता, सन्तानों का अत्यधिक महत्व आदि बातों का स्पष्ट चित्रण उनके मस्तिष्क में उपस्थित हो जाये और वे सन्तति निरोध के उपायों को समझें । इसके साथ ही हमें विवाह की आयु भी बढ़ानी होगी । बालविवाहों को रोकना होगा । देर से विवाह होने पर ही जन्म दर कम होगी । विभिन्न प्रकार के प्रयत्नों द्वारा ग्रामीण जनता को बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या का ज्ञान कराना होगा और परिवार नियोजन का महत्व बतलाना होगा तभी जनसंख्या की समस्याओं का हल सम्भव है । राज्य इस दिशा में विशेष प्रयत्नशील है पर इन प्रयत्नों में अत्यन्त कमी है और सीमितता है अतः इस ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये ।

अध्याय ९

ग्रामीण जनता और भूमि

(Rural People and Land)

ग्रामीण जन और भूमि का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। ग्रामीण ढांचे के अध्ययन में हम इस सम्बन्ध को नहीं भुला सकते। भूमि के सम्बन्धों का ग्रामीण जीवन के समस्त सामाजिक ढांचे पर प्रभाव पड़ता है। इसलिये ग्रामीण समाजशास्त्र में यह एक विचारणीय विषय है। ग्रामीण जीवन में भूमि का बड़ा महत्व है। जीवन का समस्त आधार भूमि पर अवलम्बित है। भूमि के अनुसार ही जीवन के सारे सम्बन्ध निर्धारित होते हैं। अतः ग्रामीण समाज के भौतिक रूप का दर्शन करने के लिये ग्रामीण जन व उसके भूमि सम्बन्धों का अध्ययन हमारे लिये अनिवार्य है।

निवास स्थापना

(Living Settlements)

ग्रामीण जन और भूमि के सम्बन्धों में सर्वप्रथम विचारणीय विषय है निवास व्यवस्था का रूप। यह एक सर्वविदित सत्य है कि ग्रामीण व्यक्ति को नागरिक व्यक्ति की अपेक्षा अधिक भूमि की आवश्यकता पड़ती है। इस दृष्टि से जैसा हम देख चुके हैं कि व्यवस्थापन्न में जनसंख्या का घनत्व बहुत कम हो जाता है। अतः प्रत्येक ग्रामीण जन पहले तो अपने खेतों का चुनाव करता है तथा उपरान्त इसके अपनी निवास व्यवस्था के बारे में विचार करता है। वह यह तय करता है कि मुझे खेतों के समीप ही रहना चाहिये अथवा दूर। यदि ग्रामीण जनता की निवास व्यवस्था खेतों पर ही अलग होगी तो उनका सामाजिक जीवन भी उनसे बिल्कुल भिन्न होगा जो खेतों से दूर घनी बस्ती (Clustered) के रूप में रहते हैं। खेतों पर रहने वाले व्यक्तियों के परिवारों को खेत-परिवार (Farm Families) कहते हैं और बस्ती में रहने वाले ग्राम परिवार कहलाते हैं। अमेरिका में अधिकाँशतः ग्रामों की निवास व्यवस्था बिलकुल बिखरी हुई है। यहां की ग्रामीण जनता के सम्बन्ध बड़े अस्थाई एवं शिथिल होते हैं। समस्त विश्व में ही अधिकांशतः हम ग्रामीण क्षेत्रों में बिखरी हुई गढ़ी अथवा ढाणी (Hamlets) व्यवस्था

पाते हैं। गांव के चारों ओर विस्तृत रूप में खेत बनाये जाते हैं और खेतों पर अलग झोंपड़ियों में कृषक रहते हैं। कभी ये किसान खेती का कार्य समाप्त होने पर संगठित रूप में भी रहते हैं। इस प्रकार से ग्रामीण जन व भूमि के सम्बन्धों पर सबसे पहला प्रश्न निवास व्यवस्था का है कि उसका क्या रूप है। निवास व्यवस्था का सबसे पहला आधार यही है। खेती योग्य स्थानों को चुन कर ही इस प्रकार की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार व्यवस्था समस्त सामाजिक संगठन को प्राभावित करती है तथा निकास व्यवस्था के अनुसार सामाजिक प्रक्रियायें कार्यान्वित होती हैं। ग्रामीण जनता के व्यवस्थापना के आधारों पर सांस्कृतिक भूगोल शास्त्रियों ने विभिन्न अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण (Reconstruction) व सामाजिक आयोजन (Social Planning) में इन अध्ययनों का बड़ा महत्व है। भारत में अभी परम्परागत आधारों का प्रयोग हो रहा है। हम व्यवस्थापन के प्रकारों का वर्णन नीचे करेंगे।

स्थापना के प्रकार (Types of Settlements)

ग्राम की विवेचना करते समय हमने ग्राम व्यवस्था के विभिन्न रूपों का प्रतिवेदन किया है जिसमें हमने कृषि के आधार पर, जातीय आधार पर, सुरक्षा व सामाजिक स्तरण के आधारों पर ग्राम व्यवस्था के रूप देखे हैं। यहां हम ग्रामीण निवास व्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हैं।

(१) स्थापना का रूप : ग्राम (Form of Settlement–Village)

ग्रामीण जनना अधिकांशतः इसी सिद्धान्त का अवलम्बन करती है। यह सबसे प्रमुख सिद्धान्त है। यूरोप, एशिया व अमेरिका में विशेषतः इसी सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार ग्रामीण जन अपने गोत्रीय व रक्त सम्बन्धों के आधार पर संगठित हो जाते हैं तथा गढ़िया अथवा ढाणियों (Hamlets) के रूप में बस जाते हैं। गांव के क्षेत्र में चरागाह, कृषि व जंगलात के योग्य भूमि छोड़ दी जाती है। ये गढ़ियां, ऊँचे व सुरक्षित स्थानों को देखकर बसाई जाती हैं जो कृषि कार्य में हर प्रकार से सुविधा जनक हो। इस प्रकार के गांवों का निर्माण विभिन्न प्रकार की आकृति में पाया जाता है। अफ्रीका में इस प्रकार के गांव बिल्कुल गोलाकार होते हैं। जर्मनी में भी एक ही व्यास (diameter) में मकान बनाये जाते हैं। अमेरिका में जलाशय के सम्मुख आयत की आकृति में गांव बसायें जाते हैं।

(२) खेत के चारों ओर स्थापना (Farm steads settlements)

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक परिवार अपने खेतों की पूर्ण सुरक्षा करने

हेतु सीमाओं पर झोपड़ियां बनाते हैं। इसमें एक मकान से दूसरा मकान काफी दूर पर रहता है। इस प्रकार की व्यवस्था से परिवार व खेतों में ही निकट सम्पर्क रहता है। यदि किसी स्थान पर जनसंख्या का घनत्व कम हो जाता है तो इस प्रकार के मकानों की दूरी और भी बढ़ जाती हैं। कभी कभी पहाड़ियां व घाटियां आदि भी खेतों की सुरक्षा हेतु चुन ली जाती हैं। इस व्यवस्था में मानवीय सम्बन्धों की घनिष्टता और भी दुष्कर हो जाती है।

(३) पंक्ति ग्राम स्थापना (The line village Settlements)

यह सिद्धान्त अधिकांशत: तब प्रयोग में आता है जब कि खेतों की लम्बाई चौड़ाई से अधिक हो। कभी कभी किसी मार्ग विशेष के दोनों ओर भी इस सिद्धान्त से ग्राम रचना की जाती है। इस विधि का प्रयोग ब्राजील व जापान में होता है। किसी नदी के दोनों किनारों की भूमि के उपयोग हेतु भी इस प्रकार की ग्राम रचना की जाती है। इजराइल में कुछ यहूदियों ने भी इसी प्रकार के ग्राम बसाये हैं। इसमें विशेषता यह है कि एक गोलाकार मार्ग से चारों ओर मकानों की पंक्तिया बनाई गई हैं। वास्तव में देखा जाय तो ग्राम रचना व ग्राम जनता की यह व्यवस्था समस्त संसार में ही मिलती है। सर्व प्रथम यह व्यवस्था फ्रांस में अपनाई गई थी तदुपरांत अन्य देशों में भी इसका प्रयोग प्रारम्भ हो गया।

ग्रामीण जनता द्वारा भूमि पर स्थापना के विभिन्न रूपों पर हमने विवेचन किया। इस विवेचन से हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि कौनसा सिद्धान्त उपयुक्त है और कौनसा अनुपयुक्त। निवास स्थापना करते समय अन्य सुविधाओं, व भूमि की स्थिति का भी ध्यान रक्खा जाता है। जहां वाह्य रूप का प्रश्न है यह विशिष्ट दृष्टिकोणों पर निर्भर होता है। इस कार्य में आर्थिक कारक भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कृषकों को अपने रहने से पहले कृषि सुविधाओं का ध्यान करना पड़ता है। इसके उपरान्त वे अपने पशुओं के रहने की व्यवस्था तथा चरागाहों का निर्धारण करते हैं। इन सुविधाओं को देखे बिना कृषक सुविधा से नहीं रह सकता।

कभी कभी भूमि विभिन्न टुकड़ों में प्राप्त होती है। इस दृष्टि से भी स्थापना व्यवस्था में परिवर्तन करना पड़ता है। यदि इन भूमि के टुकड़ों से निवास व्यवस्था दूर हो तो कृषक अपने साधनों को लाने ले जाने में ही समय समाप्त कर देगा। इस दृष्टि से निवास स्थापना के समय ग्रामीण को उपलब्ध भूमि की समीपता तथा सम्बन्ध का भी ध्यान रखना पड़ता है। भारत में भी खेतों का

बिखरा रूप विशेषतः पाया जाता है। यहां की सामाजिक व भूमि स्वामित्व की ही ऐसी व्यवस्था है कि भूमि टुकड़ों (Fragmentation) में पाई जाती है। यहां निवास व्यवस्था के क्षेत्र में कृषि हित का ध्यान नहीं रक्खा जाता। परम्परागत गांवों की स्थापना के अनुकूल भारतीय ग्रामीण जनता को इस बात का ध्यान रखने की विशेष आवश्यकता है।

भूमि वितरण
(Land Division)

ग्रामीण जीवन में भूमि वितरण एक महत्वपूर्ण आधार है। ग्रामीण सामाजिक जीवन का स्थायी होना, शान्तिपूर्ण होना, भूमि वितरण पर ही निर्भर करता है। जब खेत की सीमा ठीक प्रकार से सुरक्षित होती है तभी ग्रामीण शान्ति से कार्य कर सकता है। अन्यथा वह हमेशा मुकदमें बाजी में लगा रहता है। भारत में भूमि विभाजन व सीमा निर्धारण के मुकदमों की संख्या सबसे अधिक रहती है। अतः कृषि भूमि का उचित रूप से निरीक्षण, लेखा जोखा एक विशेष सामाजिक महत्व रखता है। मानव भूमि के सम्बन्धों की सामाजिक महत्ता पर लिखते हुए सेम्पल (Semple) ने लिखा है, "समाजशास्त्र की अधिकांश विधियां मानव के साथ इस प्रकार व्यवहार करती हैं जैसे वे किसी भांति भूमितल से पृथक हों। वे समाज के भूमि आधार को भुला देती है।"[1] हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि जनता अपनी जीविका भूमि से प्राप्त करती है अथवा जिसका सारा सामाजिक ढांचा भूमि से केन्द्रित हो उस समाज के भूमि सम्बन्धों को अध्ययन से छोड़ देना एक महान् समाजशास्त्रीय भूल होगी। भूगोल शास्त्रियों ने सांस्कृतिक प्रतिवेदन में भूमि वितरण के तथ्यों को स्पष्ट रूप से अपनाया है। श्री स्मिथ ने लिखा है, "प्रायोगिक रूप से सामाजिक व्यवस्था का प्रत्येक पहलू कार्यान्वित भूमि विभाजन के रूप से निश्चित होता है।"[2]

---

1. "Most systems of Sociology treat man as if they were in same retached from the earth's surface; they ignore the land basis of socially"—Ellin Churchill Sample : 'Influence of the Geographic Environment on the basis of Ratsel's system of Anthropo-Geography'; New York, Henry Holt and Co; (1911), p. 53.
2. "Practically every aspect of Social System is conditioned by the mode of land division employed." T.Lynn Smith : 'Sociology of Rural Life'; p. 244.

इस प्रकार ग्रामीण जनता के अध्ययन के साथ भूमि वितरण के तथ्यों का महत्व पहचाना जा रहा है। मानव के विकास के साथ जनसंख्या के बढ़ जाने से भूमि वितरण के विभिन्न रूपों का उदय भी हो गया है। प्रायः भूमि वितरण के अन्तर्गत निम्न नियम उल्लेखनीय हैं:—

(१) अव्यवस्थित वितरण (Indiscriminate division)

प्रारम्भ में जब पानी आदि की सुविधाओं को देखकर निवास स्थापना की गई, उस समय भूमि वितरण का मानव के मस्तिष्क में कोई विचार नहीं था। यद्यपि वर्तमान युग में भी भूमि वितरण का कोई सर्वोचित नियम उपस्थित नहीं है। अमेरिका जैसे देश में भी इस सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं थी। जहां व्यक्ति व उसके परिवार को स्थान मिला वहीं अपना अधिकार करके सीमा बन्धन कर लिया गया। भूमि निरीक्षण की भी कोई व्यवस्था पारित नहीं हो सकी है। इङ्गलैंड में सर्वप्रथम भूमि सर्वेक्षण का आयोजन किया गया, वहां भी भूमि वितरण की कोई समुचित व्यवस्था विकसित नहीं हो पाई। भूमि अव्यवस्थित रूप से अधिकार में करके कृषि का रूप बनाया गया था। भारत में भी भूमि वितरण का प्रारम्भ में कोई व्यवस्थित रूप नहीं था, न इसका पूर्ण लिखित विवरण ही रखा जाता था। प्राचीन राजाओं के समय सारी भूमि का मालिक राजा ही होता था। वह अधिकांशतः खेती हेतु किराये पर देता था अथवा दान भी कर दिया करता था। इस तरह प्रारम्भ में भूमि वितरण का कोई व्यवस्थित रूप नहीं था। जिसको जो भूमि अच्छी लगी वहीं पर अपना अधिकार कर लिया, फलस्वरूप बिल्कुल अव्यवस्थित ढांचा आज भी हमें दिखाई देता है।

(२) नदी के किनारे की भूमि का वितरण
(Division of River frant Land)

विश्व के कई देशों में प्रथम नदी, झील, तालाब, कुआं तथा समुद्री किनारों की भूमि का नाप प्रारम्भ किया गया। इस सम्बन्ध में पश्चिमी देशों में सबसे पहले प्रयास प्रारम्भ हुआ। १७वीं शताब्दी के मध्य में अमेरिका में बस्तियां बनाई गई तब नदियों के किनारों की भूमि वितरित की गई और इसका व्यवस्थित विवरण भी रक्खा गया। इस व्यवस्था में भी विभिन्न कमियाँ उपस्थित हुई। भूमि वितरण का कोई उपयुक्त यन्त्र न होने से इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त न हो सकी। लेकिन विभिन्न प्रयासों के उपरान्त यह नियम अमेरिका, फ्रांस, कनाडा व भारत में सफल हो गया। इसको भूमि वितरण का आधारभूत साधन माना गया। इस सम्बन्ध में श्री स्मिथ ने लिखा है, "यद्यपि निर्माण करने वाले पूर्वजों का सर्वेक्षण की विधि से कोई सम्बन्ध नहीं था। नदी के किनारों के

सकते। भूमि स्वामित्व ग्रामीण व्यक्ति के लिये केवल व्यवसाय अथवा कृषि के दृष्टिकोण से ही महत्वपूर्ण नहीं है वरन् भूमि उसके सामाजिक संस्थाओं, संगठनों, प्रक्रियाओं में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है अर्थात् भूमि उसके समाज के अंग के रग रग में भी व्याप्त है। अतः भूमि स्वामित्व का प्रश्न केवल आर्थिक दृष्टिकोण से ही महत्वपूर्ण नहीं है वरन् उसके सामाजिक दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए देवेत और सिंह ने लिखा है, "............भूमि स्वामित्व प्रणाली पर एक देश का सामाजिक संगठन चाहे भूस्वामी, पूंजीपति तथा साम्यवादी हो, आधारित होता है। ग्राम्य संस्थायें और सामाजिक अनुक्रम भूमि स्वामित्व से ही निर्धारित होता है।"[4] वास्तव में भूमि स्वामित्व एक महत्वपूर्ण सामाजिक सम्बन्ध है। जहां तक भूमि स्वामित्व के विकास का प्रश्न है, यह प्रश्न सभ्यता के विकास के साथ ही उत्पन्न हुआ है और सभ्यता के विकास के साथ ही विकसित भी होता जा रहा है। इसलिये भूमि स्वामित्व के नियम सदा ग्रामीण समाज के आधारभूत ढांचे को प्रभावित करते आ रहे हैं। हजारों वर्ष पूर्व भूमि स्वामित्व के नियम मिट्टी की ईंटों पर लिखे थे जो हमुराबी (Hummurabi) के नाम से विख्यात थे। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव की घुमक्कड़ (Nomadic) अवस्था में भी भूमि स्वामित्व के नियम उपलब्ध थे। भूमि स्वामित्व की समस्या एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। हम भूमि स्वामित्वसम्बन्धी विचारधाराओं को व्यक्त करेंगे।

भूमि स्वामित्व सम्बन्धी विचारधारा

(Schools regarding Land Tenure)

भूमि पर किसका अधिकार होना चाहिये ? राज्य का, व्यक्ति का या समाज का ? यह प्रश्न एक विचारणीय प्रश्न है। विभिन्न कालों में भूमि स्वामित्व के विभिन्न रूप रहे। इस सम्बन्ध में विभिन्न विचारकों ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं कि भूमि पर किसका अधिकार होना चाहिये। हम इन विचारधाराओं का यहां संक्षेप में वर्णन करेंगे।

---

4. "On land tenure system depend the social organisation of a country, whether fendal, capitalist or communist. Land tenure determines the village institutions and social merarchy". K. K. Denctt & G. C. Singh :'Indian Economics': Premier Publishing Co., Delhi (1952) p. 6.

(१) सामाजिक अनुबन्ध का सिद्धान्त
(Theory of Social Contract)

इस सिद्धान्त के आधार पर यह विचार है कि प्रारम्भ में लोग प्राकृतिक अवस्था में रहते थे। राज्य या समाज जैसी कोई संगठित संस्था न थी। बाद में संगठित जीवन व्यतीत करने के लिये राजा ने तथा प्रजा ने समझौता कर लिया कि राजा शासन प्रबन्ध उचित प्रकार से करेगा, प्रजा उसकी आज्ञा का पालन करेगी। इस भांति इस सिद्धान्त में प्रजा ने राज्य के अधिकार दिये और कर्त्तव्य पालन की प्रतिज्ञा कराली। भूमि भी राज्य के अधिकार में आ गई। जनता उसका कर आदि देने लगी। इसके अनुसार समस्त भूमि पर राज्य का स्वामित्व है।

(२) साम्राज्यवाद का सिद्धान्त
(Theory of Imperialism)

इस सिद्धान्त के अनुसार अपने राज्य की भूमि का विस्तार करने के लिये अन्य देशों पर आक्रमण के द्वारा अपना अधिकार कर लेना है। इस सिद्धान्त के अनुसार राजा की भूमि में विस्तार होता रहता है और प्रजा उसकी भूमि पर स्वामित्व करने के बदले में कर आदि देती है। इस सिद्धान्त के अनुसार भी भूमि राज्य की है और राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है।

(३) साम्यवाद का सिद्धान्त
(Theory of Communism)

साम्यवाद के सिद्धान्त के प्रवर्तक श्री कार्ल मार्क्स (Carl-Marx) हैं। उन्होंने इस सिद्धान्त में बतलाया है कि इस शासन में केवल श्रमिक वर्ग का ही एक मात्र एकाधिपत्य होगा। अतः भूमि का वैयक्तिक स्वामित्व का ही अन्त करना है। कारखाना, व्यापार, वाणिज्य, भूमि व सभी प्रकार के उत्पादन के साधनों पर सरकारी अधिकार की स्थापना करके एक वर्गहीन समाज के निर्माण हेतु राज्य को अपने समस्त कार्यों को आयोजित करना होगा जिससे शारीरिक और बौद्धिक कार्य में कोई भेद न रहे और 'प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' इस उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

इस भांति समस्त भूमि राज्य, जो कि श्रमजीवियों का है, के अधिकार में आ जायेगी और राज्य ही समस्त कृषि व्यवस्था करेगा। यह सिद्धान्त प्रायोगिक

रूप से रूस आदि साम्यवादी देशों में चल रहा है। रूस में यह सबसे अधिक सफल हुआ है।

(४) समाजवाद का सिद्धान्त
(Theory of Socialism)

समाजवाद का सिद्धान्त भी प्रजातांत्रिक रूप में साम्यवादी ही है। दोनों की केन्द्रीय धारणा एक है कि भूमि जनता की होनी चाहिए किन्तु साम्यवाद यह कार्य क्रान्ति के द्वारा चाहता है और समाजवाद सामाजिक प्रयत्नों के द्वारा यह परिवर्तन लाना चाहता है। समाजवाद का कहना है कि सभी व्यक्तियों (केवल श्रमिक ही नहीं) की सामूहिक सम्पत्ति भूमि होनी चाहिये। वे ही सब उसकी व्यवस्था करें जबकि साम्यवाद का विचार केवल श्रमजीवियों तक ही सीमित है।

(५) व्यक्तिवाद का सिद्धान्त
(Theory of Individualism)

व्यक्तिवाद के सिद्धान्त के आधार पर यह धारणा है कि राज्य केवल व्यवस्था करने वाला है, उसकी सुरक्षा करने वाला है, उसकी रुकावटों को दूर करने वाला है और स्वामित्व केवल व्यक्ति का है। व्यक्तिवाद का केन्द्रीय विचार इस सिद्धान्त में निहित है। राज्य, समाज या राष्ट्र व्यक्तियों से ही बने हैं और इनका कार्य व्यक्ति द्वारा ही होता है अतः सभी क्षेत्रों में व्यक्ति को ही सर्वोच्च स्थान देना चाहिये। जो बात व्यक्ति के लिये हितकर है वह सम्पूर्ण समाज के लिये भी हितकर है।

इस भांति इन सिद्धान्तों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि भूमि पर किसका अधिकार होना चाहिये और कौन उसका वांछित अधिकारी है। भूमि के स्वामित्व से ही उसके प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। अतः भूमि सुधार आदि के सम्बन्ध में प्रयत्न प्रारम्भ किये जाते हैं। अब हम भूमि स्वामित्व के स्वरूपों पर विचार करेंगे।

प्राचीन भूस्वामित्व की प्रकृति
(The nature of old land tenure)

सदा से भूमि पर साधारण रूप से राजाओं का स्वामित्व रहा है। राजा अपने जागीरदारों, सामन्तों, ठाकुरों द्वारा भूमि कृषि हेतु अस्थायी रूप में दिया करता था। भारत के नियम निर्माता मनु ने भी इस बात का उल्लेख किया है।

कृषकों के उत्पादन में से १/६ भाग राजकोष में डाला जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि भूमि का स्वामित्व सदा से कृषकों के हाथ में नहीं रहा। जहां प्रश्न उत्पादन के भाग का है वह समय व परिस्थितिनुसार परिवर्तन होता रहा है। इस तरह से तीन संघर्ष शक्तियों का सदा से भूमि पर संग्राम होता आया है। प्राचीन काल में भूस्वामित्व के आधार पर समाज चार वर्गों में विभाजित रहा है। राजा, जागीरदार, किसान और मजदूर।

भूमि स्वामित्व के स्वरूप (Form of land Tenure)

ग्रामीण क्षेत्रों में भू स्वामित्व का क्या रूप है यह एक ऐसा प्रश्न है जो प्राचीन काल से चला आ रहा है और अभी काफी समय तक इस पर विवाद होगा। भू-स्वामित्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से निर्धारित किया गया है। नीचे हम इन आधारों पर भूमि स्वामित्व के आधार पर भूस्वामित्व के स्वरूपों को देखेंगे।

(१) संख्या के आधार पर भू-स्वामित्व के स्वरूप
(Forms of land tenure based on number)

संख्या का तात्पर्य यहां व्यक्तियों की संख्या से लिया गया है। इस आधार पर भू-स्वामित्व के निम्न रूप हैं:—

(क) वैयक्तिक भू—स्वामित्व (Individual land Tenure)

इस आधार पर भूमि का स्वामी एक व्यक्ति होता है। वह ही उसके सुधार, प्रयोग आदि की व्यवस्था करता है। राज्य को उपज का साधारण कर मात्र देता है। वह उसे बेच सकता है, गिरवी रख सकता है, विभाजित कर सकता है, प्रयोग कर सकता है। इस भांति इस व्यवस्था में भूमि पर व्यक्ति विशेष का वैयक्तिक अधिकार होता है।

(ख) सहकारी भू-स्वामित्व (Cooperative land Tenure)

इस आधार पर भूमि का स्वामित्व एक व्यक्ति पर नहीं होता वरन् व्यक्तियों के एक समूह पर होता है जोकि सहयोग के आधार पर संगठित हो गये हैं। यह समूह भूमि का सहकारी आधार पर प्रयोग कर सकता है और कर के रूप में राज्य को कुछ अंश देता है। यह समूह ही इस भूमि की सुरक्षा, सुधार आदि के कार्य करता है।

(ग) सामूहिक भू-स्वामित्व (Collective Land Tenure)

सामूहिक भू-स्वामित्व में व्यक्तियों का एक समूह जैसे ग्राम, उस भूमि पर

अपना स्वामित्व रखता है। पूरा ग्राम उसका स्वामी होता है। वह उसके प्रयोग व सुधार आदि का ध्यान रखता है और राज्य को कर देने का उत्तरदायित्व भी इस भाँति सामूहिक है। इसमें सब भूमि राज्य की मानी जाती है और राज्य पंचायतों आदि के द्वारा ग्राम के आधार पर विभाजित कर देती है।

उपरोक्त तीन स्वरूपों में भूमि का स्वामित्व पाया जाता है। ये तीनों स्वरूप ही अनेक रूपों में लाभकारी भी सिद्ध हुए हैं और हानिकारक भी। व्यक्ति की अपनी भूमि होने से वह उसका पूर्ण ध्यान रखता है। समूह की भूमि होने से समूह वैयक्तिक अक्षमताओं को दूर करते हुए भूमि का और भी कल्याण करता है तो सहकारी आधार भी यही द्योतित करता है। इनमें दोष भी हैं। जिससे विभिन्न कालों में भू-स्वामित्व के ये तीन रूप ही देखने को मिले व उसमें भी परिवर्तित होते रहे। इसी आधार पर भूस्वामित्व के और भी अनेक रूप विकसित हुए और समय समय पर उनमें परिवर्तन भी आता गया। इस भांति भू-स्वामित्व की प्रकृति सदैव परिवर्तित होती गई और परिवर्तित हो रही है। कभी वैयक्तिक स्वामित्व रहता है तो कभी सामूहिक।

(२) भूमि-कर के आधार पर भू-स्वामित्व के स्वरूप (Forms of land tenure based on land taxation)

भू-स्वामित्व ग्राम विकास का आधारभूत प्रश्न है। भारत में राज्य द्वारा नियंत्रित भू धारणा के अन्तर्गत प्रमुख स्वरूपों में निम्न प्रणालियां प्रचलित थीं :—

(क) रैयतवारी प्रथा (Royatwari System)

इस प्रथा के अन्तर्गत, कृषक भूमि पर कृषि करता है और उसका लगान सरकार को देता है। इस व्यवस्था में भूमि लगान (भूमिकर) की निर्धारण शक्तियाँ कृषक का शोषण करती हैं। सदा भूमि पर सरकार का स्वामित्व रहता है। कर वसूल करने वाले कर्मचारी भी विभिन्न अत्याचार करने का प्रयत्न करते हैं। इसमें कृषक वैयक्तिक रूप से भूमि का स्वामी होता है।

(ख) महालवारी प्रथा (Mahalware System)

इस प्रथा के अन्तर्गत भूमि स्वामित्व ग्राम समुदाय के पास रहता है। इस प्रथा में भी रैयतवारी प्रथा के समान विभिन्न दोष हैं। सरकार के नियन्त्रण एवं लगान कर्मचारियों के अत्याचारों से कृषक का शोषण होता है।

(ग) जमींदारी प्रथा (Zamindari System)

जमींदारी प्रथा में सरकार द्वारा मान्य व्यक्ति व समुदाय भूमि पर स्वामित्व रखता है। इस व्यवस्था में जमींदार स्वयं कृषि नहीं करता बल्कि कर के आधार पर किरायेदारों (Tenants) को कृषि हेतु भूमि दे देता है। सरकार को मालगुजारी देने का उत्तरदायित्व जमींदार के पास रहता है। यह कृषकों का खूब शोषण करता है। अतः इस व्यवस्था में भी अनेक दोष हैं। इस सम्बन्ध में कारवर(Carver) ने लिखा है, "युद्ध, दुर्भिक्ष और महामारी के बाद एक ग्रामीण समुदाय के लिये जो सबसे बुरी बात हो सकती है, वह है जमींदारी प्रथा।"

उक्त तीनों व्यवस्थाओं में ही ग्रामीण जन भूमि के प्रति बड़ा उदासीन रहता है। राज्याधिकार रहने से वह किसी प्रकार की रूचि नहीं लेता। कृषक में आत्मीयता का अभाव रहता है। इस दृष्टि से वह हमेशा शोषित होता रहता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र में वर्ग भेदों का उदय होने से सामाजिक ढांचा भी विघटित हो जाता है।

(३) कर की अवधि के आधार पर भूस्वामित्व के रूप (Forms of Land Tenure based on Tax Period)

कर की अवधि के आधार पर भी भूस्वामित्व का विभाजन किया जाता है। इस प्रथा में भूस्वामित्व कर के समय के आधार पर स्थायी एवं अस्थायी के रूप में विभाजित किया गया है:—

(क) स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement)

स्थायी बन्दोबस्त के अन्तर्गत यह होता है कि किसानों से प्राप्त होने वाले भाग का अधिकांश हिस्सा जमींदार राज्य के पास जमा कर देता है और शेष अपने गुजारे के लिये ले लेता है। भारत में यह प्रथा लार्ड कार्नवालिस ने प्रारम्भ की थी। इसके अनुसार प्राप्त होने वाले कर का ९० प्रतिशत जमींदार जमा करा देता है और १० प्रतिशत रख लेता है। जमींदार इसके बदले ग्रामीणों को सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की सुविधायें प्रदान करता है।

(ख) अस्थायी बन्दोबस्त (Temporary Settlement)

इस बन्दोबस्त में यह स्वामित्व २०,२५ वर्षों बाद परिवर्तित कर दिया जाता है और अन्य व्यक्तियों को या उन्हीं व्यक्तियों की योग्यता से सन्तुष्ट होकर भूस्वामित्व दे दिया जाता है जिससे जमींदार व्यक्ति ग्रामीणों के प्रति अपने

कर्तव्य का पालन बराबर करें और अव्यवस्था न फैलायें। इसमें महलवारी एवं जमींदारी दोनों प्रथायें सम्मिलित हैं।

इस दृष्टि से इन प्रथाओं में सामाजिक संघर्षों का कारण बना रहता है। अतः एक प्रगतिशील और सामाजिक समानता वाली भूमि-स्वामित्व व्यवस्था की आवश्यकता है। प्रगतिशील पश्चिमी देशों में इस दिशा में काफी प्रयत्न हो रहा है। भूस्वामित्व की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिसमें स्थायित्वता, सामान्यता, समानता और साधारणता हो। इससे सामाजिक वर्गों में सहिष्णुता उत्पन्न होगी। इसके अतिरिक्त कृषि उत्पादन में भी वृद्धि होगी। भारत देश में जनसंख्या की वृद्धि एवं उत्पादन में ह्रास की स्थिति वर्तमान युग में शीघ्र परिवर्तन चाहती है। इस सम्बन्ध में आर्थर यंग ने लिखा है, "एक व्यक्ति को एक काली चट्टान सुरक्षित अधिकार से दो और वह उसे बाग में बदल देगा, बाग का उसे नौ वर्ष का ठेका दो तो वह मरूस्थल में बदल देगा।"[5] इस उद्देश्य से विभिन्न देशों की स्वतंत्रता के बाद इस तरह के नियम पारित करने के प्रयत्न किये गये हैं। भारत में पंचायत-राज्य बिल व जमींदारी निराकरण बिल पास किये गये हैं। इनके अतिरिक्त जन सहयोग पर आधारित भूदान यज्ञ आदि भी चल रहे हैं। भूस्वामित्व एक महान सामाजिक समस्या है, यह शीघ्र हल चाहती है।

भारत में भूमि स्वामित्व
(Land Tenure in India)

भूमि स्वामित्व एक विश्वव्यापी समस्या है। कृषि प्रधान देशों में यह समस्या अत्यन्त प्रभावशाली व महत्वपूर्ण है। यह समस्या केवल आर्थिक दृष्टि से ही उल्लेखनीय नहीं है बल्कि सामाजिक व राजनैतिक दृष्टि से भी विचारणीय है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जो भूभाग एवं जनसंख्या की दृष्टि से संसार का पंचम भाग है, इस समस्या का अध्ययन अत्यधिक महत्व रखता है।

भू-स्वामित्व का प्राचीन रूप (Old Forms of Land Tenure)

प्राचीन युग में कृषि के उदय के साथ भूमि स्वामित्व की समस्या का उदय हुआ। जब आदि मानव जलवायु, सिंचाई का जल, भूमि की उर्वरा शक्ति

5. "Give a man the sècure possession of a Black rock, and he will turn it into a garden, give him a nine year's bare of garden and he will convert it into a desert." Arthur Young : 'Rural and Municipal Economics'; p. 46.

के आधारों पर गाँव संरचना का विचार करने लगा था, तभी से भूमि का महत्व बढ़ गया। भूमि का महत्व बढ़ जाने से भूमि-स्वामित्व की समस्या का उद्रेक हुआ।

भारत में राज्य की उत्पत्ति के उपरान्त, राज्य का भूमि पर स्वामित्व रहा। भूमि पर कृषि करने वाला कृषक एक किरायेदार (Tenant) के रूप में भूमि पर परिश्रम करता और अपना पोषण करता रहा। राज्य के भूमि स्वामित्व से विभिन्न समस्यायें उठ खड़ी हुईं। भूमि की उत्पत्ति का अधिकांश भाग राज्य कोष में जाने के फलस्वरूप कृषक उदासीन व निर्बल होने के साथ सदा गरीब व पतित रहा।

राज्य पर भूमि का स्वामित्व होने के फलस्वरूप भूमि स्वामित्व तथा भूमि व्यवस्था एवं भूमि कर की नीति निर्धारित करना राज्य का कार्य ही रहा। वैदिक युग में तथा मध्य युग में विभिन्न भूमिस्वामित्व के नियम पारित हुए हैं। इन व्यवस्थाओं एवं प्रणालियों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। प्रमुख रूप से जमींदारी, रैयतवारी, एवं महालवारी व्यवस्थायें भारत में प्रारम्भ से रही हैं। इन पर समय समय पर सुधार एवं विचार विनिमय हुए हैं। अंग्रेजी काल में भी इस दिशा में परिवर्तन विशेष उल्लेखनीय है। विदेशी विचार-धारायें भी इसमें प्रभावशाली क्रांति लाने में प्रयत्नशील हैं। सामाजिक संरचना (Social Structure) में सुधार लानेवाली प्रत्येक विचारधारा ने भूमि के प्रश्न को सदा अपने सम्मुख रक्खा है। भारत में भी इन विचारधाराओं का अमिट प्रभाव पड़ा है। इन विचारधाराओं में प्रमुख साम्यवाद, समाजवाद, अराजकतावाद, सिंडीकेलिज्म, साम्राज्यवाद, गिल्डसमाजवाद आदि हैं। इन प्रमुख प्रभावशाली विचारधाराओं के सम्प्रदायों ने भारत की ग्रामीण सामाजिक संरचना को प्रभावित करने का प्रयास किया है। इन प्रभावों के फलस्वरूप भारतीय अर्थशास्त्रियों तथा सामाजिक पुनर्निर्माणकर्ताओं ने भारतीय पृष्ठभूमि में नवीन विचारधारा प्रस्तुत की है। उदाहरणार्थ गांधीवाद और ग्राम राज्य, सर्वोदयवाद और ग्रामदान, पंचायत राज, सामुदायिक विकास आदि प्रमुख हैं।

भारतीय ग्रामीण सामाजिक आर्थिक संरचना (Rural Socio-Economic Structure) में यह विचारधाराएँ गम्भीर परिवर्तन लाने की कामना रखती हैं। अतः यहां हम प्रत्येक पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

(१) गाँधीवाद (Gandhism)

राष्ट्रपिता गाँधीजी भारत के एक महान दार्शनिक व शिक्षाशास्त्री थे। वे प्रारम्भ से ही भारत के राजनैतिक क्षेत्र में महान परिवर्तन लाना चाहते थे। उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन व ग्राम कुटीर उद्योगों पर नई विचारधारा संसार के सम्मुख रक्खी। वे भारत को ग्राम भारत कहते थे। ग्रामों को आत्म निर्भर जनतन्त्र की इकाइयों के रूप में परिणित करने के लिये ग्रामराज्य की विचारधारा का उन्होंने प्रतिपादन किया। वे ग्राम-भूमि को, ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति की भूमि मानते थे। ग्राम राज्य की विचारधारा के अन्तर्गत उन्होंने ग्रामों में आत्मनिर्भरता की भावना जगायी। ग्राम राज्य से उनका तात्पर्य शोषण विहीन समाज का निर्माण करना था। शासक वर्ग की वे आवश्यकता नहीं समझते थे।

(२) सर्वोदयवाद (Sarvodayism)

गांधीजी के प्रमुख साथी श्री विनोबा भावे ने उनके उपरांत सर्वोदय की कल्पना भारत में रक्खी। सर्वोदय का अर्थ सबका ऊदय है। सर्वोदय विचारधारा के अन्तर्गत भूमिदान का आन्दोलन भारत में प्रारम्भ हुआ। भूमिहीन कृषकों की समस्याओं एवं ग्रामीण भारत की सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण की भावना से सर्वोदय विचार ओत-प्रोत हैं। भूमिदान के उपरांत ग्रामदान की विचार-धारा विकसित हुई है। ग्राम का राज्य अर्थात् सम्पूर्ण स्वामित्व सहयोग व सहिष्णुता पर आधारित होगा। ग्राम राज्य में स्वामित्व के अंश का बिल्कुल भी स्थान नहीं है। भूमि का मालिक कृषक है। यही सर्वोदय विचारधारा का तत्व है।

३ पंचायत राज (Panchayat Raj)

ग्राम को सामुदायिक सहयोग पर आधारित करने हेतु भारत सरकार ने पंचायत राज की स्थापना का कार्यक्रम अपने सम्मुख रक्खा। इसके अनुसार ग्राम के जनप्रतिनिधि को ही पूर्ण स्वामित्व प्रदान करेंगे और ग्राम का शासन एवं विकास कार्य अपने सम्मुख रखेंगे।

(४) सहकारिता (Co-operation)

उक्तांकित विचारधाराओं का मूल सहकारिता है। सहयोगिक समाजवादी समाज (Co-operative Socialistic pattern of society) की स्थापना वर्तमान सरकार का मुख्य उद्देश्य है। सहकारिता आन्दोलन भारत का प्रमुख ग्रामीण भूमि आन्दोलन है। इसके अन्तर्गत सहयोगिक भूमि (Co-operative Land) की विचारधारा व्याप्त है।

(५) सामुदायिक विकास (Community Development)

ग्राम के सामाजिक-आर्थिक विकास कार्यक्रमों में यह कार्यक्रम ही उल्लेखनीय है। इस कार्य में ग्राम की समस्त समस्याओं के उन्मूलन की कल्पना निहित है।

भारतीय ग्रामीण भूमि-स्वामित्व निर्णायक विचाराधाराओं पर हमने विवेचन किया। भारत में स्वामित्व का प्रश्न इन विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर ही हल किया जा रहा है। भूमिस्वामित्व की समस्या हल हो जाने से, भारतीय ग्रामों की महान समस्याओं का हल स्वतः ही हो जायगा। भूमि ग्रामीण भारत की समस्त समस्याओं का आधार है। सहयोग और सहिष्णुता पर आधारित भूमि-स्वामित्व की कल्पना के साकार हो जाने पर, भारत के आर्थिक-सामाजिक ढांचे का पुर्ननिर्माण बहुत सरलता से हो जायेगा।

अध्याय १०

ग्रामीण जनता एवं कृषि

(Rural People and Agriculture)

ग्रामीण जनता का भूमि से जो सम्बन्ध है उसका मूल कारण जीविकोपार्जन हेतु कृषि करना है। कृषि ग्राम जीवन की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक तथा राजनैतिक शक्तियों का केन्द्र है। कृषि और ग्रामीण जन का सम्बन्ध इतना घनिष्ट है कि ग्रामीण जन कृषक कहलाते हैं। जीवन की समस्त क्रियाओं एवं सामाजिक सम्बन्धों का आधार कृषि है। इस दृष्टि से ग्रामीण जन के अध्ययन में कृषि को नहीं भुलाया जा सकता है। ग्रामीण समाजशास्त्र में जिस प्रकार ग्रामीण जन का अध्ययन महत्वपूर्ण स्थान रखता है उसी प्रकार ग्रामीण सामाजिक जीवन में कृषि का बड़ा महत्व है। ग्रामीण समाज का ज्ञान कृषि के अध्ययन के बिना पूर्ण नहीं हो सकता है। कृषि प्रधान देशों के लिये तो ग्रामीण समाजशास्त्र में कृषि का अध्ययन एक अनिवार्य विषय है। अत: कृषि हेतु भूमि सीमा निर्धारण एवं कृषि की विभिन्न विधियों का अध्ययन करना बड़ा महत्वपूर्ण है।

कृषि व्यवस्था

(Agricultural System)

ग्रामीण जनता के कृषि-विचार, कृषि-संस्कृति, कृषि-विशेषज्ञता, प्रयत्न, अभ्यास, कृषि-प्रणालियां, आदतें, प्रथायें व रीतियां आदि समाजशास्त्रीय दृष्टि से यहां प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इस आधार पर हम गामीण जन व भूमि के समम्बन्धों को पूर्णतया स्पष्ट कर सकेंगे। विश्व में साधारण कृषि क्षेत्र की सभी प्रमुख क्रियायें स्थानीय तथा सामुदायिक स्तर पर चलती हैं। अत: कृषि व्यवस्था के अनुसार सामाजिक संगठन निर्धारित होता है। कृषि व्यवस्था के अध्ययन द्वारा हम ग्रामीण जीवन की संस्कृति का समुचित चित्र खींच सकते हैं। कृषि व्यवस्था में ग्रामीण जन की सभी क्रियायें आ जाती हैं जो वह अपने जीवन काल में करता है। ग्रामीण जीवन में सामाजिक क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं तथा कृषि क्रियाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है। वन्य जातियों द्वारा कृषि में लिगानुसार श्रम विभाजन, स्त्रियों द्वारा बीज बोना, उर्वरा शक्ति के लिये धार्मिक क्रियायें व सिंचाई हेतु ईश्वरोपासना आदि सब सामाजिक जीवन का स्पष्ट चित्र

हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण कृषि व्यवस्था के द्वारा सामाजिक स्तर, रहन सहन का स्तर व सांस्कृतिक प्रगति का ज्ञान हम प्राप्त कर सकते हैं। विश्व के प्रगतिशील देशों में कृषि व्यवस्था में आमूल परिवर्तन उनके सामाजिक संगठन का द्योतक है। इस प्रकार से यहां यदि हम कृषि व्यवस्था पर विचार करें तो इसके साथ सामाजिक महत्व का स्पष्ट प्रतिवेदन कर सकेंगे। कृषि व्यवस्था के अनुसार हमें एक देश के कृषक इतने सुखी और समुन्नत दिखाई देते हैं और वे इतने भिन्न हैं उस देश से जहां भिन्न कृषि की पद्धतियों का अनुसरण किया जाता है। इस सम्बन्ध में स्मिथ ने कहा है, "उदाहरणत: एशिया में अधिकांशत: वह देखेगा कि साधारण मनुष्य अकल्पनीय निम्न है। यूरोप में भी वह पायेगा कि उत्तरी पश्चिमी यूरोप के लोग अधिक सम्मान व सेवाओं का सुख लेते हैं उसी क्षेत्र के दक्षिणी तथा दक्षिणी पूर्वी भाग के लोगों से।"[1] इस प्रकार से जीवन स्तर पर भी प्रभाव डालने के साथ साथ मानवीय क्षमता, प्राकृतिक सुविधाओं का उपयोग, उत्पादन, वितरण व्यवस्था तथा सामाजिक सम्बन्धों का भी ज्ञान कृषि व्यवस्था से प्राप्त होता है। अत: समाजशास्त्रीय क्षेत्र में विशेषत: ग्रामीण जीवन के अध्ययन में हमें कृषि व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। भूमि स्वामित्व के अध्ययन में हमने देखा कि सदा भूमि पर तीन शक्तियों का पारस्परिक अधिकार रहने से समाज में वर्ग विभाजन हो गया है। आर्थिक दृष्टि से भूमि की उर्वरा शक्ति का सदुपयोग नहीं हो पाता है। वर्गभेद व वर्ग संघर्ष के कारण सामाजिक विघटन बना रहता है। भूमि की सीमा की समस्या भी उल्लेखनीय है। कृषि हेतु भूमि सीमा निर्धारण का रहन सहन व कृषि विधि पर तो प्रभाव पड़ता ही है बल्कि सामाजिक सम्बन्धों में तथा सामाजिक स्तरण में भी महत्वपूर्ण स्थान है। छोटे क्षेत्रफल वाली भूमि के कृषकों में सदा संघर्ष बना रहता है। छोटे पानी की नालियां एवं खेतों के मेड़ों के प्रश्नों पर मुकदमें चला करते हैं। इसके अतिरिक्त एक विशेष वर्ग का आधिपत्य बना रहता है जिससे कृषक के साधारण ज्ञान व स्वतन्त्रता का ह्रास होता रहा है। इस प्रकार से सामाजिक क्षेत्र में व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। अधिक व विस्तृत भूमि वाले व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से

1. "In most of Asia for example, he will note that the lot of common man is almost inconceivably low. In Europe too he will find that the peoples of North Western Europe enjoy much larger amounts of goods and services than those of the Southern and South-Eastern parts of the continent." T. Lynn. Smith : 'Sociology of Rural life'; p. 325.

सम्पन्न रहते हैं। वे लोग सफलता से विकसित विधियों का प्रयोग कर लेते हैं। इसके अलावा सामाजिक क्षेत्रों में भी उनका स्तर उच्च रहता है। इस दृष्टि से सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कृषि भूमि के क्षेत्र व आकार का बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतः हम यहां कृषि-भूमि के आकार पर पहले विचार करना आवश्यक समझते हैं।

कृषि भूमि का आकार (Size of Farming)

ग्रामीण अथवा कृषि जन के लिये भूमि का बड़ा महत्व है। भूमि का आकार आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का निर्धारण करता है। भूमि के आकार के साथ ही साथ भूमि की उर्वरा-शक्ति, सिंचाई के साधनों का प्रादुर्भाव एवं बाजार के समीप होना भी आवश्यक तत्व है। इसलिये भूमि के आकार के बारे में कोई निश्चित मन्तव्य प्रकट नहीं किया जा सकता है। प्रायः दो आकारों में खेती की जाती है। विस्तृत आकार (Large Scale) तथा सीमित आकार (Small Scale)। विस्तृत खेती को औद्योगिक क्षेत्र में उपयुक्त माना जाता है। श्रम, पूंजी व व्यवस्था की इसमें काफी बचत होती है। इसके अतिरिक्त विस्तृत कृषि में विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक अनुदानों का प्रयोग सम्भव हो सकता है। इस प्रकार की व्यवस्था में वर्गभेद तथा शोषण की सम्भावना नहीं रहती है। उत्पत्ति की मात्रा में वृद्धि होने के साथ समय की बचत इस व्यवस्था में सम्भव हैं। श्रम विभाजन की समुचित सम्भावना इस व्यवस्था में हो सकती है जिससे वर्गभेद व सामाजिक असमानता नहीं रह पाती है।

भारतवर्ष में विभिन्न कारणों से विस्तृत आकार में खेती सम्भव नहीं है। क्योंकि भारतीय किसान की क्षमता विस्तृत निरीक्षण के योग्य नहीं है। यहां साधारणतः सीमित खेती ही होती है। भारतीय धार्मिक बन्धन भी ऐसे हैं जिनके फलस्वरूप ग्रामीण जन के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया है। भारत में कृषि का आकार छोटा होने का कारण एक यह भी है कि यहां कृषि व्यवसाय उद्योग हेतु नहीं किया जाता है। भारत के कृषकों का दृष्टिकोण जीविकोपार्जन करना है। कृषि एक पारिवारिक व्यवस्था है न कि आर्थिक संरचना। इस दृष्टि से भारतीय किसान अपने छोटे छोटे खेतों में अपनी आवश्यकतानुसार विभिन्न फसलों को बोता है। भारतीय ग्रामीण कृषक की व्यक्तिगत धारणा ने अब बड़ा विकृत रूप धारण कर लिया है। जनसंख्या की वृद्धि होने से खेतों को विभिन्न छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित कर दिया गया है। यहां की कृषि अनार्थिक कृषि कहलाती हैं। भारत में कृषि भूमि का आकार अत्यन्त सीमित होने के साथ साथ बिखरा हुआ भी है। इस व्यवस्था से सामाजिक ढाँचे में भी उल्लेखनीय कुव्यवस्था

रहती है। ग्रामीण जन मुकदमेबाजी के शौकीन इसी कारण से कहलाते हैं। यह एक महान सामाजिक समस्या है। अब हम इसके कारणों का पता लगायेंगे।

कृषि भूमि के सीमित आकार के कारण
(Causes of Fragmentation of Farming)

भारत में भूमि के विभिन्न टुकड़े होने के कई कारण हैं। भारतीय कृषकों की सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार की है कि पिता की मृत्यु के बाद सम्पत्ति का वितरण आवश्यक है। भारतीय ग्रामीण इतने विकसित नहीं हैं कि वे सामूहिक रूप से कृषि कर सकें। यहां कृषि एक पारिवारिक व्यवस्था है। इस दृष्टि से विभाजन वांछनीय है। हम संक्षेप में भूमि विभाजन के कारणों पर प्रकाश डालते हैं:—

(१) भूमि पर बढ़ता हुआ भार (Growing Pressure on Land)

यहां जनसंख्या की वृद्धि इस प्रकार से हो रही है कि भूमि भार का वहन नहीं कर सकती है। भूमि के द्वारा जीविका प्राप्त करने वालों की संख्या प्रति वर्ष बढ़ती है जबकि भूमि नहीं बढ़ती।

(२) वंशानुसंक्रमण व उत्तराधिकार के नियम
(Laws of Heredity and Succession)

पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में यहां प्रत्येक व्यक्ति जागरूक रहता है। इस दृष्टि से वह शीघ्र अपना अधिकार प्राप्त करने की इच्छा रखता है। भारतीय ग्रामों में सहिष्णुता एवं सहयोग की शिक्षा का अभाव होने से प्रत्येक व्यक्ति अपना हिस्सा अलग कर खेती करना चाहता है।

(३) अन्य उद्योगों की अनुपस्थिति
(Absence of other Industries)

ग्रामीण जीवन में कृषि को ही एकमात्र सर्वसम्पन्न उद्योग माना जाता है। कृषि करना व भूमि रखना ग्रामीणों के लिये सामाजिक उच्चता होती है। कभी कभी जानवरों की संख्या के अनुसार सामाजिक स्तर निर्धारित किये जाते हैं। इस प्रकार से प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग खेती करना चाहता है। अतः अपनी जमीन का भाग लेने को उद्यत रहता है।

(४) भूमि का उच्च मूल्य व ऋण गृस्तता
(High Price of land and Indebtedness)

ग्रामीण जनता के लिये सबसे मूल्यवान व महत्व की वस्तु भूमि होती

है। इसलिये राज्यों ने सदा भूमि का मूल्य उच्च रक्खा है। ग्रामीण जनता में प्रथायें, अशिक्षा व असहयोग आदि पाये जाते हैं जिनके कारण वह हमेशा ऋणी रहते हैं। यहां तक कि एक कृषक के ऊपर कई पीढ़ियों का ऋण रहता है। ग्रामीण साहूकारों की कूटनीति व अधिकारियों के शोषण के फलस्वरूप भी भूमि के टुकड़े हो जाते हैं।

(५) निराशावादी दृष्टिकोण (Passivemistic Attitude)

ग्रामीण जनता सादगी व साधारणता में विश्वास करती है। किसी प्रकार का सांसारिक प्रलोभन उनको नहीं होता है। वे अपनी भूमि के बारे में अधिक चिन्तित नहीं होते हैं। जीविकोपार्जन ही उनका एक मात्र ध्येय रहता है। वे अपने जीवन की सीमित से सीमित आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास करते हैं।

(६) व्यक्तिगत विचारधारा (Individualistic Tendency)

ग्रामीण जनता में व्यक्तिगत धारणा का भी विशेष बाहुल्य होता है। वह अपने स्वयं की आवश्यकताओं का ही ध्यान रखता है। उसका सदा यह प्रयत्न रहता है कि मैं और मेरा परिवार भरण पोषण कर लें। इसलिये अपना खेत, अपनी झोंपड़ी व अपने पशु ही उसका संसार है।

(७) विस्तृत खेती की असंभावना
(Impossibility of Large Scale Cultivation)

उक्त कारणों के अतिरिक्त भूमि के सीमित आकारों में बाँटने के कारण विस्तृत खेती का होना सम्भव नहीं है। कृषकों में इतनी क्षमता नहीं होती कि वे सामूहिक रूप से विस्तृत खेती करें, वैज्ञानिक मशीनों का प्रयोग कर सकें। विशाल खेतों को सम्भालने के लिये कृषकों के पास इतना धन भी नहीं होता है। गाँवों में सहकारी समितियों का सदुपयोग नहीं होने से भी आकार छोटे ही विद्यमान हैं।

(८) परम्परागत प्रणालियां (Traditional Methods)

प्रारम्भ में गांवों की संरचना ही इस प्रकार हुई है कि वे दूर सीमित खेतों पर जीवन निर्वाह कर लेते थे। इसके अतिरिक्त वे अपने अपने छोटे खेतों में अपने पुरातन हल व पशुओं के उपयोग से सन्तुष्ट हैं। विशाल खेती, सामूहिक खेती तथा वर्तमान अनुसन्धानों के प्रयोग उन्हें अच्छे नहीं लगते हैं। ग्रामीण जन इतने रूढ़िवादी व लकीर के फकीर हैं कि वे अपने पुरातन व परम्परागत

सामाजिक ढांचे में ही सुखी हैं। कृषि ग्रामीण जनता की सामाजिक व्यवस्था है।

कृषि भूमि के आकारों के अन्य रूप
(Other forms of Size of Farming)

कृषि भूमि के आकारों का वर्गीकरण व इसके विभिन्न रूपों को व्यक्त करना अति दुष्कर कार्य है। इसका कारण यह है कि भूमि आकारों के निर्धारण में उसकी उर्वरा शक्ति, स्थिति, बाजार से समीपता आदि तत्व भी महत्पूर्ण कार्य करते हैं। कृषिभूमि से सदा यही तात्पर्य लिया जाता है कि वह सम्बन्धित परिवार के भरण पोषण हेतु उत्पादन देवें। इसके अतिरिक्त भूमि के आकार निर्धारण में देश, काल व गति का प्रभाव पड़ता है। इसमें सामाजिक व राजनैतिक कारक भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह सदा से सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित होते हैं। इसके उपरान्त भी हम कुछ पश्चिमी देशों में प्रचलित व्यवस्थाओं का संक्षेप में अध्ययन करेंगे:—

(१) मिनी फुंडिया खेती (Mini Fundia Cultivation)

यह व्यवस्था दक्षिणी अमेरिका के पहाड़ी प्रदेशों में प्रचलित है। यहां बहुत ही छोटे छोटे खेत होते हैं जिनका क्षेत्रफल एक एकड़ के करीब होता है। यह व्यवस्था एक परिवार का भरणपोषण करने में भी असमर्थ रहती है। यह खेत सहायक उद्योगों के रूप में बोये जाते हैं। यहां के रहने वाले लोग उद्योगों में भी रूचि लेते हैं तथा साथ ही साथ सहायक उद्योग के रूप में इन खेतों में फसल बो लेते हैं।

(२) पारिवारिक आकार खेत (Family Sized Farms)

इस प्रकार के खेत अमेरिका की विशेषता को प्रगट करते हैं। इसमें परिवार के समस्त सदस्यों को कार्य मिलने की व्यवस्था होती है। यहां अन्य सहायक उद्योगों को कार्यान्वित करने की सम्भावना नहीं होती। इस प्रकार के खेतों में सब प्रकार की मशीनों का उपयोग हो सकता है। इस व्यवस्था में एक परिवार स्वयं अपने खेत पर मकान बनाकर रहता है। अपने कृषि उद्योग की सारी व्यवस्था वर्तमान ढंग से करता है। अमेरिका में खेत मध्यम श्रेणी के कृषक परिवारों के पास अधिकांशतः पाये जाते हैं।

(३) सामूहिक विस्तृत कृषि भूमि (Co-operative Large Farming)

इस व्यवस्था में किसी व्यक्तियों के समूह का भूमि पर पूरा स्वामित्व होता है और सामूहिक रूप से इसमें कृषि की जाती है। अमेरिका में इस प्रकार

के खेतों में तम्बाकू की खेती की जाती है। कहीं कहीं पर इन विस्तृत खेतों में शक्कर के कारखाने स्थापित कर दिये गये हैं। यह व्यवस्था एक प्रकार से उद्योग के अनुसार संचालित होती है। इसमें निरीक्षण, श्रमविभाजन, विशेषज्ञता, यान्त्रिकता व अन्य कल्याणकारी सेवाओं की व्यवस्था होती है। यह कृषि का आर्थिक व औद्योगिक रूप है। इसमें सामाजिकता का पूर्ण रूपेण अभाव होता है। देश की राजनैतिक व औद्योगिक प्रगतियों के साथ इस प्रकार की कृषि व्यवस्था की प्रगति होती है।

हमने ग्रामीण जन के प्रमुख आधार कृषि के आकारों के विभिन्न रूपों पर विचार किया। इसमें हमने यह देखा कि भारत में कृषि भूमि (Holding) की व्यवस्था सामाजिक आधारों पर खड़ी है। कृषि उद्योग नहीं बल्कि सामाजिक व्यवस्था है जिसमें आत्मनिर्भरता का पुट विशेषत: है। भारत की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए यह अत्यन्त अनुचित है। पहले तो जनसंख्या का भूमि पर भार है, और उस पर औद्योगीकरण तथा नागरीकरण जैसी प्रक्रियायें भारत की अवनति का कारण बनी हुई हैं। हमें शीघ्र गांवो में सामूहिक खेती का प्रचलन करना होगा। तदोपरांत ही ग्रामीण जीवन का विघटन समाप्त हो सकता है। ग्रामीण जीवन मे कृषि व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने से ही हम ग्रामीण भारत की सामाजिक दशा में उन्नति कर सकते हैं। कृषि क्षेत्र में भारत में भी विभिन्न प्रणालियाँ आज दृष्टिगोचर हो रही हैं। हम इस पर भी विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

भारत में कृषि व्यवस्था

(System of Agriculture in India)

हम कृषि भूमि के आकार (Size of Land Farming) में इस बात पर विचार कर चुके हैं कि भारत में कृषि सीमित आकार में होती है। यहां कृषि विभिन्न टुकड़ों (Fragmentation of Land farming) में विभाजित है। जिससे देश को आर्थिक क्षेत्र में भारी क्षति होती है। इतना ही नहीं लेकिन ग्रामीण समाज का सामाजिक ढांचा भी विघटित (Disorganised) अवस्था में है। भारत में कृषि का रूप सामाजिक होने के कारण व्यक्तिगत परिवार की उदरपूर्ति हेतु ही यह कार्य किया जाता है। यहां कृषि कोई अलग आर्थिक संगठन नहीं बल्कि इसका समाजिक एवं सांस्कृतिक आधार है। इसके साथ साथ हम जनसंख्या वृद्धि का भीषण प्रकोप, औद्योगीकरण का प्रभाव तथा नागरीकरण आदि का भयंकर रूप भी देख रहे हैं। जिसके

फलस्वरूप सीमित कृषि क्षेत्र में बेकारी व अन्य बुराइयां घर किये हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में कृषि व्यवस्था अत्यन्त ही पुरातन व परम्परागत है। यह व्यवस्था वर्तमान सामाजिक घटना (Social Phenomenon) के बिल्कुल योग्य नहीं है। सामान्यतः भारत में कृषि क्षेत्र में निम्न समस्यायें प्रतिलक्षित होती हैं।

कृषि समस्यायें(Agricultural Problems)

भारतीय कृषि व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण हो गई है। इस क्षेत्र में अनेक ऐसी समस्यायें हैं जो सामाजशास्त्रीय दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन समस्याओं का वैज्ञानिक विश्लेषण एवं निराकरण के प्रस्तावित कार्यक्रम इस दिशा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अब हम प्रमुख भारतीय कृषि समस्याओं पर विचार करेंगे :—

(१) अशिक्षित व अप्रशिक्षित कृषक
(Illiterate and Untrained Peasants)

कृषि ढांचे का अभौतिक तत्व ही जब अव्यवस्थित हो तो कृषि उन्नति की आशा करना व्यर्थ है। भारतीय कृषक ६६ प्रतिशत अशिक्षित है साथ ही उसमें कृषि सम्बन्धी प्रशिक्षण का भी अभाव है।

(२) निम्न आर्थिक स्थिति (Low Economic Condition)

कृषक की निम्न आर्थिक स्थिति के फलस्वरूप कृषि उन्नति सम्भव नहीं। कृषक का जीवन स्तर जब निम्न कोटि का होगा अर्थात् जब उसे अपने भरण पोषण की सुविधायें प्राप्त नहीं होंगी तो वह स्वप्न में भी कृषि विकास अथवा कृषि उन्नति की कल्पना नहीं कर सकता। भारत का कृषक विश्व के कृषकों की तुलना में सब से गरीब है।

(३) कृषि भूमि के टुकड़े (Fragmentation of Land)

यद्यपि हम इस समस्या पर कृषि भूमि के आकार (Size of farming) शीर्षक में वर्णन कर आये हैं। परन्तु इस समस्या का सामाजिक दृष्टि से महत्व होने के कारण यह यहां भी उल्लेखनीय है। भारत की सामाजिक व्यवस्था एवं उत्तराधिकार के नियमों से यह समस्या विशेष रूप से प्रभावित है। इसलिए भारतीय कृषि अनार्थिक (Uneconomic) कहलाती है।

(४) बंजर व पड़त भूमि (Waste Land)

भारत कृषि प्रधान देश होने के उपरान्त भी यहाँ आधी से अधिक भूमि पर कृषि नहीं होती। भारत विश्व के क्षेत्रफल का पंचम भाग है। प्रारम्भ में भूमि की उपयोगिता पर किसी का भी ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। जनसंख्या वृद्धि की गुणात्मक प्रकृति एवं उत्पादन वृद्धि की प्रकृति परस्पर विरोधी है। कृषि की संख्यात्मक प्रवृत्ति होने के फलस्वरूप वर्तमान युग में यह महान समस्या बन गई है।

(५) अनुपयुक्त सिंचाई के साधन
(Inadequate means of Irrigation)

भारतीय कृषि की प्राकृतिक प्रवृत्ति व दैवीय विश्वास ने सिंचाई के साधनों को विकसित नहीं किया। भारतीय कृषक प्रतिवर्ष दैवीय शक्ति की आराधना करता है एवं वर्षा पर निर्भर रहता है। भारतीय कृषि इसीलिए मानसून का जुआ (Gambling of rains) कहलाती है। वर्तमान युग में कुछ सीमित साधनों में भी परम्परागत अन्धविश्वास पाए जाते हैं।

(६) पुरातन कृषि प्राविधियों में विश्वास
(Faith in old Agricultural Techniques)

भारतीय कृषि की एक यह भी विशेषता है कि यहाँ कृषि प्राविधियों में रूढ़िवादिता पाई जाती है। कृषि कार्य में कृषक बीज, खाद व पुरातन यन्त्रों का प्रयोग करता है।

(७) जमीन कटना (Erosion)

भारतीय कृषि क्षेत्र की यह भी एक महान समस्या है। जमीन कट जाने पर उत्पादन में ह्रास होता है। नालियों के कटाव (Gully erosion) को दीर्घ काल से कोई नहीं रोक सका है।

(८) फसल की बीमारियां (Crop Diseases)

भारत में कृषि प्रणालियों का प्राचीन रूप स्थायी होने से नवीन आविष्कारों का प्रयोग नहीं किया जाता है। फलस्वरूप विभिन्न बीमारियां, कीटाणु व जन्तु फसलों को हानि पहुँचाते हैं।

(९) दुर्बल पशु (Weak Animals)

भारतीय कृषि की यह भी विशेषता है कि यहां कृषि में पशुशक्ति का

प्रयोग किया जाता है। प्रथम तो यन्त्र शक्ति से पशु शक्ति उत्पादन क्षेत्र में ह्रास लाती है। द्वितीय इस पशु शक्ति का पूर्ण रूप से सदुपयोग नहीं किया जाता है। पशु दुर्बल, क्षीण व अस्वस्थ होते हैं।

(१०) विकृत विक्रय व्यवस्था
(Unorganised Marketing System)

भारतीय कृषि अनार्थिक (Uneconomic) है। कृषि उत्पादन के क्रय तथा विक्रय की यहाँ समुचित व्यवस्था नहीं है। यातायात के साधनों का अभाव होने से ग्रामीण जीवन की अन्य आवश्यकताएं भी समुचित रूप से पूर्ण नहीं होतीं।

(११) दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था (Defective Land Tenure)

ग्रामीण जन व भूमि सम्बन्ध शीर्षक अध्याय में हम इस तथ्य पर विचार कर आये हैं कि भारत में कृषि की अवनति का कारण दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था भी है। कृषि क्षेत्र की यह भी एक महान् समस्या है।

(१२) विनष्ट कुटीर उद्योग (Destroyed Cottage Industries)

कृषक कृषि के साधनों एवं प्राविधियों में क्षमता नहीं रख पाता इस कारण उसे जीवन निर्वाह की चिन्ता लगी रहती है। कृषि के अतिरिक्त उसके पास आय के अन्य कोई साधन नहीं हैं। भारतीय ग्रामीण कुटीर उद्योगों का विनाश हो चुका है।

(१३) भूमिहीन मजदूर (Landless Labourers)

भारत में कृषि हेतु भूमि कम होने के कारण व भूमि व्यवस्था में अभाव होने के कारण तथा जनसंख्या का भूमि पर भार अधिक होने के फलस्वरूप इस समस्या का भी उद्रेक हो गया है।

भारत में कृषि सुधार
(Agricultural Reforms in India)

कृषि स्वरूपों के सामान्य विश्लेषण के बाद हमने भारतीय सन्दर्भ में कृषि समस्याओं का उल्लेख किया। इससे भारतीय कृषि व्यवस्था की विशेषताओं का ज्ञान हमें प्राप्त हुआ। कृषि समस्याएं भारतीय कृषि की विशेषताओं को प्रगट करती हैं। समस्याओं के विश्लेषण के उपरान्त सुधार का विवेचन करना आवश्यक होता है। अतः अब हम कृषि सुधार के प्रति अपना ध्यान आकर्षित करेंगे।

कृषि सुधारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(Historical Background of Agricultural Reforms)

कृषि और सरकार का घनिष्ट सम्बन्ध है। भूमि पर कृषक जो कुछ भी उत्पन्न करता है राज्य उसमें से कुछ अंश कर के रूप में प्राप्त करता है। प्राचीन काल में भूमि पर राजाओं का अधिकार था। राजा लोग भूमि के सुधारों के प्रति भी प्रयत्नशील थे और कृषक आज की अपेक्षा राजाओं के काल में अधिक सुरक्षित तथा सुखी थे। आधुनिक युग में यदि दो देशों में युद्ध छिड़ जाये तो साधारण जनता के जीवन की ही हानि होती है जबकि प्राचीन काल में युद्ध होने पर सैनिक खेतों के समीप से गुजर जाया करते थे तो भी कृषक अपने कार्य छोड़ देते थे। ब्रिटिश काल में ब्रिटिश शासकों ने भारतीय जनता से धन खींचना तो प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु वापस करने के लिए या उन साधनों की रक्षा के लिए उन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किये। परिणामतः भारतीय कृषि दिन प्रति दिन विनष्ट होती गई। सन् १८६६ ई० में सर्वप्रथम कृषि की उन्नति के लिए विचार उत्पन्न हुआ। लेकिन इस पर कोई विशेष कार्य नहीं किया गया। सन् १८८० ई० में दुर्भिक्ष कमीशन ने कृषि की उन्नति एवं सुधार के सम्बन्ध में अपने विशेष सुझाव दिये। परिणामतः इस दिशा में सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ। सन् १९०५ ई० में एक केन्द्रीय कृषि बोर्ड (Central Agricultural Board) स्थापित किया गया। इस बोर्ड ने उन्नत खाद, अच्छे बीज, पौधों के रोग व निवारण, नवीन औजारों, यन्त्रों का उपयोग, पशु चिकित्सा एवं नवीन कृषि प्रणाली के लिए विशेष सुझाव दिया और सरकार ने प्रयत्न प्रारम्भ भी कर दिये किन्तु इस बोर्ड द्वारा ये कार्य अत्यन्त ही व्यय साध्य थे। परिणामतः ये प्रयत्न अधिक सफल न हो सके। सन् १९२६ ई० में शाही कृषि आयोग (Royal Agricultural Commission) नियुक्त किया गया। सन् १९३५ ई० से वास्तविक अर्थों में ग्रामोन्नति के कुछ प्रयत्न प्रारम्भ हुए। सन् १९३७ ई० में विभिन्न प्रान्तों में कृषि सुधार सम्बन्धी विधियां पारित की गईं और प्रान्तीय शासन के आधार पर कृषि सुधार सम्बन्धी प्रयत्न प्रारम्भ हुए। लेकिन कृषि, केन्द्र के स्थान पर राज्यों का उत्तरदायित्व माना जाने लगा। इस दृष्टि से इस दिशा में उल्लेखनीय विकास एवं प्रगति सम्भव नहीं हो सकी।

द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभावों ने कृषि की अवस्था को और भी अवनत कर दिया। भारत विदेशों से अन्न मंगाने लगा। अन्न समस्या भारत की प्रमुख समस्या बन गई। परिणामस्वरूप विभिन्न प्रयत्न प्रारम्भ हुए। अधिक अन्न

उपजाओ आन्दोलन (Grow-More Food Compaign) इस दिशा में उल्लेखनीय है। इसके उपरान्त नवीन नदी घाटी योजनायें पारित की गईं। कृषि सुधारों के अन्तर्गत जमींदारी उन्मूलन विधेयक पास हुए। यू० पी० जमींदारी उन्मूलन नियम इस दिशा में अग्रसर रहा।

भारतीय कृषि व्यवस्था की स्थिति अत्यन्त अवनत व शोचनीय होने के कारण उपरोक्त प्रयत्न प्रभाव पूर्ण नहीं हो सके। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय अन्न समस्या (Food Problem) आदि अनेक ऐसी समस्यायें थीं जिनका निराकरण अत्यन्त आवश्यक था। अतः अब हम स्वतन्त्र भारत में कृषि सम्बन्धी सुधारों पर प्रकाश डालेंगे।

भारत में कृषि योजनायें
(Agricultural Planning in India)

भारत की पंचवर्षीय योजनायें कृषि योजनायें ही कहलाती हैं। इन योजनाओं का प्रमुख भाग कृषि उत्थान की ओर ही प्रयत्नशील है। हम यहां संक्षेप में प्रत्येक योजना का प्रस्तावित लक्ष्य एवं सफलताओं पर विचार करेंगे।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन १६५१-५६
(First Five Year's Plan 1951-56)

प्रस्तावित लक्ष्य (Proposed Aims)

१.	कृषि	....	३६०.४३ करोड़	१७.४ प्रतिशत
२.	सिंचाई और शक्ति	....	५६१.४१ करोड़	२७.२ प्रतिशत
३.	परिवहन और संचार	....	४६७.१० करोड़	२४.० प्रतिशत

सफलताएँ (Achievements)

२० प्रतिशत अन्न में वृद्धि।

४५ प्रतिशत कपास में वृद्धि।

८ प्रतिशत तिलहन में वृद्धि।

एक करोड़ साठ लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में सिंचाई की सुविधायें बढ़ी।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन १६५६-६१
(Second Five Year's Plan 1956-61)

प्रस्तावित लक्ष्य (Proposed Aims)

१.	कृषि	....	५६८ करोड़	११.८ प्रतिशत
२.	सिंचाई	....	६१३ करोड़	१६.० प्रतिशत
३.	परिवहन और संचार	....	३८५ करोड़	२८.६ प्रतिशत

सफलताए' (Achievements)

द्वितीय योजना की सफलताएं भारत सरकार ने अभी तक प्रकाशित नहीं की हैं। ऐसी आशा की जाती है कि :—

१५ प्रतिशत अन्न में वृद्धि होगी।
३१ प्रतिशत कपास में वृद्धि होगी।
२७ प्रतिशत तिलहन में वृद्धि होगी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना १९६१-६६
(Third Five Year's Plan 1961-66)

प्रस्तावित लक्ष्य (Proposed Aims)

कृषि और सिंचाई	....	१५०० करोड़	१५ प्रतिशत
शक्ति	....	७०० करोड़	७ प्रतिशत
परिवहन और संचार	....	१,७०० करोड़	१७ प्रतिशत

सामुदायिक विकास (Community Development)

कृषि आयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए भारत सरकार ने सामुदायिक योजनाओं का निर्माण किया है। यह योजना गांवों में योजना के क्रियात्मक रूप से सम्बन्धित है। इस योजना का ध्येय सरकार द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रमों में जन-सहयोग प्राप्त करना है। इन योजनाओं ने कृषि क्षेत्र में काफी सफलता प्राप्त की है। ऐसी आशा की जाती है कि सन् १९६६ ई० तक अर्थात् तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक सम्पूर्ण ग्रामीण जनसंख्या इस योजना से प्रभावित होगी।

यद्यपि सामुदायिक विकास कार्यक्रम का क्षेत्र विस्तृत है। इस योजना में कृषि विकास के अन्तर्गत सामुदायिक विकास कार्यक्रम निम्न कार्य सम्पादित करता है :—

१. सिंचाई के साधनों का विकास।
२. विकसित बीजों का वितरण।
३. उन्नत खेती का प्रदर्शन।
४. विकसित कृषि यन्त्रों का प्रयोग।
५. उन्नत खादों का वितरण।
६. बागवानी को प्रोत्साहन।
७. कृषि प्राविधि का प्रशिक्षण।
८. भूमि को कृषि योग्य बनाना।

सामुदायिक विकास योजना का लक्ष्य तथा सफलताओं के सम्बन्ध में यदि हम विचार करें तो हमें प्रतीत होगा कि प्रथम आयोजन काल में इस आयोजन के लिये १०१ करोड़ रुपयों की व्यवस्था थी। इस योजना काल में १२०० खंड निर्मित हुए और ७६८ लाख जनता को इससे लाभ हुआ। दूसरी योजना में २०० करोड़ रुपयों की व्यवस्था थी। दूसरी योजना के अन्तर्गत १६.५ करोड़ ग्रामीण जनता इससे प्रभावित हुई।

इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त कृषि के सुधारों की दिशा में महत्वपूर्ण सफलताएं प्राप्त हुई हैं। इन सफलताओं का कारण ग्रामीण पुनर्निर्माण सम्बन्धी अन्य योजनाओं का भी प्रभाव है। कृषि विकास सम्बन्धी अन्य विचार-धारायें भी इस दिशा में उल्लेखनीय हैं।

(१) सहयोगी खेती (Co-operative Farming)

हमारे देश भारतवर्ष की ग्रामीण जनता के भूमि सम्बन्धों को सुसंगठित करने के लिये सबसे पहली आवश्यकता भूमि को संग्रहित करने की है। भूमि संग्रहण द्वारा खेती की प्रायः चार विधियां प्रचलित हैं। १. राज्य कृषि व्यवस्था (State Farming System)। २. संग्रहित खेती व्यवस्था (Collective Farming System)। ३. सामूहिक खेती व्यवस्था (Corporative Farming System)। ४. सहयोगी खेती व्यवस्था (Co-operative Farming System)। सहयोगी कृषि व्यवस्था प्रारम्भ में बुलगेरिया, इटली व प्लेसटाइन में प्रारम्भ हुई थी। इसमें उत्पादन का स्वामित्व सम्पूर्ण समाज का होता है। भारत के लिए यह व्यवस्था अत्यधिक उपयुक्त व्यवस्था बतलाई जाती है। सराईया (Saraiya) ने अपनी रिपोर्ट में कहा है, "हम इस मत के हैं कि यह वह प्रणाली है जिसकी इस देश में सफलता की पूरी सम्भावना है, जो कृषकों के स्वामित्व अधिकार को बचाकर सहयोगी खेती में मिलाता है।"[2]

(२) सामूहिक खेती (Collective Farming)

भारत में सामूहिक खेती की व्यवस्था पर भी विचार हो रहा है। यह

---

2. "We are of the opinion that the method which has a fair prospects of success in this country is the one which combines the prevention of proprietory rights of the cultivators with cooperative farming." Dr. Misra : 'An Approach to Rural and Municipal Economics'; p. 61, reproduced from the Saraiya Report on Co-operative Farming.

व्यवस्था रूस में प्रचलित है। इस व्यवस्था के अनुसार समस्त कृषि योग्य भूमि, सामूहिक रूप से समर्पित कर दी जाती है। कृषि गांवों की एक सामूहिक निवास व भोजन व्यवस्था होती है। कभी उत्पादन का कुछ भाग कृषकों के परिवारों में भी वितरित कर दिया जाता है। यह व्यवस्था प्रमुखतः यान्त्रिक आधारों पर संचालित है। लेकिन इस व्यवस्था के संचालन में विभिन्न यान्त्रिकी विशिष्टताओं का बाहुल्य होने के फलस्वरूप यह भारत में विशेष प्रभाव प्राप्त नहीं कर सकी है।

(३) सम्मिलित खेती (Joint Farming)

यद्यपि भारतीय किसान सहयोग व सम्मिलित कार्य के आदी बतलाये जाते हैं क्योंकि फसल काटना, सिंचाई करना, पशु व्यवस्था करना आदि में वे सदा से सम्मिलित प्रयत्न करते आये हैं। वर्तमान युग में कृषि कार्य में आधुनिक रूप से सहयोग के प्रयत्न किये गये लेकिन सम्भावित सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। द्वितीय विश्व युद्ध के अन्त में इस व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया था। विकास योजनाओं द्वारा नवीन भूमि हस्तगत होने पर इस विचार पर अनुभव किया गया है। इस दिशा में उत्तर प्रदेश की सफलता उल्लेखनीय है।

उक्त कृषि व्यवस्था के अतिरिक्त स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त इस क्षेत्र में काफी प्रगतिशील कार्य हुए हैं। बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनायें (Multipurpose River Valley Projects), सहकारी खेती नियोजन, सहकारी चकबन्दी समिति, भूमि उपनिवेशन आयोग, सहकारी सिंचाई समिति, सहकारी विक्रय समिति आदि हैं।

अन्य आन्दोलन (Other Movements)

भारत में कृषि की दिशा में विभिन्न क्रांतियां व आन्दोलन भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जैसा हम पहले कह चुके हैं कि भारत में कृषि की व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था है। इसमें सुधार व आमूलचूल परिवर्तन करने के लिए सामाजिक क्रान्तियों की आवश्यकता है।

भूदान व ग्रामदान आन्दोलन
(Bhoodan and Gramdan Movement)

ग्रामीण जीवन की सामाजिक-आर्थिक (Socio-economic) व्यवस्था में महान् क्रांति व आमूलचूल परिवर्तन करने के लिए यह विचार भी प्रमुख कार्य कर रहा है। यह आन्दोलन ग्रामीण समाज की समाजवादी व्यवस्था पर आधारित

है। यह रूस की सामूहिक कृषि से मिलता जुलता है। इसमें सामूहिक खेती व सामूहिक स्वामित्व के आधार पर कृषि की व्यवस्था है।

भारतीय कृषि जंगल जंगल घूमने (Nomadic) की अवस्था से संचालित थी। कृषि व्यवस्था के रूप में परिवर्तन सभ्यता के विकास के साथ साथ होता गया। देश विशेष की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाओं के अनुसार कृषि व्यवस्था निर्धारित होती है।

कृषि व्यवस्था के विषय में आज हम सहयोगी खेती (Co-operative Farming) को ही उपयुक्त मानते हैं। हमारे भारत का विधान भी सहयोगी एवं समाजवादी समाज रचना की कल्पना अपने सम्मुख रक्खे हुए है। अत: सहयोगी निर्माण के लिये सहयोगी कृषि व्यवस्था ही उपयुक्त है।

अध्याय ११

ग्रामीण समुदाय

(Rural Community)

ग्रामीण जन व जनता की समाजशास्त्रीय विशेषता को देख लेने के बाद अब हम अपना ध्यान ग्रामीण संगठन के अन्य प्रमुख पहलुओं की ओर आकर्षित करते हैं। ग्रामीण जन की विशिष्टताओं का जिस प्रकार समाजशास्त्र के क्षेत्र में विशेष स्थान है उसी प्रकार उसके सम्पर्क में आने वाले अन्य संगठनों का भी। ग्रामीण व्यक्ति स्वयं अपने बारे में प्रत्येक बात निश्चित नहीं कर लेता, बल्कि उसे अपने जीवन स्थापन हेतु अन्य लोगों से सम्बन्ध रखना पड़ता है। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति को समाज द्वारा निर्धारित परिधि में तथा नियमों के अन्तर्गत रहना पड़ता है। व्यक्ति विशेष को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ साथ अन्य लोगों की इच्छाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति को समुदाय में रहना पड़ता है जहां वह अपने जीवन के समस्त अनुभव प्राप्त करता है। समुदाय में लोगों के साथ रहना कोई सरल कार्य नहीं है, क्योंकि इस प्रकार की अवस्था में व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का दमन करना पड़ता है। ग्रामीण जीवन में सामूहिक एवं सामुदायिक जीवन का अत्यधिक महत्व है। ग्रामीण जन पूर्ण रूप से सच्चे अर्थों में सामुदायिक जीवन व्यतीत करते हैं। नगरों की तुलना में ग्रामीण सामुदायिक जीवन ही पूर्ण रूप से सफल माना जाता है। इस दृष्टि से हमको यहां ग्रामीण समुदाय अथवा सामुदायिक जीवन का अध्ययन करना आवश्यक है। ग्रामीण समुदाय के अध्ययन से पूर्व हम ग्रामीण समुदाय के महत्व को स्पष्ट करेंगे।

ग्रामीण समुदाय का महत्व

(Importance of Rural Community)

ग्रामीण समुदाय प्रत्येक देश के लिए महत्वपूर्ण है। प्रत्येक देश में अन्न का उत्पादन ग्रामों में ही किया जाता है अतः भोजन की दृष्टि से प्रत्येक देश ग्रामों पर ही निर्भर है। प्रत्येक देश की संस्कृति भी ग्रामों में ही अपने प्राचीन रूप में देखने को उपलब्ध होगी। अतः सांस्कृतिक परिवर्तनों एवं विकास का अध्ययन करने के लिए ग्रामीण समुदाय का ही अध्ययन करना होगा। अनेक

महत्वपूर्ण उद्योग-धन्धे, जैसे रूई, जूट, गन्ना, तिलहन आदि कच्चे माल के लिए ग्रामों पर ही आधारित हैं। ग्रामीण क्षेत्र सरकारी आय के अच्छे साधन हैं। इन सभी आधारों पर समाज में ग्रामीण समुदाय का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत एक कृषि प्रधान एवं ग्राम प्रधान देश है। यह उक्ति स्वयं ही ग्रामीण समुदाय के महत्व को भारत के लिए स्पष्ट कर देती है। भारत में ग्रामीण समुदाय का महत्व संक्षेप में निम्न आधारों पर निर्धारित किया जा सकता है:—

(१) अधिकांश जनसंख्या का निवास
(Inhabitation of Large Population)

भारत की ८२.७ प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में ही निवास करती है। ५ लाख ५८ हजार ग्राम भारतवर्ष में फैले हुए हैं। यहां पर नगरों की संख्या लगभग ३ हजार ही है। इस भांति यह ज्ञात होता है कि नागरिक जनसंख्या केवल १७.३ प्रतिशत ही है और ग्राम ही सम्पूर्ण जनसंख्या का एवं भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसे समय यदि हम कहें कि भारत की आत्मा ग्राम हैं तो कोई अनुचित न होगा।

(२) संस्कृति का आधार स्थल (Base ground of Culture)

भारतीय संस्कृति का यदि अवलोकन करना है तो हमें ग्रामों में ही जाना होगा। आज भी भारतीय संस्कृति का प्राचीन रूप ग्रामों में ही उपलब्ध है। इसी आधार शिला पर नागरिक संस्कृति का प्रासाद खड़ा है। नागरिक संस्कृति तो आधुनिक भारत में कोई संस्कृति ही नहीं रह गई है वरन् मात्र विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण है।

(३) राष्ट्रीय आय का स्रोत (Source of National Income)

भारत की कुल राष्ट्रीय आय लगभग ९,५३० करोड़ रुपये है। इसका ५०.२ प्रतिशत अर्थात् ४७८० करोड़ रुपये केवल कृषि एवं पशुपालन से प्राप्त होते हैं। यह आय राष्ट्रीय आय समिति के सन् १९५०-५१ के विवरण के अनुसार है। ग्रामों से सरकार को मालगुजारी के रूप में काफी धन प्राप्त होता है। यह सरकारी आय का एक प्रमुख साधन है।

(४) अन्न उत्पादन का स्रोत (Source of Food Production)

ग्राम ही अन्न उत्पादन के एक मात्र स्रोत हैं। ग्रामों से ही सम्पूर्ण देश को भोजन उपलब्ध होता है। आधुनिक भारत की अन्न समस्या का मुख्य कारण ग्रामों का पिछड़ापन ही है। यदि कृषि व्यवस्था में आवश्यक सुधार नहीं

हुए तो भारतवर्ष की जनता भूखी ही रहेगी और अन्न समस्या बराबर उग्र रूप धारण करती चली जायेगी। अन्न उत्पादन का कार्य केवल ग्रामों में ही होता है अतः खाद्य समस्या का समाधान कृषि को उन्नत करना ही है।

(५) कच्चे माल का स्रोत (Source of Raw Material)

भारतीय ग्राम कच्चे माल के भी स्रोत हैं। उद्योगों के लिए रुई, जूट, गन्ना, तिलहन आदि ग्रामीण समुदायों के द्वारा ही उपलब्ध होते हैं। अतः भारतीय ग्रामीण समुदाय अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। खनिज पदार्थों की उपलब्धि भी ग्रामों में ही होती है। घी आदि भी ग्रामीण समुदायों के द्वारा पशुपालन होने पर ही उपलब्ध होता है।

(६) श्रम का स्रोत (Source of Labour)

श्रम का मूल श्रोत भी ग्राम ही है। ग्राम के ही व्यक्ति श्रमिकों के रूप में नगरों एवं नागरीय उद्योगों में आते हैं और श्रम के द्वारा उद्योगों को चलाने में सहायता करते हैं। कहीं भी किसी भी योजना को कार्यान्वित करने के लिए ग्रामीण व्यक्ति ही श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं। अतः श्रम का मुख्य स्रोत भी ग्राम ही हैं।

(७) मानवीय शक्ति का स्रोत (Source of Human Power)

ग्रामीण समुदाय ही मानवीय शक्ति के प्रमुख आधार हैं। सैनिकों के रूप में ग्रामीण व्यक्ति ही कार्य करते हैं। ये व्यक्ति ही सैनिक व्यवसाय ग्रहण करके राष्ट्रीय शक्ति की वृद्धि करते हैं। नागरिक समुदायों के व्यक्ति विशेष रूप से मानसिक कार्यों में संलग्न होते हैं और ग्रामीण व्यक्ति शारीरिक शक्ति के कार्यों में। अतः ग्रामीण समुदाय मानवीय शक्ति के भी श्रोत हैं।

उपरोक्त आधारों पर ग्रामीण समुदाय का महत्व पूर्णरूपेण स्पष्ट हो गया होगा। अब हम ग्रामीण समुदाय के अर्थ की विवेचना करेंगे।

ग्रामीण समुदाय का अर्थ
(Meaning of Rural Community)

प्रायः समस्त विश्व को एक समुदाय माना जाता है। साधारणतः समान भौगोलिक आधार पर रहने वाले समस्त व्यक्ति एक समुदाय के अन्तर्गत आते हैं। लेकिन इन सब आधारभूत तत्वों के अतिरिक्त एक समुदाय के लिये सामान्य उद्देश्य व सामान्य भू भाग का होना आवश्यक है। हम अपने मन्तव्य

को स्पष्ट करने के लिये इस प्रकार कह सकते हैं कि समुदाय दो आधारों पर अवलंबित है। प्रथम भौगोलिक, द्वितीय सामाजिक तथा सांस्कृतिक। श्री गिन्सबर्ग ने समुदाय की परिभाषा करते हुए लिखा है, "समुदाय को एक निश्चित भू भाग में रहने वाली उस समस्त जनसंख्या के रूप में (अथवा साथ साथ भ्रमण करने वाले भ्रमणकारियों के रूप में) वर्णित किया जा सकता है जो इनके जीवन को नियंत्रित करने वाले नियमों की सामान्य व्यवस्था से बंधी हुई होती है।[1]" इसी प्रकार श्री ग्रीन ने लिखा है, "समुदाय संकीर्ण प्रादेशिक घेरे में रहने वाले उन व्यक्तियों का समूह है जो जीवन के सामान्य ढंग को अपनाते हैं। एक समुदाय एक स्थानीय क्षेत्रीय समूह है।"[2] इस प्रकार ग्रामीण समुदाय एक पूर्ण सम्पन्न समुदाय है जो आत्मनिर्भर है तथा सामाजिक सम्बन्धों की सामान्यता रखता है। साधारण रूप से सामुदायिक व्यवहार के सब तथ्य हमें ग्रामीण समुदाय में प्राप्त हो जाते हैं। अत: ग्रामीण समुदाय में सामान्य व्यवसाय, वेषभूषा व क्षेत्रीय निवास है। यह वह सामुदायिक समूह है जो समान सांस्कृतिक आधार के लिये अपनी समस्त क्रियाओं का एक केन्द्र रखता है।

ग्रामीण जीवन में सभी प्रमुख कार्य सामूहिक रूप से समान रूचियों और क्रियाओं के होते हैं। यहां की जनता में समान भाव, विचार, भाषा और आदर्श हैं। ग्रामीण समुदाय में 'हम' की भावना विशेष रूप से होती है। ग्रामीण समुदाय एक ऐसा समुदाय है जिसमें निश्चित भाषा व समान रूढ़ियों का अनुसरण किया जाता है। ग्रामीण समुदाय की परिभाषा करते हुए रविन्द्रनाथ मुकुर्जी ने लिखा है, "गांव वह समुदाय है जहां अपेक्षाकृत अधिक समानता, अनौपचारिकता, प्राथमिक समूहों की प्रधानता, जनसंख्या का कम घनत्व तथा कृषि ही प्रमुख व्यवसाय हो।"[3] एक अन्य विद्वान के अनुसार

---

1. "The community may be described as the entire population occupying a certain territory (or in, the case of nomade, habitually moving in association) held together by a common system of rules regulating the intercourse of life." M. Ginsberg : 'Sociology'; p. 41.
2. "A community is a cluster of people, living within a narrow territorial radius, who share a common way of life. A community is a local territorial group." A. W. Green : 'Sociology', Mc. Graw Hill Book Co. I.N.C. (New York) (1952) p. 195.
3. "A village is that community which is characterised

"ग्राम समुदाय से हमारा अभिप्राय व्यक्तियों के उस समूह से है जो एक निश्चित भूभाग में दीर्घ काल से साथ रहते रहते जीवन की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु स्वतः या अनजान में स्थापित हो जाता है।"[4] प्रो० रघुराज गुप्त के अनुसार "इन अर्थों में ग्राम एक पृथक और लघु समुदाय है। यह ऐसा समुदाय है जो न केवल सभी हितों की रक्षा करता है, बल्कि सदा के सहचर्य के कारण वह अपने सदस्यों के व्यवहार को बहुत प्रभावित करता है। इसलिए हम उसे एक प्राथमिक समूह कह सकते हैं।"[5] डा० अर्गल ने ग्राम समुदाय की परिभाषा करते हुए कहा है, "ग्राम एक सहवासी समुदाय है और एक सहवासी समुदाय वह क्षेत्रीय समुदाय है जिसके सदस्यों का जीवन एक दूसरे के साथ सम्बन्धित रहता है। इन क्षेत्रों में रहनेवाले लोगों का कोई विशिष्ट लक्ष्य नहीं होता है परन्तु ये जीवन के विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति साथ रहकर करते हैं और अपनी सहवासिता के कारण दूसरे समुदायों से भिन्न मालूम पड़ते हैं। इनकी संस्कृति, इनका सामाजिक संगठन, इनके आचार-व्यवहार दूसरे क्षेत्रों में अलग ही दिखाई पड़ते हैं। सामाजिक जीवन की मूल आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना, इनका मुख्य कार्य होता है। इसके सदस्यों में निवास के कारण निकटता की भावना रहती है व इसके सदस्यों में सहवासी भावना अनिवार्य रूप से होती है।"[6] मेरिल और एलरिज ने ग्रामीण समुदाय की परिभाषा करते हुए लिखा है, "ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत संस्थाओं और ऐसे व्यक्तियों का संकलन होता है, जो छोटे से केन्द्र के चारों ओर संगठित होते हैं तथा सामान्य प्राकृतिक हितों में भाग लेते हैं।"[7] ग्रामीण समुदाय की परिभाषा करते हुए प्रो० हेलन ने लिखा है, "ग्राम समुदाय व्यक्तियों का एक समूह है

---

by relative homogenity; informality, prominence of primary groups, lesser density of population and agriculture as the main occupation." प्रो० रविन्द्रनाथ मुकुर्जी : 'भारत में सामाजिक कल्याण और सुरक्षा'; सरस्वती सदन, मसूरी (1960)पृष्ठ १६१.

4. प्रो० हेलन द्वारा अवतरित :'समाजशास्त्र के मूल आधार'; (१६६०) पृष्ठ ३७७
5. प्रो० रघुराज गुप्तः 'भारत में सामाजिक कल्याण और सुरक्षा'; (१६५६) पृष्ठ २३१.
6. आर्गल, राजेश्वर : 'समाजशास्त्र'।
7. "The rural Community comprises the constallation of instruction and persons, grouped about a small centre and sharing common primary interests." Merrill and Elridge : 'Culture and Society'; p. 396.

जो एक निश्चित क्षेत्र में अपने विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति हेतु सांस्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक रूप में इस प्रकार सम्बन्ध रखता है कि दूसरे समुदायों से भिन्न मालूम पड़े।"[8] ग्रामीण निवासियों में सामुदायिक भावना बड़े प्रबल रूप से पाई जाती है। उनमें अपनी भूमि और समूह से प्रबल स्नेह होता है। ग्रामीण समुदाय की उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ग्रामीण समुदाय क्या है ? ग्रामीण समुदाय की परिभाषा करते हुए हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समुदाय वह समूह है जो ग्रामीण पर्यावरण के एक क्षेत्र में निवास करता है एवं सामूहिक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु सांस्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक रूप से सम्बद्ध होता है।

इस भांति ग्रामीण समुदाय के अर्थ की विवेचना करने के उपरांत अब हम ग्रामीण समुदाय की उत्पत्ति तथा विकास पर प्रकाश डालेंगे, जिससे ग्रामीण समुदाय को पूर्ण रूपेण समझने में निश्चय ही सहायता मिलेगी।

ग्रामीण समुदाय की उत्पत्ति एवं विकास
(Origin and Development of Rural Community)

वास्तव में देखा जाय तो सृष्टि के प्रारम्भ से समुदाय व सामूहिक जीवन का कुछ न कुछ रूप अवश्य दिखाई देता है। मानव की प्रकृति समूह में रहने की है और वह सामाजिक व्यक्ति बन गया है। सदा से वह अपनी समस्याओं को सामूहिक रूप से सुलझाता आया है। हमारे देश के प्रमुख वेद ऋगवेद में सामूहिक प्रयत्न का विवेचन मिलता है। इस वेद में इस बात का भी प्रतिवेदन मिलता है कि ऋषि लोग सम्मिलित रूप से प्रार्थना करते थे जिसे समाजमाना (Samajmana) कहकर पुकारा जाता था। इस प्रकार के सामूहिक समूहों को प्रारम्भ में समिति कह कर पुकारा जाता था। पृथ्वी सूक्त में भी इस प्रकार के संगठनों के उदाहरण मिलते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी (Dr. R.K. Mukerjee) ने लिखा है, "यह समस्त सदस्यों की सामान्य सभा के समाज अपने सदस्यों के समान अधिकार एवं स्वतन्त्रताओं के लिये कार्य करती है जिससे कि सबके मस्तिष्क में स्वतन्त्रता, समता तथा भ्रातृत्व का ज्ञान रहे।"[9] इन्होंने पुरातन समुदायों को कुला

---

8. प्रो० हेलन : "समाजशास्त्र के आधार"। भाग १ (१९६०) पृष्ठ ३७७.
9. It stands for equal right and liberties of all its members as the common assembly of the whole people, so that there should be a sense of liberty, equality and Fraterlity in the minds of all." R. K.Mukerjee.

(Kula), जाति (Jati), युग (Yuga), वर्ता (Varta), संघ (Sangha), समुदाय (Samudaya), समूह (Samuha), परिषद् (Parishad), चर्ण (Charna) आदि नामों से पुकारा है।

इसके अतिरिक्त वाल्मिकी रामायण में भी पुरातन संगठनों का उल्लेख मिलता है। इसमें दो प्रकार के ग्राम बतलाये हैं। घोष (Ghosh) और ग्राम (Gram)। इन ग्रामों का अधिष्ठाता ग्रामीणी (Gramani) था। इसी प्रकार का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। इसके अनुसार ग्राम अधिकारी ग्रामीक (Gramik) कहकर पुकारा जाता था। मनु के अनुसार यह अधिकारी समस्त ग्राम जनता का प्रतिनिधि माना जाता था। यह सहस्त्र गांवों का अधिकारी होता था। इसको मनु ने शत ग्रामाधिपति (Shat gramadhipati) कह कर पुकारा है। इसी प्रकार हजार गांवों का अधिकारी सहस्त्रग्रामाधिपति (Shahastra Gramadhipati) होता था।

इस प्रकार प्रारम्भ से ही ग्राम एक समुदाय में संगठित रहा है। दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि ग्रामीण रचना प्रारम्भ से सामुदायिक आधार पर खड़ी रही है जहां साधारणतया सामान्य रूप से कृषि की जाती रही है। श्री मालवीय[10] ने बताया है कि पुरातन काल में सामान्य एवं राष्ट्रीय विचारों से परिपूर्ण संगठन विद्यमान थे। कार्लमार्क्स (Karl-Marx) ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "ये विशेष रूप से प्राचीन तथा लघु ग्रामीण समुदाय, जिनमें से कुछ आज भी निरन्तर बने हैं, भूमि के सामूहिक स्वामित्व पर आधारित हैं।"[11] अतः यह स्पष्ट है कि ग्रामीण संरचना प्रारम्भ से सहयोग एवं जनतन्त्र पर आधारित थी। भूमि व अन्य सम्पत्ति का सामान्य स्वामित्व था। सामूहिक खेती और सामूहिक चारागाह, जन साधारण के उपयोग की सामूहिक भूमि आदि के उदाहरण आज भी हमें देखने को मिलते हैं। बेडन पावल ने कहा है कि ग्राम समुदाय महत्व की दृष्टि से साधारण समुदाय नहीं है बल्कि ग्रामीण जनता के सामूहिक अधिकारों पर संगठित है। ऑगबर्न और निमकाफ ने भी कहा है कि ग्राम मनुष्य का सबसे प्राचीन समुदाय है। समुदाय ग्राम से पूर्व भी स्थापित हो चुके

10. Reproduced from 'Village Panchayats in India' by H. D. Malaviya; pp. 43-89.
11. "These small and extremely ancient village communities some of which have continued down today, are based on possession in common of the land." Karl Marx : 'Das Capital'; Vol. 1. p. 397.

थे किन्तु वे अस्थायी थे। अतः यह स्पष्ट है कि स्थायित्वता के आधार पर समुदाय के विचारों का प्रथम उद्रेक ग्रामों में ही हुआ। इसी से सामुदायिक भावना का रूप अन्य विचारों में परिणित होकर नगरों व कस्बों में आज भी हमें देखने को मिलता है।

ग्राम समुदाय की प्रकृति
(Nature of Village Community)

इस प्रकार हमने देखा है कि ग्रामीण समुदाय का विकास प्राकृतिक रूप से हुआ है। ग्रामीण समुदाय का विकास प्रक्रियात्मक रूप से स्वतः हुआ है। उत्पत्ति के बाद आज ग्रामीण समुदाय का जो रूप हमें देखने को मिल रहा है उसमें विभिन्न मानवीय, प्रादेशिक, भौगोलिक एवं आर्थिक कारकों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। ग्रामीण समुदाय की प्रकृति का ज्ञान करने के लिये हमें इन प्रमुख कारकों को भी देखना होगा। तदोपरान्त ही हम ग्रामीण समुदाय की प्रकृति का सच्चा रूप देखने में समर्थ हो सकते हैं। ग्रामीण समुदाय की प्रकृति को प्रभावित करने वाले प्रमुखतः निम्न कारक हैं :—

(१) भूमि (Land)

ग्रामीण जीवन का प्रमुख आधार भूमि है। यहां के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन में भूमि का महत्वपूर्ण स्थान है। भूमि के आधार पर ही ग्रामीण संरचना होती है। भूमि के रूप व इसकी उर्वरा शक्ति ने ग्रामीण समुदाय को अत्यधिक प्रभावित किया है। भूमि यदि सब प्रकार से उपयुक्त व उपजाऊ है तो हमें ग्रामीण समुदाय के वहां अवश्य ही दर्शन होंगे। हमें पठार, पर्वतों एवं मरूस्थल प्रदेशों में ग्रामीण संगठन का कोई रूप उपलब्ध नहीं होता। ग्रामीण समुदाय की प्रकृति को भूमि के कारक ने सदा से प्रभावित किया है।

(२) स्थिति (Location)

ग्रामीण समुदाय की प्रकृति को प्रभावित करने वाला यह भी एक प्रमुख कारक है। प्रारम्भ में ग्रामीण समुदाय का रूप पानी के समीप वाली ढलाऊ भूमि पर ही मिलता था। भूमि व उसका उपयुक्त स्थान पर होना ग्रामीण समुदाय की स्थापना के लिए एक आवश्यक तत्व है।

(३) आर्थिक कारक (Economic Factors)

सभ्यता के विकास के साथ साथ ग्राम का विकास निर्धारित किया

जाता है। अतः प्रारम्भ से आर्थिक क्रियाओं का रूप दृष्टिगोचर होता है। मानव ने जो कुछ भी कार्य किये हैं उनकी पृष्ठभूमि में आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का उद्देश्य रहा है। ग्राम सदा से पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर इकाई के रूप में कार्य करता रहा है। ग्रामीण सामुदायिक संगठन में भी आवश्यकताओं की पूर्ति का तत्व विद्यमान है। सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ इस तत्व का विकास भी बढ़ता जा रहा है। अतः ग्रामीण समुदाय के पीछे आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का लक्ष्य भी सदा से निहित रहा है। जीवन यापन हेतु परस्पर आदान-प्रदान एवं सहयोग से ही इस मानवीय संगठन का उदय हुआ है।

(४) सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक
(Social and Cultural Factors)

ग्रामीण उद्‌विकास में सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों का भी महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। ग्रामीण संरचना में सुरक्षा, शान्ति, शासन, सहानुभूति, सद्‌भावना, सहयोग, समाजिक नियन्त्रण आदि बातों की विशेष आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से, ग्रामीण समुदाय सामाजिक सम्बन्धों में सुरक्षा रखने में भी प्रारम्भ से तत्पर रहा है। सामाजिक व्यवहारों में आन्तरिक व वाह्य व्यवस्था रखना भी ग्रामीण समुदाय की प्रवृत्ति है। इस दृष्टि से ग्रामीण समुदाय के ये प्रमुख कारक इसकी प्रकृति निर्धारित करते हैं।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण समुदाय की प्रकृति के सम्बन्ध में विचार प्रगट करते हुए अलटेकर (Altakar) ने भी कहा है, "हमारा इतिहास प्रदर्शित करता है कि मेटकार्फ व मैन जैसे प्रारम्भिक लेखकों द्वारा भारतीय समुदायों के लिए किये गये अवलोकन अपरिवर्तनीय होने के कारण विशेष सुरक्षा से स्वीकार करने होंगे।"[12] इस प्रकार भारतीय ग्रामीण समुदाय के विषय में लोगों का यह मत है कि पश्चिमी समुदायों की तुलना में यहां उक्तांकित कारकों का प्रभाव कम पड़ा है। भारतीय ग्रामीण समुदायों पर प्राचीन समय से ही अत्यधिक पाश्चात्य प्रभाव पड़ते रहने के उपरान्त भी इनके स्वरूप में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है और इनका प्राचीन रूप बना हुआ है। इसका कारण यह है कि भारतीय

---

12. "Our history shows that the observations made by early writers like Mateclfe and Maine about Indian Village communities being unchanging have to be accepted with great observation." A.S. Altekar : 'Villiage Communities in Eastern India'. pp. 124-127.

ग्रामीण जीवन पर विभिन्न संस्थाओं का प्रभाव इतना नहीं पड़ता जितना पश्चिमी देशों में पड़ता है। इसीलिये प्राचीन समुदाय के, दर्शन, प्रथाओं, रतिरिवाजों आदि में परिवर्तन नहीं हो सका है। इसीलिये वैदिक काल की समाज व्यवस्था ब्राह्मण, मौर्य व गुप्त काल तक चलती रही। इसके साथ साथ मुस्लिम संस्कृति व अंग्रेजी शासन का भी प्रभाव इतना अधिक नहीं पड़ा। ग्राम्य पंचायतों के रूप को नष्ट-भ्रष्ट करने के अनेक प्रयत्न किये गये लेकिन सामुदायिक भावनाओं में आमूलचूल परिवर्तन सम्भव नहीं हो सका। आल्टेकर ने लिखा है, "ग्रामीण जीवन अत्यधिक सीमा तक आज भी वही है। जनता अब भी प्राचीन तरीकों से अपनी भूमि को जोतती है और फसल बोती है।"[13]

इसके अतिरिक्त हमें यह अवश्य मानना होगा कि १६ वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने भारतीय सामुदायिक जीवन की प्रकृति में अत्यधिक परिवर्तन ला दिया है। लोग कृषि कार्य को छोड़ कर नगरों की ओर बढ़ गये हैं। प्राचीन काल में भी हमारे समुदाय पूर्ण रूप से जनतान्त्रिक नहीं थे, परन्तु आज तो समस्त शक्तियों में केन्द्रीयकरण हो गया है। समस्त शासन सम्बन्धी शक्तियाँ केन्द्र के पास हैं। इस प्रकार से ग्रामीण समुदाय न तो प्रजातान्त्रिक है और न गणतान्त्रिक। इसको स्वम्-सेवी, स्वम्-संचालित, स्वम्-शासित कह सकते हैं। आज तो ग्रामीण समुदाय में समता, समानता व भ्रातृत्व का भाव लेशमात्र भी नजर नहीं आता है। श्री देसाई ने कहा है कि हमें वर्तमान युग में यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि प्रजातान्त्रिक विचार हमारे ग्रामीण समुदाय में कभी भी व्याप्त नहीं थे।

ग्रामीण सामुदायिक संगठन

(Rural Community Organisation)

ग्रामीण समुदाय कृषि हेतु एक भू भाग में कुछ व्यक्तियों का सामाजिक योग है जहां गोत्रीय आधारों पर रक्त सम्बन्धों से नियन्त्रित पारिवारिक रचना है। समुदाय संगठन के लिये तीन आवश्यक तत्व भूमि, जन व सामुदायिक भावना होने चाहिएं। ग्रामीण समुदाय में भूमि का महत्व और अधिक हो जाता है। ग्रामीण सामुदायिक संगठन में कृषि, जन, सहयोग, तीन तत्व होते हैं। इन तीनों तत्वों पर ही ग्रामीण सामुदायिक संगठन आधारित है। यद्यपि कुछ

13. "Village life to a great extent remains the same, people still till their lands and sow their crop in the old manner." A. R. Altekar :'Village Communites in Western India"; pp. 124–127.

औद्योगिक क्षेत्रों में प्रगतिशीलता के कारण कुछ अन्य तत्व भी आवश्यक हो गये हैं परन्तु भारतीय सामुदायिक जीवन में इन तीनों तत्वों को ही प्रमुखता दी जाती है। यहां हम भारतीय ग्रामीण सामुदायिक संगठन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

भारतीय सामुदायिक संगठन के अध्ययन में हमें दो दृष्टिकोण देखने को मिलेंगे। प्रथम तो एकान्त आत्मनिर्भर व एकान्त इकाई के रूप में। द्वितीय परस्पर ग्रामीण संगठनों का योग। हमें यहां ऐसे भी गांव मिलेंगे जो पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर इकाई के रूप में संगठित हैं, जहां स्वयं की प्रथायें व रीति रिवाज विद्यमान हैं। प्रायः भारतीय सामुदायिक संगठनों में प्रथाओं, रीतिरिवाजों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय प्रथाओं का भी संगठन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार से भारतीय सामुदायिक संगठन में हमें दो रूपों के दर्शन होते हैं—एक तो पूर्ण आत्मनिर्भर व दूसरे परस्पर सहयोगी।

साधारणतः भारतीय सामुदायिक संगठन में रक्त सम्बन्ध (Kinship), जातिप्रथा व क्षेत्रीयता आदि उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। अतः एक व्यक्ति परिवार से, परिवार के सगोत्र से, सगोत्र पीढ़ी से, पीढ़ी सम्बन्धियों से, सम्बन्धी सजातीय से और सजातीय समुदाय से पूर्णरूपेण सम्बन्धित एवं उत्तरदायी है। इस प्रकार ग्रामीण सामुदायिक संगठन में जाति व रक्त सम्बन्धों के आधार पर व्यवस्था चलती है।

ग्रामीण सामुदायिक संगठन में दूसरा आधार क्षेत्र का है। एक क्षेत्र दूसरे विशाल क्षेत्र के लिये पूर्ण रूप से उत्तरदायी है। व्यक्ति परिवार के प्रति, परिवार ग्राम के प्रति, ग्राम अन्य ग्रामीण संगठनों, प्रदेश एवं राष्ट्र के प्रति तथा राष्ट्र विश्व समुदाय के प्रति उत्तरदायी है तथा सम्बन्धित है। एक गाँव स्वयं पड़ौसी गाँवों के प्रयासों व सहयोग पर आधारित होता है। इसी प्रकार उसे प्रदेश व राष्ट्र के प्रति भी उत्तरदायी होना पड़ता है। हम ग्रामीण समुदाय के संगठन को निम्न तालिका द्वारा समझाने का प्रयास करेंगे।

ग्रामीण समुदाय

रक्त सम्बन्धी संगठन	क्षेत्रीय संगठन
१. व्यक्ति	१. व्यक्ति
२. परिवार	२. परिवार
३. पीढ़ियाँ	३. ग्राम
४. सगोत्रीय समूह	४. पड़ौसी ग्राम
५. सम्बन्धी	५. प्रदेश
६. जाति	६. राष्ट्र
७. वर्ण	७. विश्व

ग्रामीण सामुदायिक संगठन के प्रमुख आधारों पर दृष्टिपात करने से हम इस निश्चय पर पहुँच गये हैं कि ग्रामीण समुदाय न केवल आर्थिक दृष्टि से ही बल्कि जातीय, रक्त सम्बन्धी, सांस्कृतिक, व्यावसायिक एवं वेशभूषा सम्बन्धी आधारों पर भी सामुदायिक संगठन में विशिष्टता रखता है। परन्तु प्राचीन भारतीय ग्रामीण सामुदायिक संगठन आर्थिक संगठन पर ही आधारित था। दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि भारतीय आर्थिक संगठन यहाँ की ग्रामीण ईकाइयां ही थीं। यहाँ के ग्राम पूर्ण रूप से स्वतन्त्र व आत्म निर्भर थे। ग्रामीण सामुदायिक संगठन के सम्बन्ध में सर चार्ल्स मेटकॉफ ने उचित लिखा है, "छोटे गणतंत्र लगभग विदेशी सम्बन्धों से स्वतन्त्र हैं और वे स्वयं के पास सभी वस्तुएं लिए हुए हैं, जो वे चाहते हैं। वे अन्तिम क्षण तक स्थायी दिखाई देते हैं जबकि कुछ भी स्थायी नहीं है। प्रत्येक ग्रामीण समुदाय स्वयं में एक भिन्न लघु राज्य का निर्माण किये हुए हैं और उनका यह संगठन अत्याधिक अंशों की स्वतन्त्रता तथा आत्मनिर्भरता के द्वारा उन्हें उच्चकोटि की प्रसन्नता प्रदान करता है।"[15] यद्यपि इस कथन में हमें सामान्य रूप से अतिशयोक्ति प्रतीत होती है परन्तु हम ग्रामीण समुदाय के संगठन की इस विशेषता को नहीं भुला सकते कि वे यद्यपि अपने जीवन के प्रत्येक पहलू में पूर्णरूप से अप्रभावित व स्वतन्त्र नहीं थे तथापि अपने जीवन की आवश्यकताओं को अधिकांश सीमा तक पूर्ण कर लेते थे। इसका कारण यह था कि ग्राम परिवहन एवं संचार के साधनों में अत्यन्त ही पिछड़े हुए थे। आधुनिक युग में भी ग्राम स्वयं में स्वतन्त्र व आत्मनिर्भर रहना चाहते हैं, द्वितीय अन्य सामाजिक व सांस्कृतिक रक्त सम्बन्धों की गतिशीलता के अभाव ने उनके इस संगठन को विशिष्ट रखा। इसके साथ साथ उनकी आवश्यकतानुसार कृषि व्यवसाय, सीमित बाजार, मध्यस्थों का अभाव, लघु कुटीर-उद्योग, अविकसित साख-व्यवस्था, ग्रामीण साहूकारों का आधिपत्य, पारिवारिक, आर्थिक संगठन, द्रव्य अर्थ-व्यवस्था

15. "Indian villages are little republics having nearly everything, they want within themselves, and almost independent of any foreign relations. They seem to last, when nothing else lasts. This union of village communities, each one forming a separate little state in itself is in a high degree conductive to their happiness and, to the enjoyment of a great portion of freedom and independence". Sir Charles Metcalf: 'Its Minute of 1830.'

की अनुपस्थिति एवं वस्तु विनिमय व्यवस्था (Barter System) आदि कारकों ने भी इन समुदायों को स्वतन्त्र सामुदायिक संगठन के लिये बाध्य किया है।

ग्रामीण समुदाय के प्रमुख अंग
(Main parts of Rural Community)

अब हम ग्रामीण सामुदायिक संगठन के आन्तरिक स्वरूप की ओर भी अपना ध्यान आकर्षित करना आवश्यक समझते हैं। यह तो हमने देख लिया है कि ग्राम स्वतन्त्र आर्थिक इकाईयाँ थीं। इनके मुख्य सामाजिक-आर्थिक व्यवसाय के लिये किसी वाह्य सम्बन्ध व सहयोगी की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। ग्रामीण स्वरूपशास्त्र (Rural Morphology) के अध्याय में हमने देखा कि ग्रामीण जनता का अधिकांश भाग कृषक है। इनके अतिरिक्त भी इस समुदाय के अन्य अंग हैं। जो अधिकांशतः निम्न हैं :—

(१) कृषक (Agriculturists)

कृषक समुदाय में दो भाग होते हैं। प्रथम भूमि के मालिक कृषक और द्वितीय भूमिहीन कृषक। ये दोनों प्रकार के कृषक अपने परिवार के सदस्यों के सहयोग से कृषि करते हैं। कभी कभी वे इस कार्य के लिए मजदूर भी रख लेते हैं। इस कार्य में उनको अत्यन्त सीमित व्यय करना होता है। इस कार्य के लाभ को वे भूमि सुधार के कार्यों में लगा देते हैं। खेतों में बीज बोने से उत्पादन को बाजार में बेचने तक की अवधि में इनको अनेक प्राकृतिक विपदाओं एवं अन्य दैनिक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। कृषक भूमि उत्पादन से ही अपने जीवन की कुछ आवश्यकताओं को पूर्ण कर पाता है।

(२) ग्रामीण अधिकारी (Village Officers)

ग्रामीण समुदाय के द्वितीय अंग ग्रामीण अधिकारी हैं। ग्रामीण अधिकारियों के अनेक स्वरूप होते हैं। इनमें से प्रमुख निम्न हैं:—

(i) ग्रामीण मुखिया (Village Headman)

ग्रामीण अधिकारियों में मुखिया का स्थान महत्वपूर्ण है। इसको सामाजिक-आर्थिक जीवन में अनेक अधिकार प्राप्त होते हैं। यह एक अत्यन्त अनुभवी एवं विश्वसनीय व्यक्ति होता है। इसका पद वंशानुसंक्रमण से निरन्तर चलता रहता है। यह ग्राम का एक प्रशासनिक अधिकारी है। क्षेत्रीय झगड़े व वैमनश्यता के समस्त झगड़े यही तय करता है। इसके अतिरिक्त यह पुलिस, पटवारी, अध्यापक व अन्य सभी अधिकारियों को सहयोग प्रदान करता है। कहीं-कहीं यह पटेल, चौधरी आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है।

(ii) नम्बरदार (Namberdar)

मध्यप्रदेश के ग्रामों में मुकादम अथवा नम्बरदार का पद उल्लेखनीय है। इनको प्रशासनिक तथा भूमि कर के अधिकार प्राप्त होते हैं। उत्तरप्रदेश के ग्रामों में भी भूमि के पट्टाधारी को नम्बरदार कहते हैं। पंजाब में इसका नाम आला नम्बरदार है। यह राजकीय संस्थाओं एवं ग्रामीण संस्थाओं के मध्यस्थ का कार्य करता है। नम्बरदार को ग्राम में अनेक कार्य करने पड़ते हैं। यह भूमि कर तथा लगान को वसूल करता है। प्रत्येक राजकीय आज्ञाओं को ग्रामीण जनता तक पहुँचाता है। यद्यपि वर्तमान युग में भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में इसका वह प्रभाव नहीं रहा है। पंचायतों के चुनाव ने प्रजातांत्रिक व्यवस्था का रूप ले लिया है, परन्तु शताब्दियों से इसका एकाधिकार रहने के कारण ये अब भी प्रभावशाली है।

(iii) कानूनगो (Kanungo)

कानूनगो का अर्थ कानून जानने वाला तथा कानून बताने वाला माना जाता है। दक्षिण भारत के ग्रामों में इस अधिकारी को देश पांडे (Deshpande) कहा जाता है। इसका पद भी वंशानुसंक्रमण से चलता है। यह समस्त सामाजिक, राजनैतिक एवं परम्परागत सूचनाओं का ज्ञाता होता है। भारत में मुगलकालीन ग्रामीण शासन के समय इसका महत्वपूर्ण स्थान था। इसको किसी प्रकार का वेतन नहीं दिया जाता था। भूमिकर, अथवा लगान में से ही इसका कुछ प्रतिशत निर्धारित होता था। अकबर के समय में कानूनगो की कई श्रेणियां थीं। जिला स्तर पर इनकी भत्ते के आधार पर नियुक्ति होती थी। सन् १७६२ ई० में अंग्रेजी सत्ता ने इनको जमींदार के विकास के विरुद्ध समझकर हटा दिया।

(iv) पटवारी (Patwari)

खेतों के वितरण, नाप, अधिकार एवं ऊपज का स्थाई विवरण रखने वाला अधिकारी पटवारी है। यह माल महकमे का स्थायी कर्मचारी होता है। कई स्थानों पर जमींदारों द्वारा भी इस अधिकारी की नियुक्ति की गई है। यह ग्राम मुखिया, पटेल, नम्बरदार व कानूनगो से उच्च अधिकारी होता है। देशी राजाओं के समय में भारतीय ग्रामों में इसका स्थान बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। यह अधिकारी वर्तमान युग में भी ग्रामीण शासन का एक महत्वपूर्ण अंग है। बंगाल व उत्तरी भारत में यह पटवारी के नाम से जाना जाता है। मद्रास के ग्रामीण क्षेत्रों में इसका नाम कारनाम (Karnam) तथा बम्बई में कुलकरणी है। सन् १८१९ ई० के अधिनियम के अन्तर्गत इसके अधिकारों एवं कार्यों के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख व परिवर्तन किया गया था।

(v) चौकीदार (Chowkidar)

इस कर्मचारी का स्थान भी गाँव की सुरक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह पुलिस विभाग का एक प्रतिनिधि है। यह कुल भत्ते के आधार पर अस्थाई रूप से नियुक्त किया जाता है। इसका कर्तव्य प्रतिदिन गाँव का दैनिक विवरण पास के थानों में लिखाना है। यह गाँव में हुए दंगे, फिसाद, लड़ाई व अन्य अपराधों की सूचना एकत्रित करता है। रात्रि के समय यह व्यक्ति गाँव में दौरा लगाता है। कई स्थानों पर इसको गाँव बलाई भी कहते हैं। इसको पुलिस विभाग की ओर से वर्दी, चपरास एवं एक लाठी प्राप्त होती है। उत्तरप्रदेश के कई गाँवों में इसे हरकारा भी कहते हैं। कहीं कहीं इसका कार्य फसलों की रक्षा करना तथा सिंचाई के पानी के वितरण का संचालन करना बताया जाता है।

(vi) डाकिया (Postman)

ग्राम में डाक की व्यवस्था करने के लिये डाकिये का स्थान भी उल्लेखनीय है। यद्यपि कहीं-कहीं पर इस व्यक्ति की नियुक्ति राजकीय डाक विभाग से होती है परन्तु अधिकांशतः यह ग्रामीण स्तर पर ग्रामवासियों द्वारा नियुक्त होता है। गाँवों में डाक का विशेष काम न होने के कारण इस एक व्यक्ति को क्रमानुसार कई गाँवों में दौरा लगाना पड़ता है। यह न केवल समीप के डाक घर से पत्र ग्रामीण जनता तक पहुँचाता है बल्कि उन्हें आवश्यकतानुसार पोस्टकार्ड, लिफाफे एवं टिकट आदि भी देता है। इतना ही नहीं, डाकिया गाँव वालों की चिट्ठियां भी लिखता है। इस दृष्टि से इस कर्मचारी का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण सामुदायिक संगठन में अनेक अन्य अधिकारियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से पुरोहित, मौलवी, पंड़ित, पुजारी और महंत उल्लेखनीय हैं। ये लोग भी ग्रामीण समुदाय के धार्मिक–सामाजिक (Religio-Social) जीवन को अत्याधिक प्रभावित करते हैं।

(३) व्यवसायी (Functionaries)

ग्रामीण सामुदायिक संगठन के प्रमुख अंगों में व्यावसायियों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। इनमें निम्न व्यक्ति प्रमुख हैं :—

(i) साहूकार (Money-Lender)

यह व्यक्ति सेठ, बनिया, महाजन आदि नामों से जाना जाता है। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में इसे बोहरा कह कर पुकारा जाता है। इसका

स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । यह गाँव के लोगों को उच्चतम ब्याज की दरों पर ऋण देता है । इस प्रकार यह ग्राम के आर्थिक जीवन को संचालित, नियन्त्रित एवं प्रभावित करता है । ग्रामीण लोग प्रमुखतः कृषि कार्यों के लिये ऋण लेते हैं । इसके अतिरिक्त सामाजिक, जातिभोज, मौसर व शादी विवाहों के अवसरों पर भी ऋण लिया जाता है । अधिकांश साहूकार लोग ऋण के बदले में कृषक के बैल, भूमि, झोंपड़ी, गाड़ी व हल आदि गिरवी रख लेते हैं । इसके अतिरिक्त कृषि कार्य की प्राकृतिक अनिश्चितता एवं दैविक प्रकोपों के कारण कृषकों को ऋण लेना पड़ता है । कृषक में बचत क्षमता बिल्कुल नहीं होती । बीमारी, तुषार, महामारी, टिड्डी, बाढ़, कीटाणु आदि प्रकोप भी सदा उसे घेरे रहते हैं । फलतः वह गाँव के साहूकार के पंजे में जकड़ा रहता है ।

(ii) **कलाकार** (Artisans)

ग्रामीण समुदाय में कृषकों के सहयोग के लिये जहाँ उक्तांकित व्यावसायियों का महत्वपूर्ण स्थान है वहाँ कलाकार भी उल्लेखनीय है । प्रत्येक गाँव में विभिन्न प्रकार के कलाकारों का एक समूह होता है । इनकी संख्या गाँव की आवश्यकता एवं अन्य कारकों जैसे जाति, स्थानीय, साधन, गाँव की स्थापना, जलवायु आदि पर निर्भर होती है । मध्यभारत में इस प्रकार के लोगों के १२ प्रकार पाये जाते हैं जो बाराबुलांती (Bara-Bulante) कहलाते हैं ।

इन लोगों को सेवा के उपलक्ष में अनाज, कपड़ा एवं अन्य आवश्यकताओं की सामग्री मिल जाती है, जो प्रत्येक परिवार की आवश्यक सेवाओं के आधार पर निर्धारित होती है । मध्यभारत में गाँव की ओर से इन्हें भूमि का कुछ भाग दे दिया जाता है जिसका लगान माफ होता है । कुछ स्थानों पर फसल के समय इन्हें अपनी सेवाओं के उपलक्ष में पैदावार का कुछ भाग मिल जाता है । ये सेवायें और उसका उपलक्ष वंश परम्परागत चलता रहता है । ग्रामीण कलाकरों के सामान्य रूप निम्नांकित रूप से दृष्टिगोचर होते हैं ।

(क) **लोहार** (Blacksmith)—यह कृषि कार्य में आने वाले औजारों का निर्माण करता है । गाडियाँ, दरवाजे व अन्य सामग्री भी बनाता है । सिंचाई हेतु चरस, सूंडियों में प्रयोग आने वाली लोहे की सामग्री तथा शादी विवाहों एवं अन्य सामूहिक अवसरों पर काम आने वाले बर्तन बनाता है । कहने का अर्थ यह है कि लोहार गाँव का लोहार होता है । गाँव की लोहे सम्बन्धी सम्पूर्ण आवश्यकताएं इसे पूर्ण करनी होती हैं ।

(ख) **खाती** (Carpenter)—हल, काठी, बैलगाड़ी, कुएं पर काम में आने वाला लकड़ी का सामान एवं अन्य समस्त लकड़ी की सामग्री के निर्माण का उत्तरदायित्व इस पर होता है।

(ग) **कुम्हार** (Potter)—कृषक व ग्रामीण जनता के उपयोग में आने वाले मिट्टी के बर्तन व रहट में काम आने वाली हंडिया तथा अन्य समस्त उपयोगी सामग्री बनाने का कार्य कुम्हार करता है।

(घ) **बलाई या बुनकर** (Weavers)—गाँव की कपड़े सम्बन्धी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करना इसका काम होता है। यह कृषकों से कपास प्राप्त करके पहनने योग्य कपड़े बनाने तक का समस्त काम करता है।

(च) **रेरा** (Grass-Rape-Maker)—कुओं में से पानी निकालने को मोटा रस्सा, लाव व कुएँ में से पानी निकालने वाले डोले की रस्सियाँ तथा रोजमर्रा के काम आने वाली रस्सियाँ तथा रस्से बनाने का काम ये लोग करते हैं।

(छ) **चमार** (Sweeper)—जहाँ कृषि व ग्रामीण जीवन में लोहे व लकड़ी का प्रयोग होता है उसी प्रकार चमड़े को काम में लाया जाता है। चमार मरे हुए जानवरों की खाल लेकर अनेक काम में आने वाली वस्तुएँ बनाते हैं। सिंचाई के लिए चरस, सूंड, ठेकली, डोलचे, रस्सियाँ, जूते, मशकें आदि बनाना इनका काम है।

(ज) **मिरासी** (Musician)—ग्राम समुदाय का समय-समय पर संगीत व वादन क्रियाओं से मनोरंजन प्रदान करने का काम इन लोगों का है।

इनके अलावा रंगरेज (Dyers), तेली (Oilman), सुनार (Goldsmith), दर्जी (Tailor) आदि लोगों का भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण स्थान है।

(४) **बेगारी** (Menials)

वैसे हम ग्रामीण सामाजिक संगठन शीर्षक अध्याय में भी बेगारी तथा जजमानी प्रथा आदि पर संक्षेप में विचार कर आये हैं, गाँव के सामुदायिक संगठन में अनेक ऐसे लोग हैं जिनको बाध्य रूप से सेवायें प्रदान करनी पड़ती हैं। इन लोगों को कलाकारों (Articians) के समान ही सेवाओं के उपलक्ष में फसल के समय कुछ अनाज दे दिया जाता है जिससे ये वर्ष भर पेट भरते हैं और गाँव की सेवायें करते रहते हैं। इनकी सेवाओं को बेगारी

अथवा कई समाजशास्त्रियों ने जजमानी प्रथा भी कहा है। इस प्रकार के अनेक समूह ग्रामीण क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें प्रमुख निम्न हैं:—

(i) **हजाम** (Barber)

यह गाँव का नाई होता है। इसका काम बाल काटना, दाढ़ी बनाना, शादी विवाह में बर्तन साफ करना, दूल्हे के कपड़े धोना, उसे स्नान कराना, मालिश करना, पैर दबाना, गर्भवती की सेवा करना आदि होता है। मृत्यु के अवसरों पर भी इसे अनेक दयनीय सेवायें सम्पन्न करनी पड़ती हैं।

(ii) **भिश्ती** (Waterman)

कुओं से पानी निकाल कर घरों पर पहुँचाना व सभा तथा सामूहिक स्थानों पर अवसरानुकूल छिड़काव आदि लगाने का काम करता है।

(iii) **महतर** (Sweeper)

गलियों, मुहल्लों, बाड़ों (Cattle-shed), हथाइयों, चौगानों एवं मैदानों की सफाई करना इसका काम है।

वर्तमान युग में कई प्रकार के अधिकारी व व्यावसायियों की संख्या बढ़ गई है, जैसे पंच, सरपंच, पंचायत निरीक्षक, अध्यापक, डाक्टर, पोस्ट मास्टर, स्वास्थ्य-निरीक्षक, ग्रामसेवक, टीका लगाने वाले, उद्योग केन्द्राध्यक्ष, गाँव-निर्देशक (Village Guide), गाँव दाई (Midwife), महिला कल्याण संगठक (Lady Welfare Organisers) आदि ने ग्रामीण सामुदायिक जीवन को परिवर्तित ही कर डाला है। ग्रामीण समुदाय की पुनर्गठन की प्रक्रिया चल रही है जिसने प्राचीन संगठन को काफी प्रभावित किया है।

ग्रामीण समुदाय की प्रमुख विशेषतायें
(Chief Characteristics of Rural Community)

ग्रामीण समुदाय का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन कर लेने के उपरान्त हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि यहाँ ग्रामीण सामुदायिक विशिष्टताओं पर भी दृष्टिपात करें, तभी सामुदायिक अध्ययन की पूर्ति होगी। प्रत्येक समुदाय की व्यक्तिगत विशेषताएँ विशेष होती हैं। ये विशेषताएँ उद्देश्य-विशेष के आधारों पर निर्धारित होती हैं। ग्रामीण समुदाय एक प्राकृतिक व सांस्कृतिक समुदाय है। इस दृष्टि से हम निम्न वर्गीकृत आधारों पर उसकी विशेषताओं पर विवेचन करेंगे :—

(१) स्वरूपात्मक विशेषताएँ

ग्रामीण जनता की रचना पर्यावरण पर आधारित है। इस विशेष पर्यावरण से ग्रामीण रचना में निम्न स्वरूपात्मक विशेषतायें पाई जाती हैं :—

(क) ग्रामीण जन—ग्रामीण जन की कल्पना मात्र से ही उसके भौतिक स्वरूप का चित्र हमारे सम्मुख खिंच जाता है। ग्रामीण समुदाय, कृषक, कारीगर, मजदूरों से संकलित है। कृषक समस्त भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न शारीरिक, शक्ति व निम्न जीवन स्तर का प्रतीत होता है। कृषि सम्बन्धित एवं अन्य गृह उद्योगों में संलग्न कारीगर भी प्रायः समान वेशभूषा और शारीरिक स्तर के होते हैं। इसी प्रकार भूमिहीन मजदूर इनसे भी निम्न प्रकार का जन होता है। ग्रामीण जन का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कृषि से ही सम्बन्ध होता है चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो। ग्रामीण जन भूमि और कृषि में ही जीवन व्यतीत करता है। उसकी क्रियाओं और विचार का क्षेत्र यहीं तक सीमित है। निराशावादी दृष्टिकोण और नीरस जीवन का ग्रामीण जन सर्वत्र समान ही पाया जाता है।

(ख) ग्रामीण जनसंख्या और घनत्व:— ग्रामीण जन के उपरान्त ग्रामीण जनसंख्या का प्रश्न उपस्थित होता है। ग्रामीण जन कृषक हैं। अतः उसे अधिक भूमि की आवश्यकता होती है। अतः ग्रामों में जनसंख्या सीमित होती है और जनसंख्या का घनत्व भी सीमित होता है।

(ग) ग्रामीण निवास व्यवस्था:—ग्रामीण समुदाय की निवास व्यवस्था सम्बन्धी विशेषता भी अद्वितीय है। प्रथम तो वह कृषि योग्य भूमि पर निवास व्यवस्था करता है। द्वितीय निवास व्यवस्था का रूप भी खेतों के आकार एवं प्रकार के अनुसार होता है। सामुदायिक निवास व्यवस्था का दूसरा प्रभावक कारक सामाजिक भी है।

(घ) ग्रामीण स्वच्छता एवं स्वास्थ्य:—ग्रामीण समुदाय इस सम्बन्ध में दुर्भाग्यशाली है। कृषि और जीवन में घनिष्ट सामिप्य होने के फलस्वरूप ये लोग सामुदायिक स्वच्छता एवं स्वास्थ्य की कल्पना तो दूर बल्कि व्यक्तिगत स्वच्छता एवं स्वास्थ्य में भी पिछड़े हुए हैं।

(च) ग्रामीण पर्यावरण:—ग्रामीण समुदाय की प्राकृतिक पर्यावर्णात्मक (Natural Environmental) विशेषता सर्वविदित है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यहाँ प्रकृति प्रधान है। यहाँ का विशिष्ट पर्यावरण इसी कारण अन्य पर्यावरणों से सामिप्य नहीं रखता है।

(छ) एकान्तता:—ग्रामीण समुदाय की एकान्तता भी प्रमुख विशेषता है। यह एकान्तता (Soliditary) ग्रामीण समुदायों को अन्य समुदायों से अलग रखती है। इसका कारण सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक ढाँचे की विशिष्टता है।

(२) सामाजिक विशेषताएं:—

ग्रामीण सामाजिक विशेषताएं भी अन्य सामाजिक जीवन से भिन्नता रखती हैं। हमें ग्रामीण समुदाय में निम्न सामाजिक विशेषताएं दृष्टिगोचर होतीं हैं:—

(क) जातीयता का प्रभाव—ग्रामीण सामुदायिक जीवन में जातीयता का कारक प्रभावक कारक है। जातीयता यहाँ प्रत्येक क्षेत्र में जैसे निवास व्यवस्था, सामाजिक स्तर, राजनैतिक दक्षता आदि को प्रभावित करती है।

(ख) सादा एवं शुद्ध जीवन:— ग्रामीण सामुदायिक जीवन सादा तथा शुद्ध है। जीवन की आवश्यकताएं अत्यन्त सीमित होने के फलस्वरूप भौतिकवादिता का यहाँ लेशमात्र भी प्रभाव नहीं है।

(ग) भाग्यवादिता:—ग्रामीण समुदाय का प्रकृति से विशेष सम्बन्ध होने के फलस्वरूप प्राकृतिक अर्थात् ईश्वरीय शक्ति में यहाँ विशेष निष्ठा पाई जाती है। ग्रामीण समुदाय भाग्यवादी होते हैं। इस भाग्यवादिता के कारण से ही ग्रामीण समुदाय का जीवन के प्रति बड़ा निराशावादी दृष्टिकोण है।

(घ) अपराधों की कमी:—ग्रामीण समुदाय की यह भी विशेषता है कि यहाँ अपराधों की न्यूनता पाई जाती है। यहाँ का जीवन सन्तोषी, सहयोगी तथा सहिष्णु होने के कारण सामाजिक अपराधों के लिये अवसर नहीं मिल पाता है।

(३) सांस्कृतिक विशेषतायें:—

ग्रामीण समुदाय में संस्कृति का भिन्न रूप दृष्टिगोचर होता है। इस भिन्नता के कारण ग्रामीण सांस्कृतिक विशेषताओं में भी कुछ विशिष्टता आ गई है।

(क) धर्म का महत्व:—भारत एक धार्मिक देश है। ग्रामीण जीवन में धर्म का अत्याधिक महत्व है। धार्मिक अंधविश्वास भी इन लोगों में अत्याधिक सीमा तक पाये जाते हैं। धर्म के लिए ये लोग सभी दुःख सहन कर सकते हैं। ईश्वर को सर्वोपरि मानते हैं। धर्म के लिए ये कभी कभी तो बच्चों का बलिदान तक कर देते हैं जो सिवा अन्धविश्वास के और कुछ भी नहीं है।

(ख) परम्पराओं एवं आदर्शों की एकता:— ग्रामीण जीवन में परम्पराओं का अत्याधिक महत्व है। ये परम्पराओं को अनेकों दुःख सहकर भी अक्षुण्य बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। इनके आदर्श परम्परायें ही हैं। परम्परा के आधार पर जो आदर्श बन चुके हैं वे इनके जीवन में स्थायी घर किये हुए हैं।

(ग) प्रथाओं का प्रभाव:— रिवाज, प्रथायें आदि ही इनके जीवन के मान्य आदर्श हैं। बेगारी आदि की प्रथा है तो ये इस प्रथा का पालन करते ही हैं। मद्यपान को निन्दनीय समझते हुए भी सामाजिक अवसरों पर उसका उपयोग करते हैं। बालविवाह को उचित न समझते हुए भी बालविवाह को प्रचलित किये हुए हैं।

(घ) यजमानी प्रथा:—इस प्रणाली में प्रत्येक व्यवसाय के व्यक्ति परिवारों से पीढ़ी दर पीढ़ी सम्बन्धित होते हैं। उदाहरण के लिए एक नाई श्री रामपाल के परिवार से सम्बन्धित है तो इस नाई की आनेवाली पीढ़ियाँ भी श्री रामपाल की आने वाली पीढ़ियों से सम्बन्धित रहेंगी और ये नाई इस परिवार के बाल बनाते रहेंगे। इस सेवा के बदले इन्हें इस परिवार से विवाह, मृत्यु आदि अनेक अवसरों पर भेंटस्वरूप नकद राशि या अन्य कोई वस्तु, वस्त्र आदि प्राप्त होंगे। इसी तरह बढ़ई, लुहार, चमार आदि परिवार कुछ परिवारों से सम्बन्धित होते हैं। यह प्रथा यजमानी प्रथा कहलाती है।

(च) शिक्षा:—ग्रामीग समुदाय में लगभग २ प्रतिशत व्यक्ति ही शिक्षित हैं। अर्थात् लगभग ६८ प्रतिशत व्यक्ति अशिक्षित हैं जिनमें से अधिकांश निरक्षर होंगे अर्थात् लगभग ६५ प्रतिशत को तो अपने हस्ताक्षर करने का भी ज्ञान नहीं है और केवल अंगूठा लगाकर अपना काम चलाते हैं। ग्रामों की अशिक्षा उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ापन भी प्रदान करती है।

(छ) ग्रामीण कला और संस्कृति:—डा० मार्गन ने कहा है कि जो देश अपनी ग्रामकला तथा संस्कृति की चिन्ता नहीं करता उसकी संस्कृति कुछ पीढ़ियों में समाप्त हो जाती है। वास्तव में संस्कृति समाप्त तो नहीं हुई है लेकिन अत्याधिक सीमा तक पिछड़ अवश्य गई है। ग्रामीण कला एवं संस्कृति की निम्न विशेषतायें हैं :—

(१) अन्य कार्यों से कला का घनिष्ट सम्बन्ध।

(२) कला में सामूहिक सहयोग

(३) कला का रचनात्मक उद्देश्य

(४) ग्रामीण कला में यथार्थता

(५) कला और पारिवारिक सहयोग
(६) कला प्रविधि की सरलता
(७) कला में व्यावसायिकता का प्रभाव
(८) कला में निरन्तरता के भाव
(९) प्राकृतिक साधनों का समुचित सामन्जस्य
(१०) ग्रामीण कला का सीमित रूप

(ज) **ग्रामीण मनोरंजन**:—मनोरंजन का जीवन में अत्यन्त महत्व है। किन्तु दिन भर श्रम करने के उपरांत भी ग्रामीण व्यक्ति को मनोरंजन का पर्याप्त अभाव रहता है। मनोरंजन के नाम पर उसके पास रामायण, आल्हा, अश्लील गीत एवं नृत्य, मद्यपान, यौनसुख आदि ही हैं जो उसके स्वास्थ्य को तो निम्न स्तर का बनाते ही हैं उसके विचारों को भी निम्न स्तर पर लाते हैं।

(४) आर्थिक विशेषताएँ :

ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं के अन्तर्गत हम आर्थिक विशेषताओं का अध्ययन करना भी आवश्यक समझते हैं। ग्रामीण समुदाय की निम्न आर्थिक विशेषतायें हैं।

(क) **मूल व्यवसाय : कृषि**:—ग्रामीण समुदाय का मूल व्यवसाय कृषि होने के फलस्वरूप समुदाय का अधिकांश भाग कृषि कार्य में संलग्न रहता है। समुदाय का अन्य अंश भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कृषि से ही सम्बन्धित है, चाहे वह कारीगर, मजदूर अथवा महाजन हो। भारतीय ग्रामीण समुदाय का ८५ प्रतिशत ग्रामीण समुदाय कृषि में संलग्न है।

(ख) **उत्पादन की इकाई परिवार**:—ग्रामीण समुदाय में पारिवारिक संगठन उत्पादन की इकाई के रूप में कार्य करता है। उत्पादन यहाँ कोई स्वतन्त्र क्रिया नहीं है। परिवार के समस्त सदस्य पारिवारिक उद्योग में संलग्न रहते हैं। पारिवारिक संगठन का आधिपत्य ग्रामीण समुदाय के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतीत होता है।

(ग) **श्रम विशेषीकरण का अभाव** :—ग्रामीण जीवन कृषि जीवन भी कहा जाता है। कृषि व्यवसाय ही जीवन का क्रम है। इसलिये यहाँ विशेषीकरण का स्थान नहीं है। परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी क्षमता के अनुसार पारिवारिक उद्योग अथवा कृषि के प्रत्येक कार्य में सहयोग देता है।

(घ) **संगठन का अभाव व व्यावसायिक जटिलता** :—ग्रामीण समुदाय के आर्थिक क्षेत्र में सामुदायिक संगठन का अभाव प्रतीत होता है। यहाँ की

आर्थिक क्रियायें पारिवारिक होने के फलस्वरूप सामुदायिक सगठन नहीं पाया जाता है। द्वितीय ग्रामीण आर्थिक क्रियाओं में जटिलता अर्थात् रूढ़िवादिता दृष्टिगोचर होती है। नवीनता एवं परिवर्तन से ग्रामीण जन विमुख रहते हैं।

(च) सम्पत्ति का अनिश्चित स्रोत :—ग्रामीण जीवन प्रकृति की अनिश्चितता पर आधारित है। प्राकृतिक प्रकोपों की परिवर्तनशीलता के कारण सम्पत्ति का कोई निश्चित व स्थायी स्रोत यहाँ दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समुदाय इस दिशा में प्रयत्नशील भी नहीं है।

(छ) अगतिशील जीवन :—ग्रामीण सामुदायिक जीवन अगतिशील है। विकास एवं प्रगति के प्रति ग्रामीणजन लेशमात्र भी जागरूक नहीं है। रूढ़िवादिता तथा निराशावादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप सामुदायिक जीवन नीरस व अगतिशील है। यहाँ आर्थिक दौड़ धूप नहीं है। इसलिये जीवन में मन्दगति है।

(ज) निम्न जीवन-स्तर :—ग्रामीण व्यवसाय अनार्थिक होते हैं। आर्थिक दृष्टि से यहां अतिरिक्त उत्पादन एवं अतिरिक्त सम्पत्ति की विचारणा ही नहीं पाई जाती। इसके साथ ही यहाँ सामाजिक आर्थिक विपदायें भी इन्हें घेरे रहती हैं, जिसके फलस्वरूप जीवन का स्तर निम्न रहता है।

(झ) दरिद्रता :—ग्रामीण जीवन का दरिद्रता से अटूट सम्बन्ध है। कृषि की अप्रविधिक प्रवृत्ति, साहूकारों द्वारा ऋणग्रस्तता, एवं सामाजिक रीति रिवाजों की बाहुल्यता के फलस्वरूप ग्रामीण सदा दरिद्र रहते हैं।

५. राजनैतिक विशेषतायें :—

ग्रामीण विशिष्टता के कारण यहाँ की राजनैतिक विशेषतायें भी भिन्न प्रकार की होती हैं।

(क) पंचायतों का प्रभाव :—ग्रामीण सामुदायिक जीवन में पंचायतों का महत्वपूर्ण स्थान है। पंचायत संगठन ग्रामीण जीवन की आत्मा कही जाती है। पंचायतें न केवल आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से ही अपना आधिपत्य रखती हैं बल्कि जीवन के आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी व्यक्ति एवं समाज पर अपना आधिपत्य जमाये हुए हैं।

(ख) मुकद्दमेबाज़ी व मारपीट :— ग्रामीण जीवन में पंचायतों का अत्याधिक महत्व होने पर भी ग्रामीण व्यक्तियों में मारपीट अत्याधिक पाई जाती है। और ये कृषि व भूमि सम्बन्धी मुकदमें भी बहुत करते हैं। वकीलों के जाल में ये उलझे रहते हैं और अपने धन का अपव्यय करते हैं।

(ग) ग्रामीण नेतृत्व :—राजनैतिक नेतृत्व में भारतीय ग्रामीण अत्यन्त पीछे हैं। राजनैतिक जागृति एवं सामुदायिक विकास की भावनाओं को यहाँ लेशमात्र भी विकास नहीं मिलता है। ग्रामीण जनता, सामाजिक-आर्थिक रूढ़ियों से इतनी घिरी हुई है कि उनको सुधारवादी नेतृत्व का अवसर ही नहीं मिलता है।

(घ) जनमत का महत्व :—ग्रामीण समुदाय सीमित तथा समान होते हैं। जनसंख्या कम होने से यहाँ पारस्परिक सम्बन्ध सम्भव होते हैं। ग्रामीण कार्यों में इसलिये सुगमता से जनमत प्राप्त हो जाता है। यहां पारिवारिक राजनैतिक विचारधारा व्याप्त है जिससे कि जनमत प्राप्त कर लिया जाता है। इसके साथ ही आपसी विचारों के डर से व्यक्ति नियन्त्रण में रहता है। अपने प्रति जनमत बिगड़ जाने के डर से व्यक्ति बुरे कार्यों की ओर प्रवृत्त नहीं होता।

इस प्रकार हमने ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं के अध्ययन में भारतीय ग्रामीण समुदाय के संगठन की विशेषता को देखा। समाजशास्त्रियों ने भारतीय, ग्रामीण समुदाय को अपरिवर्तनशील माना है। लेकिन वर्तमान अवस्था बिलकुल भिन्न दिखाई देती है। आज ग्रामीण समुदायों का भौतिक विकास किया जा रहा है और विभिन्न कारकों का यहाँ प्रभाव पड़ रहा है। ग्रामीण समुदाय के पुरातन ढाँचे में काफी परिवर्तन भी हो चुके हैं। रक्त सम्बन्धों का ढीला पड़ना, कृषि व्यवसाय छोड़ना, जातिव्यवस्था का शिथिल होना आदि प्रमुख हैं।

द्वितीय खण्ड

ग्रामीण सामाजिक संगठन
(Rural Social Organisation)

उपविभाग प्रथम

ग्रामीण सामाजिक संगठन
(Rural Social Organisation)

अध्याय १२

ग्रामीण परिवार

(Rural Family)

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संगठन का महत्व अकथनीय है। सामूहिक व्यवहारों को विकसित करने का समस्त श्रेय संगठन पर ही आधारित हैं, अथवा हम इस प्रकार कह सकते हैं कि सामूहिक जीवन संगठन पर ही टिका हुआ है। समूह व्यवहार में एक निश्चित सहयोग की आवश्यकता होती है। यह सहयोग बिना संगठन के असम्भव है। सामाजिक जीवन के क्षेत्र में संगठन का महत्व अत्यधिक है। यह सामाजिक सम्बन्धों को निरन्तर विकसित करता रहता है। सामाजिक संगठन से सारे सम्बन्ध नियंत्रित एवं स्वीकृत होते हैं। सामाजिक संगठन के सम्बन्ध में इलियट और मेरिल ने लिखा है, "सामाजिक संगठन वह दशा या स्थिति है जबकि एक समाज में विभिन्न संस्थायें अपने पूर्व निश्चित मान्य उद्देश्यों के अनुसार कार्य कर रही होती है।"[1] सामाजिक जीवन का केन्द्र सामाजिक संगठन है, जिसके द्वारा समस्त सामाजिक संस्थायें अपना अपना निर्धारित कार्य करती रहती हैं। सामाजिक संचालन उचित रूप से तथा सरलता से इन संगठनों द्वारा ही संचालित होता है। आग्बर्न और निमकॉफ भी लिखते हैं, "संगठन किसी कार्य को करवाने की प्रभाव पूर्ण सामूहिक युक्ति है।"[2]

इस प्रकार से संगठन के महत्व को हमने सामान्य रूप से देखने के साथ इसकी आवश्यकता पर भी विचार किया तथा यह भी निश्चित किया कि सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संगठन का अत्यधिक महत्व है। ग्रामीण जीवन में भी सामाजिक संगठन का अपना विशेष रूप देखने को मिलता है। मानव ने प्रारम्भ से सहयोग और संगठन में रहने का प्रयास किया है। इसलिये मानव की प्रकृति भी सामाजिक व सहयागी हो गई है। सभ्यता एवं मानव विकास के प्रथम चरण में भी सहयोग की व्यवस्था थी। मानव सदा से एक दूसरे के साथ रहकर कार्य करता रहा है तथा

---

[1] "Social organisation is a state of being, a condition in which the various Institutions in a society are functioning in accordance with their recognised, or implied purposes." Elliott and Merril, 'Social Disorganisation'; (1950) p. 4.

[2] "Organisation is an effective group device for getting something done." Ogburn and Nimkoff : 'A Handbook of Sociology' (1950), p. 364.

अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार से सामाजिक संगठन की इस जटिल प्रक्रिया का रूप आदिकालीन है। सामाजिक सम्बन्धो की निश्चित व्यवस्था का यह क्रम सर्वव्यापी है। हम संस्कृति के विकास के स्वरूप को जितना गहराई से देखने का प्रयास करेंगे, हमें अत्यधिक जटिल रूप में सामाजिक बन्धन व संगठन मिलेंगे।

ग्रामीण सामाजिक संगठन एवं उसकी प्रकृति
(Rural Social Organisation and its Nature)

सामाजिक संगठन के सामान्य रूप व महत्व को देखने के बाद हम अपना ध्यान ग्रामीण सामाजिक संगठन की ओर आकर्षित करते हैं। जैसा हम कह आये हैं कि ग्रामीण जीवन संस्कृति विशेष का द्योतक है, यहां का सामाजिक संगठन भी हमें इसी प्रकार का दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण सामाजिक संगठन की यह सर्वव्यापी विशेषता है कि यहां हमें सामाजिक संगठनों का साधारण रूप मिलेगा। सामाजिक संगठन सभ्यता के विकास के साथ साथ जटिल एवं विभिन्न रूपों में विकसित होता गया है। सामाजिक संगठनों का रूप आवश्यकताओं के साथ परिवर्तित होता जाता है। ग्रामीण जीवन में सादगी व सामान्यता होती है। इस दृष्टि से ग्रामीण सामाजिक संगठनों का रूप भी हमें विशेष आडम्बरों रहित ही मिलेगा। जहां सामाजिक संगठनों के विभिन्न स्वरूपों का प्रश्न हैं यह ग्रामीण क्षेत्र में बहुत कम दृष्टिगोचर होंगे। ग्राम्य जीवन में सामाजिक एकरूपता ही हमें प्राप्त होगी। प्रायः ग्रामीण सामाजिक संगठनों में हमें ग्रामीण परिवार व जाति ही देखने को मिलते हैं। ग्रामीण सामाजिक संगठन का समस्त ढांचा परिवार पर ही आधारित है। यहां इस संगठन का रूप पूर्ण रूप से संयुक्त परिवार तथा अपरिवर्तनशील बन्धनों से बन्धा हुआ हैं। ग्रामीण सामाजिक संगठन में परिवार, जाति व्यवस्था तथा क्षेत्रीय आधार ही प्रमुख बन्धन हैं जिनसे सारा संगठन संचालित होता है। इस सम्बन्ध में श्री दूबे ने लिखा है, "भारतीय ग्राम की जनसंख्या परस्पर आधारित बन्धनों से संगठित होती है। (अ) पारिवारिक बन्धन (ब) जाति व्यवस्था तथा (स) क्षेत्रीय रक्त सम्बन्ध।"[3] ग्रामीण सामाजिक संगठन में अन्य संस्थाओं का बन्धन इतना अधिक नहीं है जितना नागरिक, सामाजिक संगठन में दृष्टिगोचर होता है। इस कथन की पुष्टि हेतु हम यह कह सकते हैं कि ग्रामीण सामाजिक संगठन की व्यवस्था का रूप वर्तमान युग के अनुकूल अविकसित है। उसमें पुरातन सांस्कृतिक व्यवस्था का रूप विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।

[3] "The population of an Indian Village is unitedly three different bounds of solidarity (a) Family ties (b) The Caste System and (c) territorial affiaties" Dr S. C. Dube : 'Reproduced from Transactions of the Third World Congress of Sociology', Vol. I-II, pp. 225-230.

इस संगठन में परिवार की प्रधानता है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि यहां अन्य संस्थायें प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कार्य नहीं करती। ग्रामीण सामाजिक संगठन में सामाजिक संस्थाओं का भी परोक्ष रूप से बड़ा महत्व है। इन संस्थाओं का प्रभाव भी ग्रामीण सामाजिक संगठन में अकथनीय है। अब हम ग्रामीण सामाजिक संगठन के प्रत्येक आधार पर विचार करेंगे। क्रमानुसार ग्रामीण परिवार व विवाह पर हम विचार करेंगे।

ग्रामीण परिवार तथा सामाजिक संगठन
(Rural Family and Social organisation)

सामाजिक संगठन में परिवार संगठन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह संगठन अत्यन्त अनिवार्य एवं प्राकृतिक है। मानवीय एवं प्राणीशास्त्रीय आधारों पर टिका हुआ यह संगठन प्रत्येक समाज में पाया जाता है। प्रत्येक समाज अपने नियमों को संचालन करने के लिये विभिन्न सिद्धान्तों का निर्माण करता है। लेकिन परिवार एक अत्यन्त प्राकृतिक संगठन है जिसको मानव अपने जीवनयापन के लिये बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार करता है। संसार में बालक जन्म लेते ही परिवार की सदस्यता स्वीकार करने के लिये बाध्य हो जाता है। व्यक्ति के प्रारम्भिक महत्वपूर्ण वर्ष इसी संगठन में व्यतीत होते हैं। पारिवारिक संगठन के विषय में समाजशास्त्रियों में बड़ा मतभेद पाया जाता है। विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न प्रकार के परिवारों का रूप व अर्थ पाया जाता है। परिवार के स्वरूप को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं जिनके फलस्वरूप इस संगठन का निर्धारण किया जाता है। मेकाइवर और पेज ने परिवार के विषय में कहा है, "परिवार वह समूह है जो कि लिंग सम्बन्ध पर आधारित होता है और यह काफी छोटा एवं इतना स्थायी है कि बच्चों की उत्पति और पालनपोषण की व्यवस्था करने योग्य है।" [4]

इस प्रकार प्रारम्भ से संस्कृति में लिंग सम्बन्धों की व्यवस्था तथा बालकों की सुरक्षा एवं भरणपोषण हेतु इस सामाजिक संगठन का महत्व पाया जाता है। यदि हम इस प्राथमिक एवं प्रारम्भिक संगठन के उदय का इतिहास देखें तो यह बड़ा विवादास्पद दृष्टिगोचर होगा। लेकिन हम यहां इतना अवश्य निर्धारित कर सकते हैं कि समाज के प्रत्येक रूप व प्रत्येक संस्कृति में पारिवारिक संगठन का महत्व एवं अनिवार्यता पाई जाती हैं। हम यहां अपना ध्यान केवल ग्रामीण परिवार की ओर

[4] "The family is a group defined by a sex relationship sufficiently precise and enduring to provide for the procreation and upbringing of children." MacIver R.M. and Page, C.H. "Society", p. 236.

केन्द्रित करेंगे। सर्व प्रथम हम ग्रामीण परिवार के अर्थ को समझने का प्रयास करेंगे।

ग्रामीण परिवार का अर्थ
(Meaning of Rural Family)

ग्रामीण परिवार उन परिवारों को कहते हैं जो कृषि प्रधान व ग्रामीण संस्कृतियों में पाये जाते हैं। हम कह सकते हैं कि ग्रामीण परिवार वे परिवार हैं जिनका उदय व संगठन ग्रामीण पर्यावरण में हो। ग्रामीण कारकों से प्रभावित परिवार ग्रामीण परिवार कहलाते हैं। हम इस कथन को स्पष्ट करते हुए यह कह सकते हैं कि वे परिवार ग्रामीण परिवारों के नाम से सम्बोधित किये जा सकते हैं जो नागरिक परिवारों से भिन्न होते हैं। ग्रामीण परिवारों को कृषि परिवार (Farm Family) भी कहकर पुकारते हैं। जो सांस्कृतिक कार्य नागरिक परिवार कर सकते हैं वे ग्रामीण परिवार नहीं कर सकते। ग्रामीण परिवार अपने कार्य, प्रकार, संगठन व ढांचे में विशिष्टता रखते हैं। ग्रामीण सामाजिक जीवन में ग्रामीण परिवार का आधिपत्य रहता है। ग्रामीण परिवार की स्पष्ट परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि ग्रामीण परिवार पति पत्नी का यौन सम्बन्धों के आधार पर संगठित समूह है जो ग्राम्य पर्यावरण में निवास करते हैं तथा इस भांति उत्पन्न बच्चों अथवा गोद लिए बच्चों के पालन पोषण अथवा देखभाल की व्यस्था करते हैं।

ग्रामीण परिवार का संगठन
(Organisation of Rural Family)

ग्रामीण परिवार अधिकांशतः न्यास धारा (Trustee) या विस्तृत (Extended) अथवा पितृसत्तात्मक (Patriarchal) आधारों पर संगठित होते हैं। इन परिवारों का विशेष सम्बन्ध कृषि से होता है। इसलिये इन परिवारों का स्थापन (Settlement) कृषि के अनुसार ही किया जाता है। कृषि परिवारों की यह विशेषता होती है कि वे सम्मिलित व संयुक्त होते हैं। इसका कारण यह है कि कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें अनेक व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता होती है। सामान्यतया ग्रामीण परिवार का प्रत्येक सदस्य कृषि कार्य में सलंग्न रहता है। पिता माता, बच्चे, वृद्ध सभी सदस्य कृषि कार्य में सहयोग देते हैं। लेकिन इसके ठीक विपरीत कई कृषि परिवारों का संगठन बड़ा बिखरा होता है। कृषि भूमि के विस्तार के साथ परिवारों का ढांचा भी परिवर्तित होता जाता है। सॉरोकिन व जिम्मरमेन ने कृषि परिवारों के संगठन की चार अवस्थायें बतलाई हैं। प्रथम व्यक्तिगत कृषि परिवार जिसमें केवल स्त्री पुरुष होते हैं। ये बहुत सीमित क्षेत्र में कृषि करना प्रारम्भ करते हैं। द्वितीय अवस्था में बालकों के जन्म के साथ कृषि क्षेत्र में विकास होता है। इस अवस्था को कृषि

परिवार की कठोर अवस्था बतलाया है। इसी प्रकार तीसरी अवस्था में जन्मित बालक, बालिकायें, युवक, कृषि कार्य करने योग्य हो जाते हैं। इस अवस्था को कृषि परिवार की उन्नति की सुगम अवस्था बतलाया है। चतुर्थ अवस्था को कृषि परिवार के पुनः बिखर जाने (Scattered) की अवस्था बतलाया है। इस प्रकार ग्रामीण परिवार पारिवारिक संगठन में गोत्रीय, पितृसत्तात्मक एवं संयुक्त परिवार की विशेषतायें रखता है। ग्रामीण परिवार के संगठन के इन चार आधारों एवं चार अवस्थाओं के अतिरिक्त भी भूमि, कृषि, जाति व्यवस्था आदि भी प्रमुख कारक हैं जो इसे प्रभावित करते हैं। ग्रामीण परिवार के संगठन की अन्य विशेषताओं को जानने के लिये हम अपना ध्यान अब इसकी विशेषताओं की ओर आकर्षित करते हैं।

ग्रामीण परिवार की विशेषतायें
(Characterstics of Rural Family)

ग्रामीण समाज के विभिन्न सामाजिक संगठनों में परिवार सबसे महत्वपूर्ण है। यह संगठन भौतिक व सांस्कृतिक जीवन में भी एक आवश्यक प्रभाव डालने के साथ ग्रामीण समूह व व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को भी प्रभावित करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण परिवार ग्रामीण समाज के सम्पूर्ण ढांचे को प्रभावित करने वाला संगठन है। हमारा मन्तव्य निम्न विशेषताओं के अध्ययन से पूर्ण स्पष्ट हो जायगा :—

(१) अत्यधिक सामंजस्य (Greater Adjustment)

ग्रामीण परिवार में सामंजस्य की प्रधानता पाई जाती है। ये परिवार अधिक स्थाई होते हैं। इन परिवारों में पारस्परिक गठबन्धन बड़े शक्तिशाली होते हैं। परिवार के सभी सदस्य एक क्रम में चलते हैं। बालक, युवक, वृद्ध सभी अपने निर्धारित स्थिति (Status) व कार्य (Roles) के अनुसार पारस्परिक सहयोग व संगठन से कार्य करते हैं। ग्रामीण परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने परिवार पर पूर्ण रूप से आश्रित रहता हैं। पारिवारिक व्यवस्था द्वारा निर्मित आधारों व नियमों को प्रत्येक सदस्य बड़ी खुशी से मानता है। अधिकांशतः हमें ग्रामीण परिवारों का रूप संयुक्त मिलता है।

(२) कृषक गृहस्थी पर आधारित
(Based on peseant Household)

ग्रामीण परिवार कृषक ग्रहस्थी पर आधारित होते हैं। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति कृषि कार्य में संलग्न रहता है। ग्रामीण परिवार में लिंग व आयु के अनुसार श्रम विभाजन की व्यवस्था होती है। ग्रामीण परिवारों की व्यवस्था कृषि के अनुसार ही होती है। कई गांवों की रचना ही इस प्रकार होती है कि भिन्न २

खेतों पर परिवार अपना स्थायी स्थान बनाकर रहते हैं। ग्रामीण परिवार की यह प्रमुख विशेषता है कि वे पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर होते हैं। इस सम्बन्ध में श्री देसाई ने लिखा है, 'सामान्य रक्त सम्बन्धों के साथ सामुदायिक निवास, समान भूमि, एवं समान आर्थिक कार्य कृषक गृहस्थी को उत्पन्न करते हैं।''[5] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ग्रामीण परिवार कृषि परिवार कहलाने के पूर्ण रूप से योग्य हैं। परिवार का आधार पूर्ण रूप से कृषि है।

(३) अधिक अनुशासन (Greater discipline)

ग्रामीण परिवार का संगठन बड़ा स्थायी, संयुक्त तथा शक्तिशाली होता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य मुखिया के आदेशों का पालन करता है मुखिया परिवार के प्रत्येक सदस्य के हित का सदा ध्यान रखता हैं। परिवार के प्रत्येक कार्य में वृद्धों का विशेष अधिकार होता है। परिवार के मुखिया का निश्चय सब को मान्य होता हैं। ''बाबा वाक्यं प्रमाणं'' वाली कहावत इस सिलसिले में सत्य उतरती है।

(४) अधिक अन्योन्याश्रिता (Greater Inter-dependence)

ग्रामीण परिवार प्रत्येक प्रमुख कार्यों का केन्द्र होता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य पूर्ण रूप से परिवार पर आधारित रहता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को ग्रामीण परिवार में कोई महत्व नहीं दिया जाता। ग्रामीण परिवार पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर ही नहीं बल्कि प्रत्येक सदस्य की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। ग्रामीण परिवार कृषि व्यवसाय का केन्द्र होने के साथ साथ शिक्षा, मनोरंजन, धर्म तथा चिकित्सा की भी व्यवस्था करता है। ग्रामीण क्षेत्र में परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई है जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास का ध्यान रक्खा जाता है। उसके सर्वांगीण कल्याण का भी ध्यान रक्खा जाता है। ग्रमीण समाज में ऐसे अन्य कोई संगठन नहीं होते जहां व्यक्ति अपना जीवन निर्वाह कर सकता हो। पारिवारिक व्यवस्था के प्रति प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है।

(५) पारिवारिक प्रबलता (Dominance of family)

ग्रामीण सामाजिक संगठन में पारिवारिकता (Familism) की प्रधानता होती हैं। यह संगठन सभी सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक व शिक्षा क्षेत्र में अपना प्रभावपूर्ण हस्तक्षेप रखता है। ग्रामीण परिवार के सदस्यों में पारस्परिक अन्योन्याश्रितता तथा व्यक्तिगत निर्भरता विशेष होती हैं।

---

[5] "The community house, common land and common economic functions along with the common kinship bond creat the peasant household." A. R. Desai ; 'Rural Sociology in India'; p. 54.

प्रत्येक सदस्य पारिवारिक गौरव को अपना गौरव मानता है। यदि ग्रामीण परिवार का एक सदस्य गांव का पटेल हो जाता है तो कई पीढ़ियों तक यह पारिवारिक क्रम चलता रहता है और परिवार की सामाजिक स्थिति निर्धारित करने वाले कारकों में प्रमुखता रखती है। इसी प्रकार यदि परिवार का एक सदस्य कोई घृणित कार्य कर लेता है तो इसका प्रभाव समस्त परिवार की सामाजिक स्थिति पर पड़ता है। व्यक्तिगत प्रतिष्ठा पारिवारिक प्रतिष्ठा है यह एक अत्यन्त ही प्रबल समिति है। इसके सदस्यों में सामूहिक जागरुकता पाई जाती है ग्रामीण परिवार में वैयक्तिक विचारों का कोई स्थान नहीं है।

(६) परिवार के मुखिया की सत्ता
(Authority of the Head of the Family)

ग्रामीण परिवार की यह भी प्रमुख विशेषता है कि यह समाज की एक अत्यन्त सुसंगठित एवं अनुशासित इकाई है। ग्रामीण परिवार की सत्ता सर्वव्यापी होती है। विभिन्न परिवार में से एक मुखिया समस्त समुदाय का मुखिया निर्धारित होता है। ग्रामीण मुखिया की सत्ता में आयु एवं अनुभव का विशेष ध्यान रक्खा जाता है। मुखिया की सत्ता अपरिमित (Absolute) होती है। ग्रामीण परिवार का मुखिया प्रशासक, पुजारी, अध्यापक एवं पूर्ण रुपेण व्यवस्थापक होता है। परिवार की सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक सत्ता इसी में निहित होती है। ग्रामीण परिवार के मुखिया का सभी आदर करते हैं तथा उसके आदेशों का पूर्ण रूप से पालन किया जाता है। यह कृषि क्षेत्र में श्रमविभाजन, उत्पादन, उपयोग, वितरण आदि की सभी शक्तियों को अपने हाथ में रखता है। सभी क्षेत्रों में इसका निर्णय सर्वमान्य होता है। यह परिवार का सर्वोच्च न्यायाधीश व शासक होता है। बड़े से बड़े पारिवारिक कार्यों में इसका निर्णय अन्तिम निर्णय होता है, जिसमें यह सभी सदस्यों के हित का ध्यान रखता है। जाति व पड़ोस एवं सम्पूर्ण समुदाय के सम्बन्धों एवं कार्यों को यही देखता है तथा निश्चित करता है।

(७) विभिन्न कार्यों में घनिष्ठ पारस्परिक सहयोग
(Close Participation in Various Activities)

ग्रामीण परिवार का यह भी आवश्यक गुण है कि इसमें प्रत्येक सदस्य प्रत्येक कार्य में पूर्ण सहयोग देता है। ग्रामीण परिवार के सभी सदस्य एक निवास, एक भूमि एवं एक समुदाय में रहते हैं। दिनचर्या के प्रत्येक कार्य में प्रत्येक का सहयोग व उपस्थिति वांछनीय है। कृषि कार्य में बालक, वृद्ध, पुरुष, नारी सभी क्षमतानुसार सहयोग देते हैं। यद्यपि लिंग व आयु के अनुसार श्रम विभाजन की व्यवस्था है, परन्तु इसमें बड़ी भारी

शिथिलता है। घर के कार्य व मकान निर्माण के समय स्त्रियों के साथ पुरुष भी पूरा सहयोग देते हैं। ग्रामीण परिवार के सभी सामूहिक कार्यों में सबका सहयोग वांछनीय है। ग्रामीण परिवार की यह भी विशिष्ठता है कि यहां प्रत्येक कार्य में सभी व्यक्ति पूर्ण रुचि से भाग लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण परिवार का सम्पूर्ण ढाँचा सभी के कन्धों पर खड़ा हुआ है।

(८) पारिवारिक पूजा तथा पैतृक आराधना

(Family Cult and Ancestral Worship)

ग्रामीण जनता में अपने परिवार के प्रति बड़ी तीव्र आस्था होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने पारिवारिक गौरव को बढ़ाने का प्रयत्न करता है। ग्रामीण जीवन के अध्ययन में इस प्रकार के विभिन्न उदाहरण मिलते हैं। जहां पारिवारिक मृतक प्रौढ़ों के मन्दिर बने होते हैं। कई लोग अपने गले में इस प्रकार की मूर्तियों को आभूषणों में बनाकर पहनते हैं। यहां तक कि कुओं, हथाइयों तथा गांवों व ढाणियों (Hamlets) के नाम भी इसी आधार पर रक्खे जाते हैं। मृतक पूर्वजों (पित्रों) की जन्म तिथियां एवं बर्सियां भी बड़ी धूमधाम से मनाई जाती हैं।

इस प्रकार ग्रामीण परिवार प्रयेक क्षेत्र में अपनी विशिष्टता रखता है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रामीण सामाजिक संस्था है। यह ग्रामीण समाज के सभी सार्वभौमिक कार्यों का केन्द्र है। समाज के सभी परम्परागत (Traditional) कार्य परिवार के द्वारा ही संचालित किये जाते हैं। यह व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ संगठन है। ग्रामीण परिवार का स्थान इतना महत्वपूर्ण होने के कारण ग्रामीण समाज पर इसका अत्यधिक प्रभाव है। इस प्रभाव की प्रक्रिया को एक विशेष नाम, पारिवारिकता (Familism) के नाम से पारिभाषित किया जाता है। हम निम्नांकित विवरण द्वारा इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

ग्रामीण पारिवारिकता

(Rural Familism)

ग्रामीण पारिवारिकता की छाप समाज के प्रत्येक कार्य में हमें दृष्टिगोचर होती है। ग्रामीण समाजशास्त्री श्री सारोकिन तथा जिम्मरमेन[6] ने कहा है कि ग्रामीण सामाजिक, राजनैतिक, व आर्थिक संगठनों की प्रत्येक अवस्थाओं में हमें ग्रामीण पारिवारिकता एवं पारिवारिक विशिष्टताओं के दर्शन होते हैं। इन विशिष्टताओं को इन्होंने पारिवारिकता (Familism) कहकर पुकारा है।

---

6 Sorokin, Zimmerman. "A Systematic Source Book in Rural Sociology", Vol. IX; p. 41.

पारिवारिकता का अर्थ
(The Concept of Rural Familism)

पारिवारिकता का साधारण अर्थ यह होता है कि परिवार का स्थान समाज में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह ग्रामीण समाज की एक आदर्श व शक्तिशाली संस्था है। तात्पर्य यह है कि पारिवारिकता (Familism) इस बात में जोर देती है कि परिवार को एक सर्वश्रेष्ठ संस्था व सामाजिक संगठन समझा जाय। इसका अर्थ यह है कि ग्रामीण समाज में पारिवारिकता के कारण व्यक्ति तथा उसके व्यक्तित्व को बड़ा गौण रूप दिया जाय। हमेशा पारिवारिक समूह के हितों को सर्वोच्च स्थान दिया जाय। इस प्रवृत्ति एवं प्रक्रिया को ग्रामीण पारिवारिकता (Rural Familism) कहा जाता है। बर्गेस तथा लाक ने पारिवारिकता की साधारण परिभाषा करते हुए लिखा है, "सामान्य रूप में पारिवारिकता का अर्थ व्यक्तिगत सदस्यों के हित को अधीनस्थ रूप में लेकर परिवार समूह के कल्याण को केन्द्रीय रूप में स्वीकार करना है।"[7] अतः ग्रामीण परिवार की यही सत्ता ग्रामीण पारिवारिकता कहलाती है। यहां के सम्पूर्ण सामाजिक संगठन में परिवार की छाप सर्वत्र पाई जाती है। यहां परिवार की व्यवस्था प्रत्येक सदस्य के हित का ध्यान रखती है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को इसके प्रति आस्था होती है। जैसा हमने ऊपर वर्णन किया है कि व्यक्ति का गौरव सम्पूर्ण परिवार का गौरव कहलाता है। अतः पारिवारिकता वैयक्तिक हितों एवं कार्यों, विचारों पर परिवार की प्रधानता है।

इस सम्बन्ध में सारोकिन, जिम्मरमेन तथा गाल्पिन ने भी लिखा है, "चूंकि परिवार ग्रामीण सामाजिक संसार की मौलिक सामाजिक संस्था रहा है इसलिये यह आशा करना स्वाभाविक है कि ग्रामीण परिवार के लक्षणों की छाप कृषि समूहों के समस्त सामाजिक संगठन पर अंकित हो। दूसरे शब्दो में अन्य सब सामाजिक संस्थाएं तथा मौलिक सामाजिक सम्बन्ध ग्रामीण पारिवारिक सम्बन्धों के प्रतिमानों द्वारा अतिवेधित (Permeated) हुए हैं तथा उनके अनुसार प्रतिरूपित हुए हैं। इस प्रकार के सामाजिक संगठन को सम्बोधित करने के लिये पारिवारिकता शब्द

---

[7] "By Familism is meant, in general the acceptance of the welfare of the family group as the central value to which the interest of individual members are subordinated." Burgess and Locke: 'The Family'; (1950) p. 64

का प्रयोग किया जाता है। पारिवारिकता इस प्रकार से समाज के ढांचे में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं मौलिक लक्षण है।"[8]

अतः ग्रामीण पारिवारिकता का ग्रामीण समाज में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त ग्रामीण समुदाय ही संयुक्त परिवार के रूप में संगठित है। यहां प्रत्येक सदस्य में सहयोग एवं 'हम' की भावना व्याप्त है। प्रत्येक ग्रामीण व्यक्ति स्वयं को एक वृहत ग्रामीण परिवार का ही सदस्य समझता है।

ग्रामीण समाज पर परिवारिकता की छाप
(Stamp of Familism on Rural Society)

ग्रामीण समाज पर परिवार द्वारा निर्मित तथ्यों एवं आदर्शों की बड़ी गहरी छाप है। ग्रामीण सामुदायिक जीवन में हम प्रत्येक कदम पर पारिवारिकता का प्रभाव देखते हैं। सम्पूर्ण ग्रामीण समाज परिवार के आधारभूत तथ्यों पर टिका हुआ है। अतः हम इस प्रकार कह सकते हैं कि पारिवारिकता की छाप ग्रामीण समाज पर पूर्ण रूप से लगी हुई है। हम अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिये पारिवारिकता के प्रमुख कारकों का विश्लेषण करेंगे और इस भांति देखने का प्रयास करेंगे कि इस प्रक्रिया के प्रमुख लक्षण क्या हैं और किस प्रकार ग्रामीण समाज इससे प्रभावित हैं।

(१) बाल विवाह तथा उनकी उच्च दर
(Early Marriage and its high Rate)

ग्रामीण परिवार की व्यवस्था के फलस्वरूप ग्रामीण समाज में बालविवाह बहुतायत से होते हैं। देखने से यह भी पता चलता है कि इस प्रकार विवाहों की दरें बड़ी ऊंची है। ग्रामीण जीवन के अध्ययन में यह भी देखने में आया है कि एक ही साथ में परिवार के सभी बच्चों का विवाह कर दिया जाता है। ऐसे भी उदाहरण देखने को मिले हैं कि गर्भावस्था में ही बालकों के विवाह निश्चित कर लिये जाते हैं।

---

[8] "Since the family has been the basic social institution of the rural social world, it is natural to expect that the whole social organisation of agricultural aggregates has been stamed by the characteristics of the rural family. In other words all the other social institutions and fundamental social relationships have been permoted by, and modelled according to, the patterns of rural family relationship. Familism is the term used to designate this type of social organisation. Familism is the outstanding and fundamental trait in the gestalt of such a society." Soookin, Zimmerman and Galpin 'Systemetic source book in Rural Sociology; Vol; II; p.41.

(२) ग्रामीण परिवार : सामाजिक उत्तरदायित्व की महत्वपूर्ण इकाई (Rural family : Important unit of Social Responsibility)

ग्रामीण परिवार ग्रामीण समाज की एक संगठित इकाई है। अधिकांशत: सामाजिक उत्तरदायित्व व्यक्तिगत न होकर पारिवारिक होते हैं। यदि परिवार का एक सदस्य कोई अपराध करता है तो उसका दण्ड समस्त परिवार को भुगतना पढ़ता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति सामाजिक क्षेत्र में गौरवपूर्ण कार्य करता है तो उसका श्रेय परिवार तक जाता है। इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में कर भुगतान व अन्य सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह परिवार ही करता है। इस प्रकार से समाज में व्यक्ति का महत्व भी सम्बन्धित परिवार की सामाजिक स्थिति पर ही निर्भर करता है। बिना परिवार के ग्रामीण समाज में व्यक्ति का अत्यन्त गौण स्थान है।

(३) परिवार : समाज के नियमों का आधार (Family : Basis of the Norms of Society)

ग्रामीण समाज में परिवार को सामाजिक नियमों का आधार माना जाता है। सम्पूर्ण ग्रामीण समाज को अनुशासन, आचार-विचार के नियमों तथा वैधानिकता में रखने का कार्य भी ग्रामीण परिवार ही करता है। इन सामाजिक नियमों को निर्बल बनाने वाले कारकों की भर्त्सना एवं विरोध में ग्रामीण परिवार का स्थान प्रथम रहता है। ग्रामीण परिवार सदा सामाजिक नियमों को निरन्तर स्थायी रूप में करने का प्रयास करता है। ग्रामीण परिवार द्वारा सभी सामाजिक नियमों का समुचित प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता है। पारिवारिकता के प्रभाव के कारण ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जो सामाजिक नियमों के विरुद्ध होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण परिवार एक प्रकार से सामाजिक नियंत्रण की सर्वेक्षण संस्था है। ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों का केन्द्र परिवार ही होने के कारण इसकी प्रधानता इस दिशा में और भी बढ़ गई है। ग्रामीण परिवार में सभी धार्मिक मान्यताओं तथा सामाजिक धारणाओं एवं प्रथाओं को विशेष स्थान दिया जाता है। पैतृक परम्पराओं, आज्ञाओं एवं नियमों आदि का पालन कराने में ग्रामीण परिवार अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(४) परिवार का राजनैतिक स्वरूप पर प्रभाव (Family–Its impression on Political forms)

ग्रामीण समाज के राजनैतिक संगठन भी पारिवारिक धारणा पर आधारित हैं। यहां की राजनैतिक विचारधारा शासक और शासित में वही सम्बन्ध स्थापित

करती है जो कि एक परिवार के मुखिया और उसके सदस्यों में होती है। इस प्रकार यह पितृसत्तात्मक राज्य का स्वरूप उपस्थित करता है। सारोकिन, (Sorokin), जिम्मरमेन (Zimmerman) और गालपिन (Galpin) ने लिखा है, "राजा, सम्राट, शासक, लार्ड, पितृसत्तात्मक परिवार के विस्तृत रूप में समझे गये हैं। ....ग्रामीण समुदाय में प्रधान राजनैतिक संगठन का प्रतिनिधित्व ग्राम संस्था के वृद्ध मुखिया द्वारा होता है जो कि किसानों द्वारा निर्वाचित होता है या परिवार के सदस्यों द्वारा परिवार के वृद्ध के रूप में प्रत्यक्ष या गुप्त रूप से निर्वाचित होता है। ग्राम मुखिया के सम्पूर्ण अधिकारों और प्रशासन का चरित्र पिता अथवा कुटुम्बपति के अधिकारों और प्रशासन का प्रतिरूप है।"[9] ग्रामीण कुटुम्बपति अपने परिवार का पूर्ण रूप से प्रशासक व शासक होता है। ये ही कुटुम्बपति आगे ग्रामपति व ग्राममुखिया का कार्य करता है। कभी कभी जाति पंचायतों में भी इन मुखियाओं का सर्वोपरि स्थान होता है।

(५) संविदायुक्त सम्बन्धों की अपेक्षा सहकारी सम्बन्ध

(Co-operative rather than contractual relations)

ग्रामीण समाज के सदस्यों में आपसी सम्बन्ध मूलरूप में सहकारी होते हैं। इसके विपरीत नागरिक समाज में ये सम्बन्ध संविदात्मक प्रकृति के होते हैं। समाजशास्त्रियों के विचारानुसार इस अन्तर का आधार ग्रामीण और नागरिक परिवार की प्रकृति में मूलभूत अन्तर का होना ही है। सारोकिन व उनके साथियों ने लिखा है, "एक ग्रामीण परिवार में इसके सदस्यों की एकबद्धता, स्वाभाविक एंव चेतनापूर्ण है जो निकट सहनिवास, सहकार्य, सहभावना और सह-विश्वास के परिणाम स्वरूप स्वतः स्वयं विकिसत होती है। इसके सदस्यों में किसी भी प्रकार का संविदायुक्त सम्बन्ध परिवार से अनुपस्थित तथा उसकी संगठित आवाज के प्रतिकूल पड़ता है। ऐसी स्थिति में कौटुम्बिक समाजों में विशुद्ध संविदा सम्बन्धों का न्यून

9 "King, monarch, ruler, lord have been viewed at an enlarged type of family patriarchal......the predominant type of political organisation in rural community is represented by the institution of the village elder, the head, elected by the peasants as the family elder is either openly or tacitly elected by the family members. The whole character of the village chief's authority and administration in a more replion of the paterfamilia's anthority and administration." Sorokin and Zimmerman and Galpin : 'Systematic Source book in Rural Sociology', Vol. II, p. 41

मात्रा में विकसित होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।"[10] नागरिक जीवन में स्वाभाविक सहयोग और एकता की भावना का कुछ अभाव रहता है।

(६) परिवार उत्पादन, उपभोग तथा विनिमय की इकाई
(Family-A unit of production, Consumption & Exchange)

ग्रामीण समाज के आर्थिक ढांचे में ग्रामीण परिवार की विशेषताएं सन्निहित होती हैं जो पारिवारिक सम्पत्ति पर आधारित होती हैं। उत्पादन की प्रकृति भी कौटुम्बिक होती है। ग्रामों में क्रय विक्रय के केन्द्र अविकसित होते हैं केवल साधारणतः वस्तु विनिमय (Barter) प्रणाली के आधार पर ही वस्तुओं का आदान प्रदान होता है। इस प्रकार ग्रामीण समाज में आर्थिक सम्बन्धों को निर्धारित करने वाले नियम पारिवारिकता का स्वरूप उपस्थित करते हैं। इसके विपरीति नागरिक समाज की आर्थिक व्यवस्था में द्रव्य को मध्यस्थ बनाकर वस्तुओं का क्रय विक्रय किया जाता है। इस प्रक्रिया में नागरिक वातावरण में प्रतिस्पर्द्धात्मक एवं संविदात्मक प्रवृत्ति विशेषतः पाई जाती है।

(७) पारिवारिक धर्म और पितृ पूजा की सबलता
(Dominance of Family cult and Ancestor's worship)

हम पहले भी वर्णन कर आये हैं कि ग्रामीण समाज और संस्कृति पूर्ण रूप से परिवारिकता (Familism) से प्रभावित हैं। धार्मिक क्रियाओं का आधार पारिवारिक हैं। पारिवारिक धर्म को सर्वत्र प्रधानता दी जाती है। धार्मिक उत्सवों में मेलों का संगठन आदि भी पारिवारिक आधार पर होता है। इन क्रियाओं का उद्देश्य प्रमुखतः परिवार और सम्पत्ति की सुरक्षा करना होता है। पितृपूजा व श्राद्ध आदि भी ग्रामीण समाज का एक सार्वभौमिक गुण है। देवी-देवताओं के नाम व सम्बन्ध भी पारिवारिक होते हैं। पितृों की मूर्तियों को आभूषणों में लगाकर पहना जाता है। परिवार का टोटम (Totem) भी किसी पूर्वज के नाम के आधार पर ही रखा जाता है।

---

[10] "In a rural family the solidarity of its members is organic and sponteneous......... It springs up of itself-naturally as a result of close co-living, co-working, co-acting, co-feeling and co-believing. Any contractual relationship between its members would be out of place and contradictory to the whole tone to family.........It is not comprising, them, that purely contractual relationship have been but little developed in familism societies." Ibid, p. 46.

(८) परम्पराओं और रीति रिवाजों की प्रधानता
(Dominace of customs and Traditions)

ग्रामीण समाज पूर्ण रूप से प्रथाओं व परम्पराओं का दास है। सम्पूर्ण समाज को ये ही परम्परायें प्रशासित व अनुशासित करती हैं। ग्रामीण लोग परम्पराओं में अत्यधिक विश्वास रखते हैं। ग्रामीण समाज में विकास व परिवर्तन की गति अत्यधिक धीमी होती है।

इस प्रकार से ग्रामीण समाज में परिवारिकता विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित करती है। ग्रामीण सामाजिक जीवन का कोई ऐसा आवश्यक पहलू नहीं जिस पर परिवारिकता का प्रभाव न पड़ा हो। इसलिये हम इस प्रभावकारी प्रक्रिया के विकास के कारकों पर भी यहां प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

ग्रामीण परिवारिकता के निर्माणक कारक
(Factors of Making Rural Familism)

ग्रामीण समाज में परिवारिकता को बनाने वाले तथा स्थायी करने वाले प्रमुख कारक निम्न हैं:

(१) समान सहयोगी व्यवसाय
(Common Co-operative occupations)

ग्रामीण समुदाय में कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें परिवार के सब सदस्य सहयोग देते हैं। मातापिता, बच्चे तथा अन्य सम्बन्धी खेत पर साथ साथ कार्य करते हैं। इस तरह से ग्रामीण समाज में स्वाभाविक रूप से पारिवारिक एकता पाई जाती है। इस कारण से परिवार की शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है।

(२) कृषि पारिवारिक परम्परा
(Agricultural Family Traditions)

ग्रामीण समुदाय में कृषि एक पारिवारिक परम्परा है। प्रत्येक कृषक बालक इन परम्पराओं को स्वतः ही सीख लेता है। वह कृषि के वातावरण में रहकर प्राकृतिक रूप से युवा अवस्था तक आते आते कृषक बन जाता है। इस कारण से वह परिवार से सदा सम्बन्धित रहता है। वह निरन्तर पारिवारिक गठबन्धनों में बन्धा रहता है। परिवार द्वारा निर्मित परम्पराओं का बड़ी खुशी से पालन करता है। वह अपना व्यक्तित्व परिवार में मिला देता है। परिवार के गौरव व शक्ति को बढ़ाने का सदा प्रयत्न करता रहता है। वह परिवारिकता को भी प्रोत्साहन देता है।

(३) पृथक्करण (Isolation)

ग्रामीण समुदाय के सदस्य सापेक्षित रूप से पृथक रहते हैं। यह सामाजिक पृथक्करण ग्रामीण व्यक्तियों को उनके परिवारों में केन्द्रित एवं सीमित कर देता है। इसका फल यह होता है कि व्यक्ति के अधिकांश सम्बन्ध परिवार में ही सीमित रहते हैं तथा बाध्य रूप में समाज से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता। परिणामस्वरूप व्यक्ति परिवार को ही सब कुछ समझने लगता है।

(४) प्राथमिक सम्बन्धों का प्रभाव
(Effect of Primary Relations)

ग्रामीण समाज में लोगों के सम्बन्ध प्राथमिक होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के बारे में पूर्ण परिचय रखता है। प्रत्येक व्यक्ति पर अपने परिवार का पूर्ण नियन्त्रण व अधिकार रहता है। ग्रामीण सम्बन्ध अनौपचारिक होते हैं। ग्रामीण समाज में इन प्राथमिक सम्बन्धों के कारण ही सामाजिक सम्बन्ध स्थायी रहते हैं। सन्तति में परिवार के संगठन की विशेष छाप रहती है। परिवार के बाहर कोई ऐसा समूह नहीं जहां व्यक्ति अति निकट सम्बन्ध स्थापित कर सके। फलस्वरूप प्राथमिक सम्बन्ध सदा घनिष्ट व स्थायी रहते हैं।

(५) परिवार द्वारा स्थिति निर्धारित होना
(Determination of Status through Family)

ग्रामीण समाज में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति परिवार द्वारा ही निश्चित् होती है क्योंकि व्यक्ति परिवार के आधीन ही रहता है। फलस्वरूप परिवार की शक्ति व महत्व बढ़ जाता है। व्यक्ति का स्तर व स्थिति परिवार के द्वारा ही मान्य होती है।

इस प्रकार ग्रामीण समाज का समस्त ढांचा ग्रामीण परिवार का ही प्रतिरूप है। पारिवारिकता (Familism) ग्रामीण समाज का प्रमुख लक्षण है। स्मिथ ने उचित लिखा है, "समस्त इतिहास में ग्रामीण परिवार ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है।"[11] ग्रामीण परिवार ग्रामीण समाज की एक आदर्श संस्था मानी जाती है। सिम्स (Sims) ने भी कहा है, "निश्चय ही यह (ग्रामीण परिवार) उसकी (ग्रामीण समाज) सदैव से ही प्रमुख संस्था रही है

---

11. "Throughout all history the rural family has played a most significant role." T. Lynn. Smith: 'Sociology of Rural life (1953), p. 404.

जो कि व्यक्ति को स्थिति देती रही है तथा सामाजिक ढांचे की अधिकांश प्रकृति को निश्चित करती रही है।"[12]

ग्रामीण परिवार के कार्य
(Functions of Rural Family)

संसार के सभी समाजों एवं सामाजिक पर्यावरणों में परिवार को अत्यधिक महत्वपूर्ण व अनिवार्य कार्य करने का उत्तरदायित्व प्रदान होता आया है। परिवार समाज की सुव्यवस्था, सुरक्षा के अतिरिक्त समाज को विधिवत् संचालित करने का भी आवश्यक कार्य करता है। जैसा हम देख आये हैं कि ग्रामीण समाज में तो परिवार का उत्तरदायित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ग्रामीण परिवार निम्नलिखित कार्य करता है :—

(१) मानव प्राणियों की पुनः उत्पत्ति
(Re-production of human Species)

भावी सन्तति के निर्माण में ग्रामीण परिवार अग्रसर रहता है। नागरिक परिवार की तुलना में ग्रामीण परिवार सन्तति के विकास में अधिक श्रेय प्राप्त करता है। यह नागरिक उपयोग के लिए जनसंख्या प्रदान करता है।

(२) सन्तति का लालन-पालन (Rearing of off-spring)

ग्रामीण परिवार इस क्षेत्र में भी सफलतापूर्ण कार्य करता है। व्यक्ति को उचित वातावरण प्रदान कर उसके विकास का पूरा ध्यान रखा जाता है। इस भांति परिवार बालकों का समाजीकरण करता है।

(३) शिक्षा व प्रशिक्षण (Education and Training)

भावी सन्तान को प्रारम्भ से ही कृषि कार्य का प्रशिक्षण व शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने में ग्रामीण परिवार बड़े सफल हैं। बालक जन्म से ही अपने माता-पिताओं के साथ कृषि स्थल पर जाता है तथा प्राकृतिक रूप से पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर लेता है। कृषि उत्पत्ति के बहुद्देशीय कार्यों का क्रियात्मक ज्ञान बालक को पारिवारिक वातावरण में ही प्राप्त हो जाता है। वह अपने पर्यावरण में ही स्वतः सांस्कृतिक आधारों को सीख लेता है।

---

12. "Certainly it has always been its chief institution, giving status to the individual and determining the nature of much of the social structure." N. L. Sims : 'Elements of Rural Sociology'; (1947) p. 505.

(४) समूह विकास एवं स्थिति निर्धारण (Development of the Group and determination of the Status)

ग्रामीण परिवार में ही समाज की समस्त संरचनात्मक विधियों की व्यवस्था होती है। बालक अपने परिवार में ही समाज के सारे नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसको समूह विकास हेतु समस्त प्रशिक्षण वहीं प्राप्त हो जाता है। परिवार की स्थिति ही प्रायः उसकी सामाजिक स्थिति होती है। ग्रामीण परिवार इस तरह से सामाजिक स्तर व स्थिति को बनाने में बड़ा सफल रहता है।

(५) मनोरंजनात्मक कार्यक्रम (Recreational Programme)

ग्रामीण परिवार मनोरंजन के क्षेत्र में अत्यन्त सन्तोषजनक कार्य करता है। संयुक्त परिवार, विशाल निवास स्थान तथा समुचित मैदानों की सुविधा के कारण प्रत्येक मनोरंजन का कार्यक्रम यहां सम्भव हो जाता है। मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों की व्यवस्था पारिवारिक होती है, इस दृष्टि से भी निरन्तर सुविधायें व सहिष्णुता बनी रहती है। शारीरिक परिश्रम करने के उपरान्त पारिवारिक स्थलों व चोपालों पर इस प्रकार के कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाती है। परिवार के वृद्धजन कहानियां व अन्य कथानक कहकर भी परिवार के सदस्यों का मनोरंजन करते हैं।

(६) परिवार के सदस्यों की सुरक्षा
(Protection of Family Members)

परिवार के सदस्यों के मध्य संगठन व सहयोग का भाव विशेष होता है। परिवार की सुरक्षा, हित, तथा कल्याण के लिये प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न करता है। इस दृष्टि से सर्व साधारण के कल्याण व सुरक्षा की व्यवस्था हो जाती है। प्रत्येक ग्रामीण परिवार अपना निवास स्थान एक सुरक्षित किले के रूप में बनाकर भी परिवार की सुरक्षा का ध्यान रखते हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective responsibility) के ग्रामीण परिवार का एक विशेष गुण होने के कारण उसकी सुरक्षा बनी रहती है।

(७) वृद्धों की देखभाल व अन्य पीड़ित व्यक्तियों की सहायता
(Careing of aged and helping for sufferers)

परिवार के वृद्धजनों व पीड़ित, दुःखी व्यक्तियों की सहायता करने की व्यवस्था भी ग्रामीण परिवार में रहती है। संयुक्त खेती, संयुक्त आय आदि की व्यवस्था रहने से वृद्ध व पीड़ित व्यक्ति भार स्वरूप प्रतीत नहीं होते हैं।

ग्रामीण परिवार : प्रकार
(Rural Family : Types)

ग्रामीण परिवार का ग्रामीण समाज में विशेष आधिपत्य होने के फलस्वरूप इसके विभिन्न रूपों का सरलता से निर्धारण नहीं किया जा सकता। परिवार, समाज, समुदाय, समितियों आदि सभी के प्रमुख कारक समान हैं। ग्रामीण जगत में प्रत्येक क्षेत्र में सभ्यता का सदा प्रभाव पड़ता रहता है। इस दृष्टि से भी परिवारों का कोई वैज्ञानिक वर्गीकरण करना सम्भव नहीं। फिर भी ग्रामीण परिवारों के जो रूप प्रतिलक्षित हैं उनका वर्णन निम्न प्रकार से है :—

(क) माउरर के अनुसार ग्रामीण परिवारों के स्वरूप

समाज शास्त्री माउरर[13] (Mowrer) ने पारिवारिक विशेषताओं पर परिवार के चार प्रकार बताये हैं। (१) पैतृक (Paternal) (२) मातृक (Maternal) (३) साम्य परिवार (Equilateral) (४) सन्तानात्मक परिवार (Filio-Centric-Family).

(१) पैतृक परिवार (Paternal Family)

पैतृक परिवार वे परिवार होते हैं, जिनमें सत्ता पिता में निहित (Dominance of Father) होती है। ग्रामीण व कृषि प्रधान संस्कृतियों में परिवार का यह रूप विशेषतः पाया जाता है।

(२) मातृक परिवार (Maternal Family)

मातृक परिवार वे परिवार होते हैं जिनमें सत्ता माता में निहित होती है। विभिन्न ग्रामीण वन्य जातियों में परिवार का यही रूप पाया जाता है।

(३) साम्य परिवार (Equilateral Family)

साम्य परिवार में सत्ता माता पिता अथवा पति एवं पत्नी में निहित होती हैं। यूरोप तथा अमेरिका के ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं।

(४) सन्तानात्मक (Filio-Centric-Family)

इस प्रकार के परिवारों में सत्ता सन्तान में निहित होती है। विशेष रूप से एक सन्तान वाले परिवार में इस प्रकार की व्यवस्था पाई जाती है। ये ग्रामों में उपलब्ध नहीं होते।

(ख) लेप्ले के अनुसार ग्रामीण परिवारों के स्वरूप

इसी प्रकार लेप्ले महोदय ने भी तीन प्रकारों में परिवार का वर्गीकरण किया है।

13. See Ernest R. Mowrer: 'The Family': Chicago University (1934); pp. 96-98.

(१) पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family)

इस व्यवस्था में व्यक्ति को पूर्णतया परिवार में मिला लिया जाता है। यह रूप साधारणतः विकसित संस्कृतियों में पाया जाता है। भारतीय ग्रामों में परिवार का यही रूप है। इस प्रकार के परिवारों में व्यक्ति का गौण स्थान होता है और परिवार के मुखिया का ही स्थान प्रमुख होता है।

(२) अस्थायी परिवार (Unstable Family)

इस प्रकार के परिवार स्थाई ग्राम रचना के समय दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें व्यक्ति का विशेष स्थान होता है। ये परिवार विवाह से ही प्रारम्भ होते हैं। ग्रामीण वन्य जातियों में इस प्रकार के परिवारों का रूप दृष्टिगोचर होता है।

(३) स्तम्भ परिवार (Stem Family)

इस प्रकार के परिवारों में उक्तांकित दोनों व्यवस्थाओं का रूप सम्मिलित होता है। इस व्यवस्था में समूह निवास पर बल दिया जाता है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार के इस रूप का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

(ग) जिम्मरमेन के अनुसार ग्रामीण परिवारों के स्वरूप :

ग्रामीण समाजशास्त्री जिम्मरमेन[14] का वर्गीकरण भी यहाँ विशेषतः उल्लेखनीय है। इन्होंने परिवारों का वर्गीकरण सत्ता की मात्रा, कार्यक्षेत्र की सीमा एवं सामाजिक नियन्त्रण की परिधि इत्यादि तत्वों पर आधारित किया है।

(१) न्यासधारी परिवार (Trustee Family)

इस प्रकार के परिवारों में व्यक्ति पर विशेष अधिकार रखा जाता है। इसमें पारिवारिक प्रधानता को विशेष महत्व दिया जाता है। इस प्रकार के परिवारों में पारिवारिकता की प्रक्रिया विशेषतः चलती है।

(२) घरेलू परिवार (Domestic Family)

इस प्रकार के परिवारों में सत्ता का अभाव होता है। यह परिवार फिर भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं।

(३) नियंत्रक परिवार (Controller Family)

इनका कार्य क्षेत्र व सत्ता क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है। नियन्त्रण की दृष्टि से ये परिवार पूर्ण रूप से असफल होते हैं। ग्रामों में इनकी मात्रा बहुत कम पाई जाती है। ये परिवार वन्य जातियों में अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

---

14. See Zimmerman . 'Family and Society' (1955) pp. 97-99.

हमने ऊपर ग्रामीण परिवारों के प्रकारों का सामान्य रूप देखा है, जिनमें अधिकांशतः पितृसत्तात्मक एवं पैतृक परिवारों का रूप ही हमें ग्रामीण जगत में दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण भारत में तो पैतृक परिवारों का ही रूप हमें दृष्टिगोचर होता है अब हम भारतीय ग्रामीण परिवार की अन्य विशेषताओं को भी देखेंगे।

भारत में ग्रामीण परिवार
(Rural Family in India)

विश्व के अन्य औद्योगिक प्रगतिशील देशों के समान भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में अभी इतना औद्योगिक विकास नहीं हुआ है। फलस्वरूप अन्य देशों की तुलना में यहां नागरीकरण का भी विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। भारतीय हिन्दू विधि संहिताएं (Indian Hindu Legal Codes) यहां अभी तक वही स्थान प्राप्त किये हुए है। भारतीय ग्राम अब भी संयुक्त परिवार व्यवस्था के पोषक हैं। यहां पिता परिवार के मुखिया के रूप में सामाजिक स्थिति बनाये हुए हैं और सम्पति का मूल अधिकारी भी है। यहां परिवार के सब सदस्य एक सूत्र में बंधे हैं। इस परिवार व्यवस्था से ही भारतवर्ष का सांस्कृतिक आदर्श (Cultural Ideal) बना हुआ है। लेकिन इन बातों के होते हुए मुगलकालीन एवं अंग्रेजी पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने भारतीय ग्रामीण ढांचे को प्रभावित करने का प्रयास किया है। विभिन्न व्यक्तिगत आन्दोलनों व मशीनरी के प्रयासों से भी सामाजिक-आर्थिक (Socio-Economic) ढांचे में परिवर्तन आ गया है। फलस्वरूप जाति व पंचायतों के प्रभावों में ह्रास हो गया हैं। शक्तियों के केन्द्रीयकरण होने से ग्रामीण जीवन के आर्थिक-सामाजिक संगठनों में भी शिथिलता आ गई है। परिणामस्वरूप भारतीय ग्रामीण परिवार विघटित होता जा रहा है और अपने मौलिक कार्यों को भी भूलता जा रहा हैं। परिवार अहंवाद (Family Egoism) में भी ह्रास दृष्टिगोचर होता है। संयुक्त परिवार व्यवस्था के ढांचे में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। इस दृष्टि से वर्तमान युग में ग्रामीण परिवार के अध्ययन के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ती जा रही है।

अध्याय १६

ग्रामीण विवाह
(Rural Marriage)

प्रत्येक मानवीय समाज में विवाह एक केन्द्रीय शक्ति है। ऑग्बर्न ने बताया है कि विवाह समाज की इतनी अनिवार्य संस्था है जितनी प्रसन्नता। मानव की शक्तियों में समुचित सन्तुलन लाने वाली यह एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रियात्मक संस्था प्रत्येक समूह में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। विवाह वह नियम है जो दो विषम लिंगियों के मध्य सामजंस्यपूर्ण व्यवस्था करता है। यह प्रक्रिया मानव सभ्यता से निरन्तर विकसित व परिवर्तित होती आ रही है। वर्तमान युग में प्रत्येक समाज, जाति तथा पर्यावरण में विवाह का कोई न कोई रूप हमें अवश्य दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण क्षेत्रों व ग्रामीण समाज में भी विवाह का विशिष्ट रूप पाया जाता है। यह मानव समाज की एक अमर संस्था है जो सर्वव्यापी है। इस संस्था का निरंतर विकास, एक ऊच्च स्वरूप के रूप में विकसित होता जा रहा है। सर्वप्रथम हम इस संस्था का सामान्य रूप देखने का प्रयास करेंगे।

विवाह का अर्थ
(Meaning of Marriage)

विवाह लैंगिक सम्बन्धों के नियन्त्रण पर आधारित एक स्थायी सामाजिक संस्था है, जो कि स्त्री, पुरुष अथवा पति-पत्नी के सामन्जस्यपूर्ण रूप में पारिभाषित की जा सकती है। वेस्टरमार्क ने लिखा है, "विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला सम्बन्ध है जो प्रथा या कानून द्वारा स्वीकृत होता है, तथा जिस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों तथा उनके बच्चों के अधिकार व कर्तव्यों का समावेश होता है।"[1] वास्तव में विवाह एक नियमों की स्थायी व्यवस्था है जो सांस्कृतिक विरासत से निकल कर निरन्तर विकसित होती जाती है। यह व्यवस्था अब मानवीय जीवन में इतनी समा गई है कि यह स्वयं ही जीवन का रूप हो गई है।

---

1 "As a relation of one or more men to one or more women which is recognised by custom or law, and involves certain rights and duties both in the case of the parties entering the union and in the case of the children born of it." Westermark: 'The history of human Marriage', Vol. I. p. 26.

इस व्यवस्था का क्रम एक जाल के रूप में मानव जाति पर आच्छादित हो गया है जो समाज को अधिकार में रखता है। यह मानव की इच्छाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। श्री होबल ने भी इस सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए लिखा है, "विवाह सामाजिक नियमों का जाल है जो कि वैवाहिक युग्म के पारस्परिक, उनके रक्त सम्बन्धों, बच्चों तथा समाज के प्रति उनके सम्बन्धों को नियन्त्रित एवं पारिभाषित करता है।"[2] इसी प्रकार से राबर्ट लावी के मतानुसार, "विवाह उन स्पष्टतः स्वीकृत संगठनों को प्रकट करता है जो इन्द्रिय सम्बन्धी सन्तोष के उपरान्त भी स्थिर रहता है तथा पारिवारिक जीवन को आधार शिला बनाता है।"[3] बील्स तथा हाइजर ने कहा है, "प्रत्येक मानव समाज में, जिससे हम परिचित हैं, एक जटिल सांस्कृतिक घटना है जिसमें कि पूर्णतः प्राणीशास्त्रीय कार्यों का निर्वाह होता है, किन्तु इसके अतिरिक्त बच्चों एवं गृहस्थी का पालन पोषण तथा परिवार पर लादी गई सांस्कृतिक आवश्यकताएं आदि सामाजिक क्रियायें भी होती हैं।"[4]

ग्रामीण विवाह
(Rural Marriage)

ग्रामीण विवाह भी ग्रामीण समाज की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था है। यह संस्था यहां दो व्यक्तियों में मनोवैज्ञानिक सामंजस्यता तो स्थापित करती ही है, परन्तु इसके साथ समस्त समाज की एक शक्तिशाली सत्ता भी है। इस सत्ता का प्रभाव अन्य सामाजिक संस्थाओं की तुलना में अत्यधिक है। यहां विवाह के प्रति समाज का दृष्टिकोण अत्यन्त पवित्र एवं स्थायी हैं। नागरिक समाज में औद्योगीकरण, शिक्षा,

---

2 "Marriage is the complex of social norms that define and control the relations of mated pair to each other, their kinsmen, their offsprings and society." Hoebel, E.A.: 'Man in the primitive world.' p. 105.

3 "Marriage denotes those unequivocally sanctioned unions which persists beyond sexual satisfaction and thus come to underlive family life." Robert H. Lowie: 'Marriage in Encyclopaedia of Social Science's' Vol, X, p. 146.

4 "Marriage in every human society that we know is a complex cultural phenomenon in which the purely biological functions of mating plays but a small role in such sociological functions as the care of children, the maintenance of the household and other culturally imposed needs of the family." Beals and Hoiger : 'An Introduction to Anthropology' p, 416.

व सत्ता के प्रभावकारी दुष्प्रभावों से यह सांस्कृतिक संस्था शिथिल होती जा रही है। ग्रामीण समाज अभी इसकी आत्मा सुरक्षित रखे हुए है। विवाह संस्था द्वारा संचालित परिवार ग्रामीण समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। परिवार की सत्ता विवाह के आधारों पर खड़ी होकर ग्रामीण समाज को नियंत्रित एवं संचालित कर रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि विवाह का समाज में बड़ा आदर है। इसके नियमों को पालन करने में सभी व्यक्ति बड़ी रुचि लेते हैं। यहां विवाह एक महत्वपूर्ण धार्मिक संस्कार माना जाता है। धर्म व ईश्वर से डर कर कोई इस व्यवस्था का विरोध करने का साहस नहीं करता है। ग्रामीण विवाह का कामवासना की तृप्ति करना ही उद्देश्य नहीं है बल्कि यह सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहां विवाह एक सामाजिक आवश्यकता न होकर धार्मिक आवश्यकता है। विवाह के बिना जीवन अपूर्ण समझा जाता है। विवाह के उपरान्त ही व्यक्ति को सामाजिक स्थिति प्राप्त होती है और समाज में उसे एक महत्वपूर्ण सदस्य के रूप में जाना जाता है।

ग्रामीण विवाह की विशेषताएं

(Characteristics of Rural Marriage)

विवाह अन्य सामाजिक संस्थाओं के समान विभिन्न कारकों, पर्यावरणों तथा भौतिक अभौतिक विचारों से प्रभावित है। इन प्रभावों से इस संस्था के आधारों का उद्रेक हो जाता है। समाज विशेष की सामाजिक स्थिति (Social Status) व अन्य आर्थिक व सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुकूल विवाह के रूप में परिवर्तन हो जाता है। हमारा प्रस्तुत अध्ययन ग्रामीण विवाह की अपनी विशेषतायें व उद्देश्य रखता है। हम यहां ग्रामीण विवाह के उद्देश्य पर प्रकाश डालेंगे।

ग्रामीण विवाह के उद्देश्य

(Aims of Rural family)

(१) लिंग सम्बन्धों पर नियंत्रण

(Control over Sexual Relations)

ग्रामीण विवाह की धारणा लिंग नियन्त्रण करना है। विवाह के द्वारा स्त्री पुरुषों की लैंगिक शक्तियों में मनोवैज्ञानिक रूप से सामंजस्य स्थापित कर निरन्तर सहयोगी रहने की प्रेरणा देता है। इसके द्वारा मान्य लिंग सम्बन्धों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के साथ लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा का दमन किया जाता है और इस भांति लैंगिक सम्बन्धों को नियन्त्रित किया जाता है।

इतना महत्व न दें तो ग्रामीण पारिवारिकता (Familism) में भी प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण पारिवारिकता ग्रामीण सामाजिक ढांचे का आधार हैं।

(७) पिंड दान (Pind Dan)

ग्रामीण पुरातन प्रथाओं और आदर्शों के मानने में सदा अग्रसर रहते हैं। भारतीय धार्मिक प्रथाओं के द्वारा, पुत्र व पौत्र के हाथ द्वारा पिंडदान न होने तक दादा की मुक्ति नहीं मानी जाती है। इस विचार से भी ग्रामीण लोग वैवाहिक संस्था का निर्माण करते हैं। वे विवाह को इस दृष्टि से भी आवश्यक मानते हैं और बाल विवाहों को प्रोत्साहित करते हैं।

इस प्रकार से ग्रामीण विवाह के पीछे विभिन्न उद्देश्य व लक्ष्य है। ग्रामीण समाज में इन उद्देश्यों की पूर्ति को प्राथमिकता दी जाती है। सामाजिक आधारों को स्थायी रखने के लिये वे इन उद्देश्यों का निर्माण आवश्यक समझते हैं। इस दृष्टि से विवाह को समाज का एक आवश्यक गुण मानते हैं। निम्नांकित ग्रामीण विवाह की विशेषताओं से हमारा अर्थ और स्पष्ट हो जायगा।

ग्रामीण विवाह की प्रमुख विशेषतायें
(Chief Characteristics of Rural Marriage)

ग्रामीण विवाह की निम्न विशेषतायें हैं :-

(१) बाल विवाह (Child Marriage)

भारतीय ग्रामीण विवाहों की यह विशेषता है कि यहां अधिकांश विवाह बहुत कम आयु में कर दिये जाते हैं। इसका कारण धार्मिक परम्पराओं को मानना हैं। भारत के विभिन्न धर्म सूत्रों में इसका उल्लेख मिलता है। दूसरा कारण जाति व्यवस्था तथा उपजाति व्यवस्था होने के कारण भी ग्रामीण इस दिशा में बड़े सचेत रहते हैं। इस बन्धन के कारण कई लोग अविवाहित रह जाते हैं। अतः ग्रामीण लोग शीघ्रातिशीघ्र अपने बालकों का विवाह करते हैं। भारत में बालविवाह का विशेष रिवाज है।

(२) दहेज (Dowry)

दहेज वह धन, सम्पत्ति या वस्तुएं हैं, जो वरपक्ष को कन्या के साथ कन्यापक्ष द्वारा स्वेच्छा से दिया जाता है। ग्रामीण विवाह में दहेज का भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामीण लोग दहेज देना व लेना अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा समझते हैं। आजकल दहेज देना और मांगना बड़ी स्वतन्त्रता से होता है। इस व्यवस्था में कन्या वर्ग के लोगों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है। यह दहेज वरमूल्य (Bride-groom's price) के रूप में भी लिया दिया जाता है किन्तु वास्तव में

वरमूल्य वह धन, सम्पत्ति या वस्तुयें हैं जो कन्यापक्ष से वरपक्ष अपनी इच्छानुसार प्राप्त करता है अथवा मांगता है और जिन्हें कन्यापक्ष (वर के मूल्य के रूप में) बाध्य होकर देता है अथवा देना स्वीकार करता है ।

(३) कन्या दान (Kanya Dan)

ग्रामीण समाज में कन्यादान को भी आवश्यक स्थान दिया जाता है। कन्या वर्ग द्वारा विवाह की क्रिया को कन्यादान कह कर पुकारा जाता है। भारतीय ग्रामों में कन्यादान की एक विशेष क्रिया कराई जाती है। इसमें कन्या का पिता अपनी कन्या को देने के साथ उसके साथ अन्य दान दहेज आदि भी देता है।

(४) विवाह विच्छेद (Divorce)

ग्रामीण परिवारों में विवाह की संस्था अधिक स्थायी होती है। कुछ सीमा में इसे तोड़ा भी जा सकता है। विवाह विच्छेद की अनुमति ग्रामीण पुरुषों व स्त्रियों दोनों को ही होती है। विवाह विच्छेद के बाद अन्य व्यक्ति से विवाह करना नाता कहलाता है।

(५) नाता प्रथा (Nata System)

भारतीय ग्रामीण समाज में नाते जाने की भी एक विशेष प्रथा है। विधवा विवाह का ही यह एक प्रकार का रूप है। विधवा स्त्री किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह करती है किन्तु इस में विवाह की सम्पूर्ण प्रणाली का प्रयोग नहीं होता। इस प्रकार की क्रिया को नाते जाना कहते हैं। कभी कभी अपने जीवित पति को तलाक देकर भी स्त्रियां नाता करती हैं।

(६) झगड़ा चुकाना (Payment of Bride compensation)

ग्रामीण वैवाहिक सम्बन्धों में झगड़ा चुकाना भी एक विशिष्टता है। स्त्री अपने जीवित पति को छोड़कर दूसरे पुरुष के पास जाती है। जिस पुरुष के पास वह जाती है वह स्त्री के पहले पति को कुछ रूपया देता है। यह रुपया स्त्री के पहले पति को दिया जाता है। इस क्रिया को झगड़ा चुकाना कहते हैं। भारतीय ग्रामों में यह प्रथा सर्वत्र पाई जाती है। यह प्रायः प्रेम एवं रोमांस के परिणाम-स्वरूप होता है या पति के अत्याचार के कारण।

(७) विशेष भोज करना (Special Feasts)

ग्रामीण विवाह की यह भी एक विशेषता है कि इस अवसर पर विशेष भोज का आयोजन किया जाता है। ऐसे मौकों पर वे चार २ पांच २ ग्रामों को निमन्त्रित कर लेते हैं। ग्रामीण लोग इस प्रकार के कार्यक्रमों का करना अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा मानते हैं। इस प्रथा के निभाने के लिये वे ग्राम साहूकारों से ऋण भी लेते हैं। ग्रामीण ऋण की अधिकांश मात्रा इसी पर आधारित है।

ग्रामीण विवाह के प्रकार
(Types of Rural Marriage)

ग्रामीण समाज में विवाहों के विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं। यहां विभिन्न संस्कृतियों एवं समाजों का प्रभाव पड़ने से विवाहों के कई रूप हो गये हैं। ग्रामीण समाज में विवाह का कोई एक रूप नहीं हैं। अधिकांशतः ग्रामीण समाजों में निम्न प्रकार के विवाह दिखाई देते हैं।

(१) एक विवाह (Monogamy)

इस वैवाहिक संगठन में केवल एक पुरुष का एक स्त्री के साथ सम्बन्ध होता है। जब तक वह स्त्री या पुरुष मर नहीं जाते तब तक दूसरा विवाह नहीं कर सकते। भारत के ग्रामों व नगरों में भी यह व्यवस्था पाई जाती है। इस विवाह के कई आधार हैं। जैसे आर्थिक स्थिति, स्त्रियों की संख्या, स्थायित्वता आदि।

(२) बहु विवाह (Polygamy)

इस वैवाहिक संगठन में स्त्री पुरुष की संख्या अधिक रहती है। अर्थात् एक पुरुष का दो या दो से अधिक स्त्रियों अथवा एक स्त्री का दो या दो से अधिक पुरुषों से सम्बन्ध होता है। यह प्रथा भारत के कुछ ही गांवों में पाई जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रीय वन्जातियों में इस प्रकार के विवाह बहुत होते हैं। इस विवाह के चार स्वरूप हैं।

(क) द्वि विवाह (Bigamy)– इस वैवाहिक संगठन में एक पुरुष एक ही समय में दो स्त्रियां या एक स्त्री दो पति रख सकती है। कभी कभी ग्रामीण क्षेत्र में सन्तान प्राप्ति की विशेष आकांक्षा वश द्विपत्नि विवाह करलिया जाता है।

(ख) बहुपत्नी विवाह (Polygyny)– इस संगठन में एक पुरुष एक ही समय में दो से अधिक स्त्रियां रखता है। यह विवाह पुरुष को एकाधिकार भावना का द्योतक बतलाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में इस प्रकार के विवाह भी पाये जाते हैं। इस विवाह का रूप अफ्रीका अमेरिका की जातियों में बड़ा विलक्षण है। यहां असीमित स्त्रियां भी रक्खी जा सकती हैं।

(ग) बहुपति विवाह (Polyandry)– ग्रामीण क्षेत्रों में बहुपति विवाह का भी रूप देखने को मिलता है। ग्रीनलैंड के एस्किमो, तिब्बत मालाबार आदि जातियों में यह विवाह विशेषतः होता है। यह विवाह वहीं होता है जहां स्त्रियों की संख्या कम होती है। इस विवाह में एक स्त्री दो से अधिक पति रखती है। जौनसार बाबर में बहुपति विवाह प्रचलित है।

(घ) समूह विवाह (Cenogamy)– इस व्यवस्था में विवाह संगठन का कर्यक्रम सामूहिक रूप से किया जाता है। प्रायः एक समूह के भाई या एक परिवार के भाई दूसरे समूह या परिवार की बहन में विवाह कर लेते हैं और उनमें यौन सम्बन्ध अनिश्चित रहते हैं। आजकल यह विवाह नहीं के बराबर पाया जाता है।

(३) देवर तथा साली विवाह

(Levirate and Sororate Marriage)

ग्रामीण क्षेत्रों में विधवा होने व जीवित पति पत्नी को छोड़ने के समय देवर तथा साली विवाह भी कर लिये जाते हैं। देवर साली विवाह की प्रथा भी भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है। इन विवाहों में देवर विवाह में पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्री पति के छोटे भाई से विवाह कर लेती है और स्त्री उसी परिवार में बनी रहती है। साली विवाह में पत्नी की मृत्यु के पश्चात् पत्नी की बहिन से विवाह कर लिया जाता है जिससे मृत स्त्री के बच्चों की देखभाल मौसी के द्वारा भलीभांति से होती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में विवाह के उपरोक्त सभी रूप पाये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में वैवाहिक प्रणाली भी संस्कृति के अनुसार सामान्य ही होती है।

अध्याय १४

ग्रामीण सामाजिक वर्ग

(Rural Social Classes)

संसार में कोई ऐसा देश व समाज नहीं है जो वर्गहीन हो। वे संस्कृतियां जो कि दूर निर्जन बनों में पोषित एवं पालित हैं या वे समूह जिन्हें सभ्यता ने अपनी झलक नहीं दिखाई है, उनमें भी वर्गभेद पाया जाता है। आज के युग में ऐसा समाज मिलना कठिन है जिसमें किसी न किसी प्रकार का सामाजिक स्तरण न पाया जाता हो। समनर ने उचित ही लिखा है, "मैंने इतिहास में परिश्रम से यह ढूंढने का प्रयास किया जब वर्ग घृणा न पाई जाती हो ………… मैं ऐसा युग नहीं पा सका।"[1]

सामाजिक स्तरण के आधार

(Basis of Social Stratification)

इन सामाजिक वर्गों के निर्धारण में भिन्न २ कारकों का आधार लिया जाता है। यदि पूर्व में सामाजिक वर्गों का निर्धारण जन्म से होता है तो पश्चिम में धन से। यद्यपि ये कारक देखने में नहीं आते हैं तो भी स्थिति (Status), लिंग, जाति, रक्त सम्बन्धों आदि के आधार पर तो वर्गभेद सदैव से मिलेगा ही। भारतवर्ष में जन्म ही वर्णभेद का आधार बन जाता है। यहां की सभ्यता एवं संस्कृति ही वर्ण भेदों पर आधारित हैं। श्रीमद्भागवद् गीता में लिखा है, "मैंने चारों वर्णों का विभाजन गुण और कर्म के आधार पर किया है।"[2] श्री दूबे ने अपनी रचना इंडियन विलेज (Indian Village) में कहा है, "समाज के जातीय विभागों पर आधारित हिन्दू सामाजिक व्यवस्था, एक अत्यन्त जटिल सामाजिक ढांचे को प्रस्तुत

---

1 "I have sought diligently in history for the time when no class hatreds existed . ...I can not find any such period." Summer: 'The Forgotton men and other Essays' Editted by A. G. Keller; (1913); p. 253.

2 'चातुर्वर्न्य मया सृष्ठ गुण कर्माविभागत:'

करती है। भारतीय राजनीतिक उद्विकास के कालान्तर में परिवर्तित हुई परम्परागत वर्ग-व्यवस्था हिन्दू समाज को पांच प्रमुख समूहों में विभाजित करती है।"[3]

इस प्रकार कालान्तर से विभिन्न आधारों पर आधारित वर्गभेद का अस्तित्व प्रत्येक समाज में व्याप्त है। वर्गभेदों के अन्य आधारों के बारे में आग्बर्न ने लिखा है, "यह उन सामाजिक व्यक्तियों का योग होता है जिनकी आवश्यक रूप से एक निश्चित समाज में समान सामाजिक स्थिति है।"[4] आग्बर्न के इन शब्दों से स्पष्ट हैं कि स्थिति के आधार पर भी वर्गों का निर्धारण होता है। इसी प्रकार जिन्सबर्ग ने कहा है, "जो कि सामान्य वंशक्रम, समान व्यवसाय, धन एवं शिक्षा के कारण एकसा जीवन बिताते हैं और जो समान विचारों भावनाओं एवं व्यवहारों का भंडार रखते हो और जो इसमे से कुछ या सब के सब कारण एक दूसरे से समानता के आधार पर मिलते हो और अपने को एक समूह का सदस्य समझते हों चाहे इस बात की चेतना उनमें विभिन्न अंशों में पाई जाती हो।"[5] इसी प्रकार लेपियर ने भी कहा है, "एक सामाजिक वर्ग सुस्पष्ट सांस्कृतिक समूह है जिससे सम्पूर्ण जनसंख्या में एक विशिष्ट स्थान या स्थिति प्रदान की जाती है।"[6] इस तरह सामाजिक स्तर,

---

3 "The Hindu Social System, founded on the division of society into castes, presents a social framework of great complexity. The traditional varna system, modified in the course of the evaluation of Indian polity, divides Hindu Society into five major groups" S.C. Dube: 'Indian Village' p. 35.

4 "A Social class is the aggregate of persons having essentially the same social status in a given society." Ogburn and Nimkoff: 'A Hand book of Sociology'; p. 210.

5 "A class is a group of individuals .... who through common descent, similarity of occupation, wealth and education have come to have a similar mode of life, a similar stock of ideas, feeling attitudes and forms of behaviour and who, on any or all of these grounds meet one another on equal terms and regard themselves although with varying degree of explicitness', as belong to one group." Ginsberg. M.: 'Class Consciousness', Encyclopeadia of Social Sciences. Vol. III. p. 536.

6 "A Social class is a culturally defined group that is accorded a particular position or status with in the population as whole." Lapiere: 'Sociology' p. 452.

शिक्षा, व्यवसाय, सम्पत्ति आदि प्रमुख आधारों पर वर्गों का रूप देखने को मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे किसी आधार पर वर्ग व्यवस्था आधारित हो सामाजिक स्तरण के इस रूप की उपस्थिति अवश्यमेव मिलेगी। आज संसार में कोई ऐसा समाज नहीं है अथवा कोई ऐसा देश नहीं है जहां सामाजिक स्तरण न पाया जाता हो।

अतः ग्रामीण सामाजिक संगठन के अध्ययन को स्पष्ट करने के लिये हमारे लिये यह अनिवार्य है कि हम ग्रामीण सामुदायिक स्तरण के प्रमुख आधारों का परीक्षण करें। यद्यपि ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था एक संयुक्त एवं संगठित सामुदायिक व्यवस्था है, जहां प्रत्येक संयुक्त परिवार रक्त सम्बन्धों पर आधारित समूहों का अंग है। इसी प्रकार ये रक्त सम्बन्ध विभिन्न जातीय समूहों में विभाजित हैं। प्रत्येक जातीय समूह ग्राम समुदाय और प्रत्येक ग्राम समुदाय ग्राम-पड़ौस के प्रति उत्तरदायी है। प्रमुखतः प्रत्येक ग्रामीण व्यक्ति परिवार, ग्राम, जाति व वर्ग से नियंत्रित है। इन प्रमुख समूहों में पारस्परिक निर्भरता पाई जाती है। ग्रामीण परिवार संगठन एवं ग्राम समुदाय का वर्णन हम गत अध्यायों में स्पष्ट कर आये हैं। फिर भी हम यहां उनकी वर्गीय आधारों पर विवेचना करेंगे।

ग्रामीण सामाजिक वर्ग के निर्णायक कारक
(The Determining Factors of Rural Social Classes)

समाजशास्त्रीय क्षेत्रों में वर्ग व जाति के अर्थों का प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है। इस सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों ने भिन्न २ रूप से अपने मतों का प्रतिपादन किया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सामाजिक स्तरण का रूप प्रत्येक समाज में भिन्न २ पाया जाता है। ग्रामीण समुदाय में भी वर्गभेद का रूप दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण समाज में भी कुछ लोग विशेष सुविधाओं और आधारों का प्रयोग करते हैं और कुछ लोग इससे वंचित रह जाते हैं। कुछ लोग अधिक सम्मान व सेवाओं के अधिकारी होते हैं। उनके विशेष अधिकार व उत्तरदायित्व है। इस प्रकार ग्राम समाज में भी विभिन्न वर्गीय श्रेणियां होती हैं। सम्पूर्ण ग्राम समुदाय इन वर्गों में बंटा रहता है जिनको ग्रामीण सामाजिक वर्ग कहते हैं। यहां के वर्गीकरण में भूमि (सम्पत्ति का अनुपात विशेष होता है। इसी आधार पर समाज के मध्य सामाजिक स्थितियां निर्धारित हो जाती हैं। जो लोग अधिक भूमि व पशु सम्पत्ति के मालिक होते हैं वे ग्रामीण समाज में अन्य लोगों की तुलना में विशेष अधिकार, आदर, और स्थिति प्राप्त किये होते हैं। ये लोग अपने विशिष्ट अधिकारों के आधार पर कार्य व व्यवसाय का विभाजन कर लेते हैं। अपने हाथ में निरीक्षणादि का कार्य रखते हैं। बाकी सारे व्यवसाय क्षमता व साधन के अनुसार वितरित कर दिये जाते

हैं। इस प्रकार से ग्रामीण समाज में स्तरण (Stratification) का ढांचा निर्मित होता है। इस सामाजिक वर्गीकरण के आधार पर वर्ग विशेष की सामाजिक स्थितियां (Social Status) निर्धारित हो जाती हैं। उन लोगों के व्यवहार में अन्तर हो जाता है। एक वर्ग के लोग दूसरे वर्ग के लोगों से विशेष बातचीत व व्यवहार करते हैं। इन वर्गों की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थितियों में अन्तर आने के साथ साथ मनोवृत्तियों व विचारधाराओं में भी अन्तर उपस्थित हो जाता है। परिणामस्वरूप परस्पर भ्रम, घृणा व ऊंच-नीच की भावनाओं का उदय हो जाता है। सामाजिक स्तरण में भी सांस्कृतिक भिन्नता पाई जाती है। इसका प्रमुख कारण स्तरण निर्णायक कारकों का अन्तर है। प्रत्येक समाज में भिन्न भिन्न निर्णायक कारक पाये जाते हैं। साधारणतः प्रत्येक समाज में सामाजिक स्तरण के दो प्रमुख लक्षण पाये जाते हैं। ये सार्वभौमिक लक्षण (Universal Features) और अस्थिर लक्षण (Variable Features) है। ये लक्षण सदा विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न होते हैं।

इस परिवर्तन का आधार स्थिति (Status) और कर्तव्य (Roles) है। स्थिति शब्द का प्रयोग हम दैनिक भाषा में करते हैं। इससे व्यक्ति के सामाजिक स्थान से तात्पर्य है। ऑग्बर्न और निमकॉफ (Ogburn & Nimkoff) ने लिखा है, "एक व्यक्ति की स्थिति उसका समूह में स्थान एवं दूसरों के सम्बन्ध में उसका क्रम है।"[7]

ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति का निर्धारण उसके कर्तव्यों से होता है। स्थिति व्यक्ति के कर्तव्यों की ओर संकेत करती है। व्यक्ति विशेष ग्रामीण नेता हैं अथवा अनुयायी यह उसके कार्यों से ही प्रतिलक्षित होता है। उदाहरणस्वरूप हम किसी ग्रामीण व्यक्ति की स्थिति को ग्राम नेता के नाम से पुकारते हैं। ग्रामीण नेता (Rural Leader) की स्थिति के साथ उसका कार्य भी निहित है। ग्रामीण नेता के विशेष कर्तव्य होते हैं। ग्राम नेता ग्राम योजनायें बनाता है, विकास का प्रचार करता हैं, पंचायत एवं सहकारिता की सभाओं में भाग लेता है, अन्य ग्रामीण जनता उसके कार्यों से प्रभावित होती है, उसकी आज्ञा मानती है और उसकी इस प्रकार से निश्चित सामाजिक स्थिति निर्धारित हो जाती है। स्थिति उसका एक प्रकार का अधिकार है जो उसके कर्तव्यों पर आधारित है। अतः यह स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्ति को ग्रामीण नेतृत्व (Rural Leadership) की स्थिति भी ग्राम समूह द्वारा प्रदान की जाती है कि वह निर्धारित कर्तव्यों का पालन करे। सरपंच

---

7. "A person's status is his group standing or ranking in relations to others." Ogburn & Nimkoff : 'A hand book of Sociology'. p. 208.

अपने अधिकारस्वरूप ग्रामीण जनता के कल्याण की बात तभी सोच सकता है जब कि वह सरपंच के निर्धारित कर्तव्यों (Roles) से परिचित हो और उनका पालन करता हो तभी उसे यह स्थिति प्राप्त होती है। ग्रामीण जनता तभी उसकी आज्ञाओं का पालन करती है तथा उसके निर्देशों के अनुसार कार्य करती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्थिति के साथ कार्यों का घनिष्ट सम्बन्ध है। इन निश्चित कार्यों को ही समाजशास्त्रीय भाषा में कर्तव्य (Roles) कहते हैं। इसके अतिरिक्त इन स्थितियों से व्यक्ति विशेष का स्थान अन्य समितियों से निर्धारित हो जाता है। इन स्थितियों के योग से सामाजिक स्थिति का निर्माण होता है।

विभिन्न देशों में वर्गभेद
(Class Differences in Various Countries)

ग्रामीण सामाजिक जीवन में यद्यपि सामुदायिक व सहयोगिक जीवन की विशिष्टता पाई जाती है, परन्तु फिर भी वे इस वर्गभेद से अछूते नहीं हैं। यहां इन विभिन्नताओं का और भी जटिल व पुरातन रूप दृष्टिगोचर होता है। ग्राम एक आत्मनिर्भर इकाई होने के उपरान्त भी यहां वर्गभेद व जाति भेद (भारत में) का प्रकोप दिखाई देता है। इंग्लैंड के ग्रामीण समाज में सामाजिक स्तरण का एक विशिष्ट रूप पाया जाता है। उसमें सात वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग की विशिष्ट सामाजिक व्यवहार व जीवन की प्रवृत्तियां भिन्न हैं। सातों वर्ग अपनी अपनी भिन्न सीमाओं में रहते हैं। प्रत्येक वर्ग की निश्चित सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व धार्मिक सीमायें हैं। इन सीमाओं के बाहर कोई भी वर्ग अपना कदम नहीं रख सकता। प्रमुखतः इंग्लैंड का ग्रामीण समाज दो प्रमुख वर्गों में बंटा हुआ है। उच्चवर्ग (Upper Class) और निम्नवर्ग (Lower Class)। इन वर्गों का पुनः वर्गीकरण निम्न प्रकार से है :—

१– उच्च वर्ग
- उच्चतम वर्ग
- उच्च निम्न वर्ग
- मध्यम वर्ग

२– निम्न वर्ग
- उच्च मध्यम वर्ग
- मध्यम वर्ग
- निम्न मध्य वर्ग
- निम्न वर्ग
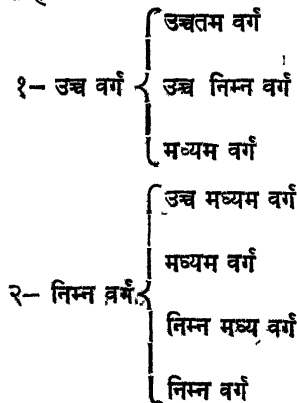
अब हम इन वर्गों का पृथक पृथक वर्णन करेंगे।

१– **उच्चतम वर्ग**— उच्चतम वर्ग वह सर्व विख्यात वर्ग होता है, जिसमें आयु व लिंग का भेद वर्ग व्यवस्था में नहीं रक्खा जाता है। इस वर्ग के सदस्य अपने आप को अन्य वर्गों से बिल्कुल अलग रखते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्ति व वैयक्तिक परिवार संचालन में इस वर्ग का विश्वास होता है। ये लोग अपने विशेष सम्बन्ध शहरों से रखते हैं। इन लोगों का समस्त गृह-कार्य नौकरों द्वारा संचालित होता है। गांवों में लोग भूमि व जायदादों के मालिक होते हैं। शिक्षा, सम्पत्ति एवं सामाजिक भेद इनकी सामाजिक स्थिति को बनाये रखते हैं।

२– **उच्च निम्न वर्ग**— उच्च निम्न वर्ग के लोगों का जन्म-स्थान ग्राम ही होता है। इन लोगों का सम्बन्ध ग्राम से विशेष होता है। मध्यम श्रेणी की शिक्षा प्राप्त कर यह वर्ग ग्राम में व्यापार व वाणिज्य करता हैं। गांव में इनका मकान अधिक भव्य व आकर्षक होता है। इन लोगों के नौकर नहीं होते व घर पर हाथ से ही कार्य करते हैं। इन लोगों के सम्बन्धी समीपवर्ती ग्रामों में ही होते हैं। इन लोगों के व्यवसाय के कारण ही इनको सामाजिक उच्चता प्राप्त हो गई है।

३– **मध्यम वर्ग**— मध्यम वर्ग की संख्या इंगलैंड के देहाती क्षेत्रों में बहुत कम होती हैं। ये राज्य की शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर शिक्षा व्यवसाय में प्रवेश करते हैं। गांव के अन्य लोग इस वर्ग की सेवा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। इस वर्ग में लोग पादरी का व्यवसाय भी कर लेते हैं। पुरातन समय में इस वर्ग का विशेष आदर किया जाता था जब कि कोई पढ़ा लिखा नहीं था। साधारण जनसंख्या में इनका स्थान काफ़ी आदरणीय है। ये लोग अपना मकान व कार रखते हैं। भारत में इनकी स्थिति काफी निम्न है।

४– **उच्च निम्न मध्यम वर्ग**— मध्यम वर्ग से निम्न लोग उच्च मध्यम वर्ग के लोग कहलाते हैं। ये लोग ग्राम में ही उत्पन्न होते हैं और ग्रामीण शिक्षा ही प्राप्त करते हैं। इन लोगों की पारिवारिक व्यवस्था संयुक्त होती है। ये लोग किराये के मकानों में रहते हैं। इन लोगों का व्यवहार समस्त वर्गों के साथ अच्छा होता है। इस वर्ग के लोग बड़े शिष्टभाषी होते हैं। ये लोग उच्चवर्ग के लोगों का अनुकरण करने का प्रयास करते हैं। इंगलैंड के गांवों में इस वर्ग के लोगों की संख्या विशेष होती है। इस वर्ग के लोग कृषक मालिक व व्यापारी होते हैं।

५– **मध्यम वर्ग**— इसी से समानान्तर निम्न मध्यम वर्ग होता है जिनको आर्थिक क्षेत्र में विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। ये लोग राजकीय कोष विभागों में कार्य करते हैं।

६– **निम्न मध्यम वर्ग**—निम्न मध्यम वर्ग के लोग पूर्ण रूपेण ग्रामीण होते हैं। इनके बच्चे कृषि कार्य में ही व्यस्त रहते हैं। इनको शिक्षा भी कृषि सम्बन्धी दी जाती है।

७– **निम्न वर्ग**— इंगलैंड में ग्रामीण सामाजिक ढांचे का निम्न वर्ग वह कहलाता है जो बिल्कुल पतित होता है। यह वर्ग अपनी उन्नति का कोई प्रयत्न नहीं करता। इन लोगों का व्यवहार भी अनुचित होता है।

इंगलैंड के ग्रामीण सामाजिक स्तरण के निर्धारण में सम्पति व साधनों का उतना निर्णायक स्थान नहीं होता जितना शिक्षा के व्यवहार का है। मध्यम श्रेणीय वर्गों ने इस क्षेत्र में काफी प्रगति के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। निम्न वर्ग के लोग भी अब अपनी स्थिति के बारे में जागरूक हो गये हैं तथा अन्य वर्गों के व्यवहार की कटु आलोचना करने लग गये हैं।

अमेरिका में समाजशास्त्रियों के मतानुसार सामाजिक वर्गो का वर्गीकरण सामाजिक सुविधाओं के गुणात्मक व संख्यात्मक विभिन्नताओ के आधार पर निर्धारित होता है। भौतिक साधनों व सेवाओं का उपयोग एक निश्चित वर्ग के लोगों के द्वारा किया जाता है। इस उपयोग की विशेष सुविधा को प्राप्त करने पर विशेष सामाजिक सम्मान प्राप्त हो जाता है। इन्हीं भिन्नताओं की मनोवृत्ति सामाजिक वर्गो को जन्म देती है। इन लोगों का विचार है कि सामाजिक वर्ग की चेतना अमेरिका के ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक क्रियाओं की विभिन्नता से हुई है। इन सामाजिक-आर्थिक क्रियाओं (Socio-Economic Actions) के फलस्वरूप वर्ग भेद उत्पन्न हुआ है। प्रमुखतः इस आधार पर अमेरिका के ग्रामीण क्षेत्रों में तीन वर्ग पाये जाते हैं। उच्च, मध्यम, निम्न। व्यवसाय विशेष के पुनः वर्गीकरण के परिणामस्वरुप इन वर्गों के अन्य उपवर्ग भी दृष्टिगोचर होते हैं। कहने का अभिप्राय यह हैं कि अमेरिका के ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ग भेद का उत्तरदायित्व सामाजिक-आर्थिक क्रियाओं को है। फलतः अमेरिका व कनाडा का पूंजीपति वर्ग केवल निरीक्षण व व्यवस्था का ही कार्य करता हैं। इस कार्य में वे अपनी स्थिति (Status) की लेशमात्र भी हानि नहीं होने देते हैं। इसके ठीक विपरीत अन्य वर्ग के लोग कठिन शारीरिक परिश्रम करने के साथ साथ अपनी सामाजिक स्थिति को पूंजी के बदले बेचते हैं। उन लोगों की साम्य रुचि व सहयोग की भावना व पारस्परिक समान उद्देश्य व संगठन की शक्ति बढ़ जाती है। जीवनयापन की क्रियाओं में उनका सीमित उत्तरदायित्व उनके व्यक्तित्व का ह्रास करता जाता है।

अमेरिका के ग्रामीण मध्यमवर्ग को कृषि व सम्पत्ति के उत्पादन का समस्त भार सहन करना पड़ता है। ये छोटे छोटे पैमाने के पूंजी-पति होते हैं। कृषि कार्य में श्रम को विशेष रूप से लगाकर उच्चवर्ग की पूंजी व पूंजी का योग लेकर ये कार्य करते रहते हैं। श्रम का अधिकांश भाग किराये व व्याज के रूप में पूंजी-पति वर्ग को देकर, अपने वर्ग व अन्य वर्गो से अपने आपको अलग समझकर श्रम की महत्ता पर जीवित रहते हैं। इनमें इस बात की शक्ति नहीं रहती है कि वे उन लोगों को पहचान जावें जो इनके श्रम का शोषण करते रहते हैं।

इस वर्ग-भेद व वर्ग-संघर्ष (Class Conflict) को निरन्तर रखने वाले विभिन्न कारक अमेरिका के विद्वानों ने बतलाये हैं। जिसमें भूमि की उर्वराशक्ति, अस्थाई जीवन, अशिक्षा, परम्परा आदि प्रमुख हैं। इन लोगों ने आगे यह भी बताया है कि अमेरिका के ग्रामीण सामाजिक वर्ग का निश्चित वर्णन उपलब्ध करना सम्भव नहीं हुआ है। एक वर्ग दूसरे वर्ग से निकट सम्पर्क रखने के कारण विभिन्न समानता रखने वाले वर्ग उत्पन्न हो गये हैं। विचारकों का यह भी मत रहा है कि सामाजिक ढांचे की एक मात्र व्यवस्थित इकाई परिवार है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस इकाई में स्थाई संगठन का अभाव होने के फलस्वरूप अन्य सामाजिक वर्गों की निश्चितता नहीं अपनाई जा सकती। अमेरिका में परिवार की स्थायित्वता एवं संगठन भूमि-स्वामित्व के नियमों पर आधारित है। प्रायः समस्त उच्च कृषक वर्ग अधिकांशतः विस्तृत भूमि रखता है। इस प्रकार ग्रामीण सामाजिक संगठन के आधारभूत तत्वों को स्थायी करने वाली आर्थिक व सामाजिक क्रियायें व उनके परिणाम हैं, जो भूमि स्वामित्व पर अविलंबित हैं। आर्थिक क्रियायें ही सामाजिक स्थिति को जन्म देती हैं। ग्रामीण परिवार की सामाजिक स्थिति आर्थिक स्थिति पर आज भी निर्धारित की जाती है। अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि अमेरिका के ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक वर्गों का निर्धारण आर्थिक व सामाजिक क्रियाओं पर अवलंबित है।

यदि हम इस देश के वर्तमान सामाजिक स्तरण की स्थिति का ध्यान करें तो हमें यह विशेष प्रक्रिया से गुजरता हुआ दृष्टिगोचर होगा। मध्यम वर्ग की गतिशील क्रियाओं के फलस्वरूप केवल दो वर्ग ही निर्मित हो रहे हैं। पूंजी वर्ग व श्रम वर्ग ही अपना रूप प्रगट करते दिखाई देते हैं। इसका कारण समाजशास्त्रियों ने विश्व युद्ध, कोरिया युद्ध, व राष्ट्रीय सुरक्षा कार्यक्रम बतलाया है। उद्योगीकरण व कृषि में यान्त्रिकता ने इस गति को भिन्न रूप दे दिया है।

सामाजिक वर्ग के सदस्यों में वर्ग चेतना उत्पन हो जाती है। यह चेतना व्यक्ति के व्यवहार को निश्चित करती है। वर्ग चेतना वर्ग के सभी सदस्यों में समान

उद्देश्य, पदस्थिति तथा संगठन प्रदान करती है। इससे एकता स्थापित हो जाती है। वर्ग चेतना से सामूहिक हितों की पूर्ति सम्भव है। वर्ग चेतना के आधार पर ही वर्ग के सदस्य अपने आप को समान स्वार्थ के लिये संगठित रखते हैं।

भारत में ग्रामीण वर्ग संगठन की विशेषताएं
(The Characteristics of Rural Class Organisation in India)

भारतीय ग्रामीण पर्यावरण में वर्ग समूहों की अपनी कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं, अब हम उन पर विचार करेंगे।

(१) स्थिति समूहों का उतार-चढ़ाव-भूमि व पशुओं पर
(Hierarchy of status groups on land and animals)

ग्रामीण संगठन में भूमि और पशुओं का अत्यधिक महत्व है। भूमि व पशुधन को यहां वर्ग संगठन का आधार माना जाता है। भूमि व पशुहीन व्यक्तियों को मजदूर वर्ग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। भूमि व पशु ही ग्रामीण वर्ग संगठन में धन माना जाता है। इस तरह इस आधार पर स्थिति का सौपान निर्धारित होता है।

(२) अन्तःनिर्भरता (Inter-dependence)

ग्रामीण सामाजिक वर्ग की दूसरी विशेषता अन्तःनिर्भरता है। भूमि वाले जमींदार-वर्ग को सदा श्रमिकों की आवश्यकता होती है। ये श्रमिक-कृषक जमींदार का अस्तित्व बनाते हैं। श्रमिक वर्ग की आवश्यकता भूमि; और जमींदार की आवश्यकता श्रमिक-कृषक हैं। इस तरह एक दूसरे की अनुपस्थिति में यहां कार्य होना असम्भव है। इस दृष्टि से वर्ग अन्तःनिर्भर होते हैं।

(३) उद्योगकारियों का महत्व (Importance of Articians)

ग्रामीण वर्ग रचना में तीसरा वर्ग उद्योगकारियों का होता है। कृषि कार्य में तथा इसके अतिरिक्त जीवन की आवश्यकता की पूर्णता में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। जिनमें लौहार, सुनार, तेली, धोबी, चमार, बलाई, बढ़ई, आदि हैं।

(४) ऋणदाताओं को भी स्थान (Place of money lenders)

यद्यपि ग्रामीण आर्थिक सरंचना में पूंजी (द्रव्य) का महत्वपूर्ण स्थान नहीं है परन्तु वर्तमान युग में इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। खेती व अन्य कुटीर उद्योगों में तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इस विशिष्ट वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ है। यह वर्ग ऋण देने तथा अन्य व्यापारिक कार्यों का संचालन करता है।

(५) मुक्त व्यवस्था (Open system)

ग्रामीण क्षेत्रों में इस चतुर्वर्गीय व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त भी यहां वर्गों में खुली व्यवस्था है। व्यक्ति की योग्यता एवं क्षमता के विकास के साथ साथ वर्ग परिवर्तन यहां सम्भव है। एक उद्योगकारी कृषि, जमींदारी तथा ऋणदाता भी बन सकता है। कृषक की आवश्यकता पड़ने पर लोहार बढ़ई का कार्य सम्पन्न कर लेता है। श्रमिक राज्य द्वारा अथवा वर्तमान भूदान आन्दोलन के अन्तर्गत भूमि प्राप्त कर अपने श्रमिक वर्ग को त्याग सकता है।

(६) वर्गों की सीमा अनिश्चित

(Indefinite territory of class)

ग्रामीण वर्ग व्यवस्था नगरों के समान जटिल नहीं हैं। यहां कोई ऐसे निश्चित नियम नहीं हैं जिनसे कि व्यक्ति किसी एक वर्ग का ही सदस्य गिना जावे। वर्ग कृषि पर आधारित हैं जन्म पर नहीं। यहां जातीय जटिलता अधिक हैं। जाति बंधन को प्रमुख रूप से मानने का प्रयास किया जाता है।

ग्रामीण वर्गों के चिन्ह
(Ear-marks of Rural Class)

ग्रामीण वर्ग जिस प्रकार गत्यात्मक (Dynamic) हैं उसी प्रकार अत्यन्त जटिल भी। भारतीय ग्रामीण वर्ग-संगठन अपरिवर्तनीय तथा प्राचीनता के उदाहरण हैं। यहां एक वर्ग दूसरे वर्ग में बदलने की हिम्मत नहीं करता। क्षमता तथा साधनों की वृद्धि के उपरान्त भी वह इसे अपनी अनाधिकार चेष्टा ही अनुभव करता है। ग्रामीण लोग प्राचीन संस्कृति के पोषक होते हैं। जीवन में परिवर्तन करने की इनमें लालसा नहीं होती। प्राचीन सांस्कृतिक आधारों पर कालान्तर ग्रामीण वर्ग ज्यों के त्यों आज भी निरन्तर हैं। संस्कृति द्वारा प्रदान स्थिति में ही ग्रामीण लोग सन्तोष रखते हैं। इसलिये सांस्कृतिक आधार ही ग्रामीण संगठन के चिन्ह हैं। इस पक्ष में बिसेंज और बिसेंज ने लिखा है कि स्थिति की कसौटियां संस्कृति के मूल्य निश्चित करती हैं। इसके अतिरिक्त भी ऐसे अनेक कारक वर्ग के निर्णायक हैं जो इस दिशा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उदाहरणार्थ अमेरिका में धन, चीन में विद्वत्ता, भारत में सांस्कृतिक आधार व वन्य जातियों में वीरता है।

वर्तमान युग में धन ही एक मात्र वर्ग निर्णायक चिन्ह माना जाता है। कार्लमार्क्स (Karl Marx) और ऐंजिल्स (Engels) ने भी इस तत्व को प्रधानता दी है। साम्यवादी घोषणापत्र (Communist Manifes to में इन्होंने समाज के सम्पूर्ण इतिहास को वर्ग संघर्ष पर आधारित सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त भी ग्रामीण वर्ग संगठनों में निम्न चिन्ह निर्धारित किये जा सकते हैं।

(१) वेशभूषा
(२) प्रमुख व्यवसाय
(३) विशिष्ट भाषा
(४) वर्ग प्रतीक
(५) रीतिरिवाज
(६) सांस्कृतिक मूल्य
(७) भूमि व पशुधन

ग्रामीण वर्ग के स्वरूप
(Forms of Rural Class)

भिन्न २ देशों में वर्ग के विभिन्न स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। इन स्वरूपों के आधारों एवं निर्णयक तत्वों में भी असमानता है। इन तत्वों में सामान्य रूप में व्यक्तिगत गुण, आर्थिक स्थिति, शारीरिक क्षमता, जाति एवं विद्वता आदि का आधार लिया जाता है। परन्तु हम यह जानते हैं कि प्रत्येक दशा में वर्गो का बनना सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से अनिवार्य है। इस दृष्टि से वर्गों का स्वरूप आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक आधारों पर ही निश्चित होता है। अतिरिक्त इसके, वर्गों के स्वरूप एवं प्रकारों में देश और काल की छाप भी अवश्यमेव प्रतीत होती है। यहां हम विभिन्न देशों के वर्गीय स्वरूपों को देखने का प्रयास करेंगे।

(१) इंगलैंड में ग्रामीण वर्गों का स्वरूप

प्रमुखतः इंगलैंड का ग्रामीण समाज दो प्रमुख वर्गो में बंटा हुआ है। प्रथम उच्चवर्ग, द्वितीय निम्न वर्ग। आगे इन दो मुख्य वर्गों के क्रमशः तीन और चार उपवर्ग हैं। इन प्रत्येक वर्गो में भिन्न २ निर्धारक तत्व निहित होते हैं। आश्चर्य का विषय यह है कि यह वर्ग व्यवस्था भारतीय जाति व्यवस्था के समान इंगलैंड के सामाजिक ढांचे में भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसका वर्णन हम पिछले पृष्ठों में कर आये हैं।

(२) रूस के ग्रामीण वर्गों के स्वरूप

महान दार्शनिक मार्क्स ने रूस के समाज के दो स्वरूप बतलाये हैं। उनके अनुसार एक पूंजीपति वर्ग और दूसरा सर्वहारा अर्थात् श्रमिक वर्ग है। मार्क्स ने वर्गों का आधार आर्थिक माना है। यदि हम रूस के सामाजिक वर्गों की इस विचार धारा को ग्रहण करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि पूंजीपति और सर्वहारा वर्गों

के अतिरिक्त कलाकार, लेखक, अशिक्षित तथा अविवाहित आदि को कौन से वर्गों में रखेंगे। सामाजिक वर्गों के लिए केवल आर्थिक आधार ही नहीं लिया जा सकता वरन् अन्य आधार भी प्रमुख स्थान रखते हैं। मेक्स वेबर (Max Weber) ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था समान नहीं है। आर्थिक व्यवस्था एक पद्धति मात्र है जिसमें कि आर्थिक वस्तुओं एवम् सेवाओं का वितरण एवं प्रयोग होता है। सामाजिक व्यवस्था वास्तव में बड़ी सीमा तक आर्थिक व्यवस्था से निर्मित होती है और अपने प्रत्युत्तर में उस पर प्रतिक्रिया भी करती है।"[8]

(३) अमेरिका में ग्रामीण वर्गों का स्वरूप

जिस प्रकार मेक्स वेबर ने वर्गो का निर्णायक आधार सामाजिक माना है उसी प्रकार अमेरिका के समाजशास्त्रियों का कहना है कि सामाजिक अवसर ही आर्थिक व्यवस्था के आधार पर प्राप्त होते हैं क्योंकि आर्थिक व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव डालती है। इसी दृष्टिकोण पर आधारित सामाजिक सुविधाओं के गुणात्मक एवं संख्यात्मक विभिन्नताओं के अनुसार अमेरिका में वर्ग के प्रमुखतः तीन स्वरूप प्रतिलक्षित होते हैं। ये क्रमशः उच्च, मध्यम व निम्न वर्ग हैं। ये वर्ग सामाजिक-आर्थिक क्रियाओं (Socio-Economic actions) के फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं।

उपरोक्त तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उच्च, मध्यम व निम्न वर्गों का यह स्वरूप वैज्ञानिक नहीं है। साधारण रूप से वर्गो को तीन प्रमुख स्वरूपों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) आर्थिक वर्ग (Economic class)

(ख) राजनैतिक वर्ग (Political class)

(ग) सामाजिक वर्ग (Social class)

इन वर्गो के अतिरिक्त वर्ग के अन्य स्वरूप भी निर्मित हो सकते हैं। जो शिक्षा, लिंग, आयु, शारीरिक क्षमता एवं जाति (भारत में) पर आधारित हो सकते हैं।

---

8 "The Social and economic order are not indentical. The economics order it .... merely the way in which economic goods and services are distributed and used. The Social order is of course, conditioned by the economic order to a high degree and in its turn reacts upon it." Max Weber: 'Essays in Sociology,' (H. Gerth and C. W. Wills, New York 1946) p. 18

भारत में ग्रामीण वर्गों का स्वरूप
(Class Forms in Rural India)

भारतवर्ष के ग्रामीण क्षेत्र सामाजिक-आर्थिक इकाईयों (Socio-Economic Unit) के रूप में संगठित हैं। यहां केवल मात्र सामाजिक वर्ग (Social Class) ही दृष्टिगोचर होते हैं जो आर्थिक, राजनैतिक तथा प्रमुखतः सामाजिक तत्वों पर आधारित हैं। गावों में पूंजीपति अर्थात् तालुकेदार, जमींदार प्रथम, ऋणदाता द्वितीय, कृषक तृतीय तथा उद्योगकारी (articians) वर्ग पाये जाते हैं। ये वर्ग आर्थिक क्षमता (भूमि, पशु), जाति, लिंग, शिक्षा (कुछ सीमा में) तथा आयु के आधारों पर निर्मित हैं। अधिकांशतः भारत में जाति व्यवस्था ही उपलब्ध है।

यद्यपि ग्रामीण भारत की परम्परागत जाति प्रणाली में नागरीकरण आदि कारकों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसके फलस्वरूप ग्रामीण वर्ग संरचना में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। श्रमिक और कृषकों में उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के रूप बन रहे हैं। उच्च और मध्य वर्गों में प्रबलता अभी उन्हीं जातियों की है जो परम्परागत रूप से आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से सम्पन्न एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। ग्रामीण प्रशासन सामाजिकता तथा ग्रामीण नेतृत्व में इन्हीं को प्रभुत्व प्राप्त है। नवीन विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में भी इनका ही बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त ग्रामों में निम्न वर्ग की दशा अत्यन्त शोचनीय होने के साथ ही निम्न वर्ग के ग्रामीण समुदाय में उच्च जातियों के प्रति परम्परात्मक आदर, भक्ति और आधीनता की आज भी सबल भावना दिखाई देती है। उनमें कर्मवाद के सिद्धान्त के नकारात्मक पहलू को समझने की आदत बाकी है। द्विज जातियां परम्परा से शिक्षा, अर्थ व्यवस्था, राजनैतिक और धर्म के क्षेत्रों में अधिक विकसित होने के कारण आज भी प्रतिभाशाली बनी हुई हैं। शूद्र अस्पृश्य हैं, पतित हैं, पीड़ित हैं तथा पिछड़ी जातियों में होने से निम्न वर्ग के अन्तर्गत दृष्टिगोचर होते हैं।

वास्तविक रूप से ग्रामीण जाति व्यवस्था का रूपान्तर अवश्यमेव हो रहा है परन्तु इस प्रक्रिया में जाति मोह, जाति भक्ति अथवा जातिवाद के कारक विद्यमान हैं। प्रो० घुरिये ने इस प्रवृति को भारतीय समाज के लिये ग्रामीण पर्यावरण में दिशाभ्रम बताया है जो अपने पुरातन रूप को त्यागकर नये रूप में अपनाया जा रहा है। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ग भेद अवश्य दृष्टिगोचर होता है किन्तु उसमें जातीय लक्षण विद्यमान हैं। इस कथन की पुष्टि निम्न तालिका से अधिक स्पष्ट हो जाती है।

वर्ग	पेशेवर या व्यवसायी	प्रति कुटुम्ब औसत वार्षिक आय (रु०)	सम्पूर्ण जनसंख्या का प्रतिशत
निम्न	छोटे किसान, मजदूर, सेवक और निम्न प्रवर्गों के कर्मचारी, प्रारम्भिक शिक्षक, दुकानदार आदि	१८०० तक	७२.३
मध्य	बड़े किसान, व्यापारी, व्यवस्थापक और प्रशासकीय अधिकारी, छोटे उद्योगपति, कलाकार व्यवसायी	१८०१ से ६,६०० तक	२५.४
उच्च	बड़े उद्योगपति, दक्ष व्यवसायी, राजनीतिज्ञ, उच्च प्रशासक और बड़े व्यापारी, चोटी के कलाकार	६,६०१ से ऊपर	२.३

वर्तमानकाल में ग्रामीण जीवन में औद्योगीकरण और नागरीकरण के प्रभाव से उपरोक्त वर्गों में भेद भाव अधिक स्पष्ट प्रतिलक्षित हो रहे हैं।

ग्रामीण समुदायों में वर्ग चेतना निरन्तर सबल हो रही है। निम्न और उच्च वर्ग के बीच आर्थिक और सामाजिक असमानता के अतिरिक्त अस्पृश्यों और परिगणित एवं वन्य जातियों की बड़ी शोचनीय अवस्था है। समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधाराओं के प्रभाव से यह प्रतियोगिता कुछ अधिक उग्र हो चली है।

अध्याय १५

ग्रामीण जातियां
(Rural Castes)

यद्यपि जातिशास्त्र से सम्बन्धित हमारा यह विषय मानव-विज्ञान तथा जीव-विज्ञान से विशेष रूप से सम्बन्धित है। सामाजिक क्षेत्र में जातिवाद (Casteism) एवं जातीयता एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जातीय संगठन समाज की एक प्रमुख संस्था है। इस दृष्टि से ग्रामीण सामाजिक संगठन के अध्ययन में ग्रामीण सामाजिक वर्गों का अध्ययन करने के लिए हम ग्रामीण जातीय संगठन का अध्ययन करना भी आवश्यक समझते हैं। पूर्व इसके कि हम ग्रामीण जातियों की विशिष्ठता एवं अन्य विशेषताओं पर प्रकाश डालें, हमको यहां प्रथम जाति शब्द के सामान्य अर्थ एवं इसकी ग्रामीण प्रामाणिकता आदि को समझ लेना आवश्यक है।

जाति का अर्थ
(Meaning of Caste)

सभ्यता के साहित्य में जाति शब्द का प्रयोग विशेष प्रचुरता तथा अनेक प्रकार से किया गया है। इन प्रयोगों में बहुधा इस शब्द का प्रयोग किसी निश्चित अर्थ और आधार को लेकर नहीं किया गया है। विद्वान लोग लेटिन, जर्मन, डच, रुसी, फ्रांसिसी आदि राष्ट्रों को भी जाति कह कर पुकारते हैं। संस्कृति, राष्ट्रीयता तथा भाषा से जाति शब्द पूर्ण रूप से अलग है। जाति शब्द की परिभाषा करते हुए प्रो० रिजले ने बतलाया है, "जाति परिवारों का वह समूह है जो एक ही पूर्वज से सम्बन्धित हो। पूर्वज जाति का काल्पनिक देवता है। जाति वंश-परम्परा, वर्ग-व्यवस्था एवं सामुदायक-भावना का उल्लेख करती है।"[1] इसी प्रकार केतकर ने लिखा है, "जाति एक सामाजिक समूह है जिसकी दो विशेषताएं हैं। (१) सदस्यता केवल उन व्यक्तियों तक ही सीमित है जो कि सदस्यों से जन्म लेते हैं, और इस प्रकार से पैदा हुए व्यक्तियों को सम्मिलित करती है। (२) सदस्य कठोर सामाजिक नियम द्वारा समूह के बाहर विवाह करने के लिए रोक दिये जाते हैं।"[2] इस प्रकार

---

1 See Risly: 'People of India'.

2 "Caste as 'A social group having two characteristics.(1) Membership is confined to those who are born of members and includes all persons so born. (2) The members are foridden by an inexorable social law to marry outside the group." Ketkar : 'History of Caste in India', p. 15.

हम यह कह सकते हैं कि जाति वह मानवशास्त्रीय कृति है जो मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये विद्यमान है अर्थात् यह वह सामाजिक बन्धन है जिसकी निरन्तरता एवं स्थायित्व आदि काल से एक सामाजिक संस्था के रूप में चली आ रही है।

जाति स्थायित्व के प्रमाण : ग्राम
(The Proof of Caste permanency: Villages)

विद्वानों का यह कथन है कि प्रत्येक राष्ट्र अथवा समाज की प्राचीनता के श्रोत ग्राम हैं इस कथन की पुष्टि हेतु इन लोगों का यह विश्वास है कि भारत के अतिरिक्त अन्य राष्ट्रों में मनुष्यों का इतना अधिक मिश्रण हो चुका है कि अब जातीयता के लक्षण प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देते हैं। वैज्ञानिकों का यह न्याय तर्कसंगत नहीं है। यदि संसार के एक भाग के मनुष्यों में दूसरे भाग के मनुष्यों से यदि लेशमात्र भी विशिष्टता एवं विभिन्नता है तो उनमें चाहे जितना मिश्रण हो उनके सम्बन्धों में मौलिकता प्रतिलक्षित होगी। इसके उपरान्त भी प्रत्येक समाज और राष्ट्र में सामाजिक स्तरण एवं विभिन्नता उनके ग्रामों में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है क्योंकि ग्रामीण समाज आधुनिक साधनों से वंचित है। यहां इस सामाजिक विभिन्नता का रूप कुछ अंशों में आज भी अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

यर सर्व विदित सत्य है कि ऐतिहासिक दृष्टि से मानव समाज का उद्भव (Evolution) सर्व प्रथम ग्रामीण प्रक्रिया में से ही हुआ है। प्रथम मनुष्य ने अपनी असभ्य एवं पशु अवस्था को त्याग कर सामूहिक जीवन की ओर कदम बढ़ाया था। यह सामूहिक जीवन वंश, गोत्र एवं रक्त सम्बन्धों पर ही आधारित था। धीरे धीरे सामाजिक संरचना ने वर्ण व्यवस्था को उत्पन्न किया। इस संरचना में शारीरिक एवं रक्त सम्बन्धी समानता तथा विभिन्नता पर भी बल दिया गया। इस प्रकार सभी क्षेत्रों में सामूहिक जीवन ने सामाजिक नियम और सामाजिक संस्थाओं को जन्म दिया। इन संस्थाओं में एक प्रमुख संस्था जाति भी है। हम ग्रामीण जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में व्यवसायिक आधार को नहीं भुला सकते। इस व्यवसायिक जाति व्यवस्था में कृषि करने वाले कृषक, लकड़ी का काम करने वाले बढ़ई, कपड़ा बुनने वाला बलाई और इसी प्रकार सुनार, तेली, तमोली, दर्जी, धोबी, चमार आदि नाम उल्लेखनीय हैं। ब्लन्ट ने लिखा है कि प्रत्येक व्यवसायिक संघ में विभिन्न प्रजातियों के लोग पाये जाते होंगे, अतः एक व्यवसायिक संघ एक जाति में परिणित हो गया और उसके अन्दर पाई जाने वाली विभिन्न जातियां उपजातियां बन गई।[3]

3 Blunt: 'Gensus of United Provinces' p. 323.

इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण सामाजिक जीवन में सामाजिक स्तरण अधिक जटिल एवं स्थायी पाया जाता है। वर्तमान युग में यद्यपि नागरिक समाज में शिक्षा-विज्ञान के विकास ने इस जटिलता एवं स्थायीत्व को शिथिल कर दिया है। ग्रामीण जाति व्यवस्था का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने हेतु हम अब ग्रामीण जाति की प्रकृति के प्रति अपना ध्यान आकर्षित करेंगे।

ग्रामीण जाति की प्रकृति

(Nature of Rural Caste)

हम यह देख चुके हैं कि ग्रामीण जाति समाज में विभिन्न समूह विभिन्न नामों से सम्बोधित किये जा रहे हैं। इन समूहों के नामकरण की पृष्ठभूमि में कुछ रहस्य अवश्य रहा होगा, चाहे वह सांस्कृतिक हो या प्रजातीय हो, धार्मिक हो या व्यवसायिक हो। यह रहस्य ही एक जाति को दूसरी जाति से भिन्न करता है तथा प्रत्येक जाति की प्रकृति भी निर्धारित करता हैं। अतः हम यहां ग्रामीण जाति की प्रकृति निर्धारित करने वाले उन कारकों का प्रथम अध्ययन करते हैं।

(१) चातुर्वन्य कारक (Four Varna Factors)

भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में जाति व्यवस्था का आधार चतुर्वर्णीय आधार है। आर्यों के समय से यह आधार आज भी प्रचलित है और वर्तमान ग्रामीण जाति संगठन की प्रकृति निर्धारित करता है। इस चातुर्वन्य आधार के अनुसार समस्त समाज चार वर्णों में विभाजित है और प्रत्येक वर्ण के धर्म तथा कर्म पृथक पृथक निश्चित किये गये हैं। ये चार वर्ण निम्न प्रकार से हैं :-

(क) **ब्राह्मण :** इस वर्ण के लोगों का कार्य पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, दान लेना और देना मनुस्मृति के अनुसार निश्चित किया गया है।

(ख) **क्षत्रिय :** प्रजा की रक्षा, दान, यज्ञ, अध्ययन, नृत्य एवं राज्य करना इनका कार्य निर्धारित किया गया है।

(ग) **वैश्य :** इन लोगों का कर्तव्य पशुओं का रक्षण, वाणिज्य, दान, यज्ञ, अध्ययन, खेती करना निर्धारित किया गया है।

(घ) **शूद्र :** उक्त तीनों वर्णों की सेवा करना ही इनका प्रमुख कर्तव्य है।

बहुत समय तक वर्ण व्यवस्था गुण तथा कार्य पर ही आधारित रही। धीरे धीरे इनका आधार जन्म होता गया तथा प्रतिलोम विवाह के कारण अनेक वर्णों का निर्माण हो गया। आज भी भारतीय ग्रामीण पर्यावरण में ग्रामीण जाति में इस वर्ण व्यवस्था का क्रम दृष्टिगोचर होता है और इसी व्यवस्था के अनुसार कर्म एवं जन्म के सिद्धान्त पालन किये जाते हैं।

(२) कर्म कारक (Function Factors)

ग्रामीण समाज व्यवस्था में प्रत्येक समूह अपने कर्म के नाम से सम्बोधित किया जाता है अर्थात् जो व्यवसाय अथवा उद्योग जो व्यक्ति करता है वह उसी जाति का माना जाता है। यह कर्म व्यवसाय अथवा उद्योग जन्म जन्मान्तर से निरन्तर चले आते हैं। ब्राह्मण का अर्थ वह है जो ईश्वर-आराधना, पूजा, शास्त्रों का अध्ययन एवं पवित्र जीवन व्यतीत करता है'। इस प्रकार के व्यक्तियों का समूह ब्राह्मण जाति कहलाती है। पंजाब के जाट से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो कृषि कार्य में संलग्न हैं। तामिलनाड तथा वाकांलिक प्रदेशों में कुर्मि और कानवी आदि नाम व्यवसायिक समूहों के हैं। किसान उस जाति के व्यक्ति हैं जो कृषि का कार्य करते हैं। ग्वाली (Gauli) शब्द उस जाति के व्यक्तियों को प्रगट करता है जो पशु चराने का कार्य करते हैं। इसी प्रकार बलाई, सुनार, लुहार, पटवा, कुम्हार, तेली, नाई, तमोली, चमार, कहार आदि सभी जातियां, व्यक्ति व समूह विशेष के कार्य को प्रकट करती हैं।

(३) प्रजातीय कारक (Racial Factors)

ग्रामीण जीवन में जातियों की प्रकृति प्रजातीय आधारों पर निश्चित की गई है। जैंसे गूजर, भाटिया, मीना, भील, गौंड, मुंड, सन्थाल, अहीर, गौंड आदि। इन जातियों की पृष्टभूमि में प्रजातीय लक्षण विशेष जाति के साथ पाये जाते हैं। इन जातियों का सामाजिक जीवन एवं रीति रिवाज आज भी प्रजातीय रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

(४) धार्मिक कारक (Religious Factors)

धार्मिक रीति-रिवाज वेशभूषा, एवं पूजा-पाठ आदि भी जाति विशेष के नाम प्रगट करते हैं। डा० घुरिये ने इस सम्बन्ध में कहा है, "धार्मिक आन्दोलन समूह को उनके नाम देने में असफल नहीं हुए हैं जो कि अब जातियां हैं। विश्नोई और साधु, योगी, गुसाई और मनभाओज आदि कुछ जातीय पंथों के उदाहरण हैं इनमें से प्रथम चार हिन्दू पंथों के विशेष तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए प्रारम्भ हुए जब कि अन्त के समूह मराठा प्रदेश में सुधारवादी आन्दोलनों के परिणाम हैं।"[4] इससे स्पष्ट

"Religious movements have not failed to give their names to groups which are now castes. The Bishnois and Sadhus, the Jogis, the Gosains and the Manbhaos are some of the examples of sectarian castes. The first four of these began as orders emphasising certain aspect of Hindu tanets, while the last group was the result of a reformist in the Maratha region." G. S. Ghurye : 'Caste and Class in India', Popular Book Depot, Bombay, (1957), p. 33.

होता है कि धार्मिक आन्दोलनों ने भी ग्रामीण जाति की प्रकृति निर्धारित करने में अपना योग-दान दिया।

(५) परम्परागत आदतें (Traditional Habits)

ग्रामीण वातावरण में कुछ ऐसी जातियों के नाम उपलब्ध होते हैं जो अपनी अद्‌भुत परम्परागत आदतों के द्वारा जानी जाती है। मूसाहर (Musahar वह जाति होती है जो चूहे खाती है। यह जाति उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है। बुलैया वह जाति होती है जिनमें बोलने की आदत विशेष पाई जाती है। इसी प्रकार केन्द्रीय राज्यों में एक पहाड़ी जाति जिसका नाम डांगी (Dangi) है दुबला (Dubla) गुजरात राज्य की वह जाति है जो बहुत कमजोर रहती है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी अनेक जातियां हैं जो अपनी आदतों के द्वारा जानी व पहचानी जाती हैं।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विभिन्न जातियों की प्रकृति निर्धारित करने के अनेक कारक हैं। प्रमुखतः निम्न कारक एक जाति को दूसरी जाति से भिन्न करते हैं तथा जाति विशेष की प्रकृति भी निर्धारित करते हैं।

(१) सीमा सम्बन्धी (Territorial Factors)
(२) उत्पत्ति सम्बन्धी (Origin Factors)
(३) व्यवसाय सम्बन्धी (Occupational Factors)
(४) अद्‌भुत आदतें (Peculiar Habits)
(५) धार्मिक प्रथाएं (Religious Customs)
(६) रीति-रिवाज (Customs & Traditions)
(७) विभागीय पद (Classical Designations)
(८) सामाजिक स्वीकृति (Social Sanctions)

ग्रामीण जाति की विशेषताएं

(Characteristics of Rural Caste)

यदि एक दर्शक भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों का भ्रमण करे तो उसे ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में पग पग पर सामाजिक स्तरण (Stratification) प्राप्त होगा। जहां ग्रामों में सामुदायिक भावना एवं सामाजिक संगठन है वहां नगरों की तुलना में सामाजिक संगठन की गतिविधियों में एक अत्यन्त विपरीत एवं परिवर्तनशील दृश्य दिखाई देगा। इसका प्रमुख कारण यही है कि गांवों में सामाजिक संगठनों के स्थान पर जातीय संगठनों का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह संगठन ग्राम विशेष की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक इकाईयों एवं गति-

विधियों को भी प्रभावित करता है। यह जातीय संगठन न केवल एक जाति से दूसरी जाति के वैवाहिक सम्बन्धों, खानपान, व्यवसायिक आदान-प्रदान एवं सामाजिक स्थिति पर ही नियंत्रण नहीं रखता बल्कि यह संस्था व्यक्ति के विकास को भी निर्धारित करती है। ग्रामीण जाति की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं :—

(१) ग्रामीण ढांचे का निर्माण :—

ग्रामीण निवास व्यवस्था के वास्तविक चित्र को देखें तो हमें प्रतीत होगा कि सम्पूर्ण ग्राम कुछ स्थाई एवं अपरिवर्तनशील सीमाओं में बंटा हुआ है। ग्राम में समाज की प्रमुख व उच्च जातियां ग्राम के मध्य अपनी निवास व्यवस्था रखती हैं। इसी प्रकार गांव के कुछ कोने शूद्र जाति को दिये हुए होते हैं। ये जातियां गांव के मध्य अथवा किसी प्रमुख व्यक्ति के निवास स्थान के सम्मुख से नहीं गुजर सकती है। इस तरह समस्त ग्राम भिन्न २ बस्तियों में जातियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तरण के अनुसार बंटा हुआ है।

(२) जाति पंचायतें :—

जाति विशेष की शासन-सत्ता जाति पंचायत में निहित होती है। ये पंचायतें अपने सामाजिक अधिकारों के अनुसार प्रतिनिधि भेजकर आधुनिक ग्राम पंचायतों का निर्माण करती हैं। प्रमुखतया ग्रामीण जातीय पंचायतें निम्न कार्य सामाजिक क्षेत्र में करती हैं :—

(i) सहभोज, सहपान व इसी से सम्बन्धित कार्यों में अन्य जातियों से सम्बन्धों पर नियन्त्रण रखना।
(ii) अन्य जाति की स्त्री लाना व वैवाहिक सम्बन्धों की अनुमति देना।
(iii) वैवाहिक स्त्री से भ्रष्टाचार पर कार्यवाही करना।
(iv) विवाह की शर्तों को पूरा करना।
(v) स्त्री को अपने पति के घर भिजवाना।
(vi) पति से स्त्री का पालन पोषण करवाना।
(vii) सदस्यों से भूमिकर जमा करवाना।
(viii) जातीय रीति-रिवाज एवं जातीय व्यवसाय के उलंघन पर दन्ड देना।
(ix) जातीय व वैवाहिक भोजों की व्यवस्था करवाना।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में जातीय व्यवस्था, सामुदायिक सदस्यता मानी जाती है। यह जातीय संगठन न्याय, दन्ड एवं ग्राम के आर्थिक मामले भी निर्धारित करता है।

(३) जातीय अन्तर :—

ग्रामीण जाति की यह एक प्रमुख विशेषता है कि एक जाति दूसरी जाति से

अपना भिन्न सामाजिक दृष्टिकोण रखती है। इस सम्बन्ध में डा० घुरिये ने स्पष्टतया लिखा है कि मद्रास जाति के धार्मिक दृष्टिकोण की भिन्नताओं के बारे में यह कहा जाता है कि ब्राह्मण समुदाय में एक तथ्य स्पष्ट एवम् अलग खड़ा होता है कि वे ग्राम देवता की पूजा में संलग्न नहीं होते हैं जिसको वहां की समस्त प्रारम्भिक जन-संख्या पूर्ण रूप से सिर झुकाती है। इस तरह यह स्पष्ट है कि ग्रामीण वातावरण एवं विशिष्ट जातीय संगठन अपनी धार्मिक एवं सामाजिक सीमाओं में इतना बंधा हुआ है कि वहां किसी भी क्षेत्र में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता और सामंजस्य दिखाई नहीं पड़ सकता।

(४) पुरोहितवाद :—

ग्रामीण सामाजिक ढांचे में एक जाति की तुलना में दूसरी जाति की सामाजिक स्तरीय भिन्नता (Difference of Social Status) भी प्रतीत होती है। भारत के समस्त ग्रामीण क्षेत्रों में हिन्दू वर्ण-व्यवस्था का क्रम आज भी दृष्टिगोचर होता है वेदों के अनुसार चार वर्णों में जिस प्रकार ब्राह्मण वर्ण सबसे उच्च माना जाता है। यह क्रम ग्रामीण जातीय व्यवस्था में ज्यों का त्यों विद्यमान है। यहां ब्राह्मणों का बड़ा आदर होता है। इनकी वाणी देव-वाणी के समान आदर की दृष्टि से मानी जाती है। ग्राम के समस्त धार्मिक एवं आर्थिक नियमों का संचालन इनके हाथों में होता है। ये व्यक्ति राज्य-पुरोहित या राज्य-कृषि के नाम से भी सम्बोधित किये जाते हैं।

(५) शूद्रों का बहिष्कार :—

ग्राम जाति व्यवस्था की यह भी एक प्रमुख विशेषता है कि यहां छूआछूत एवं अस्पृश्यता का अखंड साम्राज्य है। इन व्यक्तियों को ग्राम से दूर अलग रखा जाता है। सामाजिक सम्मेलनों में इन लोगों का प्रवेश पूर्ण रूप से निषिद्ध है। यहां तक कि अन्य जातियां इनका प्रतिबिम्ब तक भी नहीं पड़ने देतीं। इससे स्पष्ट है कि गांवों में अस्पृश्यों का जीवन बड़ा अमानवीय दशा में व्यतीत होता है। इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने उचित ही लिखा है, "सामाजिक दृष्टि से वे कोढ़ी हैं। आर्थिक दृष्टि से वे गुलामों से भी बदतर हैं। धार्मिक दृष्टि से उनको उन स्थानों, जिन्हें हम भ्रम से भगवान का घर कहते हैं, में प्रवेश निषिद्ध हैं। उन्हें सार्वजनिक मार्ग, सार्वजनिक विद्यालय, सार्वजनिक अस्पताल, सार्वजनिक कुएं, सार्वजनिक नल, सार्वजनिक पार्क तथा अन्य इसी प्रकार के स्थानों का प्रयोग निषिद्ध है। कुछ मामलों में निश्चित दूरी के अन्दर उनका प्रवेश सामाजिक अपराध है तथा कुछ न्यून मामलों में उनका दर्शन भी अपराध है। उन्हें नगरों तथा ग्रामों में अत्यधिक निकृष्ट भवन निवास के लिये दिये जाते हैं जहां पर प्रायः किसी प्रकार की भी सामाजिक सेवाओं का

प्रबन्ध नहीं होता है। सवर्ण हिन्दू वकील तथा डाक्टर उनके कार्य नहीं करते हैं। ब्राह्मण उनके धार्मिक उत्सवों पर पुरोहित नहीं बनते।"[5]

(६) व्यवसायिक प्रतिबन्ध :—

जैसा कि हम ग्रामीण जाति की प्रकृति में वर्णन कर आये हैं कि ग्रामीण जातियां व्यवसायिक आधार पर निर्मित हुई हैं। जहां व्यवसाय को पैतृक पूंजी के रूप में ग्रहण किया जाता है। नवीन सन्तति के लिए अनिवार्य रूप से पैतृक व्यवसाय करने की प्रथा है। इस दृष्टि से व्यवसाय को यहां पैतृक अधिकार के रूप में माना जाता है और एक जाति विशेष का व्यवसाय दूसरी जाति नहीं कर सकती है, यहां तक कि जातीय व्यवसायों को ईश्वरीय देन एवं इसके अनुसार कार्य न करना ईश्वरीय आज्ञा का उल्लंघन समझा जाता है। इस प्रकार से व्यवसायों में एकाधिकार स्थापित हो गया है जिसके परिणामस्वरूप एक जाति विशेष कालान्तर में भी अपने सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं कर सकती।

(७) अन्तर्विवाह :—

यद्यपि समस्त भारतीय जाति प्रथा की विशेषता है कि यहां अन्तर्विवाहों को ही स्थान दिया जाता है परन्तु इस सामाजिक नियम का पालन जितना ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी होता है, उतना अन्य कहीं नहीं। ग्रामीण जातीय पंचायतें इस दिशा में पूर्ण नियन्त्रण रखती हैं। पंजाब के कुछ हिस्सों में विशेष रूप से कुछ पहाड़ी हिस्सों में ऐसी प्रथा विद्यमान है कि उच्च जातियों के लोग निम्न जाति की लड़की से विवाह कर सकते हैं। परन्तु ऐसा केवल प्रजातीय क्षेत्रों में ही पाया जाता है।

---

5 "Socially they are lepars. Economically they are worse than slaves. Religiously they are denied entrance to places we miscall 'House of God'. They are denied the use on the same terms as the caste Hindu of public roads, public schools, public hospitals, public wells, public taps, public parks and the like. In some other cases, their approach within a measured distance is a social crime, and in some other rare enough cases their very sight is an offence. They are relegated for their residence to the worse quarters of cities and villages, where they practically get no social services caste Hindu lawyers and doctors, will not serve them. Brahmins will not officiate at their religious functions." Mahatma Gandhi quoted in 'Harijans Today' The publication division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi (1955) p. 1–2.

(८) सामाजिक स्तरण :—

यद्यपि इस विषय में हम लिख चुके हैं कि जातीय स्तरण की दृष्टि से ब्राह्मणों को आदर एवं उच्च स्थान प्रदान किया जाता है। आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में ग्राम समाज उन्हीं लोगों को आदर देता है जो सम्पत्ति, क्षमता, शिक्षा तथा व्यवसाय में उच्च हों। प्रायः राजपूत और वैश्य जाति इस दिशा में ग्रामीण क्षेत्रों में आधिपत्य प्राप्त किये हुए हैं। ये व्यक्ति अन्य जातियों को पनपने नहीं देते और इनका हर सम्भव प्रयत्न से शोषण करते हैं। इनके हाथ में ग्राम की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवम् सांस्कृतिक शक्तियां होती हैं।

हमने उपरोक्त वर्णन में ग्रामीण जाति विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। इस सम्बन्ध में हमने यह देखने का प्रयास किया है कि भारतीय ग्रामीण समाज में जातीयता एक अभिशाप के रूप में आज भी उपस्थित है। परन्तु हम साथ ही साथ यह भी देखते हैं कि ग्राम एक आत्मनिर्भर एवं स्वतन्त्र इकाइयों के रूप में आज भी विद्यमान हैं। ग्रामीण पंचायतें इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि जातीय सामंजस्य की अनुपस्थिति में भी यह अपनी वित्तीय एवं प्रशासनिक गतिविधियों को सफलतापूर्वक संचालित करती रही हैं। ग्रामीण जीवन में स्थायीत्वता, सहयोग की भावना एवं व्यक्तिगत प्रवृत्ति ग्राम समुदाय के रूप में प्रतिलक्षित होती है। श्री चार्ल्स मेडकाफ (Charles Metcalf) ने स्पष्ट किया है, "ग्रामीण समुदाय प्रायः प्रत्येक वस्तु अपने आप साथ में रखे हुए हैं जो वे चाहते हैं और विदेशीय सम्बन्धों से पूर्ण स्वतन्त्र हैं।".[6]

---

6 "The Village Communities are little republics, having nearly everything that they want within themselves and almost independent of any foreign relations." Quoted in Caste and Class in India by G. S. Ghurye, Popular Book Depot. (1957), p. 23.

अध्याय १६

जातिवाद
(Casteism)

वर्तमान भारत में जाति सम्बन्धी प्रमुख समस्या जातिवाद है । प्रत्येक जाति में जातीय संगठनों का विकास हो गया है । ये संगठन अपनी जाति के सदस्यों को अत्यधिक सुविधायें प्रदान करते हैं । जातीय आधार पर शिक्षण संस्थाओं, औषध संस्थाओं, धर्मशालाओं, सांस्कृतिक एवं उद्योग संस्थाओं का निर्माण किया जाता है, और इनके द्वारा जाति के सदस्यों को विशेष सुविधायें प्रदान की जाती हैं । जातीय सुधार, जातीय उत्थान इन संगठनों का मुख्य ध्येय होता है । जातीय संगठनों और सम्मेलनों में भी यह घोषणा की जाती है कि जाति की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति को उन्नत करना ही उनका प्रमुख उद्देश्य है । यहां तक कि ऊंची या नीची जाति सरकार से कुछ विशेष सुविधाओं को प्राप्त करने का दावा भी करती है । जातीयता के आधार पर ये संगठन अपनी जाति के सदस्यों को प्रमुखता (Preference) ही नहीं, उचित अथवा अनुचित रूप से दूसरी जाति के सदस्यों के विरोध में यथाशक्ति बढ़ावा भी देते हैं । जातिवाद की प्रमुख धारणा अपनी जाति के सदस्यों की स्थिति उन्नत करना है । आधुनिक युग में सामाजिक स्थिति जन्म एवं परिवार पर आधारित नहीं है, बल्कि यह राजकीय सेवा में उच्च स्थान प्राप्त करने पर भी निर्भर करती है । आधुनिक शिक्षा ने अर्जित गुणों को सामाजिक स्थिति का आधार बना दिया है । इस आधार पर एक जाति के उच्च राजकीय स्थिति वाले सदस्य अपनी ही जाति के अन्य सदस्यों को उच्च राजकीय स्थिति प्राप्त करने में सहायता करते हैं और अपनी जाति के अधिक से अधिक सदस्यों की स्थिति का उत्थान कर, अपनी जाति का उत्थान करते हैं ।

जाति प्रथा विघटन की प्रक्रिया में
(Caste System under the Process of Disorganisation)

जाति प्रथा का जो संगठित स्वरूप हमें प्राचीन काल में देखने को मिलता था वह अब उपलब्ध नहीं होता । जातीय संगठन वर्तमान प्रजातन्त्र में विघटित हो रहा है । जाति प्रथा की धारणा ही मुख्य रूप से ऊंच-नीच की धारणा है जबकि प्रजातन्त्र

का आधार समानता की धारणा है। वर्तमान युग के बढ़ते हुए वैज्ञानिक आविष्कारों, यातायात व आवागमन के साधनों ने जाति प्रथा पर बहुत आघात किये हैं। भारतीय संविधान में भी जाति प्रथा एवं अस्पृश्यता को समाप्त करने के प्रयत्न किये गये हैं। जाति प्रथा में स्वयं में भी अनेक परिवर्तन उपस्थित हो गये हैं जो जाति प्रथा की विघटित अवस्था को प्रदर्शित करते हैं। नीचे हम इनका वर्णन करेंगे :—

जातीय विभाग (Caste Fractions)

जाति के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रमुख चार जातियां ही हैं किन्तु अन्तर्विवाह एवं अनुलोम (Hypergamy) विवाह के परिणामस्वरूप ये चारों जातियां अनेक उपविभागों में विभाजित हो गई हैं। ब्राह्मणों में भी अनेक उपजातियां एवं उनके भी अनेक विभाग पाये जाते हैं। ये विभाग कुछ तो ऋषियों के नाम पर, कुछ घड़ों के आधार पर और कुछ अन्य आधारों पर विकसित हो गये हैं। इसी भांति क्षत्रियों में अनेक उपविभाग एवं वंश विकसित हो गये हैं। वैश्यों में अनेक जातियां जैसे महेश्वरी, खंडेलवाल, जैन, ओसवाल, श्वेताम्बर, दिगम्बर, पोरवाल, अग्रवाल आदि विकसित हो गई हैं। इन विभागों में भी अनेक उपविभाग हैं जैसे जैन में तेरहपंथी, बीसपंथी, सोलहपंथी आदि हैं। अग्रवालों में भी जैन अग्रवाल, अग्रवाल जैन, वैष्णव अग्रवाल आदि उपविभाग हैं। इसके साथ ही मारवाड़ी अग्रवाल, यूपीयन अग्रवाल, मेवाड़ी अग्रवाल, शेखावाटी अग्रवाल, बंगाली और गुजराती अग्रवाल आदि प्रान्तीयता के आधार पर पाये जाते हैं। इतना ही नहीं दस्से अग्रवाल और बीसे अग्रवाल भी पाये जाते हैं। इन विभिन्न विभागों के रीति-रिवाज, खानपान एवं वैवाहिक सम्बन्धों में भी भिन्नता एवं अनेक प्रतिबन्ध दृष्टिगोचर होते हैं। इसी भांति अन्य सभी जातियां भी विभागों, उपविभागों और उनके भी उपविभागों में विभाजित हैं, और ये उपविभाग असीमित हैं। इस विभागीयकरण का आधार धर्म, पंथ, विवाह, अनुलोम विवाह, पारिवारिकता, वंश प्रतिष्ठा, प्रान्तीयता, ग्रामीणता, रक्त सम्बन्ध आदि हैं। ये सब विभाग भारत के प्रत्येक ग्राम में समान एवं विभिन्न आधारों पर सार्वभौमिक रूप से उपलब्ध हैं।

जातीय तनाव (Caste Tensions)

ग्रामीण क्षेत्रों में जातिवाद अपने प्रखर रूप में उपलब्ध होता है। यह एक सामाजिक अभिशाप है। जातिवाद के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में तनाव की अनेक परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं। यह तनाव केवल हिन्दू मुस्लिम जातियों में ही नहीं होता वरन् हिन्दू जातियों के विभिन्न भागों में भी उठ खड़ा होता है। जब तक यह तनाव मानसिक रूप से ही बना रहता है तब तक यह जातीय तनाव रहता है और जब यह स्पष्ट रूप से उभर आता है तो संघर्ष का रूप ग्रहण कर लेता है।

जातीय तनाव के अनेक कारक हैं। जैसे मन्दिर, स्थान, पंचायतें, धर्मशालायें आदि। उदाहरण के लिए ब्राह्मण जाति को ही ले तो हमें ज्ञात होगा कि ब्राह्मणों में अनेक उपजातियां एवं उनके विभाग बने हुए हैं। इन विभागों में जातिवाद अपने विभागीय रूप में बना हुआ है और प्रत्येक विभाग का सदस्य अपने विभाग को अन्य विभागों से सर्वोच्च तथा अन्य विभागों को अपने से निम्न मानता है। परिणामस्वरूप इन विभागों में ही तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी तरह अन्य जातियों के साथ भी तनाव की स्थिति रहती है। चमार, धोबी, नाई, कोली, बलाई, लुहार आदि शूद्र जातियां तथाकथित उच्च जातियों द्वारा शोषित हो चुकी हैं। इस शोषण के परिणामस्वरूप इनमें उच्च जातियों के प्रति घृणा की एक स्वाभाविक भावना पाई जाती है। जो मानसिक तनाव को उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करती है। ग्रामीण स्थापना भी जातीयता पर आधारित होती है। विभिन्न जातियों की निवास व्यवस्था विभिन्न निश्चित क्षेत्रों में सीमित रहती है। इन सीमित क्षेत्रों में अन्य जाति के सदस्य निवास की सुविधा नहीं ले सकते। परिणामस्वरूप जातीय तनाव उत्पन्न हो जाता है।

जातीय संघर्ष (Caste Conflict)

जाति प्रथा के विभागों एवं उपविभागों का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं, साथ ही हमने जातीय तनावों की भी विवेचना की है। ये जातीय तनाव ही उग्र होकर जातीय संघर्ष का रूप ग्रहण कर लेते हैं। एक ही जाति के विभिन्न विभागों में तनाव के अनेक कारक विद्यमान होते हैं। ये ही कारक बढ़ कर जातीय संघर्ष का रूप ग्रहण कर लेते हैं। जातीय संघर्ष में साम्प्रदायिक संगठन को भी सम्मिलित किया जा सकता है। जातीय संघर्ष का प्रमुख रूप हमें विशेष रूप से ब्राह्मणों एवं हरिजनों में दृष्टिगोचर होता है। ये संघर्ष विशेष रूप से ऊंची जातियों के मध्य पाये जाते हैं। इन संघर्षों का आधार जातिवाद भी है।

जाति प्रथा वर्तमानकाल में अत्यधिक विघटित हो रही है। जाति प्रथा के विघटित होने के अनेक कारण हैं. लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि जाति प्रथा सरलता से समाप्त हो जायेगी। वर्तमानकाल में जाति प्रथा के मुख्य आधार जातिवाद का नया ही स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है। जातिवाद के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए हम कह सकते हैं कि जाति प्रथा का समाप्त होना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। जाति प्रथा का अध्ययन जातिवाद के बिना अपूर्ण होगा अतः अब हम अपना ध्यान जातिवाद पर केन्द्रित करेंगे।

जातिवाद की धारणा
(Concept of Casteism)

जातिवाद के उपर्युक्त विवरण से जातिवाद का सामान्य अर्थ स्पष्ट हो गया

होगा कि जातिवाद अपनी जाति के प्रति घनिष्टता की भावना है जिसके आधार पर जाति का उत्थान किया जाता है। जातिवाद की परिभाषा करते हुए डा० कैलाशनाथ ने लिखा है, "जातिवाद या जातिभक्ति एक जाति के व्यक्तियों की वह भावना है जो देश के या समाज के सामान्य हितों का ख्याल न रखते हुए केवल अपनी जाति के सदस्यों के उत्थान, जातीय एकता और जाति की सामाजिक स्थिति को दृढ़ करने के लिये प्रेरित करती है।"[1] प्रो० रामबिहारी सिंह तोमर ने जातिवाद का अर्थ बतलाते हुए लिखा है, "जातिवाद का अर्थ इस भावना से सम्बन्धित है जिसके कारण व्यक्ति अपने को जाति के आधार पर मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित समझते हैं तथा अन्य जाति के लोगों को अपने से पृथक। इस भावना के कारण एक जाति के व्यक्ति देश या समाज के सामान्य हितों का ध्यान न रखते हुए केवल अपनी जाति के सदस्यों के उत्थान, एकता एवं सामाजिक स्थिति की वृद्धि चाहते हैं। जातिवाद व्यक्ति का क्षेत्र जाति के सदस्यों तक ही सीमित कर देता हैं।"[2] जातिवाद की उपरोक्त परिभाषाओं से जातिवाद का अर्थ स्पष्ट हो गया होगा। जातिवाद को और अधिक स्पष्ट रूप से समझाने के लिये हम कह सकते हैं कि जातिवाद एक जाति के सदस्यों की वह भावना हैं जिसके आधार पर एक जाति से सम्बन्धित व्यक्तियों से अपनापन अनुभव किया जाता है और अपनी जाति के सदस्यों के हित, उत्थान, एकता एवं सामाजिक स्थिति की वृद्धि के सम्मुख अन्य जातियों के हितों की अवहेलना और हनन भी किया जा सकता है।

जातिवाद के आधार पर जातीय संगठन

(Caste Organisations on the basis of Casteism)

जातिवाद के आधार पर विभिन्न जातियों के विभागों एवं उपविभागों में जातीय पंचायतें एवं अन्य समूह निर्मित हो गये हैं। ग्रामीण जीवन में ये पंचायतें एवं अन्य समूह जातीय नियंत्रण करते हैं और जातिवाद को निरन्तर बनाये रखते हैं।

(१) हुक्का समूह (Hukka Group)

ग्रामीण क्षेत्रों में पारस्परिक सहयोग एवं प्राथमिक सम्बन्धों की घनिष्ठता को प्रदर्शित करने वाला यह एक विशिष्ट समूह है। यह केवल प्राथमिक सम्बन्धों की घनिष्टता ही प्रदर्शित नहीं करता वरन् यह सामाजिक स्तरण की दृष्टि से भी अत्यन्त

---

[1] देखिये: डा० कैलाशनाथ शर्मा : 'भारतीय समाज और संस्कृति' किशोर पब्लिशिंग हाऊस, कानपुर (१९५६) पृ. १४०।

[2] देखिये : प्रो० रामबिहारी सिंह तोमर : 'भारतीय सामाजिक संस्थाएं', दत्त बन्धु प्राइवेट लिमिटेड, अजमेर (१९६०) पृ० १८८।

महत्वपूर्ण है । हुक्का समूह में ग्रामीण व्यक्ति अधिकतर अवकाश के समय एक स्थान (हथाई या चौपाल) पर अथवा समूह के किसी भी व्यक्ति के घर की बैठक या चबूतरे (पौल) पर एकत्रित होकर बैठते हैं। इस समूह में व्यक्ति हुक्का पीते हुए विभिन्न प्रकार के विचार विनिमय करते हैं अथवा चौपड़ आदि खेलों में संलग्न हो जाते हैं। यह एकत्रण प्रायः दैनिक ही हुआ करता है। इस समूह को हुक्का समूह कहते हैं। हुक्का समूह में केवल ये एकत्रित होने वाले व्यक्ति ही नहीं आते वरन् समान स्तर के सभी व्यक्ति सम्मिलित किये जाते हैं। नवागन्तुकों एवं अतिथियों का स्थानीय व्यक्तियों से परिचय आदि के अवसर भी इस समूह में सुलभ रूप से उपलब्ध हो जाते हैं। हुक्का समूह व्यक्तियों के पारस्परिक प्रेम व सम्बन्धों की निकटता को प्रतिलक्षित करता है। यह समूह सामाजिक विचारों के प्रचार का उत्तम साधन है। यह समूह सामाजिक नियन्त्रण भी अत्यधिक सीमा तक करता है। इस समूह की यह विशेषता है कि जाति के विरुद्ध कार्य करने वाले व्यक्तियों का इस के द्वारा बहिष्कार कर दिया जाता हैं जिसे दूसरे शब्दों में हुक्का पानी बन्द करना कहते हैं। इसमें उस व्यक्ति के साथ बैठकर इस समूह का कोई भी सदस्य हुक्का नहीं पीता और न अपना हुक्का ही पिलाता है। उस व्यक्ति के लिये यह एक सामाजिक दंड है। इस दंडस्वरूप वह व्यक्ति समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। वह व्यक्ति अपने अपराध का प्रायश्चित कर पुनः इस समूह में सम्मिलित हो सकता है। अधिकांश व्यक्ति हुक्के पानी के बन्द होने के भय से अपराध से बचते हैं। साथ ही अपराध हो जाने पर प्रायश्चित कर इस समूह में पुनः सम्मिलित होने में प्रयत्नशील रहते हैं। हुक्का पानी बन्द होना एक सामाजिक अपमान है। सामाजिक प्रतिष्ठा की हानि हुक्का पानी बन्द होने से होती है। अतः अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये व्यक्ति जाति के विरुद्ध कार्य नहीं करता। हुक्का समूह भी पंचायत का एक लघु रूप है। यह समूह भी जातिवाद को ही आगे बढ़ाता है। आधुनिक युग में यह समूह जातिवाद की धारणा की ही अत्यधिक पुष्टि करता है।

(२) पंचायत (Panchayats)

पंचायतें भी जातिवाद की पुष्टि करती हैं। यहां पंचायतों से हमारा तात्पर्य उन पंचायतों से है जो जाति के विभागों एवं उपविभागों के आधार पर निर्मित हो गई है। इन पंचायतों का कार्य एवं उद्देश्य ही अपने जातीय विभाग की उन्नति करना है। इन जातीय पंचायतों का रूप अत्यन्त वीभत्स हो गया है। ये उचित और अनुचित सभी तरीकों से अपने सदस्यों को लाभ पहुंचाते हैं। नागरिक समाज में इनका बहुत ही विस्तार है। बंगाल की सन् १९०१ ई० की जनगणना के अनुसार "प्रत्येक उपजाति की अपनी पृथक पंचायत या स्थायी समिति है जिसके द्वारा समस्त

सामाजिक प्रश्न निर्णय किये गये हैं।"[3] श्री के. जी. खन्डेलवाल[4] द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार ब्यावर नगर में ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों में निम्न जाति समितियां पाई गईं :—

(१) अग्रवाल समाज
(२) खन्डेलवाल पंचायत
(३) महेश्वरी पंचायत बोर्ड
(४) श्री दिगम्बर जैन पंचायत
(५) गुर्जर गौड़ पंचायत
(६) अरोरा मंडल
(७) मन्दिर मार्गीय ओसवाल पंचायत
(८) ओसवाल बाइसपंथी पंचायत
(९) ओसवाल तेरहपंथी पंचायत
(१०) ब्राह्मण सभा

अन्य पिछड़ी जातियों में भी जातीय पंचायतें उपलब्ध होती हैं। मोहनलाल सेन[5] द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि विशेषतया बनजारा, धोबी, ढोली, जोगी, कलाल, कुम्हार, कोली, कहार, नाई, रावत, लखारे तथा खाद इत्यादि जातियों में यह समितियां अति शक्तिशाली हैं। डा० कपाडिया का भी यही मत है कि जातीय समितियां अभी भी काफी शक्तिशाली हैं। अब हम जातिवाद के विकास के कारकों का अध्ययन करेंगे।

जातिवाद के विकास के कारण

(Causes of the growth of Casteism)

ग्रामीण समाजों में जातिवाद के विकास के अनेक कारण हैं। जिनमें से प्रमुख निम्न हैं :—

---

3 "Each sub-caste has its own seperate panchayat or standing committee by which all social questions are decided." Bengal Census 1901, p. 351.

4 "K.G. Khandelwal : 'Caste Associations among the caste-Hindu' (Unpublished Thesis) submitted for M. A. Exam. (1959) of Rajasthan, Versity, p. 53.

5 मोहनलाल सेन : 'समस्त राजस्थान के अन्य पिछड़े वर्गों की जातीय समितियां' (अप्रकाशित विज्ञप्ति) राजस्थान विश्वविद्यालय की एम. ए. परीक्षा (१९५९) के लिये प्रस्तुत। पृष्ठ संख्या ३६।

(१) विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध :—

वैवाहिक प्रतिबन्धों के कारण अपनी जाति में अन्य व्यक्तियों का प्रवेश नहीं हो सकता। परिणामत: जातीय प्रतिबन्ध कठोर रहता है। साथ ही अपनी ही जाति में विवाह के कारण जातीय सदस्यों के साथ रक्त-सम्बन्ध, परिवार-सम्बन्ध भी स्थापित हो जाते हैं और इसलिए उनके हितों का विशेष ध्यान रक्खा जाता है।

(२) पारिवारिकता :—

पारिवारिकता को हम अति विस्तार में वर्णन कर चुके हैं। परिवार अपने सदस्यों के व्यवहार को नियन्त्रित करता है तथा अपनी जाति को ही प्रधानता देता है अत: पारिवारिकता भी जातिवाद के विकास में एक सहायक कारक है।

(३) अशिक्षा :—

अशिक्षा के कारण ग्रामीण व्यक्ति अभी तक यह समझते आ रहे हैं कि जाति प्रथा की उत्पत्ति ईश्वर ने की है और पंचायतों में ईश्वर का रूप है। अत: इनके विरुद्ध बोलना ईश्वर को क्रुद्ध करना है। परिणामत: जातिवाद टूट नहीं रहा है वरन् संगठित होता जा रहा है।

(४) रूढ़िवादिता

रूढ़िवादिता भी जातिवाद की पुष्टि करता है। परम्परा के आधार पर जो कुछ चला आ रहा है उसके विरुद्ध ग्रामीण व्यक्ति कुछ बोल ही नहीं सकते।

(५) प्रचार के विकसित साधन :—

प्रत्येक गांव एक पृथक् इकाई था किन्तु प्रचार के साधनों से जातीय पत्रिकाओं, समाचार पत्रों द्वारा जातिवाद के प्रचार के लिए सुविधा हो गई और जातिवाद विकसित हो रहा है।

(६) जजमानी प्रणाली का ह्रास :—

जजमानी प्रणाली से सभी जातियां एक दूसरे पर निर्भर थीं किन्तु वर्तमान युग में नागरीकरण, जातीय चेतना, श्रम के मूल्य की वृद्धि के कारण जजमानी प्रथा का ह्रास हो रहा है। परिणामस्वरूप जातियां अपने को स्वतन्त्र अनुभव करती हैं और अपनी ही जाति के विकास क ओर प्रेरित होकर जातिवाद की धारणा को विकसित करती हैं।

उपरोक्त कारक जातिवाद के विकास में सहायता प्रदान करते हैं। अब हम जातिवाद के परिणाम पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

जातिवाद के परिणाम
(Consequences of Casteism)

जातिवाद के आधार पर व्यक्तियों का जो सामाजिक व्यवहार बन गया है उससे ग्रामीण समाज में अनेक समस्याओं का प्रादुर्भाव हो गया है। हम नीचे जातिवाद के परिणामों पर विवेचन करेंगे :—

(१) देश की एकता में बाधा :—

जातिवाद के आधार पर पंचायतों, नगर पालिकाओं, जिला बोर्डों आदि स्थानीय स्वायत शासन संस्थाओं के, राज्य की विधान सभाओं और केन्द्रीय संसद के चुनावों (Elections) में पक्षपात दिखाई पड़ता है। जातिवाद के आधार पर अनेक छोटे २ समूह स्थापित हो गये हैं। ग्रामीण समाजों में जातिवाद के आधार पर ही निम्न जातियों को सहयोगी कृषि में सम्मिलित नहीं किया जाता। भारतीय सरकार की अनेक योजनाएं इसी आधार पर सफल नहीं हो पाई हैं।

(२) प्रजातन्त्र के लिये घातक :—

राजनैतिक क्षेत्र में जातिवाद प्रजातन्त्र के लिए घातक है। जातिवाद में पक्षपात, निम्नता व श्रेष्ठता की भावनायें पाई जाती हैं जबकि प्रजातन्त्र का मुख्य आधार समानता एवं बन्धुत्व हैं। इन दोनों की विचारधाराओं में विरोध है। चुनाव के समय इस आधार पर मत मांगे जाते हैं। जातिवाद के आधार में असमानता, वर्ग भावना व शोषण की भावनायें हैं। बिना जाति प्रथा को समाप्त किये प्रजातन्त्र का दावा झूंठा होगा। सरदार पनीकर ने लिखा है, "वास्तव में जब तक उपजाति और संयुक्त परिवार रहेंगे तब तक समाज का कोई भी संगठन समता के आधार पर सम्भव नहीं है।"[6] ग्रामीण क्षेत्रों में भी पंचायत आदि के चुनाव में यह घर करता जा रहा है।

(३) श्रम की अकुशलता में वृद्धि :—

जातिवाद के आधार पर अन्य जातियों के कुशल श्रमिकों की अपेक्षा अपनी ही जाति के अकुशल श्रमिकों को प्रोत्साहन दिया जाता है। कृषि एवं कुटीर उद्योगों में भी ग्रामीण व्यक्ति निम्न जातियों के साथ सहयोग नहीं कर सकते चाहे वे कितने ही चतुर क्यों न हों। वे उच्च जातियों के अकुशल व्यक्तियों के साथ अवश्य सहयोग कर लेंगे। इस भांति जातिवाद श्रम की अकुशलता में वृद्धि करता है।

---

6 "In fact, no organisation of society on the basis of equality is possible so long as the sub-caste and the joint family exist." K. M. Panikar : 'Hindu Society at across Roads' (1956), p. 24.

(४) नैतिक पतन :—

जातिवाद के आधार पर पक्षपात किया जाता है। यह पक्षपात उचित और अनुचित की सीमा से परे होता है। परिणामत: व्यक्तियों का नैतिक पतन होता है। एक बार गिरने पर हजारों बार गिरना पड़ता है और देश की जनता का पतन बराबर बढ़ता जाता है। शिक्षा का स्तर भी इस कारण से पतित हो गया है। संकुचित विचारधारा के कारण राष्ट्र की उन्नति सम्भव नहीं है।

(५) भारतीय संविधान की अवहेलना :—

भारतीय संविधान की धारा १५ (१) के अनुसार राज्य किसी भी आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ विभेद नहीं करता। परन्तु जातिवाद जाति भेद के आधार पर विभेद करता है। अत: जातिवाद के परिणामस्वरूप इस धारा का केवल दिखावे में ही पालन हो सकता है वास्तविकता में नहीं। अत: जातिवाद के आधार पर संविधान की अवहेलना होती है।

इस भांति यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक भारत में स्वतन्त्रा व राष्ट्रीय एकता और जनतन्त्र के संरक्षण और स्वस्थ विकास में जाति व्यवस्था कितनी भयानक बाधा बनकर खड़ी है। सारे देश में नव बुद्धिवाद का प्रचार, पंजाब में हिन्दुओं तथा सिक्खों के संघर्ष, दक्षिण भारत में 'द्रविड़-स्थान' बनाने की मांग, रामनाथपुरम के जातीय दंगे और अन्यत्र छिटपुट जाति-संघर्ष, राजस्थान में भूस्वामियों का आन्दोलन जातिवाद से किसी न किसी रूप से सम्बन्धित है। दक्षिण भारत के द्रविड़ व कड़घम तथा द्रविड़-मुनैत्रा-कड़घम आन्दोलन का स्त्रोत और पोषण तामिल लोगों में ब्राह्मण से अब्राह्मण के संघर्षों में ही है।

भारतीय समाज जातियों के आधार पर प्रारम्भ से ही खण्डों में विभाजित था पर इन खण्डों में दृढ़ सामुदायिक भावना का विकास न था। जातिवाद ने इस कमी को पूरा कर दिया है और इसके फलस्वरूप सामुदायिक भावना अत्यन्त संकुचित हो गई है। यह स्थिति राष्ट्रीय एकता तथा अन्य हितों के लिये स्वस्थ नहीं है। जातिवाद के उपरोक्त परिणामों को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि जातिवाद देश के लिये अत्यन्त घातक है। अब हम जातिवाद के निराकरण पर विचार करेंगे।

जातिवाद का निराकरण
(Solution of Casteism)

जाति उन्मूलन कोई सरल काम नहीं है। भारत के हिन्दुओं में ही नहीं वरन् सिक्खों, ईसाइयों तथा मुसलमानों में भी जो जाति सिद्धान्त के प्रबल विरोधी रहे हैं, जाति-पांति और उसके दुष्प्रभाव व्याप्त हैं। हिन्दुओं के मन और हृदय में जाति भावना

घर बना बैठी है। इसलिये इसका निराकरण एक कठिन और जटिल समस्या है। अधिकतर गांवों और शहरों में रहने वाले हिन्दू नहीं चाहते कि जातियां समाप्त हो जायें। वास्तव में वे यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि बिना जातियों के कोई सामाजिक प्रणाली भारत में बन भी सकती है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक जाति के ऐतिहासिक और सामाजिक सम्बन्ध होते हैं, इसलिये इसे समाप्त करना यदि सम्भव नहीं है तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। इसलिये जातिवाद को दूर करने के लिये जाति-प्रणाली को समाप्त करने की बात सोचना व्यवहारिक नहीं है।

जातिवाद को दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं और इस सम्बन्ध में अनेक सुझाव दिये गये हैं। हम निम्न सुझावों को जातिवाद के निराकरण के लिए आवश्यक समझते हैं और इन सुझावों को प्रयोग में लाने पर बल देते हैं।

(१) 'जाति' शब्द का अल्प प्रयोग :—

'जाति' शब्द को शब्दकोष से ही निकाल दिया जाना चाहिए और इसका अति अल्प प्रयोग किया जाना चाहिये जिससे कि नवीन आने वाले बच्चे इसके प्रभाव से बचें। जातिवाद के विरुद्ध निरन्तर प्रयत्न किये जाने चाहिएं। शिक्षा संस्थाओं एवं सरकारी संस्थाओं में विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(२) जाति विरोधी प्रचार—

जाति विरोधी प्रचार किया जाना चाहिए। फिल्मों एवं अन्य साधनों से जाति विरोधी प्रचार भी होना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की भी अत्यन्त आवश्यकता है।

(३) उचित शिक्षा—

जातिवाद को समाप्त करने के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। जिससे आने वाले नवयुवक इस घातक प्रवृत्ति से बचें। जाति-विरोधी एवं उचित शिक्षा की आवश्यकता इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगी।

(४) संयुक्त परिवारों का समाप्त होना —

जातिवाद को समाप्त करने के लिए संयुक्त परिवार को भी समाप्त करना होगा क्योंकि संयुक्त परिवार पारिवारिकता एवं रूढ़िवादिता को आश्रय दिये हुए हैं। वैयक्तिक परिवारों में जाति प्रथा इतने कठोर रूप में नहीं पाई जाती जितनी कि संयुक्त परिवारों में पाई जाती है। ग्रामीण जीवन में संयुक्त परिवारों की मात्रा बहुत अधिक है।

(५) आर्थिक एवं सांस्कृतिक समानता—

जातिवाद को समाप्त करने के लिए समाज में जो जातीय आधार पर उच्च एवं निम्न स्थिति बनी हुई है उसे आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रयत्नों के द्वारा समाप्त करना

(५) जनतन्त्रीय विश्वास और अभ्यास एवं राजकीय कार्य ।
(६) नई सामाजिक दशाएं विशेषकर छोटे समुदायों का विघटन और माध्यमिक समूहों तथा महासमितियों का विकास ।
(७) जाति विरोधी सामाजिक आन्दोलन ।
(८) समाजवादी या साम्यवादी विचारधाराओं का प्रचार ।
(९) प्रौढ़ मतदान प्रणाली ।
(१०) पंचवर्षीय योजना के द्वारा औद्योगिक क्रान्ति ।
(११) साक्षरता का प्रसार ।
(१२) पिछड़ी जातियों के उत्थान की योजनायें ।
(१३) महात्मा गांधी और विनोबा भावे के प्रयत्न ।
(१४) सामुदायिक विकास योजनायें ।
(१५) सहकारी कृषि ।
(१६) भूदान, ग्रामदान, ग्रामराज्य, बुद्धिदान आदि का नवीन आन्दोलन ।

जाति प्रथा में गुण एवं दोष दोनों ही हैं । अब प्रश्न यह है कि जाति प्रथा यदि हितकर है तो इसे स्थिर रक्खा जाय और यदि जाति अहितकर है तो इसे समाप्त कर दिया जाय । अनेक समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों का मत है कि यह बहुमूल्य कार्य करती है अतः इसे रहने देना चाहिये । इस प्रथा की हानिकारक सहयोगी प्रथाओं को समाप्त कर देना चाहिये न कि सम्पूर्ण व्यवस्था को । टूटी हुई विषपूर्ण अंगुली को काटना चाहिये न कि पूरे हाथ को । यह जहर सम्पूर्ण समाज में फैल गया है अतः इसे समाप्त कर देना चाहिये । इस संस्था के कार्य दूसरी संस्थाओं के द्वारा भी किये जा सकते हैं ।

जाति प्रथा को समाप्त करने के लिये विभिन्न प्रयत्न किये जा रहे हैं। ये प्रयत्न काफी अधिक सीमा तक सफल भी हुए हैं । इस सामाजिक संस्था से सम्बन्धित सामाजिक मूल्यों में भी तीव्रता के साथ परिवर्तन आता जा रहा है । जाति प्रथा के अब तक के इतिहास को यदि देखा जाये तो हम कह सकते हैं कि जाति प्रथा सदैव युग के साथ अनुकूलन करती चली आई है । यह तथ्य यह प्रदर्शित करता है कि जातिप्रथा आधुनिक परिस्थितियों में भी अनुकूलन कर लेगी। इसकी अब तक की प्रक्रिया के अधार पर यह केवल अनुमान मात्र है । इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि जातिप्रथा का भविष्य क्या रहेगा ।

द्वितीय खण्ड

ग्रामीण सामाजिक संगठन
(Rural Social Organisation)

उपविभाग द्वितीय

ग्रामीण सामाजिक संस्थाएं
(Rural Social Institutions)

अध्याय १७

ग्रामीण सामाजिक संस्थायें

(Rural Social Institutions)

प्रत्येक सामाजिक संगठन में संस्थाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामीण सामाजिक संगठन में भी सामाजिक संस्थायें अद्वितीय स्थान रखती हैं। ग्रामीण जीवन में पारस्परिक आदान-प्रदान की व्यवस्था होने के कारण संस्थागत सम्बन्धों का अध्ययन आवश्यक है। ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन के बिना हम ग्रामीण जीवन का सम्पूर्ण अध्ययन नहीं कर सकते। यह सर्वविदित सत्य है कि मानव अपनी मौलिक आवश्यकताओं का दास होता है। इसके साथ साथ ज्यों ज्यों मानव सामाजिक व सभ्य होता जाता है वह अगणित आवश्यकताओं का दास होता जाता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वह विधि विशेष का अनुसन्धान करता है। इस विधि का प्रारम्भ एक विचार के रूप में उत्पन्न होता है। इन विचारों को कार्यरूप में परिणित करने के लिये वह प्रयास करता है। यह प्रयास उसका फैशन व आदत के रूप में स्थायी हो जाता है। इस स्थायी रूप को समाजशास्त्र की भाषा में जनरीति (Folkways) कहते हैं। ग्रामीण जीवन में इन जनरीतियों का बड़ा महत्व है। जनरीतियों एवं जनप्रथाओं पर आधारित ग्रामीण समाज इन्हें सामाजिक स्वीकृति प्रदान कर सामाजिक संस्थाओं के रूप में मानने लगता है। ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं का यह ढांचा जनरीतियों, प्रथाओं तथा रूढ़ियों (Mores) पर खड़ा है। इस प्रकार से ग्रामीण सामाजिक संस्थायें ग्रामीण जीवन की एक प्रकार की मशीन एवं व्यवस्था है जिस पर समस्त सामाजिक जीवन अवलम्बित होता है। ग्रामीण संस्थाओं के अध्ययन से पूर्व हमें सामाजिक संस्थाओं के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझ लेना आवश्यक है।

सामाजिक संस्थाओं का अर्थ

(Meaning of Social Institutions)

यह तो हम लिख ही चुके हैं कि सामाजिक संस्थायें एक विचार या धारणा से उत्पन्न होकर जनरीति, प्रथा एवं रूढ़ियों की स्थिति से गुजरती हुई संस्था के रूप में विकसित होती है। यहां पर हम सामाजिक संस्था की परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे। समनर ने सामाजिक संस्था की परिभाषा करते हुए लिखा है, "एक संस्था

एक विचारधारा (विचार, मत, सिद्धान्त व स्वार्थ) और एक ढांचे से मिलकर बनती है।"[1]

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि संस्थायें सामाजिक व्यवहार का एक सुसंगठित एवं सुनिश्चित प्रतिमान होती हैं। सामाजिक सम्बन्धों एवं व्यवहारों के अध्ययन हेतु इनका अध्ययन अनिवार्य है। बोगर्डस ने भी सामाजिक संस्थाओं के बारे में लिखा है, "सामाजिक संस्था समाज का वह ढांचा होता है जो मुख्य रूप से सुव्यवस्थित विधियों द्वारा मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये संगठित किया जाता है।"[2] इसी तरह रॉस ने कहा है, "सामाजिक संस्थाएं सामान्य इच्छा से स्थापित या अभिमति प्राप्त संगठित मानव सम्बन्धों के समूह होते हैं।"[3] समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करने के लिये सामाजिक ढांचों व समाज विशेष की सुव्यवस्थित विधियों का अध्ययन करना जरूरी है। इन अध्ययनों के अभाव में समाज के समूल तत्वों का अध्ययन दुष्कर है। सामाजिक संस्थाओं की परिभाषा करते हुए मैकाइवर तथा पेज ने लिखा है, "संस्थाएं सामूहिक व्यवहार की विधि की दशाओं या स्थापित प्रतिमानों को कहते हैं।"[4]

उपरोक्त परिभाषाओं से सामाजिक संस्थाओं का अर्थ स्पष्ट हो गया होगा। इन परिभाषाओं में समनर की परिभाषा हमें उचित प्रतीत होती है कि एक संस्था एक धारणा एवं ढांचे से मिलकर बनती है। इस परिभाषा में ढांचे शब्द का स्पष्टीकरण अत्यन्त आवश्यक है उसे हम इस स्थान पर देना अनुचित न समझेंगे। यह स्पष्टीकरण सामाजिक संस्था को स्पष्ट करने में अवश्य ही सहायता करेगा। संस्था का विकास 'एक विचार' से या 'एक धारणा' से प्रारम्भ होता है। इस विचार या धारणा के अनुसार आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये क्रिया की जाती है और यह क्रिया उस समय तक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बराबर दुहराई जाती है जब तक कि इस सम्बन्ध में किसी अन्य विधि का विचार उत्पन्न न

---

1 "An institution consists of a concept (idea, notion, doctrine of interest) and a structure." W.G. Sumner: 'Folkways' p.53.

2 "Social Institution is a strcuture of society that is organised to meet the needs of people chiefly through well established procedures." Bogardus, E.S : 'Sociology' p. 478.

3 "Social Instructions are sets of organised human relationship established or sanctioned by the common will." Ross E.A 'Principles of Sociology', p. 686.

4 "Institutions are the established forms or conditions of procedure characteristic of group activity." MacIver and Page : 'Society'; (1955); p. 15.

हो। क्रिया के दुहराने से आदत बन जाती है और इस आदत को समूह के अन्य व्यक्ति भी वैयक्तिक रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपना लेते हैं और इस सामूहिक क्रिया में एकरूपता आ जाने से इसे 'समूह की आदत' या 'समूह' की रीति' या 'जनरीति' नाम से पुकारा जाता है। समूह के व्यक्ति इस क्रिया को दुहराते हैं और इस दुहराने के क्रम में समय समय पर उनके मस्तिष्क में इसे परिष्कृत करने के अन्य विचार उत्पन्न होते हैं। ये विचार उस प्रमुख धारणा या विचार के सहायक के रूप में होते हैं जो कि प्रारम्भ में उत्पन्न हुआ था और जो अब तक विकसित होते होते जनरीति के स्तर तक आ पहुंचा था। यह जनरीति विकसित होते होते प्रथाओं और रूढ़ियों के रूप तक बढ़ जाती है। जब तक यह रूढ़ियों के स्तर तक पहुँचती है तब तक अनेकों इसी प्रकार के सहायक विचार भी उत्पन्न हो जाते हैं। ये विचार भी विकसित होकर उस रूढ़ि विशेष की सहायक प्रथायें एवं सहायक जनरीतियां बन जाती हैं। प्रमुख रूढ़ि और उसकी सहायक जनरीतियां एवं सहायक प्रथायें ही मिलकर एक ढांचे का निर्माण करती हैं और संस्था निर्मित हो जाती है। वास्तव में ढांचा कोई रेखाओं का भौतिक आकार-प्रकार नहीं है वरन् विचारों, प्रथाओं और जनरीतियों का समूह मात्र है जो प्रमुख धारणा की सहायता के लिये विकसित हो गया है।

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक संस्थायें समाज विशेष के सामाजिक जीवन की आधार स्तम्भ होती हैं। इसमें धारणा (concept) अथवा विचार (idea), उद्देश्य (purpose) एवं सामाजिक ढांचा (Social-Structure) होता है। फिचर ने लिखा है, "एक संस्था सामाजिक प्रतिमानों, कार्यों और सम्बन्धों का सापेक्षात्मक दृष्टि से स्थायी ढांचा होता है जो कि अपनी मौलिक सामाजिक आवश्यकताओं की तृप्ति के उद्देश्य से एक मान्य एवं समान विधियों के द्वारा बनाते हैं।"[5] सामाजिक संस्थाओं को सामाजिक अभिमत एवं अधिकार (Social Sanction & Authority) द्वारा शक्ति प्राप्त होती है। ये सामाजिक जीवन की प्रतीक होती है।

ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं का रूप
(Form of Rural Social Institutions)

ग्रामीण सामाजिक जीवन में भी अनेक सामाजिक संस्थायें व्याप्त हैं। ग्रामीण व्यक्तियों की प्रमुख आवश्यकतायें भोजन, वस्त्र, निवास व कृषि सम्बन्धी हैं। भौतिक

5 "An institution is a relatively permanent structure of social patterns, rules and relations that people enacts in certain sanctioned and unified ways for the purpose of satisfying basic social needs," Fitcher, J.H. 'Sociology' (1954) p. 228.

आवश्यकताएं तो संसार के सभी प्राणियों में समान रूप से पाई ही जाती हैं। नागरिक जीवन की आवश्यकताओं की भांति ग्रामीण जीवन की आवश्यकतायें विस्तृत नहीं हुई हैं। ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं के सीमित होने से वहां का सामाजिक संगठन भी सरल है। सामाजिक संस्थाओं में भी जटिलता एवं बहुलता दृष्टिगोचर नहीं होती। अधिकांश सामाजिक संस्थायें तो प्रथाओं, रूढ़ियों एवं जन-रीतियों के रूप में ग्रामीण जीवन में उपलब्ध हैं और इनमें भी जटिलता का अभाव है। ग्रामीण जीवन में सामाजिक संस्थाओं की बहुलता नहीं पाई जाती। ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं में अनुरूपता अत्यधिक पाई जाती है। ग्रामीण संस्थायें, ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ में ग्रामीण संस्कृति की वाहक (Vehicles of Rural Culture) होती हैं। संस्थाओं का यह प्रथम कार्य होता है कि वे संस्कृति विशेष के तत्वों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करती रहती है। किसी भी संस्कृति का आधार उस समूह विशेष की संस्थायें ही होती हैं। अत: ग्रामीण संस्कृति का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिये ग्रामीण संस्थाओं का अध्ययन आवश्यक है। ग्रामीण संस्थायें सामूहिक व्यवहारों के नियन्त्रण के क्षेत्र में भी अद्वितीय स्थान रखती हैं। ग्रामीण धार्मिक संस्थायें सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में भी अग्रसर हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि धार्मिक संस्था का वहां बड़ा प्रबल अधिकार है। यह केवल नियन्त्रण का ही कार्य नहीं करती बल्कि मानव जाति के हितों का संरक्षण भी करती है। इस सम्बन्ध में मेकाइवर ने उचित ही लिखा है, "सामाजिक संस्थायें मनुष्य को पराजित करने के अपने अधिकार पर जीवित नहीं हैं, अपितु उनकी (मनुष्यों की) सेवा करने के लिए हैं और जब वे सेवा करना बन्द कर देती हैं तो कोई भी प्राचीनता और कोई भी पवित्रता उन्हें मरने से नहीं बचा सकती।"[6] वास्तव में संस्थायें मनुष्य की सेवा करती हैं। ये मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति की एक सामान्य विधि प्रस्तुत करती हैं। संस्थायें मनुष्यों के लिए अनेक कार्य करती हैं।

ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं के कार्य
(Functions of Rural Social Institutions)

ग्रामीण सामाजिक संस्थायें ग्रामीण जीवन में अनेक कार्य करती हैं। ये कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मानव की आवश्यकताओं की सामूहिक ढंग से पूर्ति संस्थाओं

---

6 "Social Institutions do not exist in their own rights to over-power men but only to serve them and when they ceases to serve no antiquity and no sanctity can save them from condemnation." Maclver. R.M. 'community', pp. 162.163.

की सहायता से होती है जिससे कि समाज में संगठन एवं व्यवस्था बनी रहती है। अतः संगठन एवं व्यवस्था के दृष्टिकोण से ग्रामीण सामाजिक संस्थायें अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं। नीचे हम इन संस्थाओं के विभिन्न कार्यों पर प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

(१) आवश्यकताओं की पूर्ति :—

संस्थायें मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायता करती हैं। ये मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के ही साधन हैं अतः ये मनुष्य की समूह में, समूह के कल्याण को ध्यान में रखते हुए आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। संस्थायें साधन हैं साध्य नहीं। आश्यकताओं की पूर्ति प्रत्येक संस्था का प्रमुख कार्य है और इसी के लिये ये विकसित की जाती हैं।

(२) संस्कृति का संरक्षण :—

संस्थाएं संस्कृति की रक्षा करती हैं। ये संस्कृति को एक पीढ़ि से दूसरी पीढ़ि तक ज्यों का त्यों हस्तान्तरित करती रहती हैं। ये संस्कृति के आधार पर निर्मित होती हैं और संस्कृति की ही अंग होती हैं अतः ये संस्कृति की रक्षा करती हैं और उसे एक पीढ़ि से दूसरी पीढ़ि तक पहुंचाती हैं।

(३) अनुरूपता उत्पन्न करना :—

संस्थायें मानव व्यवहार में समानता लाती हैं। आवश्यकतायें मनुष्य की समान हैं और उनकी पूर्ति के लिये भी सभी मनुष्यों को कार्य करना पड़ता है किन्तु ये कार्य वैयक्तिक आधार पर भिन्न होंगे और इससे समूह का अहित भी सम्भव है अतः समूह के कल्याण के लिये ये मानव व्यवहार में समानता लाती हैं।

(४) सामाजिक नियंत्रण :—

संस्थायें सामाजिक नियन्त्रण का कार्य करती हैं। समूह के व्यवहार में अनुरूपता लाकर ये मनुष्यों को एक विधि विशेष के द्वारा ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाध्य करती हैं अतः ये सामाजिक नियंत्रण का कार्य करती हैं किन्तु ये केवल मानव नियंत्रण के लिए ही नहीं निर्मित हुई हैं वरन् इनका मुख्य ध्येय तो आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही है।

(५) मार्ग प्रदर्शन करना :—

संस्थायें मानव समूह को अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने की एक उचित एवं सरल विधि प्रदर्शित करती है। इस भांति ये प्रदर्शित करती हैं कि अमुक आवश्यकता किस भाँति पूर्ण की जायेगी ? उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए किस विधि का प्रयोग किया जाना चाहिये ?

(६) स्थिति एवं कार्य का निर्धारण करना :—

संस्थाएं व्यक्ति की योग्यतानुसार उसे समाज में स्थिति प्रदान करती हैं और उसकी स्थिति के अनुसार कार्य का निर्धारण भी करती हैं। जाति संस्था व्यक्ति की स्थिति एवं कार्य का निर्धारण करती हैं। ग्रामीण जीवन में तो संस्थायें व्यक्तियों की स्थिति अधिकांश रूप से निश्चित करती हैं।

अब हम इन संस्थाओं की विशेषताओं का वर्णन करेंगे।

ग्रामीण संस्थाओं की विशेषतायें
(Characteristics of Rural Institutions)

ग्रामीण सामाजिक संस्थायें अनेक विशेषताओं से सम्पन्न हैं। ये मानव की सेवा करने के लिए अनेकों कार्य करती हैं जिनका वर्णन हम ऊपर ही कर आये हैं। यहां हम ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं की विशेषताओं का वर्णन करेंगे। सामाजिक संस्थाओं पर भी पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है अतः ग्रामीण पर्यावरण के प्रभाव के कारण इन संस्थाओं में भी एक पृथकता आ गई है और यह पृथकता ही इन संस्थाओं को अन्य पर्यावरणीय संस्थाओं से भिन्न करती हैं। ग्रामीण संस्थाओं की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं:—

(१) सरलता :—

ग्रामीण संस्थायें सरल होती हैं। ग्रामीण व्यक्तियों की आवश्यकतायें भी मौलिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित ही होती हैं। वे अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखते हैं। उनकी आवश्यकतायें ऐश-आराम सम्बन्धी नहीं होतीं। उनकी आवश्यकताओं में सरलता होने से उनकी पूर्ति की विधियां भी सरल होती हैं। अतः ग्रामीण सामाजिक संस्थायें सरल होती हैं उनमें नागरिक पर्यावरण की जटिलता नहीं पाई जाती। उदाहरण के लिए श्रम विभाजन आदि में नागरिक जीवन की जटिलता नहीं पाई जाती। इसी प्रकार पंचायत संगठन भी एक सरल संगठन ही है।

(२) अनुरूपता :—

ग्रामीण संस्थाओं में अनुरूपता अत्यधिक मात्रा में पाई जाती है। एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए जितनी संस्थायें पाई जाती हैं उनमें अनुरूपता या समानता ही होगी। विभिन्न जातियों की विवाह संस्थाओं, पंचायत संस्थाओं में अत्यधिक भिन्नता नहीं पाई जाती है। सभी व्यक्तियों का व्यवहार अपनी संस्थाओं के अनुरूप ही होता है।

(३) बहुलता का अभाव :—

ग्रामीण संस्थाओं की संख्या भी सीमित होती है इनमें बाहुल्य नहीं पाया जाता। संस्कृति एवं जनसंख्या की अनुरूपता के कारण अनेक संस्कृतियां एक ही ग्राम में

नहीं पाई जाती। अतः विभिन्न संस्कृतियों के आधार पर विभिन्न संस्थाओं का अभाव भी ग्रामीण जीवन में पाया जाता है। अतः अनेक प्रकार की संस्थायें ग्रामीण जीवन में नहीं पाई जाती।

(४) धर्म प्रधानता :—

ग्रामीण सामाजिक संस्थायें धर्म प्रधान होती हैं। इन संस्थाओं के आधार में धर्म होने से इनकी शक्ति अत्यधिक बढ़ गई है। धार्मिक आधार पर ये सामाजिक संस्थायें टिकी हुई हैं। ये संस्थायें भाग्यवादिता का दृष्टिकोण भी लिए हुए हैं जिनके कारण ग्रामीण व्यक्ति इन्हें मानने को बाध्य होते हैं।

(५) जातीय आधार :—

ग्रामीण संस्थायें जाति पर भी आधारित हैं। पंचायत में सबके अधिकार समान होते हुए भी उच्च जातियों के व्यक्तियों को ही पंच बनाया जाता है। उन्हीं के अधिकार में सभी सामाजिक संस्थायें रहती हैं। विवाह आदि की संस्थाओं में भी जातीय आधार पर श्रेष्ठता एवं भिन्नता की भावनायें पाई जाती हैं।

(६) पारिवारिकता से प्रभावित :—

ग्रामीण संस्थाओं पर पारिवारिकता की छाप भी स्पष्ट पड़ती है। इन संस्थाओं के कार्यकर्ता वैयक्तिक योग्यताओं के आधार पर नहीं चुने जाते हैं। वरन् इनका चुनाव पारिवारिकता आदि पर भी आधारित होता है। पारिवारिकता का अर्थ हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं।

(७) रूढ़िवादिता :—

ग्रामीण संस्थायें रूढ़िवादी होती हैं। धर्म का आधार होने से ग्रामीण व्यक्ति समझते हैं कि यह धर्म के अनुसार ही उत्पन्न हुई हैं जिससे इन्हें मानने के लिए वे कोई हिचकिचाहट नहीं करते। ये संस्थायें कई वर्ष पुरानी होने से इनमें नवीनता का अभाव होता है। ये रूढ़िवादिता के आधार पर चलती रहती है।

(८) अपरिवर्तनशील :—

रूढ़िवादिता के साथ ही साथ इन संस्थाओं में अपरिवर्तशीलता भी एक विशेषता है। ये संस्थायें शीघ्रता से परिवर्तित नहीं की जा सकती। इन संस्थाओं में परिवर्तन नहीं हो पाता और रूढ़िवादी ही बनी रहती हैं। धर्म का आधार होने से संस्थाओं में परिवर्तन व्यक्तियों द्वारा भी शीघ्रता के साथ स्वीकार नहीं किया जाता।

ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन क्यों ?

हम यह देखते हैं कि ग्रामीण समाज में मानव व्यवहारों के अध्ययन करने के दो रूप हैं। प्रथम ग्रामीण जन के व्यवहारों का अवलोकन करके उनके सामाजिक

जीवन का निश्चित परिस्थितियों में कैसा व्यवहार व सम्बन्ध रहता है। द्वितीय ग्रामीण जनसमूह के समूहात्मक अंगों का विश्लेषण व अध्ययन करके। ग्रामीण समाज के व्यवहारों की पद्धतियां ग्रामीण स्थानों में ही दृष्टिगोचर हो सकती हैं। इस प्रकार से ग्रामीण समूह के व्यवहार और सम्बन्धों के अध्ययन के लिये सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। स्पष्ट है कि ग्रामीण समाज के अध्ययन के लिये ग्रामीण संस्थाओं का अध्ययन अत्यन्त अनिवार्य है।

यदि हम यह समझना चाहते हैं कि ग्रामीण जन अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार करता है तो इसका ज्ञान हमें ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं से उपलब्ध हो सकता है। ग्रामीण संस्कृति को समझने के लिये भी संस्थाओं का अध्ययन अनिवार्य है क्योंकि हम देख आये हैं कि सामाजिक संस्थायें संस्कृति की प्रमुख अंग होती हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक चिन्हों (Social Symbols), सामाजिक नियन्त्रण (Social Control) तथा सामाजिक परिवर्तन आदि को समझने के लिये भी संस्थाओं का अध्ययन आवश्यक है। हम ग्रामीण समाज के भविष्य की रूप रेखा तभी बना सकते हैं जब कि ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं का परिपूर्ण ज्ञान हो। इस प्रकार से हम देखते हैं कि ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन कितना आवश्यक है।

अध्याय १८

ग्रामीण शिक्षण संस्थायें

(Rural Educational Institutions)

युग युग की परम्पराओं एवं संचित पूंजी को मनुष्य एक पीढ़ि से दूसरी पीढ़ि को सदैव हस्तान्तरित करता रहा है। इस हस्तान्तरण की प्रक्रिया को सामान्य रूप से शिक्षा के नाम से सम्बोधित किया जाता है। सदा से शिक्षा के प्रतिमान एवं पद्धतियों में देश व काल की छाप रहती है। भारत में आधुनिक युग में इस प्रक्रिया पर बड़ा बल दिया जा रहा है। ग्रामीण शिक्षा को एक नवीन व संगठित आवरण पहनाने का भी प्रयत्न किया गया है तथा इस कार्य को करने के लिये नवीन विचारों से परिपूर्ण शिक्षा संस्थाओं (Institutions) को जन्म दिया गया है। परम्परागत व पाश्चात्य शिक्षा को छोड़ गाँवों में गुरूकुल एवं आश्रम शिक्षा के प्रतिमानों पर बुनियादी शिक्षा का अनुसरण किया जा रहा है।

शिक्षा का अर्थ

(Meaning of Education)

प्रत्येक पर्यावरण में शिक्षा व शिक्षण संस्थायें प्राणी को समाज का उपयोगी व्यक्ति बनाती हैं। शिक्षा के द्वारा मनुष्य सभ्य हो जाता है। शिक्षा के द्वारा मानव अपनी उन शक्तियों को विकसित कर लेता है जो उसे सफलता प्राप्त करने में सहायक होती है। मानवीय जीवन में सफलता प्रदान करने वाली शक्तियों के विकास की प्रक्रिया शिक्षा के अन्तर्गत आती हैं। दूसरे शब्दों में शिक्षा एक प्रकार की चेतना है जिसे मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में, सामाजिक पर्यावरण में सामाजिक संस्थाओं द्वारा प्राप्त करता है। हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि शिक्षा मनुष्य की नैसर्गिक चेष्ठा एवं प्रयास है। मानव की विकासशील प्रवृति का प्रतिबिम्ब शिक्षा में ही दृष्टिगोचर होता है। शिक्षा का रूप बड़ा सामान्य होता है। यह रूप सर्वत्र अपनी समान प्रक्रिया में प्रतिलक्षित होता है।

शिक्षा समाज की प्रमुख आशा होती है। शिक्षा सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिसमें समाज द्वारा स्वीकृत तत्वों को एक दूसरे को हस्तान्तरित किया जाता है। इस कार्य के संचालन हेतु समाज को शिक्षा संस्थाओं का निर्माण करना पड़ता हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा मानव आदिकाल से सीखता आ रहा है। इस प्रकार से वह जो

सीखता है उसे शिक्षा का रूप दिया जाता है। मानव जो कुछ सीखता है वह समाज के मध्य रहकर सीखता है। प्रो० कबीर ने तो यहां तक कहा है, "आदर्श पर्यावरण में सच्ची शिक्षा केवल माता पिता द्वारा ही दी जा सकती है।"[1] गान्धी जी ने भी शिक्षा को सांस्कृतिक चेतना एवं हृदय परिवर्तन का श्रोत माना है। उन्होंने लिखा है, "प्रथम स्थान हृदय की संस्कृति या चरित्र निर्माण का है अथवा जैसा मेरा विश्वास है सबको समान नैतिक प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकता है।"[2]

इस प्रकार से हमने देखा कि मानव जीवन के लिये शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्रो० हक्सले ने लिखा है, "मैं सोचता हूँ कि उसी व्यक्ति को स्वतन्त्र शिक्षा मिली है जो अपनी तरुण अवस्था में ही इतना प्रशिक्षित हो गया हो कि उसका शरीर इच्छा शक्ति का पूर्ण रूप से दास हो, जिसकी बौद्धकता इतनी स्पष्ट, शीतल, तर्कपूर्ण एन्जिन हो जिसका प्रत्येक भाग समान शक्तिशाली एवं सुगमता से कार्य करने वाला हो जिसका मस्तिष्क प्रकृति के मौलिक तथ्यों के ज्ञान का भण्डार हो।"[3] डा० पट्टाभिसीतारमैया ने शिक्षा के बारे में ठीक कहा है, "शिक्षा में वह तृष्णा है जिसका सम्बन्ध केवल जीने की कला मात्र से नहीं वरन् जीवन के मूल एवं आधारभूत विचारों से है।"[4] अमेरिका के शिक्षाशास्त्री मीड ने बताया है, "शिक्षा से हमारा तात्पर्य सारे बालकों को वह शिक्षा देना है जिसकी इनको इस संसार में पूर्ण मानव बनने के लिये आवश्यकता है।"[5] थोमस वुडे (Thomas Woodey) ने शिक्षा को सामाजिक चेतना देने वाला यन्त्र समझा है। उनका

---

1 "Under ideal condition true education could be imparted only by the parents." Prof. Himayun Kabir : 'Basic Education Reports' (1952).

2 "The first place to the culture of the heart or the building of character or as I felt confident that moral training could be given to all alike." M. K. Gandhi : 'Young India'.

3 "That man, I think had a liberal education who has been so trained in youth that his body is the ready servant of his will, whose intellect is clean, cold, logic, engine with parts of Educal strength and smooth working, where mind is stored with a knowledge of the fundamental truth of nature." Prof. Huxley : 'Towards Education.'

4 "Education has thirst to be related not only to the art of living but the very ideals of life." Dr. Pattabhi Sitaramaiya: 'Hindustan Talimi Sangh'; p. 10.

5 "By education we would mean that all children are taught what they need to know in order to be fully human in the world in which they are living." M. Meed : 'Education Digest', pp. 4–5.

कथन है, "शिक्षा का वैज्ञानिक सिद्धान्त यह घोषणा करता है कि यह हमारी सामाजिक चेतना से सम्बन्धित कार्यक्रम है।"[6]

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शिक्षा मानवीय विकास के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु एक अनिवार्य सांस्कृतिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया पर सदा से विचार होता आया है। यह प्रत्येक मानव की अन्तर्निहित सम्भावनाओं को विकसित करती है। इस प्रकार से इसका सामाजिक जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अब हम ग्रामीण सामाजिक जीवन में इसके स्थान को देखने का प्रयास करेंगे।

ग्रामीण जीवन में शिक्षा का स्थान
(Place of Education in Rural Life)

शिक्षा समाज की अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था है, जिसके द्वारा समाज के मान्य संस्कारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जाता है। विस्तृत अर्थों में सामाजिक जीवन के प्रारम्भ के साथ ही किसी न किसी प्रकार की शिक्षा का श्री गणेश हो जाता है। प्रत्येक समाज में अपनी भूमिका अदा करने के लिये, अपने पद की रक्षा करने के लिये, अपनी प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिये अथवा अपनी जीविका के लिए कुछ विशिष्ट तथ्यों को जानने, कुछ विशिष्ट गुणों को अपनाने, कुछ विशिष्ट कार्यों का अभ्यास करने की आवश्यकता पड़ती है। अविकसित समाजों में प्रायः यह कार्य परिवार या कबीले के अन्तर्गत ही सम्पूर्ण कर लिये जाते हैं। ग्रामीण समाज में भी परिवार व पड़ौस इस क्षेत्र में अद्वितीय स्थान रखते हैं। यहां पर लेखन कला से विशेष परिचय न होने के कारण व शिक्षा के मौलिक साधनों का अभाव होने के कारण शिक्षा की प्रक्रिया मौखिक व जीवन से सम्बन्धित क्रियाओं के द्वारा होती है। गांवों में आविष्कारों और संगठित संस्थाओं की अनुपस्थिति के कारण शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि ग्रामीण समाज अपने आदर्शों व आवश्यकताओं, विश्वासों तथा सामाजिक नियन्त्रणों के अनुरूप अपने सदस्यों को विशेष सांचे में ढालने का प्रयत्न नहीं करता। ग्रामीण समुदाय भी अपने सदस्यों को अपने पर्यावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है। ग्रामीण समाज के ये प्रयत्न भी ग्रामीण शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं। शिक्षा के समाजशास्त्रीय रूप के सम्बन्ध में गिलिन और गिलिन ने लिखा है, "अपने व्यापकतम अर्थ में शिक्षा में ऐसी कोई भी विधि सम्मिलित हैं, जिससे संस्कृति के अन्तर्गत

6 "The scientific theory about Education declared it our agency in regard to social enlightenment." Thomas Woodey : 'Educational Journal.' p. 5.

पुरानी परम्पराओं, रीतिरिवाजों तथा संस्थाओं को सामाजिक विरासत और नयी ज्ञान-प्रविधियां एक व्यक्ति या समूह से दूसरे व्यक्ति या समूह तक पहुँचाई जाती हैं।"[7] इससे पूर्ण स्पष्ट है कि ग्रामीण समाज को स्थिर रखने तथा उसको सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिये शिक्षा का कोई न कोई रूप अवश्य होता है। ग्रामीण समाज में भी शिक्षा को सामाजिक निरन्तरता के लिये आवश्यक माना जाता है और उसके समुचित विकास का ध्यान भी रक्खा जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि विशिष्ट शिक्षा ही व्यक्ति को विशिष्ट समाज के लिये उपयोगी बनाती है। हम यह भी कह सकते हैं कि ग्रामीण शिक्षा ग्रामीण व्यक्ति को ऐसी जीवन पद्धति, रीतिरिवाज, रहन सहन, आचार विचार, व तौर तरीके बताती है जो ग्रामीण सामाजिक जीवन के लिये अनिवार्य है। इस प्रकार से प्रत्येक समाज में व्यक्ति का समाज के साथ सामन्जस्य और अनुकूलन स्थापित करने का मुख्य साधन शिक्षा है।

ग्रामीण शिक्षा में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण विशेष पाया जाता है, क्योंकि वहां किताबी ज्ञान या लिखने पढ़ने के विशेष अभ्यास को ही शिक्षा नहीं कहते। यहां उन सब बातों को शिक्षा के अन्तर्गत माना जाता है जो बालक जन्म से खेत-खलियान व ग्रामीण सामाजिक वातावरण से सीखता है। इस प्रकार की शिक्षा सभी समाजों में पाई जाती है। ग्रामीण जन ग्रामीण सामाजिक जीवन के लिये इसी शिक्षा को उपयुक्त मानते हैं। वर्तमान युग में साक्षरता तथा साधारण गणित ज्ञान को आवश्यक माना जाने लगा है।

प्रत्येक संस्कृति की पृथक शिक्षा हो
(Every culture should have different Education)

यूं तो हर प्रकार से सब मानव प्राणी एक ही प्रकृति के होते हैं। जीवन की तीन आवश्यकताओं की सबको समान रूप से आवश्यकता पड़ती है परन्तु फिर भी प्रत्येक क्षेत्र में समानता प्रतिलक्षित नहीं होती। यहां तक कि जुड़वां बच्चे भी एक समान नहीं होते हैं।

अतः स्पष्ट है कि प्रत्येक प्राणी के लिये उसकी रुचि, क्षमता व कार्यक्षेत्र के अनुसार पृथक शिक्षण व्यवस्था होनी चाहिये। शिक्षा का न केवल समाजशास्त्रीय आधार बल्कि मनोवैज्ञानिक आधार भी यही कहता है। इस प्रकार की पृथकता यद्यपि एक ही समाज के व्यक्तियों में इतनी नहीं होती परन्तु विभिन्न संस्कृतियों में अवश्य पर्याप्त रूप से बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ अमेरिका में जिस शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है वह भारत के लिये उपयुक्त सिद्ध नहीं होगी। अमेरिका के

---

7 Gillin & Gillin : 'Cultural Sociology.'

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि में वैज्ञानिकता का जो विशेष योग है वह भारत में नहीं। इसके अतिरिक्त विभिन्न संस्कृतियों में अपनी भाषा, रीतिरिवाज, धर्म, प्राकृतिक वातावरण, जलवायु, भोजन, विचारधारा, ऐतिहासिक क्रम, परम्पराओं आदि का होना जरूरी हैं। इसी दृष्टि से यदि हम एक राष्ट्र को एक संस्कृति का प्रतिनिधि मान लें तो हमें उस राष्ट्र के लिये विशिष्ट शिक्षा पद्धति की आवश्यकता होगी। वहां उसी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करना होगा जो उस पर्यावरण के अनुकूल हो। अतः स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण समाज के लिये शिक्षा की व्यवस्था करते समय हमें भारतीय ग्रामीण पर्यावरण का ध्यान रखना होगा।

शिक्षा एक सामाजिक दायित्व
(Education a Social Responsibility)

शिक्षा के उपरोक्त सांस्कृतिक पृथक्करण का प्रभाव वर्तमान युग में कम होता जा रहा है। शिक्षा अब सामाजिक दायित्व समझी जाती है। इस सम्बन्ध में हम ऊपर भी बता आये हैं कि सामाजिक जीवन के प्रारम्भ से शिक्षण प्रयत्न प्रारम्भ हो जाते हैं। प्रत्येक संस्कृति में शिक्षा के मौलिक अर्थों व सिद्धान्तों में समानता होती हैं। यदि हम प्राचीन परम्परागत शिक्षा प्रणाली में और वर्तमान शिक्षा में भेद देखते हैं तो सामाजिक ढांचे के परिवर्तन के फलस्वरूप ही ऐसा हो रहा है। शिक्षा को सामाजिक दायित्व समझा गया है। इसकी व्यवस्था में महान क्रान्ति हुई हैं। इसका उदाहरण हमारा देश भारतवर्ष ही है। यहां ग्रामीण क्षेत्रों की शिक्षा व्यवस्था का पुनर्गठन एक ज्वलन्त प्रमाण हैं। आज के सौ हाल पूर्व सभी तथा कथित सभ्य राष्ट्रों में बच्चों की शिक्षा मां बाप का ही दायित्व था, जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज के केवल समृद्ध, सबल तथा सम्मानित सदस्यों की सन्तानों को ही शिक्षा सुविधाओं का अधिकार रह गया था। फलतः यह स्वाभाविक था कि राष्ट्र का ग्रामीण समुदाय पूर्ण रूप से ही व्यवस्थित शिक्षा से वंचित रहता। केवल सीमित मात्रा में ही परम्परागत शिक्षा प्राप्त होती थी और उसी से ग्रामीण व्यक्ति अपने जीवन निर्वाह योग्य कृषि की परम्परागत शिक्षा प्राप्त कर लेते थे।

वर्तमान युग में सभी सभ्य राष्ट्रों में समाज की शिक्षा का दायित्व समाज व सरकार का समझा जाता हैं। कल्याण राज्य की कल्पना के अन्तर्गत कुछ देशों में औद्योगिक क्रान्ति जनित आर्थिक समृद्धि तथा समाज कल्याण की असाधारण धारणा से ग्रामीण समुदाय को समुचित शिक्षा देने की व्यवस्था पर विचार किया गया है। ग्रामीण शिक्षा प्रायः राष्ट्रों की राजकीय कल्याणकारी योजनाओं का अभिन्न अंग है। अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा व समाज शिक्षा आज प्रगतिशील राष्ट्रों का एक प्रधान लक्ष्य बन चुकी है। अब हम

ग्रामीण क्षेत्रों की शिक्षा, शिक्षा समस्यायें, शिक्षा सुधार, शिक्षा संस्था आदि तथ्यों पर विचार करेंगे।

ग्रामीण शिक्षा

(Rural Education)

वर्तमान युग में शिक्षा का सामान्य अर्थ विशेषतः लिखने व पढ़ने की योग्यता तक ही सीमित रक्खा जाता है। यदि हम सही अर्थों में ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिपात करें तो इसे बड़ी शोचनीय स्थिति में पायेंगे। ग्रामीण शिक्षा का स्तर बड़ा निम्नकोटि का हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार की साक्षरता का बहुत कम प्रचार है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांशतः जनसंख्या निरक्षर है। श्री स्मिथ ने अमेरिका के ग्रामीण शिक्षा स्तर के बारे में कहा है, "उचित तथ्यों के सर्वेक्षण से स्पष्ट रूप से प्रगट होता है कि अमरीकी शिक्षा पद्धति के लाभ ग्रामीण समुदाय के मनुष्यों तक उस समान मात्रा में विकसित नहीं किये गये जितने कि नागरिक केन्द्रों के निवासियों के द्वारा उपभोग किये गये हैं। इस प्रकार दस वर्ष और इससे अधिक आयु की जनसंख्या में ४०००,००० व्यक्ति (४.३ प्रतिशत) सन् १९३० ई० से असाक्षर थे। नागरिक जनसंख्या में (उनका) अनुपात ३.२ प्रतिशत था, जब उसकी तुलना ६.९ प्रतिशत कृषक तथा ४.८ प्रतिशत अकृषक ग्रामीण जनसंख्या से की गई।"[8] इस प्रकार से सदा से ग्रामीण शिक्षा की प्रगति में ह्रास होता रहा है। ग्रामीण शिक्षा के सम्बन्ध में लोगों के मध्य अब विचारों में परिवर्तन आ गया है। ग्रामीण शिक्षा के अन्तर्गत हम उस शिक्षा व्यवस्था को मान्य समझते हैं, जो ग्रामीण पर्यावरण के अनुकूल होने के साथ ग्रामीण आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली हो। ग्रामीण शिक्षा विस्तृत अर्थों में वही शिक्षा मानी जाती है जो कृषि के उद्देश्यों को

---

8 "A survey of the relevant data reveals clearly that the benefits of the American educational system have not been extended to people in rural communities in the same degree as has been enjoyed by resident of urban centres. Thus in the population ten years of age and over 4,000,000 persons (4.3 %) were illiterate in 1930. Among the urban population the proportion was 3.2 % as compared with 6.9 % in rural farm and 4.8 % in the rural non-farm population." T. Lynn Smith : 'The Sociology of Rural Life'; p. 424. Data from Abstract of the Fifteenth census of the United States, Washington, Government Printing office, (1953) Table; 140 p. 277,

पूर्ण करती है। ग्रामीण शिक्षा के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी हम भारत की ग्रामीण शिक्षा के उदाहरण से प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

भारत में ग्रामीण शिक्षा
(Rural Education in India)

भारत में ग्रामीण शिक्षा का प्राचीन रूप अत्यन्त प्रभावशाली रहा है। यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा व्यक्तिगत दायित्व पर निर्भर थी जिससे ग्रामीण समाज के सीमित लोगों को ही औपचारिक (Formal) शिक्षा प्राप्त करने का वास्तविक अधिकार प्राप्त था और शिक्षा का संगठन व्यवहारिक था। गुरू शिष्य का निकटतम सम्बन्ध तथा धार्मिक शिक्षा का गहन सम्बन्ध था। शिक्षा धार्मिक व जातीय आधारों पर संगठित थी। मुसलमान मदरसों में तथा साधारण पाठशालाओं में हिन्दू व मुसलमान साथ साथ शिक्षा प्राप्त करते थे। प्राचीन काल की शिक्षा की विशेषता यह भी थी कि गुरूकुलों में शिक्षा प्रदान की जाती थी। कुछ सीमा तक भारतीय ग्रामीण शिक्षा की प्राचीन व्यवस्था वर्तमान युग की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में समर्थ होती थी। लेकिन विभिन्न संस्कृतियों तथा सरकारों के हस्तक्षेप से यह ढांचा बिगड़ गया। विशेषतः ग्रामीण शिक्षा संगठन का रूप बड़ा विघटित हो गया ग्रामीण शिक्षा के प्राचीन ढांचे में विभिन्न अभाव दृष्टिगोचर होते हैं। इस शिक्षा को परम्परागत शिक्षा (Traditional Education) कहा जाता है। ग्रामीण समुदाय में शिक्षा का अधिकार विशिष्ट वर्गों को ही प्राप्त था जो प्राचीन पद्धति पर आधारित थी। शिक्षा का आदर्श 'थ्री-आर्स' (Three Rs.) पर अवलंबित था। लिखना पढ़ना व गणित ज्ञान से बौद्धिक ज्ञान पर विशेषतः बल दिया जाता था। यहां हम प्राचीन शिक्षा प्रणाली के दोषों पर विचार करेंगे।

परम्परागत शिक्षा के दोष
(Defects of Traditional Education)

राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन सन् १९३७ ई०, जो वर्धा में गांधीजी के सभापतित्व में हुआ था उसमें अध्यक्षीय भाषण में महात्माजी ने कहा था, "वर्तमान शिक्षा प्रणाली किसी भी रूप में देश की मांग को पूरा नहीं करती है। उच्च शिक्षा का माध्यम जो अंग्रेजी बना दिया गया है, उसने मुट्ठी भर लोगों और लाखों ग्रामीण अनपढ़ों के बीच एक स्थायी दीवार खड़ी कर दी है। इस शिक्षा से ग्रामों व नगरों के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। परम्परागत शिक्षा प्रणाली के प्रमुख कर-दाता ग्रामीण किसान को लाभ नहीं मिल रहा है।"[१] आर्यनायकम्: ने भी लिखा

---

[१] देखिये : महात्मागांधी : 'वर्धा शिक्षा योजना'

है, वर्तमान शिक्षा पद्धति छात्र एवं छात्राओं के सर्वांगीण विकास एवं सहयोगिक भावनाओं का निरर्थक साध्य है।"[10] संक्षेप में हम परम्परागत शिक्षा के निम्न दोष निर्धारित कर सकते हैं:—

(१) व्यवहारिकता का अभाव (Lack of Realism)

हम देख चुके हैं कि परम्परागत शिक्षा ने ग्रामीण क्षेत्रों की समस्त औद्योगिक इकाईयों का नाश कर दिया है। केवल मात्र बौद्धिक पहलुओं पर बल देकर कृषि प्रधान देश के लिये निरर्थक व्यक्ति उत्पन्न करती है। इस प्रकार से शिक्षा का रूप अव्यवहारिक है।

(२) जीवन से दूर (Far from Life)

यह शिक्षा बहुत ही कृत्रिम एवं औपचारिक (Formal) है और इस प्रकार वास्तविकता और जीवन से सर्वथा पृथक है। यह वस्तुओं की उपेक्षा कर उसके प्रतीकों को महत्व प्रदान करती हैं। यह शिक्षा निष्क्रिय, वर्णनात्मक एवं अमूर्त व जीवन शून्य है।

(३) स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास नहीं (No Development of Natural Instincts)

यह शिक्षा शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से निर्जीव हैं। इसमें किसी भी सृजनात्मक क्रियाओं को स्थान नहीं दिया जाता है। यह पूर्णरूप से अमनोवैज्ञानिक हैं। ग्रामीण जीवन की क्रियाओं से बहुत दूर है। ग्रामीण बालकों की प्रवृत्तियों के अनुकूल कोई तथ्य नहीं है।

(४) असामाजिक संगठन (Unsocial organisation)

ग्रामीण क्षेत्रों की परम्परागत एवं विघटित शिक्षा ने जमींदार व पूंजीपति को ही अवसर प्रदान कर वर्ग-भेद का जहरीला बीज भारत में प्रस्फुटित कर दिया। सामाजिक वर्गों में पारस्परिक वैमनस्यता इस शिक्षा की विशेषता रही है। श्री रामचन्द्रान, अध्यक्ष, तालीमी संघ, के विचारानुसार, "यह कोई विशेष नवीन विचार नहीं कि पाठशाला व समुदाय का इतना घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिये जितना अधिक से अधिक सम्भव हो सके। परन्तु यह बात हमारे देश में घटित नहीं हुई। यहां तो पाठशाला एक अलग कार्यालय के समान संचालित होती है जिसमें समाज का कोई सम्बन्ध नहीं रहता।"[11]

---

[10] देखिये : आर्यनायकम् : 'वर्तमान शिक्षा की गम्भीर स्थिति, सेवाग्राम वर्धा'

[11] "It is by no means a new idea that the school and community should remain as close to each other as possible, but this has not happened in our counntry and that has very often remained as some kind of an office and apart from the community." C. Ramchandran. 'Toward the Basic pattern' p. 13.

(५) बेकारों की संख्या में वृद्धि (Increase in unemployment)

ग्रामीण भारत में अधिकांशतः जनसंख्या आत्मनिर्भर इकाईयों में संगठित थी। वर्तमान शिक्षा ने उनमें नागरीकरण के कारकों को उत्पन्न कर तथा नौकरी का लालच पैदाकर क्रियात्मक भाव हटा दिया। कुटीर उद्योगों आदि का नाश होने से ग्रामीण क्षेत्रों में वृद्धि हो गई है।

(६) आचार विचार की कमी (Lack of Morality)

प्रत्येक संस्कृति में सदा से आचार विचार का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय ग्रामों में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों ने सदाचार व नैतिक जीवन की जड़ों को हिला दिया है। नैतिक आचार विचार का परम्परागत शिक्षा में कोई स्थान नहीं रह गया था।

(७) आत्मिक विकास की अनुपस्थिति
(Absence of spritual development)

भारत के ग्रामीण जीवन में सदा से आत्मिक विकास पर भी बल दिया जाता रहा है। शिक्षा संस्थाओं तथा धार्मिक संस्थाओं से इस प्रकार की आशायें पूर्ण की जाती थीं। लेकिन वर्तमान शिक्षा के ढांचे में परिवर्तन होने के फलस्वरूप इस प्रकार सम्भावनाओं की आशा टूट गई। शिक्षा का आधार केवल अक्षर-ज्ञान तक सीमित हो गया। परिणामस्वरूप ग्रामीण जन कर्म व धर्म हीन हो गये।

(८) विकेन्द्रित आत्मनिर्भरता की कमी
(Lack of Decentralised self sufficiency)

शिक्षा में ग्रामीण उद्योगों व व्यवसायों का लेशमात्र भी स्थान न होने से ग्रामीण इकाईयों की पूर्ण आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई। इस प्रकार से ग्रामीण जीवन में विभिन्न समस्यायें खड़ी हैं। लोग गरीबी व बेकारी की ओर केन्द्रित हो गये।

(९) राष्ट्रीय भावनाओं से दूर (Far from National feelings)

शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन कर देने से राष्ट्रीय भावनाओं का नाश हो गया। विदेशी आदर्शों व उद्देश्यों को पूर्ण करने वाली शिक्षा देश के लिये उपयुक्त नहीं रही। इस कारण से राष्ट्रीय एकता की भी अत्यधिक कमी हो गई। समाज धर्म व जाति के विवादों में पड़कर असंगठित हो गया। शिक्षा मन्त्रालय के प्रकाशन में ठीक लिखा है, "कार्य करने व सीखने में स्वतन्त्रता का अर्थ यह है कि

बालक स्वतन्त्र होकर आत्म-प्रदर्शन तथा राष्ट्रीय भावनाओं का विकास निर्भयता तथा बिना रुकावट के कर सकें।" [2]

(१०) खर्चीली शिक्षा (Expensive Education)

वर्तमान शिक्षा परम्परागत व रूढ़िवादी है जिसके केवल धनिक व विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों को ही प्रोत्साहन मिलता है। ग्रामीण जन व जन साधारण आज इसी कारण से अशिक्षित दिखाई देते हैं।

(११) मनोविनोद एवं सांस्कृतिक आधारों पर रहित (Lack of cultural and Entertainmental basis)

रूढ़िवादी शिक्षा में इन आधारों पर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता है। इसमें आनन्द की मात्रा का स्थान नहीं हैं। श्री रामचन्द्रान ने ठीक कहा है, "मनोविनोद एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा आनन्द प्राप्ति का तत्व हमारी साधारण शिक्षा संस्थाओं में उपेक्षित है।"[13]

इस प्रकार उपरोक्त कथन से पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में यह परम्परागत शिक्षा प्रणाली व पाश्चात्य परिवर्तन उपयुक्त नहीं हैं। यह शिक्षा देश में सन्तुलित व्यक्तित्व, उदार दृष्टि और युक्तियुक्त विशाल दृष्टिकोण के निर्माण में असफल ही नहीं बल्कि निरर्थक सिद्ध हुई हैं, विशेषरूप से जब कि भारत स्वतन्त्र हो गया है। अब इनके नवनिर्माण के लिये नवीन शिक्षा की आवश्यकता है। श्री रामचन्द्रान ने लिखा है, "कई ऐसी धारणायें जो वर्तमान साधारण पाठशालाओं में नहीं थी वे अब क्रियात्मक रूप से अपनाई जा रही हैं, तथा उन्हें व्यवस्थित कर बुनियादी शिक्षा में जोड़ा जा रहा हैं।"[14]

---

12 "Freedom in doing and learning will certainly mean freedom for children for self expression and national feeling without fear and inhabitation." K. G. Saihidain: Ministry of Education Publication, No. 270.

13 "Happiness through recreational and cultural programme is much neglected subject in ordinary schools." G. Ramchandran: 'Towards New Patterns of Education', p: 15.

14 "Several of the good trends which have remained as an under current in elementary education are now sought to be brought up and made systematic precise and added to the basic Education." G. Ramchandran : 'Towards New Patterns of Education' p. 3.

नवीन ग्रामीण शिक्षा
(New Rural Education)

भारत पर थोपी गई प्रचलित शिक्षा प्रणाली के विरोध में अनेक विचारवान व्यक्तियों ने इसके प्रारम्भ से ही आवाज उठाई थी और नवीन सुधारों की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया था। ग्रामीण शिक्षा को नवीन रूप देने की दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी तथा प्रगतिशील योजना वर्धा योजना के नाम से सन् १९३८ ई० में प्रचारित की गई थी। निसन्देह इस कार्य में उन्हें देश के अनेक गणमान्य शिक्षाविदों का योग प्राप्त था। फलस्वरूप डा० ज़ाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण हुआ जिसके सदस्य प्रो० सैयादीन, काका कालेलकर, जे० सी० कुमारप्पा, आर्यनायकम् आदि थे। स्वतन्त्रता के उपरान्त ४ नवम्बर, सन् १९४८ ई० को एक शिक्षा आयोग का संगठन किया गया।

इस आयोग में डा० राधाकृष्णन अध्यक्ष, डा० जाकिर हुसेन, डा० लक्ष्मण स्वामी मुदालिया, डा० जेन्स आदि थे। इन्होंने ७४७ पृष्ठों की एक रूपरेखा प्रस्तुत की। इसमें लिखा है, "राष्ट्रीय विद्यालय हिन्दुओं, मुसलमामों तथा अन्य व्यक्तियों को परस्पर समीप लाने, अस्पृश्यों को शिक्षित करने तथा शिक्षण संस्थाओं से अस्पृश्यता के कारणों को बहिष्कृत करने वाला अत्यन्त प्रभावशाली साधन होना चाहिये।"[15] इस प्रकार से बुनियादी शिक्षा के नाम से नवीन शिक्षा योजना बनाई गई है जो विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यान्वित हुई। हम इस योजना की विस्तृत विवेचना करेंगे।

बुनियादी शिक्षा
(Basic Education)

भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता की जो लड़ाई लडी उसका उद्देश्य था कि वह अपनी संस्कृति का पुनरूत्थान करे और देश की प्रतिभा के अनुकूल यहां की व्याप्त कलुषितता को दूर करने के लिए एक ऐसे वातावरण का निर्माण करे जिससे देश का सम्पूर्ण पुनर्निर्माण सम्भव हो सके। इसी एक मात्र उज्जवल लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए सांस्कृतिक प्रक्रिया अर्थात् शिक्षा प्रणाली की योजना बनाई गई। सर्वप्रथम स्वतन्त्रता प्राप्ति के १० वर्ष पूर्व राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यकर्ताओं और जनसेवकों के सामने एक चुनौती के रूप में नई तालीम अर्थात् बुनियादी शिक्षा रखी

15 "The national school must be the most patent means of bringing Hindus, Muslims and others closer together and of educating the untouchables and enclosing the cause of untouchability from the school." R. Krishnan's Report of New Education.

गई। वर्तमान युग के महान् दार्शनिक सन्त विनोबा कहते हैं कि जिस प्रकार स्वतन्त्रता मिलते ही अंग्रेजी झंडे के स्थान पर भारतीय राष्ट्रीय झंडा लहराया गया ठीक उसी प्रकार संस्कृति की महान् द्योतक राष्ट्रीय शिक्षा की योजना भी देश के सम्मुख प्रस्तुत की गई।

समाज की जैसी आर्थिक और सामाजिक स्थिति होती है उसी के आधार पर शिक्षा का भी ढाँचा होता है। हमने जो आर्थिक व सामाजिक ढाँचा पाया है वह वर्ग प्रणाली पर आधारित है। अतः देश के प्रायः सभी शिक्षाशास्त्रियों ने इसमें परिवर्तन की मांग की। दिसम्बर सन्, १९५३ ई. में कल्याणी में जो अधिवेशन हुआ उसमें एक जोरदार प्रस्ताव द्वारा मांग की गई कि बुनियादी ढंग पर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा का पुनर्गठन किया जाय। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा को ही देश की सभी समस्याओं के निवारण करने का एक मात्र उपाय मान कर अपनाया है। इस नवीन शिक्षा योजना की प्रमुख गतिविधियों को अध्ययन करने के लिए हम सबसे पहले यह समझ ले कि वास्तव में बुनियादी शिक्षा क्या है ?

बुनियादी शिक्षा क्या है? (दार्शनिक पृष्टभूमि)
(What is Basic Education-Philosophical Background)

बुनियादी शिक्षा शोषणविहीन एवं वर्ग विहीन रचना का शक्तिशाली साधन है। बुनियादी पाठशाला लघु रूप में एक आदर्श समाज होगा, जहां से सम्पूर्ण समाज को नई दिशा तथा नवीन प्रेरणा प्राप्त होगी। वांछनीय समाज के लिए सुयोग्य नागरिक तैयार करने में पाठशाला महत्वपूर्ण भाग लेगी। पंडित नेहरू के शब्दों में दुनियादी शिक्षा देश के नवयुवकों में सामाजिक दृष्टिकोण पैदा करके ऐसा समाज तैयार करेगी जिसकी कल्पना समाजवादी समाज रचना में अन्तर्निहित है। उनके विचारानुसार "बालक भविष्य की आशा है उन्हें अपनी मानसिक एवं शारीरिक शक्ति का विकास करना है जिससे भविष्य में वे उत्तरदायी हो सके। यह केवल पाठशाला में जाने मात्र से ही सम्भव नहीं बल्कि स्वस्थ मनोरंजन व स्वस्थ पूर्ण खेल भी अनिवार्य है। उन्हें अपनी मातृभूमि की सेवा करनी है और महान् बनाना है। यह तभी सम्भव होगा जब कि वे स्वयं महान् बने और अपने देश के स्तर को ऊंचा उठावें।"[16] गांधीजी बुनियादी शिक्षा को क्रान्ति व परिवर्तन

---

16 "Children are the future of India and they should make themselves fit physically and mentally for the responsibility of future. They can achieve this not only by going to school, but through sports and healthy recreation. It is their duty to serve the motherland and strive for making India great. They can make themselves great if they raise the status of country of which they are." Pt. Jawahar Lal Nehru: 'Modern Education' p. 28.

का प्रभावशाली शस्त्र बनाना चाहते थे। उनके विचारानुसार शिक्षा का अर्थ व्यक्तित्व का निर्माण करना है। व्यक्तित्व विकास सामाजिक दायरे में ही सम्भव है। गांधीजी ने नई तालीम का दर्शन इस प्रकार प्रकट किया है, "यह जीवन की शिक्षा है जो जन्म से मृत्यु तक की प्रक्रिया में चलती है।"[17] बुनियादी शिक्षा के द्वारा आध्यात्मक समाज की पूर्णता सम्भव है। प्रेम, अहिंसा, सत्य तथा न्याय पर आधारित समाज ही गांधीजी के विचार से आध्यात्मक समाज है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में किसी प्रकार का आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक अथवा सामाजिक शोषण नहीं हो सकता। गांधीजी बालक के मन और मस्तिष्क को समाज की व्यवस्था के अनुकूल ढालने के लिए बुनियादी शिक्षा को आवश्यक मानते थे।

शिक्षा जीवन के गुणों से सीधा सम्बन्ध रखती है। भारत में मानवीय तत्वों के अपव्यय तथा शहरों और ग्रामों का ह्रास देखकर ही गांधीजी ने अपने जीवन के अनुभवों द्वारा सामाजिक जीवन के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा का प्रस्ताव किया, "एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में जिसमें गरीब और अमीर का भेद न हो और हर एक को जीवन, वेतन और स्वतन्त्र जीवन के अधिकार का पूर्ण विश्वास हो।"[18] (आर्यनायकम् : 'हिन्दुस्तान तालीमी संघ' १९५४) भारत की आर्थिक दशा तथा ग्रामों के स्तर को उन्नत बनाने के लिए शिक्षा निःशुल्क हो जो सभी विषमताओं को उखाड़ कर एक सुव्यवस्थित समाज की रचना करे।

इस प्रकार बुनियादी शिक्षा का ढांचा और दर्शन इतना व्यापक तथा महत्वपूर्ण है कि इस आधार पर हम एक नये भारत का निर्माण कर सकते हैं जैसा कि हम चाहते हैं। इस कल्पना का सपूर्ण रूप ध्यान में आने पर यह स्पष्ट समझ में आता है कि इसमें एक ऐसी पद्धति के बीज हैं जिसमें मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होगा और समाज परिशुद्ध होगा जिसमें वैशिष्ठ्य और बुद्धिमानी का सबूत आगामी वर्षों में हमें मिलेगा और जो समय की गति और टीकाओं के बावजूद भी बनी रहेगी। इस शिक्षा की पृष्टभूमि में जीवन में क्रम और श्रम का महत्व बढ़ाया जायेगा ताकि समाज की निष्क्रियता का उन्मूलन हो सके। यंग इंडिया में महात्मा गांधी ने कहा था कि "मैं चरखे का चक्र समाज की एकता के रूप में भारत के प्रत्येक घर में स्वास्थ्य के समान देखना चाहता हूँ।"[19]

---

17 "This Education is for life and begins from the process birth to death." M. K. Gandhi; 'Basic Education.'

18 "हिन्दुस्तान तालीमी संघ, सेवाग्राम प्रकाशन" वर्तमान शिक्षा की गंभीर स्थिति।

19 "I hold the spinning wheel to be as much as necessity in every house hold as the health," M.K Gandhi, Young India, 19.1.21.

संक्षेप में, बुनियादी शिक्षा की कल्पना हिन्दुस्तान में अधिकांश व्यक्ति साक्षात् रूप में देखना चाहते हैं जिससे यहां उन्नतिशील और सुखी ग्रामीण समाज बन सके और वे बुद्धिमान तथा संस्कृति के प्रेमी हों। नागरिकता का लोगों में भाव हो और जनसंख्या बिखरी हुई हो जिसे केन्द्र द्वारा संचालित नागरिकता का आर्थिक ढांचा कहते हैं। इस दर्शन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस नई शिक्षा में जीवन दर्शन के सभी मूल तथ्य विद्यमान हैं। इस योजना को और भी अधिक स्पष्ट समझने के लिए हम अपना ध्यान इसके उद्देश्य एवं प्रमुख सिद्धान्तों की ओर आकर्षित करते हैं।

बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य एवं सिद्धान्त

(The Aims and Principles of Basic Education)

सभ्यता मानवीय क्रियाशीलता का परिणाम है। सभ्यता के उत्तरोतर विकास के लिए यह आवश्यक है कि बालक की क्रियात्मक प्रवृत्ति के विकास के हेतु रचनात्मक कार्यक्रमों से परिपूर्ण शिक्षा दी जाय। निष्क्रिय बैठना बालक के लिए प्रतिकूल है। अतः क्रियाशीलता को भी उद्देश्यपूर्ण बनाने की कल्पना पर ही आधारित शिक्षा की पृष्टभूमि होनी चाहिये। इसी एक मात्र नवनिर्माण की आकांक्षा पर बुनियादी शिक्षा का मौलिक रूप खड़ा है। बुनियादी अथवा बेसिक शिक्षा के[20] आधारभूत तत्व हमारी बुनियादी आवश्यकताएं हैं। यह वह शिक्षा है जो हमारी बुनियाद से आरम्भ होकर अथवा प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर विश्वविद्यालय तक समान रहती है। यह वह शिक्षा है जो हमारी बुनियाद से प्रारम्भ होकर पूर्ण जीवन की ओर केन्द्रित होती है। डा० जाकिर हुसैन के शब्दों में, "बुनियादी शिक्षा वर्धा योजना का एक अंग है जिसमें जीवन की सभी अच्छाइयों का दिग्दर्शन कराया जाता है। यह वर्धा योजना पूज्य बापू द्वारा प्रारम्भ की गई थी। सर्व प्रथम सन् १९३७ ई० में बापूजी ने नई तालीम कल्पना 'हरिजन' में प्रकाशित की थी।"[21] इस प्रकार हम देखते हैं कि बुनियादी शिक्षा के पीछे जीवन की पूर्णता का लक्ष्य है जो भारत के नवनिर्माण का भी आवश्यक तत्व है। गांधीजी ने स्वयं एक बार शिक्षा पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है, 'आज की विचित्र शिक्षण पद्धति के कारण जीवन के दो दो टुकड़े हो गये हैं। आयु के पहले पन्द्रह बीस वर्षो में व्यक्ति जीने के झंझट में न पड़कर केवल शिक्षण प्राप्त करे एवं बाद को शिक्षण को बस्ते में लपेट कर मरने तक सफलता से जीये।" आगे उन्होंने यह भी कहा है, "वह शिक्षा नहीं है जो जीवन

20 डा० जाकिर हुसैन कमेटी रिपोर्ट, १९५२, पृष्ट १६-१७

21 डा० जाकिर हुसेन कमेटी रिपोर्ट, १९५२, पृष्ट १६-१७

को अधूरा रखे। बुनियादी शिक्षा का महत्व, जीवन की शिक्षा के रूप में आंकने से ही, पूर्ण रूपेण प्रकट होगा।"[22]

डा० जाकिर हुसैन ने बुनियादी शिक्षा की कान्फ्रेंस में जो ११ अप्रेल सन् १९४० ई० में जामिया मिलिया, देहली में हुई, सभापतित्व भाषण में कहा है, "अगर हमारा देश अच्छा समाज बन गया तो वह बुनियादी मदरसों के बिना एक पद भी चैन नहीं लेगा। लेकिन जब तक बुनियादी मदरसे न होंगे यह समाज आसानी से बन कैसे जायेगा।"[21] विनोबा जी ने भी बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार करते हुए कहा है, "बेसिक शिक्षा इस बात की नींव डालती है कि समाज में हर व्यक्ति कोई न कोई काम करे, उस कार्य को अपना सामाजिक और नैतिक कर्तव्य समझे। अपने काम और जीवन से समाज को एक आदर्श समाज बनाने में पूरा योग दे तो यह शिक्षा उत्तम होगी।"[23] आचार्य कृपलानी के अनुसार, "शिक्षा का गांवों में आत्मनिर्भरता की योजनाओं का प्रगतिशील विकास भी करना है।"[24]

इस प्रकार उक्त कथनों से स्पष्ट है कि बुनियादी तालीम व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विचारों का विकास ही नहीं करती बल्कि मन, हृदय और मस्तिष्क में समन्वय स्थापित करने के प्रमुख कारकों का भी निर्माण करती है। अतः इसके सिद्धान्तों की स्पष्ट व्याख्या के लिए "हमें यह विचार अपने मस्तिष्क में रखने चाहिए कि बालक के पूर्ण विकास के लिये उसे विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियों को कार्य रूप में परिणत करने का अवसर देना चाहिए ताकि उसे अन्वेषण की प्रसन्नता एवं ज्ञान को सीखने की खुशी प्राप्त हो सके।"[25] तात्पर्य यह है कि बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य केवल मात्र सर्वांगीण विकास करना ही नहीं बल्कि आत्म विकास के लिए स्वतन्त्रता देना तथा यह भी प्रयत्न करना है कि सामुदायिक और राष्ट्रीय जीवन से व्यक्ति का अधिक से अधिक सम्पर्क स्थापित होने की सम्भावना हो सके। साथ ही साथ मनोरंजन व सांस्कृतिक कार्य-क्रम के द्वारा प्रसन्नता के भाव भी उत्पन्न हों।[26] "यह शिक्षा इस प्रकार जीवन की पूर्णता के लिए वास्तविक जीवन की व्यवस्था ही

---

22 देखिये : वर्धा योजना नई तालीमी संघ वर्धा प्रकाशन पृष्ट २८-२९

23 विनोबा "शिक्षण विचार" बुनियादी शिक्षा।

24 आचार्य कृपलानी 'गांधी आश्रम का निर्णय', पृष्ट २६-२७

25 "The point to bear in mind is that the children should be encouraged to take up a variety of useful activities, which will give them the joy of discovery and the joy of learning." Ramchandran : 'Towards the Basic Pattern' 1957.

26 बुनियादी शिक्षा की ओर पृष्ठ ६. ७.

नहीं करती अपितु शिक्षा की प्रक्रिया को रचनात्मक कार्य-क्रमों से सुसज्जित कर आनन्दमय भी बनाती है।"[27]

भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय के सचिव श्री हुमायु कबीर के विचार के अनुसार, "बेसिक उद्देश्य बालक के मानसिक और आत्मिक विकास की सम्भावनाएं प्रस्तुत करना है। इस शिक्षा के अन्तर्गत जो उद्योग पर बल दिया जाता है उसका लक्ष्य मात्र यान्त्रिकता का ज्ञान कराना ही नहीं बल्कि प्रत्येक प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन कराना है।"[28]

स्वतन्त्र भारत की शिक्षा केवल उक्त कथन के अनुसार मानसिक व आत्मिक विकास की ही कल्पना नहीं अपितु समाज की नव रचना का उद्देश्य भी अपने में निहित रखती है। इस शिक्षा के सिद्धान्त ऐसे समाजवादी समाज का निर्माण करना है जिसमें गरीबी, असमानता, अस्पृश्यता एवं अशिक्षा का नाश हो सके। पंडित नेहरू के शब्दों में, "एक विशिष्ट वर्ग की उन्नति की सीमित विचारधारा इसमें नहीं है। भारत की ३६ करोड़ जनता का उदय करना बुनियादी शिक्षा अपना कर्तव्य समझती है।"[29] आगे और नेहरू जी ने कहा है, "हमारा देश कृषि प्रधान व गांवों का देश होने के कारण गांव में संतुलित नेतृत्व के व्यक्तियों का निर्माण करने की आवश्यकता की भी इसी शिक्षा के द्वारा पूर्ति होने की सम्भावना है। इस प्रकार हृदय परिवर्तन का कार्य इस शिक्षा संस्था द्वारा ही पूर्ण होगा ऐसा निश्चय इसके निर्माताओं का था।[30] पं० नेहरू के शब्दों में "बुनियादी शिक्षा सामाजिक क्रान्ति है जो जीवन में

27 "The field of Nai Talim", he said, "Entended from the moment a child is concieved in the month's mob to the moment of death." Nai Talim and new education for life.

28 "I hold that the child's development of the mind and the soul is possible in such a system of education only every handy craft has to be taught not merely mechanically as is designed today, but scientifically. The child should develop to know 'why and when' from the every procees." Himayun Kabir : Publication No. 58. Ministry of Education, Government of India.

29 "We have to remove poverty and ameliorate the lot of the country. Our objective is not the prosperity of only a section of the people. We have to see how 36 crores of people can progress." Pt. Nehru : 'The seed that is sprouting into a plant publication." Aug. 1952.

30 "We want good at the top to guide this great country to train up scores of thousands of Village leaders who have measures of intention and pride on their work." Pt. Nehru: on the occassion addressing development commissioners : Ap. 18. 1958.

परिवर्तन लायेगी। यह अपने आप ही शान्ति से विकसित होती जा रही है और शीघ्र ही भारत भूमि में फैल जायेगी।"[31] इस शिक्षा का यही मान्य सिद्धान्त है कि पाठशाला में बालकों की शिक्षा उसके सामाजिक जीवन से भली प्रकार सम्बन्धित होनी चाहिए जिससे उनका चतुर्मुखी विकास हो सके, साथ ही साथ शिक्षा सोद्देश्य यथार्थवादी तथा प्रभावशाली हो सके।

विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों द्वारा बुनियादी शिक्षा के आदर्शों और सिद्धान्तों के प्रतिवेदन के उपरान्त हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का मानसिक, शारीरिक व आत्मिक विकास करना ही नहीं है बल्कि उसे समाजोपयोगी प्राणी और राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण आदर्श नागरिक भी बनना है। यहां हम बुनियादी शिक्षा में राष्ट्रीय अनुसंधान संस्था के विचार प्रस्तुत करते हैं।

बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को समाजोपयोगी तथा समाज द्वारा वांछित रीतियों से परिपूर्ण बनाना है। इसके द्वारा प्रत्येक बालक की रचनात्मक प्रवृत्तियों तथा आत्माभिव्यक्तियों के लिये यथेष्ट अवसर प्राप्त होता है। यह स्वतंत्र विचार, कार्य, प्रेरणा, सहकारिता एवं सामुदायिक जीवन को प्रोत्सहित भी करती है। नागरिक एवं स्वशासन का प्रशिक्षण इस शिक्षा का अभिन्न अंग है। स्पष्ट शब्दों में बुनियादी शिक्षा का लक्ष्य राज्य तथा समाज के प्रति कर्तव्य और उत्तरदायित्व की भावना की वृद्धि करना है। यह घर, पाठशाला और समाज में सहयोग एवं भाई चारे के दृष्टिकोण को भी बढाती है।[32] प्रो. जैना ने लिखा है, "विशेष रूप से शिक्षा का ध्यान गांवों की ओर है। इसके द्वारा गांवों में आत्मनिर्भरता व्याप्त करना है जिससे सम्पूर्ण समाज आत्मनिर्भर बन सके।"[33]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यों में कितनी व्यापकता है जो केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं अपित संपूर्ण समाज की रचना की कल्पना

---

31 "Means a social revolution is our ways of life which is creeping gradually but surely over the vast bord of India." Pt. Nehru: 'Why scientific pattern in Edu.' At Simla Conference, 1955.

32 देखिये: 'बुनियादी कार्यकलाप' बुनियादी शिक्षा राष्ट्रीय अनुसंधान संस्था ५५, फ्रेन्घड़ कालानी, नई दिल्ली,-१४; पृष्ट १०-११

33 "Basic education has to move the greatest possible stride. It has made the rural population and of their responsibility for themselves as well as for society." Prof. K.C. Jena: 'Changing Pattern of Rural Life'; pp.299.300.

अपने सम्मुख रखते हैं। वास्तव में इस योजना को हमें अन्य पद्धितियों व विधियो की भांति नहीं मानना है। यह शिक्षा क्रांति का उज्जवल उदाहरण हैं। आने वाले भारत के भविष्य में इस शिक्षा क्रान्ति का रूप अधिक से अधिक विकसित होने वाला है। बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा मान लिया गया है। यह शीघ्र ही संपूर्ण भारत में व्याप्त होगी। इस शिक्षाआन्दोलन की वैज्ञानिकता का गहराई से अध्ययन करने के लिये हमें इसकी विशेषताएं और पद्धितियों पर भी विचार करना होगा।

बुनियादी शिक्षा की प्रमुख विशेषतायें

(Chief characteristics of Basic Education)

यह सर्वविदित सत्य है कि गांधीजी बुनियादी शिक्षा के द्वारा अपनी कल्पनाओं के आधार पर समाज की व्यवस्था करना चाहते थे। वे एक शिक्षाशास्त्री भी थे, उन्होंने नई तालीम को केवल शिक्षा के रूप में ही प्रस्तुत नहीं किया वरन् सामाजिक जीवन के विभिन्न तथ्य भी उसमें सम्मिलित करके सामाजिक क्रान्ति का रूप दे दिया हैं। अब हम अपना ध्यान इसकी प्रमुख विशेषताओं की ओर भी आकर्षित करेंगे। इसकी प्रमुख विशेषतायें निम्न है :-

(१) सार्वभौमिक अनिवार्य बुनियादी शिक्षा

(Deliberate Compulsory Basic Education)

भारतीय ग्रामों में नवीन शिक्षा योजना के अन्तर्गत बुनियादी शिक्षा पारित की गई हैं। यह भारत की सार्वभौम शिक्षा होगी। इस शिक्षा योजना को अनिवार्य रूप से लागू करने का उद्देश्य वर्तमान सरकार के सम्मुख है।

(२) सात वर्ष का पाठ्यक्रम (Seven years Syllabus)

इस नवीन योजना में ६ से ११ वर्ष तथा ११ से १३ की आयु तक के बालकों हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है। यह पाठ्यक्रम बुनियादी (Basic) तथा वरिष्ठ बुनियादी (Senior Basic) कक्षाओं की व्यवस्था है। इस सप्तवर्षीय पाठ्यक्रम में उद्योगशिक्षा द्वारा बालकों को आत्मनिर्भर बनाने का उद्देश्य है।

(३) मातृभाषा का माध्यम (Medium in Mother Tongue)

ग्रामीण शिक्षा योजना की यह भी प्रमुख विशेषता हैं कि यह शिक्षा बालक की मातृभाषा के माध्यम द्वारा प्रदान की जायें। शिक्षा में माध्यम का प्रश्न अद्वितीय है। बालक की मातृभाषा में जो शिक्षा प्रदान की जाती है वह अधिक सुगम तथा मनोवैज्ञानिक होती है।

(४) दस्तकारी पर केन्द्रित (Centralised on Craft)

कताई, बुनाई, कृषि तथा बढ़ई आदि उद्योग एवं दस्तकारियां इस शिक्षा का प्रमुख माध्यम माना गया हैं इससे बालक की सृजनात्मक प्रवृति का सुन्दर समन्वय सम्भव है। इस सम्बन्ध में श्री रामचन्द्रायन ने भी लिखा है, "रचनात्मक कार्य कोई विशेष बात नहीं जो कि बालक की विभिन्न अवस्थाओं की क्षमता से सम्बन्ध रखती है जो बुनियादी शिक्षा में केवल सीखने का एक साधन मात्र है।"[34]

(५) समवाय प्रणाली पर आधारित (Based on Correlation Method)

भारतीय नवीन शिक्षा प्रणाली की यह भी एक विशेषता है कि इसमें विभिन्न विषयों का अध्ययन केवल रचनात्मक क्रियाओं एवं उत्पादक कार्यों द्वारा ही नहीं कराया जाता, बल्कि विषयों में पारस्परिक सहसम्बन्ध (Correlation) भी स्थापित किया जाता है।

(६) सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण से ओतप्रोत (Full of Social and Natural Environment)

बुनियादी शिक्षा जिस प्रकार उद्योग से प्रस्तावित, ज्ञान से सम्बन्ध रखती है उसी प्रकार इसमें बालक के सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण का भी प्रयोग किया जाता है। सामाजिक वातावरण बालक के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

(७) आत्मनिभरता (Self Supporting)

इस शिक्षा योजना के अन्तर्गत आत्मनिर्भरता का पहलू भी अद्वितीय स्थान रखता हैं। शिक्षा के द्वारा देश में निष्क्रिय व्यक्तियों की वृद्धि न हो और बेकारी न बढ़े इस दृष्टि से इस योजना में शालायें उद्योग-शालाओं (Work Shops) के रूप में कार्य करेंगी। बुनियादी शिक्षा में इसलिये जीवन की प्रमुख आवश्यकताओं (Basic Needs) के उद्योग सिखाये जाते हैं।

(८) सामुदायिक जीवन (Community life)

बुनियादी शिक्षा सामुदायिक भावना (Community feelings) को विकसित करने में भी अति उत्तम मानी जाती है। बुनियादी शिक्षा में अस्पृश्यता

---

34 "Productive work is not something that is related to the capacity of children at different age levels in basic education it is only means to learning" – G. Ramchandran: 'Towards Basic Pattern' (1957). P. 1.

आदि को लेशमात्र भी स्थान नहीं दिया जाता। बुनियादी शाला का पाठ्यक्रम ही ऐसा निर्मित किया गया है जहां सुगमता से सामुदायिक भावना का विकास सम्भव हैं। श्री मजूमदार ने लिखा है, "प्रारम्भिक विचारों में हम लघु बालकों की परिस्थिति पर विचार कर सकते हैं। शाला उसका लघु विश्व है और वह सामुदायिक जीवन के शस्त्र से उस पर राज्य करता है।" [35]

(६) परीक्षा पद्धति की अनुपस्थिति
(Absence of Examination method)

बुनियादी शिक्षा की यह भी प्रमुख विशेषता है कि वर्तमान शिक्षा के अनुसार इसमें परीक्षा का अमनोवैज्ञानिक भार नहीं है। इस प्रणाली में वर्ष भर के कार्यों के अनुसार बालक की उन्नति कर दी जाती है।

(१०) पाठ्य विषयान्तर क्रियाओं का प्रमुख स्थान
(Important place of Extra-Curricular Activities)

बुनियादी शिक्षा में बौद्धिक ज्ञान को ही सर्वोपरि स्थान नहीं दिया जाता। इस शिक्षा योजना में पर्यावरण विशेष के अनुसार अनेक प्रवृतियां पारित की जाती है। इन प्रवृत्तियों का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना हैं।

(११) निःशुल्क शिक्षा (Free Education)

भारत की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं जो वर्तमान शिक्षा के व्यय का वहन कर सके। विशेष रूप से ग्रामीण शिक्षा पर बिल्कुल व्यय नहीं किया जा सकता। इसी उद्देश्य से बुनियादी शिक्षा को ग्रामीण समाज के उपयुक्त बनाने हेतु इस पक्ष पर भी विशेष ध्यान दिया है। गांवों में बुनियादी शालाओं में पाठ्य सामग्री व पाठ्य-पुस्तकें भी निःशुल्क ही दी जाती है। इसके अतिरिक्त इस शिक्षा के द्वारा अध्यापक एवं शाला का व्यय भी छात्रों द्वारा निर्मित वस्तुओं से निकल जाता है।

(१२) बुनियादी शिक्षक (Basic Teacher)

बुनियादी शिक्षा एवं ग्रामीण पर्यावरण से परिचित एवं प्रशिक्षित अध्यापक बुनियादी शिक्षक कहलाता है। बुनियादी शिक्षकों में विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित अध्यापक का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यह अधिक परिश्रमी, समाजसेवी व ग्राम सुधारक होना चाहिये।

---

35 "As a starting point we might consider the situation of a very young infant. School is life small world, and he rules it with the weapon of community life" S.K. Majumdar; 'The child and his problem; P. 9,

बुनियादी शिक्षा की प्रणाली
(The Method of Basic Education)

इस प्रकार बुनियादी शिक्षा जीवन के गुणों से सीधा सम्बन्ध रखती है। मानवीय तत्वों के अपव्यय, और गांवों और शहरों के गुणों का ह्रास होते देखकर गाँधीजी ने जीवन के अनुभवों द्वारा, जीवन के लिये, एक राष्ट्रीय शिक्षा का प्रस्ताव किया। इसका प्रत्यक्ष अर्थ है कि काम के द्वारा शिक्षा, क्योंकि उत्पादन श्रम का वह केन्द्र है जिसके चारों ओर मानव जीवन घूमता है। इसीलिये शिक्षा का माध्यम उपयोगी हस्त उद्योग होना चाहिये। बालक स्वयं अपने जीवन निर्वाह के लिए काम करते समय जिन समस्यायों का सामना करेगा वे ही समाज की वास्तविक समस्यायें होंगी। बुनियादी शिक्षा का यह काम है कि बालक इन समस्याओं को समझे और अपने आन्तरिक गुणों और आध्यात्मिक शक्तियों के द्वारा उन्हें हल करने में सहायता दें। इस कथन की पुष्टि हेतु हम इसकी प्रमुख पद्धतियों का निम्न प्रकार से अवलोकन करेंगे :—

(१) बुनियादी शिक्षा का आरम्भ गांवों में :—
(Beginning of Basic Education from villages)

भारत गांवों का देश है। यहां की अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है। अतः आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विकास के लिए गांवों में शिक्षा का होना अनिवार्य है। अतः यह शिक्षा पद्धति गांवों से प्रारम्भ की गई है।

(२) पूर्व-बुनियादी, बुनियादी, उत्तर बुनियादी, बहुउद्देश्यीय तथा ग्राम विश्वविद्यालय (Pre-Basic, Basic, Senior-Basic, Multipurpose Basic and Rural Universities)

यद्यपि इस प्रश्न पर यह विवाद हैं कि प्राथमिक स्तर से विश्विद्यालय के स्तर तक समान शिक्षा रखी जाय अथवा नहीं। बुनियादी शिक्षा प्रारम्भ से अन्त तक की व्यवस्था अपने में निहित रखती है।

(३) उद्योग द्वारा शिक्षा (Education through craft)

कताई, बुनाई, कृषि, बढ़ई आदि उद्योग इस शिक्षा के प्रमुख माध्यम है इनसे बालक की सृजनात्मक प्रकृति का सुन्दर समन्वय स्थापित किया जाता है। "रचनात्मक कार्य कोई विशेष बात नहीं जो कि बालक की विभिन्न अवस्थाओं की समता से सम्बन्ध रखती हो बल्कि इस शिक्षा में यह केवल सीखने का साधन है।"[36]

---

36 "Productive work is not something that is related to the capacity of children at different age levels in basic education it is only means to learning." G. Ramchandran: 'Towards Basic Patterns' year 1957 p. 1.

(४) बौद्धिक ज्ञान समवाय प्रणाली पर

(Theory in correlation Method)

"इस शिक्षा में यह स्पष्ट है कि ज्ञान के विभिन्न विषयों का अध्ययन केवल रचनात्मक क्रियाओं एवं उत्पादक कार्यों के द्वारा ही नहीं दिया जाता है बल्कि आपसी समानता से घनिष्ट सम्बन्ध रखते हुए प्राकृतिक व सामाजिक वातावरण को भी, बालक के जीवन में, प्रयोग में लाया जाता हैं।"[37]

(५) विद्यालय स्वावलम्बी कारखानों के रूप में

(Schools in the form of self sufficient workshops)

गांधीजी ने कहा था कि "नई तालीम को पैसों पर निर्भर नहीं रहना चाहिये। मेरे इस कथन की भले ही लोग मजाक उड़ाये परन्तु मैं इस तथ्य को दोहराता हूँ कि जब तक शिक्षा स्वावलम्बी नहीं होती है वह वास्तविक शिक्षा नहीं हैं। यह उसकी सच्ची कसौटी है।"

(६) बेसिक पाठशाला में सामुदायिक जीवन

(Community life in Basic schools)

पाठशाला सामाजिक वातावरण से परिपूर्ण बालक के लिये एक छोटी दुनियां है। अतः मजूमदार ने लिखा है, "प्रारम्भ में ही जो बात हमें सोचनी है वह है छोटे बालक की स्थिति। पाठशाला उसकी एक छोटी दुनियां है और वे सामुदायिक जीवन के द्वारा उस पर राज्य करता है।"[38]

(७) पाठ्य विषयान्तर क्रियाओं से ओत प्रोत

(Full of extra-curricular activities)

उस व्यवस्था में सांस्कृतिक, सामाजिक पर्वों को अधिक महत्व दिया जाता है जिनसे शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है। जो कि व्यवहारिक जीवन के लिये परमावश्यक है।

---

37 "Basic education clearly lay down that learning of various subjects take place not only through constructive and productive work but equality through the close study of an association with the natural and social environment of the growing child." Aryanayakam: 'Serious position of Modern Education' 1954, p. 5.

38 "As a starting point we might consider the situation of a very young infant. School in his small world and he rules it with the weapon of community life." S. K. Majumdar ; 'The Child and his Problem' p. 9.

बुनियादी शिक्षा की आलोचना
(Criticism of Basic Education)

गांधीजी द्वारा प्रस्तुत बुनियादी शिक्षा वर्तमान भारत की एक क्रांति पूर्ण शिक्षा प्रणाली है जिसके सम्बन्ध में विस्तार से विवेचना हम ऊपर कर आये हैं। बुनियादी शिक्षा की विशेषताओं को देखते हुए हमें यह नहीं समझ बैठना चाहिये कि बुनियादी शिक्षा में किसी प्रकार के दोष नहीं हैं। बुनियादी शिक्षाओं में अनेक विद्वानों ने अनेक दोषों का वर्णन किया है। नीचे हम इन दोषों की विवेचना करेंगे कि ये दोष किस सीमा तक सही हैं।

(१) दस्तकारी की शिक्षा पर विशेष बल
(More emphasis on Handicrafts)

बुनियादी शिक्षा पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि यह शिक्षा प्रमुख रूप से दस्तकारी पर ही आधारित है और इस शिक्षा के द्वारा व्यवसाय का प्रत्येक पहलू सिखाना सम्भव नहीं है। वास्तविकता के आधार पर देखें तो यह कथन काफी अंशो तक सही है किन्तु गांधीजी का कथन है कि दस्तकारियों की शिक्षा जिस सीमा तक बुनियादी शिक्षा से सम्भव होगी उस सीमा तक ही हम बुनियादी शिक्षा के द्वारा यह ज्ञान सिखलायेंगे और बाकी अंश के लिए पाठ्यक्रम में अतिरिक्त व्यवस्था करनी होगी। साथ ही साथ बुनियादी शिक्षा पर यह भी आपत्ति है कि यह केवल दस्तकारी की शिक्षा पर ही बल देती है। चूंकि यह शिक्षा दस्तकारी पर केन्द्रित हो जाती है अतः बालकों को अन्य विषयों का ज्ञान जो मिलना आवश्यक है नहीं मिल पाता है।

(२) कताई बुनाई पर विशेष बल
(More emphasis on spinning and weaving)

बुनियादी शिक्षा में कताई बुनाई पर अनुचित बल दिया गया है ऐसी धारणा कुछ विद्वानों की है। इस आपत्ति का निराकरण गांधीजी ने निम्न युक्ति द्वारा किया है, "तकली एक ऐसी यन्त्र है और कताई एक ऐसी चीज है जिसे भारत के प्रायः समस्त भागों में सरलता से सिखाया जा सकता है और कपड़ा बनाने की कला प्रायः समस्त देश में प्रचलित हैं और यह ऐसा उद्योग है जिसमें अनगिनत आदमियों को लगाया जा सकता हैं पर यदि किसी स्थान में अन्य उपयोगी दस्तकारी विद्यमान हो तो उन्हें उसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी।" वास्तव में गांधीजी का यह कहना कि वस्त्र उद्योग में अनेक व्यक्तियों को लगाया जा सकता है, सही हैं, किन्तु मिल के बने हुए अच्छे और सस्ते वस्त्र के सामने हाथ के बने हुए वस्त्र किस सीमा तक टिक सकेंगे। साथ ही भारत में आज भी अनेकों मिलें चल रही हैं और

बेकारों की संख्या भी कम नहीं फिर इन बेकारों का इस व्यवसाय में उपयोग क्यों नहीं किया जाता । अतः बुनियादी शिक्षा से कताई बुनाई की शिक्षा देने के पश्चात् भी आज के औद्योगिक भारत की बेकारी की समस्या का हल नहीं किया जा सकता हैं। अतः कताई बुनाई पर विशेष बल देना और यह आशा करना कि वस्त्र उद्योग में अनेकों व्यक्तियों का योग लिया जा सकता है, व्यर्थ होगा ।

(३) सात वर्ष की अरूचिपूर्ण शिक्षा

(Lack of interest in Seven year's Education)

गांधीजी ने किसी दस्तकारी में पूर्ण दक्षता प्राप्त करने के लिये सात वर्ष का प्रशिक्षण अनिवार्य बताया है । उनका कहना है कि अन्य विषयों के ज्ञान के साथ दस्तकारी की शिक्षा दी जाती है इसलिये इतना समय आवश्यक है । इस पाठ्यक्रम में स्कूल का निर्धारित समय ५ घंटे ३० मिनट है और इसमें से ३ घंटे २० मिनट दस्तकारी शिक्षा के लिये निर्धारित किया गया हैं। दैनिक रूप से यह समय बहुत अधिक है । छात्र के लिये इस भांति सात वर्ष का पाठ्यक्रम अरूचिपूर्ण हो जाता है । साथ ही छात्र की ५ से १२ वर्ष की आयु होने के कारण वह सात वर्ष के प्रशिक्षण के पश्चात् भी कुशल कारीगर नहीं बन पाता है और इस भांति अर्जित की हुई शिक्षा उसके लिये अलाभप्रद होती है क्योंकि वह इससे जीवकोपार्जन नहीं कर सकता ।

(४) नगरों में बुनियादी शिक्षा की असफलता

(Failure of Basic Education in cities)

गांधीजी ने यह योचना विस्तृत रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के लिये बनाई जहां कि उद्योग विशेष के कुशल.विशेषज्ञ उपलब्ध नहीं होते हैं । किन्तु नगरों में जहां कुशल विशेषज्ञों की उपलब्धि आवश्यकता से अधिक है वहां यह योजना असफल ही होगी । बालक - कारीगर इन विशेषज्ञों की प्रतियोगिता में ठहर नहीं सकता । इसके लिये गांधी जी ने यह उपाय बतलाया है कि बालक उच्च प्रशिक्षण केन्द्रों में जाकर विशेषज्ञ बन सकता है । यह सही है कि इस भांति से यह योजना नगरों में सफल हो सकती किन्तु वर्तमान भारत में इन उच्च प्रशिक्षण केन्द्रों का भी अभाव हैं । अतः केवल यह कहने मात्र से कि वह उच्च प्रशिक्षणकेन्द्रों में प्रशिक्षण ले सकता है योजना सफल नहीं हो जाती और समस्या बनी रहती है ।

(५) कच्चे माल का दुरुपयोग (Misuse of Raw Material)

बुनियादी शिक्षा में दस्तकारी की प्रमुखता होने के नाते कच्चे माल का अत्यधिक दुरुपयोग होता है । यद्यपि इस सम्बन्ध में यह बताया गया है कि यह दुरुपयोग प्रथम वर्ष ही अधिक होगा और फिर बुद्धिमान शिक्षक अधिक सतर्क

रहेगा तथापि जब हर वर्ष नवीन विद्यार्थी आयेंगे तो कच्चे माल का दुरुपयोग प्रथम वर्ष में ही अधिक होना कैसे सम्भव है? दूसरी बात कि शिक्षक चाहे कितना ही सतर्क होवे और इस दुरुपयोग को कम से कम करने का प्रयास करें किन्तु फिर भी जो दुरुपयोग हर वर्ष होगा उससे जो अच्छी चीजें बन सकती हैं वे अब किसी भी दशा में नहीं बनाई जा सकती। उदाहरण के लिये १ सेर रूई बच्चों से बर्बाद होती है जबकि इसी एक सेर रूई को कुशल कारीगर अच्छे, उपयोगी वस्त्र निर्माण करने में प्रयोग करता है। साथ ही हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना है कि वर्तमान समय में हमें कच्चा माल बहुत कम उपलब्ध होता है और जितना उपलब्ध होता है उससे ही जन साधारण की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में बालकों के हाथ में कच्चे माल को दुरुपयोग के लिये छोड़ देना किस सीमा तक बुद्धिमानी होगी ?

(६) निर्मित वस्तुओं के उपयोग की समस्या
(Problem of Utility of Prepared Material)

बेसिक शिक्षा पर एक प्रमुख आपत्ति यह है कि इस शिक्षा योजना में सात वर्षों में अनेक वस्तुओं का प्रत्येक वर्ष निर्माण होगा। इन निर्मित वस्तुओं का उपयोग कैसे किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गांधी जी ने यह बतलाया कि इन वस्तुओं को बेचकर शिक्षक व शाला के व्यय की पूर्ति की जायेगी। देखने में गांधी जी का यह उत्तर समस्या का समाधान कर देता है किन्तु वास्तविकता यह है कि ये वस्तुएं मशीन से बनी हुई वस्तुओं के समकक्ष अत्यधिक हीन, अनघढ़ व अकुशल होंगी और साथ ही कीमती भी। ऐसी स्थिति में कौन इन वस्तुओं का क्रय करके उपयोग करना चाहेंगे।

(७) शिक्षा में आत्मनिर्भरता अथवा स्वावलम्बन के सिद्धान्त का अनुचित प्रयोग (The Misuse of the Prinicple of Self-Supporting in this Education)

बुनियादी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालकों को आत्मनिर्भर बनाना है। प्रो० के०टी शाह ने कहा है, "शिक्षा की स्वावलम्बी बनाकर आप बच्चों में शुरू से ही क्रय विक्रय की भावना भर देंगे जो कि किसी भी तरह श्रेयस्कर नहीं है।.... सात वर्ष की आयु में छात्रों को यदि आप इस प्रकार आर्थिक मामले में डालेंगे तो अवश्य ही उनमें एक प्रकार की दासता आ घुसेगी। "डा० सरयूप्रसाद चौबे के शब्दों में भी, स्कूल को स्वावलम्बी बनाने का तात्पर्य शिक्षालय को उद्योग धन्धों का केन्द्र बना देना होगा और किसी स्कूल की सफलता शिक्षा से नहीं, वरन् बेचने योग्य वस्तुओं के उत्पन्न करने से आंकी जायगी।" [३९] इस भांति बुनियादी शिक्षा का आत्मनिर्भरता का सिद्धान्त उचित नहीं है।

(८) वैज्ञानिकों, कुशल कारीगरों की पूर्ति सम्भव नहीं
(Unable to fulfil the need of Scientist and skilled Labours)

बुनियादी शिक्षा में हस्तकला को केन्द्र मानकर शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया है। इन हस्तकलाओं से बालक अधिक से अधिक बढ़ई, जुलाहा ही बनेगा। आज भारत को केवल बढ़ई और जुलाहे की ही आवश्यकता नहीं है वरन् अच्छे इन्जीनियर, वैज्ञानिक और कुशल कारीगरों की अधिक आवश्यकता है इस आवश्यकता की पूर्ति बुनियादी शिक्षा से सम्भव नहीं है।

(९) शिक्षक वर्ग की समस्या (Problem of teachers)

इस शिक्षा योजना में एक बहुत बड़ी कमी यह रही है कि इसमें शिक्षक वग के हित का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा गया है। इसके प्रवर्तक यह भूल गये है हैं कि शिक्षक ही शिक्षा का केन्द्र बिन्दु है और उन्हें कम से कम वेतन देकर उनकी कुशलता या योग्यता का सपना देखना दरअसल अव्यवहारिकता है इसका परिणाम यह होगा कि शिक्षा व्यवसाय की ओर केवल वही लोग बढ़ेगें जिनका कहीं और ठिकाना न हो और दूसरी बात यह कि ऐसे शिक्षक अन्य उपयुक्त पद प्राप्त करते ही शिक्षक का कार्य छोड़ देंगे। सर पी० सी० रामस्वामी अय्यर (Sir P. C. Ramaswamy Aiyyar) के शब्दों में "गांधी जी की शिक्षा में सबसे बड़ा दोष यह है कि वह यह मान लेते हैं कि सब लोग उन्हीं की भांति त्यागी और संयमी बन सकते हैं। मेरी राय में उनकी यह कल्पना अव्यवहारिक है।"

उपरोक्त आलोचनाओं से यह भलीभांति स्पष्ट हो गया होगा कि बुनियादी शिक्षा का प्रमुख आधार आर्थिक उत्थान है। बालक को हस्तकला के द्वारा वस्तुओं का निर्माण विक्रय के लिये सिखाया जाता है और इस भांति प्रारम्भ से ही उसका का आर्थिक क्रियाओं में संलग्न हो जाना किसी भी भांति स्वस्थ नागरिकता की वृति का परिचायक नहीं है। बुनियादी शिक्षा की आलोचनाओं के पश्चात् इसके भविष्य की ओर भी कुछ इंगित करना अनुपयुक्त नहीं होगा।

बुनियादी शिक्षा का भविष्य
(Future of Basic Education)

केवल आर्थिक उत्पादन पर आधारित यह शिक्षा योजना भारत के लिए किसी भी रूप में हितकर नहीं है। बालक प्रारम्भ से आर्थिक मनुष्य बन जाता है जो शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों की दृष्टि से अनुचित है। गांधी जी ने हस्तकला पर

अत्यधिक बल दिया है वर्तमान समय में जबकि अधिकाधिक औद्योगीकरण की प्रवृति चल रही है केवल हस्तकला पर शिक्षा को आधारित कर देना उचित नहीं प्रतीत होता । एक तरफ भारतीय संविधान समाजवादी समाज (Socialistic Pattern of Society) के निर्माण के पक्ष पर बल देता है और औद्योगीकरण की प्रक्रिया के द्वारा वस्तुओं को सर्वसाधारण के लिए उपलब्ध करने में प्रयत्नशील है तो दूसरी ओर गांधीजी हस्तकला पर बल देकर औद्योगीकरण को जड़ मूल से नष्ट कर देना चाहते हैं । ऐसी स्थिति में बुनियादी शिक्षा की सफलता सन्देहजनक है । बुनियादी शिक्षा में अत्यधिक कमियां है । यह शिक्षा सुधार के क्षेत्र में एक प्रयोग है जो अभी तक असफल ही सिद्ध हुआ हैं । यह प्रयोग तभी सफल हो सकता है जब कि इसकी वर्तमान कमियों को दूर कर दिया जाय । हमें बुनियादी शिक्षा की कमियों को दूर कर इसे वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार बनाना होगा तभी इसकी सफलता सम्भव हो सकती है ।

समाज एवं प्रौढ़ शिक्षा
(Social and Adult Education)

भारत जैसे देश में जहां कि लगभग ८० प्रतिशत जनता निरक्षर है, सामाजिक कल्याण और पुनर्निर्माण की प्रत्येक योजना में प्रौढ़ व समाज शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिये । वैसे तो २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही देश में राजनैतिक जागृति के चिन्हों के साथ ही जन समूह की शिक्षा का ध्यान आना प्रारम्भ हुआ था । सन् १९२१–२२ ई० में प्रथम बार पंजाब ने प्रयत्न किया । बम्बई, संयुक्त प्रान्त तथा जनप्रिय मन्त्रीमन्डल के निर्माण से भी इसमें एक विशेष क्रान्ति का आर्विभाव हुआ । बिहार, आसाम, बंगाल आदि में सन् १९४२ ई० तक काफी कार्य हो चुका था । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात तो प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय नीति अपनाकर राष्ट्रीय परामर्शदाता मंडल ने एक समिति का संगठन कर इसे मूर्त्त रूप दिया था । फलतः सन् १९४७ ई० के अन्त तक देश में ५० लाखों लोगों ने समाज शिक्षा प्राप्त की थी ।

समाज शिक्षा का अर्थ एवं प्रकृति
(Meaning and Nature of Social Education)

समाज शिक्षा वह नियन्त्रित अनुभव है जो व्यक्ति की सामुदायिक कार्य में भाग लेने की योग्यता को बढ़ाता है । स्पष्ट शब्दों में यह शिक्षा नागरिकता को समझने की चेतना और भावनाओं को उत्पन्न करती हैं । सन् १९४८ में मैसूर में यूनेस्को सम्मेलन में ग्राम प्रौढ़–शिक्षा सेमिनार का उद्घाटन करते हुए मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने कहा कि "समाज शिक्षा से हमारा तात्पर्य पूर्ण मनुष्य के लिए शिक्षा है ।

पढ़ना लिखना, और गणित (Reading, Writing and Arithmetic) का ज्ञान एवं विश्व की घटनाओं का बोध कराना है।"[43]

इसी प्रकार श्री के० एन० काटजू (भू. पू. मुख्य मन्त्री, मध्यप्रदेश) ने समाज शिक्षा के उद्देश्यों पर अपने विचार प्रकट करते हुए बताया कि "समाज शिक्षा निरक्षरता के विरुद्ध एक आन्दोलन है। यह विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति उत्सुकता पैदा करते हुए प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का उद्देश्य लिये है।"[44]इसी तरह भारत सरकार के शिक्षा सचिवालय के उपसचिव श्री के० जी० सईदन ने बताया कि "समाज शिक्षा आन्दोलन का उद्देश्य विभिन्न जन समुदाय में मैत्री की भावना की वृद्धि हेतु पुरुष व स्त्रियों को विभिन्न देशीय मंच पर मिलाना है।"[45]

प्रजातन्त्रीय युग में यह महत्वपूर्ण बात है कि प्रत्येक नागरिक के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार और हर सम्भव प्रयत्न के द्वारा उसके व्यक्तिव के विकास हेतु प्रयत्न किये जायें। साथ ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्वतन्त्रता के विचारों को विकसित करने हेतु भी समाज शिक्षा एक अनिवार्य प्रेरणा है। जिसका उद्देश्य व्यक्ति की महत्ता को बढ़ाते हुए राष्ट्रीय एकता एवं समाजवादी समाज की रचना का निर्माण करना है। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत समाजसेवी संस्थाओं के द्वारा इस कार्यक्रम को संचालित किया गया है। इसके अतिरिक्त इस आन्दोलन का लक्ष्य यह भी रहा है कि प्रत्येक नागरिक में तार्किक विचारधारा को विकसित कर एक सही एवं स्थाई ज्ञान का निर्माण हो।

समाज शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए हम आयोजन आयोग (Planning Commission) के विचार भी देख लें, "हमारे यहां आबादी का केवल १/६ भाग साक्षर है। यह स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा पद्धति आवश्यकता को देखते हुए यथेष्ट नहीं है। हमें शिक्षा की अधिक सुविधाओं को प्रसारित करते हुए इस भाग के रूप को मौलिक परिवर्तन के साथ बदलना होगा।"[46]

---

43 "To educate the adult in the three R'S and the affairs of the world a net work of social education organisation has been set up." Pt. Nehru. 'Our Planning'; 1954, p. 51.

44 "Social Education is a most ultimate campaign against illitracy. It is a gratify to see on all sides the keen anxiety on the part of grown up man to become literate." K. N. Katju : 'Rural development.' p. 809.

45 "The aim of the movement is to create a spirit of friendship between peoples by bringing to get her men and women of different nationalities" Saiyideen : 'his speech in Hindustan Times.' 17 10.57.

46 देखिये "हमारी योजना" १९५४ पृष्ट ५१।

इस प्रकार हमने समाज शिक्षा का विस्तृत रूप देखने के साथ ही साथ इसके महत्व का भी दर्शन किया। वर्तमान समाज की एक महत्वपूर्ण मांग होने के कारण ही इस पर विशेष बल दिया जा रहा है। पं० नेहरू के शब्दों में, "वही शिक्षा तत्वपूर्ण है जिसका उद्देश्य अशिक्षित व निरक्षर व्यक्तियों की मदद करना है, जो भीषण गरीबी, कम भोजन, स्वास्थ्य, मकान आदि कुछ समस्याओं का निवारण करती है व उनको सुन्दर स्थिति में रखती है।"[47]

सारांश यह है कि समाज शिक्षा का उद्देश्य केवल मात्र अक्षर ज्ञान ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य, मनोरंजन, नागरिकता, शासन, सामुदायिक जीवन तथा साधारण ज्ञान वृद्धि भी है। इसके अतिरिक्त हम समाज शिक्षा केवल प्रौढ़ों के लिए ही उपयुक्त नहीं पाते हैं बल्कि समाज शिक्षा के उद्देश्यों में अन्य वर्ग के लोगों का भी उत्थान होता है। बुनियादी शिक्षा ६ से ११ वर्ष तक के बालकों को दी जाती है। इससे ऊपर की उम्र के लोगों को खेती कार्य में संलग्न रहने के कारण समाज शिक्षा ही उनके विकास की एकमात्र शिक्षा प्रणाली रह जाती है। "समाज शिक्षा का उद्देश्य शरीर व मस्तिष्क का निर्माण करना है। विशेष रूप से इसका उद्देश्य उनमें स्वयंसेवा प्रेरित करना है।"[48]

सैद्धान्तिक दृष्टि से हम देखें तो हमें मालूम होगा कि समाज शिक्षा और भारत का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना "कार्य और कारण" का, क्योंकि भारत ग्रामों का देश हैं। ग्रामों का पुनःनिर्माण समाज शिक्षा के ही अन्तर्गत आता है। यदि हम ग्रामोत्थान की प्रथम सीढ़ी समाज-शिक्षा को ही मान लें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस दिशा की पुष्टि हेतु यदि हम बिहारी के इस कथन को देखें तो हमें मालूम होगा, "समाज शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों में से मुख्य ग्राम पंचायतों का संगठन इस भांति करना है कि कार्य एवं स्वयं सेवा का अधिकार अपना समझें।"[49]

---

47 "One is fundamental education which is aimed at arising uneducated and illiterate people, who are in dire poverty, in a sub-standard of food, health and housing to solve some of the problems which continue to keep them in good condition." Pt. Nehru : 'Work Corner in Community Projects'; 1956.

48 "To build up the body and mind of the youth to inculcate in them a sence of discipline. In particular it aimed to inspire rural youth into taking up." The Community welfare activities : 'Kurukshtra'; 1956.

49 "The chief aim among them are organisation of the panchayat. The right to work and self help" Biharee: 'Social Education in Community Development.' p. 59.

इस प्रकार हमने देखा कि समाज शिक्षा के अन्तर्गत न केवल अक्षर ज्ञान ही कराया जाता है बल्कि समाज शिक्षा का ध्येय ग्रामीण जनता में पूर्ण कार्य करने की प्रेरणा देना है। हमारे ग्रामीण इतने पिछड़े हुए हैं कि वे अपनी दशा के बारे में स्वतन्त्रता से नहीं सोच सकते हैं। इसी एक मात्र विचार परिवर्तन के आन्दोलन को समाजशिक्षा का आन्दोलन कहा जाता है। इसीलिए सत्य कहा है कि "समाज शिक्षा का कार्य शिक्षा प्राप्त कराने के साथ साथ यह देखना है कि अधिकारों व कर्तव्यों का आपस में तथा देश में पूर्ण रूप से सामंजस्य है या नहीं।

समाज-शिक्षा की विशेषतायें
(Characteristics of Social Education)

(१) साक्षरता आन्दोलन (Literacy Movement)

समाज शिक्षा की प्रमुख विशेषता ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता का प्रचार करना है। समाज शिक्षा का प्रारंभिक रूप प्रौढ़-शिक्षा ही है। प्रौढ़-शिक्षा के अन्तर्गत ग्रामीण स्त्री-पुरुष प्रौढ़ों को हस्ताक्षर कराना तथा प्रारम्भिक साक्षरता का ज्ञान कराना है।

(२) नागरिकता का प्रशिक्षण (Training of citizenship)

समाज-शिक्षा साहित्य का अवलोकन करने से ज्ञात होगा कि उसमें नागरिक भावना की वृद्धि हेतु वैधानिक बातों का ज्ञान कराया जाता है। ग्रामीण जनता को अपने मत का मूल्य बताना भी सामाजिक शिक्षा का ध्येय है।

(३) व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा ग्राम स्वच्छता
(Personal Hygiene and Village Sanitation)

प्रौढ़ शिक्षा में इस ओर भी ध्यान दिया जाता है। इस शिक्षा की व्यवस्था केन्द्रों के रूप में संगठित होने के कारण समाजशिक्षा केन्द्रों में स्वास्थ्य सप्ताह, तथा श्रमदान द्वारा ग्राम सफाई का कार्यक्रम रक्खा जाता है।

(४) सामुदायिक भावना (Community Sentiments)

विकास विभाग व अन्य विभागों द्वारा संचालित सामुदायिक केन्द्र (Community Centres) सामुदायिक संगठन आदि इस क्षेत्र में काफी सफलता प्राप्त कर रहे हैं। इन केन्द्रों में विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है जिससे लोगों में वैमनस्य की भावना का नाश हो जाता है।

(५) प्रजातन्त्र का ज्ञान (Knowledge of Democracy)

समाज-शिक्षा की यह भी विशेषता है कि आत्मसंगठन की भावना जागृत करने के लिए ऐसे कार्य कराये जायें जिनमें स्वशासन का पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त हो सके।

इस लिए केन्द्रों की व्यवस्था, पुस्तकालय, डाक प्रबन्ध, जनसफाई, जनस्वास्थ्य आदि क्षेत्रों से भी प्रौढ़ों को नेतृत्व प्रदान कर जनतान्त्रिक भावना जागृत की जाती है।

(६) आत्मनिर्भरता की शिक्षा (Teaching of self sufficiency)

प्रौढ़ शिक्षा की यह भी विशेषता है कि ग्रामीण किसान तथा अन्य पिछड़ी व परिगणित जातियों के लोग अपने समय का सदुपयोग करना सीख जावें। उन्हें शिल्प आदि उद्योग सिखाकर देश की बढ़ती हुई बेकारी को दूर करने का यह एक परोक्ष प्रयास हैं। स्वयं-निर्माण आदि योजनाओं द्वारा आत्मनिर्भरता की शिक्षा दी जाती है।

(७) मनोरंजन की व्यवस्था (Arrangement for Recreation)

भजन, कीर्तन व सांस्कृतिक कार्यक्रम भी रात्रि केन्द्र में विधिवत् चलाया जाता है, जिसके अन्तंगत ग्रामीण जनता सामूहिक रूप से भाग लेती है। वातावरण की नीरसता को दूर करने के लिए ऐसे कार्यक्रम रखे जाते हैं।

(८) हस्त-उद्योग की व्यवस्था (Provision for Handy-crafts)

महिला समाज शिक्षा संगठक (The Lady Social Education Organisor) प्रत्येक क्षेत्रीय केन्द्रों में महिला उद्योग-केन्द्र का संगठन करती है जिस में सिलाई से लेकर अन्य गृह-उद्योगों का ज्ञान कराया जाता है। इसी प्रकार पुरुषों के केन्द्र में चिक बनाना, मूढ़ा बनाना, कालीन-गलीचे, बेंत-उद्योग आदि हस्त उद्योगों की शिक्षा दी जाती है।

समाज शिक्षा की प्रणाली
(The Method of Social Education)

समाज शिक्षा के आन्दोलन को किस प्रकार प्रभावशाली बनाया जाये, यह समस्या बड़े बड़े शिक्षाशास्त्रियों और शिक्षा प्रेमियों के सम्मुख रही है। सन् १६४४ में केन्द्रीय समाज शिक्षा परामर्शदाता मंडल ने इस समस्या पर एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया-जिसका सार निम्न प्रकार हैं :—

(१) ग्रामीण चौपालें रात्रि पाठशाला होंगी

(The Chopals will be Night Schools)

"दिन-भर के कार्यों से निवृत्त होकर ग्रामीण चौपालों पर एकत्रित हो जाते हैं। यहीं पर उनकी पाठशाला उनकी समस्याओं से आरम्भ कर दी जाती है।

(२) प्रौढ़, तरुण और किशोर (Adults, Adolescents Boys)

प्रौढ़शिक्षा केन्द्रों के अन्तर्गत इन तीनों श्रेणियों में शिक्षा की व्यवस्था की

जाती है। प्रत्येक के मनोविज्ञान के आधार पर इनके पाठ्यक्रम को निर्धारित किया जाता है।

(३) बालकों व महिलाओं के लिये कार्यक्रम
(Programme for Women and Children)

सप्ताह में एक बार सामूहिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत शिशु प्रदर्शन, महिला उद्योग प्रदर्शन आदि कार्यक्रम रखा जाता है। इस प्रकार से पारस्परिक भावनायें दृढ़ की जाती हैं।

(४) चलचित्र, प्रदर्शनी वाहन, भीत पत्र व चित्र
(Cinema, Exhibition-Van, Posters and Charts)

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, इसकी रोचकता व महत्व को बढ़ाने के लिए समय समय पर उक्त साधनों का प्रयोग किया जाता है।

(५) आकाशवाणी कार्यक्रम (Radio Programme)

वस्तुगत सूचनाओं से अवगत कराने हेतु समाज शिक्षा केन्द्रों में नियमित रूप से इसकी व्यवस्था की जाती है। रेडियो से न केवल सूचनायें ही प्राप्त होती हैं बल्कि केन्द्रों में मनोरंजन प्रदान करने का उद्देश्य भी पूर्ण हो जाता है।

(६) सामाजिक अभिनय, लोक नृत्य व गीत
(Social-Drama, Folk-Dances and Folk-Songs)

सांस्कृतिक चेतना की वृद्धि करने हेतु इस प्रकार के आयोजन किये जाते हैं जिनमें प्रौढ़ अपने भावों को स्वतन्त्रता से प्रकट कर सकते है। भारतीय संस्कृति की पुनीतता का भी उन्हें भास हो जाता है, साथ साथ प्रजातंत्रीय भाव भी शुद्ध होते हैं।

(७) नेतृत्व का प्रशिक्षण (Training of Leadership)

समाज शिक्षा आन्दोलन स्वशासन की भावना उत्पन्न करने का प्रयास तो करता ही है साथ ही यह सुयोग्य नेतृत्व की शिक्षा भी देता है। ग्राम-नेता-शिविर आदि का आयोजन इसके अन्तर्गत किया जाता है।

(८) कृषि विकास की सम्भावनायें
(The Possibilities of Agricultural Development)

समाजशिक्षा के अन्तर्गत कृषि के वैज्ञानिक प्रसाधनों का भी ज्ञान कराया जाता है। उन्हें बीज, भूमि सुधार आदि की बातें बताई जाती हैं। कृषि-रक्षा-समिति आदि का संगठन इसी के अन्तर्गत किया जाता है।

(६) क्रीड़ा प्रतियोगिता तथा विकास मेले

(Sports Competition and Development Fairs)

प्रौढ़ शिक्षा संचालक समय समय पर क्रीड़ा प्रतियोगिताओं व विकास मेलों का आयोजन कर सगठन व सामुदायिक भावना का विकास करता है।

(१०) शिक्षा विहार (Educational Excursons)

समाज शिक्षा में इस प्रकार के भ्रमणों का बड़ा महत्व है। अभी हाल में समस्त सिंचाई योजनाओं के दर्शनार्थ ग्रामीण नेताओं का एक शिष्टमंडल देश में भ्रमण करने गया था। सरकार की ओर से इस प्रकार के भ्रमणों की व्यवस्था की जाती है।

(११) प्रौढ़ साहित्य का निर्माण तथा पुस्तकालय

(Adult Education Literature and Library)

प्रौढ़ों के मनोविज्ञान के आधार पर प्रौढ़ साहित्य का निर्माण किया जा रहा है। इस साहित्य में इस बात का प्रयास किया जा रहा है कि प्रौढ़ों को वही बात बताई जाये जिसमें उनकी रुचि हो। जो पुस्तकें बालकों को पढ़ाई जाती हैं वे प्रौढ़ों के लिए उपयुक्त नहीं होती हैं, इनके लिए अलग प्रकाशन व शिक्षा विभाग हैं। चल तथा स्थाई वाचनालयों की व्यवस्था भी इस विभाग द्वारा की जाती है।

समाज-शिक्षा-विभाग के अन्तर्गत व सचालक व उपसंचालक हैं जो प्रत्येक जिले में समाज शिक्षा की व्यवस्था करते हैं।

बुनियादो एवं समाज शिक्षा की समस्याएं

(Problems of the Basic and Social Education)

बुनियादी शिक्षा सन् १९३७ ई० से प्रारम्भ हुई और शीघ्र ही इसके पाठ्यक्रम तथा प्रणाली पर विचार कर इसमें काफी प्रगति की गई विशेष रूप से स्वतन्त्रता के उपरान्त इसको राष्ट्रीय शिक्षा का स्थान प्राप्त हो जाने से इस क्षेत्र में सर्वतोन्मुखी प्रगति दृष्टिगोचर होने लगी। भारत सरकार ने इस नव निर्मित शिक्षा क्रान्ति के प्रभावों का व्यवहारिक रूप देखने के लिए शिक्षा मन्त्रालय के तत्वावधान में एक समिति बनाई जिसमें सर्व श्री रामचन्द्रन, आर. एस. उपाध्याय, डा० सैयद अन्सारी थे। इन्होंने अपना विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा है :—

(१) बुनियादी शिक्षा पूर्ण रूप से समान प्रतीत नहीं होती। इसके संचालन में तथा उसके क्रियात्मक पहलू में काफी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। व्यवहार के क्षेत्र में हमें वही परम्परागत शिक्षा का ढंग चलता दिखाई देता है। इसीलिए

कमेटी ने कहा है कि "हम पूर्ण रूप से इस दृष्टिकोण के हैं कि बुनियादी शिक्षा सम्बन्धी नीति की स्पष्ट एवं परिशुद्ध घोषणा होनी चाहिये।" 50

(२) केन्द्रीय सरकार एवं शिक्षाविदों का इस दिशा में समान दृष्टिकोण का न होना भी पाया गया है। प्रत्येक अपने भिन्न विचारों को कार्यान्वित करने का प्रयास करते हैं।

(३) बेसिक शिक्षा का समन्वय, तथा उत्पादन एवं उद्योग के प्रति भी लोगों की मिथ्या धारणा पाई जाती है। इसका कारण यह हैं कि अधिकांशतः लोग उद्योग को शिक्षा का साधन मानने के स्थान पर साध्य मान लेते है।

(४) यदि यह कह दिया जाय कि वर्तमान व्यवस्था में उद्योग का अधिक प्रचार कर शिक्षा के महत्व को कम कर दिया है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्पष्ट शब्दों में उद्योग को अधिक बल देकर बालक को गौण कर देने की प्रवृत्ति का शीघ्र नाश होना चाहिए।

(५) जिस निष्ठा, आस्था एवं लगन की आवश्यकता बेसिक शिक्षा के अन्तर्गत विद्यमान है वह इसके वर्तमान कार्यकर्ताओं में लेशमात्र भी नहीं पाई जाती।

(६) बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों के अनुसार ज्ञान को सामाजिक, प्राकृतिक वातावरण और उद्योग द्वारा समन्वित किया जाता है परन्तु इस प्रकार के साहित्य का अत्यधिक अभाव होने के कारण सिद्धान्तों का पूर्णरूपेण पालन नहीं किया जाता।

(७) जहां तक सिद्धान्तों का प्रश्न है प्रत्येक वस्तु के सिद्धान्त उच्च होते हैं परन्तु जब उन्हें मूर्त रूप देने का प्रश्न आता है वहां हमारा देश बहुत पिछड़ा है। राज्य कर्मचारी एवं समाज भी इस क्षेत्र में आस्था नहीं रखते।

(८) सबसे बड़ी बाधा इस क्षेत्र में जो है वह प्रशिक्षित अध्यापकों की। विशेष रूप से इनके दृष्टिकोणों में बड़ा अन्तर दिखाई देता है।

इसी प्रकार यदि हम समाज शिक्षा का अवलोकन करें तो इसमें भी हमें विभिन्न अभाव व समस्यायें दृष्टिगोचर होंगी। सम्भव है विचारक इसे भूल एवं अविश्वास कहें, फिर भी हम उन पर निम्न विचार प्रस्तुत करेंगे :-

(१) ग्रामवासियों में समाज शिक्षा आन्दोलन के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण पाया जाता है और वे इसे एक प्रकार का प्रचार मात्र मानकर विशेष रूप से आकर्षित नहीं है।

---

50 "We are strongly of the view that there should be a clear and enchewbiguons declaration of the policy concerning basic education." Assessment Committee Report.1957.

(२) प्रायः हम यह भी देखते हैं कि व्यवहारिक क्षेत्र में जिन उद्देश्यों का पालन करना चाहिये, नहीं किया जाता इसलिये यह समाजवादी आन्दोलन जनता का नहीं बन सका।

(३) इस कार्यक्रम में स्थायित्व का विशेष अभाव होने के कारण जितनी सफलता मिलनी चाहिए वह नहीं मिल सकी क्योकि नीति परिवर्तन से कार्य शिथिल पड़ जाता है।

(४) समाज शिक्षा की कक्षाओं में अधिकांशतः किशोर व बालकों का प्रादुर्भाव हो जाने के कारण वास्तविक प्रौढ़ रुचि नहीं ले पाते। साथ ही साथ प्रौढ़ों की रुचि व मनोविज्ञान का भी ध्यान नहीं रक्खा जाता है।

(५) देश की गरीबी और किसानों के पास समय का अभाव होने से कृषि के समय पाठशालायें बन्द हो जाती हैं। इसलिए यह कार्यक्रम स्थाई प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाता।

(६) समाज शिक्षा के मार्ग में एक बड़ी कठिनाई यह भी है कि उपयुक्त साहित्य नहीं मिल पाता। अधिकांश प्रयुक्त पुस्तकों की भाषा और विषय वस्तु प्रौढ़ों के ज्ञान भंडार एवं अभिरुचि के अनुकूल नहीं है। इसलिये हमें गम्भीर प्रयास करना चाहिए ताकि व्यवस्थित स्तर का प्रकाशित साहित्य प्राप्त कर सकें।

(७) यह भी देखने में आया है कि इस आन्दोलन में जितने भी कार्यकर्ता संलग्न है, वे शहरी वातावरण के होते हैं। वे इस कार्य को बाध्य होकर करते है और प्रोत्साहिन का अभाव होने के कारण उन्हें सफलता नही मिल पाती।

(८) समाज शिक्षा केन्द्रो में अक्षर ज्ञान पर अधिक बल दिया है। सामाजिक शिक्षा को रोचक व अर्थपूर्ण बनाने के लिए पशु पालन, कृषि, स्वास्थय, सफाई, सहकारिता और मनोरंजन की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

(९) प्रौढ़ शिक्षा में सामुदायिक तत्व को जनता के मन पर अंकित करना हैं। इस आन्दोलन के कार्यकत्ताओ को निकट सम्पर्क तथा विश्वास उत्पन्न करना चाहिए तभी वे इस क्षेत्र में सफल हो सकते हैं।

(१०) इस कार्यक्रम में जातीय भावना का उद्वेग होने के कारण सर्वत्र निराशा प्रतीत होती है अतः हमें असाम्प्रदायिक और अधिकाधिक लोकप्रिय रूप देकर इस कार्यक्रम को सफल बनाना है।

(११) कार्यकर्ताओं के कर्तव्यों की समुचित एवं स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए। उनका व्यक्तित्व जब ग्रामीण वातावरण के अनुकूल होगा तभी वे सामाजशिक्षा के ध्येय की पूर्ति कर सकेमे।

(१२) समाजशिक्षा आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति की कुंजी है। इसलिए द्रव्य-श्रव्य (Audio - Visual) आदि की सहायता से हृदय परिवर्तन करने के हर सम्भव उपायों का प्रयोग करना चाहिए।

भारत की स्वतन्त्रता को अभी बहुत कम समय बीता है। शिक्षा क्षेत्र में जो आमूलचूल परिवर्तन हमें दिखाई दे रहे हैं उन्हें हमें व्यापक दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है। बुनियादी शिक्षा अभी परीक्षा और प्रयोगों की अवस्था से गुजर रही है। वैज्ञानिक परीक्षणों के परिणामस्वरुप निर्मित सिद्धान्त बड़े आकर्षक बन जाते हैं किन्तु दार्शनिक प्रयोगों का जहां तक प्रश्न है उनकी सफलता माननीय श्रद्धा और आस्था पर निर्भर रहती है। महात्माजी के शब्दों में बिना आशा और जीवित विश्वास के दुनियां का कोई भी महान् कार्य सफल नहीं हो सकता है।

देश आज नये मोड़ पर खड़ा हुआ है। एक ओर भारत का स्वर्ण अतीत, दूसरी ओर नवीन सभ्यता की चमक दमक। भारत के अतीत के गौरव का आधार देश में मानवीय सभ्यता का विकास और आध्यात्मिक आदर्श था। परन्तु इसके विपरीत आज हम भौतिकवादी वैज्ञानिक प्रगति की प्रतिद्वन्दता में मानवीय विकास के गुणों का बलिदान कर रहे हैं। हमें बुनियादी एवं समाज शिक्षा के दोषों को दूर कर इन्हें वर्तमान परिस्थितियों में और अधिक उपयुक्त बनाना होगा।

ग्रामीण शिक्षालय
(Rural Schools)

ग्रामीण शिक्षा क्षेत्र में जितना महत्व शिक्षा के उद्देश्यों एवं प्रणाली का है उससे कहीं अधिक शिक्षा संस्था का है। ग्रामीण जीवन में शिक्षा संस्था एक सांस्कृतिक जीवन-दीप का कार्य करती है। यही एक मात्र ऐसी संस्था होती है जो ग्रामीण व्यक्तियों को प्रगति की प्रेरणा तथा सुधार एवं उन्नति का उत्साह प्रदान करती है। इस दृष्टि से इस संस्था का संगठन अत्यन्त महत्व का विषय है।

प्राचीन काल में ग्रामीण क्षेत्रों में इस संस्था के भौतिक रूप एवं आन्तरिक संगठन के प्रति लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता था। यह संस्था शिक्षा वातावरण के निर्माण में अकथनीय योग प्रदान करती है। प्रायः साधारण चौपालों, धर्मशालाओं, एवं वृक्षों के नीचे शिक्षा का चतुर्मुखी उद्देश्य पूर्ण करने का प्रयास किया जाता था। कभी कभी व्यक्तिगत साहूकारों के मकान पर शिक्षा की योजना कार्यान्वित कीजाती थी। साधारण पढ़ा लिखा पंडित भोजन व वस्त्र के आधार पर शिक्षा प्रदान करता था। इस प्रकार इस दिशा में ग्रामीण लोगों में तनिक भी जागरूकता नहीं थी।

प्रगतिशील देश सदा से शिक्षा संस्थाओं पर बल देते रहे हैं। ग्रामीण शिक्षा संस्था में वे सभी साधन उपलब्ध होने चाहिये जिससे ग्रामीण बालकों का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके। ग्रामीण संस्था न केवल बालकों की संस्था होती है बल्कि वह ग्रामीण समुदाय का सांस्कृतिक केन्द्र होती है। इस दृष्टि से इसका संगठन अत्यन्त ही वैज्ञानिक ढंग से समुचित साधनों से परिपूर्ण होना चाहिये।

भारतीय ग्रामीण शिक्षा ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त नवीन एवं विकसित आवरण पहना है। शिक्षा पद्धति व उद्देश्यों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया गया है। ग्रामीण शिक्षा संस्था में निम्न व्यवस्था होने की कल्पना इस समय भारतीय सरकार के सम्मुख है।

(१) ग्राम कुटीर उद्योगों की पूर्ण व्यवस्था हो जिसमें कृषि, बुनाई, काष्ठ-कला, कागज व गत्ते का काम- चित्रकला आदि का पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त हो सके।

(२) यह संस्था शिक्षा व सामाजिक जीवन में सामन्जस्य उत्पन्न करने वाली हो।

(३) इनमें बालकों व ग्रामीण प्रौढ़ों की रचनात्मकता तथा आत्माभिव्यक्ति के लिये यथेष्ट अवसर प्राप्त हो।

(४) प्रत्येक संस्था एक सहकारी भंडार के रूप में संगठित हो। जहां बालक उत्पत्ति, विनिमय, उपभोग व वितरण के क्रम को क्रियात्मक रूप प्रदान कर सकें।

(५) शाला में ऐसे सभी वैज्ञानिक उपचार उपलब्ध हो जिससे नागरिकता तथा स्वशासन की शिक्षा प्राप्त हो।

(६) मनोविनोद तथा खाली समय के सदुपयोग हेतु यह संस्था संस्कृति व कला का केन्द्र हो।

संक्षेप में ग्रामीण शिक्षा संस्था में निम्न कार्य अवश्य ही कार्यान्वित होने चाहिये :—

(१) स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य क्लाप
(२) उद्योग सम्बन्धी कार्यक्लाप
(३) नागरिकता सम्बन्धी कार्यक्लाप
(४) मनोविनोद एवं कला सम्बन्धी कार्यक्लाप
(५) सांस्कृतिक कार्यक्लाप
(६) समाज-सेवा सम्बन्धी कार्यक्लाप
(७) प्रौढ़ गतिविधियों का कार्यक्लाप

(८) संग्रहालय व प्रदर्शनी सम्बन्धी कार्यक्लाप
(९) सहकारी भंडार तथा बैंक संबंधी कार्यक्लाप

ग्रामीण शिक्षक
(Rural Teacher)

उपर्युक्त कार्यक्लापों को कार्यान्वित रूप देने के लिये शिक्षा-संस्था के वैज्ञानिक रूप से निर्मित विशाल भवन एवं अन्य सामग्री होने के साथ साथ ऐसे उत्साही समाज सेवी ग्रामीण अध्यापकों की भी आवश्यकता है जो संस्था, घर एवं जनता के कार्यक्रमों में सब प्रकार का सामंजस्य स्थापित कर सके। इस व्यक्ति को राज्य द्वारा पूर्ण सन्तोषप्रद् वेतन प्रदान किया जाना चाहिये जिससे वह जनहित के कार्यों में अपना जीवन अर्पित करें।

भारत देश के सम्मुख यह एक कल्पनामात्र है। देश के साधनों के अपर्याप्त होने के फलस्वरूप यद्यपि उपर्युक्त योजना कार्यान्वित नहीं हो पा रही है फिर भी ऐसा पूर्ण विश्वास किया जाता है कि यदि ग्रामीण शिक्षा में वास्तव में प्रगति करनी है तो इस कल्पना को यथारूपेण साकार करना होगा और सभी सम्भव प्रयत्न इस दिशा में किये जाने चाहिये जिससे ग्रामीण जनता का शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक स्तर उन्नत हो।

अध्याय १९

ग्रामीण धार्मिक संस्थायें

(Rural Religious Institutions)

प्रत्येक पर्यावरण में मानव को सदा से किसी न किसी अज्ञात शक्ति का नियन्त्रण अनुभव होता रहा है। प्रत्येक अवस्था में मानव को यह विचार सताता रहा है कि संसार में ऐसी कोई अज्ञात शक्ति है जो सांसारिक घटनाओं एवं मानवीय क्रियाओं पर नियन्त्रण रखती है। इस दृष्टिकोण से मानव ने अपनी प्रत्येक अवस्था में इस अलौकिक शक्ति को खोजने तथा प्रसन्न करने का प्रयास किया है।

इस शक्ति को प्रसन्न करने हेतु विभिन्न क्रियाओं को अपनाना प्रारम्भ हुआ। जो कालान्तर में पूजा, भक्ति, आराधना, तपस्या, भजन कीर्तन आदि नामों से परिभाषित की जाने लगी। अलौकिक शक्ति को समझने, खोजने, पहचानने तथा पता लगाने की क्रिया को धर्म कह कर पुकारा जाने लगा। यह धर्म मानव की प्रत्येक अवस्था में साथ रहा है। जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक धर्म व धार्मिक विश्वासों का प्रभाव रहा है।

पूर्व इसके कि हम इस अध्याय के शीर्षक पर विस्तृत रूप से विचार करें, यह आवश्यक है कि धर्म के सामान्य अर्थ को प्रथम स्पष्ट कर लें। संसार में धर्म व धार्मिक क्रियाओं तथा धार्मिक संस्थाओं की विभिन्न धारणाएँ हैं। यह धारणाएँ धार्मिक धारणाएँ कहलाती हैं। यह आपस में इतनी गुंथी हुई हैं कि केवल अलग अलग व्यवस्थित परिभाषाएं ही इनकी स्पष्ट व्याख्या कर सकती है।

धर्म क्या है ?

(What is Religion)

धर्म के अस्तित्व के साथ साथ इसको समझने का निरन्तर प्रयास होता रहा है। विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से धर्म को समझने का प्रयास किया। इस दृष्टि से प्रत्येक विद्वान की परिभाषा में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यदि हम धर्म सम्बन्धी निर्मित धारणाओं का विश्लेषण करें तो हमें दो तत्व दिखाई देते हैं। प्रथम सकारात्मक (Positive) द्वितीय नकारात्मक (Negative)। हाबल ने धर्म के इन दोनों तत्वों पर प्रकाश डाला है। तुलनात्मक दृष्टि से विद्वान लोगों को अधिक विश्वास

धर्म के नकारात्मक तत्व की ओर है। अतः हम पहले यह देखने का प्रयास करेंगे कि धर्म क्या नहीं है।

धर्म किसी एक ईश्वर विशेष में विश्वास नहीं है क्योंकि कुछ ऐसे भी धर्म हैं जो एक ईश्वर में नहीं अपितु कई देवी देवताओं में विश्वास रखते है। इसके अतिरिक्त धर्म केवल एक या अनेक देवी देवताओं पर आधारित नहीं है क्योंकि ऐसे कई धर्म हैं जिनमें देवी देवताओं का अस्तित्व नहीं है। अर्थात् उनमें देवताओं के प्रति भावना जागृत नहीं हुई है। इसके साथ साथ हम यह भी नहीं कह सकते कि धर्म किसी धार्मिक संस्था, मन्दिर, मस्जिद, गिरजे अदि से सम्बन्धित क्रियाओं पर आधारित है। जहां समाज के सदस्य एकत्रित होकर धार्मिक क्रियायें सम्पादित करते हैं। इसका कारण यह है कि कई धर्म ऐसे भी हैं जो पूर्ण रूपेण व्यक्तिवादी हैं। धर्म किसी विशेष प्रकार की सूची पर भी निर्धारित नहीं है क्योंकि आदिम समाजों में ऐसी कोई सूची नहीं थी। हाबल के धर्म के विषय में विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म क्या नहीं हैं। अब हमारे सम्मुख धर्म का दूसरा तत्व धर्म क्या है? उपस्थित होता है।

यह एक जटिल समस्या है कि धर्म क्या है? हाबल ने लिखा है "धर्म आलौकिक शक्ति में विश्वास पर आधारित है जो आत्मवाद एवं मानव को अपने में सम्मिलित करता है"[1]। मजूमदार तथा मदान ने धर्म की परिभाषा करते हुए लिखा है, "धर्म किसी भय की वस्तु अथवा शक्ति का मानवीय प्रत्युत्तर हैं जो कि आलौकिक एवं अतीन्द्रिय है। यह व्यवहार की अभिव्यक्ति तथा अनुकूलन का, वह प्रकार हैं जो कि लोगों के आलौकिक शक्ति के अर्थ से प्रभावित होता है।"[2] वील्स तथा हाईजर का कथन है, "धर्म प्रमुख रूप में विश्व में एक व्यवस्थित अर्थ की आवश्यकता का प्रत्युतर है तथा मानव की भविष्यवाणी एवं घटनाओं को समझने की अयोग्यता द्वारा निर्मित चिन्ताओं को शांत करने के लिए एक यन्त्र है जो स्पष्ट-

1. "Religion rests upon belief in supernatural which embraces animism and mana" Hoebel B. A.: 'Man in the Primitive World'; (1949); p. 405.
2. "Religion is the human response to the apprehension of something, or power, which is supernatural and suprasensery. It is the expression of the manner, and type of adjustment effected by a people with their conception of the supernatural" Majumdar D.N. and Madan T.N. 'Social Anthropology'; (1957); p. 151.

तया प्राकृतिक नियमों को अनुरूप बनाता है।"[3] इसी प्रकार प्रसिद्ध मानव शास्त्री मेलिनोवस्की ने लिखा है, "धर्म के अन्तर्गत व्यवहार के वह सब प्रतिमान् हैं जिसमें मनुष्य दैनिक जीवन की अनिश्चितताओं को न्यून करने का प्रयत्न करते हैं तथा इस संकट की क्षतिपूर्ति के लिए जो अप्रत्याशित् तथा जिसकी भविष्यवाणी न की जा सके का फलस्वरूप है।"[4] इसी प्रकार टायलरने लिखा है, "धर्म अध्यात्मिक सत्ताओं एवं पिशाचों में विश्वास का नाम है।"[5] जहां लगभग सभी विश्वास तथा वादों (ism) से परिपूर्ण धर्म का अस्तित्व प्रगट किया गया है। इसके अतिरिक्त धर्म का अर्थ कुछ ऐसे संस्कारों के सम्पादन करने से है जो मनुष्य और इस आलौकिक शक्ति को एक दूसरे से बांधते हैं। अतः यह स्पष्ट होता है कि धर्म के आधार विश्वास एवं संस्कार हैं। धर्म एक प्रकार की मानसिक श्रद्धा है जो हम किसी अलौकिक शक्ति के लिए रखते हैं और इसी प्रकार विश्वास तथा विभिन्न प्रकार की क्रियायें एवं प्रतिक्रियायें इसका विस्तृत रूप है। धर्म की परिभाषा करते हुए प्रो० रविन्द्रनाथ मुकर्जी ने लिखा है, "धर्म किसी न किसी प्रकार की अतिमानवीय या अलौकिक या समाजोपरि शक्ति पर विश्वास है, जिसका आधार, भय, श्रद्धा, भक्ति और पवित्रता की धारणा है और जिसकी अभिव्यक्ति प्रार्थना, पूजा या आराधना है।"[6]

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि धर्म किसी असाधारण शक्ति में विश्वास तथा इस विश्वास की अभिव्यक्ति है। इसे और भी अधिक स्पष्ट रूप से समझाने के लिए हम कह सकते हैं कि धर्म किसी असाधारण (साधारण मानव से परे) शक्ति (अलौकिक, लौकिक, मानवीय, अतिमानवीय, भौतिक, अभौतिक, सामाजिक, समाजोपरि, दैवीय या प्राकृतिक) में (श्रद्धा, भक्ति, भय,

3. "Religion is, in the main; a response to the need for an organise conception of the universe and to have a mechanism for allaying anxieties created by man's inability to predict and understand events which do not apparently confirm to the natural laws." Beals B.L. and Hoijer H.: 'An Introduction to Anthropology';(1956); p. 505.
4. "Religion includes all those patterns of behaviour where by men strive to reduce the uncertainties of daily living and to compensate the crisis which result from the unexpected and unpredictable. Religion first was related to the hopes and aspirations of man, it was related to fear." Malinowaki: 'Theory of Culture'.
5. "Religion is the belief in spiritual beings and friends" Tylor B.B; 'Primitive Culture.'
6. रविन्द्रनाथ मुकर्जी "भारतीय समाजिक संस्थायें" सरस्वतीसदन मसूरी।

पवित्रता, अपवित्रता, सुख या दुःख की भावना के आधार पर) विश्वास है तथा इस विश्वास की (भय मिश्रित या श्रद्धापूर्ण) प्रार्थना, पूजा, आराधना आदि रूपों में) अभिव्यक्ति है ।

धर्म चाहे किसी भी संस्कृति एवं समाज की प्राचीनता से सम्बन्ध रखता हो, सभी का आधार विश्वास तथा संस्कार ही है । किसी आध्यात्मिक और अलौकिक शक्ति में विश्वास रखने के उपरान्त, उसको कार्यरूप में परिणित करने हेतु हम विभिन्न प्रकार के संस्कार करते हैं । इन संस्कारों की शैली में भिन्नता होती है । इसके साथ साथ भिन्न २ समाजों में अलौकिक शक्ति का रूप भी भिन्न भिन्न होता है । कुछ लोग अमानवीय शक्ति में विश्वास रखते हैं तो दूसरों के लिये पवित्र आत्माएं उनकी आराधना का केन्द्र होती हैं । इस दृष्टि से भिन्न २ समाजों में अलौकिक शक्ति की भिन्नता के साथ साथ संस्कारों एवं विश्वासों में भी अन्तर दृष्टिगोचर होता है । इसीलिये ग्रामीण समाज की अलौकिक शक्ति एवं संस्कारों में अस्था तथा विश्वासों में अपनी कुछ विशिष्टता होती है । इसलिये हम यहां ग्रामीण धर्म की विचारधारा पर दृष्टिपात करने का प्रयत्न करेंगे ।

ग्रामीण धर्म का अर्थ
(Concept of Rural Religion)

धर्म लगभग संसार के सभी समाजों में पाया जाता है और उसका संस्कृति से अत्यन्त निकट सम्बन्ध होता है । ग्रामीण संस्कृति से सम्बन्धित ग्रामीण धर्म है, जो आस्थाओं का एवं ग्रामीण धारणाओं का पवित्र अंग है । ग्रामीण धर्म अलौकिक शक्ति में निहित होने के साथ साथ भौतिक वस्तुओं में भी विश्वास रखता है । ग्रामीण धर्म वह सामाजिक संस्था है जो टोटम (Totem) पर आधारित है । टोटमवाद ग्रामीण समाज की एक सर्वव्यापी धार्मिक संस्था है । टोटम के विषय में फ्रायड ने लिखा है, "यह नियमानुसार एक पशु है (चाहे भक्ष्य हो तथा हानि रहित, भयंकर हो, तथा डरावना) तथा यदा कदा एक पौधा अथवा एक प्राकृतिक पदार्थ, जैसे वर्षा, जल, जो कि समस्त गोत्र से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है ।" [7] कीसिंग ने लिखा है, "यह शब्द (टोटम) विभिन्न क्रियाओं तथा विश्वासों की प्रणालियों की ओर निर्देश करता है, जो अपना सामान्य लक्षण मानव तथा पशुओं,

---

7 "It is as a rule on animal (whether edible and harmless dangerous and fearful) and more rarely a plant or a natural phenomenon such as rains or water, which stands in close relation to the whole clan." S. Frend, 'Totem and Taboo.'

पौधों या निर्जीव वस्तुओं के बीच एक काल्पनिक सम्बन्ध रखते हैं।[8] हाबल ने लिखा है, "एक टोटम, एक पदार्थ अक्सर करके एक पशु अथवा पौधा है जिसका सामाजिक समूह के सदस्यों द्वारा विशेष आदर किया जाता है जिनको ऐसा आभास होता है कि उनके तथा टोटम के बीच एक विशिष्ट समान भावनाओं का सूत्र है।"[9]

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि टोटमवाद ग्रामीण सामाजिक संगठन एवं धर्म प्रथाओं का एक रूप है जो सदस्यों को एक पशु या पौधा अथवा वृक्ष में विश्वास द्वारा आपस में बांध कर रखे हुए है। यह धार्मिक प्रथाओं के लिये प्रयोग किया जाता है। अतः हम ये निर्धारित कर सकते हैं कि ग्रामीण धर्म, ग्रामीण व्यवहारों एवं विश्वासों का वह पुन्ज है जिसकी अभिव्यक्ति पशु, पेड़ व पौधों के द्वारा होती है। ग्रामीण धर्म वह व्यवस्था है जो वहां के लोगों की आवश्यकता तथा भविष्य की घटनाओं की चिन्ताओं से उन्हें उन्मुक्त करती है। ग्रामीण धर्म के अन्तर्गत व्यवहार के वे सब प्रतिमान है जिनमें ग्रामीण दैनिक जीवन की अनिश्चितताओं को न्यून करने के लिये व्यक्ति प्रकृति की आराधना करता है क्योंकि उसका प्रकृति से घनिष्ट सम्बन्ध है।

ग्रामीण धर्म की विचार धारा को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम इस प्रकार कह सकते हैं कि ग्रामीण समाज का यह वह रूप है जिसमें अलौकिक तथा भौतिक वस्तुओं के प्रति विशेष आस्था होती है। भय, लज्जा के कारण अंधविश्वास तथा जादू से प्रभावित क्रियायें ग्रामीण धर्म की विशिष्टता को प्रकट करती हैं। ग्रामीण धर्म सम्बन्धी विचारधारा को और अधिक स्पष्ट करने हेतु हम इसकी उत्पत्ति के प्रति अपना ध्यान आकर्षित करेंगे।

धर्म की उत्पत्ति एवं विकास
(Origin and Development of Religion)

शब्द विद्या के अनुसार धर्म (Religion) लेटिन Rel (L) igio से बना है जो स्वयं Leg से निकला है जिसका अर्थ सम्बन्ध स्थापित करने से है। इसके

8 "The word (Totem) refers to various systems of belief and action having as their common feature a postulated 'Social' relation between humans and animals plants or inanimate objects" Falix M. Keesing: 'Cultural Anthropology'; (1959); p. 297.

9 "A totem is an object, often on animal or a plant, held in special regard by the members of a social group, who feel that their is a peculiar bond of emotional identity between themselves and the totem" Hoebal E. A. 'Man in Primitive World'; (1949); p. 512.

अतिरिक्त धर्म की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न भ्रान्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। अनेक विद्वानों ने धर्म की उत्पत्ति एवं विकास पर प्रकाश डाला है। इन्होंने इस विषय में अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। हम इन सिद्धान्तों में से हमारे विषय से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालेंगे।

(क) प्रकृतिवाद (Naturism)

इस सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि धर्म की उत्पत्ति प्रकृति का मनुष्य पर प्रभाव होने के फलस्वरूप हुई। प्राचीन काल में मनुष्य ने प्रकृति के स्थायी प्रभाव एवं विशालता को देखा तथा अनुभव किया। जिसके फलस्वरूप प्रकृति पूजा एवं आराधना प्रारम्भ हुई। इस सम्बन्ध में मैक्समूलर ने लिखा है, "यह असीम प्रकृति की उत्तेजना एवं अनुभूति है जिससे धर्मो की उत्पत्ति हुई है।"[10] अतः ये प्राकृतिक वस्तुएं देवी और देवता मान ली गई हैं और इस प्रकार से प्रकृति पूजा प्रारम्भ हो गई। मिश्र में 'रा' अर्थात् सूर्य सबसे बड़ा देवता है। इसी भांति अन्य स्थानों पर भी सूर्य को देवता माना गया है।

इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों का यह कथन है कि प्रकृतिवाद (Naturism) पर भारतीय संस्कृति का अत्याधिक प्रभाव पड़ा है। प्राचीन संस्कृति पर आधारित यह सिद्धान्त अधिक स्थायी प्रमाण नहीं दे सकता है क्योंकि धर्म संस्कृति का एक विशेष अंग है, इसकी उत्पत्ति को व्यक्तिगत आधार पर नहीं समझा जा सकता।

(ख) जीवसत्ता तथा मानावाद (Animatism and Manaism)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का विश्वास है कि धर्म की उत्पत्ति जीव की उत्पति के पहले हो चुकी थी। इस अवस्था में मनुष्य का यह विश्वास था कि प्रत्येक वस्तु में जीव है। भौतिक वस्तुओं में भी चेतना होती है। अतः प्राचीन काल में मनुष्यों ने प्रकृति की पूजा आरम्भ की और आदिमवासियों ने भी चेतन सत्ता को अधिक महत्वपूर्ण माना। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक भौतिक अथवा अभौतिक वस्तु में जीव होता है। इस जीव को शक्ति कहते हैं। इस शक्ति को मैलेनेशिया के आदिवासी "माना" कह कर पुकारते हैं। डा० मजूमदार तथा मदान ने मैरट के विचारों का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है, "आदिवासियों का सम्पूर्ण धार्मिक जीवन एक निश्चित अज्ञेय, अकर्तृक, अभौतिक, अवैयक्तिक,

---

10. "It is from this sencation of infinite that religions are derived" Maxmullar". Quoted by Durkheim, E. 'The Elementary forms of Religious Life'. Translated by J. W. Swain, Allen and Urwin, London, P. 74.

अलौकिक शक्ति में विश्वास से उत्पन्न हुआ है जो कि सभी सजीव और निर्जीव वस्तुओं में वास करती है जो कि विश्व में विद्यमान है।''[11] माना एक शक्ति हैं जो कि सदैव अपना असाधारण प्रदर्शन करती है। यह सब शक्तियों में एक अपवाद स्वरूप है। मनुष्य ने असाधारण पौरुष अथवा निपुणता रखने वाले पुरुषों को "माना" शक्ति रखने वाले की उपमा दी है। पोलिनेशिया में कोई इसलिये निपुण कारीगर है क्योंकि वह "माना" रखता है। पंडित यदि असाधारण ज्ञान रखता हैं तो वह "माना" के कारण। प्रबल योद्धा "माना" रखता है इसलिये युद्ध में सदैव विजयी होता है। अतः "माना" यद्यपि एक अवैयक्तिक शक्ति है तथापि यह मनुष्यों द्वारा अपना प्रदर्शन करती है। "माना" अपना प्रदर्शन वस्तुओं के द्वारा भी कर सकता है।

जिन वस्तुओं में शक्ति होती है उन में वह "माना" के कारण ही है। इस प्रकार मानावादियों का कथन है कि इस अलौकिक शक्ति को जो उनकी बुद्धि से परे थी, आदिवासियों ने स्वीकार किया। उसे अपने भाग्य का विधाता समझ कर इसके सम्मुख नतमस्तक हुए। अतः मानावाद धर्म की उत्पति का मूलरूप है।

(ग) आत्मवाद् (Animism)

इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक टायलर (Tylor) और स्पेन्सर (Spencer) हैं। इन लोगों का कहना है कि धर्म की उत्पति आत्मा से हुई है। प्राचीन काल में मनुष्य आत्मा में विश्वास रखते थे। इस समय लोगों का विश्वास था कि मनुष्य की आत्मा स्वप्न अवस्था में भ्रमण करती है और जागृत अवस्था में शरीर में लौट आती है। उनमें ऐसा विश्वास था कि ऐसी कोई अदृश्य शक्ति मनुष्य के शरीर में है जो कि जब तक शरीर में रहती है, मनुष्य जीवित रहता है और जब यह शक्ति उसमें से निकल जाती है तो मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। इसलिये आज भी ये दो प्रकार के दाह संस्कार (Funeral System) को मानते हैं। अतः टायलर के मतानुसार आदिमवासियों में इस प्रकार की अदृश्य सत्ताओं का सदैव भय रहता था तथा इनको श्रद्धा की दृष्टि से माना जाता था।

इस आधार पर टायलर ने आदिमवासियों को एक दार्शनिक माना है जो कि वास्तव में नहीं हैं। स्पेन्सर स्वयं टायलर की इस व्याख्या से सहमत नहीं है। उसका मत है कि प्राचीन मानव महामूर्ख होते थे।

---

11 "Entire religious life of the primitive is born out of their belief in a certain un-understandable, impersonal, non-material and un-individualized supernatural power which takes abode in all the objects, animate and inanimate, that exist in the world." D. M. Majumdar & T. N. Madan : 'Social Anthropology' (1957), p. 156.

(घ) कार्य सम्बन्धी सिद्धान्त (Functional Theories)

इस सिद्धान्त को दुर्खीम (Durkheim) रैडक्लिफ ब्राउन (Redcliffe Browne) मैलिनोवास्की (Malinowski) इत्यादि ने प्रतिपादित किया है। इन विद्वानों के मतानुसार धर्म का समाज में क्या "कार्य" है, धर्म की उत्पत्ति से प्रमुख है। इन विद्वानो का कहना है कि धर्म के पीछे कोई न कोई प्रमुख उद्देश्य है जिसके फलस्वरूप इसकी उत्पत्ति हुई। मैलिनोवस्की (Malinowski) का कथन है कि धर्म मानवीय उद्वेगों के समय शान्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार घृणा, लालच, क्रोध, प्रेम, जैसे उद्वेग धर्म के फलस्वरूप नियंत्रित हो जाते हैं। इसी प्रकार दुर्खीम का कथन है कि धर्म एक जनसम्मर्द उत्तेजना (Crowd Exitement) है। इसके अनुसार मानव ने यह कल्पना की कि ऐसी कोई शक्ति है जो मनुष्यो को एक जगह एकत्रित करती है। प्राचीन समय में त्यौहारों पर मनुष्य जब एक साथ एकत्रित होते तो उनमें यही भावना जागृत होती थी। धर्म नैतिकता तथा भौतिकता की उच्चता है जो कि समूह के एक व्यक्ति में है। रैडक्लिफ ने बताया है कि धर्म का प्रमुख कार्य समाज तथा व्यक्ति को जीवित रखना है। अतः धर्म का प्रमुख कार्य व्यक्ति द्वारा हितकर कार्य करवाना है जिससे कि समाज एवं व्यक्ति का अस्तित्व रहे। फ्रेजर का मत है कि जादू, धर्म के पहले का स्तर है। जादू कार्य तथा कारण से सम्बन्धित है। अतः कार्य एवं कारण की असफलता ने ही धर्म को जन्म दिया है।

इस प्रकार ग्रामीण धर्म की पृष्ठभूमि में हमने धर्म की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्तों एवं विचारधाराओं पर दृष्टिपात किया। जिसके फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म का उदय मानव के उदय के साथ हुआ और मनुष्य के मानसिक विकास के साथ साथ विश्वासों एवं संस्कारों में भी विकास तथा परिवर्तन होता गया। जहाँ हम ग्रामीण समाज को संस्कृति विशेष का पुनीत रूप मानते हैं वहाँ हमें ग्रामीण धर्म का भी पुनीत रूप मानना होगा। संस्कृति और धर्म में घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रत्येक समाज की प्राचीन संस्कृति प्रकृति से विशेष रूप से प्रभावित है। इस दृष्टि से भारतीय ग्रामीण धर्म की उत्पत्ति का तथा विशिष्टता का आधार प्रकृति ही है। अतः अब हम ग्रामीण धर्म की विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे।

ग्रामीण धर्म की विशेषताएं

(Special Features of Rural Religion)

ग्रामीण धर्म के सामान्य अर्थ को समझ लेने के उपरान्त हमने इसकी उत्पत्ति पर विचार किया। यहाँ हम ग्रामीण धर्म की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे। ग्राम प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के केन्द्र हैं। यहाँ प्रत्येक क्षेत्र में

प्राचीनता दृष्टिगोचर होती है। इस दृष्टि से धार्मिक क्षेत्र में भी ग्रामीण लोग पुरातन संस्कारों एवं अन्धविश्वासों तथा रीतिरिवाजों को मानते हैं। अतः ग्रामीण धर्म में इन आधारों पर निम्न विशेषताएं पाई जाती हैं :—

(१) पारिवारिक आधिपत्य (Dominance of Family)

ग्राम का सामाजिक जीवन परिवार प्रधान है। यहाँ प्रत्येक क्षेत्र में पारिवारिक संगठन का आधिपत्य दृष्टिगोचर होता है। धर्म के क्षेत्र में भी परिवार का एकाधिकार है। यहाँ पारिवारिक धर्म (Family Religion) नाम की संस्था विशेष रूप से कार्य करती है। अर्थात धर्म पारिवारिक समूहों में सीमित है। प्रत्येक ग्राम परिवारों में निवास स्थान के अथवा निवास व्यवस्था (Settlement) के मध्य ही देवस्थान बना लिया जाता है। परिवारों के प्रत्येक धार्मिक कार्य इस देवस्थान से पूर्ण कर लिये जाते हैं। इन देवस्थानों का रूप अत्यन्त साधारण होता है, जो पेड़ के नीचे अथवा कुछ पत्थरों व ईंटों के ढेर पर मूर्तियों के रूप में होता है।

(२) प्रकृति का आधिपत्य (Dominance of Nature)

ग्रामीण धर्म की दूसरी विशेषता प्रकृति का आधिपत्य है। ग्रामीण जीवन का प्राकृतिक जीवन से अतिनिकट सम्पर्क है। इस दृष्टि से ग्रामीण धर्म का भी प्रकृतिवाद से प्रभावित होना अनिवार्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ग्रामीण समाज के प्रत्येक कार्य में प्रकृति प्रधान रहती है। ग्रामीण लोगों का सामाजिक-आर्थिक (Socio-Economic) आधार कृषि है। कृषि प्रकृति से अत्याधिक सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त कृषि कार्य में अनिश्चितताओं के निवारण हेतु प्रकृति की पूजा की जाती है। आकाश, पृथ्वी, सूर्य, वृक्ष, जल आदि ग्रामीण जीवन के प्रमुख देवता हैं जिनकी कृपा पर कृषि आधारित है। इतना ही नहीं ग्रामीण विश्वासों एवं धार्मिक क्रियाओं में भी प्राकृतिकता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ वृक्षों के नीचे निर्विकार रूप में साधारण पत्थर, पौधों एवं पहाड़ों, पहाड़ियों आदि को ग्रामीण लोग देवता मानकर घी, दूध, जल व पुष्प आदि से पूजा करते हैं। ग्रामीण धर्म प्राकृतिक धर्म (Natural Religion) कहलाता है।

(३) वर्जित आज्ञाएँ (Taboos)

ग्रामीण धर्म में वर्जित आज्ञाओं (Taboos) का महत्वपूर्ण स्थान है। इन आज्ञाओं के पीछे अलौकिक तथा जादुई अनुमति रहती है। ग्रामीण लोगों में सदैव यह डर बना रहता है कि वर्जित आज्ञाओं के उल्लंघन पर अलौकिक शक्ति द्वारा दण्ड मिलेगा। अलौकिक शक्ति का दण्ड भयानक होता है ऐसा उनका विश्वास

है अतः समाज का प्रत्येक सदस्य उन्हें पालन करने की चेष्टा करता है। वुंड्ट् (Woundt) का कथन है कि निषेधात्मक (वर्जित) आज्ञाओं में कोई आत्मीय शक्ति विद्यमान है। फ्राडियन दृष्टिकोण से निशेधात्मक आज्ञाओं (Taboos) में पिशाच सत्ता विद्यमान है। यह सत्ता निषेधात्मक नियमों के उल्लंघन पर उल्लंघन करने वालों से प्रतिशोध लेती है। हाबल के मतानुसार निषेधात्मक आज्ञाएं मनोवैज्ञानिक कार्य हैं। यह मनुष्य में ऐसी भावनाएं उत्पन्न कर देती हैं जिनसे कि वह उन शक्तियों के विरुद्ध न जा सके, जिन्हें वह नहीं समझता है। मजूमदार तथा मदान के अनुसार, 'जादुई विश्वासों तथा व्यवहारों का ताना बाना सकारात्मक तथा नकारात्मक रस्सियों द्वारा बना हुआ है, तथा निषेधाज्ञाएं दूसरी हैं। इसके तीन उद्देश्य हैं; उत्पादक, सुरक्षात्मक तथा निषेधात्मक।''[12]

उत्पादक सम्बन्धी निषेधाज्ञाएं (Productive Taboos) खेती से सम्बन्धित हैं। सुरक्षात्मक (Protective) निषेधाज्ञाएं समूह अथवा गोत्र के सदस्यों की सुरक्षा करती हैं। यह सुरक्षा वह किन्हीं स्थानों पर सदस्यों को जाने से निषेध करके करती है। निषेधात्मक निषेधाज्ञाएं वे हैं जो कि सदस्यों को सीमित करती हैं जैसे किसी प्रधान, पंडित अथवा जादूगर से नहीं मिलना इत्यादि।

(४) अन्धविश्वास (Superstitions)

इसमें सन्देह नहीं कि ग्रामीण धर्म में अलौकिक शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन अलौकिक शक्ति के प्रति आध्यात्मिक प्रेरणा एवं श्रद्धा रखने के स्थान पर ग्रामीण समाज इस शक्ति को भय के कारण सर्वोपरि स्थान देता है। ग्रामीण धर्म अन्धविश्वास का पुन्ज है। भय के आधार पर ग्रामीण लोग शीघ्र ही काल्पनिक देवी देवताओं की पूजा करने लगते हैं। अन्धविश्वास के कारण ग्रामीण धार्मिक क्षेत्र में अनेक रीतिरिवाज, त्यौहार, उत्सव व अनर्थक विश्वासों ने घर कर लिया है। ग्रामीण लोग प्रकृति के प्रकोप को, अथवा अन्य किसी असाधारण घटना को अनेक मिथ्या विचारों को ईश्वरीय शक्ति मानकर अपने जीवन को अन्धकार एवं अन्धविश्वास तथा विपदाओं के कारागार में डाल लेते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे अनेक अन्धविश्वास पाये जाते हैं, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। इन अन्धविश्वासों के आधार पर अनेकों रोगों की चिकित्सा, दागने, जादू टोने आदि के आधार पर करदी जाती है।

12. "The woof and worp of Magical beliefs and practices is made up of positive and negative strands, and taboo is latter. Its purpose is threefold, Productive Protective and Prohibitive." Majumdar D. N. and Madan T. N.: 'An Introduction to Social Anthropology'; p. 163.

(५) ग्रामीण धर्म जादू पर आधारित
(Rural Religion Based on Magic)

ग्रामीण धर्म की एक यह भी प्रमुख विशेषता है कि इसमें जादुई तत्व प्रभावशाली कार्य करते हैं। इस सम्बन्ध में मजूमदार तथा मदान ने इन दोनों की समानता को प्रदर्शित करते हुए सत्य ही लिखा है, "जादू तथा धर्म दोनों सृष्टि के रहस्य में डूबे हुये हैं।"[13] गोल्डन वाईजर के मतानुसार धर्म तथा जादू दोनों की जड़ें वैषयिकता में जमी हुई हैं।[14] पिडिंगटन का मत है कि आदिम जादू तथा धर्म को पृथक पृथक करना असम्भव है। दोनों एक दूसरे से घनिष्टतया सम्बन्धित हैं। उनके शब्दों में, "इसलिये यह उत्तम होगा कि हम साधारणतया जादुई धार्मिक घटनाओं, संस्थाओं, विश्वासों तथा व्यवहारों की बात जादू तथा धर्म के कठोर एवं लचीले वर्गीकरण के प्रयत्न के बिना करें।"[15]

अतः धर्म एवं जादू के मध्य सम्बन्धों का विश्लेषण देखकर हम यह प्राकृतिक रूप से कह सकते हैं कि जिस धर्म में अन्धविश्वासों, वर्जित आज्ञाओं का प्रबल स्थान होता है उस धर्म में जादुई तत्व भी प्रभावशाली कार्य करते हैं। जादू अलौकिक एवं प्राकृतिक शक्तियों को अपने वश में करने की विधि है। अतः ग्रामीण समाज का इस क्षेत्र में भी अटूट विश्वास है और वे ऐसी अनेक धार्मिक क्रियायें करते हैं जिसमें जादुई तत्वों का प्रभाव होता है।

(६) टोटम (Totem)

यद्यपि टोटम एक मानवशास्त्रीय अभिव्यक्ति है। यह वर्ग एवं गोत्र निर्माणकारी संस्था के रूप में कार्य करती है। परन्तु इसका ग्रामीण धर्म के क्षेत्र में प्रमुख स्थान है। ग्रामीण लोग अनेक देवी देवताओं को मानते हैं। हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार कुल मिलाकर ३३ करोड़ देवी देवता हैं। इन देवी देवताओं में अनेक ऐसे भी नाम पाये जाते हैं जो टोटम पर आधारित हैं। ग्रामीण धर्म में पशु, वृक्ष, नदी, नाले, पौधे आदि की पूजा होती है। इन देवी देवताओं का आधार

---

13 "Magic and Religion both imbued with mystery of the world." Majumdar D. N. and Madan T. N. Op. Cit. p. 162.

14 "Both Religion and Magic are rooted in the subjectivity." Golden Weiser : Op. Cit. p. 218.

15 "It is therefore better in general speak of Megicoreligious phenomana, institution, beliefs and practices without trying to fit them into any hard and fast division between religion and Magic." Piddington R. : "Social Anthropology" (1959); p. 363.

टोटम पर ही आधारित है। कई ऐसे टोटम हैं जो ग्रामीण देवी देवताओं के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि टोटम नाम की संस्था ग्रामीण धार्मिक संस्था के रूप में प्रयोग की जाती है।

(७) पितृपूजा (Ancestral Worship)

ग्रामीण धर्म एवं धार्मिक संस्थाएं पितृपूजा पर भी बल देती हैं। सामाजिक जीवन में ग्रामीण परिवार का रूप संयुक्त होने के फलस्वरूप पितृपूजा ने स्थान लिया है। ग्राम सामाजिक संरचना में गोत्र प्रणाली का विशेष स्थान होने के कारण संयुक्त परिवार विकेन्द्रित गोत्रों के रूप में निर्मित हो गए हैं। प्रत्येक गोत्र एक टोटम पर आधारित होता है। समस्त सदस्य उस टोटस का आदर करते हैं। चाहे वह किसी वृक्ष, पशु, पौधे के नाम से ही सम्बोधित क्यों न किया जाय। एक गोत्र एवं वंश एक टोटम के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन टोटम की पूजा ने धीरे धीरे पितृपूजा का स्थान ग्रहण कर लिया। पितृपूजा के पीछे अपने पूर्वजों की विशेषताओं एवं दुष्कर्मों का उल्लेख होने के साथ साथ अलौकिक शक्ति से मृत आत्मा को छुटकारा दिलाना है। इस दृष्टि से यह पितृपूजा विकसित होती गई और आज भी ग्रामीण धर्म में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

(८) देवी देवताओं का बाहुल्य
(Multiplicity of Gods and Godess)

ग्रामीण धर्म में देवी देवताओं का विशेष बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। वैदिक काल में जब मनुष्यों की संख्या भी ३३ करोड़ नहीं थी, उस समय भी ३३ करोड़, देवी देवता माने जाते थे। यहां तक कि मछली, सिंह, स्वान, सर्प (सांप) कुत्ता गज (हाथी) आदि भी देवताओं के अवतार के रूप में माने जाते हैं। ग्रामीण धर्म में इस दिशा में और भी विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं। जिनमें तेजाजी, भैरूजी, बालाजी, माताजी आदि ऐसे अनेक काल्पनिक देवी देवता हैं जिनका मानवीय विश्वासों एवं संस्कारों से कोई सम्बन्ध नहीं। ग्रामीण धर्म में देवी-देवताओं की बाहुल्यता का कारण आर्थिक-समाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा तात्कालिक विपदाओं से छुटकारा प्राप्त करना है। ग्रामीण धर्म में प्राकृतिक प्रकोप एवं भौगोलिक परिवर्तन आदि के भय से भी अनेक देवी-देवताओं का प्रादुर्भाव हो गया है।

(९) भूत प्रेतों से डर (Fear from evil-spirits)

जादू के साथ साथ ग्रामीण धर्म में भूत प्रेत (Evil spirits) के प्रति भी विश्वास किया जाता है। इन शक्तियों पर विजय प्राप्त करने की दृष्टि से जादुई विज्ञान का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन शक्तियों की उत्पत्ति का कारण आत्मा का अमर रहना निर्धारित किया जाता है। ग्रामीण लोगों का विश्वास

है कि मनुष्य की मृत्यु होने के उपरान्त स्वच्छन्द आत्मा (Free Soul) संसार में भ्रमण करती रहती है। जब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो मृतकों के शरीर स्वप्न में दिखाई पड़ते हैं। इस समस्या को हल करने के लिये दाह संस्कार (Funeral System) के रूप ग्रहण किये गये। जिसके फलस्वरूप जंग टोपा (Green Funeral) और टोपम जंग टोपम (Dry Funeral) आदि संस्कार प्रारम्भ हुए। प्रेतात्माओं के क्रोधित होने पर अनेक शारीरिक कष्ट एवं मानसिक पीड़ा के भयों ने इनके प्रति श्रद्धा को उत्पन्न किया। मानवशास्त्रियों ने इस भय, श्रद्धा और विश्वास को ग्रामीण धर्म का प्राचीन रूप बताया है।

(१०) मंत्र, टोने व झाड़ों का स्थान
(Place of Mantra, Tona and Zadu)

ग्रामीण धर्म में अज्ञात शक्तियों भूत, जिन्द और प्रेतात्माओं का भय उल्लेखनीय है। इन विपदाओं से छुटकारा पाने के लिये मन्त्र, टोने व झाड़ों की उत्पति हुई। यह शक्तियां देवताओं के रूप में पूजी जाती हैं और इन्हें प्रसन्न रखने हेतु ऐसी अनेक क्रियाओं एवं ताबीजों का प्रयोग किया जाता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में धार्मिक दृष्टि से मान्य है।

इस प्रकार हमने ग्रामीण धर्म की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण किया। जिसमें हमने अनेक अन्धविश्वास, संस्कार एवं देवी देवताओं का महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली स्थान पाया है। अतः हम आगामी विचारों में ग्रामीण देवी देवताओं का स्पष्ट विश्लेषण कर यह देखने का प्रयास करेंगे कि ग्रामीण धर्म इनसे कहाँ तक प्रभावित है और सामाजिक क्षेत्र में इनका क्या स्थान है ?

ग्रामीण देवी देवता
(Rural God and Godess)

जैसा हम पहले भी कह आये हैं कि ग्रामीण धर्म में देवी देवताओं का बाहुल्य है। असंख्य देवी देवता ग्रामीण जीवन में महत्वपूर्ण एवं धार्मिक-सामाजिक (Religio-Social) महत्व रखते हैं क्योंकि यहाँ जीवन और धर्म में अटूट सम्बन्ध है। जीवन के प्रत्येक कार्य को जो प्रमुखतया सामाजिक, आर्थिक (Socio-economic) हैं ये देवता अत्यन्त प्रभावित करते हैं। जैसे साख देवता (फसल देवता) कूप देवता (कुएं का देवता) आदि ऐसे अनेक देवी-देवता हैं। यहां हम प्रमुख ग्रामीण देवी-देवताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

(१) तेजाजी:—दक्षिण भारत के अतिरिक्त भारत के सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्रों में इस देवता की पूजा विशेष उल्लास व उत्साह से की जाती है। यह देवता सांप,

बिच्छू व अन्य विषैले कीटाणुओं से रक्षा करने वाला देवता माना जाता है। गाँवों में विषैले जानवरों के काट लेने पर इस देवता के मन्त्रों, झाड़ों, ज्योतियो एवं भावों का प्रयोग किया जाता है।

(२) रामदेवजी :— राजस्थान में विशेष रूप से मारवाड़ के ग्रामीण क्षेत्रों में इस देवता की पूजा विशेष रूप से की जाती है। इसका केन्द्रीय मन्दिर जोधपुर (राजस्थान) के समीप रूनीजा नामक स्थान पर है।

(३) भेरुजी :— मध्य भारत व उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान आदि प्रान्तों में इस देवता की आराधना विशेष रूप से की जाती है। भिन्न २ स्थानों पर इस देवता का नाम भिन्न २ रूप से लिया जाता है। यह देवता साधारण पत्थर पर सिन्दूर तेल व मालीपत्र आदि लगाकर स्थापित कर लिया जाता है। यह देवता भूत प्रेत आदि शक्तियों से रक्षा करने वाला देवता माना जाता है।

(४) शीतलामाता :— इस माता के मन्दिर भी सर्वत्र दिखाई देते हैं। यह देवी बच्चों की बीमारी विशेषतः चेचक (Small Pox) को बचाने के लिये पूजी जाती है। साधारणतः सात कंकड़ों को एकत्रित करके इसकी पूजा किसी भी स्थान पर की जा सकती है।

(५) बालाजी (हनुमानजी) :—बालाजी का मन्दिर प्रत्येक गाँव में मिलता है। यह शक्ति का दाता कहलाता है। इसकी पूजा विशेष रूप से मंगलवार तथा शनिवार को की जाती है। इसके अतिरिक्त कई ग्रामीण आवश्यकताओं एवं अभिलाषाओं की पूर्ति भी होने की आशा की जाती है।

इन देवी देवताओं के अतिरिक्त अन्य हिन्दू धर्म व मुसलमान धर्म से सम्बन्धित अनेक देवताओं की पूजा होती है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण धार्मिक मनोवृति की यह भी एक विशेषता है कि तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुसार स्थानीय देवताओं का निर्माण कर लिया जाता है। इन देवताओं की पूजा तात्कालिक रूप से की जाती है।

ग्रामीण धार्मिक संस्थायें

(Rural Religious Institutions)

ग्रामीण धर्म व देवी देवताओं की विशेषताओं पर प्रकाश डालने के उपरान्त हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम ग्रामीण धार्मिक संस्थाओं पर भी दृष्टिपात करें। ग्रामीण धार्मिक संस्थाओं का वहाँ के सामाजिक-आर्थिक जीवन में प्रभावशाली स्थान है। ग्रामीण सामाजिक-धार्मिक ढाँचे (Socio-Religious structure) की यह विशेषता है कि इसमें वर्ग व जातियों का विशेष प्रभाव है। ग्रामीण समाज जातिगत धर्म व धार्मिक संस्थाओं का आयोजन करता है। कहने

का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण जातियों के अनुसार धर्म के रीति-रिवाज व धार्मिक संस्थाओं का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ जैन, वैष्णव, मुसलमान, सम्प्रदायों के विभेद के साथ साथ खाती, मोची, सुनार, महाजन, रेगर, बढ़ई आदि की विभिन्न धार्मिक पंचायतें तथा भिन्न २ देवताओं के मन्दिर हैं। यह मन्दिर जाति विशेष के सामाजिक निन्यत्रण (Social Control), जाति मूल्य (Caste Values) आदि के नियम निर्माण का केन्द्र होते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण धार्मिक संस्थाएँ, ग्रामीण सामाजिक जीवन पर विशेष रूप से महत्व रखती हैं।

ग्रामीण मन्दिर तथा धर्मशालाएँ
(Rural Temples and Charity homes)

जाति विशेष व वर्ग विशेष के भिन्न २ मन्दिर व धर्मशालाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन संस्थाओं का महत्व धार्मिक दृष्टिकोण से उतना नहीं होता जितना प्रशासनिक एवं सामाजिक होता है। यह स्थान यद्यपि अत्यन्त साधारण होते हैं और इनमें जाति व वर्ग विशेष का पूर्ण सहयोग होता है, परन्तु यहाँ धार्मिक-सामाजिक सामन्जस्य का अभाव रहता है, अर्थात् एक जाति की संस्था में दूसरी जाति के सदस्यों का प्रवेश व सहयोग बिल्कुल निषिद्ध है।

ग्रामीण भजन व भजन मंडलियाँ
(Rural Bhajans and Bhajan Organisations)

गाँवों में ग्रामीण धार्मिक क्षेत्र में यह भी एक महत्वपूर्ण संस्था है। यह संस्था ग्रामीण धार्मिक जीवन की अभिव्यक्ति करती है। इन संस्थाओं में भी जाति व वर्गभेद प्रभाव डालता है। इतना ही नहीं यह भेद आगे जाकर विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त हो गया है, अर्थात् पन्थ, अखाड़े विशेष से सम्बन्धित भजन मंडलियाँ गाँवों में भ्रमण करती रहती हैं। इनमें मीरा, सूरदास, दादू, रैदास, कबीर की बानियाँ व भजन विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। ग्रामीण लोग साधारण वाद्य यंत्रों व साधनों से धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति करते हैं। जिनमें मँजीरा, तन्दूरा, जाजू, ढोलक व नगारे, बांकिया (Harp) आदि का प्रयोग किया जाता है।

ग्रामों में धर्म का रूप अन्धविश्वासों आदि से भरा हुआ है। अनेक हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक झगड़ों का मुख्य आधार भी धार्मिक कट्टरता ही है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में पुर्नजागृति के लिए आवश्यक है कि शिक्षा का प्रचार किया जाय। इन्हें धर्म के वास्तविक रूप का ज्ञान भी कराना आवश्यक है। इस दिशा में सम्प्रदायिक विकास योजनाओं आदि के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में जागृति फैलाने का कार्य किया जा रहा है।

अध्याय २०

ग्रामीण राजनैतिक संस्थायें

(Rural Political Institutions)

हम ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करते समय ग्रामीण राजनैतिक संस्थाओं के अध्ययन की उपेक्षा नहीं कर सकते । यद्यपि ग्रामीण समुदाय में राजनैतिक संस्था नाम की कोई पृथक् संस्था नहीं होती किन्तु फिर भी सामाजिक आर्थिक संस्थाओं से मिली-जुली ही एक संस्था होती है,लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इस कारण से इसका अध्ययन ही न किया जाय । ग्राम पंचायत ग्रामीण राजनैतिक संस्थाओं का एक प्रमुख रूप है । इस अध्याय में हम ग्राम पंचायत, पंचायत राज, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण आदि तथ्यों का अध्ययन करेंगे ।

ग्राम प्रशासन

(Rural Administration)

ग्रामीण प्रशासन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है । ग्राम प्रशासन की सदा से यह प्रकृति रही है कि वह आत्मनिर्भर हो । इसके अतिरिक्त इसमें ऐसे अनेक प्रभावशाली तत्व हैं जो सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । ग्राम प्रशासन में वर्ग, जाति, कुल श्रेणी, संघ समुदाय आदि प्रभाव डालने वाले तत्व हैं । ये तत्व प्रशासनिक कार्यों में बड़ी सहायता पहुँचाते हैं । ग्राम प्रशासन के यह प्रभावशाली तत्व स्वयं प्रशासन इकाइयों के रूप में कार्य करते हैं । ग्राम प्रशासन की सीमाओं एवं कार्यों को निर्धारित करने में इन तत्वों का बड़ा महत्वपूर्ण योग रहता है । ग्रामीण परिवार व्यवस्था भी एक प्रशासनिक इकाई है, जिसका ग्रामीण सामाजिक जीवन में एकाधिकार दृष्टिगोचर होता है । ग्राम प्रशासन एक पूर्ण स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । राजनीति अथवा राज्य नाम की संस्था, ग्रामीण प्रशासन में स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखती । ग्रामीण प्रशासन में निहित तत्व ही ग्राम के सामाजिक आर्थिक ढाँचे (Socio-economic Structure) को बनाये रखते हैं । भारत ही एक ऐसा देश है जहां ग्राम प्रशासन में पंचायत नाम की एक ग्रामीण प्रशासनिक संस्था है । यह संस्था यहाँ कालान्तर से स्वतन्त्र प्रशासनिक संस्था रही है । अतः हम यहाँ ग्राम प्रशासन एवं विकेन्द्रीकरण, पंचायत राज शीर्षक के अन्तर्गत भारतीय ग्राम पंचायत के विविध रूपों पर अपना ध्यान आकर्षित करेंगे ।

भारतीय ग्राम पंचायतें

(Indian Village Panchayats)

भारत एक कृषि प्रधान एवं ग्रामीण देश है। ग्राम सदैव से इस देश की इकाइयों के रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं। प्राचीनकाल से इन इकाइयों का यहाँ महत्व रहा है। ग्राम पंचायत नाम की संस्था इन इकाइयों में प्रारम्भ से पाई जाती है। यह संस्था प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने इन संस्थाओं को प्रजातन्त्र का देवता कहा है। वह लिखते हैं, "ये समस्त जनता की साधारण लोकसभा के रूप में अपने सदस्यों के समान अधिकार एवं स्वतन्त्रताओं के लिये दृढ़ रहती है, जिससे कि सबके मस्तिष्क में समता, स्वतन्त्रता तथा समानता के विचार रहने चाहिये।"[1] इसी प्रकार डा० के० सी० जायसवाल ने भी लिखा है, "पुरातन काल के प्रलेखों में लोकप्रिय सभाओं एवं संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय जीवन एवं प्रवृत्तियाँ प्रदर्शित की जाती थीं।"[2] इन तथ्यों के अतिरिक्त हम भारत में पंचायतों की प्राचीनता के प्रमाण ऋंगवेद,[3] अथर्ववेद[4] में भी देखते हैं। अतः प्राचीन युग में प्रत्येक स्तर पर स्थानीय समितियों के रूप में पंचायतें पाई जाती थीं। यह पंचायतें स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर थीं। भारत में यह ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था कुछ अंशों में मुगल काल तक जीवित रही। परन्तु आधुनिक युग में इनका ढाँचा बिगड़ गया है।

---

1. It stands for equal rights and liberties of all its members as the common assembly of the whole people, so that there should be a sense of liberty, equality, and fraternity in the minds of all."
   Dr. Radhakumad Mookerji : Our Earliest conception of Democracy an article in Hindustan Standard, Puja Annual (1954). p. 112.
2. "National idle and activities in the earliest times on record were epressed through popular assemblies and institutions." Dr. K. P. Jayaswal, : Hindu Polity, (1943), p. 12
3. यह ऋंगवेद के निम्न सूक्त से स्पष्ट है : संगच्छध्वं संवदध्वं स वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।
4. इसको अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त (५६) में देखिये : ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम्। ये संग्रामाः समतियस्तेषु चारू वदेम ते ।।

ब्रिटिश काल में पंचायतें
(Panchayats in British Period)

जमींदारी प्रथा एवं भूमिकर में वृद्धि आदि के द्वारा अंग्रेजी शासकों ने कृषकों का शोषण किया। जिसके परिणामस्वरूप जमींदार ग्रामीण इकाइयां के मालिक बन बैठे और प्रशासन इकाइयों को अपने अधिकार में ले लिया। देश में भुखमरी, अकाल, दरिद्रता आदि प्रकोप बढ़ गये। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम पंचायतें समाप्त हो गईं। इस सम्बन्ध में कांग्रेस ग्राम पंचायत समिति की विज्ञप्ति में लिखा है, "ईष्ट इण्डिया कम्पनी की असाधारण स्वार्थी प्रवृत्ति ने शनैः शनैः ग्रामीण पंचायतों के ढाँचे को तोड़ दिया। जमींदारी तथा रैयतवारी व्यवस्था के प्राकृतिक प्रारम्भ ने ग्राम भूमि व्यवस्था के विरुद्ध ग्रामीण समुदायों के सहयोगिक जीवन को असहनीय, आघात पहुँचाया।"[5] इसके अतिरिक्त महात्मा गाँधी ने कहा है, "अंग्रेजी सत्ता की भूमि कर प्रणाली की निर्दयी व्यवस्था ने इन पुरातन प्रजातन्त्रों को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। जो इस भूमि कर के आघात से पुनः खड़ी नहीं हो सकी।"[6]

इन आघातमक (Damolishing) तत्वों ने ग्रामीण ढाँचे को पूर्ण रूप से विघटित कर दिया। भूमि कर एवं भूमि विभाजन का वैयक्तिक रूप प्रबलता से बढ़ता चला गया। ग्रामों की आत्मनिर्भरता पंचायतों के अधिकार और उत्तर-दायित्व आदि समाप्त हो गये। नागरीकरण (Urbanization) ने ग्रामीण लोगों को नगरों की ओर आकर्षित किया। इन सब कारणों ने पंचायतों को सुचारू रूप से संचालित होने में तथा सफलतापूर्वक ग्रामीण जीवन को सुव्यवस्थित रखने में प्रबल आघात पहुँचाया। इस प्रकार पंचायतों का विघटन प्रारम्भ हो गया और इनकी आत्मनिर्भरता एवं प्रजातन्त्रात्मकता आदि समाप्त हो गए।

---

5. "The indinate greed of the East India Company caused slow but steady disintegration of these Village Panchayats. The deliberate introduction of landlordism and the Ryet-wari system as against the Manzawari or village tenure system, dealt a death blow to the corporate life of the village communities." 'Report of the Congress Village Panchayat Committee' (1954).
6. "The British Government, by its ruthlessly through method of revenue collection, almost destroyed these ancient ropublics which could not stand the shook of this revenue collection." Mahatma Gandhi, 'Harijan,' 28. 5. 31.

पंचायतों का पुनर्गठन
(Reorganisation of Panchayats)

यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने भी भारत में पंचायतों के महत्व को स्वीकार किया और इस दिशा में अपने दृष्टिकोण से सुधार करने का प्रयास भी किया। लार्ड रिपन ने सन् १८८२ ई० में भारत में स्थानीय स्वायतशासन (Local self Government)की विचारधारा को कार्यरूप में परिणित करने हेतु प्रयास किये। इस दिशा में विकेन्द्रीकरण शाही आयोग (Royal Commission on Decentralization) का संगठन उल्लेखनीय है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस दिशा में प्रथम कदम उठाया और ब्रिटिश सरकार द्वारा इन प्रयत्नों की समालोचना की। सन् १९०९ ई० में लाहोर के २४ अधिवेशन में निम्न विचार व्यक्त किये गये, "राज्य के मन्त्रीयों ने यह स्वीकृत किया कि सन् १८८२ ई० की स्वायत स्थानीय स्वशासन योजना ने सुन्दर व सुगम प्रयास नहीं किये और भारतीय सरकार पर यह दबाव डाला कि इस दिशा में एक प्रभावशाली प्रगति की जायें जिसमें स्थानीय ग्रामीण व नागरिय संस्थाओं को वास्तव में स्वशासित बनाया जाय। साथ ही यह भी आशा प्रगट करते हैं कि सरकार समस्त ग्रामीण पंचायतों से स्थानीय संस्थाओं तक चुने गये अध्यक्ष रक्खे जायँ और उनको समुचित आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाय।"[7] इसी प्रकार सन् १९१० ई० में इलाहबाद के पच्चीसवें अधिवेशन में पुनः ग्राम पंचायतों के पुर्नगठन पर विचार किया गया। इसके उपरान्त ग्रामीण क्षेत्र में महात्मा गाँधी का नेतृत्व प्राप्त हुआ और उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत ग्राम पुर्नगठन एवं पंचायतों के पुर्नस्थापन व पुर्नजन्म पर विशेष महत्व डाला। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न राज्यों में पंचायतों के पुर्नगठन हेतु विभिन्न नियम पारित किये। उनमें से प्रमुख निम्न हैं :—

(१) सन् १९१९ ई० का बंगाल स्वायतशासन नियम ५.
(The Bangal Self-Government act V of 1919)

---

7. "Secretary of State has recognised that the local self government scheme of 1882 has not had a fair trial and has pressed on the Government of India the necessity of an effectual advance in the direction of making Local, Urban and rural bodies really self-governing and it expresses the earnest hope that the Government will be pleased to take early steps to make all local bodies from Village Panchayats upwards elective with elected non-official chairman and to support them with adequate financial aid." Indian National Congress Session, 24; Lahore; (1909).

(२) सन् १९२० ई० का मद्रास पंचायत अधिनियम १५.
(Madras Panchayat act XV of 1920)
(३) सन् १९२० ई० को बम्बई ग्राम पंचायत अधिनियम ९.
(The Bombay Village Panchayat act of IX of19 20)
(४) सन् १९२५ ई० का आसाम स्वायत सरकार अधिनियम
(The Assam Self Government act of 1925)
(५) सन् १९२० ई० का बिहार स्वायत सरकार अधिनियम ५.
(The Bihar Self Government act V of 1920)
(६) सन् १९२२ ई० का पंजाब पंचायत अधिनियम ३.
(The Punjab Panchayat act III of 1922)
(७) सन् १९२० ई० का उत्तरप्रदेश पंचायत अधिनियम ६.
(The U.P Panchayat act VI of 1920)
(८) सन् १९२० ई० का संयुक्त प्रान्त पंचायत अधिनियम ५.
(The C.P Panchayat act V of 1920)

राज्यों में पंचायत अधिनियमों के पास होने के उपरान्त देशी राज्यों ने भी विभिन्न पंचायत अधिनियम पास किये जिनमें इन्दोर, बीकानेर, पटियाला, बड़ौदा, मैसूर इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इसी बीच महात्मा गाँधी का स्वदेशी आन्दोलन निरन्तर अपनी गति से चलता रहा और ग्रामोत्थान की विचारधारा एवं पचायत पुर्नगठन के आन्दोलन को अपना नारा बनाया। इस प्रकार कांग्रेस के प्रयत्न इस दिशा में चलते रहे और कुछ सीमा तक इनको सफलता भी प्राप्त हुई, लेकिन विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी।

स्वतन्त्र भारत में पंचायतों का पुनर्गठन
(Re-Organisation of Panchayats in free India)

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक पंचायतों के पुनर्गठन में अनेक प्रयत्न होते रहे। सर्वप्रथम सन् १९४७ ई० में उत्तरप्रदेश सरकार ने विशेष निर्देशक तत्वों के आधार पर ४० पंचायतों का पुर्नसंगठन किया। निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद ४० में लिखा है, "राज्य ग्राम पंचायतों के संगठन करने के लिये अग्रसर होगा तथा ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त करेगा जो उन्हें स्वायतशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हो।"[8] भारत के संविधान में भी ग्राम पंचायतों के पुर्नगठन पर एक संशोधन द्वारा विशेष व्यवस्था स्वीकार की गई और फलस्वरूप सन् १९५४ तक देश के विभिन्न राज्यों में ९८,२५६ पंचायतें स्थापित की गईं। विभिन्न राज्यों में

8, देखिये यू० पी० पंचायत एक्ट सन् १९४७ ई०

पंचायत विभागों का संगठन किया गया जो विकास आयुक्त एवं स्वायतशासन विभाग के आधीन था। इसके अतिरिक्त सन् १९५४ ई० में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने ग्राम पंचायत कमेटी की नियुक्ति की।

(क) कांग्रेस ग्राम पंचायत कमेटी
(Congress Village-Panchayat Committee)

सन् १९५४ ई० में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने ग्राम पंचायतों की व्यवस्था के अध्ययन के लिये निम्न सदस्यों की एक समिति नियुक्त की:—

(i) डा० कैलाशनाथ काटजू
(ii) श्री जगजीवनराम
(iii) श्री गुलजारीलाल नन्दा
(iv) श्री ज्ञानी गुरूमुख सिंह "मुसाफिर"
(v) श्री केशवदेव मालवीय
(vi) श्री श्रीमन्नारायण (संयोजक)

इस समिति ने निम्न मुख्य सुझाव रक्खे:—

(१) ग्राम पंचायत के विकास को प्रोत्साहन देना चाहिये तथा जनता को इस योग्य बनाना चाहिये कि वह प्रशासन में भाग ले सके तथा सामुदायिक जीवन के अन्य भाग जैसे सामाजिक, आर्थिक तथा न्यायिक पक्षों में भी भाग ले सके।

(२) संविधान के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ग्राम पंचायतें न केवल स्थानीय स्वायतशासन के रूप में कार्य करें अपितु सामाजिक न्याय तथा अन्य सामुदायिक जीवन के विकास तथा पूर्ण रोजगार दिलवाने में प्रभावपूर्ण संस्थाएं बन सकें।

(३) संविधान में निर्धारित मौलिक सिद्धान्तों की प्राप्ति तभी की जा सकती है जबकि आर्थिक तथा राजनैतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण गम्भीर एवं व्यवस्थित प्रयत्न से ग्राम पंचायतों की संस्थाओं द्वारा किया जावे।

(४) राज्य को चाहिये कि वे कर वसूली, उधार, व्यापार इत्यादि ग्राम पंचायतों के प्रोत्साहन द्वारा करे।

(५) ग्राम पंचायतों को ऐसे प्रजातन्त्र का विकास करना चाहिये जिसके द्वारा ऐसे नेतृत्व का विकास हो जो ग्रामीण जीवन के समस्त तत्वों का प्रतिनिधित्व करता हो।

(६) ग्राम पंचायतों को यथासंभव दलबन्दी तथा राजनीति से पृथक रखना चाहिये।

(७) ग्राम पंचायतों के चुनाव में सर्वसम्मति (Unanimity) पर विशेष महत्व देना चाहिये। इसको प्रोत्साहन देने के लिये यह उचित होगा कि उन पंचायतों को अधिक अधिकार दिये जावें जो अपने पंच सर्वसम्मति से चुने।

(८) ग्राम पंचायतों का चुनाव बालिग मताधिकार पर होना चाहिये, ग्राम तथा ग्राम सभा के समस्त सदस्य बालिग होने चाहिये। ग्राम पंचायतों की संख्या ग्राम की जन-संख्या पर आधारित होगी। यह संख्या ५ का गुणनफल होना चाहिये। अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के स्थान उनकी जनसंख्या के अनुसार सुरक्षित होने चाहिये।

(९) ग्राम पंचायतों के चुनाव की पद्धति यथा सम्भव सरल होनी चाहिये।

(१०) ग्राम पंचायत संगठन की इकाई एक ग्राम होना चाहिये, जिसकी जन-संख्या डेढ़ हजार से दो हजार तक हो। कहीं-कहीं पर कुछ गाँवों को मिला कर भी ग्राम पंचायत बनाई जा सकती है।

(११) ग्राम पंचायतों के निरीक्षक के लिये कोई व्यवस्था (देख भाल) होनी चाहिये।

(१२) पंचायतों के अन्तर्गत विभिन्न कार्य सम्मिलित होने चाहिये, जैसे स्वास्थ्य, स्वच्छता, सामाजिक, आर्थिक तथा न्यायिक आदि।

(१३) अदालती पंचायतों के कार्य तथा बनावट ग्राम पंचायत से पृथक होनी चाहिये। प्रत्येय न्यायिक पंचायत कुछ ग्रामों को जिनकी संख्या पाँच से छः हजार तक हो, की सेवा करनी चाहिये। न्यायिक पंचायत में तीस सदस्य होने चाहिये। मुकदमों की सुनवाई इनमें से पाँच सदस्यों द्वारा की जानी चाहिये तथा इनका नम्बर क्रमानुसार आना चाहिये। मुकदमें उसी गांवों में सुने जाने चाहिये जिस में यह मामला हुआ है तथा एक बैठक में ही समाप्त हो जाना चाहिये। वकीलों को न्यायिक पंचायतों के सम्मुख पैरवी करने के लिये अनुमति नहीं देनी चाहिये। न्यायिक पंचायत के पाँच व्यक्तियों में कम से कम एक हरिजन तथा एक स्त्री होनी चाहिये।

(१४) योजना ग्राम पंचायतों के आधार पर बननी चाहिये।

(१५) पंचायतों को लगान वसूल करने का कार्य सौंपना चाहिये तथा इसमें से पन्द्रह से पच्चीस प्रतिशत् तक उनके दैनिक कार्य के व्यय के लिये देना चाहिये। पंचायतों को श्रम कर (Labour Tax) भी लगाने का अधिकार देना चाहिये। जब पंचायत कुछ समय सफलता से कार्य कर ले तो उन्हें निम्न कर लगाने की अनुमति प्रदान करनी चाहिये :—

(i) भूमि-कर (Tax on Land Holdings)

(ii) परिवाहन कर (Vehicles-Tax)
(iii) व्यवसाय कर (Profession-Tax)
(iv) चाय की दुकानों इत्यादि पर कर (Tax on·Tea Stals etc.)
(v) हाट बाजार तथा मेले इत्यादि की व्यवस्था से कर वसूली ।

(१६) ग्राम पंचायतों तथा सहकारी समितियों का कार्य तथा संगठन पृथक् रखना चाहिये ।

(ख) पंचवर्षीय आयोजनों में पंचायत
(Panchayats in Five Year Plans)

गाँवों के निर्माण का साधन होने के कारण पंचवर्षीय योजनाओं में उनकी संख्या बढ़ाने पर बल दिया जा रहा है। पहली योजना में इनकी संख्या ८३, ०८७ से बढ़कर १,१७,५६३ हो गयी और दूसरी पंचवर्षीय योजना में कमीशन ने इनकी संख्या २,४४,५६४ करने की व्यवस्था की है। भारत में ५०० या इससे कम की आबादी वाले गाँवों की संख्या ३,८०,०२० है और ५०० से १००० की आबादी वाले १, ०४, २६८ गाँव हैं। आधी से अधिक ग्रामीण जनता १००० से कम आबादी वाले गांवों में रहती है, पर कमीशन का यह सुझाव है कि पहाड़ी प्रदेशों के अतिरिक्त सभी जगह १००० की आबादी पर एक ग्राम पंचायत होनी चाहिये ।

इस प्रकार विभिन्न आयोजनों, समितियों एवं सम्मेलनों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से अब तक भारत में पंचायत पुनर्गठन पर बड़ा बल दिया गया है। इस सम्बन्ध में जून सन् १९५५ ई० का शिमला अधिवेशन भी महत्वपूर्ण है। इस अधिवेशन में इस बात पर जोर दिया कि ग्राम प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के लिये पंचायतों के क्षेत्र को विकसित करना है। इस अधिवेशन में यह भी निर्णय किया कि पिछड़े वर्गों तथा आदिम जातियों के क्षेत्रों में भी पंचायतों का पुनर्गठन करना चाहिये। ग्राम पंचायत एक ग्राम सभा के रूप में कार्य करेगी जो निर्वाचन पद्धति के आधार पर संगठित होनी चाहिये। इसी के साथ साथ विकेन्द्रीकरण को भारत में प्रचलित करने के प्रस्ताव भी पास किये गये। अब हम ग्रामीण प्रशासन में विकेन्द्रीकरण की विचार धारा पर प्रकाश डालेंगे ।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण
(Democratic De-centralization)

आज हमारे देश में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विचारणा बनी हुई है। यह गाँवों में पंचायतों के पुनर्गठन के उपरान्त प्रशासनिक शक्तियों के अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण पर बल देती है। लोकतन्त्र अथवा जनतंत्र का

अभिप्राय राज्य शक्ति अथवा शासनशक्ति को प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में देना है। सत्ता का बटवारा कुछ लोगों के हाथ में होने की क्रिया को केन्द्रीकरण कहते हैं। इसके ठीक विपरीत विकेन्द्रीकरण में स्थानीय संस्थाओं एवं व्यक्तियों को अपनी बुद्धि और विवेक का पूरा उपयोग करने का अवसर प्रदान किया जाता है। प्रशासनिक सत्ता लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के आधार पर, विभिन्न स्तर पर वितरण किया जाना विकेन्द्रीकरण कहलाता है। जिनमें जनसमूह स्थानीय संस्थाएँ प्रशासनिक इकाइयों के रूप में कार्य करती हैं। इस विचारणा में जन प्रतिनिधि के अधिकार के साथ साथ दायित्व पर भी बल दिया गया है। लोकतन्त्र एवं विकेन्द्रीकरण अत्यन्त निकट सम्बन्ध रखने वाले तत्व हैं।

इस दृष्टि से इस विशेष धारणा पर विभिन्न राज्यों एवं केन्द्रों में प्रयास किये जा रहे हैं। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता पर हमें प्रथम अपना ध्यान आकर्षित करना चाहिये।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता
(Necessity of Democratic De-centralization)

प्रशासन एक महत्वपूर्ण समस्या है। यह समस्या आदि काल से है। मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ साथ इस समस्या का भी विकास हुआ है। प्रशासन के सदा से दो रूप रहे हैं। प्रथम केन्द्रीकरण और द्वितीय विकेन्द्रीकरण। शासन सत्ता के रूपों (Forms) को निर्धारित करना ही हमारी विचारणा की सर्वप्रथम आवश्यकता है। शासन सत्ता के ये रूप निम्न हैं :—

(१) प्रशासनिक सत्ता का स्थान निश्चित करना

प्रशासन से यह समस्या सर्वप्रथम आती है कि प्रशासनिक सत्ता किसके पास रहे। यह व्यक्ति विशेष के हाथ में रहे अथवा केन्द्रीय स्थान पर रहे एवं सर्वत्र विकेन्द्रित की जाय ? इसलिये इस बात का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। विकेन्द्रित शक्तियाँ सामूहिक हितों, विकास योजनाओं आदि में अधिक सफल होती हैं। इस दृष्टि से वर्तमान वातावरण में इसकी आवश्यकता अनुभव की गई और इस दिशा में प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(२) प्रशासन क्रिया

प्रशासन की दूसरी समस्या प्रशासकीय क्रिया का निर्धारित करना है। प्रशासन का स्वभाव, क्षेत्र, संगठन, व्यापकता, कार्य पद्धति आदि को निर्धारित करने की दृष्टि से एवं प्रशासकीय निपुणता लाने के अभिप्राय से इसको विभागों व उपविभागों में वितरित करना आवश्यक होता है। यद्यपि एक प्रशासकीय तन्त्र केन्द्रित और विकेन्द्रित दोनों प्रकार की प्रणालियों में आवश्यक है, लेकिन

जन सहयोग एवं जनेच्छा के आधार पर प्रशासन अधिक सुगमता व सफलता से चलता है।

(३) आर्थिक समस्या

प्रशासन कार्य की आधारशिला धन एवं भौतिक साधनों का संकलन है। प्रशासनिक व्यय की पूर्ति के लिये प्रशासनिक सत्ता को आय के साधनों का निर्माण करना होता है। विकेन्द्रित शासन में यह समस्या अधिक सुगम, सफल तथा दायित्वपूर्ण होती है। इस भाँति विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता इस पहलू से वांछनीय है।

इन प्रमुख आवश्यकताओं के अधार पर सत्ता का विकेन्द्रीकरण श्रेयस्कर माना गया है। इसीलिये वर्तमान भारत में यह नवीन अनुभन द्रुतगति से विकसित हो रहा है। अतः इस विचारणा की पृष्ठभूमि को भी हम यहाँ देखने का प्रयास करेंगे।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की पृष्ठभूमि
(Background of Democratic De-centralization)

प्राचीन काल से प्रशासन सत्ता का कोई न कोई रूप अवश्य विद्यमान् है। मानव की प्रारम्भिक अवस्था में वर्ग, गोत्र और रक्त सम्बन्धों के आधार पर स्थानीय संस्थाओं का जन्म हुआ था। हमारे देश भारतवर्ष में वैदिक काल से इन संस्थाओं ने वर्ण व जाति व्यवस्था के आधार पर पंच अथवा पंचायतों का रूप विकसित किया था। इन संस्थाओं में भी लोकतंत्र का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गाँव धीरे धीरे आत्मनिर्भर इकाइयों के रूप में विकसित हुए और स्थानीय समस्याओं तथा सार्वजनिक हित की दृष्टि से प्रतिनिधित्व के आधार पर संस्थाओं का निर्माण हमें भली प्रकार से विदित है। इन पंच और पंचायत संस्थाओं का आदिकालीन रूप हम पिछले पृष्ठों में देख चुके हैं। धीरे धीरे राज्य व राजाओं का अस्तित्व बढ़ा परन्तु यहाँ भी सत्ता का विकेन्द्रीकरण स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है।

महाकाव्य काल में जन साधारण में व्यासवायिक संघ, मन्त्रिमंडल, मंत्री परिषद व सभी वर्णों के गण आदि समूह व संस्थाएँ विद्यमान थीं। बौद्ध काल में जनपदों का उल्लेख मिलता है। सहकारी आधार पर खेती व पंचायतों का संगठन विद्यमान था। मौर्यकाल व गुप्तकाल में भी पंचायतों की शक्ति पर अधिकार बने और विकसित हुए। ग्राम सभा, ग्राम हताई आदि उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि उस समय में लोकतन्त्र अधिक विकसित रूप से विकेन्द्रित अवस्था में था। शासन की लघुत्तम इकाई गाँव थी। इस प्रकार भारत आदिकाल से लोकतंत्रात्मक

विकेन्द्रीकरण का उद्गम स्थल रहा है। यद्यपि मुगलकाल एवं मुगल सम्राटों की एकाधिकार प्रवृत्ति ने गाँवों के विकेन्द्रित ढ़ाँचे को आघात पहुँचाया। लेकिन सारा देश केन्द्र द्वारा शासित होने पर भी सूबेदार, फौजदार, जमींदार, पटवारी, कानूनगो, कामदार, कोतवाल आदि प्रशासनिक लघु इकाइयाँ आवश्यक हैं। लेकिन अंग्रेजी शासन ने इन रही सही स्थानीय संस्थाओं को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया। भारत में केन्द्रीय शासन प्रणाली को जन्म देकर कर्मचारी वर्ग औद्योगीकरण, नागरीकरण, आदि विषैले तत्वों से भारतीय ग्रामीण जीवन को विघटित कर दिया। राष्ट्रीय जागृति और महात्मा गान्धी के सद्प्रयत्नों ने स्थानीय स्व:शासन की विचारधारा को पुन: जन्म देने के लिये क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न कर दिये। परिणामस्वरूम सन् १६०६ ई०, सन् १६१५ ई०, सन् १६१८ ई०, सन् १६१६ ई० और सन् १६३५ ई० के अधिनियमों ने पुन: लोकतन्त्र की आशा किरण को उत्पन्न किया।

स्वतंत्र भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

(Democratic De-centralization in Free India)

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की विचारण ऐतिहासिक क्रम, एवं प्रशासनिक आवश्यकता पर विचार करने के उपरान्त अब हम यहाँ इसकी भारतीय उपयोगिता एवं इस दिशा में भारतीय प्रयत्नों का उल्लेख करेंगे।

'भारत गाँवों में बसता है' इसलिये भारत में सच्चे स्वराज्य की स्थापना करने हेतु गाँवों के स्वराज्य को बलशाली बनाना होगा। इसी दृष्टि से भारतीय संविधान की धारा ४० में ग्रामीण पंचायतों के पुनर्गठन पर बल दिया गया है और इसी उद्देश्य विशेष को ध्यान में रखते हुए गाँव स्तर पर विकास योजनाएँ एवं सामुदायिक कार्य प्रारम्भ किये गये हैं। ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करने हेतु भारतीय सरकार ने श्री बलबन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का संगठन किया। इस समिति ने ग्राम विकास एवं जन प्रतिनिधियों तथा स्थानीय संस्थाओं तथा प्रशासनिक शक्तियों के अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण पर प्रकाश डाला। अत: गाँव स्तर पर पंचायत, तहसील स्तर पर पंचायत समितियाँ तथा जिला स्तर पर परिषदों की स्थापना का सुझाव प्रस्तुत किया। इसके साथ साथ प्रत्येक स्तर पर इन संस्थाओं के कार्यक्षेत्र, अधिकार एवं उत्तरदायित्व पर भी प्रकाश डाला। इस समिति के सुझावों को शीघ्र ही राष्ट्रीय विकास परिषदों ने स्वीकृत कर लिया और इस दिशा में सम्बन्धित अधिनियम भी पास किये गये।

(ख) न्याय पंचायत (Panchayat Courts)

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण योजना के अन्तर्गत इस तथ्य पर भी बल दिया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विकास एवं न्यायिक (Judicial)कार्यों के लिये भी अलग रूप मे न्याय पंचायतों की रचना होनी चाहिये। इस दृष्टि से नवीन पंचायत अधिनियम सन् १६०७ ई० के अन्तर्गत सात पंचायत क्षेत्रों के लिये एक न्याय पंचायत का भी संगठन किया गया, जो फौजदारी एवं दिवानी, मुकदमों की सुनबाई एवं न्याय का अधिकार रखती है।

(ग) पंचायत समिति (Panchayat Samities)

इस नवीन क्रान्तिकारी योजना के अन्तर्गत एक महान् परिवर्तन यह भी किया गया कि वर्तमान सामुदायिक विकास खंडों को पंचायत समिति के रूप में परिणित कर दिया जाय। इस समिति में ग्रमीण एवं तहसील स्तर पर चुने गये प्रतिनिधियों को मिलाकर गठन किया गया है। जिससे खंड के अन्तर्गत आने वाली समस्त पंचायतों के सरपंच एवं समस्त तहसील पंचायतों के सरपंच सम्मिलित हैं। इस संगठन का सभापतित्व जिला-अधिकारी (Collector) करेगा। प्रशासनिक कार्यों के संचालन हेतु खंड विकास अधिकारी (Block-Development officer) होता है। इसके अतिरिक्त एक कृषि विशेषज्ञ, दो महिलायें तथा जनजाति के प्रतिनिधि, विधान सभा के सदस्य आदि का स्थान निर्धारित हैं। पंचायत समिति निम्न क्षेत्रों में अपना कार्याधिकार रखती है।

(१) सामुदायिक विकास
(२) कृषि
(३) पशुपालन
(४) स्वास्थ्य तथा ग्राम सफाई
(५) शिक्षा
(६) समाज-शिक्षा
(७) यातायात एवं संचार
(८) सहकारिता
(९) कुटीर उद्योग
(१०) पिछड़े वर्गों का कल्याण
(११) आपत्तिक सहायता
(१२) ट्रस्ट
(१३) आकड़ों का संग्रह
(१४) वन

(१५) भवन निर्माण

(१६) प्रचार कार्य

(घ) जिला परिषद् (District-Council)

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण योजना का तृतीय सूत्र जिला परिषदों का संगठन है। जिला स्तर पर यह संगठन समस्त समितियों के प्रधान, राज्य में लोक सभा जिला सहकारी बैंक के अध्यक्ष, महिला सदस्य, के सदस्य, अनुसूचित जनजातियों एवं जातियों के सदस्य तथा जिला विकास अधिकारी (District Development officer) आदि के द्वारा निर्मित होता है। इस परिषद के निम्नलिखित कार्य एवं शक्तियाँ हैं :—

(१) बजट बनाना

(२) समितियों के कार्यों का समन्वय

(३) पंचायतों का निरीक्षण

(४) राज्य द्वारा आदेशों का वितरण

(५) जिले का विकास कार्य

(६) वैधानिक उत्तरदायित्व

(७) सूचना एवं आँकड़े एकत्रित करना

(८) सहकारिता, शिक्षा स्वास्थ्य आदि का निरीक्षण।

इस प्रकार हमने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रथम एवं अग्रणीय प्रयास को राजस्थान की प्रशासनिक क्रान्ति के अन्तर्गत देखने का प्रयास किया है। इस दिशा में अन्य राज्यों में भी प्रयत्न हुए हैं।

(२) आन्ध्रप्रदेश

इस क्रान्ति के त्रिसूत्रीय कार्यक्रम को क्रियात्मक रूप देने का प्रबल प्रयत्न इस राज्य में भी हुआ है। ग्राम खंड एवं जिला स्तर पर स्थानीय संस्थाओं के निर्माण की व्यवस्था कार्यान्वित की गई है। इस राज्य की विशेषता यह है कि यहाँ समस्त खंडों में कानूनी पंचायत समितियाँ स्थापित की जायेंगी।

(३) बिहार राज्य

इस राज्य में इस कार्यक्रम का संशोधित रूप कार्यान्वित किया गया है जिसके अन्तर्गत ग्राम खंड तथा राज्य स्तर पर स्थानीय संस्थाओं के निर्माण की व्यवस्था की है। खंड स्तर पर पंचायत समिति के स्थान पर प्रादेशिक ग्राम पंचायत सलाहकार समिति (Regional Village-Panchayat Advisory Board) की स्थापना हुई। राज्य (State) स्तर पर पंचायत बोर्ड एवं

सलाहकार समिति निरिक्षण का कार्य करेगी। इसके अतिरिक्त ग्राम कचहरी (Village Court) की स्थापना भी उल्लेखनीय है।

(४) मध्यप्रदेश

इस राज्य में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन समिति (Rural Local Self Government Board) की स्थापना हुई है। ग्राम पंचायतें खंडों व जनमत पंचायतों और जिलों में जिला पंचायतें संगठित करने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक २५००० आबादी वाले ग्राम में न्यार्य पंचायत की स्थापना की जायेगी।

(५) उत्तर प्रदेश

यद्यपि इस राज्य ने सं्न् १९४७ ई० से ही स्थानीय स्वशासन अधिनियम पारित किय था। इस अधिनियम के अन्तर्गत ग्राम पंचायतें एवं प्रत्येक क्षेत्र (Circle) में न्याय पंचायतें एवं जिले में जिला पंचायतों की व्यवस्था हो रही है। खंड विकास समितियों का संगठन भी इस राज्य की विशेषता है।

(६) पंजाब

यहाँ विशेष अधिनियन द्वारा जिला मंडलों को समाप्त कर एक नवीन संस्था का रूप दिया जा रहा है। इस संस्था की रचना तथा शक्तियों के विषय में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की गई है।

उपरोक्त राज्यों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समस्त भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया विशेष रूप से क्रियाशील है। यद्यपि इस दिशा में राजस्थान का प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय है परन्तु ऐसी आशा की जाती है कि समस्त भारत में यह योजना शीघ्र लागू हो जायगी।

लोकतांत्रिक विकेण्द्रीकरण से लाभः—
(The Benefits of Democratic De-centralization)

प्रशासनिक समस्याओं एवं भारतीय नागरिकों में आत्मनिर्भरता एवं उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करने हेतु इस नवीन क्रान्ति पर भारतीय सरकार विशेष रूप से प्रयत्नशील है। वर्तमान ग्रामीण समस्याओं के निवारण हेतु लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का आन्दोलन लाभप्रद है, ऐसी आशा की जाती है। इस क्रांति के फलस्वरूप ग्रामीण लोगों में आत्मविश्वास, निष्ठा, साहस एवं तत्परता आदि गुणों को विकसित करने के साथ साथ ग्रामीण आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान की कल्पना इस में निहित है। ग्रामीण समाजशास्त्रियों के मातानुसार लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण से निम्न लाभ हैं:—

(१) प्रशासनिक प्रशिक्षण (Training of Administration)

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की क्रान्ति जनता में प्रशासनिक क्षमता की वृद्धि को पूर्ण रूप से सम्भव बनाती है। जनता को केन्द्रीकरण का भय, अधिकार, परतंत्रता एवं ऐसे अनेक अंकुशों से छुटकारा प्राप्त होगा। इस व्यवस्था से नागरिकता की शिक्षा प्राप्त होने के साथ साथ व्यक्तिगत विकास एवं उत्तरदायित्व पूर्ण जीवन बिताते हुए स्वशासन की भावना जागृत होगी।

(२) जनसहयोग (People's Partnership)

ग्रामीण उत्थान की समस्त योजनाओं में जन-सहयोग की प्रबल आवश्यकता होती है। राज्य द्वारा कार्यान्वित प्रत्येक कार्यक्रम तभी सफल होता है जबकि उपेक्षित जन-सहयोग प्राप्त हो। इस दृष्टि से लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण जन-सहयोग प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

(३) समस्याओं का हल (Solution of Problems)

ग्रामीण भारत आज विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का केन्द्र बना हुआ है। यह समस्यायें बाह्य सहायता से दूर नहीं हो सकतीं। स्थानीय समस्याओं के विश्लेषण एवं निराकरण के कार्यक्रमों की सफलता स्थानीय जन-समुदाय पर निर्भर है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण भारतीय समस्याओं के समाधान कार्यक्रमों को लेकर ही आगे बढ़ा हैं।

(४) उत्तरदायित्व की भावना (Feeling of Responsibility)

ग्राम पंचायतों एवं पंचायत समितियों तथा जिला परिषदों की त्रिसूत्रीय योजना का प्रथम लक्ष्य यह है कि यह ग्रामीण समुदाय में आत्मरक्षा, आत्मविश्वास, आत्मसहायता और स्वशासन की भावनाओं को जागृत करने के लिये जनता में उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करेगी।

(५) ग्राम पुनर्निर्माण (Rural Re-Constructions)

भारत सरकार के सम्मुख ग्राम पुनर्निर्माण की कल्पना को साकार करने की बड़ी प्रबल जिज्ञासा हैं। इसी दृष्टि से लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत सभी संस्थाओं को पुनर्निर्माण का कार्यक्रम प्रदान किया गया है।

(६) ग्राम राज्य (Gram-Rajya)

राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी ने सदा यह प्रयत्न किया है कि भारत में ग्राम राज्य स्थापित हो। ग्राम राज्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए ग्राम राज्य की कल्पना उन्होंने भारतीयों के सम्मुख रखी। इसी प्रबल दैवीय इच्छा को पूर्ण करने के लिये राष्ट्रनायक श्री नेहरू ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का कार्यक्रम पारित किया है।

(७) वास्तविक लोकतन्त्र (Real Democracy)

ग्रामीण भारत में प्रजातन्त्र की किरणों को पहुंचाने के लिये लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का कार्यक्रम प्रयत्नशील है। प्रत्येक ग्राम में जब तक प्रजातन्त्र नहीं पहुँच जाता भारत में प्रजातन्त्र नहीं के समान है। इस दृष्टि से यह कार्यक्रम प्रजातान्त्रिक भावनाओं के विकास हेतु द्रुत गति से क्रियाशील है।

(८) प्रशासनिक मितव्ययता (Administrative Economy)

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण से प्रशासनिक मितव्ययता का भी लाभ होगा। प्रशासनिक कर्मचारियों एवं संगठनों के स्थान पर लोक संस्थाएं कार्य करेंगी जिससे देश को अत्याधिक लाभ होने की सम्भावना है।

(९) समाज का समाजवादी रूप

(Socialistic Patern of Society)

भारत समाज का समाजवादी रूप निर्मित करना चाहता है। समाजवादी विचारधारा व्यक्तिगत अधिकारों पर बल देती है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण भारतीय समाज को समाजवादी रूप में प्रस्तुत करने हेतु प्रयत्नशील है।

(१०) पंचायत राज्य (Panchayat Rajya)

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण से भारत में पंचायत राज्य की स्थापना होगी। पंचायत राज्य विकेन्द्रीकरण की आगामी प्रक्रिया है। वर्तमान समय में पंचायत राज्य पर बड़ा बल दिया जा रहा है।

इस प्रकार हमने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के सम्भावित लाभों का उल्लेख किया है। अभी यह आन्दोलन अपनी अनुभव (Experiment) अवस्था में है। अतः इस दिशा में अनेक समस्याओं का उद्रेक हुआ है। इन समस्याओं का हल भी पता लगाया जा रहा है। अब हम लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की आगामी प्रक्रिया 'पंचायत राज्य' पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे।

पंचायत राज

(Panchayat Raj)

प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की अन्तिम सीमा पंचायती राज्य है। पंचायती राज्य की चर्चा आज भारत में विशेष रूप से चल रही है। पंचायती राज्य के अन्तर्गत भारतीय ग्रामीण पंचायतों का नवीन परिस्थितियों के अनुसार पुनर्गठन कर उन्हें अधिक से अधिक प्रशासनिक शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज्य की स्थापना हुई है। इसमें राजस्थान और आंध्र प्रदेश प्रमुख हैं। यहाँ हम पंचायती राज्य की विचारणा एवं इसके विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करेंगे।

पंचायती राज्य की विचारणा
(Concept of Panchayati Rajya)

गाँधीजी ने गांवों के स्वतन्त्र राज्य को ग्राम राज्य की परिभाषा दी थी। ग्राम राज्य वह राज्य है जिसमें ग्रामीण समाज का राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक शोषण नहीं होता। ग्राम राज्य की ही धारणा पर पंचायती राज्य की विचारणा विकसित हुई है। पंचायती राज्य शोषणविहीन समाज की स्थापना है। ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषदों को प्रशासनिक इकाइयों का रूप देना तथा जन प्रतिनिधियों की बुद्धि एवं योग्यता का सदुपयोग करते हुए दायित्व प्रदान करना पंचायती राज्य की विचारणा है। पंचायती राज्य प्रजातन्त्र का वास्तविक रूप है। प्रजातन्त्र बहुतन्त्र होता है जिसमें जनता को आगे बढ़ने का पूरा पूरा अवसर प्रदान किया जाता है। श्री नेहरू ने कांग्रेस के ६६ वें अधिवेशन में पंचायती राज्य के प्रस्ताव पर बोलते हुए कहा, "इस देश में पंचायती राज्य प्रजातन्त्र का स्थायी आधार बन रहा है। यह न केवल राजनैतिक बल्कि सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में भी एक शक्तिशाली यन्त्र है।"[9] पंचायती राज्य जनता का राज्य है जो केवल जिला परिषदों तक ही सीमित नहीं है बल्कि केन्द्र तक इसका विस्तार है। पंचायती राज्य के प्रस्ताव में स्पष्ट लिखा है, "ग्रामीण पंचायतें न केवल देश में प्रजातन्त्र की नींव हैं बल्कि यह देश के आयोजित विकास एवं शासन में जनता का प्रभावशाली सहयोग प्राप्त करती हैं। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में हमारी जनता का रहने वाला विस्तृत समुदाय इन विशाल कार्यों से अति निकट रूप से सम्बन्धित है।"[10]

---

9. "Panchayati Rajya is becoming a solid Foundation of Democracy in the country and a powerful instrument not only in the political but also in the social and Economic fields." Said Shri Jawaharlal Nehru speaking on the Resolution on Panchayati Rajya moved at the 66th session of the National Congrese held at Bhavnagar.

10. "Village Panchayats are not only foundation of Democracy in the country, but also secure the effective participation of the people in the Government and the planned dovelopment of the country, so that the vast numbers of our people living in the rural arers are intimately associated in these Vital functions." Congress resolution on Panchayti Raj, Published in 'Kurukshetra,' March (1961), p. 4.

इस प्रकार पंचायती राज्य वह विचारणा है जो जनता का शासन, जनता के लिये शासन और जनता द्वारा शासन की विचारणा पर प्रमुख रूप से आधारित है, इस धारणा का उद्देश्य नौकरशाही एवं शोषणकारी तत्वों को समाप्त करना है। पंचायत राज्य की विचारणा भारत में समाजवादी समाज की रचना चाहती है। अतः यह स्पष्ट है कि पंचायत राज्य जनता का राज्य है।

पंचायत राज की विचारणा पर विचार कर लेने के उपरान्त हम यहाँ संक्षेप में कुछ आधार भूत कारकों का वर्णन कर देना भी आवश्यक समझते हैं जो हमारे देश के पंचायती राज्य के लिये सहायक हैं। हमारे देश भारतवर्ष की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पवित्रता सर्वोतम है। यहाँ का सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन ऐसे कारकों पर आधारित है जो पंचायत राज के समर्थक हैं।

पंचायत राज से सम्बन्धित सामाजिक व सांस्कृतिक कारक
(Social and cultural factors relating Panchayat Raj)

पंचायत राज से सम्बन्वित सामाजिक व सांस्कृतिक कारक निम्न हैं।

(१) ग्रामीण परिवार (Rural Family)

परिवार भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधार शिला है। यहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में संयुक्त परिवार पाये जाते हैं। यह परिवार ७ से ११ पीढ़ियों तक संयुक्त रहते हैं। परिवार का यह संगठन सहयोग और सहिष्णुता पर निर्भर है। प्रत्येक सामाजिक सांस्कृतिक कृत्यों में पारिवारिक सहयोग रहता है। परिवार के समस्त सदस्य मुखिया के आदेशों पर चलते हैं। अतः ग्रामीण पारिवारिक संस्कृति के मूल में पंचायती राज्य की भावना व्याप्त है।

(२) वृद्धों का आदर (Respect of Elders)

भारतीय सामाजिक जीवन की यह भी विशेषता है कि आयु के आधार पर आदर किया जाता है। प्रत्येक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक कार्य इन्हीं के आदेश पर संचालित होते हैं। पैतृक पूजा इसका प्रमाण है।

पंचायत व्यवस्था में भी पारिवारिक वृद्ध पुरुषों का यथा रूपेण स्थान है। इस भावना ने पंचायती नींव को सदा सुदृढ़ बनाया है।

(३) जाति पंचायतें (Caste Panchayats)

ग्रामीण सामाजिक संगठन में जाति व्यवस्था एक प्रभावशाली संस्था है। जातीय पंचायतें ग्रामीण सामाजिक जीवन को प्रभावित एवं नियंत्रित रखती हैं। जाति पंचायतों के प्रतिनिधि ही ग्राम पंचायतों के प्रतिनिधि होते हैं। इस दृष्टि से

पंचायत व पंचायती राज भारतीय ग्रामीण जीवन का सदा से आधार स्तम्भ रहा है ।

(४) वर्ग संगठन (Class Organisation)

व्यवसाय एवं धन्धो के आधार पर ग्रामीण वर्ग संगठन भी इस क्षेत्र में महत्व-पूर्ण स्थान रखते हैं । वास्तव में व्यवसाव के आधार पर ही जातीय संगठन एवं जाति व्यवस्था निर्मित हुई है । ग्रामीण क्षेत्र में आज भी वर्ग संगठनों के प्रति लोगों में निष्ठा है । पंचायत राज में वर्ग संगठन प्रभावशाली कार्य करते हैं । इस दृष्टि से वर्ग व्यवस्था भी पंचायत राज की सफलता का प्रमुख अंग है ।

(५) पंच परमेश्वर (Panch as Five-Gods)

पंच फैसला एवं पंच परमेश्वर भारतीय संस्कृति की परम्परागत विशेषता है । ग्रामीण क्षेत्रों में पारस्परिक झगड़े, विवाद आदि पंच चुनकर निपटा लिये जाते हैं । पंचों के प्रति यहाँ सदा से विश्वास रहा है । पंचों को ईश्वर का प्रति-निधि माना जाता है । उनके प्रति यह विश्वास है कि वे आपसी द्वेष को न्याय करते समय ध्यान में रख ही नहीं सकते क्योंकि पंच बनकर बैठते ही उनमें ईश्वर का अंश उपस्थित हो जाता है और वे निष्पक्ष होकर न्याय करते हैं । अतः यह तथ्य भी भारत में पंचायत राज की सफलता का द्योतक है ।

इस प्रकार भारत में पंचायत राज के पोषक अनेक ऐसे तत्व व्याप्त हैं जो इस नवीन क्रान्ति की सफलता के आधार स्तम्भ हैं । सामाजिक प्रथाएं, परम्परायें, आदर व नैतिकता, सत्य, अहिंसा, दया की भावना, संयुक्त परिवार प्रणाली, पारस्परिक सहयोग, ग्राम परिवार, त्यौहार एवं मेले आदि ऐसे अनेक कारक हैं जो पंचायती राज की नींव को दृढ़ किये हुये हैं ।

भारत में पंचायत राज के पोषक सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारकों पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय ग्रामीण वातावरण में पंचायत राज सर्वश्रेष्ठ है । भारत की सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्राचीनता के कारकों पर विवेचन करने के बाद हम यहाँ वर्तमान परिस्थितियों में पंचायत राज की आवश्यकता पर भी विवेचन करना आवश्यक समझेंगे ।

पंचायत राज की आवश्यकता (Necessity of Panchayat Raj)

गांधीजी की अभिलाषा थी कि भारत में ग्राम राज्य अथवा पंचायत राज की स्थापना के उपरान्त रामराज्य हो जायेगा । उन्होंने एक स्थान पर कहा है, "मैं एक ऐसे विधान के लिए चेष्टा करूंगा जो भारत को हर तरह की गुलामी व प्रभुता से मुक्त करेगा । मैं एक ऐसे भारत के निर्माण के लिये प्रयत्नशील रहूँगा

जिसे गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपना देश समझेगा। ठीक इसके विपरीत आज सही अर्थों में जनता का राज्य नहीं है। नौकरशाही, सारभौम सत्ता एवं पूंजीवाद ऐसे अनेक तत्व विद्यमान हैं जिससे गांधीजी की अभिलाषा का साक्षात्कार नहीं हो सका। इसीलिये आचार्य विनोबा ने एक स्थान पर कहा है कि "भारत में पंचायत राज की शीघ्र स्थापना अत्यन्त आवश्यक है इसके बिना स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं है। स्वराज्य अर्थात् अपना राज्य जब तक एक एक भारतीय का राज्य नहीं होगा, तब तक स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं है।" इस प्रकार पंचायत राज की स्थापना वर्तमान भारत की अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है। इस दृष्टि से कांग्रेस इस दिशा में सब शक्तियाँ लगाकर इसे शीघ्र स्थापित करना चाहती है। सरकार के सम्मुख पंचायत राज की स्थापना का कार्यक्रम है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस के ५५ वें अधिवेशन में प्रस्ताव पास हो चुका है।

भारत की वर्तमान परिस्थितियों में पंचायत राज की स्थापना आवश्यक है। इसमें दो मत नहीं हैं और सतत् प्रयत्नों के उपरान्त सफलता भी दृष्टिगोचर हो रही है। अतः इस प्रसंग में हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम इस नवीन आन्दोलन के लाभों पर प्रकाश डालें।

पंचायत राज से अपेक्षित लाभ

(Proposed benefits from Panchayat Raj)

प्रशासन एवं न्याय सफल जीवन की अनुभूति है। न्याय का आधार नियम न होकर कर्म होना चाहिये। इस दृष्टि से समाज में चाटुकारिता तथा चालाकी एवं अन्य प्रशासनिक अपवादों को दूर करने के लिये शासन व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। पंचायत राज प्रशासनिक सुधार करने के साथ साथ भारत के सामाजिक-आर्थिक जीवन में भी सुधार लाने की अपेक्षा रखता है। पंचायत राज से निम्न लाभ होंगे।

(१) शोषणविहीन समाज

उपराष्ट्रपति तथा वर्तमान राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने इस सम्बन्ध में कहा है कि हमारे देश में शोषणविहीन समाज की स्थापना होनी चाहिये। भारत में जिस दिन शोषक और शोषित का भेद मिट जायेगा वह दिन भारत के स्वराज्य का प्रथम दिन होगा। स्वराज्य अर्थात् शोषणविहीन राज्य। पंचायत राज्य शोषण विहीन समाज रचना का नाम है।

(२) सुगम एवं न्यायोचित न्याय व्यवस्था

पंचायत राज से यह अपेक्षा की जाती है कि भारत में निष्पक्ष न्याय की सुगम

व्यवस्था हो। भारतीय संस्कृति की प्राचीन विशेषताओं को ध्यान में रखकर इस कार्यक्रम के अन्तर्गत न्याय पंचायतों का आयोजन इसीलिये किया गया है।

(३) लोकहितकारी शासन

श्री एस० के० डे० के शब्दों में 'लोकहितकारी शासन तब तक जिन्दा नहीं रह सकता जब तक छोटे छोटे आदमी का समर्थन प्राप्त न हो। अब पंचायतों को ग्रामीणों की प्रतिनिधि सभाओं के रूप में काम करना है। जनता अपना राज स्वयं करने की क्षमता उत्पन्न करे। पंचायत राज इस अभिलाषा को पूर्ण करने में प्रयत्नशील है।

(४) नौकरशाही का अन्त

जयप्रकाश नारायण ने कहा है, "स्वराज्य में न कोई नौकर होगा और न मालिक सब एक राष्ट्रीयता के सच्चे नागरिक होंगे।" इस सम्बन्ध में इन्होंने अपने प्रबन्ध (Thesis) में लिखा है, "मैं प्रार्थना करता हूँ कि आगामी कदम सम्मति द्वारा शासन में ही जनता के सहयोग का शासन है। अथवा जो मैं सहयोगिक प्रजातन्त्र कह चुका हूँ।"[11]

(५) विकास योजनाओं में सहयोग

विकास की समस्त योजनाएं जन-सहयोग पर आधारित होती हैं। सामुदायिक विकास योजनाओं में जन-सहयोग प्राप्त न हो सका। इस दृष्टि से पंचायत राज विकास योजनाओं में जन-सहयोग की अपेक्षा की जाती है।

(६) नेतृत्व का प्रशिक्षण

रिजर्व बैंक के योजना विवरण में लिखा है, "विकसित मस्तिष्क एवं योग्य नेतृत्व को प्राप्त करने की समस्या अभी तक हल नहीं हो सकी है जो जटिल क्रियाओं को नियंत्रित कर सके।"[12]

---

11. "I submit that the next step after government by consent is people's participation in government, or what I have called participating democracy." Jayprakash Narain, 'Thesis on the construction of Indian Policy' Published in 'Kurukshetra' April, (1961), p. 5.

12. The problem of securing capable and development minded Leadership, which would handle the complex activities is not yet solved." Review of development of planning division of Reserve Bank of India, published in Kurukshetra' April (1961) p. 17,

उपरोक्त लाभ पंचायत राज से प्राप्त होने की आशा की जाती है। जहां तक सैद्धान्तिक रूप का प्रश्न है यह आशा पूर्ण होनी चाहिये किन्तु यह प्रयोग एवं अनुभव ही बतायेगा कि ये उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त होते हैं।

पंचायत राज में विश्वास
(Faith in Panchayat Raj)

पंचायत राज की विचारधारा कुछ वर्षों से ही भारत में विकसित हुई है। पंचायत राज पुरातन पंचायत व्यवस्था और उस विचारणा से भिन्न है। यह विचारणा भारत की वर्तमान परिस्थितियों से विकसित हुई है। इसका विश्व के सामाजिक आर्थिक ढांचे से विशेष सम्बन्ध है। इस तरह सब पाश्चात्य देश स्वयं जीवन के प्रत्येक पहलू में विकेन्द्रीकरण का विचार अपना रहे हैं तो भारतीय परिस्थितियों में इस विचारणा के प्रति निष्ठा एवं विश्वास होना आवश्यक है। इस दृष्टि से हमें अब यहां यह सोचना है कि पंचायत राज के प्रति इन विश्वासों के क्या आधार हैं। पंचायत राज के प्रति निष्ठा के निम्न आधार निर्धारित किये जा सकते हैं :—

(१) प्रशासनिक इकाईयां (Administrative Units)

केन्द्र से गाँव का शासन नहीं हो सकता किन्तु फिर भी गाँवों का सम्बन्ध केन्द्र से निरन्तर स्थापित करने हेतु सामुदायिक विकास योजनायें प्रारम्भ की गईं, परन्तु प्रशिक्षित व्यक्तियों के अभाव में इस दिशा में आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। परिवाहन एवं आदानप्रदान के साधनों के विकसित न होने से ग्रामीण इकाईयों का सम्बन्ध केन्द्रीय शासन से स्थापित करने हेतु पंचायती राज की स्थापना त्रिसूत्री शृंखला से सम्भव है।

(२) लोकतंत्र का स्थायी आधार
(Solid foundation of Democracy)

पंचायती राज शासन, शासक और शासित का भेद मिटाकर सच्चे अर्थों में लोकतंत्र की स्थापना करेगा। लोकतंत्र का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति को विकास एवं आगे बढ़ने का समान अवसर प्रदान करना है।

(३) राष्ट्रीय विलयीकरण (National-Integration)

पंचायत राज राष्ट्रीय विलयीकरण में भी सहयोग प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में श्री नेहरू ने एक स्थान पर कहा है, "मैं तुम्हें पहले ही कह चुका हूँ कि पंचायतें किस प्रकार गाँवों में हरिजन और ब्राह्मणों के मध्य विलयीकरण ला सकती हैं। ये दूरस्थ गाँवों के केन्द्र के साथ व्यक्ति और परिवार के मध्य विलयी-

करण सम्बन्ध स्थापित करने में भी सहायता करेंगी ।"[13] अतः स्पष्ट है कि पंचायत राज सामाजिक एवं राष्ट्रीय विलयीकरण की योजना में सहयोगी है।

(४) नवीन नेतृत्व (New Leadership)

पंचायत राज ग्रामीण क्षेत्रों में नवीन नेतृत्व का विकास करेगा। पंजाब के चुनाव में इस नवीन प्रवृत्ति के उदय का साक्षात् प्रमाण प्राप्त हुआ है। यहां नागरीय युवक (Urban Youths) गाँवों में पुनः जाकर रचनात्मक कार्यों में भाग ले रहे हैं।

(५) सामुदायिक विकास को चुनौती
(Challenge to Block Development)

यद्यपि पंचायत राज्य के पूर्व सामुदायिक खंड के कार्यक्रम स्थायी रूप से गाँवों में कार्य कर रहे थे। इनका उद्देश्य जनता व सरकार में सामंजस्य स्थापित करना था। अब इन मध्यस्थ संगठनों की आवश्यकता नहीं है। पंचायत राज समस्त विकास के कार्यक्रम जनता के हाथों में दे देगा।

पंचायत राज क्रियाशील रूप में
(Panchayat Raj in the form of Action)

पंचायत राज के महत्वपूर्ण विचारों ने इसे कार्यान्वित कराने में अकथनीय योग दिया। राष्ट्रीय कांग्रेस के ६६वें अधिवेशन में जो भावनगर में हुआ था, पंचायत राज के प्रस्ताव की घोषणा की। इस घोषणा में कहा गया है, "ग्रामीण पंचायतों के संगठन और उन्हें शक्तियां तथा अधिकार प्रदान करने के लिये राज्य कदम उठायेगा जो उनके स्वशासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने के लिये आवश्यक है।"[14] इस प्रस्तावना के उपरान्त राजस्थान और आन्ध्र राज्यों में पंचायत राज स्था-

---

13 "I have already told you how panchayats can bring about integration amongst-say Harijans and the Brahmins, in the villages. They will also to link and in way to integrate individuals or families in the far distant villages with the union." Jawahar Lal Nehru, 'Blitz' his interview with editor.

14 "The States shall take steps to organise village panchayats and indow them with such powers and authority as may be neccessary to enable them to function as units of self government." Congress resolution on panchayat Raj published in 'Kurukshetra'; March 1961, p. 4.

पित हो गया और मैसूर तथा मद्रास में भी शीघ्र स्थापित होने जा रहा है। रा. ने भिन्न व्यव- के पंचायत अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक ३००० वाली जनसंख्या के स्थान ? अपेक्षा २००० जनसंख्या वाले प्रत्येक गाँव में पंचायत होगी, अतः ३७०० से १.५२,३३७ तक पंचायतें स्थापित हुई हैं। इस प्रकार इन राज्यों ने पंचायत राज की स्थापना में सर्वप्रथम अपना कदम बढ़ाया। कालान्तर में पंचायती राज भारत के समस्त राज्यों में स्थापित होगा। पंचायत राज न केवल जिला स्तर तक ही सीमित है बल्कि प्रान्त और केन्द्रों तक इसका विस्तार होने की शीघ्र सम्भावना है। वर्तमान नवीन सूचनाओं के अनुसार राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर तथा आसाम में पंचायत राज स्थापित हो चुका है। यू० पी० और पंजाब इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। मध्यप्रदेश ने अधिनियम बना लियें हैं तथा बिहार में नियम प्रस्तावित होने वाला है। महाराष्ट्र और गुजरात में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण समितियों का गठन किया गया है। केरल राज्य और पश्चिमी बंगाल भी अधिनियम पारित करने वाले हैं।

पंचायत राज का विकास
(The Development of Panchayat Raj)

पंचायत राज का विकास केन्द्र तक होगा। इस सम्बन्ध में श्री जयप्रकाश नारायण ने अपनी सम्मति प्रदान करते हुए कहा है "मैं इस तरह विशेष ईमानदारी से प्रस्तावित करता हूँ कि पंचायत राज, जिला स्तर पर ही स्थगित नहीं बल्कि नई दिल्ली तक विकसित है।"[15] लोक सभा में प्रेस अधिवेशन पर बोलते हुए बनारस के सम्पादक ने कहा है, "सरकार का यह निर्णय एक ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण निर्णय है। पंचायत एवं सहकारिता एक दूसरे के समकालीन हैं और इन्हीं के द्वारा ग्राम राज्य की स्थापना हो सकती है।"[16] पंचायत राज के विकास के कार्यक्रमों के अन्तर्गत विचार व्यक्त करते हुए सामुदायिक व सहकारिता

---

15 " I therefore plead most earnestly that panchayat Raj be not terminated at the district level but extended forward up to new Delhi." J. P. Narain 'Reconstrucetion of Indian polity', Thesis 'kurukshetra' May (1961); p. 7.

16 "That the decision to establish panchayat Raj throughout India is historice and significant, panchayat and co-operative are complementary to each other and Gram Swaraj can be established only through them. "Editor, (Banaras-Hindi) Press reacation to Lok-Sabha debate, 'kurukshtra'; (May); 1961. p. 27.

मंत्रालय ने अपने १९६०-६१ के कार्यक्रम के अन्तर्गत बतलाया कि पंचायत राज कृषि उत्पादन, जनसहयोग, शिक्षा और प्रशिक्षण सुविधाओं के विकास कार्यक्रमों को अपने हाथ में लेगा। तृतीय पंचवर्षीय योजना में २९७ करोड़ रु० विकास कार्य में खर्च होंगे जो देश में पंचायत राज की प्रगति के लिये आवश्यक हैं सन् १९६०-६१ तक छः राज्यों में पंचायत राज्य स्थापित होगा जिनमें उड़ीसा, मद्रास, आंध्रप्रदेश, राजस्थान, आसाम और मैसूर हैं।

पंचायत राज का मूल्यांकन
(Evaluation of Panchyat Raj)

भारत सरकार ने पंचायत राज की स्थापना समस्त भारत में करने की घोषणा की है। इस सम्बन्ध में विभिन्न मूल्यांकन समितियों का गठन किया गया है। इन समितियों ने राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश व अन्य राज्यों में भ्रमण कर मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इन मूल्यांकनों में पंचायत "समितियों एवं जिला परिषदों की आर्थिक समस्याओं का प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त पंचायत राज के उद्देश्यों की स्थिरता पर बोलते हुए सामुदायिक विकास एवं सहकारिता के मंत्री श्री डे ने बताया है, "(१) इनको नीचे से नेतृत्व का निर्माण करना चाहिये। (२) इन्हें शक्तियों के प्रगतिशील विर्सजन एवं वितरण को विकसित करना चाहिये। (३) इन्हें मानवीय एवं भौतिक साधनों का आंशा वादी उपयोग करना चाहिये। (४) इन्हें जनता में अपने स्वयं की घटनाओं की प्रगतिशील व्यवंस्था करने की योग्यता का विकास करना चाहिये।" [17] इस प्रकार इस दिशा में मूल्यांकन एवं सुझाव पारित किये गये हैं। इसमें प्रमुख अभाव निम्न हैं :—

(१) पंचायत राज अपूर्ण है
(Panchayat Raj is not a deguate)

सर्वोदयी नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा है कि यद्यपि पंचायत राज प्रजातन्त्र का एक स्थाई सन्तोषप्रद और विख्यात कदम है तथापि यह अपने आप में पूर्ण नहीं है। पंचायत राज केवल जिला स्तर तक सीमित है। राज्य और

---

17 "(1) It must build up leadership from below.

(2) It must promote progressive dispersal and devolution of power.

(3) It must optimise utilisation of resources in man and materials.

(4) It must promote competence in people for progressive management of their own affairs by themselves."

S. K. Day.

केन्द्र स्तर पर विभिन्न प्रशासनिक प्रवृत्तियां कार्य करती हैं। अतः ये दो भिन्न व्यवस्थाये सामंजस्य पूर्ण नहीं हैं।

(२) सामुदायिक विकास की स्थानापूर्ति नहीं
(No Substitute of Community Development)

ग्रामीण क्षेत्रो में पंचायत राज को सामुदायिक विकास योजना की स्थानापूर्ति योजना मानी जाती है परन्तु क्रियात्मक रूप से ऐसा प्रतिलिक्षत नहीं होता। इस सम्बन्ध में श्री के० एस० वी रमन ने लिखा है। "लोकतांन्त्रिक विकेन्द्रीकरण इस आन्दोलन का कुछ सीमा में अनुपयुक्त नाम है।"[18] भारत के विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ हैं। ग्रामीण ढाँचे में जातिवर्ग व अन्य सामाजिक-आर्थिक कारक कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जनता में वैज्ञानिक विशेषताओं का एवं व्यवस्था विज्ञान का अभाव रहता है जो प्रतशिक्षित कार्यकर्ताओ द्वारा ही पूर्ण हो सकता है। इस दृष्टि से पंचायत राज में पंचायतों के विकास के पूर्ण अधिकार देने मात्र से ही सामुदायिक विकास योजना की स्थानापूर्ति नहीं हो जाती।

इस प्रकार अनेक विचारकों ने पंचायत राज्य के अभावो एवं सुझावों पर अपने मत प्रगट किये हैं और ऐसी आशा की जाती है कि भविष्य में इन सुझावों से पंचायत राज को सफलता प्राप्त होगी।

ग्रामीण नेतृत्व
(Rural Leadership)

ग्रामीण प्रशासन एवं प्रशासनिक संस्थाओं के अन्तर्गत हम ग्रामीण नेतृत्व (Rural Leadership) पर संक्षेप में विचार कर आये हैं। ग्रामीण नेता और नेतृत्व का प्रशासनिक एवं राजनैतिक महत्व होने के साथ साथ इसका ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक महत्व भी है। इस दृष्टि से हम इस विषय में यहा स्पष्ट रूप से विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं। अतः प्रथम हम ग्रामीण नेता पर विवेचन करने का प्रयास करेगे।

ग्रामीण नेता की धारणा
(Concept of Rural Leader)

सामान्य रूप से नेता वह व्यक्ति विशेष होता है जो समूह विशेष को एक

---

18 "Democratic de-centralization was the some what an inappropriate name given to this movement." K. S. V. Raman 'Panchayat Raj no substitute for community development.' "Kurukshetra", January 26th, (1961) p. 26.

सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति हेतु पथ प्रदर्शित करता है। जिस समूह विशेष को वह एक सामूहिक उद्देश्य के प्रति जागरूक करता है, वह उससे सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से प्रभावित होता है। गतिशील एवं अस्थाई समूहों में नेता का रूप भी गतिशील एवं अस्थाई होता है। नेतृत्व में कार्य एवं स्थिति (Status & Role) का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में नेता को जनता द्वारा निर्देशित कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। वह अपने कार्यों तथा विभिन्न समूहों के निर्देशों का अवश्यमेव पालन करता है। ग्रामीण नेता के लिये लिंग, आयु एवं सामाजिक स्थिति के आधार पर निर्देशित आज्ञाओं का भी पालन करना आवश्यक होता है। ग्रामीण नेतृत्व में इन कारकों का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्राचीनकाल में ग्रामीण नेता

प्राचीन काल से ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण नेता और नेतृत्व का अस्तित्व रहा है लेकिन इन नेताओं की यह विशेषता रही है कि इनकी स्थिति एवं कर्तव्य पूर्ण प्रशासनिक नहीं थे। वयोवृद्ध व्यक्ति ही सामूहिक नेता माने जाते रहे हैं। कालान्तर में जातीय आधार पर ग्रामीण नेता का रूप विकसित हुआ है और यही रूप आज भी दृष्टिगोचर होता है। वर्तमानकालीन परिस्थितियों में आद्योगीकरण एवं नागरीकरण के प्रभावों से कुछ परिवर्तन अवश्य प्रतीत होता है इसके साथ ही साथ हमें वर्तमान ग्रामीण नेता की सामाजिक स्थिति एवं कर्तव्यों में जातीयतावाद का प्रभाव ही दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण नेता परम्परागत रूढ़ियों के आधार पर निर्धारित होता है। जातीय संस्थाएं, परम्पराओं एवं रूढ़ियों की वाहक है। अतः यह स्पष्ट है कि वर्तमान ग्रामीण नेता के कर्तव्यों में परम्पराओं का अवश्य ही प्रभाव होता है। इतना ही नहीं गाँवों में परम्परागत नेता ही दृष्टिगोचर होते हैं। सामाजिक एवं जातीय आधार पर बनाये गये नेता अपने अधिकार को वंश परम्परा तक बनाये रखते हैं। उदाहरणार्थ यदि बहादुरखां किसी समय में गाँव का पटेल चुन लिया गया है तो उसकी आने वाली समस्त सन्तति को यह पद प्राप्त होगा, चाहे व्यक्ति विशेष में वह गुण एवं क्षमता हो या नहीं जो बहादुर खां में थी। जातीय एवं सामाजिक आधार पर निर्मित नेता ग्रामीण पंचायतों में जातीय एवं समूह विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं।

वर्तमान ग्रामीण नेता

वर्तमान युग में कुछ राजनैतिक एवं सामाजिक दलों के प्रभावों से इस दिशा में परिवर्तन हो गये हैं। अब ग्रामीण क्षेत्रों में नागरीय तत्वों का विकास प्रतिलक्षित होता है। नगरों के समीप जो गांव बसे हुये हैं उनमें ग्रामीण नेता के

लिये यह आवश्यक हो गया है कि वह राजनैतिक दलों से सम्बन्ध स्थापित रखे। राष्ट्रीय गतिविधियों का उसे पूर्ण परिचय प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त वह स्वयं एक समाज-सेवी, परिश्रमी एवं शिक्षित होने के साथ साथ एक अच्छा वक्ता भी हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण नेता के मान्य कर्तव्यों में राजनैतिक जागृति (Political concious) का विकास हो गया है। शिक्षा के प्रचार एवं यातायात तथा परिवाहन के साधनों के विकास से उसका नागरिक सम्बन्ध बढ़ गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान युग में ग्रामीण नेता की विचारणा एवं उद्देश्यों में परिवर्तन हो रहे हैं। ग्रामीण नेता अब सामाजिक एवं जातीय नेतृत्व करने के साथ साथ सम्पूर्ण गाँव का नेतृत्व करने की क्षमता रखने वाला होना चाहिये।

ग्रामीण नेता के कर्तव्यों, उद्देश्यों एवं विचारों में परिवर्तन होने के कई कारण हैं। इस समय भारतवर्ष की नीति गांवों को आत्मनिर्भर प्रशासनिक, सामाजिक एवं आर्थिक इकाईयों के रूप में स्वतन्त्र रूप से कार्य करवाना चाहती है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण से पंचायतों को पुनर्गठित करने की योजनायें गांवों में इसी धारणा से पारित की जा रही हैं। ग्रामीण नेता के कार्य क्षेत्रों का विकास किया जा रहा है। अब वह न केवल ग्रामीण परम्पराओं एवम् रीति रिवाजों का आज्ञाकारी ही होगा बल्कि उसका अब यह उत्तरदायित्व है कि वह ग्राम में मतदान के आधार पर निर्माण के कार्यों में विशेष प्रगति करे। इस प्रकार वर्तमान युग में ग्रामीण नेता का क्षेत्र अधिक विकसित हो गया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान ग्रामीण नेता शिक्षित, प्रगतिशील एवं आदर्श व्यक्तित्व वाला होना चाहिये। ग्रामीण नेता के प्रशिक्षण हेतु नारी शिक्षण केन्द्र भी इस दिशा में यद्यपि प्रयत्नशील है परन्तु उल्लेखनीय प्रगति दृष्टिगोचर नहीं होती। समाजशिक्षा एवं पंचायतों में रात्रि पाठशालायें एवं सूचनाकेन्द्र आदि भी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। इन सब कार्यक्रमों से ऐसी आकांक्षा की जाती है कि आगे आने वाले समय में ग्रामीण नेता ग्रामीण जीवन की अपेक्षित समस्याओं के निवारण एवं ग्राम विकास के कार्यक्रमों में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

ग्रामीण नेतृत्व की धारणा
(Concept of Rural Leadership)

नेतृत्व उन क्रियाओं की प्रक्रिया है जो नेता द्वारा की जाती है। नेता समूह विशेष की मान्यताओं के आधार पर उन्हें प्रभावित करने तथा सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जो कार्यक्रम एवं क्रियायें करता है वह नेतृत्व कहलाती हैं। समूह में घटित होनी वाली क्रियायें नेतृत्व के अन्तर्गत आती हैं। एक समूह विशेष में दो व्यक्तियों अथवा अधिक व्यक्तियों के मध्य घटित होने वाली घटनायें नेतृत्व की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का रूप समस्त समूह में विद्यमान होती है। समूह के

कुछ सदस्य विचारते हैं, सम्मति प्रदान करते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं, कुछ आवश्यक प्रमाण देते हैं इस प्रकार किसी निर्धारित दिशा में प्रवृत होते हैं जो सामूहिक हित की होती हैं। यह समस्त प्रक्रिया नेतृत्व की प्रक्रिया कहलाती है। जो व्यक्ति विशेष इन समस्त क्रियाओं को करने में अग्रसर होता है वह नेता एवं उसकी क्रियायें नेतृत्व कहलाती हैं। यह समस्त प्रक्रिया ग्रामीण पर्यावरण में भी घटित होती है। ग्रामीण समूहों में भी ऐसे प्रौढ़ व्यक्ति हैं जो परिवर्तन एवं प्रगति में विश्वास रखते हैं, तथा सामाजिक आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, ऐसी क्रियाओं में भाग लेते हैं। आधारभूत से ग्रामीण नेतृत्व परम्परागत हैं। यद्यपि स्वतन्त्रता के उपरान्त ग्रामीण नवीन सामाजिक प्रभावों से नेतृत्व की प्रक्रिया में परिवर्तन आ गये हैं। ग्रामीण समाज में विभिन्न प्रकार के नेतृत्व के रूप पाये जाते है। अतः हम ग्रामीण नेतृत्व के प्रतिमानों का अध्ययन करेंगे।

ग्रामीण नेतृत्व के प्रतिमान
(Patterns of Rural leadership)

ग्रामीण सामाजिक ढांचे को अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि ग्रामीण नेतृत्व में निम्न प्रतिमान पाये जाते हैं :–

(१) रक्त समूह नेतृत्व (Kinship Leadership)

ग्रामीण सामाजिक परिस्थितियों को देखने से ज्ञात होता है कि यहां रक्त समूहों की स्थिरता व्याप्त है। ये समूह परम्पराओं के आधार पर संगठित हैं। वन्यजातियों एवं पिछड़े वर्ग के लोगों में परम्पराओं पर आधारित पंचायतें विद्यमान हैं। जातीय पंचायतों का रूप आज हमें सभी ग्रामीण क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक रक्त समूह का अपना मुखिया अथवा नेता होता है। ये नेता समूह में तुलनात्मक प्रौढ़ होते हैं और अधिकांश रूप से अशिक्षित भी। इन नेताओं की निरन्तरना परम्परागत आधार पर ही है।

(२) संस्थात्मक नेतृत्व (Institutional Leadership)

ग्राम पंचायतें ग्रामीण संस्थात्मक नेतृत्व का रूप हैं। इन पंचायतों के समस्त सदस्य जातीय पंचायतों एवं रक्त समूहों के प्रतिनिधि होते हैं। यद्यपि हरिजन एवं अन्य पिछडी जातियों का प्रतिनिधित्व बहुत सीमित मात्रा में पाया जाता है। पंचायतों का पुनर्गठन एवं लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण संस्थात्मक नेतृत्व के विकास में प्रयत्नशील हैं। सहकारी समितियों की सदस्यता भी संस्थात्मक नेतृत्व के अन्तर्गत आती हैं। सहकारिता (Cooperation) एवं पंचायतें ये दो ही संस्थात्मक नेतृत्व के प्रमुख रूप हैं। इन दोनों रूपों में ही रक्त एवं जातीय नेतृत्व विद्यमान है।

(३) क्रियात्मक नेतृत्व (Functional Leadership)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों में जनसहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। इस क्षेत्र में प्रयास करने वाले ग्रामीण व्यक्तियों के कार्य क्रियात्मक नेतृत्व के अन्तर्गत आते हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्राम नेता शिविर, ग्राम नेता प्रशिक्षण केन्द्र आदि का आयोजन कर क्रियात्मक नेता तैयार किये जाते हैं। ग्राम सहायक, ग्राम चाचियां आदि इस दिशा में उल्लेखनीय नेता हैं। ग्रामीण नेताओं की क्षमता एवं योग्यता वृद्धि के कार्यक्रमों से लाभ प्राप्त करने वाले नेता क्रियात्मक नेता (Functional Leader) के अन्तर्गत आ जाते हैं। राजकीय प्रयत्नों से इस श्रेणी के नेतृत्व में रक्त एवं जातीयता कम प्रतिलक्षित होती है।

इस प्रकार ग्रामीण पर्यावरण में नेतृत्व के प्रमुख रूपों का हमने अध्ययन किया। ग्रामीण नेतृत्व में प्रभुत्व एवं समर्पण का स्थान आवश्यक है। प्रभुत्व एवं समर्पण में रक्त सम्बन्धों एवं जातीयता के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। उच्च-जातियों को शीघ्र प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है। आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से सम्पन्नव्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभुता प्राप्त कर लेता है। पंचायतों के प्रधान एवं न्याय पंचायतों के अध्यक्ष इसी आधार पर समर्पण प्राप्त करते हैं।

अध्याय २१

ग्रामीण आर्थिक संस्थायें

(Rural Economic Institutions)

ग्रामीण जीवन में अर्थ व्यवस्था नाम की कोई स्वतंत्र विचार धारा नहीं। आर्थिक संस्थाओं का कोई अलग व्यवस्थित संगठन भी प्रतीत नहीं होता। ग्रामीण जीवन एक सामाजिक-आर्थिक (Socio-Economic) इकाई है। आर्थिक संस्था नाम की यहां कोई स्वतंत्र संस्था नहीं है जैसा हम नगरों में देखते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि ग्रामीण जीवन का कोई आर्थिक ढांचा (Economic-Structure) नहीं है। यहां की समस्त आर्थिक क्रियाएं यहां के समाज तथा सामाजिक सम्बन्धों से विशेष रूप से प्रभावित एवं संचालित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण जीवन में से हम आर्थिक सम्बन्धों, क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं को अलग नहीं निकाल सकते, अर्थात् अर्थशास्त्र के लिये ग्रामीण जीवन में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। कुछ लोगों ने ग्रामीण जीवन की आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित ग्रामीण अर्थ शास्त्र (Rural Economics) का निर्माण करने का प्रयास किया है। यह प्रयास गलत है। ग्रामीण जीवन के आर्थिक सम्बन्धों का हम एक परिधि में विश्लेषण नहीं कर सकते। ग्रामीण आर्थिक सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों में ही दृष्टिगोचर होते हैं। इस दृष्टि से यह कार्य समाजशास्त्र ही कर सकता है कि वह ग्रामीण समाज में व्याप्त आर्थिक सम्बन्धों को निकालने हेतु सामाजिक सम्बन्धों की पृष्ठभूमि का विश्लेषण प्रस्तुत करे।

इसी उद्देश्य से हम यहां ग्रामीण अर्थ व्यवस्था एवं आर्थिक संस्थाओं का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे। इसके साथ साथ यह भी देखने का प्रयास करेंगे कि सामाजिक सम्बन्धों में आर्थिक सम्बन्धों का क्या प्रभाव है? यह अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण हमने इसे ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन करने का निश्चय किया है। अतः हम सर्वप्रथम ग्रामीण अर्थ व्यवस्था एवं इसके स्वरूपों पर प्रकाश डालेंगे।

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था

(Rural Economy)

भारत की ८२.७ प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण जन संख्या के नाम से पारिभाषित की जाती है। २९.५ करोड़ व्यक्ति ५५८,५०८ गांवों में निवास करते हैं। इनमें से

२४६ लाख व्यक्ति कृषि कार्य में संलग्न हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कला एवं कुटीर उद्योगों में संलग्न रहते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि भारत की अर्थ व्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था के नाम से सम्बोधित की जाती है। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था, कृषि अर्थ व्यवस्था है। ग्रामीण जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि कार्य में संलग्न है। इसके अतिरिक्त कुछ जनसंख्या जो अन्य कार्यों में लगी हुई है, वह भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कृषि से ही सम्बन्धित है। अतः ग्रामीण अर्थ व्यवस्था कृषि व्यवस्था के नाम से पारिभाषित की जाती है।

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का क्षेत्र
(Scope of Rural Economy)

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत कृषि अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन मूल रूप से किया जाता है क्योंकि ग्रामीण जनता का यह जीवन से सम्बन्धित प्रमुख कार्य है जो वंश परम्परा से निरन्तर चला आ रहा है। कृषि का क्षेत्र अखिल भारतीय है। इस दृष्टि से ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत इस विषय का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कृषि के अतिरिक्त अन्य आर्थिक प्रयत्न यद्यपि उल्लेखनीय हैं, परन्तु वास्तव में वे भी कृषि से ही सम्बन्धित हैं और कृषि की पूर्णता के प्रमुख अंग हैं। उदाहरण के लिये बढ़ई, (लकड़ी का कार्य करने वाला) अपना समस्त कार्य कृषि के उपयोग में आने वाले यन्त्रों को बनाने तक ही सीमित रखता है। कृषि से ग्रामीण जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। ग्रामीण जीवन और कृषि पर्यायवाची शब्द हैं। तो भी ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत हम कृषि से सम्बन्विन अन्य उद्योगों की उपेक्षा नहीं कर सकते। अतः ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का क्षेत्र कृषि के साथ साथ ग्रामीण जीवन एवं उनकी प्रत्येक क्रियाओं का अध्ययन करना निर्धारित किया जा सकता है। कृषि से ग्रामीण जीवन व अन्य क्रियायें परस्पर सम्बन्धित हैं।

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की विशेषताएं
(Characteristics of Rural Economy)

ग्रामीण जीवन की आर्थिक क्रियाओं का क्षेत्र जान लेने के उपरान्त ही हम इनकी प्रकृति एवं विशेषताओं की कल्पना कर सकते हैं। इसके उपरान्त भी ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था की कुछ अपनी विशिष्ठ विशेषतायें हैं। यह विशेषताएं निम्न प्रकार हैं।

(क) जनसंख्या का भूमि पर दबाव

यद्यपि कृषि ग्रामीण जीवन का मूल व्यवसाय है और गांव की समस्त जनसंख्या

इसी प्रमुख कार्य में संलग्न रहती है। कृषि ग्रामीण जीवन का मूल व्यवसाय होने के साथ साथ इसका ग्रामीण जनता के जीवन से अत्यधिक निकट सम्बन्ध है। परिणामस्वरूप प्रत्येक ग्रामीण जन कृषि की ओर ही आकर्षित होता है। जनसंख्या की गुणात्मक वृद्धि के साथ साथ जमीन की वृद्धि नहीं होती। अतः भूमि पर जनसंख्या का अधिक दबाव पाया जाता है।

(ख) कृषि पर पूर्ण निर्भरता

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की दूसरी विशेषता यह है कि यहां कृषि ही एक मात्र सर्वोचित व्यवसाय माना जाता है। यह व्यवसाय के ही रूप में नहीं वरन् ग्रामीण जीवन क्रम के रूप में प्रचलित है। परिणामस्वरूप प्रत्येक ग्रामीण जन कृषि कार्य से ही अपने आपको सम्बन्धित रखता है। यहां कृषि एक प्राकृतिक जुआ (Natural gambling) है। प्रकृति के प्रकोपों से प्रभावित कृषि ग्रामीण जीवन के निम्न स्तर को उन्नत नही बना सकती। जिस गुणात्मक संख्या में इस पर व्यक्ति निर्भर हो जाता है उसी अनुपात में कृषियोग्य भूमि का विकास एवं सुधार होना चाहिये अन्यथा कृषि की दशा एकदम पिछड़ जायेगी।

(ग) पुरातन कृषि प्रविधियाँ

ग्रामीण सामाजिक, आर्थिक जीवन का आधार कृषि है। यह आधार प्राचीन काल से चला आ रहा है लेकिन इस आधार की प्रविधि भी प्राचीन है। समय के विकास ने जनसंख्या का विकास किया, कृषि सम्बन्धी अनेक समस्याओं का विकास किया परन्तु भूमि और कृषि प्रविधि में विकास नहीं हुआ। भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास हुआ परन्तु उत्तम खाद्यों का उपयोग नहीं हुआ।

(घ) निम्न आर्थिक स्थिति :—

ग्रामीण ढाँचे की यह भी एक विशेषता है कि यहां के शत् प्रतिशत लोग दरिद्र एवं गरीब है। दरिद्रता (Poverty) भारतीय गाँवों की परम मित्र हैं। ग्रामीण जीवन का प्रमुख आधार कृषि-व्यवसाय, उद्योग, वाणिज्य, व्यापार अथवा आर्थिक संगठन नहीं माना जाता बल्कि जीवन यापन का एक प्रमुख सहारा माना जाता है। निराशावादी दृष्टिकोणों से व्याप्त यह आधार ग्रामीण जन को सदा दरिद्रता से घेरे रहता है।

(ङ) अव्यवस्थित बाजार

ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था की यह भी विशेषता है कि यहां पर आर्थिक क्रियाओं का कोई संस्थात्मक रूप प्रतिलक्षित नहीं होता हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यहां न तो आर्थिक क्रियाओं की व्यवस्था है और न उत्पादन, उपभोग, विनिमय एवं वितरण का क्रम। ग्रामीण उत्पादन एवं विनिमय पारस्परिक आदान प्रदान

(Barter) व्यवस्था पर ही निर्भर है। ग्रामीण उत्पादन की खपत के लिये यहाँ कोई बाजार व्यवस्था अथवा क्रय-विक्रय केन्द्र का अस्तित्व नहीं है।

(च) यातायात के साधनों की प्राचीनता

यातायात के साधन न केवल आर्थिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण हैं बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी अनिवार्य हैं। ग्रामीण यातायात अविकसित एवं अव्यवस्थित हैं। प्राचीन ढंग की कच्ची सड़कें, बैलगाड़ी, ऊंट, खच्चर, गधे आदि ही यहां के प्रमुख साधन हैं। विकसित साधनों का उपयोग करना ग्रामीण क्षमता एवं बुद्धि से परे हैं।

(छ) आर्थिक शोषण

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की विशेषताओं के अन्तर्गत हम इसमें आर्थिक शोषण सम्बन्धी तथ्य को नहीं भुला सकते। ग्रामीण जमीदार, साहूकार, महाजन, पटवारी, नम्बरदार, पटेल आदि व्यक्ति निरन्तर कृषक का हर दृष्टि से शोषण करते रहते हैं।

(ज) पंचायतों का आधिपत्य

प्राचीन काल से भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतें आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक शक्तियों की अधिकारी सत्ता रही हैं। ग्रामीण संरचना एक आत्मनिर्भर प्रजातांत्रिक इकाई के रूप में निरन्तर कार्यान्वित है लेकिन मुगल प्रशासन तथा अंग्रेजी शासन के मध्य इन पंचायतों का विघटन हो गया है। समस्त आर्थिक सामाजिक ढांचे का रूप विकृत हो गया।

(झ) अंग्रेजी शासन का प्रभाव

ग्रामीण आर्थिक संरचना को अंग्रेजी शासन ने अत्यधिक प्रभावित किया है। सहयोग, सामूहिकता एवं पारिवारिकता के स्थान पर वैयक्तिकता का प्रादुर्भाव हो गया है। भूमि स्वामित्व, भूमिकर एवं कृषि व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तनों के फलस्वरूप भारतीय ग्रामीण आर्थिक ढांचाँ विचलित एवं विघटित हो गया है। ग्राम पंचायती संगठन का बहिष्कार, भूमि का वैयक्तिक वितरण आदि अनेक ऐसे कारक उत्पन्न हो गये हैं जिनसे ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का रूप विकृत हो गया है।

इस प्रकार भारतीय ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था की अनेक विशेषताएं हैं जिनसे हम इस व्यवस्था का साक्षात रूप दृष्टिगोचर कर सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रो में अशिक्षा, बेकारी, दरिद्रता ऐसे अनेक अभिशाप हैं जो स्वतः हमें दृष्टिगोचर होते हैं। ये अभिशाप ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था की विशेषताएं हैं। राज्य की स्वार्थ नीति ने यहाँ की आर्थिक व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया है। इन सब बातों से हमने ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था को विशिष्ट रूप देखने का प्रयास किया है। अब हम ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था की विभिन्न संस्थाओं पर प्रकाश डालेंगे।

कृषि
(Agriculture)

कृषि ग्राम का पर्यायवाची शब्द है। अर्थात् ग्रामीण जीवन का यह सर्वोपरि आधार स्तम्भ है। ग्रामीण जनता का अधिक भाग इसी क्रिया में संलग्न है। भारतीय ग्रामीण कृषि की यह प्रमुख विशेषता है कि जहां यह अन्य देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापार एवं वाणिज्य के रूप में हैं तो यहां एक जीवन क्रम के रूप में। कृषि भारतीय ग्रामीण जन की वंशानुगत एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। अत: यहां इसका कोई पृथक आर्थिक संगठन नहीं हैं जिसमें उत्पादन उपभोग, विनिमय, वितरण आदि अवस्थाएं हो। ग्रामीण जनता का प्रत्येक वर्ग एवं जाति इसी क्रम से सम्बन्धित है। ग्रामीण और कृषक दोनों शब्द समान अर्थों में ही परिभाषित किये जाते हैं।

भारतीय कृषि व्यवस्था
(Agricultural System in India)

इन सब बातों के उपरान्त भी हम यह नहीं कह सकते कि कृषि का ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था में कोई महत्व नहीं। कृषि न केवल ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का एक मात्र एवं सर्वोपरि आधार हैं बल्कि समस्त भारत की आर्थिक व्यवस्था इसी पर आधारित है। अत: भारतीय ग्रामीण कृषि के निम्न अंगों पर भी हम यहां विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

(क) भूमि (Land)

भूमि कृषि का महत्वपूर्ण आधार है। कृषक के लिये भूमि अत्यन्त आवश्यक वस्तु ही नहीं बल्कि उसका प्राण है। भूमि और ग्रामीण जनता शीर्षक अध्याय में हम ग्रामीण जनता के भूमि सम्बन्ध तथा स्वामित्व के बारे में विचार कर आये हैं। भूमि व्यवस्था एवं भूमि स्वामित्व, प्रणालियां आदि सब कारक भूमि की उपयुक्तता पर निर्भर होते हैं। भूमि उपयुक्तता का आधार भूमि-स्थापना एवं इसकी उर्वरा-शक्ति पर आधारित है।

(ख) भूमि की उर्वरा शक्ति

भूमि की उर्वरा शक्ति प्रकृति की देन है। इसमें मानवीय उपचार भी महत्व रखते हैं। भारतीय भूमि में अनेक रूप हैं। कृषि शाही आयोग (Royal Commission on Agriculture) ने इनको चार भागों में विभाजित किया है।

(१) नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी (The Alluvial Soil)

(२) काली मिट्टी (The Black Soil)

(३) लाल मिट्टी (The Red soil)

(४) पठारी मिट्टी (The Leterite soil)

इसके अतिरिक्त बालू मिट्टी भी राजस्थान और दक्षिणी पंजाब में पाई जाती है।

(ग) खाद (Manure)

कृषि उत्पादन में कमी होने का कारण भूमि में समुचित खादों का अभाव है। इस सम्बन्ध में डा० बर्न ने लिखा है, "भारतीय मिट्टी की उर्वराशक्ति इतनी निम्न हो चुकी है कि न तो इसमें किसी प्रकार का पतन हो सकता है और न कोई प्रगति हो सकती है।"[1] भारतीय भूमि में नाइट्रोजन (Nitrogen) और फासफोरिक (Phosphoric) आदि रसायनिक तत्वों का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति पशुओं की हड्डियाँ, मछलियाँ, मानवीय कूड़ा करकट, बीज, हरे खाद एवं अन्य रसायनिक खादों द्वारा हो सकती है। भूमि की उर्वराशक्ति के सम्बन्ध में मिट्टी का कटाव (Soil Erosion) भी एक प्रमुख समस्या है। यह दो प्रकार से होता है। (१) गैली कटाव (Gully Erosion) (२) परत कटाव (Sheet Erosion)।

(घ) वन (Forest)

भारत का कृषि शास्त्र वन की महत्ता पर भी प्रकाश डालता है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राकृतिक वन का विशेष रूप से बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। वन भूमि के विस्तार एवं इसकी उर्वराशक्ति को प्रभावित करता है। वन का और भी महत्व है, वन कृषि सम्बन्धी यन्त्रों की आवश्यकता, हरी खाद, भूमि के कटाव, बाढ़ों को रोकना, वर्षा को आकर्षित करना, फल फूलों का उत्पादन, हवाओं का बहाव, प्राकृतिक सुन्दरता आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके अतिरिक्त वन समुचित और उपयुक्त जलवायु के निर्माण में भी योग देता है। आयोजना आयोग के अनुसार भारत की सम्पूर्ण भूमि के १६.२ प्रतिशत भाग में वन का विस्तार है। यहां पांच प्रकार के वन पाये जाते हैं।

(१) निरन्तर हरे वन।

(२) मानसून वन।

(३) सूखे वन।

---

1 The fertility of the Indian soil has stabilised so low that there is deteriaration nor can there be an improvement." Dr. Burn; Quoted in 'Rural Economy' by K. B. Bhatnagar; p; 16.

(४) पहाड़ी वन

(५) नदी के किनारों के वन ।

इस प्रकार भारतीय कृषि व्यवस्था में वन का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है ।

(च) सिंचाई (Irrigation)

सिंचाई का कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है । भारतीय गांवों में अनेक प्रकार के सिंचाई साधन प्रयोग में लाये जाते, हैं जिनमें कुएं, तालाब, नहरें, नदियां, जल प्रपात, सोते आदि प्रमुख हैं । खेतों में पानी देने के भी अनेक रूप दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें रहट, ढेकली, चरस, सूंडिया आदि प्रमुख हैं । भारत में २९८ करोड़ एकड़ भूमि पर ही सिंचाई होती है । इस क्षेत्र में निम्न तालिका इस तथ्य को स्पष्ट करती है ।

सिंचाई क्षेत्र (१९५०) [करोड़ों एकड़ में]

योग क्षेत्र	नहरों द्वारा	कुओं द्वारा	तालाबों द्वारा	अन्य साधनों द्वारा	सिंचाई के क्षेत्र का योग
२७५	२८	१४	६	७	५५

ये समस्त साधन प्रकृति पर निर्भर हैं । प्रकृति अस्थाई एवं परिवर्तनशील है । इस दृष्टि से इन सिंचाई के साधनों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है । इसीलिये कृषि के प्रति ग्रामीण लोग उदासीन, भाग्यवादी तथा अनिश्चित रहते हैं । भारतीय कृषि भूमि को सिंचाई क्षेत्रों में लाने के लिये अनेक प्रयास किये गये हैं । जिन में यू० पी० में १७००, तथा पंजाब में ६००, ट्यूब वेल (Tube well) खोदे गये हैं। इसके अतिरिक्त मद्रास में ३५००० सिंचाई के तालाब तथा बम्बई, मैसूर और हैदराबाद के ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक सिंचाई के साधन उपलब्ध किये गये हैं ।

सिंचाई के विषय में दीर्घकाल से राज्य एवं जनता प्रयत्नशील है । मुगल काल में फिरोजशाह द्वारा यमुना नहर और शाहजहां द्वारा पूर्वी जमुना नहर उल्लेखनीय है । सन् १८५५ ई० में गंगा नहर और सन् १८४६ ई० में गोदावरी नहर का निर्माण हुआ था । सिंचाई व्यवस्था के क्षेत्र में राज्य के साथ साथ अन्य व्यक्तिगत संगठनों का कार्य भी महत्वपूर्ण है । इनमें सरहिन्द नहर, आगरा नहर, मूथा नहर, सोहक सिथानी, चिनाब, झेलम आदि प्रसिद्ध हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न सिंचाई योजनाएं पारित की गई हैं जिनमें तुंगभद्रा, रामपदरगढ़, भाखड़ा नागल, दामोदर, हीराकुंड, गंगापुर, कोसी, चम्बल और उकाई आदि प्रसिद्ध हैं ।

(च) उत्पादन (Production)

ग्रामीण जीवन में व्याप्त बेकारी, भुखमरी, अशिक्षा आदि अभिशापों का कारण उत्पादन की कमी है। यद्यपि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक प्रकार की फसलें बोई जाती हैं। यहां भूमि का केवल ३५ प्रतिशत भाग उत्पादन के प्रयोग में लाया जाता है। तथा दो ही प्रकार की फसलें बोई जाती हैं। (१) खाद्य फसलें और (२) अखाद्य फसलें। खाद्य फसलों में चावल, गेँहूँ, जौ, मक्की, गन्ना और दालों की फसलें हैं। चावल में ७५ करोड़ एकड़ भूमि के योग का २७ प्रतिशत भाग प्रयोग किया जाता है। इसके उपरान्त गेहूँ २३ ५ करोड़ एकड़ भूमि में पैदा किया जाता है। गन्ना व दालें भी यहां की विशिष्ट फसलें हैं। १९५१ ई० में १९.७ करोड़ एकड भूमि में चना बोया गया था। इसी प्रकार गन्ना भी ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शक्कर का उद्योग भारत का प्रमुख उद्योग है। गन्ना उत्तर प्रदेश और बिहार में उत्पन्न होता है। इस खेती के अन्तर्गत ३६ लाख एकड़ भूमि प्रयोग में लाई जाती है। अखाद्य फसलों में कपास, जूट, तम्बाकू, तिलहन, चाय और काफी है। कपास भारत का प्रमुख व्यावसायिक उत्पादन माना जाता है। विभाजन से पूर्व २१ ० करोड़ एकड़ भूमि में कपास बोई जाती थी। इस समय १३.९ करोड़ एकड़ भूमि में कपास की खेती है। जूट की फसल विश्व की एकाधिकार फसल के रूप में भारत में बोई जाती है। विभाजन से पूर्व २ ४ करोड़ एकड़ भूमि में जूट बोई जाती थी। विभाजन के उपरान्त १ ४ करोड़ एकड़ भूमि ही इसके अन्तर्गत रह पाई है। भारत अन्य तेल बीजों के उत्पादन में भी प्रमुख स्थान रखता है जिनमें मूंगफली, सरसों, तिल, अरंडी आदि प्रसिद्ध हैं। मूंगफली विश्व में सबसे अधिक भारत में होती है। मद्रास इस क्षेत्र में अग्रणीय है।

(छ) कृषि प्रणाली (Agricultural Methods)

जहाँ ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है वहाँ कृषि प्रणाली अद्वितीय स्थान रखती है। खेतों का विभाजन (Fragmentation) इस दिशा में भारतीय ग्रामों की प्रमुख समस्या है। इसके फलस्वरूप विकसित प्रविधियाँ प्रयोग में नहीं लाई जा सकतीं। इसके अतिरिक्त कृषि यन्त्रों में प्राचीनता एवं अन्धविश्वास दूसरी महान समस्या है। ग्रामीण कृषक ६ बार खेत पर परिश्रम करने के उपरान्त भी उत्पादन का संख्यात्मक एवं गुणात्मक लाभ नहीं उठा सकता। पुराना हल व कमजोर पशु एवं निम्न कोटि के बीज इसका प्रमुख कारण हैं। भूमि की समनलता रसायनिक खादों का उपयोग तथा फसलों का वैज्ञानिक क्रम ग्रामीण क्षेत्रों में लेशमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होता। इस क्षेत्र में विकसित प्रयोग किये जा

रहे हैं। जिनमें फैलो कल्टीवेशन (Fellow Cultivation), सम्मिलित खेती (Mixed Farming), सहयोगी खेती (cooperative Farming), सयुक्त खेती (Joint Farming) तथा सामूहिक खेती (Collective Farming) आदि उल्लेखनीय हैं।

(ज) भूमि कर (Land Revenue)

ग्रामीण कृषि की प्रकृति के बारे में भूमिकर का अद्वितीय स्थान है। भूमिकर निर्धारण नीति कृषि को निरन्तर प्रभावित करती आई है। ग्रामीण जनता और कृषि के अध्याय में हम इस विषय में प्रकाश डाल चुके हैं।

ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था के प्रमुख अंग कृषि पर हमने एक विहंगम दृष्टिपात किया। इससे यह स्पष्ट है कि कृषि भारत की प्रमुख ग्रामीण आर्थिक संस्था है। यह संस्था संस्थात्मक नियमों से अभी तक पूर्ण परिचित नहीं है। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में अनेक समस्यायें व्याप्त हैं जिनका समाधान शीघ्र आवश्यक है। इस विवेचन में हमने कृषि विशेषताओं का पता लगाकर अन्य देशों की तुलना में भारतीय ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था की विशेषताओं का दर्शन कर लिया है। अब हम ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था के अन्य प्रमुख रूप से कुटीर उद्योगों पर विचार करेंगे।

कुटीर उद्योग
(Cottage Industries)

कुटीर उद्योग नामक आर्थिक संस्था का ग्रामीण जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह कृषि के उपरान्त दूसरी आर्थिक संस्था है। इस संस्था का प्रमुख आधार कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है कृषि मानव की प्रमुख तीन आवश्यकताओं में से एक है। मानव की अन्य बुनियादी आवश्यकतायें वस्त्र और मकान है। इन बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति हेतु ही मानव ने प्रथम कृषि करने का प्रयास किया। इसके उपरान्त शरीर को ढकने तथा शारीरिक सुरक्षा की भावना ने आदि मानव को अन्य उद्योगों की ओर प्रेरित होने को बाध्य किया। प्रारम्भ में मानव आत्मनिर्भर सामूहिक इकाइयों में संगठित रूप से रहता था। ज्यों-ज्यों आवश्यकताओं का विकास होता गया, त्यों-त्यों आदि मानव इनकी पूर्ति भी करता चला गया। इस तरह कृषि हेतु यन्त्र, भोजन, पकाने की सहायक सामग्री, शरीर ढकने के लिये कपड़ा, शारीरिक आभूषण, बर्तन और वस्त्र आदि प्रारम्भिक कुटीर उद्योग प्रारम्भ हुए।

कुटीर उद्योगों का जन्म
(Origin of Cottage Industries)

ग्रामीण जीवन और कुटीर उद्योग का यदि हम वास्तविक सम्बन्ध जानना चाहें

तो हम इसी तथ्य पर पहुँचेंगे कि कुटीर उद्योग प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक प्रयास है। कुटीर उद्योग आर्थिक दृष्टि से उद्योग नहीं है बल्कि यहाँ उद्योग का अर्थ प्रयास से है। कृषि के उपरान्त मानव को अन्य आवश्यकताएँ अनुभव हुईं और उनकी पूर्ति हेतु उसने अपने आप ही प्रयास किये। एक मानवीय समूह द्वारा अपनी समस्त आवश्यकताओं को इस प्रकार पूर्ण कर लेने की क्रिया धीरे धीरे विकसित होकर कुटीर उद्योग के रूप में परिणित हो गई। ग्राम समूह के लिये समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति सामूहिक रूप से पूर्ण करने की इच्छा उत्पन्न हुई। धीरे धीरे इन सामूहिक प्रयत्नों में श्रम विभाजन और विशेषीकरण तथा जातिवाद आदि तत्त्व विकसित हो गये। परिणामस्वरूप एक ग्राम इकाई में उसकी आवश्यकतानुसार कुम्हार बर्तन बनाने के लिये, सुनार आभूषण बनाने के लिये, बढ़ई लकड़ी का कार्य करने के लिये, बलाई कपड़े का कार्य करने के लिये, छीपा रंगाई का कार्य करने के लिये, दर्जी कपड़े सीने के लिये तथा इसी प्रकार अन्य आवश्यक कुटीर उद्योगों के विकास के साथ साथ व्यवसायिक आधार पर जातीयता और उद्योग विशेषीकरण का रूप गाँवों में निर्मित होता चला गया और यही रूप आज भी हमें दृष्टिगोचर होता है।

ग्रामीण जीवन में कुटीर उद्योगों का महत्व
(Importance of Cottage Industries in Rural Life)

ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का द्वितीय प्रमुख आधार कुटीर उद्योग है। कुटीर उद्योगों की अनुपस्थिति में कृषि अर्थ व्यवस्था और ग्रामीण जीवन दोनों ही अधूरे रहते हैं।

कृषि कार्य के उपरान्त जो ग्रामीण मानवीय शक्ति बचती है वह कुटीर उद्योगों में ही संलग्न होती है। कुटीर उद्योग आर्थिक आत्म-निर्भरता के आधार है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या ग्रामीण छोटे उद्योगों एवं कुटीर उद्योगों में ही उपयोग की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कृषि की अस्थायी और ऋतु अनुसार प्रकृति होने के फलस्वरूप कुटीर उद्योगों के अतिरिक्त ग्रामीण जनता के पास जीविका का अन्य कोई साधन नहीं है। कुटीर उद्योगों के संचालन की सुगमता एवं आत्मीयता के फलस्वरूप यह पारिवारिक उद्योग के रूप में परिणित किये जा सकते हैं। ग्राम इकाइयों की आत्मनिर्भर प्रवृत्ति इन उद्योगों द्वारा ही पूर्ण हो सकती है। ग्रामीण आर्थिक संरचना की प्रारम्भिक एवं साधारण स्थिति के साथ साथ यातायात के साधनों के अभाव में कुटीर उद्योग ही ग्राम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। भूमि पर बढ़ते हुए जनसंख्या के भार का कुटीर उद्योगों द्वारा ही वहन किया जा सकता है। कृषि कार्य में निपुणता, रूचि, जिज्ञासा, एवं विकास की समस्त

सम्भावनाएँ कुटीर उद्योगों में ही निहित हैं। भूमिहीन किसान एवं बेकार ग्रामीण मजदूरों की जीविका कुटीर उद्योगों द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। कृषि की अनार्थिक प्रकृति, कृषकों का निराशावादी दृष्टिकोण एवं उनकी नीरसता इन उद्योगों द्वारा समाप्त की जा सकती है। स्थानीय प्राकृतिक साधनों का सदुपयोग तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि इन उद्योगों द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था में इस संस्था का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कुटीर उद्योगों की वर्तमान स्थिति
(Present Conditions of Cottage Industries)

ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था में कुटीर उद्योगों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होने के उपरान्त भी इनकी वर्तमान दशा अत्यन्त शोचनीय है। दीर्घ काल से कुटीर उद्योगों का रूप विशिष्ट हो रहा है। इसी से ग्रामीण आर्थिक-सामाजिक ढाँचे में अनेक विघठन उत्पन्न हो गये हैं। कुटीर उद्योगों का भारत में अन्य देशों की तुलना से अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु इस गौरव के ढाँचे के विनाश में अनेक कारकों का योग है।

कुटीर उद्योगों के पतन के कारण
(Causes of the Diclin of Cottage Industries)

भारत में ग्रामीण कुटीर उद्योगों एवं अन्य छोटे उद्योगों के पतन के विभिन्न कारण हैं। ये कारण निम्न हैं :—

(१) प्राचीन संरक्षकों का लोप

कुटीर उद्योगों के विकास एवं संरक्षण में प्राचीन कलाप्रिय राजाओं का योग उल्लेखनीय है। ब्रिटिश सत्ता ने ग्रामीण आर्थिक ढाँचे को विकृत करने के साथ साथ राजाओं, नवाबों, जागीरदारों का नाश भी किया। इसी से कुटीर उद्योगों को क्षति उठानी पड़ी।

(२) अंग्रेजी शासन का कुप्रभाव

अंग्रेजी सत्ता की पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय ग्रामीण जीवन और प्राचीन संस्कृति को आघात पहुँचाया। पूंजीवाद के विकास ने पाश्चात्य संस्कृति एवं फैशन को विकसित किया। विदेशी सामान का बाजार भारत में बढ़ता गया। इससे कुटीर उद्योगों को बड़ी हानि उठानी पड़ी।

(३) औद्योगीकरण का अभिशाप

विश्व में औद्योगिक क्रान्ति ने आर्थिक क्षेत्र में बड़ी हलचल मचाई। इसका

प्रभाव भारत पर भी पड़ा। मशीनों द्वारा निर्मित सामान अधिक सुगमता से प्राप्त होने लगा। इसी से कुटीर उद्योग प्रायः नष्ट हो गए।

(४) नागरीकरण

औद्योगिक क्रान्ति से नगरों में बड़े उद्योग खुले। ग्रामीण जनता इस ओर आकर्षित हुई। परिणामस्वरूप ग्रामीण कलाकार नगरों में आ गए। इन्होंने अपना वंशानुगत व्यवसाय छोड़ दिया और इस प्रकार कुटीर उद्योगों पर नागरीकरण का कुप्रभाव पड़ा।

(५) ग्रामीण पंचायतों का विनाश

ग्रामीण पंचायतें ग्राम इकाइयों की आत्मनिर्भरता बनाये रखने में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। पंचायतों के पतन के साथ साथ ग्रामीण उद्योगों का पतन भी अवश्यम्भावी था। इस दृष्टि से ग्रामीण उद्योग धन्धों में विघटन आ गया।

(६) शिक्षा का प्रभाव

पाश्चात्य शिक्षा ने जन-समुदाय के विचारों में विशेष परिवर्तन उत्पन्न किये हैं। भारतीय जनता में राष्ट्रीय एवं स्वदेशी भावनाएँ नष्ट हो गईं। उनका विदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया। इससे कुटीर उद्योगों के स्थान पर वे यन्त्रों द्वारा निर्मित माल की ओर आकर्षित हुए।

(७) आर्थिक संकट

भारतीय ग्रामीण जनता दीर्घकाल से आर्थिक संकटों से दबी हुई है। गाँवों में साहूकारों और महाजनों के अत्याचारों ने इनकी आर्थिक क्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित किया है। समय पर आर्थिक सहायता प्राप्त न होने के कारण ग्रामीण उद्योगों पर विशेष आघात हुआ।

(८) समुचित बाजार का अभाव

गाँवों में यातायात एवं उत्पादन सामग्री के क्रय-विक्रय से उक्त समुचित साधन उपलब्ध नहीं थे। इस दृष्टि से उद्योगों पर इस अभाव का विशेष प्रभाव पड़ा। फलतः ग्रामीण उद्योग दिन प्रति दिन नष्ट होते चले गये।

(९) सहकारिता के ज्ञान का अभाव

कुटीर उद्योगों के विकास एवं सफलता के लिये सहकारिता का ज्ञान अत्यन्त अनिवार्य है। ग्रामीण जनता इस ज्ञान के अभाव में सहकारी बैंक, सहकारी भंडार आदि का उपयोग नहीं कर सकी। फलतः कुटीर उद्योग पतित होते गये।

गांवों में कुटीर उद्योग की स्थायित्वता

(Permanence of Cottage Industries in Villages)

भारतीय सांस्कृतिक विशिष्टता को कालान्तर में कोई भी संस्कृति प्रभावित नहीं

कर सकती। मुगलकाल में व ब्रिटिशकाल में सत्ताओं के प्रभाव ने भारतीय ग्रामीण संरचना को नष्ट करने का प्रयास किया, परन्तु आज भी भारतीय गाँव अपनी वास्तविकता को लिये अटल खड़े हैं। यद्यपि कुटीर उद्योगों पर विभिन्न आघात पड़े परन्तु यह नष्ट नहीं हो सके। भारतीय ग्रामों में कुटीर उद्योगों की स्थायित्वता के अनेक आधार हैं भारतीय गाँवों में कुटीर उद्योगों की उपयुक्तता को जानने के लिये हम इन आधारों पर विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

(१) जाति प्रथा का प्रादुर्भाव

भारतीय गाँवों में कुटीर उद्योगों की स्थायित्वता का प्रमुख कारण जाति व्यवस्था है। जातीयता के अनुसार व्यवसाय एवं उद्योगों का अस्तित्व स्थायी एवं अपरिवर्तनशील है। जाति विशेष शताब्दियों से जिस उद्योग से सम्बन्धित है वह उससे छुड़ाया नहीं जा सकता।

(२) पारिवारिकता

परिवार की चार दीवारी में परिवार हेतु कार्य करने की प्रेरणा ग्रामीण बच्चों, स्त्रियों, युवकों एवं पुरुषों में विशेष रूप से पाई जाती है। परिवार द्वारा निर्धारित कार्य करना ग्रामीण सामाजिक प्रतिष्ठा मानी जाती हैं। इस दृष्टि से पारिवारिक उद्योग उनके लिये सर्वमान्य हैं।

(३) कृषि

भारतीय गाँवों में कृषि व्यवसाय के रूप में न की जाकर जीवन के प्रमुख क्रम के रूप में की जाती है। यह ग्रामीण जनता को अस्थायी एवं परिवर्तशील कार्य प्रदान करती है। वर्ष में चार माह इन लोगों के पास कोई कार्य नहीं रहता। अतः उन्हें इस समय में विभिन्न अन्य छोटे उद्योग करने की लालसा रहती है।

(४) ग्रामीणों का कला व संस्कृति के प्रति प्रेम

ग्रामीण जनता का अन्य संस्कृतियों से सम्बन्ध न होने के कारण उनको स्थानीय संस्कृति और कला के प्रति आकर्षण होता है। उन्हें मशीन द्वारा निर्मित वस्तुओं के प्रति घृणा होती है। स्वयं निर्मित वस्तुओं के प्रति विशेष आस्था होती है।

(५) स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति

ग्रामीण आवश्यकताओं में विकास नहीं हुआ है। इनकी परम्परागत आवश्यकताएं एवं प्राचीन कृषि यन्त्र आदि की आवश्यकताएँ अपने ग्राम में ही पूर्ण कर लेने की इच्छा होती है। वे सुगमता से अपनी समस्त आवश्यकताएं ग्राम में ही पूर्ण कर लेते हैं। इसलिये उन्हें यन्त्रीकरण की आवश्यकता अनुभव नहीं होती।

(६) गाँवों की एकान्तता

यातायात के साधनों के अभाव में बाहरी आर्थिक सम्बन्ध असम्भव है। भारतीय गाँव अभी अपना अस्तित्व पूर्ण एकान्त तथा आत्मनिर्भरता में रखे हुए हैं। अतः स्थानीय उद्योग के प्रति उनकी आस्था विद्यमान है।

(७) सहकारिता का प्रचार

भारतीय गाँव में कुछ सीमा तक सहकारिता का प्रचार हो चुका है। इससे ग्रामीण उद्योगों में नवीन व्यवस्था एवं प्रविधि का प्रचार हो गया है। नवीन प्रणालियों से अनेक उद्योग पुनः कार्यान्वित हो गये है।

(८) शिक्षा का प्रचार

औद्योगिक शिक्षा के प्रचार ने कुटीर उद्योगों को अकथनीय सफलता प्रदान की है। नवीन यंत्र और प्रणालियाँ कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में पारित हो चुकी हैं। ये प्रणालियाँ ग्रामीण जनता द्वारा अपनाली गई हैं। इससे कुटीर उद्योगों में विकास हो रहा है।

(९) प्राकृतिक साधनों का बाहुल्य

भारतीय ग्राम प्रकृति प्रधान हैं। प्राकृतिक साधनों के बाहुल्य से कुटीर उद्योगों का विकास सम्भव है। स्थानीय प्राकृतिक साधनों का उद्योगों से समुचित उपयोग किया जा सकता है जिससे कुटीर उद्योग अधिक सफल हो सकते हैं।

(१०) राजकीय योग

भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था समस्त भारत की अर्थ व्यवस्था है। इस दृष्टि से इस दिशा में राजकीय योग वांछनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तो सरकार ने कुटीर उद्योगों के लिये गाँव में अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं।

इस प्रकार हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि भारतीय गाँवों में कुटीर उद्योगों का शीघ्र विकास अनिवार्य है। अब हम ग्रामीण कुटीर उद्योगों के प्रमुख स्वरूपों पर विवेचन करेंगे।

ग्रामीण कुटीर उद्योगों के स्वरूप
(Forms of Rural Cottage Industries)

ग्रामीण क्षेत्र में गृह उद्योगों, लघु उद्योगों एवं कुटीर उद्योगों के नाम से अनेक कुटीर उद्योगों के रूप दृष्टिगोचर होते हैं। सामान्य रूप से हम इन समस्त उद्योगों को निम्न श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) कृषि सहायक कुटीर उद्योग

इस शीर्षक के अन्तर्गत वे उद्योग आते हैं जो ग्रामीण जनता कृषि की पूर्णता के लिये एवं कृषि से बचे हुए समय का सदुपयोग करने के लिये करते हैं। इन उद्योगों को हम घरेलू उद्योग अथवा लघु सहायक उद्योग भी कह सकते हैं। यह उद्योग निम्न हैं :—

(क) पशुपालन

ग्रामीण जीवन कृषि एवं पशुओं से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। कृषि से पूर्व पशुपालन के प्रति आदि मानव का आकर्षण था। कृषि में पशुओं का समुचित योग प्राप्त किया जाता है। पशुपालन पारिवारिक उद्योग के रूप में भी गांवों में विद्यमान हैं। इनसे वे दूध व घी प्राप्त कर जीविका चलाते हैं।

(ख) दुग्ध व घी का व्यवसाय

कई लोग गाँवों में दुग्ध व घी का व्यवसाय करते हैं। दूध को एकत्रित कर उसे मोटर व लारियां द्वारा नगरों में भेजते हैं। दूध को जमाकर घी निकालकर घी का व्यवसाय करते हैं।

(ग) पशु चराना

पशु चराना भी ग्रामीण व्यवसाय है। पशुओं को जंगल में ले जाकर दिन भर चराना ग्रामीण व्यक्तियों के लिये एक महान समस्या है। कृषक लोग इस कार्य को नहीं कर सकते। उन्हें अपने पशु किसी अन्य व्यक्ति अथवा परिवार के सदस्य के साथ जंगल में भेजने पड़ते हैं। यह उद्योग भी ग्रामीण क्षेत्रों में उत्तम उद्योग कहलाता है।

(घ) गुड़ बनाना

लघु सहायक उद्योगों में यह उद्योग भी महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग माना जाता है। खजूर व गन्ने का गुड़ विशेष रूप से भट्टियों में पका कर बनाया जाता है। इस उद्योग को वर्तमास सरकार ने भी काफी प्रोत्साहन दिया है।

(च) बाग लगाना

कृषि से बचे हुए समय का सदुपयोग इस सहायक उद्योग से भी होता है। कई लोगों को बाग लगाने की विशेष रुचि है। इससे अनेक आर्थिक लाभ हैं।

(छ) सब्जियां बोना

यह भी प्रमुख सहायक उद्योग है। स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति होने के साथ नगरों में सब्जियां विक्रय हेतु भेजी जा सकती हैं।

(ज) चटाई बुनना—

चटाई, टोकरी, चिक, मुड्डा व अन्य बांस व घास द्वारा सामान बनाया जा सकता है। यह कार्य अत्यन्त साधारण व सुगम होता है। घास-फूस के छप्पर, टोकरियां, चटाइयां आदि, ग्रामीण आवश्यकताएं हैं। आर्थिक दृष्टि से भी यह उद्योग लाभ कर हैं।

(झ) कताई बुनाई करना—

कपास की खेती गांवों में की जाती है। कपास के बीज जानवरों को खिलाना लाभप्रद है। इस दृष्टि से कपास से रूई निकालना, कातना एवं बुनना ग्रामीण उद्योग माना जाता है। ग्रामीण स्त्रियां एवं वृद्ध व्यक्ति इस कार्य को आसानी से कर सकते हैं।

इस प्रकार अनेक घरेलू एवं कृषि सहायक उद्योग गांवों में दृष्टिगोचर होते हैं। स्थानीय आवश्यकताओं एवं प्राकृतिक साधनों पर ये उद्योग अवलम्बित हैं। दक्षिण भारत के गांव में नारियल व हिमालय पर्वत श्रेणियो के गांवों में अनेक-भिन्न स्थानीय उद्योग किये जाते हैं।

(२) स्वतंत्र लघु उद्योग:—

कृषि सहायक एवं घरेलू उद्योगों पर विचार कर लेने के उपरान्त हम ग्रामीण स्वतन्त्र कुटीर ऊद्योगों के निम्न विभिन्न रूप देखते हैं:—

(क) कपड़ा बुनना—

कपड़ा मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं में से एक है अतः आरम्भ से ही ग्रामीण क्षेत्रों में एक विशिष्ट जाति द्वारा यह उद्योग किया जाता है। राजस्थान के गांव में बलाई नाम की जाति इस कुटीर उद्योग में संलग्न है। यह जाति वंश परम्परा से ग्राम विशेष की समस्त वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह जाति कपड़े के बदले अनाज व अन्य खाद्य सामग्री की पूर्ति कर लेती हैं। अपने मकानों में ही अड्डे व करघे आदि के द्वारा कपड़े बुनने का कार्य परिवार के समस्त सदस्य करते रहते हैं।

(ख) चमड़े का कार्य –

कृषि तथा दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली समस्त चमड़े की वस्तुएं इस उद्योग के अन्तर्गत बनाई जाती हैं। गांवों में अधिकांशतः मृतक पशुओं का चमड़ा प्रयोग में लाया जाता है। कृषि कार्य में काम आने वाले चरस, ढेकली, सुंडिया एवं हल तथा पानी को खींचने, बीज बोने, टोकरी बनाने आदि में चमड़े का समुचित प्रयोग किया जाता है। यह कार्य एक विशिष्ट जाति, जिसे चमार,

रेगर, बलाई के नाम से पुकारते हैं, करती हैं। ग्रामीण जीवन में कृषि के अतिरिक्त दैनिक जीवन में भी चमड़े का आदिकाल से प्रयोग किया जाता है। जूते, पानी खींचने की बाल्टियां, तेल रखने के बर्तन, टोकरियां एवं वस्त्र के रूप में भी चमड़ा प्रयोग में आता है।

(ग) लकड़ी और लोहे का काम—

लकड़ी और लोहे की अनेक वस्तुएं कृषि कार्य में तथा दैनिक जीवन में प्रयोग में लाई जाती हैं। लकड़ी और लोहे का उद्योग ग्रामीण जीवन के प्रमुख कुटीर उद्योगों में से एक है। यह उद्योग बढ़ई और लोहार नाम की जातियां करती हैं। ये जातियां इस कार्य में अत्यन्त प्रवीण होती हैं और इस उद्योग में कला का भी प्रदर्शन देखने को मिलता है। कृषि कार्य में हल, जुआ, खुरपा, बसुला, गांतली, पंजेली, पाटा, फावड़ा, गेती, कुल्हाड़ी, गाड़ी, और छकड़ा आदि प्रयोग में लाये जाते हैं। दैनिक जीवन में भी चारपाई, पीढ़ा, खिड़की, दरवाजा, पालना, तिपाईयां व लकड़ी के अनेक बर्तन प्रयोग में लाये जाते हैं। इस प्रकार ग्रामीण जीवन का काष्ठ-लोह कुटीर उद्योग भी प्रमुख उद्योगों में से एक है।

(घ) तेल घाणी उद्योग—

तेल ग्रामीण जीवन में आवश्यक जरूरतों में से एक है। तेल जानवरों को खिलाने, जलाने, बेचने तथा स्वयं के खाने के काम में आता है। तेल की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये तेली जाति के लोग इस उद्योग में संलग्न हैं। ये लोग तिल्ली, मूंगफली, सरसों, अलसी, अरंडी और नारियल का तेल निकालते हैं। तेल निकालने के उपरान्त जो खल (बुरादा) बचती है वह जानवरों को खिलाई जाती है।

(च) खिलौने बनाना—

मिट्टी, बुरादे और कागज के खिलौने के उद्योग भी ग्रामीण जीवन के कुटीर उद्योगों में से एक हैं। कुम्हार जाति के लोग मिट्टी के बर्तन बनाने के साथ साथ खिलौने बनाने का कार्य भी करते हैं। मिट्टी के बर्तन ग्रामीण लोग अपने दैनिक जीवन में अधिकांश रूप से काम में लाते हैं। खाना पकाने, पानी भरने एवं अनाज आदि रखने में हांडी, कुंडा, कुल्हड़, मटकी, ठाटा, बरनी आदि चीजें बनाते हैं। मिट्टी एवं खिलौने बनाने का उद्योग भारत के समस्त गांवों में पाया जाता है।

(छ) रंगाई छपाई का कार्य—

ग्रामीण लोग कलाप्रिय होते हैं। उनकी कला में विशेष रूप से प्रकृति की छाप होती है। वे अपने वस्त्रों एवं मकानों की सजावट आदि में विभिन्न रंगों का प्रयोग

करते हैं। ग्रामीण रंगाई और छपाई के उद्योग में छीपा अथवा रंगरेज नाम की जाति संलग्न होती है। यहां प्रमुखतः तीन प्राथमिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। लाल, नीला और पीला इन लोगों के प्रिय रंग हैं। चूंदड़ी, कांचली, अंगरखी, बखतरी व घाघरा आदि इन लोगों के प्रमुख वस्त्र हैं। राजस्थान की चूंदड़ी लोकप्रिय है। इन वस्त्रों को बेल-बूंटे, फूल-पत्ती और पशुओं की आकृति से खूब सजाते हैं। यू० पी० के गाँवों में दरियां, गलीचे आदि की रंगाई व छपाई होती है। यहाँ से यह माल संसार के विभिन्न देशों में भी भेजा जाता है।

(ज) चान्दी सोना और हाथी दांत का उपयोग:—

ग्रामीण लोग आभूषणों के विशेष शोकीन होते हैं। यहां तक कि पुरुष भी विभिन्न चांदी, सोने, हाथी दांत और पीतल के आभूषण पहनते हैं। सुनार, ठठेरा और लखाराजाति इस उद्योग में संलग्न हैं। लाख और हाथी दांत एवं कांसे और पीतल के विभिन्न आभूषण स्त्रियों को प्रिय होते हैं। हांसली, झैला, चूड़ियां, बगड़ी, बाजू, कड़े, आंवले नाम के अनेक आभूषण ग्रामीण स्त्रियां पहनती हैं। कलाई से लेकर बाजुओं तक पीतल, कांसा, गिलट एवं हाथी-दांत की विभिन्न प्रकार की चूड़ियां पहनी जाती हैं। बालों में बोर, नाक में बाली, कानों में झेले, बालियां। और शरीर पर अनेक प्रकार के आभूषणों से स्त्रियां लदी रहती हैं। अतः ग्रामीण जीवन का यह भी एक प्रमुख उद्योग है।

(झ) ऊन, सिल्क उद्योग:—

जानवरों में भेड़, बकरी, ऊंट आदि ऊन के लिये ग्रामीण व्यक्ति पालते हैं। इसके अतिरिक्त रेशम के कीटाणु (Silk Worm) भी पाले जाते हैं। भारतीय गांवों में सिल्क और ऊन का उद्योग प्राचीनकाल से चला आ रहा है। भारतीय सिल्क और ऊन के कपड़े विदेशों में भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। काश्मीर, मैसूर, बंगाल, तन्जोर, मुर्शिदाबाद, सूरत और अमृतसर के ग्रामीण क्षेत्र इस उद्योग में बड़े प्रवीण हैं। गलीचे, कालीन आसन व विभिन्न पहनने के वस्त्र इस उद्योग के अन्तर्गत बनाये जाते हैं। यह कार्य यू०पी० के ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक होता है। वस्तुओं में ग्रामीण कला और संस्कृति झलकती है। मनीपुर और आसाम के ग्रामीण तो इसे अपने जीवन का आवश्यक अंग मानते हैं। वहां प्रत्येक घर में यह कार्य दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार हमने ग्रामीण कुटीर एवं घरेलू उद्योगों का विवेचन किया। कुटीर उद्योग ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का प्रमुख आधार है। कुटीर उद्योगों का सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्रीय आय वृद्धि के क्षेत्र में भी कुटीर उद्योग अद्वितीय स्थान रखते हैं। इस दृष्टि से स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त

(क) कृषक श्रमिक।

ये श्रमिक किसी जमीदार, जागीरदार के खेतों पर खेती का समस्त संचालन करते हैं। इन श्रमिकों को भूमि के उत्पादन का कुछ भाग वेतन के रूप में प्राप्त होता है।

(ख) खेतों पर कार्य करने वाले श्रमिक।

ये श्रमिक भूमि हीन कृषक होते हैं और फसल काटने, बीज़ बोने और हल चलाने के कार्य में दैनिक वेतन पर रक्खे जाते हैं।

(ग) साधारण श्रमिकः—

ये साधारण श्रमिक कुआ खोदने, गाड़ी चलाने व अन्य कृषि सहायक कार्य करते हैं। इनको दैनिक वेतन मुद्रा व अन्न के रूप में दी जाती है।

(घ) सक्रिया श्रमिकः—

ये श्रमिक सक्रिय श्रमिक होते हैं जो काष्ठ, लोह एवं अन्य प्रावैधिक (Technological) क्षमता रखते हैं। ये कुएं की चुनाई, छप्पर बांधना, मकान बनाना आदि कार्यों में प्रयोग में लाये जाते हैं। इन श्रमिकों का वेतन अन्य श्रमिकों की तुलना में अधिक होता है।

ग्रामीण श्रमिकों की विशेषताएं
(Special Features of Rural Labourers)

औद्योगिक श्रमिकों की तुलना में ग्रामीण श्रमिकों की कुछ विशेषताएं होती हैं। हम ग्रामीण श्रमिकों की निम्न विशेषताएं देखते हैं:—

(१) समुचित वर्गीकरण का अभावः—

यद्यपि हमने ग्रामीण श्रमिकों का वर्णन ऊपर प्रस्तुत किया है। परन्तु गांवों में योग्यता और क्षमता के अनुसार श्रमिकों का कोई समुचित वर्गीकरण नहीं है।

(२) वेतन वस्तुओं में:—

ग्रामीण श्रमिकों को वेतन मुद्रा के रूप में प्रदान नहीं किया जाती। इससे यह लोग अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। इनको अपने श्रम का परिणाम दीर्घकालीन के उपरान्त उत्पादित अन्न के रूप में प्राप्त होता है।

(३) न्यून दैनिक वेतन:—

यदि ग्रामीण श्रमिकों को वेतन दैनिक रूप में प्रदान किया जाता है, इससे ये लोग आपत्कालीन परिस्थितियों के लिये कुछ बचा नहीं पाते। इनका दैनिक वेतन अत्यन्त न्यून होता है यह निम्न तालिका से स्पष्ट करेंगे :—

ग्रामीण दैनिक वेतन तालिका

कृषिक श्रमिक				सक्रिय श्रमिक
राज्य	पुरुष	महिलायें	बच्चे	
मद्रास	१.००	.७५ न.पै.	००.५० न.पै.	२.००
हिमाचल प्रदेश	१.२५	१.०० न.पै.	००.६० न.पै.	३.००
कच्छ	३.००	२.०० न.पै.	१.०० न.पै.	४.५०
मनीपुर	१.००	०.७५ न.पै.	००.५० न.पै.	२.५०

(४) श्रम की अस्थायी प्रकृति:—

ग्रामीण श्रम में प्रमुख रूप से कृषि कार्य में श्रमिक कार्य करते हैं। कृषि कार्य ऋतु एवं प्राकृतिक दुर्घटनाओ से प्रभावित है। यह प्रभाव श्रमिकों पर भी पड़ता है।

(५) महिलाओं और बच्चों से कठोर कार्य:—

ग्रामीण श्रमिकों में महिलाएं व बच्चे होते हैं। महिलाओं व बच्चों को भी पुरूष के साथ कठोर कार्य करना पड़ता है। महिलाओं व बच्चों के लिये भिन्न कार्यों की यहाँ व्यवस्था नहीं हैं।

(६) जातीयता का प्रभाव:—

ग्रामीण श्रमिकों में जातीयता का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। राजपूत, महाजन और ब्राह्मण जातियां श्रम-कार्य नहीं करतीं। निम्न व अछूत जातियों से अधिक श्रम लिया जाता है।

(७) श्रम अवधि का अभाव:—

ग्रामीण श्रमिकों के लिये कार्य के घंटों एवं श्रम अवधि का निश्चित रूप दृष्टिगोचर नहीं होता। इन्हें कभी भी किसी भी समय के लिये बुलाया जाता है और

कार्य लिया जाता है। गांवों में 'हालि' नाम का श्रमिक २४ घंटों का नौकर होता है।

(८) संगठन का आभाव:—

ग्रामीण श्रमिकों में कोई संगठन नहीं होता। संगठन के अभाव में श्रम विभाजन, वेतन एवं श्रम के घंटे नियत नहीं होते फलत: श्रमिकों का खूब शोषण होता है। इस प्रकार ग्रामीण श्रम एवं श्रमिकों की दशा सुधारने की शीघ्र आवश्यकता है।

जजमानी प्रथा

(Jajmani System)

ग्रामीण श्रम में जजमानी प्रथा का अत्यन्त उल्लेखनीय स्थान है। इस प्रथा के अन्तर्गत ग्रामों में प्रत्येक श्रमिक तथा जाति का एक निर्धारित ढांचा होता है जो जजमानी प्रथा कहलाती है। जजमानी प्रथा को हम निम्न उदाहरण से स्पष्ट करेंगे।

रामदीन एक गाँव का किसान है इसको प्रति दिन नाई, चमार, बढ़ई, लौहार, बलाई आदि लोगों की आवश्यकता पड़ती है। इनकी सेवाओं का वेतन वह मुद्राओं में नहीं दे सकता। रामदीन किसान इन सब जातियों का जजमान है। वर्ष भर की सेवाओं का परिणाम वह अपनी फसल के अन्त में निर्धारित अनुपात में उन्हें अदा करता है। इस परिणाम की राशि अत्यन्त न्यून होती है। यदि किसी वर्ष अकाल पड़ जाता है अथवा वह खेती नहीं कर पाता है तो इन श्रमिकों का वेतन मारा जाता है।

यह सम्बन्ध पीढी दर पीढी तक चलता रहता है। इसी प्रकार ब्राह्मण, राजपूत, महाजन आदि जातियों से कुम्हार, नाई, तेली, तम्बोली, खाती, बढ़ई, बलाई आदि के सम्बन्ध निर्धारित होते हैं। इस व्यवस्था में इन उद्योगशील और श्रमिक जातियों का शोषण होता है। इस प्रथा में अनेक अभाव हैं। परम्परा से यह प्रथा भारतीय गांवों में आज भी दृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं गांव के सूबेदार, जागीरदार, नम्बरदार आदि भी इनका शोषण करते हैं। सरकारी कर्मचारी, पटवारी, गिरदावर, तहसीलदार आदि भी इन लोगों से इसी आधार पर बेगार लेते हैं। अतः गांवों में श्रम का कोई मूल्य नहीं है।

ग्रामीण बाजार

(Rural Market)

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में ग्रामीण बाजारों का भी उल्लेखनीय स्थान है। ग्रामीण उत्पादन में बाजार का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि ग्रामीण बाजार

का हमें कोई व्यवस्थित रूप देखने को नही मिलता है। ग्रामीण उत्पादन का आधार आदान-प्रदान (Barter System) व्यवस्था पर अवलम्बित है। यहां बाजार नाम की कोई आर्थिक संस्था नही है और न ही यहां इसका व्यवस्थित रूप दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण लोगों का बाजार अत्यन्त सीमित है। वे अपनी समस्त आवश्यकताएं पारस्परिक आदान-प्रदान से ही पूर्ण कर लेते हैं। गांव का बन्जारा सबको नमक देकर धान, कपड़ा आदि प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार कृषक अपने धान के बदले कपड़ा, औजार, पशु, बीज, तेल, नमक, मिर्च, दालें, चावल आदि प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार गांव के बाजार में मुद्रा देखने को नहीं मिलती। यदि कोई आवश्यक वस्तु अन्य गांव से मंगाने की आवश्यकता पड़ती है तो वह भी विनिमय के द्वारा ही प्राप्त कर ली जाती है। इसके अतिरिक्त भारत के कुछ प्रान्तों में ग्रामीण बाजार के निम्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

ग्रामीण बाजार का वर्गीकरण
(Classification of Rural Market)

प्राप्य ग्रामीण क्षेत्रों में बाजारों के प्रादेशिक आधार पर विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं। हम ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न बाजार देखते हैं।

प्रथम ; स्थायी महाजनों की दुकानें।
द्वितीय : परिवर्तनशील एवं गतिशील बाहरी दुकानें।
तृतीय : साप्ताहिक मंडियां।
चतुर्थ : मासिक हाट।
पंचम : फसली बाजार।
षष्ठम् : वार्षिक मेलों आदि पर बाजार आदि।

इस प्रकार उपरोक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त भी हमें स्थानीय आवश्यकताओं आदि के आधार पर ग्रामीण बाजार के अन्य रूप भी दृष्टिगोचर होते हैं। अब हम ग्रामीण बाजार की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे।

ग्रामीण बाजार की विशेषतायें
(Characteristics of Rural Market)

ग्रामीण बाजार की प्रकृति एवं विशेषताओं पर दृष्टिपात करने के लिये हम इनका निम्न क्रम निर्धारित करते हैं।

(क) वैयक्तिक आदान प्रदान।
(ख) बन्जारों का बाहुल्य।
(ग) स्थानीयता।

(घ) संगठन का अभाव ।
(च) उत्पादन की श्रेणियों के विभाजन की अनुपस्थिति ।
(छ) कीमत एवं मूल्य की अस्थायित्वता ।
(ज) वृहद् क्रय विक्रय ।
(झ) संग्रह व भंडारों का अभाव ।
(ट) व्यवसायिक सूचनाओं का अभाव ।
(ठ) यातायात के साधनों का अभाव ।
(ढ) साहूकारों का बाहुल्य ।
(त) मध्यस्थों का हस्तक्षेप ।

ग्रामीण यातायात के साधन
(Means of Rural Transport)

अर्थ व्यवस्था में यातायात का महत्वपूर्ण स्थान है । ये साधन सुगम और शीघ्र होने पर आर्थिक उन्नति में सहायक तो होते ही है परन्तु औद्योगिक एवं सामाजिक सम्बन्धों का भी विकास करते हैं । राष्ट्रीय आर्थिक विकास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है । इसके ठीक विपरीत हम भारतीय ग्रामीण क्षेत्रो में इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय पाते है । ग्रामीण यातायात के साधन अत्यन्त प्राचीन और पुरातन हैं । कच्ची सड़कें एवं मार्ग नदी, नालों खड्डों, पर्वतों, एवं पहाड़ियों, जंगलों से, व्याप्त मार्ग ग्रामीण मार्गों का दृश्य उपस्थित करते हैं । हम ग्रामीण यातायात के साधनों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं ।

(१) बैलगाड़ियां

यह गाँवों में यातायात के साधनों में से प्रमुख साधन हैं । सड़क अनुसन्धान केन्द्र (Road Research Centre) के कथानुसार भारत में १०० लाख बैल-गाड़ियां हैं । भारत का ७० प्रतिशत भार बैलगाड़ियों द्वारा वहन किया जाता है ।

(२) ऊंट गाड़ियां

पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में इनका बाहुल्य है । इन गाड़ियों पर तथा खाली ऊंटों पर भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान ले जाया जाता है ।

(३) घोड़े गाड़ियां

कुछ गाँवों में घोड़े-गाड़ियां भी प्रचलित हैं, जहां ग्राम कच्ची व पक्की सड़कें प्राप्त हैं, वहां इन गाड़ियों से सामान लाया व ले जाया जाता है ।

(४) सड़कें

गाँवों की सड़कों के बारे में हम स्पष्टतया कह सकते हैं कि समस्त भारत में २४० हजार मील सड़कों में से केवल ७५ हजार सड़कें पक्की हैं। ग्रामीण सड़कों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। इनके फलस्वरूप ग्रामीण सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक सम्बन्ध विकसित नहीं हो सकते।

ग्रामीण यातायात एक महान समस्या है। इस समस्या का हल किया जाना आवश्यक है। वर्तमान सरकार इस दिशा में यद्यपि सक्रिय रूप से प्रयत्नशील है परन्तु आशातीत प्रगति दृष्टिगोचर नहीं हो रही है।

ग्रामीण मुद्रा
(Rural Finance)

ग्रामीण मुद्रा व्यवस्था एक विशिष्ट व्यवस्था है। कृषि एवं कुटीर उद्योगों की सफलता, सफल एवं समुचित मुद्रा व्यवस्था पर आधारित है। कृषि एवं कुटीर उद्योगों में यद्यपि प्रारम्भिक समय से मुद्रा का बहुत कम स्थान प्रतीत होता है। कृषि एवं उद्योग विकास के लिये मुद्रा का व्यवस्थित रूप आवश्यक है। ग्रामीण आर्थिक क्षेत्र में निम्न क्षेत्रों में मुद्रा की आवश्यकता प्रतीत होती है।

प्रथम : कृषि कार्यों में बीज, यन्त्र, खाद्य आदि के लिये

द्वितीय : पशु खरीदने तथा कुएं आदि खुदवाने के लिये

तृतीय : पूर्वजों का ऋण चुकाने के लिये

चतुर्थ : भूमिकर चुकाने के लिये।

इस प्रकार गांवों में उपरोक्त धन वितरण में मुद्रा की आवश्यकता होती है।

ग्रामीण मुद्रा व्यवस्था की विशेषताएं
(Characteristics of Rural Finance System)

ग्रामीण मुद्रा की विशेषता अद्वितीय है। इसमें अनेक अभाव व्याप्त हैं जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण पीढ़ि दर पीढ़ि ऋणी रहता है। यह भी ग्रामीण भारत की प्रमुख समस्या है। ग्रामीण मुद्रा व्यवस्था में हमें निम्न विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं।

(१) ग्रामीण साहूकारों का आधिपत्य।

(२) ब्याज की उच्च दरें।

(३) किसानों की ऋण चुकाने की न्यून क्षमता।

(४) सहयोगिक बैंकों का अभाव।

(५) मुद्रा शिक्षा का अभाव।

(६) पैतृक ऋण ।

(७) कृषि की अस्थायी और प्राकृतिक प्रवृत्ति ।

(८) ग्रामीण सामाजिक अपव्ययता ।

इन विशेषताओं के आधार पर हमें ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि में अवनति, उद्योगों का विनाश तथा कृषकों की ऋण ग्रस्तता दृष्टिगोचर होती है। ग्रामीण मुद्रा व्यवस्था के क्षेत्र में सरकार प्रयत्नशील है और इस दिशा में सहकारी बैंकों की स्थापना की गई है। इस दिशा में प्रगति सन्तोषजनक नहीं है। इस दृष्टि से सुधार की शीघ्र आवश्यकता है।

द्वितीय खण्ड

ग्रामीण सामाजिक संगठन

(Rural Social Organisation)

उपविभाग तृतीय

ग्रामीण सामुदायिक विघठन

(Rural Community Disorganisation)

अध्याय २२

ग्रामीण सामुदायिक विघठन

(Rural Community Disorganisation)

हम पिछले खंड में ग्रामीण सामुदायिक संगठन पर विचार कर आये हैं। प्राचीन समय में ग्रामीण समुदाय एक आत्मनिर्भर इकाई के रूप में संगठित होते थे। इन समुदायों में सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उत्पादन किया जाता तथा उत्पादन उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये प्रयास होता था। धीरे धीरे सभ्यता के विकास के साथ ही साथ ग्रामीण समुदाय विघठित होने लगे। इस विघठन की प्रक्रिया में ग्रामों की आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई। उनके सुख समृद्धि आदि का अंत विशेष रूप से ब्रिटिश काल में हुआ था। ग्रामीण जीवन में अनेक समस्यायें व्याप्त हो गई। इन समस्याओं के लिये हमें ग्रामीण सामुदायिक विघठन का अध्ययन करना आवश्यक है। ग्रामीण सामुदायिक विघठन के अध्ययन से पूर्व हमें सामाजिक विघठन का अर्थ समझ लेना आवश्यक होगा।

सामाजिक विघठन का अर्थ

(Meaning of Social Disorganisation)

सामाजिक विघठन सामाजिक संगठन का विपरीत शब्द है। सामाजिक विघठन की अवस्था में समस्त सामाजिक संगठन अस्तव्यस्त हो जाता है। सामाजिक विघन वह दशा है जिसमें संगठित कार्य करने की क्षमता समाप्त हो जाती है और समाज में अनेक सामाजिक व्याधियां जैसे अपराध, हत्या, अनैतिक बच्चे, निर्धनता, बेकारी आदि की संख्या बढ़ जाती है। सामाजिक विघठन की परिभाषा करते हुए इंलियट और मैरिल ने लिखा है, "सामाजिक विघठन वह प्रक्रिया है जिसके कारण एक समूह के सदस्यों के बीच स्थापित सम्बन्ध टूट जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं"[1] फेरिस ने लिखा है "सामाजिक विघठन मनुष्यों के बीच कार्य सम्बन्धों के उस सीमा तक टूट जाने को कहते हैं जिसके कारण समूह के मान्य कार्यों के करने

---

1. "Social Disorganisation in the process by which the relationships between members of a group are broken or dissolved. Eliott, Mobel A, and Merrill Franoiss E. 'Social Disorganisation; Harper and brother. New York, P. 20 (Third Edition) 1950.

में बाधा पड़ती है।"[2] इस प्रकार सामाजिक विघठन उस प्रक्रिया को कहते हैं जो कि स्थापित एवं मान्य व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करती है। इसे और स्पष्ट करते हुए फेरिस ने लिखा है, "एक समाज उस समय विघठन अनुभव करता है जब कि उसके विभिन्न भाग अपनी पूर्णता खो देते हैं और अपने उपेक्षित उद्देश्यों के अनुसार कार्य नहीं कर पाते हैं।"[3] थोमस और जेनिकी ने सामाजिक नियमों के प्रभाव के कम होने के आधार पर सामाजिक विघठन की परिभाषा की है। वे लिखते हैं, "समूह के व्यक्तिगत सदस्यों पर वर्तमान व्यवहार के सामाजिक नियमों के प्रभाव का कम होना है।"[4] आर्गबन और निमकाक ने सामाजिक विघठन की परिभाषा करते हुए लिखा हैं, "सामाजिक विघठन वह दशा हैं जिसमें या तो सामाजिक संरचना भंग हो जाती है अथवा सफलता से कार्य नहीं कर सकती है। सामाजिक विघठन का अर्थ किसी सामाजिक इकाई जैसे समूह संस्था या समुदाय के कार्यों का विच्छेद है।"[5] क्वीन स्टुअर्ट वाल्टर ने सामाजिक विघठन की परिभाषा की है, "यदि सामाजिक संगठन का तात्पर्य सम्बन्धों का इस प्रकार विकास समझा जाता है जिन्हें मनुष्य और समूह परस्पर सन्तोषजनक पाते हैं तो विघठन का तात्पर्य उन सम्बन्धों का ऐसे सम्बन्धों द्वारा पूर्ति होना है जो कि निराशा, उदासीनता, झुंझलाहट और दुःख लाते हैं।"

---

2. Social disorganisation is the disruption of the functional relations among persons to a degree that interferes with the performance of the accepted tasks the Group'. Faris Robert E. L. 'Social disorganisation' The Ronald Press Company. New York (1948) P. 19
3. "A Society experiences disorganisation then the parts of it looses their intergration and fail to function according to their implict purposes'. Paristop. Cit. P. 49
4. "Social disorganisation as a" decrease of the influence of enisting social role of behaviour upon individual members of the Group." Thomas wlliam and Florian, "The Polish Pensent in Europe and America "Richard S. Badger Boston (1918) Vol. 4. p. 2.
5. Social disorganisation refers to the disruption of the function of some social unit such as a group or institution or a Community.'Ogburn and Nimkofft 'A Hand. book of Sociology p. 600.
6. "If Social'organisation means the development of relationship which persons and groups find Mutually satisfactory, then disorga-nisation means their replacement by relationship which having disappointment thwarted wishes, irritation and unhappiness." queen stuart A. Bodenhafer, walter B, and harper Earnest B. 'Social Organisation and Social Disorganisation'; Thomes Y. Erowell Company; New York (1955) P. 53,

सामाजिक विघठन वह प्रक्रिया है जिसमें एक समूह के सदस्यों के बीच के परस्पर सन्तोषप्रद सम्बन्ध भंग हो जाते हैं और उनके स्थान पर ऐसे सम्बन्ध बनते हैं जिससे निराशा, इच्छाओं का खंडन, चिन्ता और दुःख उत्पन्न होते हैं। इसलिये इस प्रक्रिया को समूह के विच्छेद की प्रक्रिया कहना उचित होगा। परिवार, समुदाय, (ग्राम या नगर) राष्ट्र अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का विच्छेद ही सामाजिक विघठन है। प्रत्येक व्यक्ति का सम्बन्ध अनेक समूहों से रहता है। सामाजिक विघटन एक रोग के समान है जो सामाजिक व्यवस्था में विघठन उत्पन्न होने का द्योतक है। सामाजिक विघठन समाज का रोग है और सामाजिक संगठन समाज का स्वास्थ्य है। सामाजिक विघठन एक प्रक्रिया है इसे हम पूर्ण अवस्था नहीं कह सकते। किसी समाज में कभी भी इतना विघठन नहीं पाया जा सकता जिससे समाज के समस्त नियंत्रण शिथिल पढ़ जायें एवं कोई भी ऐसा समाज नहीं पाया जा सकता जो पूर्ण रूप से संगठित कहला सके। पूर्ण संगठन एवं पूर्ण विघठन तो नदी के दो तटों की तरह अलग अलग है। सामाजिक व्यवस्था एवं समाज का कार्य सदा ही इन दोनों किनारों के बीच चलता रहता है। इसलिये सामाजिक विघठन को हम प्रक्रिया मानते हैं। सामाजिक संगठन की प्रकिया समाज में एकता का निर्माण करती है एवं सामाजिक विघठन की प्रक्रिया समाज को पृथकता की ओर ले जाती है। उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि सामाजिक विघठन एक प्रक्रिया भी है और एक दशा भी है। यह केवल समाज को हानि ही नहीं पहुँचाती वरन् यह विघठन उपस्थित कर व्यक्तियों को संगठन के लिए भी प्रेरित करती है। जिस प्रकार रोग शरीर के विकारों को दूर कर देता है उसी प्रकार विघठन सामाजिक विकारों को भी दूर कर देता है और सामाजिक संगठन उपस्थित कर देता है। अब हम ग्रामीण सामुदायिक विघठन के अर्थ पर विचार करेगें।

ग्रामीण सामुदायिक विघठन का अर्थ
(Meaning of Rural Community Disorganisatian)

सामुदायिक विघठन से हमारा अभिप्राय उन सामाजिक विघठनों से है जो कि सम्पूर्ण समुदाय से विशेष रूप से सम्बन्धित हो। इनके उदाहरण राजनैतिक, भ्रष्टाचार, अपराध, बेकारी, निर्धनता, धर्म तथा अन्य आधारों पर मतभेद एवं अत्याचार, व्यवसायिक मनोरंजन इत्यादि हैं। राबर्ट एन्जिल के अनुसार (१) "सामुदायिक संगठन की मात्रा उतनी ही अधिक होगी जितनी समुदाय में स्कूलों, पुस्तकालयों और मनोरंजन सुविधाओं को महत्व दिया जायेगा (२) समुदाय में स्थानीय प्रजाति की संख्या बाहरी प्रजातियों की अपेक्षा अधिक होगी (३) कम

माताएं अर्थोपार्जन करती होंगी तथा (४) सामाजिक वर्गों में आर्थिक असमानताएं कम होंगी।" [7] राबर्ट एन्जिल के इन आधारों पर विचार किया जाय तो हम कह सकते हैं कि सामुदायिक विघठन की मात्रा उतनी ही अधिक होगी जितनी (१) समुदाय में स्कूलों, पुस्तकालयों एवम् मनोरंजन सुविधाओं की असन्तोषजनक, अवस्था होगी। (२) बाहरी प्रजातियों की अपेक्षा स्थानीय प्रजातियों की संख्या कम होगी (३) अर्थोपार्जन में स्त्रियों की संख्या अधिक होगी एवम् (४) सामाजिक वर्गों में अधिक आर्थिक विषमता होगी।

सामुदायिक संगठन में समुदाय के सदस्यों में मतैक्य व हम की भावना का होना अत्यन्त आवश्यक है किन्तु इनके कम होने पर सामाजिक विघठन की प्रक्रिया आरम्भ हो जायेगी। ग्रामीण सामुदायिक संगठन में भी परस्पर सामंजस्यपूर्ण व्यवहार का होना अत्यन्त आवश्यक है। कार्यों में सहकारिता का अभाव, उद्देश्यों की भिन्नता, ग्रामीण समुदाय को विघठन की ओर ले जाती हैं। सामुदायिक कल्याण की अपेक्षा वैयक्तिक स्वार्थ को अधिक महत्व देने से सामुदायिक विघठन प्रारम्भ हो जाता है। साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता, आर्थिक स्वार्थों की वैयक्तिकता सामुदायिक विघठन को जन्म देती है। जब किसी समुदाय के सदस्य सामुदायिक व्यवस्था में रूचि लेना समाप्त कर देते हैं और समुदाय में अपनी स्थितिके अनुसार कार्यो की वैयक्तिक परिभाषा बना लेते हैं तब सामुदायिक विघठन उत्पन्न हो जाता है। सामुदायिक विघठन सम्पूर्ण समुदाय को विघठित करने की प्रक्रिया हैं। यह केवल समुदाय को विघठित ही नही करती वरन् समुदाय के दोषों को भी बाहर निकाल देती है और समुदाय के सदस्यों को सामुदायिक संगठन के लिए प्रेरित करती हैं। जिस भांती ज्वर शरीर के लिए एक रोग है किन्तु ज्वर के कारण शरीर के अन्य दोष दूर हो जाते हैं उसी प्रकार सामुदायिक विघठन भी समुदाय को स्वस्थ बना देता है।

सामुदायिक विघठन सामाजिक विघठन का भाग है। सामुदायिक विघठन की पृष्ठभूमि में कारणों एवं प्रभावों की बाहुल्यता होती है और ये आपस में इतने सम्बन्धित होते हैं कि इनके प्रभाव को पृथक नहीं किया जा सकता।

ग्रामीण सामुदायिक विघठन भी सामुदायिक विघठन का वह भाग हैं जो विशेषरूप से ग्रामीण पर्यावरण से सम्बन्धित होता हैं। ग्रामीण सामुदायिक विघठन को अनेक ग्रामीण कारक प्रभावित करते हैं। ग्रामीण सामुदायिक विघठन वह अवस्था है जिससे ग्रामीण समुदाय के सदस्य सामुदायिक कल्याण की अपेक्षा

---

7. Robert C. Angoll Cited by M. A. Elliot and F. E. Merill, 'Social Disorganisation' P. 477.

व्यक्तिगत स्वार्थों को अधिक महत्व दे हैं। सामुदायिक परिभाषाओंके स्थान पर व्यक्तिगत परिभाषायें बना लेते हैं, तथा सामुदायिक स्थितियां और कार्यो कोवैयक्तिक आधार पर समझते हैं और इन आधारों पर ग्रामीण समुदाय में सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्था को हम प्रक्रिया के आधार पर भी प्रभावित कर सकते हैं क्योंकि किसी भी समुदाय में न तो पूर्ण विघठन की अवस्था हो सकती है और न पूर्ण संगठन की। अतः सामुदायिक संगठन तथा विघठन की प्रक्रियायें सदैव कार्य करती रहती है और एक दूसरे को उत्पन्न करने का हेतु होती हैं। सामुदायिक विघठन संगठन को जन्म देता है और संगठन विघठन को जन्म देता है। ग्रामीण सामुदायिक विघठन के अर्थ पर विचार करने के पश्चात् अब हम ग्रामीण सामुदायिक विघठन के कारणों पर प्रकाश डालेंगे।

ग्रामीण सामुदायिक विघटन के कारण

(Causes of Rural Community Disorganisation)

सामुदायिक विघठन किसी कारण से नही होता बल्कि अनेक कारणों पर आधारित होता है जो कि आपस में एक दूसरे से गुंथे हुए होते हैं। भारतीय ग्रामीण समुदाय के विघठन में अनेक कारण महत्व रखते हैं। नीचे हम इन कारणों का वर्णन करेंगे।

(१) प्रशासन सम्बन्धी कारण (Administrative Causes)

प्रशासन से जहाँ सामुदायिक संगठन स्थापित होता है वहाँ इसके ही अंगों द्वारा विघठन भी प्रारंभ हो जाता है। नीचे हम विभिन्न तत्वों पर विचार करेंगे कि ये किस भांती से विघठन को जन्म देते हैं :—

(क) ब्रिटिश शासकों की नीति (Policy of British Emperors)

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय ग्राम समुदाय पूर्ण आर्थिक आत्मनिर्भर इकाई के रूप में थे किन्तु अंग्रेज शासकों ने इस आत्मनिर्भरता को समाप्त कर दिया। प्राचीन भूमि स्वामित्व प्रणाली को समाप्त करके जमींदारी प्रथा का विकास किया। इस प्रथा के विकास के कारण अनेक सामाजिक समस्यायें उत्पन्न होती चली गई। इस प्रथा के द्वारा किसानों का अधिक शोषण हुआ और उनकी अवस्था बड़ी तेजी के साथ गिरती चली गई। जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत जमीन की बेदखल के अधिकार के कारण भूमिहीन कृषक मजदूरों की संख्या में वृद्धि होती गई। इससे प्रायः बेकारी, नजराना आदि प्रथाओं के कारण ग्रामीण कृषकों की आर्थिक स्थिति अत्यधिक निम्न हो गई।

(ख) पंचायतों का पतन (Decay of Panchayts)

ग्रामीण सामुदायिक संगठन के विघठित होने में पंचायतों का पतन भी एक प्रमुख कारण रहा है। अति प्राचीन काल से ग्रामीण प्रशासन में शान्ति और सुरक्षा स्थापित करने वाली संस्था पंचायत ही थी। इस पंचायत के कारण ही ग्रामीण सामुदायिक संगठन अपने सर्वोच्च शिखर पर था। ब्रिटिश शासक काल की नीति के जमींदारी प्रथा, पुलिस विभाग, दीवानी तथा फौजदारी अदालतों के विकास के कारण ग्रामीण पंचायतों का पतन हो गया।इसका परिणाम यह हुआ की जिन साधारण झगड़ों को आपस में ही पंचायत द्वारा सुलझा दिया जाता था, अब उनके लिए ग्रामीण व्यक्तियों को न्यायालयों की शरण लेनी पड़ी। न्यायालय व्यवस्था में न्याय उन लोगों के अधिकार में हो गया जो इन व्यक्तियों की वास्तविक परिस्थिति से अनजान थे। न्याय प्राप्त करने में अब समय व धन का अपव्यय होने लगा। वकीलों का बोलबाला बढ़ गया। कृषकों का अब हर प्रकार से शोषण होने लगा एक ओर तो जमींदार उनसे अधिक से अधिक कर प्राप्त करने में प्रयत्नशील थे, तो दूसरी ओर वकील उनसे अधिक फीस लेकर अधिक से अधिक मुकद्दमों में उलझा कर उन्हें लूटने लगे; तो तीसरी ओर न्यायालय व शहर तक आने का व्यय बढ़ गया, चौथी ओर उनके अपने कृषि कार्यों में लगने वाले समय का अधिकांश भाग अब न्यायालयों में व्यय होने लगा। और इस भांती अनेक भीषण समस्यायें उठ खड़ी हुई।

(ग) नवीन राजनैतिक परिस्थितियाँ
(New Political Situations)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय ग्रामीण जनता को नई राजनैतिक परिस्थिति के सम्मुख खड़ा होना पड़ा। ग्रामीण जनता इन नवीन परिस्थितियों से शीघ्रता के साथ अनुकूलन नहीं कर पाई। परिणामतः उनमें विघठन की ओर नई अवस्थाएं उत्पन्न हो गई। इस संक्रमणकाल में सामाजिक समस्याओं के उद्रेक से सामुदायिक विघठन उपस्थित हो गया।

(२) आर्थिक कारण (Economic Causes)

ग्रामीण सामुदायिक विघटन के लिये अनेक आर्थिक कारण भी उत्तरदायी हैं। इनमें से प्रमुख निम्न है :—

(क) ग्रामीण उद्योग धन्धों का पतन (Decay of Rural Industry)

प्राचीन भारत में ग्राम समुदाय एक आत्म निर्भर इकाई के रूप में थे। किन्तु सभ्यता के विकास के साथ साथ और अंग्रेजों के शासनकाल में इन समुदायों की

आत्मनिर्भरता समाप्त होने से इन के प्रमुख कुटीर उद्योग भी नष्ट हो गये। अंग्रेजी शासन में मशीनों से बना माल बाजार में आ गया। मशीन के माल से हाथ का बना हुआ माल अच्छा नहीं था परिणाम यह हुआ कि अनेक मजदूर कारीगर बेकार हो गये और समाज में विघठन उपस्थित हो गया।

(ख) औद्योगीकरण (Industrialisation)

भारतीय ग्रामीण सामुदाय को विघठित करने वाला प्रमुख कारण औद्योगीकरण भी है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया के अन्तरगत मशीन, मिलें तथा फैक्ट्रियां बढ़ गई। कुटीर उद्योगों की समाप्ति के कारण अनेक ग्रामीण व्यक्ति बेकार हो चुके थे। इन्होंने मिलों, कारखानों आदि में कार्य करना प्रारम्भ किया परिणामतः इन्हें गाँव को छोड़ना पड़ा और नगर में इन्हें नवीन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। जिससे बेकारी, वैश्यावृत्ति, अस्वस्थ निवासव्यवस्था, जुआ, मध्यपान आदि की दिशायें उत्पन्न हो गईं।

(ग) भूमिहीन मजदूर कृषक एवं निर्धनता

(Landless Labour Peasant & Poverty)

कृषि प्रकृति पर आधारित होने से इसमें अनेक प्राकृतिक संकटों का सामना करना पड़ता है। इन संकटों में अकाल, बाढ़, आदि हैं इससे ग्रामीण व्यक्तियों की निर्धनता में वृद्धि होती है। जमींदारी प्रथा तथा नवीन न्यायालय व्यवस्था के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता वैसे ही बढ़ती चली गई है और उस पर यह प्राकृतिक संकट उनकी निर्धनता में अत्यधिक वृद्धि करते हैं। अतः इस निर्धनता के कारण हजारों परिवार नष्ट हो गये और ग्रामीण समुदाय का आर्थिक सन्तुलन समाप्त हो गया है और विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई।

(३) ग्रामीण संरचनात्मक कारण (Rural Structural Causes)

ग्रामीण संरचना सम्बन्धी कारण भी ग्रामीण सामुदायों को अत्यधिक विघठित करते हैं। इनमें से प्रमुख कारण निम्न हैं :—

(क) सामाजिक संस्थायें (Social Institutions)

ग्रामीण समुदाय संस्थाओं का सामूहिक रूप है। ये संस्थायें समाज में एक दूसरे से सम्बन्धित होती हैं। इन संस्थाओं का उद्देश्य जब आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन न रहकर केवल मात्र नियंत्रण का पालन ही रह जाता है तब सामुदायिक विघठन उत्पन्न हो जाता है। अर्थात् ये संस्थायें साधन न रहकर साध्य बन जाती हैं। परिवर्तित परिस्थितियों में भी इन संस्थाओं के वही प्राचीन उद्देश्य बने रहने से इन संस्थाओं की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती किन्तु फिर भी परम्परा-

गत विचारों से उनकी मान्यता रहने से इनका पालन किया जाता है । फलतः इनके द्वारा उद्देश्य पूर्ति न होने पर भी इनके बने रहने से सामुदायिक विघठन उपस्थित हो जाता है । ग्रामीण सामुदायों में परम्परा व रूढ़ियों का अत्यधिक पालन किया जाता है । उदाहरण रूप में दहेज, मृतक भोज, बाल विवाह पर्दाप्रथा आदि संस्थायें आज के युग में बुरी होने पर भी केवल सामाजिक संस्थाएं होने के कारण ही इनका पालन किया जाता हैं जबकि आज इनकी कोई उपयोगिता नहीं रह गई हैं ।

(ख) सांस्कृतिक विडम्बना (Cultural Lag)

ग्रामीण क्षेत्रो में सांस्कृतिक विडम्बना के अनेक उदाहरण हमें आज उपलब्ध हो सकते हैं । सभ्यता की बढ़ती हुई दौड़ में ग्रामीण व्यक्ति बहुत पीछे हैं । ये आज भी उन्हीं सदियों पुराने हलों व कृषि के तरीकों का प्रयोग करते हैं । अतः सांस्कृतिक विडम्बना के परिणामस्वरूप विघठन उपस्थित होना अत्यन्त आवश्यक है । सांस्कृतिक विडम्बना भी ग्रामीण समुदायों में विघठन की प्रक्रिया को उत्पन्न किये हुए है । संस्थाओं के पिछड़ जाने को संस्थागत विडम्बना (Institutional lag) कहा जाता है और यह ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक पाया जाता है ।

(ग) स्थिति एवं कार्यों की वैयक्तिक व्याख्या
(Individual Explanation of Status & Roles)

ग्रामीण सामुदायिक विघठन में स्थितियों एवं कार्यों की यदि सामुदायिक आधार पर व्याख्या की जाय तो ये सामुदायिक संगठन को बनाने में योग देते हैं । किन्तु आधुनिक युग में व्यक्तिवादी विचार धाराओं के विकसीत हो जाने से व्यक्ति अपनी इच्छानुसार स्थितियों और कार्यों की व्याख्या करते हैं, जिसमें वैयक्तिक स्वार्थ को भावना निहित होती है । परिणामतः सामुदायिक विघठन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है क्यों कि वैयक्तिक स्वार्थ सामुदायिक स्वार्थ से टकराता है । अतः सामुदायिक विघठन वैयक्तिक स्वार्थ के कारण प्रारम्भ हो जाता है ।

(४) जनसंख्यात्मक कारण (Demographic Causes)

ग्रामीण सामुदायिक विघठन में जनसंख्यात्मक कारणों का भी पर्याप्त योग है । इनमें प्रमुख निम्न हैं :—

(क) जनसंख्या की वृद्धि (Growth of Population)

जनसंख्या की वृद्धि के कारण पर्याप्त भोजन की सुविधा नही मिल पाती तो विघठन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है । जनसंख्या के बढ़ने से खेतों का विभाजन प्रारम्भ हो जाता है । इससे सभी लोगों को कार्य नहीं मिलता और उपज भी पर्याप्त नहीं होती । अतः बेकारी बढ़ती है । इसलिए आवश्यक है कि परिवार-नियोजन किया जाय किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रयोग भी सफल नही हो रहा है ।

जनसंख्या के अधिक बढ़ जाने से स्वास्थ्य सुविधायें, चिकित्सा सुविधायें निवास सुविधा उचित मात्रा में नहीं प्राप्त होती और कार्यक्षमता घटती है। परिणाम से सामुदायिक विघठन प्रारम्भ हो जाता है। जनसंख्या के बढ़ने से खेतों पर दबाव बढ़ गया, तो बेकारी और भुखमरी बढ़ गई है। ये लक्षण विघठन के लक्षण हैं।

(ख) नागरिकरण (Urbanisation)

नागरिकरण की प्रक्रिया से ग्रामीण जनता नगरों की ओर बढ़ने लगी है। ग्रामों की आबादी घटने लगी और नगरों की आबादी बढ़ने लगी, किन्तु नगर की ओर जानेवाले ग्रामीण भी अपने ग्रामों को पूर्ण रूप से नही छोड़ते, वे लौट कर ग्रामों में आते रहते हैं। इससे कारखानों में अनुपस्थिति की समस्या उत्पन्न होती है, वहाँ कृषि क्षेत्रों में भी अनेक समस्यायें उत्पन्न होतीं है और विघटन प्रारम्भ हो जाता है। नागरिक प्रभावों के कारण भी ग्रामीण व्यक्ति नौकरी की ओर अधिक प्रवृत होने लगे हैं। परिणामतः कृषि की ओर ध्यान न देने से एक क्षेत्र की उन्नति रूक गई।

(ग) स्थानान्तरण (Moblisation)

स्थानान्तरण की प्रक्रिया ने भी ग्रामीण समुदाय को विघठन की ओर प्रेरित किया है। नये स्थानों पर नवीन संस्कृति से अनुकूलन शीघ्रता से नहीं होता परिणामतः स्थानान्तरण से अनेक समस्याओं को जन्म मिलता है जो विघठन का लक्षण है।

(५) सामाजिक कारण (Social Causes)

अनेक सामाजिक कारण भी ग्रामीण सामुदाय में विघठन उपस्थित किये हुए हैं। इनमें से प्रमुख निम्न हैं।

(क) पारिवारिकता (Familism)

पारिवारिकता के आधार पर समुदाय के स्वार्थों की अपेक्षा परिवार के स्वार्थों को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। परिणाम यह होता है कि इस पारिवारिकता की दौड़ में सभी व्यक्ति अपने परिवार को अधिक महत्व प्रदान करने के उद्देश्य से अन्य परिवारों से प्रतिद्वन्दिता एवं संघर्ष की प्रक्रियाओं में संलग्न हो जाते हैं और इस भांति सामुदायिक विघठन प्रारम्भ हो जाता है।

(ख) रूढ़िवादिता (Conservatism)

रूढ़िवादिता के आधार पर प्रचलित परम्पराओं एवं प्रथाओं की मान्यता बराबर बनी रहती हैं और सामुदायिक विघठन प्रारम्भ हो जाता है। इससे नवीन मान्यताओं को स्थान नहीं मिल पाता और न ग्रामीण व्यक्ति नवीन मान्यताओं को जन्म देने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं और समाज संगठित नहीं रह पाता और सभ्यता की दौड़ में भी पिछड़ जाता है।

(ग) सामाजिक परिवर्तन का अभाव (Lack of Social Change)

रूढ़िवादिता से परिवर्तनों का अभाव रहता है। बाहरी संस्कृतियों एवं समाजों से यदि नई मान्यतायें सम्मुख आती भी हैं तो ग्रामीण व्यक्ति उन्हें शीघ्रता से नहीं ग्रहण कर पाते। उदाहरण के लिये रुपये एवं पैसों के सम्बन्ध में नई प्रणाली अथवा दसमलव प्रणाली का आरम्भ हुए इतना समय हो गया किन्तु अभी तक भी ग्रामीण व्यक्ति इस प्रणाली से बहुत अधिक अनभिज्ञ हैं जबकि नागरिक व्यक्तियों में इस सम्बन्ध में अत्यधिक अनुकूलन हो चुका है।

(घ) जातियतावाद (Casteism)

जातियतावाद भी विघठन में अत्यन्त प्रमुखता रखता है। जातीयतावाद के कारण एक ही जाति के विभागों उपविभागों में संघर्ष की प्रक्रिया चलती रहती है। यह संघर्ष अन्य जातियों एवं धर्मों तक तो प्रायः रहती ही है। इस भाँति जातीयतावाद की संकीर्ण विचारधारा से समुदाय के विभागों में संघर्ष प्रतिसंघर्ष की प्रक्रियायें कार्य कर रही होती हैं। यह जातीयतावाद ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक पाया जाता है। अस्पृश्यता सम्बन्धी विचार भी अभी भारतीय ग्रामों से दूर नहीं हो पाये हैं। यद्यपि इस आन्दोलन को प्रारम्भ हुए कई वर्ष हो गये हैं।

इन उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त अनेक ऐसे कारण हैं जो सामुदायिक विघठन की प्रक्रिया को जन्म देते हैं। ग्रामीण समुदाय की आज अत्यन्त शोचनीय अवस्था हो गई है और इस कारण ग्रामीण समुदाय में विघठन अत्यधिक सीमा तक उपलब्ध होता है। इस विघठन को आधुनिक युग में अनुभव किया जा रहा है और इस दिशा में अनेक कार्य किये जा रहे हैं। इनमें सामुदायिक विकास योजना, पंचायत पुर्नगठन, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण आदि अनेक योजनायें हैं जो ग्रामीण सामुदायिक विघठन को समाप्त कर संगठन की ओर ग्रामीण समुदाय को प्रेरित करेंगी। ये योजनायें यद्यपि पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त कर रही हैं किन्तु फिर भी अत्यधिक सीमा तक ये सफल हुई हैं। इनकी सफलता दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है और ग्रामीण जगत में जागृति की लहर उत्पन्न होती जा रही है। इन योजनाओं के सम्बन्ध में विस्तार से हम तृतीय खंड में विचार करेगे। इस अध्याय में अब हम ग्रामीण सामुदायिक विघठन के प्रमुख रूपों पर विचार करेंगे।

ग्रामीण सामुदायिक विघठन के प्रमुख रूप
(Main Forms of Rural Community Disorganisation)

ग्रामीण सामुदायिक विघठन पर विचार करने के पश्चात् अब हम ग्रामीण सामुदायिक विघठन के प्रमुख स्वरूपों पर विचार करेंगे। ग्रामीण सामुदायिक विघठन के प्रमुख रूप निम्न हैं।

(१) राजनैतिक भ्रष्टाचार (Political Corruptions)

ग्रामीण समुदाय में भी राजनैतिक भ्रष्टाचार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। चुनावों के सिलसिले में अनेक राजनैतिक नेतागण ग्रामीण क्षेत्रों में मत प्राप्ति के लिए घूमते रहते हैं और कभी कभी तो मत खरीद लिए जाते हैं। पंचायतों में भी चुनाव के लिए अनेक भ्रष्टाचार प्रचलित हैं और भ्रष्टाचार द्वारा ही ये चुनाव भी जीत लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त पंचायत संगठन में भी भ्रष्टाचार पाया जाता है।

(२) बेकारी (Unemployment)

ग्रामीण समुदाय में भी बेकारी उपलब्ध है। यहां सभी ग्रामीण वर्ष में चार माह तो बेकार रहते ही हैं किन्तु कुटीर उद्योगों के अभाव के कारण भी कृषक-श्रमिक बेकार रहते हैं। कृषि बेकारी ग्रामों में अत्यधिक मात्रा में फैली हुई है।

(३) निर्धनता (Poverty)

ग्रामीण समुदाय अत्यधिक निर्धनता में पल रहा है। जमींदारी प्रथा, भूस्वामित्व की दोषपूर्ण प्रणाली, दोषपूर्ण न्याय व्यवस्था, वकीलों की लूट, तथा प्राचीन कृषि प्रविधियाँ आदि ने ग्रामीण व्यक्तियों की सम्पत्ति को लूट लिया हैं, और इनकी साम्पत्तिक रूप से वृद्धि नहीं हो रही है। परिणाम यह हुआ है कि ये दिन प्रतिदिन दरिद्र होते चले जा रहे हैं।

(४) सामाजिक प्रभेद (Social Discriminations)

ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक प्रभेदों की संख्या भी अत्यधिक बढ़ी हुई है। प्रत्येक जाति में अनेक विभाग एवं उपविभाग बने हुए हैं, जिनमें आपस में संघर्ष विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त अन्य जातियों से सामाजिक दूरी बनी हुई है। हरिजनों एवं अन्य शूद्रों की तो अत्यन्त शोचनीय स्थिति है। उनके प्रति अनेक सामाजिक विभेद प्रचलित हैं और उन्हें अनेक सामाजिक तथा सार्वजनिक सुविधायें भी नहीं प्रदान की गई हैं।

(५) मनोरंजन का अभाव (Lac of Entertainment)

ग्रामीण क्षेत्रों में मनोरंजन का नितान्त अभाव है। ग्रामीण व्यक्तियों को स्वस्थ मनोरंजन के नाम पर न सिनेमा उपलब्ध है न रेडियो। ग्रामीण लोगों के मनोरंजन के साधनों में कथा, कीर्तन, रामायण मंडलियाँ, भजन मंडलियाँ, नाटक मंडलियां एवं पारिवारिक सदस्यों का सहयोग मात्र ही प्राप्त है। इनमें भी कथा, कीर्तन, रामायण, एवं भजन मंडलियों में नवयुवकों का मनोरंजन नहीं हो सकता क्योंकि इनकी रुचि धार्मिक नहीं होती। नाटक मंडलियां भी पूरे वर्ष भर उपलब्ध

नहीं होतीं। मनोरंजन के अन्य साधनों के अभाव में उनके पास सुगमता से प्राप्त होने वाला एकमात्र साधन है यौनसुख। यौनसुख का परिणाम स्पष्ट है कि जन संख्या एवं परिवार में वृद्धि हो और इससे अनेक भीषण सस्मयायें उत्पन्न होती हैं।

(६) अपराध (Crimes)

ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपराध अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध है। अपराध सामाजिक एवं सामुदायिक विघठन का प्रमुख रूप हैं। अपराध से समाजिक शांति छिन जाती है। सामुदाय की सुरक्षा अपने ही सदस्यों के द्वारा खतरे में डाल दी जाती है। यहाँ हम ग्रामीण अपराध पर भी विस्तार से विचार करेंगे।

ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध
(Crimes in Rural Areas)

ग्रामीण क्षेत्रों में अपराधों के अस्तित्व एवं उनकी संख्या का पता लगाना अत्यन्त दुष्कर है। अपराध सूचि (Crime Index) में भी ग्रामीण एवं नागरिक अपराधों का कोई वर्गीकरण नहीं मिलता। कुछ भी हो ग्रामीण क्षेत्रों में नगरों की तुलना में विशेष प्रकार के अपराध दृष्टिगोचर होते हैं। इन अपराधों में नागरि-करण के तत्वों का प्रभाव व्याप्त है। इन अपराधों में भूमि सम्बन्धी एवं सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। सन् १९४५ ई० की सांख्यिकी विवेचना से पता लगा है कि ग्रामीण अपराधों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सन् १९५० ई० में सैंध लगाने के अपराधों में गाँव में ६.८ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसका कारण नागरीकरण, यातायात के साधन एवं संदेशवाहन के साधनों में वृद्धि आदि है। इस प्रकार ग्रामीण अपराधशास्त्रियों ने बतलाया है कि गाँवों में व्यक्तिगत अपराध विशेष रूप से पाये जाते हैं। मकान और खेतों में आग लगाना, पशुओं की चोरी करना, शिशु हत्या (Infanticide) और भूमि सम्बन्धी अनेक अपराध ग्रामीण क्षेत्रों में पाये जाते है।

ग्रामीण आर्थिक स्पर्धा और भौतिक अनुकरण एवं पारस्परिक द्वेश आदि बातें यद्यपि कम देखने को मिलती हैं, परन्तु इसके अलावा उनमें धर्म, जाति और परिवार आदि का भय भी पाया जाता है। ये लोग परम्परागत रूढ़िवादिता परिवारिक स्थि-रता, निराशावादी दृष्टिकोण आदि के माननेवाले होते हैं। इस दृष्टि में गाँवों में इस समस्या पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि गाँवों में अपराधों की संख्या कम है। हमें क्षेत्रीय अवलोकनों के आधार पर ग्रामीण अपराधों के निम्न रूप देखने को प्राप्त हुए हैं।

ग्रामीण अपराधों के प्रकार
(Types of Rural Crimes)

ग्रामीण अपराधों की क्षेत्रीय, प्रादेशिक एवं स्थानीय विशेषतायें होती हैं। इस आधार पर सामान्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न अपराध दिखाई देते हैं।

(१) फसल की चोरी व आग लगाना

गाँवों में कृषक अपनी पारस्परिक द्वेशता के कारण प्रतिद्वन्दी कृपक के खलियान और खेतों में पशुओं द्वारा एवं अन्य व्यक्तियों द्वारा नुकसान कराने का प्रयत्न करते हैं। कभी कभी खड़े खेतों में तथा खलियानों में आग लगाने के उदाहरण भी दृष्टिगोचर हुए हैं। इस द्वेश और अपराध का कारण खेत व खलियान सम्बन्धी विवाद एवं पशुओं आदि का वर्जित प्रवेश इत्यादि हैं।

(२) नाक कान काटना

ग्रामीण लोग अपने संवेगों पर नियन्त्रण नहीं कर सकते उनमें अपमान और वंशप्रतिष्ठा तथा पारिवारिकता के तत्व विशेष रूप से पाये जाते हैं। अपने परिवार की मर्यादा रखने के लिए वे परिवार के किसी सदस्य का अपमान नहीं सह सकते। इसलिये वे अपमान करने वाले व्यक्तियों एवं स्त्रियों के कान नाक काट लेते हैं। कृषि के यन्त्र जैसे दांतली, बसोला, खुरपा आदि सदा उनके हाथ में रहते हैं। कभी कभी पुरूष अपनी पत्नि की अनैतिकता एवं दुष्चरित्रता पर भी उसके नाक कान काटलेते हैं। इस अपराध की यह भी विशेषता है कि ग्रमीण लोग अपने दांतों से प्रतिद्वन्दी के नाक कान काट लेते हैं। आपने निश्चय ही समाचार पत्रों में ऐसे उदाहरण पढ़े होंगे।

(३) मारपीट सम्बन्धी अपराध

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायः मारपीट सम्बन्धी अपराधों की अधिकता उपलब्ध होती है, क्यों कि परम्परात्मक झगड़ों का निपटारा लाठी आदि के द्वारा ही होता है। खेतों के मेढ़ व सीमा सम्बन्धी झगड़े भी इसी भांति तय किये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में तनिक सी बात पर मारपीट हो जाना लाठी चल जाना, साधारण सी बात हैं।

(४) शिशु हत्या सम्बन्धी अपराध

ग्रामीण क्षेत्रों में अनैतिक यौन सम्बन्धों के परिणामस्वरूप जो बच्चे उत्पन्न होते हैं उन्हें सामाजिक अप्रतिष्ठा के भय से मार डाला जाता है। शिशु हत्या सम्बन्धी अपराध कभी कभी केवल लड़कियों की हत्या के रूप में भी पाया जाता है। इस अपराध का कारण अन्धविश्वास और दरिद्रता दोनों ही हैं। यह अनैतिक बच्चे विधवा स्त्रियों के अधिक होते हैं। नर बच्चों को प्राप्त करने की अभिलाषा से भी लड़कियों को बलि दे दिया जाता है। बांझ स्त्रियां बच्चे प्राप्त करने के लिए दूसरे के बच्चों की देवताओं को बलि देने के निमित हत्या कर देती हैं।

(५) हत्या सम्बन्धी अपराध

ग्रामीण क्षेत्रों में हत्या सम्बन्धी अपराध अत्यधिक होते हैं। यह हत्या सीमा सम्बन्धी झगड़ों, महाजनों के अत्याचारों, स्त्रियों के अनैतिक यौन सम्बन्धों के कारण अधिक होती हैं। महाजनों को अत्याचार के कारण हत्या कर दी जाती है। अनैतिक यौन सम्बन्धों के कारण स्त्री व उसके प्रेमी दोनों को ही समाप्त कर दिया जाता है।

(६) लुटेरापन

जमींदारी उन्मूलन के पश्चात जो छोटे मोटे जमींदार थे वे उचितरूप से व्यवसयों में न लग सके अतः ऐसे व्यक्तियों ने राजपूत होने के नाते वीरता का पेशा अपना कर लूटमार करना प्रारम्भ कर दिया। डाकुओं द्वारा सताये हुए व्यक्तियों ने भी बदला लेने के लिए डाकुओं का पेशा अपना कर लिया है।

(७) अवैध शराब बनाना

घरों में शराब निकालना सरकार की ओर से गैरकानूनी घोषित कर दिया गया है किन्तु देखा यह जाता है कि ग्रामीण व्यक्ति मद्यपान के अत्यधिक शौकिन होते हैं। इसलिए ये लोग अपने घरों में ही भट्टी रखते हैं। और उस पर शराब बनाते हैं। यह कार्य छुपे तौर पर गैर कानूनी ढंग से देशी शराब बनाने के लिए किया जाता है।

[८] पशुओं की चोरी

ग्रामीण चेत्र में पशुओं की चोरी भी एक प्रमुख अपराध है। पड़ौसी गाँवों के व्यक्तियों के, शहरों के या अपने ही ग्राम के व्यक्तियों के पशुओं की चोरी भी ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है। यह भी एक ऐसा अपराध है जो ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है।

ऊपर हमने ग्रामीण अपराध के विभिन्न रूप देखे। ये अपराध कानूनी दृष्टिकोण से हत्या आदि को छोड़ कर कोई विशेष महत्व नहीं रखते। सिद्धहस्त नागरिक अपराधी इन अपराधों को निम्नता के दृष्टि से तथा ग्रामीण अपराधियों को घृणा की दृष्टि से देखता है। इस सम्बन्ध में कैवन ने लिखा है "ग्रामीण अपराधी अपने को अपराधी नही समझते हैं बल्कि पुराने परम्परागत समुदायों के ऐसे सदस्य समझते हैं जिन्होंने निर्णय करने में हल्की गल्ती की है।[8]"

---

8. "The rural offendars do not, conceive of themselves as Criminal but rather as members of the conventional community who have Committed a slight error in judgement." Caven, Criminology.

आधुनिक युग में ग्रामीण क्षेत्रों में अपराध बढ़ जाने का एक कारण यातायात के साधनों का बढ़ जाना भी है। मोटर बसों से ग्रामीण युवकों को गति शीलता प्राप्त हुई है और परिणामतः वे परिवार एवम् समुदाय के नियन्त्रण से मुक्त हो गये हैं, जिससे वे अपराध की ओर प्रवृत होते हैं।

इस सम्बन्ध में ब्रूस स्मिथ का कथन है, "कि यातायात के नये साधनों ने नगर की सड़कों के व्यस्त जीवन को गाँवों तक पहुँचा दिया है। खेतों को, मकानों और खड़ी फसलों को आग लगाकर नष्ट कर देना अब बहुत सामान्य बात हो गई है। सड़क के किनारे बने हुए मकान पास से गुजरते हुऐ मोटर वालों को एक या दूसरे प्रकार का व्यापारिक दुराचार प्रदान करते हैं और शहर के डाकू गाँवों में शरण लेते हैं।[9]" वास्तव में यातायात के साधनों के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में अपराधों की संख्या बढ़ गई है।

वैसे ग्रामीण क्षेत्रों में नागरिक क्षेत्रों की अपेक्षा अपराध कम पाये जाते हैं। इसका प्रमुख कारण परम्परागत ग्रामीण संस्कृति का नियंत्रण हैं। प्रो. वोल्ड ने इस सम्बन्ध में लिखा है "गाँवों में काम करना पारिवारिक स्थिरता और भूमि का गरीब व्यक्ति के विरूद्ध एक बीमे के रूप में और पद के द्योतक के रूप में देखा जाना, और आदर पाना, सुख की खोज और श्रमहीन जीवन को घृणा की दृष्टि से देखना, यह सब परम्परागत ग्रामीण जीवन की विशेषता हैं। इनका व्यक्ति के ऊपर यह प्रभाव पड़ता है कि वह समुदाय के नियमों और ओर नियन्त्रणों के अनुरूप ही कार्य करने लगता है।"[10] गाँवों में अपराधों का एक विशिष्ट स्वरूप और पाया जाता है। भारतीय ग्रामों में कुछ ऐसे विशिष्ट सांस्कृतिक समूह पाये जाते हैं जिनका मुख्य व्यवसाय ही अपराध करना है। इन समुहों पर नियन्त्रण करनेके लिये सन् १८७१ ई० में अंग्रेजी सरकार ने इन्हें अपराधी जातियों का नाम दिया और अपराधी जाति अधिनियम

---

9. "The new means of transportation have often the teaming life of city streets to the open country side depreiations upon farm building and standing crops are now of frequent occurences. Roadhouses Cater to the passing motorist with one or more forms of commercialised vice, and the city gangster establishes his retreat for outside the regularly patrelled areas," Bruce Smith; 'Rural Crime Control' P. 4.

10, "The value and respectability of work of family stability and contniuity of Kind as insurance, against want and as an indicator of status and a general soorn for pleasure nocking and the 'soft life', are all post of the traditional rural pattern. Its effect on the individual B, among other things, to provide a pattern of conformity an acceptance of the ragulations and controls of the settled communit of the settled community" Professor; Vold.

(Criminal Tribes Act) पास किया। हम यहां पर संक्षेप में अपराधी जातियों पर विरचार करना आवश्यक समझते हैं।

अपराधी जातियां
(Criminal Tribes)

अपराधी जातियों से हमारा तात्पर्य उन जातिय समूहों से है जिनका व्यवसाय ही अपराव करना है। प्रसिद्ध अपराधी जातियों के नाम निम्नलिखित हैं: बावरिया, भांट्ट, हबूड़ा, भेदकूट, बिलोचा, डोम, हरमी, कंजड़, नट, करवाल, पाखिवारा, टागू, सन्सिया, बरवार, चौकीदार, मीना, खंगर, बदक, डूसड़ आदि हैं।

ये जातियां अपराध को अपना धार्मिक कार्य समझती हैं और लूट आदि माल में से देवताओं को भेंट भी चढ़ाई जाती है। ये अपराधी जातियां, रूप परिवर्तन में कुशल होती हैं। कभी कभी यह डोगी रोगी तो कभी बहुरूपियों आदि वेशों में दृष्टिगोचर होते हैं।

इन जातियों में अपराध का बीमा भी पाया जाता है। अर्थात् अपराध करते समय हाथ पैर टूटने, मरने पर उस व्यक्ति को पारिवारिक सहायता उस जाति के सभी सदस्यों द्वारा दी जाती है। इन जातियों का अपना एक संगठन होता है। इन समूहों की स्त्रियां भी वेश्यावृति करती हैं। ये जातियां अपने आपको प्राय: राजपूतों का वंशज बतलाती हैं। इन अपराधी जातियों में भी अपना एक संगठन होता है और उसमें कुछ ऐसे नैतिक नियम होते हैं जिनके अनुसार अपने समूह के किसी सदस्य को चोरी आदि के द्वारा नुकसान पहुंचाना अत्यन्त घृणित कार्य समझा जाता है। सन् १९५२ ई० में अपराधी जाति अधि-नियम समाप्त कर दिया गया। उस समय विभिन्न जातियों के अपराधियों की संख्या, २२, ६८, ३४८ थी जिनमें से ७७, १५९ व्यक्ति रजिस्टर्ड थे। वर्तमान समय में इनके पुनर्वास (Rehabilitation) सम्बन्धी प्रयत्न किये जा रहे हैं।

इस अध्याय में हमने ग्रामीण सामुदायिक विघठन एवम् ग्रामीण अपराधों पर विस्तार से विचार किया है। ग्रामीण सामुदायों की वर्तमान निम्न स्थिति का अनुभव राज्य द्वारा भी किया गया है और इस विघठन को समाप्त करने के लिये विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा सामुदायिक विकास योजनायें बनाई जा रही हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण सम्बन्धित अनेक कार्यक्रम क्रियान्वित किये जा रहे हैं जिन का वर्णन हम अगले खंडों में करेंगे। ग्रामीण सामुदायिक विघठन के परिणामस्वरूप ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याओं का प्रादुर्भाव हो गया है। अगले अध्याय में हम प्रमुख ग्रामीण समस्याओं की विवेचना करेंगे।

अध्याय २३

ग्रामीण एवं नागरिक जीवन

(Rural and Urban Life)

प्रत्येक देश में दो प्रकार के सामाजिक पर्यावरण उपलब्ध होते हैं। प्रथम ग्रामीण और द्वितीय नागरिक। हमने अपनी पुस्तक का शीर्षक ग्रामीण समाज-शास्त्र रखा है किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है हम अपना ध्यान नागरिक जीवन की ओर केन्द्रित हा नहीं कर सकते। ग्रामीण एवं नागरिक जीवन परस्पर सम्बन्धित है बिना एक के दूसरे का अध्ययन व्यर्थ होगा। वर्तमान समय में ग्रामीण जनसंख्या नगर की ओर उन्मुख है। परिणामतः अनेक नागरिक एवं ग्रामीण समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। ग्रामीण समस्याओं एवं सामाजिक विघठन का अध्ययन करने के लिए इन दोनों पर्यावरणों में उपलब्ध जीवन का तुलनात्मक अध्ययन हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है। अतः इस अध्याय में हम ग्रामीण एवं नागरिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

ग्रामीण जीवन के आधार व विशेषतायें

(Characteristics and Basis of Rural Life)

ग्राम व ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में हम प्रथम खन्ड में विस्तृत विवेचना कर चुके हैं। यहाँ संक्षेप में हम ग्रामीण जीवन के आधारों व इसकी विशेषताओं पर विचार करेंगे।

(१) कृषि ही मुख्य व्यवसाय है

(Agriculture is the Fundamental Occupation)

यदि हम ग्रामीण जीवन की परिभाषा की ओर ध्यान दें तो प्रतीत होगा कि ग्रामीण जीवन का मुख्य आधार कृषि ही है। प्राकृतिक रूप से ग्रामीण जीवन और कृषि बिना एक दूसरे के ठीक वैसे ही अधूरे हैं जैसे जीव बिना देह। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण जीवन का मुख्य आधार कृषि है। इस सम्बन्ध में स्मिथ ने अपने विचार प्रगट करते हुये लिखा है, "कृषि और वस्तुओं को एकत्रित करने वाले व्यवसाय ग्रामीण अर्थशास्त्र के मूल आधार हैं। कृषक और ग्रामीण एक दूसरे के अनुरूप शब्द हैं।"[1]

---

1 "Agriculture and the collecting enterprises are the basis of the rural economy, farmar and countryman are almost synonymous terms." "T. Tyrn Smith, 'The Sociology of Kural Life" p. 16.

(२) जनसंख्या की न्यूनता (Scarcity of Population)

ग्रामीण लोग अपने कृषि कार्य के स्थान अर्थात् खेतों से अपने निवास घर अधिक दूर बनाने में अड़चन और असुविधा अनुभव करते हैं। कारण कि खेतों की रक्षा, देखभाल आदि करने हेतु उन्हें वहां रहना पड़ता है। परिणामस्वरूप गाँव छोटे एवं बिखरे हुये होते हैं। जनसंख्या न्यून रहती है। साथ ही न्यून जनसंख्या इसलिये भी होती है कि मनुष्यों का व्यवसाय कृषि होने के नाते अधिकांश भूमि का भाग उपज के कार्य में आता है। एक भूमि का बड़ा हिस्सा ग्राम के एक मनुष्य के पास होता है। इसलिये अधिकाधिक भूमि कृषि कार्य में किसान की होती है तो जनसंख्या का न्यून होना अनिवार्य है। वे स्थान जो उपज के कार्य में आते हैं वहां यदि अन्य उद्योग चलाये जायें या कृषि के अतिरिक्त अन्य कामों में लाये जायें तो जनसंख्या अधिक और कृषि उत्पादन कम होगा, और इस भांति वह स्थान ग्राम शब्द से परे हट जायेगा। कृषि के साथ कृषक-जनसंख्या का कम होना स्वभाविक ही नहीं अपतु अनिवार्य भी है।

(३) जनसंख्या की समानता

(Homogeinity of Rural Population)

ग्रामों में जनसंख्या का अभाव तथा समान व्यवसाय होने के नाते ग्रामों में निवास करने वाले व्यक्तियों में समानता पाई जाती है अथवा व्यवसाय, स्वभाव, रहन-सहन, आपसी सम्बन्ध और दिनचर्या आदि प्रायः एकसी है।

(४) प्रकृति से सम्बन्धित (Related with Nature)

ग्रामीण जीवन कृषि पर निर्भर है और कृषि एक प्राकृतिक व्यवसाय है अर्थात उसे प्रकृति की गतिविधियों पर निर्भर रहना पड़ता है। धूप, वर्षा, भूमि, जलवायु, खाद्य आदि ही कृषि का जीवन है जो कि स्वयं प्रकृति ही हैं। इन सब कार्यों में ग्रामीण जीवन का प्रकृति से घनिष्ट सम्बन्ध हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप जीवन में तथा खानपान में सादगी आ जाती है। ग्रामीण व्यक्ति प्रकृति प्रिय बन जाता है। इसका प्रभाव उनके धर्म, विश्वास, परम्परा, इष्टदेवों आदि पर भी पड़ता है। वे धूप के लिये सूर्य देवता, जल के लिये वरुण या इन्द्र देवता, अग्नि-देवता, वनस्पति में बड़ वृक्षों की पूजा, कुओं की पूजा आदि करते हैं।

(५) परिवार एक आधारभूत व नियंत्रण इकाई के रूप में

(Family as Fundamental and Controlling Unit)

ग्रामों में परिवार ही सामाजिक जीवन की एक आधारभूत इकाई मानी जाती है, अर्थात् भारतीय ग्रामीण समुदाय में व्यक्ति को अधिक महत्व नहीं दिया जाता

है। व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा अधिकांश रूप में उसके परिवार पर ही निर्भर करती है। यही एक कारण है कि ग्रामों में परिवार को ही अत्यधिक महत्व दिया जाता है जिसके कारण परिवार का उत्तरदायित्व समुदाय व समाज दोनों के प्रति बढ़ जाता है। किसी भी व्यक्ति का परिचय उसके परिवार से दिया जाता है। जैसे, अमुक लड़का या लड़की, अमुक परिवार की है। उस व्यक्ति का नाम लेकर नहीं कहा जाता है। इसी कारण प्रायः राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यों में परिवार के सभी सदस्यों में समानता पाई जाती है। जैसे परिवार का एक व्यक्ति कृषि व्यवसाय करता हो, दूसरा नौकरी करता हो, तीसरा राजनीतिज्ञ हो, ऐसा नहीं होता। उनमें व्यवसायिक समानता पाई जाती है। इसी प्रकार विवाह आदि के अवसर पर लड़के या लड़की की ओर अधिक ध्यान न देकर उसके परिवार की ओर ध्यान देते हैं।

(६) संयुक्त परिवार प्रणाली (Joint Family System)

ग्रामों में प्रायः संयुक्त परिवार हैं। ऐसे परिवार हैं जिनमें संयुक्त संगठन के आधार पर अनेक सम्बन्धों की एक ही सम्मिलित व्यवस्था होती है। परिवार का समस्त आय-व्यय उसके सभी सदस्यों की आय पर निर्भर करता है। उनके सभी कार्य और कर्तव्य सम्मिलित रूप से चलते हैं। ग्राम परिवार में पिता-माता, पुत्र, पोते आदि तथा उनकी सम्बन्धित स्त्रियां और बच्चे सम्मिलित रूप से रहते हैं। परिवार का प्रत्येक कार्य खाना, पीना, रहना, खर्च आदि की भी सम्मिलित व्यवस्था होती है। संयुक्त परिवार 'सबके लिये एक और एक के लिये सब' के सिद्धान्त पर चलता है। परिवार में वृद्धों की प्रधानता होती है।

(७) जातिप्रथा के आधार पर सामाजिक व्यवस्था (Social System Based on Caste System)

ग्रामों में संयुक्त परिवार के समान ही जाति प्रथा के आधार पर सामाजिक व्यवस्था है। ग्रामीण समाज जाति प्रथा के आधार पर अलग अलग टुकड़ों में बँटा हुआ है। प्रत्येक जाति के सदस्यों के लिये उनके कार्य, पद, और स्थान निश्चित हैं। इस कारण प्रत्येक जाति और परिवार दोनों ही समाज और समुदाय के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझते हैं। अपनी जाति के प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करने के कारण वह अपना कार्य दृढ़ता और ईमानदारी से करते हैं। जाति प्रथा के आधार पर समाज की व्यवस्था की गई है। उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का स्थान क्रमशः रखा गया है।

(८) जजमानी प्रथा (Jajmani System)

ग्रामों में प्रत्येक जाति अपना परम्परागत पेशा करती आ रही है। इन पेशों के करने से इनकी सेवाओं द्वारा एक जाति का सम्पर्क दूसरी जाति से स्थापित हो

जाना है। इसी प्रकार सभी जातियों का सम्बन्ध किसी न किसी जाति से निर्धारित है। इस प्रकार विभिन्न जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध (Inter-Relation) की एक अभिव्यक्ति जजमानी प्रथा है। प्रत्येक जाति के सदस्य के कुछ अपने जजमान होते हैं। जिन्हें वह पुश्तों से अपनी सेवा प्रदान करता चला जाता है। जैसे धोबी-कपड़े धोने का, ब्राह्मण-पुरोहित का कार्य करता है। अतः सेवा ग्रहण करने वाले परिवार या उसका कर्ता सेवा करने वाले का जजमान कहलाता है। इस सेवा प्रदान करने और ग्रहण करने की प्रथा को जजमानी प्रथा कहते हैं। जजमान इस प्रकार की सेवाओं के लिये अनाज, कपड़ा और नकद धन भी सेवा करने वालों को देते हैं।

(९) ग्रामीण जीवन में अकेलापन (Isolation in Rural Life)

ग्रामीण जीवन अकेलेपन का जीवन है अर्थात् इसका सम्पर्क बाहरी दुनियां से कम है। ये लोग अपना सामाजिक, राजनैतिक सम्बन्ध आस पास के ग्रामों तक ही सीमित रखते हैं। यदि कोई आस पास शहर हो तो उससे भी अपना सम्पर्क साध लेते हैं। ये लोग अपने अपने क्षेत्र के लोगों को व्यक्तिगत रूप से जानते और पहचानते हैं। इन्हें अपने देश के बारे में विस्तृत ज्ञान नहीं होता।

(१०) परिवार उत्पादन की इकाई के रूप में
(Family as an Unit of Production)

ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है और ये लोग कुछ छोटे मोटे व्यवसाय-मछली पकड़ना, शिकार करना, लुहार, सुनार, मोची, कुम्हार आदि का कार्य घरेलू आधार पर करते हैं। इन सभी कार्यों में घर के सभी सदस्य स्त्री, पुरूष, बच्चे, बूढ़े सहयोग देते हैं।

(११) श्रम में निपुणता का अभाव
(Lack of Specialization in Labour)

ग्रामों में कृषकों को खेती सम्बन्धी सभी कार्य करने पड़ते हैं। हल की मरम्मत, रस्सी बनाना, कुआ खोदना, चुनाई करना, बीज बोना, फसल काटना, आदि। इस प्रकार चूंकि सभी कार्य करने पड़ते हैं, अतः किसी भी एक कार्य में विशिष्ठता नहीं आती अर्थात् वह सबका कुछ २ ज्ञान रखते हैं परन्तु पूर्ण ज्ञान कुछ का भी नहीं कर पाते। अर्थात् वे हरफन मौला (Jack of all Trades) कहलाते हैं।

(१२) सादा और शुद्ध जीवन (Simple and Genuine Living)

ग्राम का कृषक अपने श्रम द्वारा केवल इतना ही कमा पाता है कि वह उसकी मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति में खर्च हो जाता है। उसके लिये आराम की वस्तुओं

का उपयोग करना सपना बना रहता है। इसलिये उसका जीवन सरल, सादा होता है अर्थात् उसे मोटी रोटी खाने और मोटा कपड़ा पहनने को मिलता है। अशिक्षा के कारण उसका सम्पर्क बाहरी दुनियां के चातुर्य के आधार पर नहीं होता अतः उस में छल कपट की भावना नहीं होती और उसका जीवन शुद्ध होता है।

(१३) जनमत का अधिक महत्व

(Greater Importance of Public Opinion)

ग्राम में प्रायः सभी एक दूसरे को चाचा, भैया, दादा, काका आदि शब्दों से सम्बोधित करते हैं। इसलिये गाँव में इन बूढ़ों की प्रधानता होती है। ये ही पंच परमेश्वर होते हैं। इनके विचारों और न्याय की अवहेलना नहीं होती है। जनता का समस्त हित वृद्ध लोगों में निहित है। इनकी वाणी जन-वाणी है।

(१४) अशिक्षा, भाग्यवादिता और जीवन का निम्नस्तर

(Illiteracy, Fatalism and Lower Standard of Living)

गाँवों में शिक्षा प्रसार की सुविधाओं का नितान्त अभाव होने के कारण यहां की जनता अशिक्षित है। इस कारण ये लोग अन्धविश्वास और कुसंस्कारों में उलझे रहते हैं। वे भाग्य पर अधिक भरोसा करते हैं। साथ ही व्यवसाय से आय की कमी के कारण उनका जीवन स्तर नीचा होता है।

(१५) परम्परा और धर्म का महत्व

(Greater Importance of Tradition & Religion)

संसार में सबसे अधिक धर्म, प्रथाएं और परम्पराएं भारतीय ग्रामों में प्रचलित हैं। यहां लोग रूढ़िवादी होने के कारण अपनी अति प्राचीन प्रथाओं और परम्पराओं को महत्व देते हैं। सामाजिक रीतिरिवाजों का कठोरता से पालन होता है। नुकता, मोसर व सामाजिक भोज आदि देना प्रत्येक के लिये अनिवार्य है।

(१६) शान्तिपूर्ण पारिवारिक स्थाई जीवन

(Peacefull Stable Family Life)

ग्रामों में प्रायः परम्परा, धर्म और जनमत के साथ साथ नैतिक आदर्शों की कठोरता के कारण रोमांस का सर्वदा अभाव रहा है। वहां विवाह सामाजिक, पारिवारिक और धार्मिक संस्कार मानकर किया जाता है। पत्नि बाहर न जाकर अधिकतर घर पर ही कार्य करती है और पति की सेवा करती है। यह परिवार की देखरेख करती है। वैवाहिक सम्बन्ध स्थाई और शांतिपूर्ण होने से पारिवारिक जीवन स्थाई और शान्तिपूर्ण बन जाता है।

(१७) स्त्रियों की निम्न दशा (Lower Status of Women)

ग्रामीण स्त्रियों में पर्दा प्रथा, अशिक्षा, बालविवाह, पुरूषों द्वारा स्त्री को हेय समझना, परिवार का बोझ होना, रूढ़िवादिता का होना, आदि परिस्थितियों के कारण स्त्रियों का स्तर निम्न होता है। स्त्रियां न केवल परिवार के समस्त निर्धारित कार्य ही करती हैं बल्कि पुरुषों के साथ खेतों में भी कार्य करने जाती हैं। उन्हें पुरुषों से अधिक कार्य करना पड़ता है। अतः ग्रामीण जीवन में स्त्रियों की दशा अत्यन्त ही शोचनीय है।

ग्रामीण जीवन की विस्तृत विवेचना के पश्चात् हमें नागिरक जीवन की भी विशिष्टताओं का अध्ययन करना चाहिए। यहां हम नागरिक जीवन की विशेषताओं की विवेचना करेंगे।

नागरिक जीवन के आधार एवं विशेषतायें
(Characteristics and Basis of Urban Life)

ग्रामीण जीवन की विशेषताओं को जान लेने के पश्चात् नागरिक जीवन की विशेषताओं को जान लेना भी हमारे लिये अनिवार्य हो जाता है। नागरिक जीवन की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं:—

(१) व्यवसायों की अधिकता (Multiplicity of Occupations)

नगरों में एक नहीं अनेकानेक व्यवसाय करने को हैं। यह केवल ग्रामों की तरह कृषि मात्र पर ही निर्भर नहीं है। विभिन्न व्यवसाय करने के नाते मनुष्य को अनेक प्रकार के विभिन्न व्यवसायिक मनुष्यों से सम्पर्क स्थापित करने का और व्यवसायिक अनुभव का अवसर प्राप्त होता है।

(२) जनसंख्या की सामाजिक विभिन्नता
(Social Heterogenity of Population)

चूंकि नगरों में अगणित व्यवसाय किये जाते हैं। अतः वहां पर जनसंख्या में विभिन्नता व्यवसायिक, धार्मिक, जातीय दृष्टि से, प्रजातिय, साम्प्रदायिक व वर्ग आदि की दृष्टि से आ जाती है। आर्थिक कठिनाई भी पैदा हो जाती है। साथ ही साथ चारों ओर घरेलू, सामाजिक तथा राजनैतिक खिचाव भी बढ़ जाता है। सामाजिक जीवन संघर्षात्मक बन जाता है।

(३) जनसंख्या की अधिकता (Surplus Population)

नगरों के विकास के साथ साथ जनसंख्या भी बढ़ती जाती है। नगरों में जनसंख्या का आधिक्य हो जाता है। नगर घने बस जाते हैं। फलस्वरूप अनेकानेक प्रक्रियायें शुरू हो जाती हैं। ये प्रक्रियाएँ धीरे धीरे विकसित रूप ले लेती हैं।

(४) श्रम विभाजन और विशेषीकरण
(Division of Labour and Specialization).

नगरों में अगणित व्यवसाय पाये जाने के कारण कोई भी मनुष्य सभी कोई व्यवसाय नहीं कर सकता। वह कुछ अन्य कार्यों की ओर तो देखता तक भी नहीं। इसलिये औद्योगिक नगरों में श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण पाये जाते हैं। एक कार्य को अलग अलग कई व्यक्ति श्रम का विभाजन कर पूर्ण कर लेते हैं और उस में विशेष योग्यता प्राप्त करते हैं। जैसे दियासलाई के कारखाने में एक व्यक्ति स्वयं पूरी दियासलाई बनाने तक का सारा कार्य न करके केवल उसके खोखे बनाता है। दूसरा सलाईयां बनाता है। तीसरा केवल सामग्री जुटाता है। चौथा मसाला बनाता है इस प्रकार दियासलाई बनाने के श्रम को विभाजित कर कार्य में विशेषता लाई जाती है।

(५) पारस्परिक निर्भरता (Inter-Dependance)

व्यवसायों की अधिकता होने से विभाजन और विशेषीकरण किया जाता है। इससे एक का काम दूसरे के बिना नहीं चल सकता है अतः सब एक दूसरे के कार्यों हेतु पारस्परिक निर्भरता का अनुभव करते हैं।

(६) वैयक्तिक सामाजिक सम्बन्ध का अभाव
(Lack of Personal Social Relations)

नगरों में आबादी घनी होती है और व्यक्तियों का जीवन अधिकतर जीविकोपार्जन में ही व्यस्त रहता है। जिससे व्यक्तिगत सम्बन्धों का नितान्त अभाव प्रतीत होता है। यहाँ तक कि बड़े नगरों में तो एक भव्य अट्टालिका में अनेक मनुष्य रहते हैं। व्यक्तिगत सम्बन्ध तो दूर रहा उन्हें यहाँ तक मालूम नहीं कि उनके भवन में कौन कौन व्यक्ति और भी रहते हैं। उनके क्या नाम हें ? भारत में ये नगर बम्बई, कलकत्ता आदि हैं। नगर में यह सम्बन्ध डाक, तार, टेलीफोन के माध्यम से स्थापित किया जाता है।

(७) फिजूल खर्च और दिखावा (Luxury and Fashion)

नगरों का मुख्य आकर्षण, तड़क भड़क और दिखावा है। दुकानों, मकानों आदि को सजाने तथा उन्हें आकर्षक बनाने के लिये कुछ उठा नहीं रखते। यहाँ तक कि दुकानदार तो स्त्रियों के अर्धनग्न पोस्टर्स तथा बोर्ड लगाते हैं जिससे जनता का खिचाव दुकान और अमुक वस्तु के खरीद की तरफ खिचता है। जिसके लिए कि वह चित्र दिया जाता है। यहाँ के नागरिक स्त्री व पुरुष बाजारों में निकलने के पूर्व भड़कीले, पोशाक, क्रीम पाउडर, इत्र आदि से सुसज्जित होते हैं। इन सब

कार्यों के लिये यहाँ पैसों का दुरुपयोग किया जाता है जब कि इनके बिना भी कार्य चल सकता है ।

(८) नैतिक और सामाजिक नियमों की अधिकता

(Multiplicity of Social & Moral Codes)

प्रत्येक जाति के लोगों के अलग अलग धर्म, नैतिक व्यवहार और सामाजिकता होती है । फिर जब ऐसी विभिन्नता वाले व्यक्ति नगरों में आकर बसते हैं तो नगरों में आचार-विचार, सामाजिक नियम, धर्म, व्यवहार, नैतिकता में भिन्नता आये बिना नहीं रहती है । एक ही नगर में हिन्दू,मुसलमान, ईसाई, मद्रासी, बंगाली, पंजाबी, सिंधी और अन्य विदेशी जो स्थाई रूप से आकर बस जाते हैं और वहाँ की नागरिकता को स्वीकार कर लेते हैं, एक साथ रहते हैं और व्यवहार करते हैं तो भी आचार-विचार, नियमों, सभ्यता आदि में तुरन्त विभिन्नता आ जाती है । उदाहरणार्थ इसाईयों में स्त्री का बाजार में किसी पुरुष से बातचीत करना न तो अनैतिकता है और न अधर्म ही है; वह खुल कर बातचीत करती है जबकि एक हिन्दू समाज की स्त्री नहीं। इस प्रकार धर्म और सामाजिक नियमों में भी विभिन्नता पाई जाती है ।

(९) हम की भावना का अभाव (Lack of We-Feeling)

यहाँ के नागरिकों में हम की भावना का उदय नहीं होता है । कारण स्पष्ट है कि यहाँ प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने ही विचारों का होता है । नगरों में व्यापार की अधिकता, विभिन्न सामाजिक नियम, असहयोग, विभिन्न प्रकार की जनसंख्या, आचार-विचार, व्यवहार, धर्म की विभिन्नता, व्यवसाय की विभिन्नता आदि के कारण एक व्यक्ति का जीवनक्रम दूसरे से मेल नहीं खाता तथा सदा विषमता की खाई व्यक्तियों के बीच में रहती हैं ।

(१०) द्वैतियक समिति और नियन्त्रण

(Secondry Association and Control)

नगरों में प्राथमिक समूहों, व संयुक्त परिवारों का अभाव पाया जाता है । एक परिवार के समस्त सदस्य एक साथ न रहकर अलग अलग रहते हैं । उसे अपने स्वार्थ या उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न दैवतियक समितियों से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है । एक परिवार के तीन सदस्य तीन प्रकार के भिन्न व्यवसाय करते हैं, तो प्रत्येक को अपने अपने उद्देश्यों और स्वार्थ की पूर्ति के लिये भिन्न भिन्न समितियों और समूहों से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है । उन तीनों का आपस में कोई सम्बन्ध यहाँ स्थापित नहीं हो पाता। जिससे प्राथमिक समूहों व संयुक्त परिवारों का अभाव होता है । नगरों में वे अलग अलग दैवतियक समितियाँ नागरिक जीवन

को विभिन्न प्रकार से अपनी ओर आकर्षित करती हैं। नगरों में विभिन्न स्वार्थ-समूह (Interest Groups) होते हैं जो कि अपना कार्य बड़ी कुशलता और शक्ति द्वारा करते हैं। इनका नियन्त्रण प्रथा, परम्परा, पंचायत जैसी आपसी संस्था के द्वारा असम्भव है। इस कारण इनका नियन्त्रण करने हेतु नगरों में पुलिस, सेना, न्यायालय आदि दैवतियक नियन्त्रण की आवश्यकता होती है।

(११) प्रतिस्पर्द्धा की भावना (Competitive Emotions)

नगरों में व्यक्ति का जीवन एक दूसरे के प्रति प्रतिस्पर्द्धा को लिये होता है। यहाँ के नागरिकों का प्रतिस्पर्द्धात्मक जीवन (Competitive) होता है। एक दूसरे को हराकर जीतना, उसे नीचा दिखाना, तथा अपनी सफलता के लिये सब कुछ करने के उपरान्त अपने जीवन की सफलता का मूल्यांकन दूसरे के जीवन से करते हैं। यह तुलनात्मक दृष्टि से कर्म और सफलता निर्धारित करते हैं। उदाहरणार्थ एक ही व्यवसाय के दो तीन व्यक्तियों में तुलना करने पर एक ने अधिक धन उपार्जन किया और दूसरे ने कम तो पहला व्यक्ति तुलनात्मक दृष्टि से अपने को सफल समझता है। इसी प्रकार एक राजनैतिज्ञ अपने कार्य को सफल तभी समझता है जब कि एक अन्य राजनैतिज्ञ अपने कार्य से विफल हो जाता है अर्थात् प्रतिस्पर्द्धा में सफलता प्राप्त करना ही सफल जीवन और योग्यता की पहचान होती है। यह प्रतिस्पर्द्धा राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में अधिक पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त नगरों में प्रायः ऐसे अवसर आते हैं जब कि संयोगवश कुछ का कुछ हो जाता है। एक अमीर व्यक्ति सट्टे में हार कर तुरन्त गरीब बन जाता है और एक गरीब व्यक्ति तुरन्त अमीर बन जाता है।

(१२) सामाजिक गतिशीलता और सहनशीलता
(Social Mobility and Tolerance)

नगरों में सामाजिक गतिशीलता, श्रम विभाजन, प्रतिस्पर्द्धा, विभिन्नता, व्यवसायों की व्यापकता आदि नागरिक जीवन में गतिशीलता के विशेष गुण बन गए हैं। नागरिक अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपने चातुर्य, योग्यता और शिक्षा के आधार पर एक से दूसरे स्थान को आता जाता है। एक से दूसरे और अनेक व्यवसाय करता है। एक दूसरे क्षेत्र में आता जाता है। इन सब कार्यों के लिये उसे नगर में रहने वाले विभिन्न धर्म, जाति, सम्प्रदाय, वर्ग, प्रान्त समूहों और समाजों में सम्मिलित होना पड़ता है। इन सब सम्पर्कों में आने के कारण स्वाभाविक रूप से उसमें एक दूसरे के प्रति सहनशीलता का गुण घर करता है और वह व्यवहार कुशल हो जाता है।

(१३) व्यक्तिवादी आदर्श (Individualistic Ideals)

नगरों में प्रायः धन और वैयक्तिक विशेष गुणों (Individual characteristics) का महत्व होता है। व्यक्ति इन गुणो के कारण अधिक से अधिक उच्च व्यक्तियों को प्रभावित करना चाहता है। साथ ही अपने गुणों का विकास तथा धन एकत्रित करने में व्यस्त रहता है। नगरों में प्रायः इसीलिये सामुदायिक स्वार्थ (Community Interest) को व्यक्तिगत स्वार्थ (Individual Interest) से कम प्रधानता दी जाती है।

(१४) मानसिक संघर्ष (Mental Conflicts)

नगरों में यदि एक ओर अनेक सुविधाएं जैसे धन कमाने की, खाने पीने की मनोरंजन की, व्यवसाय की, जीवन उपयोग आदि की हैं तो दूसरी ओर अनिश्चितता का अन्धकार भी है। जीवन में नित्य प्रति मोटर, रेल, ताँगे, साईकल आदि की दुर्घटनाएं, बेकारी, नफा-नुकसान, बीमारी आदि होती रहती है। जिनसे मानसिक शक्ति प्राप्त करना आसान नहीं है। नगर में उत्तेजनात्मक चित्र, गन्दी फिल्में, शोरगुल, लड़ाई, झगड़े आदि होने के कारण मानसिक संघर्षो से मनुष्य घिरा रहता है।

(१५) धर्म और परिवार का कम महत्व होना
(Less Importance of Religion and Family)

नगरों में विज्ञान और आधुनिकता का प्रभाव होता है। जो धर्म के प्रति लोगों में विश्वास कम करने में योग देता है। विज्ञान और वैज्ञानिक शिक्षा का प्रभाव होने के कारण धर्म का महत्व व विचारों के प्रति कट्टरता स्वतः ही कम हो जाती है। क्योंकि विज्ञान और धर्म एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। धर्म में विश्वास का पुट है तो विज्ञान में कारण और सिद्धान्त का पुट होता है। उदाहरणार्थ हिन्दुओं के बच्चों को चेचक का निकलना 'माता' (एक ईष्ट देवी) का प्रकोप समझा जाता है। उसके निवारणार्थ माता की वन्दना की जाती है। जो कि धर्म में विश्वास के कारण की जाती है जबकि विज्ञान इसे जीवाणुओं के द्वारा होना बताता है और सिद्धान्तानुसार उनका औषधि द्वारा नष्ट कर निवारण बताता है।

ऐसे कार्य जो परिवार के सदस्यों द्वारा घर में ही किये जाते थे आज कुछ विशेष स्थान पर अन्य माध्यम द्वारा किये जाते हैं। जैसे भोजन घर पर स्त्रियाँ बनाकर खाती हैं और खिलातीं हैं। परन्तु उसका स्थान भोजनालयों ने ले लिया। इसी प्रकार कपड़ों का कार्य दर्जी और धोबी ने तथा रोगीं की सेवा व देखभाल का इन्डोर अस्पताल (Indoor Hospital) ने तथा इसी प्रकार बच्चों के जन्म

तथा देखरेख का स्थान प्रसुतिगृह तथा शिशुशालाओं (Child Welfare Centres) ने ले लिया। इन सब कारणों ने परिवार की महत्ता को गहरा आघात पहुँचाया है।

(१६) पारिवारिक जीवन के स्थायित्व का अभाव
(Lesser Stability of Family Life)

नगरों के पारिवारिक जीवन में स्थायित्वता का अभाव प्रायः पाया जाता है। इसका कारण नगरों में सह शिक्षा, स्त्री-पुरुष का साथ साथ कार्य करना, साथ साथ घूमना फिरना, सिनेमा का प्रभाव, धर्म, व जाति-पाती के भेदभाव से रहित विचार-धारा का होना आदि हैं। इन सब कारणों से अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन मिला। इससे एक दूसरे पर की निर्भरता नष्ट हो गई। पारिवारिक जीवन में व्यक्तिवादिता, स्त्रियों का घर से बाहर जाकर स्वतन्त्र रहना, काम करना, धन पैदा करना, आदि अनेक ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो गई हैं जिनसे पारिवारिक जीवन में तनाव आ गया है और इस जीवन के स्थायित्व में कमी आ गई है।

(१७) विशेष मोहल्ले तथा बाजार
(Special Localities and Markets)

नगरों में विशेष नाम के मोहल्ले तथा बाज़ार पाये जाते हैं। जैसे कपड़ा बाजार, धानमण्डी, सब्जी मण्डी आदि प्रायः ऐसे बाजार हैं जहाँ एक ही प्रकार की वस्तुएं बेची जाती हैं, बहुत मिलते हैं। इसी प्रकार हरिजनों का मोहल्ला, जैन जाति, मजदूर बस्ती, भाटियों का बाड़ा आदि ऐसे मोहल्ले होते हैं जहाँ प्रायः एक ही प्रकार की जाति व वर्ग के लोग रहते हैं।

ग्रामीण एवं नागरिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन
(Comparative Study of Rural & Urban Life)

ग्रामीण और नागरिक जीवन का विस्तृत अध्ययन करने पर हमें यह मालूम हो गया है कि इनकी अपनी २ विशेषताएं हैं और इन्हीं विशेषताओं के कारणवश हमें इन दोनों प्रकार के जीवन को पृथक कर इनका तुलनात्मक अध्ययन करना अनिवार्य प्रतीत होता है परन्तु इन दोनों प्रकार के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करना इतना सुगम नहीं जितना कि हमें अनुभव होता है। कारण स्पष्ट है कि ग्राम और नगर की एक सामान्य परिभाषा न होकर अनेक हैं। अतः दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने में जो कठिनाइयां आती हैं उन पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

ग्रामीण और नागरिक जीवन के तुलनात्मक अध्ययन में कठिनाइयां

Difficulties in Comparative Study of Rural and Urban Life

(१) एकमत परिभाषा का अभाव
(Lack of Universal Definition)

ग्राम और नगर की परिभाषाएं जितनी भी की गई हैं वे सब विभिन्न हैं। कहीं पर एक कारक पर बल दिया गया है तो कहीं अन्य कारकों पर। जैसे फ्रांस में दो हजार, बेल्जियम में पांच हजार, मिश्र में ग्यारह हजार, संयुक्त राज्य अमेरिका में ढ़ाई हजार और जापान में तीस हजार से अधिक जनसंख्या वाली बस्तियों को नगर और कम संख्या वाले स्थानों को ग्राम कहा है। कहीं पर सामाजिक सम्बन्ध यदि द्वैतियक सम्बन्ध हो तो नगर और प्राथमिक सम्बन्ध हो तो ग्राम, के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। कहीं कहीं पर व्यवसाय की बहुलता के आधार पर नगर और केवल कृषि व्यवसाय के स्थानों को ग्राम कहा है। इससे स्पष्ट है कि कोई भी परिभाषा सन्तोषजनक नहीं है। अतः जब तक कोई निश्चित और सन्तोष-जनक परिभाषा नहीं हो तब तक दोनों के जीवन में अन्तर मालूम करना कठिन है। ग्राम और नगर की परिभाषाओं के सम्बन्ध में बर्गल ने सही कहा है, "ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि नगर क्या है परन्तु किसी ने भी संतोषजनक परिभाषा नही दी।"[4]

(२) नागरिक और ग्रामीण जीवन में अंशों का अन्तर
(Urban and Rural Difference a Matter of Degree)

नागरिक और ग्रामीण जीवन में एक दम विभिन्नता नहीं पाई जाती बल्कि दोनों में कुछ अंशों का ही अन्तर है। आजकल प्रत्येक ग्राम में कुछ न कुछ नगर के तत्व पाये जाते हैं और प्रत्येक नगर में ग्राम के। इसलिये दोनों में अस्पष्ट अन्तर होने के कारण तुलना में कठिनाई आये बिना नहीं रहती है। मैंकाईवर और पेज ने लिखा है, "परन्तु दोनों के बीच इतना स्पष्ट अन्तर नहीं है कि यह बतलाया जा सके कि कहाँ पर नगर समाप्त होता है और ग्राम प्रारम्भ होता है।"[5]

---

4 "Every body seems to know what is, city is but no one has given asatisfactory definition." E. B. Bergel, 'Urban Sociology': McGraw Hill Book Co., INCN.Y. (1955),p.3.

5 "But between the two there is no sharp demarcation to tell where city ends and country begins," MacIver and Page; 'Society;' p. 311.

(३) नगर में विभिन्न पर्यावरण
(Heterogenous Environments in Cities)

नागरिक और ग्रामीण जीवन में अन्तर स्पष्ट करने में एक कठिनाई यह आती है कि नगर में विभिन्न पर्यावरण पाये जाते हैं। विभिन्न जातियाँ, प्रजातियाँ, वर्ग व व्यवसाय हैं जिनके कारण विभिन्न प्रकार के पर्यावरण उत्पन्न हो जाते हैं। अतः किस विशिष्ट पर्यावरण से तुलना की जाय यह भी एक समस्या है।

(४) नगर और ग्राम की परिवर्तनशील प्रकृति
(The Changing Character of City and Village)

ग्राम और नगर एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। इनकी गतिविधियों में परिवर्तन होता रहता है। नगरों की संस्कृति, आचार विचार, व्यवहार व व्यवसायों का प्रभाव ग्रामों पर पड़ता है और ग्रामों के इसी प्रकार के अन्य तत्वों का प्रभाव नगरों पर पड़ता है। इस कारण उनके स्वरूप स्थाई नहीं रह पाते।

अतः नागरिक जीवन और ग्रामीण जीवन के मध्य अंतर रेखा खींचना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। फिर भी दोनों के सामाजिक जीवन में स्पष्ट अंतर पाया जाता है। परन्तु हाँ, ये अन्तर केवल शुद्ध ग्रामीण और शुद्ध नागरिक जीवन में पाये जाते हैं। फिर गिस्ट और हेलवर्ट ने भी कहा है, "अतः ग्रामीण और नागरिक जीवन का सुपरिचित विभाजन सामुदायिक जीवन के तथ्यों पर आधारित होने की अपेक्षा अधिकांश रूप से एक सैद्धान्तिक धारणा है।"[6]

ग्रामीण एवं नागरिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन
(Comparative Study of Rural and Urban Life)

ग्रामीण और नागरिक जीवन की अपनी अपनी विशेषतायें हैं और इन्हीं विशेषताओं के आधार पर हम इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे। प्रायः जनता के मन में यह भ्रांत धारणा पाई जाती है कि इन दोनों पर्यावरणों के जीवन में पूर्ण भिन्नता अवश्य पाई जाती है किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इन दोनों में भिन्नता अवश्य पाई जाती है किन्तु यह भिन्नता सामान्य अंशों की ही है। क्योंकि नागरीकरण और औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं के पारिणामस्वरूप दोनों पर्यावरणों में विपरीत गुण पाये जाते हैं। फिर भी प्रत्येक व्यक्ति इन भिन्नताओं का अनुभव

---

6 "Thus the familiar dichoteny between & Rural and 'Urban' is more of a theoritical cocept than a division based upon the facts of community life. Gist & Halberts; 'Urban Society'; (1954); p. 3.

करता है। ग्रामीण और नागरिक जीवन के तुलनात्मक अध्ययन से पूर्व हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि निम्नांकित कारक केवल अध्ययन की सुविधा के लिये हैं, जो हमें शुद्ध ग्रामीण एवं शुद्ध नागरिक जीवन में उपलब्ध होते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि इस प्रकार का शुद्ध नागरिक एवं शुद्ध ग्रामीण जीवन का उपलब्ध होना लगभग कठिन सा ही है। तो भी हम विभिन्न शीर्षकों के आधार पर शुद्ध ग्रामीण एवं नागरिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन निम्न तालिका में वर्णन करने का प्रयास करते हैं।

जनसंख्या
(Population)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
१. आकारः- ग्राम में जनसंख्या का आकार कम होता है। क्योंकि यहाँ कृषि ही एक मात्र मुख्य व्यवसाय है।	नगरों में आबादी घनी होती है क्योंकि व्यवसायों की बहुलता, शिक्षा, मनोरंजन आदि अनेक सुविधायें उपलब्ध होती हैं।
२. प्रकृतिः- ग्रामों की जनसंख्या में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में एकरूपता पाई जाती है। सामाजिक-आर्थिक जीवन एक सह-संबधित इकाई के रूप में संगठित है।	नगरों की जनसंख्या में भिन्नता होती है क्योंकि वहाँ विभन्न देश, प्रान्त, धर्म, जाति और प्रजाति के लोग बस जाते हैं। यहां सामाजिक व आर्थिक इकाईयाँ अलग २ संगठित है।

सामाजिक संगठन
(Social Organisation)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
३. परिवारः- ग्रामों में परिवार बड़े शक्तिशाली होते हैं।	नगरों में परिवार अधिक शक्तिशाली नहीं होते।
४. ग्रामीण समुदाय परिवार पर आधारित होता है।	नागरिक समुदाय व्यक्ति पर आधारित होता है।

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
५. परिवार पितृसत्तात्मक एवं संयुक्त प्रणाली पर आधारित होते हैं।	परिवार में माता-पिता की समान सत्ता होती है और प्रायः व्यक्तिगत परिवार अधिक पाये जाते है।
६. परिवार के सदस्यों के संबन्ध घनिष्ट होते हैं।	परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध अधिक घनिष्ट नहीं होते।
७. विवाह :- ग्रामों में विवाह पारिवारिक महत्व का विषय है।	विवाह वैयक्तिक आधारों पर होता है और व्यक्ति अपने सम्बन्धों के आधार पर विवाह करता है।
८. विवाह प्रेम और रोमांस पर आधारित नहीं होते हैं।	विवाह यहाँ प्रेम और रोमांस पर आधारित होते हैं और इसे सभ्यता का उच्च स्वरूप मानते हैं।
९. विवाह परिवार की आवश्यकता और स्थिति के अनुसार निश्चित होते हैं।	विवाह व्यक्ति की आवश्यकता, पद तथा स्थिति पर निश्चित होते हैं।
१०. बालविवाहों, जातीय अन्त-विवाहों की आधुनिकता पाई जाती है।	विलम्ब तरूण विवाहों, अर्न्तजाति-विवाहों की अधिकता पाई जाती है
११. पुरुषों की प्रधानता के कारण स्त्रियों की स्थिति उच्च नहीं होती।	गृहिणी परिवार की स्वामिनी होती है और उसकी स्थिति अच्छी होती है।
१२. स्त्रियों को स्वतन्त्रता नहीं होती।	स्त्रियों को स्वतन्त्रता एवं समानता के अधिकार प्राप्त हैं।
१३. स्त्रियाँ सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में अत्यधिक पिछड़ी हुई हैं। भारत में तो ये दासियों के समान हैं।	स्त्रियां सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में स्वतन्त्र हैं और जीविकोपार्जन करके स्वावलम्बी बन सकती हैं।
१४. पर्दा-प्रथा का अत्यधिक सीमा तक पालन किया जाता है।	पर्दा प्रथा नगरों से लगभग समाप्त सी हो चुकी है।
१५. सामुदायिक जीवन:- ग्रामों में सामुदायिक भावना, हम की भावना में घनिष्टता होती है।	नगरों में सामुदायिक संबंध अस्थायी होते हैं। अतः सामुदायिक भावना में घनिष्टता का अभाव रहता है।

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
१६. समुदाय में अनुशासन कठोरता से होता है ग्राम पंचायत एक महत्वपूर्ण संगठन है।	अपरिचितता के कारण समुदाय में अनुशासन शून्य के लगभग होता है।
१७. ग्रामों में सामुदायिक जीवन में विषमता नहीं पाई जाती है।	अत्यधिक विषमता उपलब्ध होती है। राजा, रंक, अशिक्षित, दार्शनिक, त्यागी, संचयी सभी प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं।
१८. पड़ौस एक महत्वपूर्ण वस्तु है।	पड़ौस इतना महत्वपूर्ण नहीं होता।
१९. पड़ौस में परिवार सरीखे सम्बन्ध बन जाते हैं और घनिष्ट होते हैं।	पड़ौस के सम्बन्ध में साधारण ज्ञान भी नहीं होता। पड़ौसी के प्रति उदासीनता रहती है।
२०. सामाजिक स्तरण: ग्रामों में वंश परम्परागत सामाजिक स्तरण पाया जाता है।	योग्यतानुसार सामाजिक स्तरण पाया जाता है।
२१. आर्थिक वर्गों में यहाँ कृषक व जमींदार ही हैं।	वर्गों की बहुलता होती है और पारस्परिक दूरी भी अत्यधिक है। "अत्यधिक वर्ग विषमतायें नगर का लक्षण है।"[7]
२२. जाति संगठन अत्यधिक दृढ़ होता है और सामाजिक प्रतिष्ठा इसी पर आधारित है।	जाति संगठन अत्यधिक शिथिल होता है और सामाजिक प्रतिष्ठा पद एवं वैयक्तिक योग्यता पर आधारित होती हैं।

सामाजिक नियन्त्रण
(Social Control)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
२३. परिवार एवं समुदाय अत्यधिक शक्तिशाली होते हैं। अतः प्राथमिक सम्बन्धों से नियन्त्रण होता है।	परिवार एवं समुदाय की शक्ति न्यून होती है अतः प्राथमिक सम्बन्ध नियन्त्रण नहीं कर पाते हैं।

7. Class extreme characterize the city." Bogardus : Sociology; p. 144.

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
२४. अपराध परिवार की एकता के विरुद्ध समझे जाते हैं।	अपराध के लिये व्यक्ति उत्तरदायी होता है।
२५. प्रथायें, रीतियां, रूढ़ियां आदि अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण के साधन होते हैं।	पुलिस न्याय, कानून, विधि आदि औपचारिक साधन होते हैं।
२६. जातीय संगठन भी सामाजिक नियन्त्रण करते हैं।	जातीय संगठनों का नियन्त्रण शून्य होता है।
२७. "ग्रामीण समुदाय में प्रथा शासक होती है और जनरीतियां एवं रूढ़ियां अधिकांश व्यवहार को नियन्त्रित करती हैं।"[8]	"वह जब भी चाहे अपरिचितों के सागर में विलीन होकर किसी भी प्राथमिक समूह के कठोर नियन्त्रण से बच सकता है।"[9]

सामाजिक सम्बन्ध
(Social Relationships)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
२८. वैयक्तिक सम्बन्ध--ग्रामों में प्राथमिक सम्बन्ध पाये जाते हैं।	द्वैतियक सम्बन्ध होते हैं और यन्त्रीकृत व्यवहार पाया जाता है।
२९. सम्बन्ध वैयक्तिक होते हैं।	सम्बन्ध अवैयक्तिक एवं स्वार्थों पर आधारित होते हैं।
३०. सम्बन्धों में व्यक्ति का महत्व होता है न कि पद का।	सम्बन्धों में व्यक्ति के पद का महत्व होता है।
३१. सम्बन्ध अनौपचारिक, सरल एवं प्राकृतिक होते हैं।	सम्बन्धों में जटिलता एवं कृत्रिमता होती है। औपचारिक मित्रता (Hallo Friendship) अधिक पाई जाती है।

8. In the rural community, custom is king, the folkways and mores control most of behaviour." Biesanz and Biesanz : Modern Society; p. 114.
9. "He can escape the appression control of any primary group when he wishes simply by disappearing in to the sea of strangers." K. Davis : 'Human Society'; p. 331.

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
३२. सामाजिक समूह—प्राथमिक समूह अधिक पाये जाते हैं।	द्वैतियक समूह अधिक पाये जाते हैं।
३३. सम्पूर्ण आवश्यकतायें प्राथमिक समूहों में ही पूरी हो जाती हैं।	आवश्यकताएं द्वैतियक समूहों से ही पूर्ण होती हैं। व्यक्ति अनेक समितियों से बंधा होता है।

सामाजिक परस्पर–सम्बन्धो क्रियायें
(Social Interactions)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
३४. सामाजिक सम्बन्ध—सम्बन्धों की न्यूनता होती है क्योंकि क्षेत्र सीमित है।	सम्बन्धों की भरमार होती है क्योंकि क्षेत्र विस्तृत होता है।
३५. कूपमन्डूकता की भावना विकसित होती है और दृष्टिकोण सीमित होता है।	सम्बन्ध अवैयक्तिक व यन्त्रीकृत हो जाते हैं। रेडियो, टेलीफोन, तार इत्यादि से सम्बन्ध स्थापित होते हैं। दृष्टिकोण विस्तृत रहता है और प्रगति की ओर उन्मुख होता है।
३६. सामाजिक सम्बन्ध अधिक स्थायी होते हैं।	सामाजिक सम्बन्ध अस्थायी होते हैं।
३७. सहयोग—प्रत्येक कार्य में सहयोग पाया जाता है और यह पारिवारिक आधार पर होता है।	अप्रत्यक्ष सहयोग अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। यह श्रम विभाजन के आधार पर होता है।
३८. सहयोग घनिष्टता पर आधारित होता है।	सहयोग स्वार्थ के आधार पर होता है।
३९. प्रतिस्पर्द्धा :- ग्रामों में प्रतिस्पर्द्धा नहीं पाई जाती है।	प्रतिस्पर्द्धा अत्यधिक पाई जाती है।
४०. सामाजिक स्थिति परिवार एवं वंश परम्परा पर आधारित होती है न कि प्रतिस्पर्द्धा पर।	सामाजिक स्थिति प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित होती है जिसे परिश्रम व योग्यता से प्राप्त किया जाता है।

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
४१. संघर्ष :- संघर्ष का प्रत्यक्ष रूप पाया जाता है। लड़ाई झगड़ा, मारपीट आदि।	संघर्ष अप्रत्यक्ष रूप में पाया जाता है। हड़ताल, दंगे, ताला बन्दी आदि। असन्तुष्ट होने पर भी व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों या समूहों से खुलकर झगड़ा नहीं करता है।
४२. व्यवस्थान :- व्यवस्थान की प्रक्रिया ग्रामों में सरलता से कार्य नहीं करती। परिवर्तन शीघ्र सम्भव नहीं है।	व्यवस्थान की प्रक्रिया सरलता से कार्य करती है। परिवर्तन शीघ्र होता है।
४३. सामाजिक सहिष्णुता नहीं पाई जाती।	सामाजिक सहिष्णुता अत्यधिक पाई जाती है।
४४. एकीकरण :- अन्य संस्कृतियों से सम्पर्क न होने के कारण एकीकरण का प्रश्न नहीं उठता।	अन्य संस्कृतियों से अत्यधिक सम्पर्क होता है। अतः एकीकरण की प्रक्रिया सदैव कार्य करती है।
४५. एकीकरण की प्रक्रिया मन्द गति से कार्य करती है।	एकीकरण की प्रक्रिया अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से कार्य करती है।

सामाजिक दृष्टिकोण
(Social Attitudes)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
४६. सामाजिक परिवर्तन :- सामाजिक परिवर्तन के प्रति रूढ़ीवादी दृष्टिकोण पाया जाता है।	सामाजिक परिवर्तन का स्वागत ही होता है।
४७. वर्तमान व्यवस्था के प्रति कट्टरता पाई जाती है और परिवर्तन को उचित नहीं समझा जाता।	नगर निवासी प्रगतिशील होते हैं। परिवर्तन प्रिय होते हैं।

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
४८. "ग्रामीण संस्कृति रूढ़िवादिता की ओर झुकी रहती है।"[10]	"नगर जगमित्र होता है जबकि ग्राम राष्ट्रवादी और स्वदेशाभिमानी होता है।"[11]
४९. राजनीति :- ग्रामीण जनता राजनीति के प्रति उदासीन रहती है।	राजनीति में सक्रिय भाग लेती है।
५०. राजनैतिक विचारों पर पारिवारिकता की छाप रहती है।	राजनैतिक विचार वैयक्तिक होते हैं। नये राजनैतिक दलों का जन्म होता है। एक ही परिवार के सदस्य विभिन्न राजनैतिक विचारों को मानते हैं।
५१. सामाजिक सहिष्णुता:- विभिन्न संस्कृतियों से सम्पर्क के अभाव के कारण सहिष्णुता ग्रामीण जनता में नहीं पाई जाती।	विभिन्न संस्कृतियों से सम्पर्क के कारण सहिष्णुता अत्यधिक पाई जाती है।
५२. धर्म एवं आचार :- धर्म एवं आचार के प्रति ग्रामीण जनता की पूर्ण आस्था होती है।	धर्म एवं आचार के प्रति नागरिक जनता वैज्ञानिक विचारों पर आधारित होकर जागरूक नहीं होती है।
५३. ग्रामीण धर्म में अन्धविश्वास बहुत अधिक पाया जाता है।	अन्धविश्वासों की मात्रा बहुत कम होती हैं। धर्म विवेक पर आधारित होता है।
५४. भाग्यवादिता:- कृषि प्राकृतिक दशाओं पर आधारित है। अतः भाग्यवादिता अत्यधिक पाई जाती है।	व्यवसाय या उद्योग स्वयं की शक्ति पर आधारित है। अतः कर्म पर विश्वास पाया जाता है।
५५. आपत्तियों में सहायक ईश्वर होता है।	आपत्तियों का सहायक विज्ञान होता है।

10. "Rural culture tends to be conservation" Martin H. Naumeyer; 'Social Problems and the Changing Society'; D. Van Nostrand C. Inc. New York; p. 63.
11. "The city is cosmopolitan; whereas the country is nationalistic." E.A. Rose; 'Principles of Sociology.' p. 77.

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
५६. कृत्रिमता:- ग्राम के निवासी कृत्रिमता के घोर विरोधी हैं।	नगरों की रचना ही कृत्रिमता पर आधारित है। शृंगार एवं कृत्रिमता अत्यधिक पाई जाती है।
५७. ग्रामीण व्यक्ति निष्कपट, सत्यनिष्ठ एवं स्पष्ट वक्ता होते हैं।	नागरिक व्यक्तियों का व्यवहार कपटपूर्ण, झूठा, भुलावा देने वाला तथा दिखावे का होता है।

सामाजिक गतिशीलता
(Social Mobility)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
५८. ग्रामों में गतिशीलता बहुत कम पाई जाती है।	नगरों में एक समूह से दूसरे समूह में जाना जिसे अनुप्रस्थ (Horizental) गतिशीलता कहते हैं तथा गतिशीलता के अन्य रूप भी पाये जाते हैं।
५९. व्यवसाय या पदों में भी गतिशीलता आना सम्भव नहीं होता।	नगरों में व्यवसाय एवं पदों में अत्यधिक गतिशीलता पाई जाती है।
६०. स्थान परिवर्तन ग्रामों में सम्भव नहीं है।	स्थान परिवर्तन अत्यधिक सीमा तक होता है।

आर्थिक जीवन
(Economic Life)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
६१. स्वरूप:- आर्थिक जीवन सरल एवं सादा होता है।	आर्थिक जीवन के प्रमुख तीन स्वरूप हैं। श्रम विभाजन, विशेषीकरण एवं प्रतिस्पर्द्धा।
६२. व्यवसाय:- ग्राम का मुख्य व्यवसाय कृषि ही है। अन्य व्यवसाय ग्राम में कम पाये जाते हैं।	नगरों में व्यवसायों की बहुलता है, कृषि का कोई रूप नहीं पाया जाता है।

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
६३. ग्रामीण जनता जीवित एवं विकसित होने वाली वस्तुओं से सम्पर्क रखती है।	नागरिक जनता यन्त्रों से विशेष रूप से सम्बन्धित है।
६४. जीवन स्तरः—ग्रामों में जीवन स्तर अत्यन्त निम्न होता है।	जीवन-स्तर ऊंचा पाया जाता है।
६५. व्यक्तियों की आय में अत्यधिक अन्तर नहीं पाया जाता।	व्यक्तियों की आय में अत्यधिक भिन्नता पाई जाती है।
६६. जीवन स्तर सभी व्यक्तियों का लगभग समान है।	जीवन-स्तर किसी वर्ग का बहुत ऊंचा है तो किसी वर्ग का अत्यन्त निम्न।
६७. व्ययः- ग्रामीण जनता फिजूल खर्च नहीं करती।	नागरिक जनता फिजूल खर्च करती है।
६८. आराम एवं विलासिता की वस्तुओं पर बहुत कम व्यय होता है।	आराम एवं विलासिता की वस्तुओं पर अत्यधिक व्यय होता है।

साँस्कृतिक जीवन
(Cultural Life)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
६९. संस्कृति की प्रकृतिः-ग्रामों में संस्कृति में स्थिरता पाई जाती है। ग्रामीण संस्कृति में परिवर्तन का अभाव होता है।	नागरिक संस्कृति में गतिशीलता अत्यधिक पाई जाती है। संस्कृति परिवर्तनशील होती है।
७०. स्थिर संस्कृति के कारण रूढ़िवादिता, कूपमन्डूकता की भावना उत्पन्न होती है।	विचारों में परिवर्तनशीलता रहती है।

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
७१. संस्कृति जातिगत एवं पवित्रता पर आधारित होती है।	यह असाम्प्रदायिकता पर आधारित होती है।
७२. ग्रामों में परम्परा की पूजा होती है। फैशन को मान्यता प्राप्त नहीं होती।	नगरों में प्रथा को मान्यता नहीं मिलती। फैशन नागरिक जनता का प्राण ही है।
७३. ग्रामीण व्यवहार परम्परा से निर्धारित होते हैं।	नागरिक व्यक्तियों का व्यवहार फैशन पर आधारित होता है।

सामाजिक विघटन
(Social Disorganisation)

ग्रामीण जीवन	नागरिक जीवन
७४. व्यक्तिगत विघटन:- ग्रामीण समाज में परम्पराओं के पालन के कारण वैयक्तिक विघटन को जन्म नहीं मिलता, परिणामतः नशाखोरी, आत्म-हत्यायें, वैश्यावृति कम पाई जाती है।	नगरों में निराशा, मानसिक संघर्ष, वैयक्तिक विघटन को जन्म देते हैं। परिणामतः आत्म-हत्यायें, वैश्यावृत्ति, मद्यपान आदि की संख्या अत्यधिक पाई जाती है।
७५. पारिवारिक विघटन:-ग्रामीण समुदायों में विवाह-विच्छेद, परित्याग, पृथक्करण आदि पारिवारिक विघटन के रूप बहुत कम पाये जाते हैं।	नगरों में विवाह विच्छेद, न्यायिक पृथक्करण, परित्याग आदि रूप अत्यधिक पाये जाते हैं।
७६. विधवा विवाह की समस्यायें ग्रामीण जीवन में अत्यधिक पाई जाती हैं।	नगरों में यह समस्या इतनी भीषण नहीं होती क्योंकि पुनर्विवाह की विधि बनी हुई है।
७७. अपराध:-ग्रामीण क्षेत्रों में मारपीट, हत्या, धन की हानि, चोरी, लूट आदि अपराध ही पाये जाते हैं।	नागरिक क्षेत्रों में चोरी, गबन, हत्या, बलात्कार आदि अनेकों प्रकार के अपराध पाये जाते हैं।
७८. बाल अपराध एवं अपराधों के विविध स्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं पाये जाते हैं।	नागरिक क्षेत्रों में अपराधों एवं बाल अपराधों के विभिन्न एवं नवीन स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं।

इस भाँति ऊपर हमने नागरिक एवं ग्रामीण जीवन का अन्तर विभिन्न आधारों पर देखा। यह अन्तर नागरिक एवं शुद्ध ग्रामीण जीवन में ही पाया जाता है। दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अत: हमें नगर की अनेक विशेषतायें ग्रामों में भी सरलता से देखने को मिलेंगी और इसी भांति ग्रामीण क्षेत्रों की विशेषतायें नगरों में भी उपलब्ध होंगी।

ग्रामीण एवं नागरिक जीवन परस्पर आश्रित है। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व सन्देहजनक है। नगर का सम्पूर्ण ढाँचा ग्राम पर ही आधारित है। ग्रामीण क्षेत्र अन्न एवं अन्य कच्चे माल का उत्पादन करना बन्द करदें तो नगर का बड़े से बड़ा उद्योग रुक जायेगा। ग्राम ही नगर में कार्य करने के लिये श्रमिक प्रदान करता है। इसी प्रकार नगर भी ग्रामीण क्षेत्रों के लिये अनेक सुविधायें उपलब्ध करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों ही एक दूसरे पर आधारित हैं। एक के अभाव में दूसरे के अस्तित्व की कल्पना करना भी कठिन होगा। अतः हम कह सकते हैं कि हमें नगर एवं ग्राम दोनों की ही आवश्यकता है। अतः आधुनिक युग में ऐसे क्षेत्रों का विकास किया जा रहा है जहाँ नगर एवं ग्राम दोनों की विशेषतायें उपलब्ध हो सकें।

अध्याय २४

औद्योगीकरण एवं नागरीकरण

(Industrialisation and Urbanisation)

जब से मानव इस धराधाम पर अवतरित हुआ है तब से वह कुछ न कुछ उद्योग करता ही रहा है। यह एक अलग बात है कि मानव के प्रारम्भिक उद्योग छोटे थे अथवा बड़े, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह आदिकाल से कुछ न कुछ उद्योग करता ही रहा है। मानव के उत्थान और विकास का कारण उसकी अपनी वे विशेषताएं रही हैं जिन्होंने उसे अन्य प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध किया है। मानव की ये विशेषतायें उसका मुक्त हाथ, विकसित मस्तिष्क व उन्नतशील वाणी यंत्र रहे हैं। आखेट युग व पशुपालन युग में मानव के पास सीमित साधन थे और इसलिए सीमित ही उनके उद्योग थे। आखेट युग में मनुष्य का मुख्य उद्योग आखेट करना और उससे प्राप्त माँस और खाल द्वारा जीवनयापन करना था। पशुपालन युग में कुछ स्थिति बदली। यद्यपि आज के मानव की दृष्टि में यह परिवर्तन कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं था, किन्तु उस युग के मानव समाज पर इस नवीन परिवर्तन ने क्रान्तिकारी प्रभाव डाला। यह परिवर्तन था समस्त पशुओं का संहार न कर उपयोगी पशुओं को पालना। मानव का यह दूसरा महत्वपूर्ण कार्य था जो कि उद्योग के विकास की कहानी में सम्मिलित किया जा सकता है। जिस युग में मानव को यह ज्ञान हुआ कि कुछ पशुओं को मारने की अपेक्षा पालने में अधिक लाभ है तभी पशुपालन युग प्रारम्भ हुआ। पशुपालन उद्योग आज भी, हजारों वर्षों बाद, अनेक देशों में एक विशिष्ट समुदाय का प्रमुख उद्योग है।

किन्तु उद्योगों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन तब आया जब कि मानव पशुपालन के पश्चात् कृषि का कार्य करने लगा। कृषिकाल में मुख्य उद्योग कृषि तो था ही, अनेकानेक सहायक उद्योगों यथा सूत कातना, कपड़ा बनाना, मिट्टी व धातु के बर्तन बनाना, लकड़ी व लोहे की वस्तुयें बनाना आदि की भी शनैः शनैः प्रगति हुई। कृषि युग में ही उन विशाल उद्योगों रूपी वृक्षों की जड़ें जमीं जो आज के व्यावसायिक युग में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

औद्योगीकरण का अर्थ एवं विकास

(Meaning and Development of Industrialisation)

छोटे छोटे उद्योग तो आज से लगभग ५ हजार वर्ष पूर्व ही संसार के विभिन्न देशों में पर्याप्त मात्रा में विकसित हो चुके थे। औद्योगीकरण शब्द का प्रयोग १८वीं,

१९ वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। औद्योगीकरण से अर्थ नवीन, बड़े पैमाने के उद्योगों के प्रारम्भ एवं छोटे उद्योगों के बड़े पैमाने के उद्योगों में बदलने से है। जब १८वीं १९ वीं शताब्दी में अनेक नवीन शक्तियों (जिनका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे) का प्रयोग होने लगा तब बड़े पैमाने पर उद्योग प्रारम्भ हुए और औद्योगीकरण की नींव पड़ी।

औद्योगीकरण औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुआ और छोटे छोटे ग्रामों ने ही विकसित एवं विस्तृत होकर नगरों का रूप ले लिया। इस भांति औद्योगीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत लघु उद्योगों का विकास विस्तृत उद्योगों में होता है। लघु उद्योगों में भाप शक्ति तथा विद्युत शक्ति आदि का प्रयोग नहीं होता, किन्तु औद्योगीकरण की प्रक्रिया में विस्तृत उद्योग इन शक्तियों के अभाव में कार्य ही नहीं कर सकते। इस भांति हम कह सकते हैं कि औद्योगीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें नवीन बड़े पैमाने के उद्योगों का प्रारम्भ होता है और छोटे पैमाने के उद्योग इन बड़े पैमाने के उद्योगों में विकसित होते हैं। इन बड़े पैमाने के उद्योगों का प्रमुख आधार जल विद्युत व वाष्प शक्ति होती है। इन शक्तियों के अभाव में बड़े पैमाने के उद्योग कार्य नहीं कर सकते। शक्तियों के अभाव में औद्योगीकरण की कल्पना और व्यवसाय को शक्ति प्रयोग का प्रोत्साहन देकर विस्तृत करने की प्रक्रिया को औद्योगीकरण कहा जाता है।

औद्योगीकरण का प्रसार संसार के सभी देशों में होना प्रारम्भ हुआ, जिसमें भारत भी पीछे नहीं रहा। विशेषतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सूती वस्त्र उद्योग, लोहा एवं इस्पात, यान्त्रिक उपकरण, खाद्य सामग्री तथा लघु उद्योगों को अत्यधिक बढ़ावा मिल रहा है। आज भारत में विज्ञान एवं यान्त्रिक विधि में आविष्कार के कारण विद्युत, बेतार के तार, रेडियो सेट, टेलीफोन, यान्त्रिकी आदि में काफी प्रगति हुई है, वह सराहनीय है। वह दिन दूर नहीं जब कि भारत भी अमेरिका, चीन तथा सोवियत रूस से बड़े बड़े उद्योगों के मामलों में मुकाबला कर सकेगा। बार्न्स ने उचित ही कहा है, "औद्योगिक क्रान्ति जिसके कारण मानव इतिहास में महान परिवर्तन आये हैं, ने प्राथमिक सामाजिक पद्धतियों की नींवो को खोद डाला है।"[1]

---

1. "The Industrial Revolution in greatest transformation in the history of humanity, broke down the foundations of Relitions social system." M. E. Barns.

औद्योगिकरण का विकास
(Development of Industrialization)

औद्योगीकरण के विकास में अनेक आविष्कारों एवं कारकों ने योग दिया है। नीचे हम इन प्रमुख आविष्कारों एवं-कारकों का वर्णन करेंगे।

१. औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution)

यूरोप में १५ वीं व १६ वीं शताब्दी में जिस ज्ञान, चेतना तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार हुआ, उससे हर क्षेत्र में परिवर्तन हुए। औद्योगिक क्षेत्र भी इस प्रभाव से अछूता न रहा। १८ वीं शताब्दी में कुछ यान्त्रिक आविष्कार हुए जिनसे औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। सन् १७३३ ई० में जॉन के (John Key) ने एक तेज चलने वाली ढरकी (Flying Shuttle) का आविष्कार किया जिससे कपड़ा बुनने की गति में बहुत सुविधा हुई। सूत कातने की गति में वृद्धि के लिये सन् १७६४ ई० में लंकाशायर (इंग्लैंड) के एक जुलाहे हारग्रीब्ज ने एक ऐसे चरखे का निर्माण किया जिसमें एक साथ कई तकले काम करते थे और इस प्रकार थोड़े ही समय में अधिक सूत कत जाता था। इस चरखे का नाम उसने अपनी पत्नि जैनी के नाम पर कातने वाली जैनी (Spinning Jenny) रखा। इस चरखे से काता हुआ सूत ताने के काम में तो आता था, किन्तु बाने के लिये हाथ से कता हुआ सूत काम में लेना पड़ता था जिसमें अधिक समय व श्रम लगता था। सन् १७६४ ई० में आर्कराइट ने एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया जिस पर बाने का सूत भी काता जा सकता था। इसके ६ वर्ष बाद ही क्रोम्पटन नाम के एक कारीगर ने इससे भी उन्नत कताई की मशीन का निर्माण किया। उसकी यह मशीन म्यूल (Mule) कहलाती थी। एक अन्य व्यक्ति कार्टराइट ने कपड़ा बुनने के लिये करघा मशीन का आविष्कार किया। पहले तो यह मशीन घोड़ों द्वारा चलाई जाती थी किन्तु बाद में पानी की शक्ति से संचालित होने लगी। इस प्रकार औद्योगीकरण में अनेक आविष्कारों ने सहायता पहुँचाई।

२. विभिन्न प्रकार की शक्तियों का आविष्कार (Inventions of Various Kinds of Energies)

(अ) भाप की शक्ति का आविष्कार (Invention of Steam Energy)—औद्योगिक क्रान्ति को नई जान देने वाला आविष्कार भाप की शक्ति की खोज थी। सन् १७६५ ई० में इंगलैंड के एक इन्जीनियर जेम्सवाट ने भाप के एंजिन का आविष्कार किया। इसका प्रयोग पहले लोहे व कोयले की खानों से

संचालित की जाने लगी। इसने औद्योगिक व यान्त्रिक क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति की जो काम पहले महीनों में होता था वह अब दिनों में होने लगा। इस शताब्दी से पहले भाप की शक्ति का हर क्षेत्र में प्रयोग होता था।

(ब) लोहे तथा कोयले का प्रयोग (Use of Iron and Coal)—पहले मशीनें लकड़ी की ही बनाई जाती थीं, किन्तु लोहा व कोयला उपलब्ध होने से मशीनें लोहे की बनने लगीं। लोहा खान से निकाल कर उसे शोधने का कार्य प्रारम्भ हुआ और उसे इस्पात में परिवर्तित किया गया। अब लोहे की बड़ी बड़ी मशीनें तथा कल पुर्जे ढलने लगे और कारखानों में उनका प्रयोग होने लगा तथा ऐसी ऐसी मशीनें बनने लगीं जिनसे कम श्रम में अधिकाधिक उत्पादन होने लगा। रूई साफ करने की मशीन से एक दिन में ५०० सेर रूई साफ की जाने लगी। कातने वाली मशीनों से इतना सूत काता जाने लगा जितना सैंकड़ों व्यक्ति हाथ चरखे से कात नहीं सकते थे।

(स) कुछ अन्य शक्तियों का आविष्कार (Invention of Some other Sources)—औद्योगिक क्रान्ति की प्रगति में भाप, लोहे व कोयले के अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियों ने भी नई प्रेरणा दी। इन शक्तियों में विद्युत, पेट्रोल मिट्टी का तेल आदि मुख्य हैं। नवीनतम शक्ति जिसने पाश्चात्य देशों में औद्योगिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला हैं, वह अणु शक्ति है। अणु शक्ति, मानव के औद्योगिक जीवन की काया पलटने की क्षमता रखती है। इस प्रकार से सभी शक्तियों ने मिलकर मानव समुदाय के औद्योगिक जीवन को नई गति एवं नई प्रेरणा दी है।

३. यान्त्रिक आविष्कारों का परिणाम औद्योगिक क्रान्ति
(The Result of Technical Inventions : Industrial Revolution)

यान्त्रिक आविष्कारों ने औद्योगिक क्षेत्र में उल्लेखनीय क्रान्ति की। तेज काम करने के लिये बनाई गई मशीनों द्वारा सौ गुना तेज उत्पादन होने लगा। एक मशीन जिस पर काम करने के लिये एक या दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी, उतना ही उत्पादन कर सकती थी, जितना हजार मजदूर अपनी शक्ति से नहीं कर सकते थे। मशीनें भारी, विशालकाय तथा अधिक कीमती होती थीं अतः व्यक्तिगत रूप से कारीगर इन्हें नहीं खरीद सकते थे। अतः बड़े बड़े कल कारखानों की स्थापना होने लगी। सन् १७८५ ई० में इंगलैंड के नाटिंघम नगर में कपड़े की पहली मिल खुली। फिर तो फैक्ट्रियों का तीव्रगति से विकास हुआ और तब व्यक्तिगत जुलाहों द्वारा बुना जाने की अपेक्षा बड़ी बड़ी फैक्ट्रियों में मशीनों द्वारा

बुना जाने लगा। कल कारखानों से पूर्व मनुष्य अपने औजारों (Tools) की सहायता से विविध काम कर सकता था, अब एक प्रकार की मशीन एक ही काम कर सकती थी, रूई साफ करने वाली मशीन केवल बिनौले निकाल सकती थी, बोरिंग मशीन केवल छेद कर सकती थी।

इस प्रकार हर काम के लिये अलग अलग प्रकार की मशीनों का निर्माण हुआ और कार्य विभाजन हो गया। एक चीज कई प्रकार की क्रिया-प्रक्रिया से गुजरने के बाद अपने पूर्ण रूप में आती थी। अब निर्माण तथा उत्पादन का दायित्व कारखानेदार मालिक पर हुआ जो अब तक कारीगर का था। वह अपने कारखानों में मशीनें चलाने के लिये मजदूर रखता था, उनको इच्छानुसार मजदूरी देता था, क्योंकि मशीनों पर काम करने के लिये विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं थी, केवल मशीन चालू रखने के लिये आदमी की जरूरत थी। वस्तुओं का निर्माता तथा उत्पादनकर्ता अब कारीगर नहीं बल्कि पूंजीपति था जिसने पूंजी लगाकर कारखाना खोला है। अतः आर्थिक शक्ति अब कारीगरों की संस्थाओं में न रहकर पूंजीपति मिल मालिकों के हाथ में आ गई। अब सामन्तवादी वर्ग की जगह पूंजीपति वर्ग का उदय हो गया।

औद्योगीकरण के विकास के परिणामस्वरूप एक स्थान पर अनेक उद्योग स्थापित हुए और उद्योगों की स्थापना के कारण यह स्थान नगर कहलाया। इन उद्योगों के क्रय-विक्रय की माँग को पूरा करने के लिये विभिन्न और निरन्तर बढ़ने वाली व्यापारिक यातायात और सन्देशवाहन की सुविधाओं की आवश्यकता उत्पन्न हुई और समय बीतने पर छोटे छोटे औद्योगिक नगर अन्ततोगत्वा बृहत नगरों में परिवर्तित हो गये। इस प्रकार औद्योगीकरण ने नगरों की वृद्धि और विस्तार में पर्याप्त योगदान दिया। नगरों की वृद्धि और विस्तार की प्रक्रिया ही नागरीकरण कहलाता है। नीचे हम नागरीकरण का अर्थ देखेंगे।

नागरीकरण का अर्थ
(Meaning of Urbanisation)

औद्योगीकरण का प्रमुख परिणाम हुआ नगरों का विकास और यह नगरों का विकास ही दूसरे अर्थों में नागरीकरण कहलाता है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप विभिन्न देशों में गाँव उखड़ गये और नगर बस गये। सन् १९३० ई० में इंगलेंड में ८० प्रतिशत जनसंख्या, जर्मनी में ६७ प्रतिशत, अमेरिका में ५६.२ प्रतिशत, फ्रांस में ४९.१ प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करने लगी। इस भाँति हम कह सकते हैं कि नागरीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें नवीन नगरों का विकास होता है, ग्राम नगरों में परिवर्तित होते हैं। ग्रामीण जनसंख्या में ह्रास

होकर नागरिक जनसंख्या में वृद्धि होती है और ग्रामीण जीवन पर नागरिक जीवन का प्रभुत्व एवम् प्रभाव बढ़ जाता है।

नागरीकरण से नगरों का विकास होता है और नगरों का पर्यावरण ग्रामीण पर्यावरण से उन्नत होता है। जहाँ जीवन की सुख सुविधायें, आनन्द, सुरक्षा तथा प्रत्येक प्रकार के विकास के साधन प्राप्त होते हैं। ग्रामीण जीवन इन सुख-सुविधाओं और चमक-दमक से प्रभावित होता है और परिणामस्वरूप नागरिक जीवन की ओर खिंचता है जिससे ग्रामीण जनसंख्या का ह्रास होता है और नागरिक जनसंख्या में वृद्धि। वास्तव में देखा जाय तो औद्योगीकरण एवं नागरीकरण समानान्तर प्रक्रियायें हैं और परस्पर घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं।

औद्योगीकरण और नागरीकरण के मध्य सम्बन्ध
(Relationship Betwen Industrialization & Urbanisation)

विश्व में जिस ओर भी हम दृष्टि उठाकर देखें, औद्योगीकरण के क्षेत्र में औद्योगीकरण और नागरीकरण में निकट सम्बन्ध स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसा लगता है जैसे ये दोनों एक दूसरे पर अति-निर्भर हो। हम इस तथ्य पर विचार करेंगे कि औद्योगीकरण के वे कौन से तत्व हैं जिनके कारण वे नगरों के विकास में सहायक होते हैं।

(१) औद्योगीकरण के मूल तत्व
(Essential Elements of Industrialisation)

किसी भी उद्योग के विकास के लिए यह आवश्यक होता है कि उसके लिए आवश्यक कच्चा माल, शक्ति का साधन (लोहा, कोयला अथवा विद्युत), श्रमिक व आवश्यक यन्त्र सरलता से प्राप्त हो सकें। इसके साथ ही वह स्थान यदि व्यापारिक केन्द्र भी हो तो तैयार माल तुरन्त बिक्री के लिये भी भेजा जा सकता है। औद्योगीकरण के आधार पर दो प्रकार से नगर विकसित होते हैं। प्रथम प्रकार के नगरों का विकास उन स्थानों पर होता है जहाँ पहले से ही छोटे नगर होते हैं और औद्योगीकरण की अन्य सामान्य सुविधायें विद्यमान होती हैं। इस प्रकार के जो नगर भारत में गत अर्द्ध शताब्दी में विकसित हुए हैं उनमें बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर, कलकत्ता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। द्वितीय प्रकार के नगर वहाँ विकसित होते हैं जहाँ उद्योगों की स्थापना के लिए तो सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं किन्तु पहले से कोई छोटा नगर नहीं होता। ऐसे स्थानों पर नये सिरे से नगर बसाये जाते हैं जिनमें पर्याप्त मात्रा में आधुनिकता का पुट होता है। इस प्रकार के भारतीय नगरों में टाटानगर (Tata Iron and Steel Works Ltd)

के द्वारा और भिलाई (भारतीय केन्द्रीय सरकार द्वारा स्टील निर्माण हेतु) अग्रणी हैं। इस प्रकार पुराने स्थानों में व्यापारिक केन्द्र होने अथवा सामान्य सुविधाओं के वहाँ मिलने के कारण और नवीन स्थानों पर कुछ विशेष सुविधाओं के प्राप्त होने के कारण नगरों का विकास हुआ है।

(२) औद्योगीकरण और नागरीकरण के मध्य सम्बन्धों की घनिष्ठता (Intimacy of Relationship Between Industrialisation and Urbanisation)

प्रायः देखा गया है कि जिन स्थानों पर उद्योगों का विकास हुआ वहीं नगरों का विकास भी हुआ है अथवा नवीन नगरों की उत्पत्ति हुई है। नगर एक विशेष प्रकार का वातावरण है जिसका विकास विभिन्न औद्योगिक, व्यापारिक एवं राजकीय समस्याओं के कारण होता है। एक उद्योग की स्थापना अनेक आवश्यकताओं को जन्म देती है। जैसे दूर दूर के नगरों तक जोड़ने वाले द्रुतगामी यातायात के साधन यथा रेलगाड़ी, बसें, वायुयान आदि। पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल, कुशल श्रमिक, शक्ति की सुविधा और आवास व जीवन के लिए आवश्यक सामान्य सुविधायें यथा गृह, भोजन, वस्त्र आदि। इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति अनेक संस्थायें मिलकर करती हैं और एक बृहत्तर नगर के निर्माण में योग देती हैं। इंगलैंड में इस प्रकार से विकसित नगरों में बरमिंघम, लंकाशायर, मैनचैस्टर आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

दूसरी ओर आधुनिक समय में उद्योगों के कारण जो स्थान विकसित होते हैं उनमें आधुनिक ढंग से विकास की सुविधाएं विद्यमान रहती हैं। उनका विकास परम्परागत के आधार पर न होकर आधुनिक विज्ञान की सुविधाओं का आश्रय लेते हुए होता है और इस प्रकार ग्राम और नगर में भेद उपस्थित हो जाता है। नगर व ग्राम में भेद की प्रमुख वस्तुयें जनसंख्या, जीवन की सामान्य सुविधाएं, विभिन्न प्रकार की संस्थाएं, कार्यालय आदि हैं। इन बातों की सुविधाएं नवीन स्थापित औद्योगिक नगरों में विद्यमान रहती हैं, अत. नगरों का विकास होता है।

भारत में औद्योगीकरण एवं नागरीकरण
(Industrialisation and Urbanisation in India)

भारत में औद्योगीकरण अधिकांशतः २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ से हुआ। इसी समय से हमारे देश में शनैः शनैः नगरों की जनसंख्या में वृद्धि हुई है व अनेक नये नगर बनें हैं। सन् १९११ ई० से पहले जमशेदपुर एक छोटा सा गाँव था, परन्तु श्री टाटा का लोहे का कारखाना स्थापित होने से सन् १९५१ ई० में उसकी जनसंख्या, २,१८,१६२ हो गई। यद्यपि इस समय भी भारत की केवल १७.३

प्रतिशत जनता नगरों में रह रही है किन्तु फिर भी गत वर्षों से नगरों की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सन् १९२१, १९३१ और सन् १९४१ ई० में यह प्रतिशत क्रमशः ११.२,१२.१ और १३.९ था। पिछले ३० वर्षों में जनसंख्या की नगरों में जो वृद्धि हुई है वह निम्न तालिका से अधिक भली भाँति स्पष्ट हो सकती है :—

वर्ष	नगरों की जनसंख्या	वृद्धि दर
१९२१	२,८२,००,०००	—
१९३१	३,३४,००,०००	+ १८.४
१९४१	४,३८,००,०००	+ ३१.१
१९५१	६,१९,००,०००	+ ४१.१

औद्योगीकरण की एक प्रबल लहर हमारे देश में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दौड़ी। इसी कारण पिछली शताब्दी में हमारे देश के नगरों में जनसंख्या की वृद्धि दर ४१.१ रही। कुछ बड़े औद्योगिक नगरों में जनसंख्या की वृद्धि दर निम्न तालिका में दी जाती है :—

जनसंख्या की वृद्धि

नाम	सन् १९०१ से १९३० ई० तक (लाखों में)	सन् १९५१ ई० में (लाखों में)
बृहत्तर कलकत्ता	६	४५.८
बृहत्तर बम्बई	४.६	२८.४
मद्रास	१.४	१४.२
दिल्ली	२.३	१३.८
हैदराबाद	०.२	१०.०
अहमदाबाद	१.३	१०.९
बंगलौर	१.५	७.९
कानपुर	०.४	७.१
पूना	०.९	५.९
लखनऊ	०.२	५.०

सन् १९५१ ई० में भारत में १ लाख से अधिक जनसंख्या के ७३ नगर थे, जबकि १९४१ में ऐसे नगरों की संख्या केवल ४९ थी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पिछले १० वर्षों में २४ नये नगरों की जनसंख्या १ लाख से अधिक हो गई।

उत्तर प्रदेश में ऐसे नगर देहरादून, रामपुर और गोरखपुर थे। निम्न तालिका में दिये गये गाँवों व नगरों की जनसंख्या का तुलनात्मक अध्ययन भी इस बात की ओर इंगित करता है कि नागरीकरण की गति क्या रही है :—

नागरीकरण

वर्ष	गाँवों में रहने वाली जनसंख्या	शहरों में रहने वाली जनसंख्या
१९२१	८८.७ प्रतिशत	११.३ प्रतिशत
१९३१	८७.९ प्रतिशत	१२.१ प्रतिशत
१९४१	८६.१ प्रतिशत	१३.९ प्रतिशत
१९५१	८२.७ प्रतिशत	१७.३ प्रतिशत

२० वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर अब तक भारत में नगर विकास पर दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होगा कि नगरों का विकास भारत में अति मध्यम गति से हो रहा है। इसका एक प्रमुख कारण भारत में मन्द औद्योगिक प्रगति भी रहा है। इस पर भी यह उल्लेखनीय है कि नागरिक जनसंख्या में बराबर वृद्धि हो रही है। सन् १९११ ई० में नागरिक जनसंख्या में ह्रास हुआ था। वास्तव में इस ह्रास का कारण प्लेग तथा अन्य महामारियाँ थीं।

नागरिक जनसंख्या की वृद्धि दर को समझने के लिए निम्न तालिका देखिये :-

ग्रामीण तथा नागरिक जनसंख्या २.

वर्ष	ग्रामीण जनसंख्या	नागरिक जनसंख्या	गत दश वर्षों में वृद्धि नागरिक जनसंख्या में
१८७१	९१.३	८.७	—
१८८१	९०.७	९.३	+ ०.९
१८९१	९०.६	९.४	+ ०.१
१९०१	९०.०	१०.०	+ ०.६
१९११	९०.६	९.४	— ०.६
१९२१	८८.७	११.३	+ १.९
१९३१	८७.९	१२.१	+ ०.८
१९४१	८६.१	१३.९	+ १.८
१९५१	८२.७	१७.३	+ ३.४

2 Figures from the year 1872 to 1911 are quoted from Kingsley Davis, 'Population of India and Pakistan' and from 1921 onwards from 'India', 1957.

इस तालिका से स्पष्ट है कि सन् १९५१ ई० में ३.४ प्रतिशत जनसंख्या की वृद्धि हुई है जो कि सन् १९४१ ई० से तिगुनी है। इससे स्पष्ट है कि नागरिक जनसंख्या की वृद्धि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उद्योगों के नये नये मार्ग खुल जाने के कारण अत्यधिक बढ़ गई है। १० लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगर बम्बई, मद्रास, कलकत्ता व हैदराबाद हैं। औद्योगिक नगरों में जिस गति से कारखानों में श्रमिकों की वृद्धि हुई है उसे निम्न तालिका द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।[3]

कारखाने तथा उनमें काम करने वाले श्रमिकों की संख्या

वर्ष	कारखानों की संख्या	काम करने वाले श्रमिकों की संख्या
१८९२	६५६	३.१६.८१६
१९१२	२.७१०	८.६९.६४३
१९२३	५.९८५	१४.०९.१७३
१९३३	८.४५२	१४.०३.२१२
१९४५	१४.७६१	२६.४२.९४९
१९४८	१५ ९०६	२३.६०.२०१
१९५०	२७.७५४	२५.०४.३९९
१९५२	३०.३५१	२५.६७.४५३
१९५५	२६.३०८	२६.५८.५३७

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि स्वतन्त्रता के पूर्व कारखानों व श्रमिकों की संख्या में सन्तोषजनक उन्नति नहीं थी, परन्तु स्वतन्त्रता के उपरांत इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। सन् १९४७ ई० के पश्चात् लगभग १० वर्षों में कारखाने व इसमें काम करने वाले श्रमिकों में लगभग १०० प्रतिशत वृद्धि हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि औद्योगीकरण ने नागरीकरण पर व्यापक प्रभाव डाला है। इसने जहाँ एक ओर कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली, हैदराबाद, अहमदाबाद, कानपुर, लखनऊ आदि जैसे नगरों की संख्या को अत्यधिक बढ़ाया है वहाँ नये नगर यथा टाटानगर, भिलाई, रूरकेला, दुर्गापुर जैसे नये नगरों की स्थापना व विकास में भी सहायता दी है। स्वतन्त्र भारत में अब और भी तेजी से औद्योगीकरण और नागरीकरण की आशा है।

3 Figures have been based on Govt. Publications as Indian Labour year books and India, 1958.

ग्रामीण जीवन पर औद्योगीकरण एवं नागरीकरण का प्रभाव
(Effect of Urbanisation & Industrialisation on Rural Life)

भारतीय ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों को औद्योगीकरण एवं नागरीकरण की प्रक्रिया ने अत्यधिक प्रभावित किया है। इस प्रभाव से ग्रामीण जीवन का स्वरूप ही लगभग परिवर्तित सा हो गया है। इस परिवर्तन एवं नवीन संस्कृति से सामन्जस्य करने की अक्षमता के कारण आज ग्रामीण जीवन अत्यधिक मात्रा में विघटित पाया जाता है। इस विघटन को समाप्त करने के लिए विभिन्न योजनाओं का निर्माण किया गया है। नागरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया से नागरिक जीवन भी अत्यधिक सीमा तक प्रभावित हुआ है और इस नागरिक जीवन ने ग्रामीण जीवन को भी कम प्रभावित नहीं किया है। यहाँ पर हम प्रमुख रूप से ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वों पर ही विचार करेंगे।

(क) सामाजिक जीवन (Social Life)

ग्रामीण सामाजिक जीवन को नागरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने निम्न क्षेत्रों में विशेष रूप से प्रभावित किया है:—

(१) सामुदायिक भावना का ह्रास (Diminishing of Community Sentiments)

ग्रामों में आत्मनिर्भरता पाई जाती थी। प्राचीन ग्राम प्रायः भौगोलिक रूप से पृथक थे। परिणामतः उनका समस्त व्यवहार अपने ग्राम समुदाय तक ही केन्द्रित रहता था। अतः उनमें इस कारण से अत्यधिक सीमा तक 'हम' की भावना तथा सामुदायिक भावना उपलब्ध होती थी। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप आज व्यक्ति अपने परिवारों से अधिक मित्रों से सम्बन्धित है। स्वार्थों, हितों की संख्या बढ़ने से उसके सम्बन्ध विभिन्न समूहों से बढ़ गये हैं। परिणामतः आज सामुदायिक भावना या 'हम' की भावना में अत्यधिक कमी आ गई है। व्यक्ति के व्यवहार का क्षेत्र केवल अपने ही ग्राम तक सीमित नहीं रह गया है वरन् अन्य ग्रामों एवं नगरों तक विस्तृत हो गया है। अब वह केवल अपने ग्राम समुदाय से ही सम्बन्धित नहीं है वरन् प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय समुदाय से भी अत्यधिक सम्बन्धित हो गया है।

(२) सामाजिक नियन्त्रण का अभाव (Lack of Social Control)

ग्रामीण जीवन में समाज का प्रभाव अभूतपूर्व था किन्तु नागरीकरण की प्रक्रिया से व्यक्तिवादी विचारधाराओं का प्रभाव हुआ। व्यक्ति अपने समाज से न बँध कर नगरों से बँध गया। आज ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम पंचायत आदि का

नियन्त्रण अत्यधिक शिथिल हो गया है। वह परिवार से बाहर काम करने जाता है वहाँ उस पर परिवार का कोई नियन्त्रण नहीं रह पाता। ग्राम समुदाय व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करने में असमर्थ हो गया है। व्यक्ति समुदाय से बाहर जाकर नगरों में रहने लग गया है परिणामतः समुदाय का उस पर नियन्त्रण नहीं रह पाता।

(३) व्यक्तिवादी और समाजवादी विचारधारायें

(Individualistic and Socialistic Idealogies)

औद्योगीकरण और उस से उत्पन्न समस्याओं ने नवीन विचारधाराओं को जन्म दिया। उद्योग धन्धों की उन्नति ने समाज में पहले व्यक्तिवाद (Individualism) और बाद में समाजवाद (Socialism) की विचारधाराओं को जन्म दिया। इन विचारधाराओं से समस्त संसार बड़े व्यापक रूप से प्रभावित हुआ है। अनेक देशों ने समाजवाद और कुछ उग्र देशों ने साम्यवाद को अपने समाज का लक्ष्य बनाया। व्यक्तिवाद के अनुसार व्यक्ति को आर्थिक क्षेत्र में कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये, सरकार और राज्य को उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाने चाहिये। इससे व्यक्ति में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होने से वे एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में अपने चरित्र का और उत्तम गुणों का विकास करेंगे, धन और प्रसिद्धि पाने की लालसा से नये आविष्कार करेंगे, इनसे उत्पति बढ़ेगी और समाज को लाभ पहुँचेगा। इस सिद्धान्त को मानने वाले विद्वान व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और सबको समान अवसर प्रदान किये जाने की, कानून के सामने सबकी समानता की, धार्मिक सहिष्णुता तथा मताधिकार की वृद्धि की और लोकतंत्र तथा अहस्तक्षेप (Laissez Faire) की नीति के प्रबल समर्थक थे। इंगलैंड में Malthus, Ricardo, John Stuart Mill, John Bright और Cobden ने इस मत का पूर्ण समर्थन किया।

व्यक्तिवाद की विचारधारा से विपरीत समाजवाद की विचारधारा है। कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३) ने वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा का सन् १८४८ ई० के Communist Manifesto में और अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ Das Capital में प्रतिपादन किया है। इनके अनुसार श्रमिकों का जब तक कल्याण नहीं हो सकता तब तक कि उत्पादन के सभी साधनों, कारखानों, खानों और भूमि पर राज्य का स्वामित्व न हो। वैयक्तिक सम्पत्ति समस्त शोषण का मूल है और इसे रखने वाले पूँजीपति वर्ग का उच्छेद होना चाहिये। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर सन् १९१७ ई० की रूसी क्रान्ति हुई थी और इस समय रूस, चीन तथा पूर्वी यूरोप के अनेक देशों में इस विचारधारा का साम्राज्य है। यह सब वास्तव में औद्योगीकरण और उसके द्वारा उत्पन्न समस्याओं के कारण हुआ है।

(४) यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों में वृद्धि
(Increase in Means of Communication & Transportation)

बिना यातायात एवं संदेशवाहन के, बड़े पैमाने पर व्यापार का व्यवसाय नहीं किया जा सकता। एक स्थान पर माल लाने और ले जाने में सुविधा का होना आवश्यक है। औद्योगीकरण के कारण यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इसका सामाजिक प्रभाव यह हुआ कि भिन्न भिन्न संस्कृति के लोग एक दूसरे के नजदीक आने लगे तथा उत्पादन के वितरण के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का निर्माण हुआ। नये नये स्थानों पर बस्तियाँ तथा नगर बने।

(५) आनन्दमय, सुविधाजनक जीवन
(Luxurious and Comfortable Life)

नगरों में मनुष्य को कम मेहनत और आरामदायक जीवन के साधन प्राप्त होते हैं। इसके प्रतिफल से अल्प श्रम से अधिक लाभ प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ जीवन की सुविधायें आसानी से प्राप्त हो जाती हैं। इन्हीं सब बातों से आकर्षित होकर ग्रामीण भी अपने जीवन को आरामदायक व आनन्दमय बनाने के लिये अपनी खेती-बाड़ी के काम को छोड़कर नगरों की ओर बढ़ता है और वहाँ जाकर वह अपने पैसों को फिजूल की चीजों पर खर्च करता है और धीरे धीरे वह फिजूलखर्ची या बुरी आदतों का इस कदर आदी हो जाता है कि उसको अपना जीवन संकटमय प्रतीत होता है। इस प्रकार वह अपने आनन्दमय जीवन को और भी आनन्दमय बनाने के लोभ में अपने ग्रामीण जीवन से भी हाथ धो बैठता है और दिन ब दिन नीचे की ओर ही गिरता चला जाता है।

(६) जाति-प्रथा का विघटन
(Disorganisation of Caste System)

औद्योगीकरण से पूर्व भारत में सर्वत्र जाति प्रथा का दृढ़ साम्राज्य था। समाज में व्यक्ति का स्तर जन्म के आधार पर निश्चित् होता था। प्रत्येक व्यक्ति अपना वंशपरम्परागत कार्य अथवा उद्योग ही करता था। ऐसी स्थिति में विभिन्न प्रकार के शिल्प तथा अन्य कार्य करने वालों की पृथक जातियाँ जैसे बढ़ई, लुहार, चमार, धोबी, नाई भंगी आदि थीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अपने को अन्य जातियों से भिन्न व उच्च समझते थीं। खान-पान, विवाह सम्पर्क, मिलना-जुलना, उठना-बैठना अपनी ही जातियों में होता था। अस्पृश्यों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था और छुआ-छूत के नियमों का कठोरता से पालन होता था। औद्योगीकरण से पूर्व जाति प्रथा का भारत में लगभग यही चित्र था।

औद्योगीकरण ने स्थिति, सामाजिक-व्यवस्था, विशेषतः जाति-व्यवस्था पर कुठाराघात किया है। वाडिया और मरचेन्ट (Wadia & Merchant) के अनुसार, जातिप्रथा एक अपरिवर्तनशील समाज के अनुकूल थी। इसने आविष्कार करने वाली प्रतिभा को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। अतः औद्योगिक क्रान्ति के स्पर्श से इस प्रथा का अन्त अवश्यम्भावी था क्योंकि मशीनें इस बात की परवाह नहीं करतीं कि कोई व्यक्ति ब्राह्मण है या शूद्र। कारखानों में विभिन्न जातियों के व्यक्ति कार्य करते हैं। नगरों का जीवन धीरे धीरे और निश्चित् रूप से जाति के कठोर बन्धनों को ढीला करता है, कहीं कहीं कुछ लचीले बन्धन नष्ट होते भी देखे गये हैं। ट्रामें, ट्रेन, और थियेटर जाति का विचार किये बिना, उन सब व्यक्तियों की सेवा करते हैं, जो इन के लिये पैसा खर्च कर सकें। इसीलिये नगरों में, कस्बों में (रेलगाड़ियों, मोटरों और सड़कों पर) उच्च कुलोत्पन्न ब्राह्मणों का कन्धा नीच जातियों में पैदा हुए शूद्रों के कन्धों से टकराता है और इसमें कोई एतराज करता अथवा नाक-भौं सिकोड़ता दृष्टिगत नहीं होता। नगरों, विशेषतः बड़े नगरों का जीवन अत्यन्त व्यस्त होता है और प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में इतना व्यस्त होता है कि उसे जाति आदि पूछने का अवकाश ही नहीं होता और न ही किसी के ललाट पर लिखा होता है कि अमुक व्यक्ति अमुक जाति से सम्बन्धित है। अतः दैनिक जीवन के व्यवहार में छुआछूत असम्भव हो जाती है। मंडियों, कारखानों और चाय की दुकानों में सभी जातियों के व्यक्ति आपस में मिलते-जुलते, कार्य करते, आपस में टकराते, एक दूसरे को छूते व एक दूसरे के कप रकाबियों में चाय पीते नहीं हिचकचाते हैं। ये प्रवृत्तियाँ समाज में नवीन विचारधाराओं को जन्म देती हैं और सामाजिक जीवन में नवीन परिवर्तन लाती हैं।

आर्थिक आवश्यकता अथवा महत्वाकांक्षा से प्रभावित होकर उच्च जातियां ऐसे कार्य करने लगी हैं जैसे चपरासी का कार्य, कारखाने में श्रमिक का कार्य आदि जो आज से ५० वर्ष पूर्व घृणित समझे जाते थे। शिक्षा संस्थाओं में, छात्रावासों में विभिन्न जातियों के लड़के लड़कियों के एकत्र रहने से उनके जातीय बन्धन शिथिल हो रहे हैं। पिछले १०० वर्षों में पढ़ने वाले नये सामाजिक व सांस्कृतिक प्रभावों ने शिक्षित वर्ग में पुरानी सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह एवं क्रान्ति उत्पन्न की है।

(७) समाजिक गतिशीलता (Social Mobility)

ग्रामवासियों को नागरिक जीवन या नगरों का जीवन इतना आरामदायक व आनन्दमय प्रतीत होता है कि वे अपने ग्रामीण जीवन को छोड़ कर नगरों की चमक-दमक की ओर अग्रसर होने के लिये बहुत ही प्रयत्नशील रहते हैं। लेकिन नगरों की चमक के सामने उसका अस्तित्व इतना छोटा मालूम होता है कि वह धीरे धीरे अवनति की खाईयों में गिरने लगते हैं। ग्रामीण जीवन में औद्योगीकरण एवं

नागरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप अत्यधिक गतिशीलता आ गई है। व्यक्ति ग्रामों को छोड़कर नगरों में रहने लगा है। व्यवसाय परिवर्तन भी उसके लिये सरल हो गया है। ग्रामीण व्यक्ति कृषि छोड़ कर उद्योगों की ओर भी प्रेरित हुआ है। आवागमन के साधनों ने उसकी गतिशीलता को और भी अधिक प्रेरणा दी है। ग्रामीण व्यक्ति अपने क्रय विक्रय के लिये नगरों की ओर उन्मुख होता है।

(८) प्रकृति से दूर (Far from Nature)

ग्रामीण जीवन के व्यक्ति आकर्षित होकर नगरों की ओर जाते हैं वहाँ पर वे अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं। उनका जीवन प्रकृति से दूर हो जाता है। नगरों में ऐसे विशाल भवन और ऐसे विशाल कारखाने हैं जहाँ दिन में भी सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता। परिणामतः व्यक्ति अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने लग जाता है। ग्रामों के जो व्यक्ति नगरों में जाकर कार्य करते हैं उनका जीवन ही बड़ा अप्राकृतिक हो जाता है। इस जीवन से आकर्षित होकर ग्रामीण व्यक्ति भी ग्रामों में ही इस कृत्रिम जीवन का प्रयोग करते हैं।

(९) चिकित्सा सुविधायें (Medical Facilities)

औद्योगीकरण एवं नागरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप चिकित्सा की सुविधायें बढ़ गई हैं। आज हमें प्रत्येक ग्राम में डाक्टर व औषधालय या डिस्पेन्सरी उपलब्ध हो सकती है। इस प्रकार औद्योगीकरण ने सर्वसाधारण के लिये चिकित्सा की सुविधाओं का विस्तार कर दिया है और इससे ग्रामीण जनता को भी कम लाभ नहीं पहुँचा है।

(१०) अपराधों की वृद्धि (Growth of Crimes)

ग्राम की अपेक्षा नगरों में, वहाँ की परिस्थितियों के अनुकूल कुछ वातावरण की ऐसी विशेषताएं उत्पन्न हो जाती हैं कि व्यक्ति को सरलता से ही अपराध की ओर प्रवृत्त होने के अवसर प्राप्त होते हैं। यहाँ पर रहने वाले श्रमिक स्थान की कमी और मंहगेपन के कारण अपने परिवार देहातों में ही छोड़ आते हैं। यहाँ वे सर्वथा अपरिचित और नये वातावरण में होते हैं और गाँव के उनके आचार पर नियन्त्रण रखने वाले सामाजिक वातावरण का सर्वथा अभाव होता है। ऐसी परिस्थितियों में श्रमिकों का दुर्व्यसनों में पड़ जाना अत्यन्त सरल होता है। पारिवारिक सहानुभूति व इसके सदस्यों के सरल व हास्यपूर्ण वातावरण के अभाव और उपयुक्त मनोरंजन के साधन प्राप्त न होने के कारण व्यक्ति कुपथगामी हो जाता है। बम्बई, कानपुर, कलकत्ता आदि बड़े नगरों में यह परिस्थिति वैश्यावृत्ति को बढ़ाने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त श्रमिक मदिरा और जुए के व्यसनों में भी पड़ते हैं। दिन भर शोरगुल के बीच काम करने से व्यक्ति की धमनियाँ पूर्णतः शिथिल

हो जाती हैं। वह थक कर अपने दिन की सारी थकावट और चिन्ता को दूर करने के लिए मदिरा की शरण लेता है। वह अपनी निर्धनता दूर करने के लिए जुए के चक्कर में फँसता है। इस प्रकार इन दुर्व्यसनों में उसका स्वास्थ्य बर्बाद होता है और शनैः शनैः विभिन्न प्रकार के अपराधों की वृद्धि होती है।

नगरों में अपराधों की अधिक संख्या होने और उन्हें छुपाये जा सकने के लिये यहाँ की कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं। नगर में व्यक्ति पर व्यक्तिगत पारिवारिक प्रभाव और नियन्त्रण की कमी से नाना भाँति के प्रलोभन, अपराधों को छुपाये रखने की अधिक सुविधा, पहचाने और पकड़े जाने पर अपने लोगों के सामने अपमानित होने के अभाव से भारतीय नगरों में गाँव की अपेक्षा बहुत अधिक अपराध होने से आजकल अपराधों की समस्या एक भीषण रूप धारण कर रही है।

(ख) पारिवारिक जीवन (Family Life)

औद्योगीकरण एवं नागरीकरण ने पारिवारिक जीवन को भी अत्यधिक सीमा तक प्रभावित किया है। परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। इस आधारभूत इकाई पर इन प्रक्रियाओं ने प्रमुखतः निम्न प्रभाव डाले हैं :—

(१) संयुक्त परिवारों का विघटन (Disorganisation of Joint Families)

गाँवों में पुराने उद्योग धन्धों के विनाश और जनसंख्या के बढ़ने से बेरोजगारी बढ़ रही है। दूसरी ओर नगरों में बड़े पैमाने पर उद्योग खोले जा रहे हैं, अतः ग्रामीण रोजगार पाने के लिये गाँव के संयुक्त परिवार से पृथक होकर औद्योगिक नगरों में आते हैं। नगरों में स्थानाभाव के कारण संयुक्त परिवार के समस्त सदस्यों को लाना सम्भव नहीं होता। अतः नगरों में प्रायः वैयक्तिक परिवार (Individual Families) ही होती हैं। अपने व्यवसायों की भिन्नता और नौकरी के कारण संयुक्त परिवार के कमाऊ सदस्यों को देश के बिभिन्न भागों में जाना पड़ता है जो संयुक्त परिवार के विघटन में सहायक होते हैं। वर्तमान समय में कन्या का विवाह बड़ी आयु में होने लगा है। इस समय तक उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित हो जाता है। वे अब संयुक्त परिवार के वातावरण में रहने में असमर्थ होते हैं। अतः वे संयुक्त परिवार से पृथक रहने लगते हैं।

संयुक्त परिवार के विघटन से जहाँ पति-पत्नी को मनोवांछित वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है वहाँ उन्हें कई क्षेत्रों में अनुभवहीनता के कारण हानि भी उठानी पड़ी है। संयुक्त परिवार का विघटन होने से नव दम्पत्ति का विकास वृद्ध सास-श्वसुर के संरक्षण में नहीं होता। उन्हें वृद्धों के अनुभवों का लाभ नहीं मिलता।

पुरानी और नई पीढ़ी के सम्बन्ध क्षीण होने लगते हैं। इसका एक दुष्परिणाम समाज के प्राचीन आदर्शों और परम्पराओं में ह्रास होता है। पी० डी० कुलकर्णी के शब्दों में, "संयुक्त परिवार में बच्चों को परिवार से एक सांस्कृतिक विरासत मिलती थी। इससे उसमें एक चेतना का उदय होता था जो प्रकाश स्तम्भ की भांति बच्चे का पथ प्रदर्शन करती थी।"

संयुक्त परिवार के विघटन का एक अन्य परिणाम बुजुर्गों तथा वृद्ध पुरुषों के सम्मान में ह्रास होना है। पहले उन्हें अनुभव और ज्ञान का भण्डार समझा जाता था और पुराने सीधे सादे ग्रामीण किसानी अर्थतन्त्र में प्राचीन रीति-रिवाजों के आधार पर सामाजिक समस्याओं का हल करने में और समाज का नेतृत्व करने में पूर्ण रूप से समर्थ थे अतः श्रद्धा के भाजन थे। परन्तु अब औद्योगिक जीवन की जटिल समस्याओं में वे युवकों का नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन नहीं कर पाते। उनका अनुभव अब पहले की तरह लाभदायक नहीं रहा, अतः परिवार में उनका सम्मान घटने लगा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि औद्योगीकरण के प्रभाव संयुक्त परिवार प्रणाली पर व्यापक रूप में पड़े है। औद्योगीकरण द्वारा नगरों में बड़े कारखाने स्थापित होने तथा आजीविका के साधन उपलब्ध होने से लोग गाँवों में बसे अपने संयुक्त परिवारों को छोड़कर नगरों की ओर आने लगे हैं इससे संयुक्त परिवार टूटने लगा है। संयुक्त परिवार प्रणाली ऐसे जड़ समाज के लिये उपयुक्त है जिसमें परिवार के सदस्य एक ही स्थान पर रह सकते हों तथा पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही पेशा या धन्धा करते हों। पहले जनसंख्या कम होने से संयुक्त परिवार का निर्वाह सरलता से हो जाता था। अब जनसंख्या के बढ़ने, कारखानों द्वारा तैयार सस्ते माल द्वारा ग्रामीण उद्योग धन्धे चौपट होने, जमीन पर भार बढ़ने से संयुक्त परिवार आर्थिक दृष्टि से बोझा हो गये हैं। लोग आजीविका की खोज में नगरों में आने लगे हैं और संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन प्रारम्भ हो गया है।

(२) पारिवारिक नियन्त्रण का अभाव
(Lack of Family Control)

ग्रामीण क्षेत्रों में पारिवारिकता का अत्यधिक प्रभाव था किन्तु औद्योगीकरण ने संयुक्त परिवारों को विघटित कर दिया। वैयक्तिक परिवारों की बृद्धि हुई। परिवार में बड़े-बूढ़ों का अभाव हो गया। नवयुवकों को पारिवारिक नियन्त्रण से मुक्ति मिल गई। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्ति व्यवसाय आदि के आधार पर नगरों की ओर चला गया। अतः परिवार से पृथक हो गया और साथ ही पारिवारिक नियन्त्रण से मुक्त भी हो गया।

(३) विवाह संस्था में परिवर्तन
(Change in Marriage Institution)

ग्रामों में कभी प्रेम-विवाह या अन्तर्जातीय विवाह का होना तो बहुत दूर इनकी चर्चा से भी वे लोग घबराते थे और अपनी सन्तानों का विवाह छोटी उम्र में करके अपने आप को इन चिन्ताओं से मुक्त कर लिया करते थे। लेकिन जैसे जैसे नगरों के आनन्दमय जीवन की ज्योति उनके मस्तिष्क पर पड़ने लगी त्यों त्यों अपने विचारों को परिवर्तित करने के लिये बाध्य हो गये। उन जातियों में जहाँ पर प्रेम विवाह का कड़ा विरोध किया जाता था आज वहां पर भी इन बिवाहों का प्रचलन दिन ब दिन बढ़ता ही जा रहा है और ग्रामीण इसको खुशी खुशी अपनाते भी हैं।

(४) स्त्रियों की स्थिति (Status of Women)

ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों की स्थिति में भी अत्यधिक परिवर्तन हो गया है। स्त्रियों को भारतीय संविधान से समानता, विधवा विवाह, विवाह विच्छेद आदि के अधिकार प्राप्त हो गये हैं। स्त्रियों में भी अत्यधिक सीमा तक जागरण हुआ है। स्त्री-शिक्षा भी बढ़ चली है। ग्रामों में सिलाई आदि अनेक गृह कार्यों में स्त्रियाँ निपुणता प्राप्त करती जा रही हैं। स्त्रियों की वेशभूषा में भी अत्यधिक परिवर्तन आये हैं।

(ग) आर्थिक जीवन (Economic Life)

औद्योगीकरण एवं नागरीकरण की प्रक्रिया ने जिस भाँति से सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन को प्रभावित किया है उसी भाँति से आर्थिक जीवन को भी कम प्रभावित नहीं किया है। ग्रामीण जीवन में मुख्य व्यवसाय कृषि है। इसी कृषि में औद्योगिक-क्रांति आने के कारण तो नगरों का विकास हुआ है। अतः हम कह सकते हैं कि आर्थिक जीवन इन प्रक्रियाओं से अत्यधिक मात्रा में प्रभावित हुआ है। नीचे हम प्रमुख प्रभावों की विवेचना करेंगेः—

(१) कृषि की उन्नत प्रविधि
(Improved Techniques of Agriculture)

ग्रामीण कृषि प्रविधि में अनेक नये यन्त्रों का आविष्कार औद्योगीकरण के परिणाम के रूप में हुए। इन यन्त्रों ने कृषि की दशा में उन्नति की किन्तु भारतवर्ष में परम्परागत विचारधाराओं को मानने वाले कृषकों ने अभी तक भी इन यन्त्रों का समुचित प्रयोग नहीं किया है जबकि रूस, अमेरिका इनकी सहायता से अन्न उत्पादन के क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति कर चुके हैं। भारत में भी पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा

सहकारिता, उत्तम खाद, सिंचाई आदि नवीन सुविधाओं के द्वारा कृषि की दशा को उन्नत करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(२) कुटीर उद्योग (Cottage Industries)

औद्योगिक क्रान्ति ने उत्पादन क्षेत्र पर व्यापक प्रभाव डाला है। जहां पहले ग्राम ग्राम में छोटे छोटे उद्योगों की स्थापना थी वहां उनका कार्य अब बड़े बड़े उद्योगों, कल कारखानों व विशाल उत्पादन क्षेत्रों ने ले लिया है। मशीन से बने माल की विशेषताओं जैसे सस्तापन और काम की सफाई और सुन्दरता, ने मानव समुदाय को विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित किया है। मशीन के माल की प्रतियोगिता में हाथ का बना हुआ माल टिक नहीं सकता। यही कारण है कि ब्रिटिश युग में मैनचेस्टर और लंकाशायर का कपड़ा भारत में आने से यहां का पुराना सूती उद्योग, जुलाओं और ढ़ाके की मलमल का व्यवसाय चौपट हो गया। चमारों का काम जूतों के कारखानों ने ले लिया। इसी प्रकार से विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योगों पर औद्योगिक क्रान्ति ने व्यापक प्रभाव डाला है। गावों में बेरोजगारी और दरिद्रता में वृद्धि हुई है। औद्योगिक क्रान्ति ने अनेकों को दरिद्र व कुछ को धनपति बनाया है। इससे विषम आर्थिक एवं सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न हुई है।

(३) कारखाना पद्धति (Factory System)

विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के मशीनों द्वारा उत्पादन ने कारखाना पद्धति के विकसित होने में सहायता प्रदान की। पहले जुलाहा, बढ़ई, लुहार आदि कारीगर अपने घर ही में स्थानीय उपकरणों से वस्तुओं का निर्माण किया करते थे और उत्पादन की पद्धति कुटीर उद्योगों के रूप में प्रसिद्ध थी। परन्तु अब नवीन आविष्कारों, बड़ी बड़ी मशीनों और क्लों के प्रयोगों ने कारखाना और कारखाना पद्धति को जन्म दिया। जिनमें हजारों मनुष्य एक साथ कार्य कर सकते हैं और इकट्ठा तैयार माल, कम समय में कम दर पर तैयार होता है।

(४) श्रम का विभाजन (Division of Labour)

औद्योगीकरण का एक बहुत बड़ा प्रभाव 'श्रम का विभाजन' हुआ है। औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व किसी एक उद्योग में श्रम विभाजन बहुत कम था। उदाहरणार्थ एक ही तेली तिल साफ करने से लेकर तिलों से तिल निकालने तक का कार्य स्वयं ही करता था, अब मशीनों के बन जाने से अलग अलग कार्य अलग अलग मशीन द्वारा सम्पादित किया जाता है। इसी प्रकार जूता बनाने के कार्य को लिया जा सकता है। पहले एक चमार चमड़ा रंगने से लेकर जूता बनाने तक के सब कार्य स्वयं ही करता था। अब मशीनों द्वारा काम लिए जाने से प्रत्येक कार्य के

लिए अलग अलग मशीनें हैं। इस समय जूता बनाने में ६० विभिन्न कार्य पृथक पृथक मशीनों से होते हैं। कुछ मशीनें चमड़े में केवल छेद बनाने का कार्य करती हैं। अन्य मशीनें इसके लिए विभिन्न टुकड़े काटती हैं। कुछ तले (Soles) जोड़ती है। कुछ बटन लगाती हैं। कुछ चमड़े पर पालिश करती हैं। इस प्रकार जूते के सब हिस्से अलग अलग तैयार होकर बाद में जोड़े जाते हैं। इस प्रकार श्रम विभाजन द्वारा आधुनिक औद्योगीकरण में वस्तुयें तैयार होती हैं।

औद्योगीकरण ने जहां मनुष्य को किसी वस्तु के छोटे से छोटे अंग को शीघ्र से शीघ्र बनाने की सुविधा प्रदान की है वहां उसके कार्य को एकरस कर दिया है। इस प्रकार के श्रम में विशेष प्रशिक्षण से प्राप्त दक्षता की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि एक ही छोटे काम को बार बार दोहराना होता है। इस प्रकार कार्य करने से मनुष्य का कार्य मशीन जैसा नीरस हो गया है। उसे कभी किसी वस्तु को अपने ही हाथ से पूरा करने की प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती। एक वही व्यक्ति या समुदाय विशेष प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है जो किसी वस्तु के अलग अलग भागों को जोड़ने का कार्य करता है। व्यक्ति के कलात्मक कार्यों, नई नई कल्पनाओं के जगाने, नये डिजाइन निकालने की भावनाओं की हत्या हो जाती है और एक ही सा कार्य करते करते वह उक्ता जाता है। कारखाने में कार्य करने वाले श्रमिक का जीवन इसी कारण मशीन की तरह हो जाता है। उसे कोई प्रयोग नहीं करना होता वरन् एक ही वस्तु के किसी विशेष भाग को दिनों, महीनों और कभी कभी वर्षों तक बनाते रहना पड़ता है। Schapiro ने लिखा है कि "वह अपना सारा जीवन एक आलपीन के चौबीसवें हस्से के निर्माण में बिता देता है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि औद्योगीकरण की आधुनिक अर्थ व्यवस्था का प्रभाव मानव के सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन पर पड़ता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार नीरस व्यवसायिक जीवन नीरस पारिवारिक और नीरस सामाजिक जीवन की ओर प्रेरित करता है।

(५) बेकारी (Unemployment)

औद्योगीकरण का आर्थिक प्रभाव बेकारी पर भी पड़ता है। औद्योगीकरण का अर्थ है यन्त्रों से काम लेना, इसमें सन्देह नहीं कि यन्त्रों को मनुष्य चलाता है। लेकिन साथ साथ इसमें भी सन्देह नहीं कि एक यन्त्र १० आदमियों के बराबर काम करता है इस यन्त्र को चलाने के लिये एक आदमी की जरूरत पड़ती है इसलिये यन्त्रों से काम लेने का अर्थ हुआ ६ आदमीयों को बेकार करना। इससे ग्रामों की हालत बिगड़ने लगी। जब देश के आधुनिकीकरण की योजना बनने लगी तो मजदूरों ने इसका कड़ा विरोध किया और उनमें आन्दोलन हुआ। यह सही है कि आधुनिकीकरण से उत्पादन में वृद्धि हुई लेकिन इसके साथ साथ इसकी सीधी चोट

मजदूरों पर पड़ी जिसके परिणाम स्वरूप वे बेकार हो गये। बेकारी को दूर करने के लिये वे किसी भी प्रकार की कोशिश को छोड़ने के लिये तैयार नहीं थे। लेकिन उसी समय गांधी जी ने इस मामले को इतनी सरलता के साथ जनता के सामने रक्खा कि उन्हें इस संघर्ष को छोड़ना पड़ा। ग्रामीण व्यक्ति साल में चार माह बेकार रहते हैं। भूमिहीन कृषक तो और भी अधिक समय तक बेकार रहते हैं। बेकारी के समय ये कृषक नगरों में आजीविका खोजते हैं और फिर ग्राम में काम न मिलने पर नगरों में भाग खड़े होते हैं। अतः यन्त्रों के आविष्कारों ने बेकारी की वृद्धि में अत्यधिक योग दिया है।

(६) प्रतिस्पर्द्धा (Competition)

औद्योगीकरण तथा नागरीकरण से अपराध और व्यभिचार स्वतः ही बढ़ता हैं। ग्रामों की जनता पर भी इसका इतना कुप्रभाव पड़ा है कि वे अब हर एक काम में एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा करने की कोशिश किया करते हैं और यही कारण है कि ग्रामीण अपने आपको व अपनी जिम्मेदारियों को भूल कर गलत मार्ग पर जाने में किसी प्रकार घबराहट महसूस नहीं करते। वह घूंस देना, मिलावट, काले-बाजारी के द्वारा स्वयं को बढ़ाकर खुश किस्मत समझने लगता है। लेकिन इसका प्रभाव कुछ और नजर आता है जिसके परिणाम स्वरूप इनमें संघर्ष भी होता रहता है और इसका असर केवल आर्थिक जीवन पर ही न पड़कर इनके सामाजिक जीवन पर भी पड़ता है। इसी आधार पर प्रत्येक मनुष्य अपने आपको ऊंचा समझने लगा और दूसरे को अपने सामने बहुत ही हीन समझने लगा। जिससे आपस में फूट पड़ने लगी, और वे एक दूसरे से लड़ने को तैयार रहते हैं। इसी तरह व्यापार में भी वह प्रतिस्पर्द्धा को रखने लगा है। अगर एक अपना माल सही दामों में बेचता है तो दूसरा उसी से प्रतिस्पर्द्धा करने के लिये अपना माल उससे कम में बेचने को राजी हो जाता है। इस प्रकार उनकी आर्थिक स्थिति इतनी खोखली हो जाती है कि वह संभाले नहीं संभलती।

(७) समाजवादी विचारधारायें (Socialistic Ideologies)

ग्रामीण आर्थिक जीवन में भी समाजवादी विचारधाराओं का प्रसार हो गया है। जमींदारी उन्मूलन से व्यक्ति को अत्यधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है। व्यवसाय, उद्योग, कृषि उन्नति आदि के द्वारा व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति उच्च कर सकता हैं। अतः अब वह अन्य व्यक्तियों के समक्ष अपने को हीन नहीं समझता। इसमें यह धारणा उत्पन्न हो गई है कि सब व्यक्ति समान हैं। अस्पृश्यता अधिनियम के कारण वह सामाजिक असमानता का प्रयोग नहीं कर सकता। इस भांति पूंजीपति, दरिद्र, श्रमिक, ब्राह्मण, शूद्र आदि व्यक्तियों के बीच की खाई समाप्त हो गई है और वर्गीय आधार पर समानता की भावना सबमें पाई जाने लगी है।

(८) जीवन का उच्च स्तर (Higher Standard of Living)

ग्रामीण व्यक्तियों का जीवन स्तर भी अब पहले की अपेक्षा काफी उन्नत हुआ है। ग्रामीण व्यक्तियों की निवास व्यवस्था में सफाई, स्वच्छता आ गई है। भोजन में पोषण एवं पर्याप्त मात्रा का विकास हुआ है। ग्रामों में विद्युत, रेडियो तथा आवागमन के उन्नत साधनों की उपलब्धि सरल हो गई है। गाँवों में अब व्यक्ति सुख सुविधाओं के साथ रहता है। ग्रामीण व्यक्तियों का जीवन स्तर इस भाँति काफी अधिक उन्नत हुआ है।

(घ) सांस्कृतिक जीवन (Cultural Life)

औद्योगीकरण ने ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन को भी अत्यधिक सीमा तक प्रभावित किया है। नीचे हम प्रमुख साँस्कृतिक प्रभावों की विवेचना करेंगे :—

(१) उच्च शिक्षा का प्रभाव (Effect of Higher Education)

नगरों में उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्राप्त होती है। यह आधुनिक उच्च शिक्षा पश्चिमी विचारों से ओतप्रोत है। इस शिक्षा को प्राप्त करने वाले युवक युवतियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। श्री के० एम० कपाडिया हिन्दू स्त्रियों पर उच्च शिक्षा के प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

"स्त्रियों की उच्च शिक्षा ने हिन्दू विवाह और परिवार के आदर्शों तथा रीति-रिवाजों को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। हिन्दू विवाह के आदर्श, संयुक्त परिवार पद्धति, स्त्रियों का घर की चार दिवारी में रहने और आर्थिक दृष्टि से परावलंबन ने स्त्रियों के व्यक्तित्व के विकास को असम्भव बना दिया था। बचपन से ही स्त्री इन विश्वासों में पलती थी कि उसके कर्तव्य की इतिश्री पुत्री, पत्नी और माता के रूप में अपना दायित्व पूर्ण करने में हैं। उसका लक्ष्य पिता, पति और पुत्रों को प्रसन्न रखना है। घर की चार दिवारी में बन्द रहने के कारण उन्हें बाहर की दुनियाँ का कोई ज्ञान न था। कानून से जो अधिकार उन्हें मिल रहे थे उन्हें जानने का उनके पास कोई साधन न था। यदि वे इन्हें जान भी जाती थी तो परम्परागत नैतिकता तोड़कर इन्हें पाने की कोई इच्छा उनमें न थी। माता, पिता, पति और बच्चों की संकुचित दुनियाँ में रहते हुए उन्हें अपने जीवन में इसके सिवाय कोई महत्वाकाँक्षा न थी कि वे संयुक्त परिवार के विक्षुब्ध वातावरण में किसी प्रकार की शक्ति का जीवन व्यतीत कर सकें। बाहर की दुनियां से बिलकुल पृथक रहने के कारण वे अपना सारा ध्यान क्षुद्र पारिवारिक झगड़ों, ईर्ष्याद्वेष और गाली गलौज़ में लगाती थी और परिणामतः स्त्रियों का अनुदार, संकीर्ण और क्षुद्र समझा जाने लगा।"

स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आने की दशा का श्री कपाडिया ने सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है। आज के नारीसमाज भारतीय नारीसमाज की पूर्व स्थिति (और किन्हीं किन्हीं स्थानों में आज भी यही स्थिति है) का श्री कपाडिया ने वास्तविक दर्शन कराया है। उच्च शिक्षा ने स्त्रियों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। इसके प्रभाव से भारत में स्त्रियों की विवाह की आयु ऊंची उठ रही है। उनमें अविवाहित रहने की प्रवृत्ति प्रबल हो रही है। वे आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने लगी हैं। विवाह में अपना जीवन साथी चुनने की स्वतन्त्रता चाहने लगी हैं। प्रणय विवाह (Love Marriages) की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है और विवाहित होने पर आधुनिक स्त्री-पुरुष अपना जीवन स्तर उन्नत रखने के लिये कम सन्तानें चाहने लगे हैं गर्भ निरोध के साधनों का प्रयोग बढ़ा है और परिवार छोटे होने लगे हैं। शिक्षा का एक सामाजिक प्रभाव यह भी हुआ है कि समाज में नारी का स्थान पहले से ऊंचा हो गया है, दूसरी ओर कानूनों ने भी उसे पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये हैं।

(२) धर्म के मूल्यों में कमी
(Diminishing Values of Religion)

नगरों में व्यक्ति वैज्ञानिक आविष्कारों तथा प्रगतिशील विचारधाराओं के निकट सम्पर्क में रहते हैं। नई नई वस्तुओं को देखने से उनमें नवीनता के प्रति आकर्षण बहुत बढ़ जाता है। वे पुरानी वस्तुओं को अवांछित रूढ़िया समझने लगते हैं। उन व्यक्तियों में अन्धविश्वास और श्रद्धा कम होने लगती है और धर्म के प्रति आस्था घट जाती है। नगर का व्यक्ति अधिक तर्कशील होता है और सहज ही धार्मिक आचार-नियमों में विश्वास नहीं करने लगता और न ही शीघ्र तदनुकूल आचरण करने लगता है।

(३) व्यापारिक मनोरंजन (Commercial Recreation)

औद्योगीकरण ने नगरों में मनोरंजन को एक स्वतन्त्र व्यवसाय में प्रस्फुटित होने में सहायता प्रदान की है। आज व्यापारिक मनोरंजन से नगरों में एक बड़ा व्यापक रूप धारण कर लिया है। श्रमिक कारखाने में ८ घण्टे काम करने के बाद कोई सस्ता मनोरंजन चाहते हैं, जो उनके सब दुःखों और कष्टों को भुला सके। सिनेमा इसी प्रकार का मनोरंजन है। व्यक्तियों में लोकप्रियता पाने और कमाई करने के लिये भारतीय चित्र निर्माता इन्हें सैंसरशिप की मर्यादाओं के भीतर रहते हुए अधिक से अधिक अश्लील, कामोत्तेजक, तथा रोमांस उत्पन्न करने के लिए मारकाट और हत्याओं वाला बनाते हैं। इनका दर्शकों विशेषतः बच्चों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। पश्चिमी देशों में खेलकूद का स्वस्थ मनोरंजन औद्योगिक

क्रान्ति का परिणाम है। हमारे यहाँ अभी इसका पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। जो खेलकूद, तमाशे, त्यौहार, नृत्य, गायन गांवों में सहज ही नि-शुल्क सुलभ हो सकते थे वे नगरों में दुर्लभ हो गये। मनोरंजन प्रदान करना व्यापारिक संस्थाओं ने अपने हाथ में ले लिया है और सस्ते मनोरंजन के लिये मनुष्य ठगे जाने लगे हैं।

(४) वैज्ञानिक विचारधाराओं का विकास
(Development of Scientific Attitude)

औद्योगीकरण एवं नागरीकरण ने वैज्ञानिक विचारधाराओं का विकास किया है और भाग्यवादिता, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वासों आदि को समाप्त किया है। समस्याओं के कारणों और परिणामों की विवेचना तथा सुधार की प्रेरणा भी दी है। आज ग्रामीण व्यक्ति ईश्वर के भरोसे नहीं बैठा रहता। वह उस सीमा तक अन्धविश्वासों का दास नहीं है जिस सीमा तक पहले था।

औद्योगीकरण, नागरीकरण तथा सामाजिक विघटन
(Industrialisation Urbanisation and Social Disorganisation)

गांवों में स्थिर एवं रूढ़िवादी समाज पाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति और कार्य साधारणतः पूर्व निश्चित होते हैं। इनके फलस्वरूप न तो मानसिक संघर्ष और निराशा ही उत्पन्न होती है और न ही सामाजिक संस्थाओं में संघर्ष होता है। इसलिये गाँवों में व्यक्तिगत व सामाजिक विघटन प्रायः उत्पन्न नहीं होता किंतु इन प्रक्रियाओं से प्रभावित होकर आधुनिक ग्रामीण समाज विघटन की ओर जा रहा है।

नगरों में विभिन्न संस्कृतियों का संघर्ष सदैव चलता रहता हैं, इसलिये मनुष्यों के लिये कोई मार्ग निश्चित करना कठिन हो जाता है। तीव्रगति से होने वाले सामाजिक परिवर्तनों के कारण समस्या और भी कठिन हो जाती है। व्यक्तियों के मस्तिष्क में सदैव मानसिक कलह बनी रहती है। व्यक्तिगत पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन नगरों में अधिक पाया जाता है। आर्थिक तूफान आते रहते हैं और दरिद्रता, बेकारी तथा आर्थिक स्थिति में उलट पुलट की भरमार रहती है। तलाकों की संख्या भी नगर में अधिक पाई जाती है। नगर की अपरिचित भीड़-भाड़ मनुष्य को अपराध करने के लिए भी प्रोत्साहित करती रहती है। नगरों में पहले तो थोड़े लोग एकत्रित होते हैं किन्तु विभिन्न प्रकार के आकर्षणों, बेकारी की समस्या व नवागन्तुकों के आगमन से अनेक क्षेत्रों में सामाजिक विघटन की समस्या उठ खड़ी होती है। [illegible]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागरीकरण ने सामाजिक विघटन में सक्रिय भाग लिया है। सामाजिक विघटन विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में दिखाई देता है। आर्थिक क्षेत्र में वर्ग संघर्ष, धनी निर्धन के द्वन्द और बेकारी के रूप में पाया जाता है। नैतिक क्षेत्र में जुआखोरी, व्यभिचार, अपराध और वैश्यावृत्ति के रूप में, प्रशासन में भ्रष्टाचार, दलबन्दी और पदलोलुपता के रूप में विघटन दृष्टिगत होता है। थोमस और उनके साथी के शब्दों में, "जहाँ कहीं व्यक्तियों तथा समूहों पर समाज में स्वीकृत व्यवहार के नियमों का प्रभाव घटने लगता है, वहाँ सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। साराँश में इस युग की परिवर्तित अवस्था में हमें अनेक तत्वों के प्रति निश्चित मत बनाकर विघटन को सुव्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न करना है। विघटन हो रहा है और परिवर्तित आर्थिक सामाजिक युग में यह आवश्यक है, इसे रोका नहीं जा सकता।

सामाजिक विघटन के सुधार के प्रयत्न
(Remedies for Social Disorganisation)

आज ही के युग में सामाजिक एवं आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हुई हों ऐसी बात नहीं है, किन्तु औद्योगीकरण एवं नागरीकरण ने उसके सम्बन्ध और उनकी संख्या में केवल अभिवृद्धि ही की है। औद्योगीकरण ने 'आर्थिक विषमता' और नागरीकरण ने 'जटिल सामाजिक व्यवस्था' को जन्म दिया है। जिन्हें राज्य में विभिन्न विधियों द्वारा नियन्त्रित किया गया है और उद्योगपतियों और श्रमिकों के स्वार्थ में सन्तुलन उत्पन्न करने की चेष्टा की है। जटिल सामाजिक व्यवस्था ने सामाजिक नियन्त्रण को ढीला कर दिया है, संयुक्त परिवार को विघटित किया है व अनेक नैतिक बुराईयों को जन्म दिया है।

समाज सुधार के विषय को स्वतन्त्र भारत में एक नई प्रेरणा मिली है और जिस क्षेत्र में अब तक गैर सरकारी तौर पर कार्य होता था, सरकारी तौर पर भी विशिष्ट कदम उठाये गये हैं। जब राष्ट्र ने लोक कल्याणकारी भावना को अपना आधार बनाया तब उसने सामाजिक क्षेत्र में स्वस्थ वातावरण को उत्पन्न कर उन्नतिशील समाज की स्थापना अपना कर्तव्य समझा। भारत में भी केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना हुई है और इसने 'स्त्रियों के कल्याण', शिशु कल्याण, नौजवानों का कल्याण, परिवार कल्याण, असमर्थों का कल्याण, बाल-अपराध निवारण, सामाजिक क़ानून, सामाजिक सेवा, सामाजिक शिक्षा आदि क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य किया है। किन्तु भारत में गांवों की सामाजिक समस्याओं का निकटता से अध्ययन बहुत कम हुआ है। इसी कारण यहाँ की समस्याओं को भलि-भाँति समझने और उनके लिये उपयुक्त कदम उठाये जाने के लिये बहुत कम

प्रयत्न हुये हैं। यूनेस्कों, कुछ निजी संस्थाओं व इन्सटीटयूट ग्राफ सोशल वर्क (Institutes of Social Work) ने भारत के अलग २ स्थानों पर छुट-पुट कार्य किये हैं किन्तु अभी गम्भीरता पूर्वक खोज पूर्ण कार्य की ग्रामीण समाजशास्त्र में नितान्त आवश्यकता है तभी समस्या का स्वरूप स्पष्ट हो सकता है और उसके निवारण के लिये उचित प्रयत्न किये जा सकते हैं।

ग्रामीण सामुदायिक विघटन को समाप्त करने के लिये हमारी सरकार विशेष रूप से प्रयत्नशील है। इन प्रयत्नों में विशेषकर विभिन्न प्रकार की योजनायें हैं। इन योजनाओं में सामुदायिक विकास योजना, पंचवर्षीय योजना, भूदान, ग्रामदान लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण, पंचायत राज आदि उल्लेखनीय हैं जिनका विस्तृत वर्णन हम ग्रामीण पुर्तनिर्माण के खण्ड में करेंगे। यहाँ पर इतना ही कह देना पर्याप्त है कि इन विभिन्न योजनाओं के द्वारा ही सामुदायिक विघठन को समाप्त कर सामाजिक संगठन स्थापित किया जा सकता है।

अध्याय २५

ग्रामीण सामाजिक समस्यायें

(Rural Social Problems)

पिछले अध्यायों में हमने ग्रामीण सामुदायिक विघठन का वर्णन किया है। इस सामुदायिक विघटन के पूर्व भारतीय ग्राम भी एक स्वस्थ, स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर इकाई के रूप में थे किन्तु विभिन्न प्रक्रियाओं के फलस्वरूप आज वही ग्राम विघटित हो गए हैं। ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याएं व्याप्त हो गई हैं। इन समस्याओं के कारण आज का ग्रामीण जीवन अत्यधिक अव्यवस्थित अवस्था में दृष्टिगोचर होता है। भारतीय ग्राम्य जीवन की जो विशेषताएं हैं उन्हें आज हम विशेषताएं न कहकर यदि ग्रामीण जीवन की समस्याएं कहें तो अधिक उचित होगा।

भारतीय गाँव की वर्तमान दशा

(Present Condition of Indian Village)

ग्रामीण सामाजिक विघटन के अन्तर्गत हम ग्रामीण सामुदाय के विघटन की प्रक्रियायें देख आये हैं कि ग्रामीण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें विश्रृंखलता ही उपलब्ध होती है। ग्रामीण निवास व्यवस्था बड़ी अव्यवस्थित दशा में उपलब्ध है। आर्थिक व्यवस्था अनेक दोषों से व्याप्त है। ग्रामीण व्यक्तियों का स्वास्थ्य अत्यधिक गिरा हुआ है। उन्हें न पर्याप्त भोजन मिलता है और न पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं ही। धार्मिक क्षेत्रों में भी अनेक प्रकार के अन्धविश्वास प्रचलित हैं। इन अन्ध-विश्वासों के कारण ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था अत्यधिक गिरी हुई है। ग्रामीण व्यक्तियों को शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं भी पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है और जो सुविधाएं उपलब्ध है वे उनके जीवन से मेल नहीं खाती। ऋण की समस्या ग्रामों के प्रत्येक परिवार में पाई जाती है। निर्धनता के कारण जीवन स्तर अत्यधिक गिरा हुआ है। उन्हें सुविधा के साधन तो क्या अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन भी पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं हैं।

ग्रामीण जीवन की वर्तमान दशा को देखते हुए भारतीय सरकार का ध्यान इस ओर विशेष रूप से उन्मुख हुआ है कि उनकी वर्तमान समस्याओं का निराकरण कर उन्हें एक नया जीवन प्रदान करें। इसीलिए भारत सरकार विभिन्न विकास योजनाओं, कल्याण कार्यो आदि कार्य-क्रमों का संचालन कर रही है जिससे भारतीय ग्रामों का पुनर्निमाणात्मक रूप सम्मुख आए और भारतीय ग्राम अपने एक स्वस्थ

रूप में विकसित हों। ग्रामीण पुनर्निर्माण सम्बन्धी कार्यों का वर्णन हम अगले विभाग में विस्तृत रूप से करेंगे।

निम्न सामाजिक अवस्था के उत्तरदायी कारक
(Responsible Factors for Low Social Condition)

निम्न ग्रामीण सामाजिक अवस्था के लिए हम अनेक कारकों को उत्तरदायी ठहरा सकते हैं। इस निम्न अवस्था का उत्तरदायित्व किसी एक कारक विशेष पर न होकर अनेक कारकों पर है जिनके कारण ग्रामीण सामाजिक अवस्था इतनी निम्न हो गई है और इसमें अनेक गम्भीर समस्याएं व्याप्त हो गई हैं। इस सामाजिक अव्यवस्था के लिए हम निम्न कारकों को उत्तरदायी ठहराते हैं।

(१) राजनैतिक कारक (Poltical Factors)

राजनैतिक कारक ग्रामीण सामाजिक समस्याओं के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। भारतवर्ष जब तक हिन्दू राजाओं के शासन में रहा तब तक भारतीय ग्राम एक स्वतन्त्र, स्वस्थ एवं आत्मनिर्भर इकाई के रूप में कार्य करते रहे। मुस्लिम काल के अन्तर्गत भारतीय ग्रामों की दशा बराबर गिरती चली गई। अंग्रेजी शासकों ने तो भारतीय ग्रामों की आत्मनिर्भरता को पूर्ण रूप से ही नष्ट कर दिया।

अंग्रेजी शासन की नीति भारतीय ग्रामों से अधिक से अधिक धन प्राप्त करने की थी और परिणामस्वरूप जमींदारी, रैयतवारी और महलवारी प्रथाओं का विकास हुआ। भूमिकर की इन प्रथाओं ने भारतीय कृषकों के रक्त तक को चूस लिया और परिणाम यह हुआ कि भारतीय कृषक हड्डियों के ढांचे मात्र रह गए। ब्रिटिश शासकों की इस प्रशासन सम्बन्धी नीति ने भारतीय ग्रामों की पंचायतों का सर्वनाश कर दिया, उनकी अर्थ व्यवस्था को समूल नष्ट कर दिया क्योंकि ब्रिटिश शासकों का ध्येय ही भारतीय धन को खींचकर इंग्लैंड ले जाना था। इसी नीति के कारण उन्होंने ग्रामीण कल्याण कार्यों के लिए कोई कदम नहीं उठाया। इन प्रशासन सम्बन्धी कारकों ने भारतीय ग्रामों की दशा अत्यधिक रूप में खराब कर दी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी भारतीय सरकार तुरन्त इस ओर कोई ध्यान न दे सकी। प्रारम्भ में तो वह हिन्दुस्तान पाकिस्तान के बँटवारे के प्रश्न में ही उलझ गई। इस बँटवारे से भी भारतीय ग्रामों की दशा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। ग्रामीण क्षेत्रों में हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों में जो सहयोग था उसका स्थान संघर्षों ने ले लिया। अनेक व्यक्ति विस्थापित हो गए आने वाले शरणार्थी इस नए जीवन से तुरन्त व्यवस्थान करने में असमर्थ रहे। परिणाम यह हुआ कि ये व्यक्ति ग्रामों में न जाकर शहरों में ही स्थापित होने के प्रयत्न करने लगे। अन्न समस्या उग्र रूप

से बढ़ गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों के पश्चात् ही भारतीय सरकार अपना ध्यान इस ओर केन्द्रित कर सकी। परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की पंचवर्षीय योजनाएं, सामुदायिक योजनाएं ग्राम पुनर्निर्माण के लिए अग्रसर हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी नई शासन व्यवस्था के परिणामस्वरूप यद्यपि भारतीय ग्रामों के लिए विकास सम्बन्धी प्रयत्न किए गए तथापि प्रारम्भ में भारतीय ग्रामों की दशा और भी निम्न हुई।

(२) आर्थिक कारक (Economic Factors)

भारतीय ग्रामों की दशा को गिराने में आर्थिक कारकों का भी अत्यधिक हाथ रहा है। खेतों का विभाजन (Fragmentation), अनुयुक्त सिंचाई के साधन, पूंजी का अव्यवस्थित रूप, कृषि के प्राचीन साधन, अकुशल श्रम, ऋण समस्या आदि सभी कारक ग्रामीण अवस्था को गिराते ही गए हैं। भूमि को टुकड़ों में बँटे होने के कारण कृषि भली प्रकार से नहीं की जा सकती। वे खेत जिनके उत्पादित अन्न पर समस्त भारतवर्ष निर्भर करता है। स्वयं अपने स्वामियों (कृषकों) का ही पेट भरने में असमर्थ हैं। कृषि क्रान्ति के पश्चात् भी भारतीय कृषकों के पास कृषि के उन्नत साधनों का अभाव रहा। इस अभाव के कारण भारतीय कृषि क्षेत्र में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त अन्न का उत्पादन करने में असफल रहे। परिणामस्वरूप अन्न समस्या का भीषण रूप दृष्टिगोचर हुआ। इस समस्या का समाधान दो पंचवर्षीय योजनाओं के समाप्त हो जाने पर भी भारत सरकार अभी तक करने में असमर्थ रही है। यह असमर्थता भारत सरकार की नहीं वरन् भारतीय खेतों की है। जिनकी अवस्था अभी तक भी सुधर नहीं पाई है। आर्थिक कारकों में कुटीर उद्योगों की नष्ट भ्रष्ट अवस्था भी कम महत्व पूर्ण नहीं है। जिसे नष्ट करने में अंग्रेजों की शासन नीति भी एक उत्तरदायी स्थान रखती है। ग्रामों में उत्पादित माल के लिए समुचित बाजार की व्यवस्था भी नहीं है जिससे भी भारतीय ग्रामों की दशा निम्न हुई है। वर्तमान काल में जजमानी प्रथा के टूटने से ग्रामीण श्रम का जो रूप विकसित हुआ हैं वह भी भारतीय ग्रामों के लिए अस्वास्थ्यकर है। इन विभिन्न आर्थिक कारकों के परिणामस्वरूप भारतीय ग्रामों की दशा अत्यधिक गिर गई है।

(३) जनसंख्यात्मक कारक (Demographic Factors)

भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या और कृषि क्षेत्र की सीमितता के कारण अनेक समस्याओं का उदय हुआ है। जनसंख्या के बढ़ने से खेतों का टुकड़ों में विभाजन होना प्रारम्भ हो गया जिसके कारण व्यक्तियों के पास स्वयं की भोजन समस्या को हल करने के लिए ही भूमि नहीं अपर्याप्त रही। भारतीय कृषकों का गिरता हुआ स्वास्थ्य भी इस भिन्न अवस्था के लिए उत्तरदायी है। विभिन्न प्रकार के रोग, जो कृषकों

को निर्बल बनाते जा रहे हैं, अपर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं के कारण भी ग्रामीण जीवन में अनेक समस्यायें व्याप्त हैं। निम्न स्वास्थ्य से कुशलता समाप्त होती है। ऐसी अवस्था में यदि हम यह आशा करें कि भारतीय कृषक का जीवन उच्च हो तो यह हमारी मूर्खता ही होगी। अनेक जनसंख्यात्मक कारकों ने भी ग्रामीण अवस्था को निम्न स्तर पर लाने के लिए सहयोग दिया है।

(४) सामाजिक कारक (Social Factors)

भारतीय ग्रामों की निम्न दशा के लिए अनेक सामाजिक कारक भी उत्तरदायी हैं। जातिवाद, पारिवारिकता, रूढ़िवादिता, बाल विवाह, संयुक्त परिवार, अशिक्षा आदि सभी सामाजिक कारक ग्रामीण दशा को निम्न करने में महत्वपूर्ण रहे हैं। पारिवारिकता के कारण ग्रामीण लोगों में कूप मंडूकता की भावना अत्यधिक फैल गई है। बाल विवाहों के कारण बाल विधवाओं की संख्या सामाजिक समस्या बन गई है। जातिवाद विभिन्न साम्प्रदायिक एवं सामाजिक संघर्षों का कारण बना है। रूढ़िवादिता ने ग्रामीण जीवन को स्थिर रखा है और नवीन परिवर्तनों एवं आविष्कारों की ओर अग्रसर होने में बाधा पहुंचाई है। नागरीकरण के प्रभाव ने ग्रामीण कृषकों की शारीरिक श्रम के प्रति अरूचि उत्पन्न कर दी है। रहन-सहन की निम्न अवस्था, मनोरंजन का अभाव, जनसंख्या में वृद्धि का एक कारण रहा है। ग्रामीण जीवन की सामाजिक परम्पराओं ने गतिशीलता के अभाव में ग्रामीण लोगों को ऋणग्रस्त करने में सहायता दी है। इन परम्पराओं के आधार पर जातिभोज, मृतक-भोज, एवं विवाह आदि के अवसरों पर अत्यधिक व्यय के अवसर उपस्थित होते हैं जिनसे ऋणग्रस्तता को बढ़ावा मिला है। इस भांति इन अनेक सामाजिक कारकों ने ग्रामीण अवस्था को अत्यधिक निम्न स्तर पर ला दिया है। ग्राम पंचायत के टूटने से न्याय व्यवस्था अत्यधिक महंगी हो गई है। वकीलों के चक्कर में पड़कर कृषकों का समय और धन दोनों ही बरबाद हुए हैं। वकीलों ने किसानों को खूब लूटा है और उन्हें मुकदमों के जालों में इस तरह से उलझाया है कि वे वर्षों तक उससे सुलझ न सके। पंचायतों का पुनर्गठन यद्यपि इस अवस्था को सुधारने में प्रयत्नशील है किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि यह अवस्थायें पूर्ण रूप से सुधर गई हैं। इस भांति हम कह सकते हैं कि अनेक सामाजिक कारकों से भारतीय ग्राम जीवन को निम्न अवस्था पर ला दिया है।

(५) धार्मिक कारक (Rligious Factors)

भारतीय ग्रामीण अवस्था को निम्न स्तर पर लाने के लिये धार्मिक कारक भी उत्तरदायी हैं। प्रकृति की गोद में रहने के कारण और कृषि में वर्षा पर निर्भर रहने के कारण भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में धार्मिक अन्ध विश्वास, भाग्यवादिता,

आश्रितता आदि भावनाओं का विकास हुआ इसके कारण ग्रामीण व्यक्ति कट्टर अन्धविश्वासी हो गए। उन्होने आवश्यकता अनुसार अनेक देवी देवताओं का निर्माण कर लिया। इन धार्मिक अन्धविश्वासों के आधार पर उन्होंने अनेक रोगों की शान्ति के लिए देवताओं की शरण ली। चेचक जैसी भयंकर बीमारी की चिकित्सा के लिए शीतला देवी की आराधना करना एक मूर्खता नही तो क्या हैं ? सन्तान प्राप्ति के लिए अपनी ही सन्तान की बलि दे देना, दूसरों की सन्तानों की हत्या कर देना, मजारों व मन्दिरों के पुजारियों व पीरों को पूजना मूर्खता नहीं तो क्या है ? वर्षा के लिए यज्ञ आदि का आयोजन करना भी इन्हीं धार्मिक अन्धविश्वासों के अन्तर्गत आते हैं। भाग्यवादिता की भावना के कारण वे अपनी किसी भी समस्या का हल करने के लिए प्रयत्न छोड़कर भाग्य के सहारे बैठ जाते हैं। अपनी बुरी अवस्था के लिए वे ईश्वर को उत्तरदायी ठहराते हैं और उसके सामने अपने प्रयत्न हीन समझाकर उसे प्रसन्न करने के प्रयत्नों में संलग्न रहते हैं। इन सब कारणों से भारतीय ग्रामों की अवस्था अत्यन्त निम्न स्तर पर आ गई है।

(६) शिक्षा सम्बन्धी कारक (Educational Factors)

भारतीय ग्रामों की निम्न अवस्था के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक शिक्षा सम्बन्धी कारक है। विदेशी शासन काल में ग्रामीण शिक्षण संस्थाओं की उपलब्धि हमें प्राप्त नहीं होती। प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली एवं शिक्षण संस्थाएं मुस्लिम काल एवं ब्रिटिश काल में समाप्त हो चुकी थी। शिक्षा की आश्रम व्यवस्था समाप्त हो चुकी थी। कृषकों के लिए उनका परिवार, उनका सामान एवं उनके खेत ही शिक्षा के साधन के रूप में रह गए थे। परिणाम स्वरूप भाग्यवाविता अन्धविश्वास, परम्परात्मकता, पारिवारिकता आदि तत्वों ने अपनी जड़ जमा दी और इनके आधार पर जो ग्रामीण अवस्था का नग्न रूप हमारे सामने आया उसका हम वर्णन कर ही चुके हैं। ब्रिटिश शासन काल में भी शिक्षा व्यवस्था केवल धनिक व्यक्तियों के लिए उपलब्ध थी। ब्रिटिश कालीन शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य भी केवल ब्रिटिश शासन की मशीन के पुर्जो का निर्माण करना ही था। जीवन की व्यवहारिक शिक्षा के अभाव ने ग्रामीण क्षेत्रों में घोर अशिक्षा का साम्राज्य प्रसारित किया। शिक्षा के अभाव में ग्रामीण व्यक्ति उन्नति की ओर अग्रसर न हो सके। स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ वर्षो के पश्चात् भी शिक्षा प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं हुए। वर्तमान काल में ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा प्रचार के लिए बेसिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, एवं समाज शिक्षा के प्रयोग किये जा रहे हैं। जहाँ तक इन प्रयोगों के सिद्धान्त का प्रश्न है हम स्वीकार करते हैं कि इनका सैद्धान्तिक पहलू स्वर्णिम भारत के निर्माण के लिए उचित है। किन्तु इनकी कमियां इनके प्रयोग के प्रभाव के पश्चात् ही दृष्टिगोचर होंगी। इस भाँति शिक्षा के अभाव ने भारतीय-ग्रामीण व्यक्तियों को अपना परम्परा-

त्मक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया और उन्हें परिवर्तनशीलता के प्रभाव से वंचित रक्खा।

इस भाँति हम देखते हैं कि भारतीय ग्रामों की अवस्था निम्न स्तर तक लाने में अनेक कारकों का महत्वपूर्ण योग रहा है। फलस्वरूप अनेक ग्रामीण समस्याओं का का उद्रेक हो गया है। जब तक इन समस्याओं का समुचित अध्ययन कर ग्रामीण पुनर्निर्माण की योजनाएं निर्मित नहीं की जाएंगी तब तक सम्पूर्ण रूप से न ग्रामीण समस्याओं का ही समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है और न पुनर्निर्माण का कार्य ही। अतः अब हम प्रमुख ग्रामीण समस्याओं का वर्णन करेंगे।

प्रमुख ग्रामीण समस्याएं
(Major Rural Problems)

भारतीय ग्रामों की सामाजिक दशा एवं उसके उत्तरदायी कारकों के अध्ययन के पश्चात् हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम प्रमुख ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन प्रस्तुत करें अन्यथा इस अध्ययन के अभाव में हमारा उद्देश्य अपूर्ण ही रह जाएगा। नीचे हम प्रमुख ग्रामीण समस्याओं का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

सामाजिक समस्याएं (Social Problem)

वैसे ग्रामीण सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत अनेक सामाजिक समस्याएं आती हैं। नीचे हम प्रमुख ग्रामीण सामाजिक समस्याओं का विवेचन ही करेंगे—

(१) जातिवाद (Casteism)

जातिवाद ग्रामीण क्षेत्रों में अत्याधिक रूप से प्रचलित है।जातीय आधार पर जाति पंचायतों का निर्माण हो गया है, जो अपने सदस्यों से जाति सम्बन्धित नियमों का कठोरता से पालन कराती है और अपनी जाति पर नियन्त्रण रखती है। जातीय आधार पर हुक्का समूह भी निर्मित हो गए हैं। ये समूह भी जाति नियन्त्रण में सहायता करते हैं। जाति आधार पर जातीय तनाव व संघर्ष ग्रामीण क्षेत्रों की प्रमुख बिशेषताएं हैं। ग्रामीण जातिवाद का विस्तार में वर्णन हम पिछले अध्यायों में कर आये हैं।

(२) परम्परावाद (Traditionalism)

ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परावाद का बोलबाला है। ग्रामीण व्यक्ति सदियों से चली आ रही पतम्पराओं का बड़ी कठोरता से पालन करते हैं। इन परम्पराओं से ग्रामीण व्यक्तियों का जीवन इतना अधिक बँधा हुआ होता है कि वे नवीन परि-वर्तनों को स्वीकार करने के लिए किसी भी दशा में तैयार नहीं। इस कारण अनेक

समस्याएं वर्तमान पुनर्निर्माण सम्बन्धी योजनाओं के कार्यकर्ताओं के सम्मुख उपस्थित हो रही हैं। भारतवर्ष में दो पंचवर्षीय योजनाएं समाप्त हो चुकी हैं। किन्तु फिर भी यह देखकर आश्चर्य होगा कि इन दस वर्षों के प्रयत्नों में ग्रामीण समाज अभी वहीं पर स्थिर है जहाँ वह पहले था। कहने का तात्पर्य यह है कि परम्परावाद का इतना सामाजिक प्रभाव ग्रामीण व्यक्तियों के जीवन में पाया जाता है कि वे नवीन परिवर्तनों की ओर उन्मुख ही नहीं होते।

(३) अस्पृश्यता (Untouchability)

ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पृश्यता अत्याधिक रूप से पाई जाती है। हरिजन आदि आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में अलग निवास करते हैं। स्वर्ण जातियाँ हरिजनों के प्रति आज भी अस्पृश्यता का व्यवहार करती हैं। अस्पृश्यता के आधार पर जनसंख्या के एक अधिकांश भाग को अत्यन्त निम्न समझा जाता है। उन्हें अनेक सुविधाओं से वंचित किया गया है। उन्हें घृणित समझा जाता है। उन लोगों को अपने पेशे चुनने की स्वतन्त्रता नहीं है। वे केवल निम्न स्तरीय कार्य ही कर सकते हैं। वर्तमान समय में यद्यपि अनेक विधियाँ राज्य की ओर से इस दिशा में पारित की जा चुकी हैं, किन्तु फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पृश्य जातियों के प्रति वही प्राचीन विचारधाराएं प्रचलित हैं।

(४) जातिभोज (Caste-Feast)

ग्रामीण क्षेत्रों में जाति भोज की प्रथाएं भी एक ऐसी समस्या है जो सामाजिक समस्या के अन्तर्गत आती है। विभिन्न वैवाहिक अवसरों पर जाति के सम्पूर्ण सदस्यों को भोज दिया जाता है। व्यक्ति के किसी गम्भीर अपराध करने पर जाति पंचायत उस व्यक्ति को प्रायश्चित रूप में जातिभोज का दण्ड देती है। जातिभोज में उस व्यक्ति का अत्याधिक व्यय हो जाता है। विवाह आदि अवसरों पर जाति भोज न देना ग्रामीण व्यक्ति की सामाजिक स्थिति की श्रेष्ठता प्रदर्शित करता है। इस श्रेष्ठता के लिए अनेक ग्रामीण व्यक्ति अपनी सामर्थ्य से अधिक व्यय करते हैं और इसके अतिरिक्त धार्मिक अवसरों पर भी जातिभोज दिया जाता है व्यय के लिए उन्हें कई पीढ़ियों तक ऋण का शिकार भी बनना पड़ता है।

(५) मृतक भोज (Dead Feast)

ग्रामीण क्षेत्रों में मृतक भोज जैसी प्रथा भी प्रचलित है। इस प्रथा में व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसके सम्बन्धी जाति के सदस्यों को, सम्बन्धियों को, प्रमुख ग्रामीण व्यक्तियों को और कई बार तो समीप के दो तीन ग्रामों के सभी व्यक्तियों को भोज देते हैं। इस प्रथा में केवल निमन्त्रित व्यक्तियों को भोजन खिलाया ही नहीं जाता बल्कि उन्हें अपने घर ले जाने के लिये भी दिया जाता है। इस प्रथा

के साथ भी सामाजिक सम्मान की भावना जुड़ी हुई है। अतः अनेक व्यक्तियों को अपनी सामर्थ्य न होने पर भी सामाजिक निन्दा के भय से इस प्रथा का पालन करना पड़ता है। परिणामतः ऋण ग्रस्तता बढ़ती है। यह ऋण कई पीढ़ियों तक चलता है। इस भाँति यह प्रथा अनेक सामाजिक समस्याओं को भी जन्म देती है। इस मृतक भोज को राजस्थान में 'मोसर' भी कहा जाता है।

(६) अशिक्षा (Illiteracy)

ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा भी एक प्रमुख सामाजिक समस्या है। ग्रामीण व्यक्तियों की धारणा शिक्षा के प्रति रूचि नहीं दिखलाती। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अनेक दोष होने के कारण ग्रामीण व्यक्ति यह सोचते हैं कि यह शिक्षा उन्हें अपने कृषि कार्यों के योग्य नहीं रखेगी। उनके बालक पढ़ लिखकर नौकरी ढूंढने का प्रयत्न करेंगे और इससे उनकी कृषि में बाधा पहुँचेगी। परिणामतः ग्रामीण व्यक्ति अपने बालकों को स्कूल भेजने के स्थान पर जंगल में पशु चराने के लिये भेजना अधिक अच्छा समझते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में जो प्राथमिकशालाएं राज्य द्वारा अनिवार्य शिक्षा की पूर्ति के लिये प्रारम्भ की गई हैं उनमें उपस्थिति की समस्या एक महत्वपूर्ण समस्या है। अध्यापक गण अपनी नौकरी बनाये रखने के लिये अधिकाँश बालकों की असत्य उपस्थिति प्रदर्शित करते हैं। इस भांति जो आंकड़े हमारे सम्मुख देखने में आते हैं वे अधिकाँश रूप में कागजी कार्यवाही (Paperwork) होते हैं। लेखकों का अपना वैयक्तिक अनुभव भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित की गई प्रौढ़ शिक्षा अथवा समाज शिक्षा योजना से भी केवल १० प्रतिशत ही व्यक्ति लाभ उठाते हैं। बाकी अनेक व्यक्ति तो प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों पर उपस्थित ही नहीं होते किन्तु फिर भी उनकी उपस्थिति एवं प्रगति अध्यापकों के द्वारा प्रदर्शित की जाती है।

(७) मुकदमें-बाजी (Litigation)

ग्रामीण क्षेत्रों में मुकदमें-बाजी अत्याधिक रूप से पाई जाती है। मुकदमें-बाजी के कई कारण हैं। संयुक्त परिवार का विघटित होना, कृषि भूमि का बंटवारा, बलपूर्वक दूसरे की कृषि भूमि पर अधिकार कर लेना, मकानों का बंटवारा, दूसरे के मकानों पर या भूमि पर अपने मकान की दीवार आदि खड़ी कर लेना, ऋण वसूल करना आदि कारक मुकदमेबाजी को जन्म देते हैं। ब्रिटिश शासकों द्वारा पंचायतों के विघटन ने ग्रामीण व्यक्तियों के लिये न्याय महंगा बना दिया था। ब्रिटिश न्याय व्यवस्था के द्वारा ग्रामीण व्यक्तियों को अपना श्रम, धन एवं समय का अपव्यय करके नगरों में आना होता था जहाँ वे वकीलों एवं न्यायालयों के चक्कर में पड़कर निर्धन हो जाया करते थे। वकील उन्हें एक मुकदमें के बाद

दूसरे में उलझा दिया करता था। वकीलों की आय के साधन ही ग्रामीण क्षेत्र थे। अशिक्षित होने के कारण ग्रामीण व्यक्ति वकीलों एवं न्यायालयों की पेचीदा बातें समझ नहीं पाते थे। इस समस्या को दूर करने के लिये भारत सरकार ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के द्वारा ग्रामीण पंचायतों का पुनर्गठन किया है, किन्तु इस प्रक्रिया में भी वर्तमान ग्रामीण समाज गन्दी राजनीति में फंस गये हैं।

(८) मनोरंजन का अभाव एवं मद्यपान
(Lack of Recreation and Alcoholism)

ग्रामीण क्षेत्रों में मनोरंजन का पर्याप्त अभाव पाया जाता है। दिन भर शारीरिक श्रम करने के पश्चात् ग्रामीण व्यक्तियों को मनोरंजन की आवश्यकता अत्यधिक होती है, किन्तु इनके पास किसी भी प्रकार के मनोरंजन के साधन नहीं हैं। पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति तथा अंग्रेजी शासन ने इनके लोक गीतों एवं लोक-नृत्यों को समाप्त कर दिया है। मनोरंजन के वर्तमान साधनों में भी न इन्हें चलचित्र उपलब्ध है और न रेडियो आदि ही। मनोरंजन के स्वस्थ साधनों के अभाव में यह लोग मद्यपान एवं अनैतिक यौन सम्बन्धों की ओर उत्सुक होते हैं। परिणामतः ग्रामीण क्षेत्रों में मद्यपान एवं वेश्यावृत्ति अत्यधिक प्रचलित है। मद्यपान एवं वेश्यावृत्ति की समस्याओं ने इनके स्वास्थ्य को तो दूषित किया ही है साथ ही आर्थिक अवस्था को भी प्रभावित किया है। ग्रामीण क्षेत्रों की ऋणग्रस्तता का एक कारण यह भी है।

(९) धार्मिक अन्धविश्वास (Religious Superstitions)

ग्रामीण क्षेत्रों में धार्मिक अन्धविश्वास प्रमुख सामाजिक समस्या बने हुए हैं। धार्मिक अन्धविश्वासों के आधार पर अनेक रोगों की चिकित्सा की जाती है। उदाहरण के रूप में चेचक के लिये शीतला माता का पूजन तथा सन्तानोत्पत्ति के लिये गन्डे, ताबीज आदि की व्यवस्था, रोगों की चिकित्सा के लिये दागना (डाम लगाना जिसमें जलते हुये लाल लोहे से शरीर पर चित्र बनाये जाते हैं) एवं अनेक देवी देवताओं की आराधना करना आदि धार्मिक कार्य अन्धविश्वास के ही द्योतक हैं। यह धार्मिक अन्धविश्वास ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी अत्याधिक मात्रा में प्रचलित हैं। धार्मिक अन्धविश्वासों में भूत प्रेत, डाकिनी, योगिनी आदि को प्रसन्न करना भी ग्रामीण क्षेत्रों में पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में ओझाओं के झाड़-फूंक के प्रति भी अत्यधिक विश्वास प्रचलित है। धार्मिक अन्धविश्वासों के अन्तर्गत पीरों, मजारों, देवियों, देवताओं आदि की आराधना की जाती है और ग्रामीण व्यक्ति झूंठे साधुओं, सन्यासियों, फकीरों और मुजाविरों (जो मकबरों पर चढ़ावा लेते हैं) के द्वारा खूब ठगे जाते हैं।

पारिवारिक समस्यायें (Familial Problems)

ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक पारिवारिक समस्यायें प्रचलित हैं। ये समस्याएं सामाजिक विघटन को भी जन्म देती हैं। बाल-विवाह, दहेज, विधवा विवाह आदि अनेक पारिवारिक समस्यायें हैं जो समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करती हैं। नीचे हम उनका वर्णन करेंगे।

(१) बाल-विवाह (Child-Marriage)

बाल-विवाह ग्रामीण क्षेत्रों में अत्याधिक रूप से प्रचलित है। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे छोटे बच्चों का ही विवाह कर दिया जाता है। अक्षय तृतीय का दिन बाल-विवाह का प्रमुख दिन है। इस दिन समस्त भारत में लाखों विवाह होते हैं। हिन्दू शास्त्रकारों ने भी बालविवाह को उचित माना है। संयुक्त परिवार प्रणाली ने भी बाल-विवाहों को प्रोत्साहित किया है। भारतवर्ष में १०० में से ८० प्रतिशत लड़कियों का विवाह १५ वर्ष की आयु से पूर्व ही हो जाता है। सन् १९५८ ई० में ग्रामीण क्षेत्रों में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार निम्न आँकड़े प्राप्त हुए।

बाल विवाहों की सारिणी[1]

आयु समूह	विवाहित लड़कियों की संख्या	प्रतिशत
०-५	११	६.७६ ⎫
५-१०	४१	२५.३१ ⎬ ८४.५७
१०-१५	८५	५२.४७ ⎭
१५-२०	१९	११.७२
२२-२५	६	३.७१
२५-३०	०	—
योग	१५२	१००.००

इन आंकड़ों से ऐसा ज्ञात होता है कि ८४.५७ प्रतिशत लड़कियों का विवाह १५ वर्ष की आयु के पूर्व ही हो जाता है। बाल-विवाहों से अनेक हानियां हुई हैं। विधवाहों की संख्या बढ़ जाना, निर्बल संताने, जनसंख्या की वृद्धि, निम्न स्वास्थ्य आदि सामाजिक परिणाम बाल-विवाह के परिणाम हैं। बाल विवाह के सम्बन्ध में सन् १९२९ ई० में ही एक अधिनियम शारदा एक्ट के नाम से पारित किया गया और इसमें समय समय पर सुधार भी होते रहे। किन्तु इतने पर भी बाल-विवाहों

1 L.S. Singhi: Akshya Tritya- 'A day of doom' (A study of child marriage); pubbilished thesis submitted for M. A, Exam, of Rajasthan University (1958) page 50.

की संख्या किसी भांति कम नहीं हुई। उपरोक्त सर्वेक्षण[2] के अनुसार ६३ प्रतिशत व्यक्ति ऐसे थे जिन्हें बाल-विवाह अधिनियम का कोई ज्ञान नहीं था और ७३ प्रतिशत व्यक्तियों को वर वधू की इस अधिनियम के अनुसार निश्चित निम्नतम आयु का ही ज्ञान नहीं था। इस भांति हम देखते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में बालविवाह की समस्या अधिकांश रूप से प्रचलित है। इस दिशा में सुधार के लिये अत्यधिक प्रचार की आवश्यकता है।

(२) वैधव्य (Widowhood)

वैधव्य एक प्रकार से हिन्दू समाज में प्राण सम्पन्न मृतक समान जीवन को कहते हैं। विधवाएं वे अभागिनी स्त्रियां होती हैं जो जीवित रहते हुए भी मृतक के समान जीवन व्यतीत करती हैं। हिन्दू समाज इन विधवाओं को जीवित रहने का अधिकार तो देता है परन्तु जीने के साधन वह प्रदान नहीं करता। वैधव्य स्त्री की वह अवस्था है जब कि पति की मृत्यु हो गई हो और वह पुनर्विवाह के अभाव में मृतपति की स्मृति में जीवित रह रही हो। ग्रामीण क्षेत्रों में विधवाओं की अवस्था अत्यन्त निम्न हैं। इन्हें न अच्छे वस्त्र उपलब्ध हैं और न अच्छा भोजन। न यें त्यौहारों में भाग ले सकती हैं और न उत्सवों को प्रसन्नतापूर्वक मना सकती हैं। संयुक्त परिवार में इनकी स्थिति गृह कार्यों में लगी हुई एक परिश्रमसाध्य सेविका की होती है। किसी शुभ अवसर पर इनका सामने आना अपशुगन माना जाता रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों की कुछ निम्न जातियों में तो विधवा पुनर्विवाह या नाता प्रथा प्रचलित भी है किन्तु उच्च जातियों में विधवा पुनर्विवाह भयंकर पाप माना जाता हैं। पति की मृत्यु हो जाने पर विधवा स्त्री को उसकी सास ननदें यह कहकर कोसती रहती हैं कि 'इस डायन ने हमारे लड़के को खा लिया' 'यह नागिन है इसने हमारे लडके को डस लिया।' इतना ही नहीं परिवार में आई हुई अन्य अशुभ घटनाओं का सम्बन्ध भी उसी की उपस्थिति में जोड़ा जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न जातियों में विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा को नाता कहा जाता है। नाता प्रथा में स्त्री अपने पति की मृत्यु के पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति को पति रूप में स्वीकार करके उसके साथ रहने लगती है। नाता केवल पति की मृत्यु के पश्चात् ही नहीं होता वरन् निम्न जातियों में पति के परित्याग कर देने पर भी स्त्री नाता कर लेती है। नाता शब्द का अर्थ सम्बन्ध से हैं। नाता अथवा पुनर्विवाह में प्रथम विवाह की भांति कोई विशेष उत्सव नहीं सम्पन्न किया जाता। परित्यक्त स्त्री से नाता करने पर प्राचीन पति को मुआवज़े (क्षतिपूर्ति) के रूप में कुछ धन उसके नवीन पति द्वारा दिया जाता है। इस प्रथा को झगड़ा

---

2 Ibid: p. 86.

चुकाना कहा जाता है। इस झगड़े चुकाने में कभी अनेक सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो जाते हैं।

(३) वरमूल्य, कन्यामूल्य एवं दहेज

(Bridgroom's Price, Bride Price and Dowry)

कन्या के विवाह के समय कन्या के साथ साथ कन्या का पिता कुछ वस्त्र एवं अलंकार वर को भेट स्वरूप देता है। जब यह वस्त्र अलंकार आदि कन्या का पिता स्वेच्छा से वर पक्ष को देता है तो इस भेट को दहेज कहा जाता है। वर मूल्य वह निश्चित धन या भेट हैं जो वर पक्ष के द्वारा कन्या पक्ष से मांगी जाती है और जो वर की योग्यता के अनुसार होती है और वर प्राप्त करने के लिये एक शर्त के रूप में कन्या पक्ष द्वारा देना स्वीकार किया जाता है। कन्या मूल्य वह धन है जो वर पक्ष द्वारा कन्या प्राप्त करने के लिए कन्या के मूल्य के रूप में वधू पक्ष को भेंट किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह तीनों ही प्रथाएं विशेष रूप से प्रचलित हैं। कन्या मूल्य विशेषकर निम्न जातियों में प्रचलित है और वर-मूल्य विशेषकर उच्च जातियों में वर मूल्य और कन्या मूल्य दोनों ही मांग एवं योग्यता के अनुसार घटने बढ़ते रहते है। वर मूल्य कभी कभी ५००० से लेकर २०,००० ३०,००० रु. तक भी पहुँच जाता है। जबकि कन्या मूल्य ५००,७०० रु. से अधिक नहीं होता। कुछ जातियों में तो कन्या मूल्य केवल ८० रु. ही पंचायत द्वारा निश्चित किया हुआ हैं। वर मूल्य और कन्या मूल्य दोनों के साथ ही दहेज अपने स्वतन्त्र रूप में पाया जाता है। शहरों की भांति वर-मूल्य और दहेज दोनों का घातक रूप ग्रामीण समाज में भी उपलब्ध है।

(४) परित्याग (Desertion)

ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च जातियों को छोड़कर अन्य निम्न जातियों में परित्याग की प्रथा पाई जाती है। पति-पत्नी से अनबन होने पर परित्याग सम्भव है। परित्याग का अधिकार विशेष रूप से पुरुष को ही उपलब्ध है। केवल कुछ दशाओं में स्त्रियाँ भी इस अधिकार का प्रयोग कर सकती हैं। परित्याग के साथ ही साथ ग्रामीण समाजों में बच्चों के लालन पालन एवं स्त्री के भरण पोषण का धन देने की समस्याएं भी ग्रामीण क्षेत्रों की प्रमुख पारिवारिक समस्याएं हैं। ग्रामीण व्यक्तियों की आय इतनी अधिक नहीं होती है कि वे पत्नी के पृथक रहने पर उसके भरण पोषण की व्यवस्था के लिये धन दे सकें। अतः यह समस्या भी ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक उपलब्ध है। उच्च जातियों में तो परित्याग की प्रथा ही प्रचलित नहीं है जिससे वहाँ स्त्रियों पर अत्याधिक अत्याचार होते हैं।

(५) स्त्रियों की स्थिति (Status of Women)

ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त निम्न है। स्त्रियाँ घर की दासी, सेविका के रूप में सभी कार्य करती हैं किन्तु उन्हें किसी भी प्रकार के अधिकार उपलब्ध नहीं है। सास एवं ननद के अत्याचार उन पर बहुत अधिक होते हैं। पारिवारिक एवं कृषि कार्यों में वे इतनी संलग्न रहती हैं कि उन्हें अपने स्वास्थ्य की ओर तथा अन्य सामाजिक क्रियाओं की ओर ध्यान देने का अवसर ही उपलब्ध नहीं होता। वे या तो अपने घरों की चार दीवारी में बन्द रहती हैं या निम्न जातियों की होने पर मजदूरी अथवा कृषि कार्यों में श्रमिक के रूप में कार्य करती हैं। इतना सब कुछ होने पर भी वे शराब के नशे से प्रभावित अपने पतियों की ताड़ना का शिक़ार होती हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि उन्हें सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत करने के साधन प्रदान ही नहीं किये जाते। परिवार में उनकी स्थिति एक स्वामिनी के स्थान पर एक सामान्य सेविका की होती है। उन्हें सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि किसी भी प्रकार के अधिकार उपलब्ध नहीं हैं। आज हमें नागरिक जीवन में जो स्त्री स्वातन्त्र्य के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं उनकी तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में उतने ही अधिक दृश्य स्त्री पराधीनता के उपलब्ध होंगे। पढ़ने की उन्हें फ़ुर्सत ही नहीं होती। नवीन विचारों से वह दूर रहती हैं और यही कारण है कि रूढ़ियों, प्रथाओं तथा परम्पराओं के साथ वह चिपटी रहती हैं, बिरादरी का भूत हर समय उनके ऊपर सवार रहता है।

आर्थिक समस्यायें (Economic Problems)

पिछले अध्यायों में हम ग्रामीण कृषि समस्याओं का वर्णन कर चुके हैं। उसमें हम अनेक आर्थिक कारकों की विवेचना भी कर चुके हैं। किन्तु फिर भी आर्थिक समस्याओं का यहाँ संक्षेप में वर्णन करना अनुचित न होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायः निम्न आर्थिक समस्याएं पाई जाती हैं :—

(१) कृषि समस्या (Agriculftural Problems)

कृषि समस्या भारत के ग्राम्य जीवन की महत्वपूर्ण समस्या है। भारत के किसान के पास टूटी फूटी झोपड़ी, तन पर फटा हुआ कपड़ा और खाने को मक्का तथा बाजरे की रोटी है। इस निर्धनता का प्रमुख कारण है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति का ह्रास होना। भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में बँटी हुई है कृषि के उन्नत साधन उपलब्ध नहीं हैं। बीजों की किस्म भी अच्छी उपलब्ध नहीं होती। खाद्य की समस्या भी एक प्रमुख समस्या बनी हुई है। भारतीय कृषकों को उत्तम खाद उपलब्ध नहीं हैं। जल एवं सिंचाई के साधनों का अत्यधिक अभाव है। इन सब कारणों से भारतीय कृषि अत्यधिक पिछड़ी अवस्था में है।

(२) भूमिहीन श्रमिक (Landless Labourers)

ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकाँश व्यक्तियों के पास भूमि नहीं है भूमि के अभाव में वे अन्य खेतों पर श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं। इस श्रम का उन्हें पर्याप्त वेतन उपलब्ध नहीं होता। अपनी भूमि न होने से वे श्रम कार्य करने में उतनी योग्यता एवं कुशलता भी नहीं प्रदर्शित करते जितनी कि आवश्यक है। परिणाम यह होता है कि कृषि का स्तर एवं उपज दिन प्रतिदिन गिरती ही चली जाती है। इन श्रमिकों के पास अपनी भूमि न होने से उन्हें जीवन की अन्य सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। इनका जीवन स्तर भी अत्यन्त निम्न हैं। कृषि में श्रम की माँग न होने पर यह पूर्ण रूप से बेकार हो जाते हैं। इस बेकारी की अवस्था में इनके पास अपने भरण पोषण का कोई साधन नहीं होता। परिणामतः यह अन्य कार्यों में जो इन्हें कभी कभी ही मिलते हैं संलग्न हो जाते हैं।

(३) कुटीर उद्योगों का अभाव (Lack of Cottage Industries)

कृषि कार्य के उपरान्त जो ग्रामीण मानवीय शक्ति बचती है वह कुटीर उद्योगों में ही संलग्न होती है। कुटीर उद्योग आर्थिक आत्म निर्भरता के आधार हैं। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या ग्रामीण छोटे उद्योगों एवं कुटीर में ही उपयोग की जा सकती हैं। उसके अतिरिक्त कृषि की अस्थायी और ऋतु अनुसार प्रकृति होने के फलस्वरूप कुटीर उद्योगों के अतिरिक्त ग्रामीण जनता के पास जीविका का कोई अन्य साधन नहीं है। कुटीर उद्योगों के संचालन की सुगमता एवं आत्मीयता के फलस्वरूप यह पारिवारिक उद्योग के रूप में परिवर्तित किये जा सकते हैं। ग्राम इकाईयों की आत्मनिर्भर प्रकृति इन उद्योगों द्वारा ही पूर्ण हो सकती है। ग्रामीण आर्थिक संरचना की प्रारम्भिक एवं साधारण स्थिति के साथ साथ यातायात के साधनों के अभाव में कुटीर उद्योग ही ग्राम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। भूमि पर बढ़ती हुई जनसंख्या के भार को कुटीर उद्योगों द्वारा ही वहन किया जा सकता है। कृषि में निपुणता, रूचि, जिज्ञासा एवं विकास की समस्त सम्भावनाएं कुटीर उद्योगों में ही निहित हैं। भूमिहीन किसान एवं बेकार ग्रामीण मजदूरों की जीविका कुटीर उद्योगों द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। कृषि की आर्थिक प्रकृति, कृषकों का निराशावादी दृष्टिकोण एवं उनकी नीरसता इन उद्योगों द्वारा समाप्त की जा सकती है। स्थानीय प्राकृतिक साधनों का सदुपयोग, राष्ट्रीय आय में वृद्धि इन उद्योगों द्वारा भी सम्भव है। इस प्रकार ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था में इस संस्था का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान हैं। ग्रामीण अर्थिक व्यवस्था में कुटीर उद्योगों का अत्यन्त मत्वपूर्ण स्थान होने के उपरान्त भी उनकी वर्तमान दशा अत्यन्त शोचनीय है। दीर्घकाल से कुटीर उद्योगों का रूप विघठित हो रहा है। इसी से ग्रामीण आर्थिक सामाजिक ढाँचे में अनेक विघठन उत्पन्न हो गए हैं।

कुटीर उद्योगों के अभाव के कारण श्रमिकों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई है। उन्हें न अपनी आयु को बढ़ाने का अन्य कोई साधन उपलब्ध है और कृषि के पिछड़ेपन से न वे उत्पादन ही अधिक बढ़ा सकते हैं। परिणामतः उन्हें अपना जीवन उसी सीमित आय में व्यतीत करना होता है जो उन्हें उपलब्ध है। इस कारण अनेकों ग्रामीण व्यक्ति नगरों की ओर अग्रसर होते हैं और अनेक नागरिक समस्याओं का शिकार होते हैं। कुटीर उद्योगों का अभाव वास्तव में कृषकों के लिए अत्यन्त भीषण समस्या बना हुआ है।

(४) बेकारी (Unemployment)

ग्रामीण समाजों में आर्थिक समस्याओं में बेकारी भी एक प्रमुख समस्या है। ग्रामीण कृषक वर्ष में चार माह तक तो पूर्ण रूप से बेकार रहते हैं। वे वर्ष में केवल ८ माह ही कार्य कर पाते हैं। भूमिहीन श्रमिक तो प्रायः अधिकांश महीनों तक बेकार रहते हैं। बेकारी के समय में कुटीर उद्योगों के अभाव के कारण इनके पास आर्थिक आय के अन्य कोई साधन नहीं होते। अधिकांश व्यक्ति कार्य की खोज में शहरों में भटकते फिरते हैं किन्तु वहाँ भी इन्हें पर्याप्त रूप से काम नहीं मिलता। जमींदारी प्रथा के समय इन लोगों की आर्थिक दशा और भी खराब थी क्योंकि जमींदार जहाँ अत्यधिक भूमि कर लेते थे, वहाँ इनसे बेगार भी लेते थे। बेगारी प्रथा में ग्रामीण कृषकों एवं श्रमिकों से निःशुल्क वस्तुएं एवं श्रम कार्य लिया जाता था। ग्रामीण समाजों में जजमानी प्रथा भी प्रचलित है। इस प्रथा के अनुसार ग्रामीण श्रमिकों के कुछ जजमान निश्चित होते हैं जिनका कार्य ये लोग निःशुल्क करते हैं और कटाई के समय इस कार्य के बदले में अन्न आदि प्राप्त हो जाता है। इस प्रथा के कारण इनके श्रम का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाता है।

(५) दरिद्रता (Poverty)

ग्रामीण क्षेत्रों में दरिद्रता भी अत्यधिक फैली हुई है। यहाँ की अधिकांश जनता ऐसी है जिसे भर पेट भोजन नहीं मिलता। तन ढकने के लिए सामान्य वस्त्र भी उपलब्ध नहीं, रहने के लिए साधारण मकान भी नहीं है उनका जीवन-स्तर गिरा हुआ है। ग्रामीण कृषकों एवं श्रमिकों को आँधी, बरसात, कड़ी सर्दी, भीषण गर्मी तथा रात दिन की चिन्ता किए बिना, मेहनत करने के पश्चात् भी इतनी आय नहीं हो पाती कि वह आसानी से अपना व अपने परिवार का जीवन निर्वाह कर सके। ग्रामीण दरिद्रता का कोई एक कारण नहीं है, अनेकों कारण हैं। जैसे कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, पिछड़ी कृषि, भूमि अनुपजाऊ, सिंचाई के साधनों का अभाव, खाद्य की कमी, बढ़ती हुई जनसंख्या, बेकारी एवं कुटीर उद्योगों का अभाव आदि।

वर्तमान समय में पंचवर्षीय योजनाओं एवं सामुदायिक विकास योजनाओं के द्वारा ग्रामीण दरिद्रता को समाप्त करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(६) ऋण समस्या (Indebtedness)

भारतीय किसानों की गरीबी बढ़ाने में ऋण ग्रस्तता भी एक प्रमुख महत्व रखती है। हमारे किसानों की सामान्य आय इतनी कम है कि उन्हें कृषि में थोड़ा सा धन लगाने के लिए, फसल मारी जाने पर भूमिकर देने के लिए अथवा शादी ब्याह और मृत्यु के किसी भी आकस्मिक व्यय के लिए प्रायः ऋण का आश्रय लेना पढ़ता है। यह ऋण देने का कार्य गांवों में प्रायः साहूकारों के हाथ में है जो कि कृषक की असहाय अवस्था और कष्टों का पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं। उसे २० प्रतिशत से लेकर कभी-कभी तो १०० प्रतिशत ब्याज की दर देनी पड़ती है। इस प्रकार एक बार ऋण लेकर उसे पीढ़ी दर पीढ़ी ऋण के बोझ के नीचे दबा रहना पड़ता है।

(७) पशु समस्या (Cattle Problems)

ग्रामीण आर्थिक जीवन का आधार प्रमुख रूप से कृषि है। कृषि का कार्य पशुओं के अभाव में कदाचित दूर नहीं किया जा सकता। परिणामतः पशु भी ग्रामीण आर्थिक जीवन के अभिन्न अंग हैं सन् १९५१ ई० की पशु-गणना के अनुसार इस देश में १५ करोड़ ५१ लाख गाय, बैल और ४ करोड़ ३३ लाख भैंसे हैं। दो मनुष्यों के पीछे १ गाय, बैल, भैस पड़ते हैं। परन्तु यहाँ के जानवर इतने कमजोर है कि उनसे कृषि कार्य में सहायता लेना भी एक समस्या है। भारत में पशुओं के लिए चारे का प्रबन्ध करना भी एक समस्या है। भारत में इतने पशु होने पर भी अन्य देशों की अपेक्षा दूध की मात्रा बहुत कम है। इंगलेंड की गाय ७ गुना दूध देती है। भारत में १०० एकड़ जमीन के पीछे ६७ गाय .बैल हैं। हालेंड में ३८, मिश्र में २५ और चीन में १३ हैं। यद्यपि पशुओं की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा भारत में अधिक है तथापि यहां की कृषि व्यवस्था अत्यन्त दुर्बल है। भारत खुले में पशुओं को चराने से घास बहुत खराब होती है। इसी घास को काट कर खिलाने से दुगुने समय तक कार्य किया जा सकता है। फिर काटने से घास भी बढ़ती है किन्तु इन तथ्यों पर कृषक का ध्यान नहीं है। पशुओं में रोग भी बहुत अधिक फेलते हैं। इन रोगों को टीके आदि औषधि सम्बन्धी सुविधाओं से रोका जा सकता है किन्तु भारतीय कृषक एवं भारतीय औषधी-व्यवस्था इस सम्बन्ध में बहुत पिछड़े हुए हैं। साथ ही साथ पशुओं की नस्ल समस्या भी एक गहन समस्या है। धर्म के नाम पर सस्ते ओर घटिया नस्ल के बछड़े साढ़ बनने के लिए छोड़ दिये जाते हैं जिनसे पशुओं की नस्ल नहीं सुधरती और यह समस्या बनी रहती है। भारत को प्रतिवर्ष दो लाख उत्तम नस्ल के सांड़ चाहियें। वर्तमान समय में भारतीय सरकार

इस ओर काफी जागरूक है और विभिन्न स्थानों पर कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination) केन्द्र खोलने के प्रयत्न चल रहे हैं और इनमें पर्याप्त सफलता भी मिली है।

राजनैतिक समस्या (Political Problems)

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में भी कम समस्यायें नहीं है। अंग्रेजों की भूस्वामित्व नीति तथा जमींदारी नीति ने अनेको समस्याओं को जन्म दिया हैं। इन समस्याओं में राजनैतिक समस्यायें भी प्रमुख हैं। राजनैतिक समस्याओं में से प्रमुख निम्न हैं—

(१) पंचायत (Parchayats)

प्राचीन काल में प्रत्येक ग्राम में ग्राम पंचायत होती थी। इन पंचायतों के द्वारा ग्रामीण प्रशासन का कार्य सम्पन्न होता था किन्तु अंग्रेजो के शासन काल में पंचायतों का पतन हुआ। परिणामतः प्रत्येक ग्राम की आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई। पंचायतों के पतन के कारण जमींदारी प्रथा का जन्म हुआ। इस प्रथा ने भारतीय कृषकों के शोषण में कोई कमी नहीं रखी। सत्ता जिलों में केन्द्रित होने से ग्रामीण जनता को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ा। ग्राम पंचायत होने से ग्रामीण व्यक्तियों को मुकद्में बाजी आदि की कोई आवश्यकता नहीं थी किन्तु पंचायतों के समाप्त होने से मुकद्में ग्राम से बाहर जाने लगे और कृषकों को अत्यधिक व्यय, श्रम और समय के नष्ट होने का सामना करना पड़ा। गांव वालों की समस्यायें किसी शहर की बड़ी अदालत में बैठा हुआ न्यायाधीश नहीं समझ सकता। परिणामतः वकीलों को भोले भाले ग्रामीण व्यक्तियों को लूटने का अवसर मिला। पंचायतों की इस कमी को स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार ने अनुभव किया और ७ दिसम्बर सन् १९४७ ई० को "उत्तरप्रदेशीय पंचायत राज्य कानून" स्वीकृत किया गया और वर्तमान समय में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना के अन्तर्गत ग्राम पंचायत को एक स्वतन्त्र प्रशासन की इकाई बनाया जा रहा है।

(२) मतदान समस्या (Voting Problem)

सन् १९४७ ई० में भारत स्वतन्त्र हुआ और सन् १९५० ई० में भारतीय जनता को एक नवीन संविधान प्रदान किया गया जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ। इस समय तक ३ सार्वजनिक चुनाव सम्पन्न हो चुके हैं किन्तु इन चुनावों में यह देखने में आया है कि ग्रामीण जनता अपने मत का उचित उपयोग नहीं करती। ऐसे क्षेत्रों के निवासी अनभिज्ञ एवं अन्धविश्वासी होने के कारण अपने मत का उचित मूल्य नहीं आँक पाते। पारिवारिकता के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में राजनैतिक विचारधाराएँ मान्य होती हैं। प्रायः यह देखा गया है कि कृषक किसी भी राजनैतिक दल के उद्देश्यों को उचित रूप से समझने में अस-

मर्थ रहे हैं। उनकी इस अशिक्षा, अनभिज्ञता एवं अन्धविश्वास का लाभ विभिन्न राजनैतिक दलों ने उठाया है। कांग्रेस का चुनाव चिन्ह दो बैलों की जोड़ी है। ग्रामीण जनता कृषि का व्यवसाय करती है वे कृषिकार्य में संलग्न रहते हैं और कृषि का आधार बैल हैं। परिणामतः कृषक बैलों को अपना सर्वस्व मानते हैं और इसी कारण वे कांग्रेस दल के उद्देश्यों से परिचित न होते हुए भी बैलों वाली पेटी में या बैलों वाले खाने में अपना चिन्ह अंकित करके मत प्रदान करते हैं। कई ग्रामीण क्षेत्रों में तो यह भी पाया गया है कि वे बैलों की सहायतार्थ अपने मत के साथ-साथ कुछ रूपयों के नोट भी बक्सों में डाल आये हैं। कई चुनाव केन्द्रों पर तो यह भी देखा गया है कि ग्रामीण जनता ने अपना मत बक्सों में डालने की अपेक्षा बाहर ही रखकर हाथ जोड़ कर प्रणाम किया है और उस बक्से की परिक्रमा भी लगाई है। इन सभी तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में इस दिशा में कितना सुधार होना है।

(३) अस्वस्थ राजनैतिक विचारधारायें
(Unhealthy Political Concepts)

भारतीय कृषकों में राजनैतिक जागृति विदेशी कृषकों की अपेक्षा अत्यन्त पिछड़ी हुई अवस्था में पाई जाती है। भारतीय कृषकों को, विश्व राजनीति की बात तो छोड़िये, अपने देश की ही राजनीति का ज्ञान नहीं है। अशिक्षा के कारण समाचार पत्रों की तो बात ही नहीं उठती। आकाशवाणी (Radio) का भी पर्याप्त अभाव ग्रामीण क्षेत्रों में पाया जाता है। उन्हें इस बात का कोई ज्ञान नहीं है कि देश के विभिन्न प्रान्तों में क्या प्रगति हो रही है। उनके इस राजनैतिक ज्ञान के अभाव का लाभ विभिन्न राजनैतिक दल अत्यधिक उठाते हैं। पंचायतों के चुनावों के समय में भी प्रायः ये चुनाव पारिवारिकता एवं जातीय श्रेष्ठता के आधार पर सम्पन्न होते हैं। इन चुनावों के समय ग्रामीण राजनीति का अत्यन्त घृणित रूप दृष्टिगोचर होता है।

(४) ग्रामीण नेतृत्व (Rural Leadership)

ग्रामीण नेतृत्व भी भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में एक समस्या बना हुआ है। अशिक्षा एवं राजनैतिक अज्ञान के कारण ग्रामीण व्यक्ति नेतृत्व के प्रति अधिक सतर्क नहीं हैं। फलस्वरूप प्रायः ऐसे व्यक्ति ग्रामीण नेतृत्व में आ जाते हैं जो प्रायः सामाजिक रूप से बहुत चालाक होते हैं। प्रायः देखा यह जाता है कि नेता बनने से पहले ग्रामीण समाज में इनकी कोई विशेष सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं होती। नेतृत्व से पूर्व ये व्यक्ति प्रायः गुण्डागिरी लडाई, झगड़ों में विशेष रूचि रखते हैं। ग्रामीण नेतृत्व में प्रायः ऐसे व्यक्ति आ जाते हैं जो सामाजिक दृष्टि से कुख्यात होते हैं जिसके कारण प्रायः ग्रामीण व्यक्ति इनसे डरते हैं और इसी कारण मतदान भी

करते हैं किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अधिकाँश ग्रामीण नेतृत्व इन्हीं व्यक्तियों से संचालित होता है वरन् ग्रामीण नेतृत्व अधिकांश रूप में परम्परागत होता है अर्थात् जिसका पिता नेता बना हुआ है उसका पुत्र भी नेता बन जाता है। ग्रामीण नेताओं को नेतृत्व की सुचारू रूप से शिक्षा प्राप्त नहीं होती। परिणामतः ये अपनी चालाकी, कुशलता, मक्कारी आदि आधारों पर ही नेतृत्व का कार्य करते हैं जिसके कारण ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन व्यक्तियों को नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। वर्तमान समय में भारतीय सरकार इस ओर प्रयत्नशील है किन्तु ये प्रयत्न अत्यधिक सीमित हैं।

धार्मिक समस्याएं (Religious Problems)

ग्रामीण जीवन में धार्मिक समस्याएं भी अत्यधिक मात्रा में फैली हुई हैं जिनके कारण इनका सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक जीवन एक विशेष प्रकार का बन गया है। प्रमुख धार्मिक समस्याएं निम्नलिखित हैं:—

(१) धार्मिक अन्धविश्वास (Religious Superstitions)

\ग्रामीण जीवन अन्धविश्वास का पुन्ज है। भय के आधार पर ग्रामीण लोग शीघ्र ही अकाल्पनिक देवी देवताओं की पूजा करने लगते हैं। अन्धविश्वास के कारण ग्रामीण धार्मिक क्षेत्र में अनेक रीतिरिवाज, त्यौहार, उत्सव व अनर्थक विश्वासों ने घर कर लिया है। ग्रामीण लोग प्रकृति के प्रकोपों को अथवा अन्य कोई असाधारण घटनाओं को तथा अनेक मिथ्या विचारों को ईश्वरीय शक्ति मानकर अपने जीवन को अन्धकार, अन्धविश्वास तथा विपदाओं के कारागर में डाल देते हैं जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इन अन्धविश्वासों के आधार पर ग्रामीण व्यक्ति अनेक रोगों की चिकित्सा करते हैं।

(२) जादू टोनों का प्रभाव (Effect of Magical Practicelens)

ग्रामीण जीवन में जादू टोनों का भी अत्याधिक प्रभाव है। बीमारी होने पर जादू टोनों के द्वारा उनकी चिकित्सा की जाती है। चिकित्सा के रूप में ये लोग डाम भी लगाते हैं। 'डाम लगाना' वह क्रिया है जिसके अन्तर्गत पेट पर या शरीर के किसी अन्य अंग पर जलते हुए लाल लोहे की सलाख से एक प्रतीकात्मक चिन्ह या चित्र बना देते हैं। यह चित्र या चिन्ह प्रायः किसी देवी देवता का प्रतीक चिन्ह होता है। इसके प्रति इनका विश्वास है कि किसी भी रोग का यह रामबाण इलाज है और इससे रोग स्वतः ही दूर हो जायेगा। ये लोग झाड़ फूंक आदि में भी अत्यधिक विश्वास रखते हैं। अन्धविश्वास के कारण टीके, इन्जेक्सन, दवाइयों आदि से ये लोग दूर भागते हैं।

(३) धार्मिक संघर्ष (Religious Conflicts)

धार्मिक विचारों के कारण छुआछूत व खानपान सम्बन्धी प्रतिबन्धों का पालन

करते हैं। जिसके कारण अनेक धार्मिक संघर्ष समय समय पर उठ खड़े होते हैं। ग्रामीण व्यक्तियों में धार्मिक सहिष्णुता की भावना नहीं पाई जाती और असहिष्णुता से अनेक धार्मिक संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं।

उपरोक्त विभिन्न प्रकार की अनेक प्रमुख सामाजिक समस्यायें ग्रामीण जीवन में व्याप्त हैं। इन समस्याओं के अतिरिक्त भी स्वास्थ्य, शिक्षा संस्कृति, निर्धनता आदि से सम्बन्धित अनेक समस्याएं हमें ग्रामीण जीवन में उपलब्ध होती हैं। इन समस्याओं के आधार पर यदि हम यह कहें कि वर्तमान ग्रामीण जीवन एक समस्यात्मक जीवन है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन समस्याओं के कारण ग्रामीण जीवन अत्यधिक सीमा तक विघठित हो गया है।

सामाजिक समस्याओं को दूर करने का उपाय
(Ettorts for Removal of Social Problems)

ग्रामीण जीवन के इस विघटित स्वरूप को देखकर देश के विभिन्न समाज सुधारकों ने अपने ध्यान को इस ओर केन्द्रित किया है कि किसी भाँति इन समस्याओं को दूर किया जाय और ग्रामीण जीवन को पुनः सुसंगठित किया जाय। जिसके परिणामस्वरूप भारत सरकार इस ओर प्रयत्नशील है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं, सामुदायिक विकास योजनाओं, राष्ट्रीय विस्तार योजनाओं, शिक्षा योजनाओं एवं लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज्य योजनाओं, समाज कल्याण योजनाओं आदि विभिन्न प्रयत्नों द्वारा ग्रामीण जीवन का पुनर्निर्माण किया जा रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये सभी योजनाएं भारतीय ग्रामीण जीवन पर केन्द्रित हैं और इन योजनाओं के अन्तर्गत दस वर्षों से निरन्तर कार्य हो रहा है किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि ये योजनायें सफल हो गई हैं और ग्रामीण जीवन सुसंगठित हो गया है। वास्तव में देखा जाय तो इन योजनाओं के द्वारा ग्रामीण पुनर्निर्माण की नींव भी तैयार नहीं हुई है और अधूरी है। ग्रामीण पुनर्निर्माण के विशाल भवन के सम्बन्ध में तो इस समय कुछ कहना ही व्यर्थ होगा। प्रशासन सम्बन्धी वर्तमान अभावों के कारण तो इन योजनाओं की सफलता और भी सन्देहजनक है। ग्रामीण पुनर्निमाण के लिये शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हम शीघ्र ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु हमें यह कहते हुये अत्यन्त दुःख होता है कि भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली भी अत्यधिक दोषपूर्ण है। हमारी शिक्षा प्रणाली अभी प्रयोग की प्रक्रिया में ही चल रही है। शिक्षा प्रणाली के प्रयोग समाप्त होने पर और सुशिक्षा प्रणाली के विकसित होने पर ही इस दिशा में कुछ कहा जा सकता है। भारत सरकार को इस दिशा में विशेष प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है।

अध्याय २६

ग्रामीण सामुदायिक विघटन के प्रमुख स्वरूप

(Major Forms of Rural Community Dis—Organisation)

सामाजिक विघटन के क्षेत्र में ग्रामीण विघटन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस विषय के अध्ययन के अभाव में हम ग्रामीण समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने में असमर्थ रहते हैं। इस दृष्टि से ग्रामीण विघटन के अध्ययन का ग्रामीण समाजशास्त्र में सर्वोच्च स्थान है। सामुदायिक विघटन शीर्षक अध्ययन में ग्रामीण विघटन की विचार धारा तथा प्रक्रिया के प्रमुख कारणो पर हम विचार कर आये हैं। ग्रामीण विघटन की प्रक्रिया में हमें अनेक स्वरूपों के दर्शन होते हैं। ये स्वरूप न केवल ग्रामीण विघटन के प्रमुख आधार हैं वालिक विघटन को बढ़ाने में भी योग देते हैं इन स्वरूपों में सर्वप्रथम दरिद्रता का स्थान है। इसके अतिरिक्त बेकारी, अशिक्षा, अनार्थिक कृषि व्यवस्था, निम्न स्वास्थ्य, निवास व्यवस्था, ऋण ग्रस्तता तथा अस्पृश्यता आदि स्वरूप भी प्रभावशाली स्थान रखते हैं। अतः हम इस अध्याय में ग्रामीण विघटन के इन प्रमुख स्वरूपों का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

ग्रामीण विघटन के प्रमुख स्वरूप

(Mojor Forms of Rural Dis-Organisation)

(१) निर्धनता (Poverty)

भारत के ग्रामीण समुदाय की सबसे बड़ी समस्या उसकी गरीबी है। इसका भयानक रूप हम भारत के किसी भी गांव में जाकर देख सकते हैं जबकि स्वयं किसान ही अनाज पैदा करते हैं और उनको ही पेट भरने तक को पूर्ण रूप से अन्न नहीं मिलता। उन्हें न तो उचित भोजन ही मिल पाता है और न कपड़ों का ही उचित प्रबन्ध कर पाते हैं। किसानों की गरीबी के कई कारण हैं जैसे खेती की पिछड़ी दशा, अत्यधिक छोटे और छिटके खेतो का होना, सहायक उद्योगों का न होना बढ़ती जन संख्या व ऋण ग्रस्तता आदि प्रमुख कारण पाये जाते हैं। इनमें से प्रत्येक कारण स्वयं में ही एक समस्या है। फिर भी यहां पर इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि निर्धनता की समस्या गांव की प्रायः अन्य सभी समस्याओं से इतनी अधिक सम्बन्धित है कि उसे सुलझाये बिना गांवों का जीवन स्तर ऊँचा उठाने में हमारा पूर्ण रूप से कामयाब होना असम्भव है। इस गरीबी को दूर करने के लिये

किसानों की दशा को उन्नत करना बहुत ही आवश्यक है और ये तभी सम्भव हो सकता है जबकि खेतों को टुकड़े टुकड़े होने से बचाया जाय। सहायक उद्योग धन्धों को विकसित करके कृषि पर अत्यधिक निर्भरता तथा बेकारी को कम किया जायेगा। किसानों को शिक्षित करना होगा, उनका आर्थिक अभाव भी दूर करना होगा, इसके अतिरिक्त उनके खेतों की पैदावार के विक्रय की उचित व्यवस्था करनी होगी। इन सभी अभावों को दूर करने के पश्चात् ही उनकी गरीबी को दूर करने में सफलता प्राप्त की जा सकती हैं।

निर्धनता की व्याख्या करते हुए एडविन सेलिगमैन ने लिखा है कि विलासता की भांति निर्धनता में भी कई मात्राएं या दर्जे होते हैं। इसी प्रकार निर्धनता को भी पूर्ण (Absolute) और सापेक्ष (Relative) दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। पूर्ण निर्धनता का यह लक्षण बताया जाता है कि यह ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति की आय शारीरिक क्षमता को बनाये रखने के लिये आवश्यक सामग्री उपलब्ध करने के लिये अपर्याप्त हो। साक्षेप निर्धनता वह स्थिति है जिसमें कोई व्यक्ति केवल अपने जीवन निर्वाह की अपेक्षा अधिक ऊंचे दर्जे के जीवन के स्तर बनाये रखने में अपने आपको असमर्थ पाता है। उदाहरण के लिये अमरीका के मजदूर की तुलना में रूस का मजदूर साक्षेप दृष्टि से इसलिये निर्धन कहलायेगा कि उसके पास कार नहीं हैं। पर वैसे उसे निर्धन नहीं कहा जा सकता है लेकिन यदि हम पूर्ण और सापेक्ष दोनों ही दृष्टि से भारत की जनता को देखें तो अधिकांश जनता निर्धन प्रतीत होती है क्योंकि वह अपने और अपने परिवार के लिये पेट भर भोजन जैसी अल्पतम आवश्यकतायें भी पूरी नहीं कर सकते।

पूर्ण निर्धनता और अपर्याप्त पोषण का तो चोली-दामन का साथ है। निर्धन व्यक्ति अपने शरीर की रक्षा और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक और सन्तुलित खुराक भी नहीं जुटा पाते और भारत की ग्रामीण जनता के विषय में तो यह बात सोलह आने सच प्रतीत होती है। भारत की प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय और उसके असमान वितरण से हम भारत की निर्धनता का सही अन्दाज लगा सकते हैं। हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या भोजन, कपड़े और मकान जैसी अल्पतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी अपने आपको असमर्थ पाती है। उनको भर पेट और पौष्टिक भोजन नहीं मिलता। उनके पास जाड़े में ठंड से बचने के लिये उचित मात्रा में कपड़े प्राप्त होना तो एक असम्भव बात है। वह प्राय: गांवों में मिट्टी के बने कच्चे मकानों में रहते हैं या फिर शहरों की तंग और गन्दी बस्तियों में रहते हैं। जहाँ उन्हें स्वच्छ हवा और रोशनी भी उचित मात्रा में प्राप्त नहीं होती है। परिणामत: हम देखते हैं कि हमारे देश की अधिकांश ग्रामीण जनता दुर्बल और रोगी होती है और आर्थिक अभावों के कारण वे इलाज भी ठीक प्रकार से नहीं करा पाते इसलिये

उनकी कार्यक्षमता भी बहुत कम होती है। इन सब बातों के साथ साथ शिक्षा भी अपना महत्व रखती है। जिसे प्राप्त करने के लिए इनके पास किसी प्रकार के साधन प्राप्त नहीं होते और इसके अतिरिक्त कठिनाई के समय में किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा भी नहीं मिलती है।

इन सब बातों को देखते हुए यदि हम यह कहें कि निर्धनता ग्रामीण भारत की सबसे प्रधान सामाजिक समस्या है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इस समस्या के समाधान पर हमारा सामाजिक सुख, सुरक्षा और कल्याण निर्भर है। अतः भारत में कल्याण राज्य के चाहने वालों के लिये ग्रामीण निर्धनता के कारणों की जाँच करना है और उन्हें शीघ्र नष्ट करने का कार्य सबसे प्रमुख है। भारत की विद्यमान प्रति-व्यक्ति राष्ट्रीय आय से हम उसकी आर्थिक स्थिति का अन्दाजा लगा सकते हैं। यहाँ पर हम् कुछ प्रमुख देशों की प्रतिव्यक्ति आय दे रहे हैं। प्रतिव्यक्ति आय के यह अनुमान सन् १९४९ ई० के हैं। पिछले सालों में भी विभिन्न देशों की आर्थिक स्थिति में कोई खास अन्तर नहीं पड़ा। इसलिये यह आंकड़े एक काफी सही तस्वीर दे सकते हैं।

देश	आय रूपयों में
भारत	२४७
चीन	१३५
जापान	५००
इंगलैंड	३,८६५
रूस	१,५४०
अमरीका	७,२६५
जर्मनी	१,६००

उपरोक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि दूसरे देशों की अपेक्षा भारत की वार्षिक आय कितनी कम है। भारत की अधिकांश जनता गांवों में रहती है। जिनकी आय बहुत ही कम और असीमीत है। व्यय अधिक और अनावश्यक होता है जिससे ग्रामीण जनता ऋणग्रस्त हो जाती है। वह ऋण उनकी पीढ़ियों तक चलता रहता है। यह ऋण ही उन्हें दरिद्रता की ओर घसीटता चला जाता है। कई तत्वों को ध्यान में रखकर दरिद्रता का निश्चय किया जाता है क्योंकि दरिद्रता की परिभाषा इस प्रकार बतलाई जाती है कि आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाना ही दरिद्रता है।

(२) ऋणग्रस्तता एवं बेकारी (Indebtedness and Unemployment)

पीछे हमने भारतीय ग्रामीण जीवन की निर्धनता से सम्बन्धित कुछ प्रमुख आर्थिक कारणों की विवेचना की। ऋणग्रस्तता आधुनिक युग की एक विकट समस्या है। भारतीय किसानों की निर्धनता को बढ़ाने में ऋणग्रस्तता का भी कम हाथ नहीं है जिसके कारण ग्रामीण जनता ऋण ग्रस्त होती जा रही है। और यह ऋण पीढ़ियों तक चलता रहता है। इस प्रकार यह ऋण जनता को दरिद्रता की ओर घसीटता हुआ ले जाता है और भारतीय किसानों की आय इतनी कम है कि न कृषि में ही थोड़ी सी रकम लगाने के लिये, किसी कारण फसल के मारे जाने पर, लगान अदा करने के लिए अथवा विवाह एवं मृत्यु सम्बन्धित व्यय के लिए ऋण का आश्रय लेना पड़ता है। यह ऋण किसान, ग्रामों में अधिकतर महाजनों से लेते हैं।

भारतीय किसान अधिकतर ऋण (Ioan) लेकर ही शादी ब्याह एवं मृत्यु के किसी भी आकस्मिक कार्यों में खर्च करते हैं। यह उधार देने का काम ग्रामों में अधिकतर सूदखोर साहूकारों (महाजन) ही करते हैं। जिससे किसानों को काफी हानि उठानी पढ़ती है क्योंकि गांवों में महाजन लोग किसानों की अज्ञानता अशिक्षा तथा असहाय व्यवस्था और कष्ट का अत्यधिक लाभ उठाते हैं।

अखिल भारतीय साख सरवेंक्षण (All India Rural Credit Survey 1951-52) के अनुसार इस देश के कृषक अपने पारिवारिक ऋणों का ६५.७ प्रतिशत साहूकारों से, १०.३ प्रतिशत रिश्तेदारों से, ५.५ प्रतिशत सरकारी समितियों से, ७.५ प्रतिशत सरकार से एवं ११ प्रतिशत अन्य संस्थाओं से प्राप्त करते हैं। यह साहूकार लोग १५.७ प्रतिशत तक सूद लेते हैं। ऋण के परचे पर मनमानी रकम लिख कर अशिक्षित, अज्ञान किसानों से अंगूठा लगवा लेते हैं। वसूल (प्राप्त) किये हुए रुपयों की न रसीद देते हैं और न ही कुछ किश्तों को अपने खाते में चढ़ाते हैं। ब्याज चक्रवृत्ति दर (Compound Rate) पर वसूल करते हैं। जिससे किसानों को ब्याज अधिक संस्था में देना पड़ा है। जब किसान फसल की उपज को घर लाता है तो महाजन बहुत ही सस्ते दामों पर ले लेता है जिसके कारण एक बार ऋण लेकर किसान को कई पीढ़ियों तक कर्ज के भार से दबा रहना पड़ता है। उपरोक्त विवेचन से अनुभव होता है कि गांवों में सहायक उद्योगों का अभी तक अभाव है। किसान बड़ा समृद्धिशाली हो सकता है यदि वह वर्ष भर कार्य करे। परन्तु आधुनिक युग में ग्रामों में कृषि पद्धति प्राचीन एवं दकियानूसी

प्रकार की है। इस लिए वे अधिक उत्पादन नहीं कर पाते हैं जितना कि अन्य देशों में उतनी ही भूमि में किसान करते हैं। इसके साथ ही साथ भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त है, इसलिए अनार्थिक है। छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त होने के कारण उपज बहुत ही कम होती है। ऊपज कम होने के साथ ही साथ लाभ भी घट जाता है। क्योंकि जब एक किसान अपने खेत के एक छोटे से टुकड़े पर से आवश्यक वस्तुओं को उपलब्ध नहीं कर सकता। प्राय: एक छोटे से क्षेत्र में कृषि सम्बन्धी सभी यन्त्रों की आवश्यकता होती है। जिनका कि व्यय अधिक होता है और न ग्रामीण किसान उनका प्रयोग जानता है जिसकी वजह से न कृषि में उन्नति करने के लिए अधिक संख्या में रकम लगा सकता है और न ही फसल के मारे जाने पर उसका लगान अदा कर पाते हैं तथा न अपने चढ़े हुए ऋण का समाधान कर सकते हैं। अनुमान किया जाता है कि ग्रामिण जनता का कर्ज का बोझ ८५६००० रु० से कम न होगा।

गत चार वर्षों में साहूकारों के अनुचित शोषण एवं हरकतों से कर्जदार किसानों की रक्षा करने के लिए सरकार द्वारा अनेक एक्ट पास किये गये हैं। इन विधियों से अवश्य कुछ सहूलियत मिली है परन्तु अभी तक उनकी समस्याओं का पूर्ण रूप से निवारण नही हो पाया है। आजकल इस समस्या को कुछ सीमा तक हल करने के लिए केन्द्रीय सरकारी बैंक (Central co-operatve Bank) और उसकी कुछ शाखांए देश के प्रत्येक नगर में कार्य कर रही हैं। इन बैंकों से किसानों को कर्ज कम सूद पर मिलता है जिससे ग्रामीण किसान महाजनों से रुपये लेने के बजाय केन्द्रीय सहकारी बैंकों से लेते हैं। इस प्रकार साहूकारों से लिया हुआ कर्ज कम होता है और ग्रामीणों को अधिक लाभ होता है। कुछ राज्यों में भूमि बन्धक बैंक भी बहुत ही अच्छा एवं सुव्यवस्थित कार्य कर रहे हैं। State Bank ने भी सन् १९६० से १९६१ ई तक ४१५ नई शाखाएं खोलकर इस विकट एवं विशाल आन्दोलन में योग दिया। सन् १९६१-६२ ई० के अन्तिम समय तक किसानों को सहकारी आन्दोलन के द्वारा १७५ करोड़ रुपयों के अल्पकालीन ऋण १७५ करोड़ रुपयों के मध्यकालीन ऋण और ७५ करोड़ रुपयों के दीर्घ कालीन ऋण दिलाये जायेंगे।

(३) बेकारी (Un-employment)

ग्रामीण विघटन के अनेक प्रमुख कारकों में से बेकारी भी एक प्रमुख कारक है। गांवों में कृषि हीन मजदूरों की समस्या विशेष रूप से पाई जाती है। यह समस्या अनार्थिक खेती और खेतों का बिखरा हुआ होना आदि है। ग्रामीण बेकारी का सीधा सम्बन्ध ऋण ग्रस्थता से है कुटीर उद्योगों और

कृषि के सहायक उद्योगों के अभाव ने ग्रामीण बेकारी को अधिक बढ़ा दिया है। ऐसा अनुमान है कि भारतीय गांव में ५० प्रतिशत से अधिक व्यक्ति बेकार हैं। इस बेकारी का प्रमुख कारण किसानों के पास भूमि का न होना है। इसलिये भूमिहीन कृषकों के पास जीविका उपार्जन का अन्य कोई साधन नहीं होता। कृषि श्रम जांच समिति के विवरण के अनुसार ४६० लाख व्यक्ति भूमिहीन मजदूर हैं। आज बिहार, उड़ीसा, मद्रास, मैसूर, ट्रावनकौर, कोचीन, हैदराबाद व मध्यप्रदेश में भूमिहीन मजदूरों की समस्या अत्यन्त प्रबल है। जनसंख्या का तेजी से बढ़ना तथा ऋण ग्रस्तता भी बेकारी के प्रमुख कारण हैं। प्राय: १६ प्रतिशत भूमि-हीन मजदूर तो सम्पूर्ण वर्ष बेकार रहते हैं सरकार इस समस्या को दूर करने का भरसक प्रयत्न कर रही है।

(५) निम्न स्वास्थ्य (Low Health)

ग्रामीण विघटन के प्रमुख कारकों में निम्न स्वास्थ्य का कारक ही प्रमुख स्थान रखता है। समाज के पुनर्निर्माण और उत्थान में स्वास्थ्य का एक बुनियादी स्थान है। कृषकों की कार्यक्षमता एवं उत्पादन वृद्धि आदि उसके स्वास्थ्य पर ही निर्भर है। इस भांति किसी देश के कृषकों और श्रमिकों का स्वास्थ्य ही वहां की कृषि और उद्योगों के विकास में विशेष महत्व रखता है। केवल दुर्घटनाओं और रोगों से मुक्ति प्राप्त कर लेना ही स्वास्थ्य नहीं हो बल्कि शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के संतुलित विकास और व्यक्ति के सम्पूर्ण भौतिक और सामाजिक वातावरण में उपयुक्त सामन्जस्य को ही स्वास्थ्य कहा जा सकता है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में इस विषय की महान समस्या व्याप्त है जीवन की सुरक्षा के समस्त समुचित साधनों के अभाव में भारत में केवल ३२ साल ही औसत आयु निर्धारित की जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में हैजा, चेचक, प्लेग, ज्वर आदि ऐसी अनेक बीमारियों का अखंएड साम्राज्य है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार लगभग दो लाख व्यक्ति हैजा, ७१ हजार चेचक, २५ हजार प्लेग, ३३ लाख ज्वर, २ लाख पेचिस, ४ लाख साँस तथा १५ लाख व्यक्ति अन्य रोगों से भारत में प्रत्येक वर्ष मृत्यु को प्राप्त करते हैं। इन आंकड़ों से ग्रामीण व्यक्तियों की संख्या अधिक है। इसका कारण अपौष्टिक व अपर्याप्त भोजन, रहने के गन्दे घर, शुद्ध पानी का अभाव, चिकित्सा की कमी, गन्दगी और कूड़ा करकट हटाने की व्यवस्था की अनुपस्थिति और स्वास्थ्य शिक्षा का अभाव तथा निम्न आर्थिक अवस्था आदि हैं।

इण्डियन कौंसिल आफ मेडिकल रीसर्च (Indian Council of Medical Research) ने भारतीय ग्रामीणों के भोजन का विविध प्रान्तों में

सर्वेक्षण कराया है । इस सर्वेक्षण में खाद्यान्न ४१.६ प्रतिशत दालें ७३.३ प्रतिशत सब्जियाँ ७५.६ प्रतिशत, घी और तेल ७६.५ प्रतिशत, फल ३०.७ प्रतिशत, दूध ६७.२ प्रतिशत, मांस ५६.७ प्रतिशत, चीनी और गुड़ ६४.४ प्रतिशत का अभाव बताया गया है ।

स्वस्थ पोषण प्राप्ति के अभाव के कारण ग्रामीण जनता का स्वास्थ्य निम्न तो है ही, परन्तु गाँवों में भयंकर रोगों तथा अस्वास्थ्यकर वातावरण के कारण भी ये लोग जीर्ण शीर्ण दिखाई देते हैं । भारत में विभिन्न प्रकार के रोग पाये जाते हैं । प्रमुख निम्न हैं :—

(१) मलेरिया (Malaria)

इस रोग से हर वर्ष १० करोड़ व्यक्ति पीड़ित होते हैं । इस रोग के प्रकोप से कृषि, निर्माण तथा उद्योगों में भीषण क्षति उठानी पड़ती है ।

(२) तपेदिक (T. B.)

इस रोग से ५०,००० व्यक्ति प्रति वर्ष मौत के घाट उतर जाते हैं । यह एक अत्यन्त भयंकर रोग है । इस रोग के निवारण के लिये गांव गांव में घूम घूम कर बी० सी० जी० के टीके लगाये जा रहे हैं।

(३) कुप्रसंग रोग (Veneral Dieseases)

भारत में इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों का अन्दाज लगाना मुश्किल है । परन्तु यह निश्चित है कि प्रत्येक हजार व्यक्तियों में लगभग ३७ व्यक्ति इनसे पीड़ित हैं। भारत सरकार इस रोग के निवारण के लिये प्रयत्नशील है।

(४) कोढ़ (Leprosy)

भारत में इस रोग से पीड़ितों की संख्या लगभग १० लाख है । गांधी स्मारक निधि के द्वारा गांव में इस रोग के निवारण का प्रयोग किया जा रहा है ।

इन प्रमुख रोगों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य की भी शोचनीय अवस्था है । स्त्रियाँ परिवार के समस्त कार्यों का संचालन करने के उपरान्त खेतों में भी दिन भर कार्य करती हैं । इस दृष्टि से वे समय पर बच्चों की देखभाल नहीं कर सकती। इसलिये ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों और बच्चों के स्वास्थ्य पर ध्यान देने की आवश्यकता हैं ।

ग्रामीण जीवन में पोषण, भोजन व रोगों की समस्या के अतिरिक्त समुचित स्वस्थ वातावरण का भी अभाव हैं । ग्रामवासी व्यक्तिगत, सामुदायिक व निवास स्थानों की सफाई की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं देते । इसके अतिरिक्त गाँव में मेला और कूड़ा करकट साफ करने और फैंकने की कोई उचित व्यवस्था नहीं है । परि-

ग्रामत: गढ्ढो में पानी सड़ना और कीचड़ आदि में जमा रहने से गांवों का सामान्य वातावरण बहुत गन्दा रहता है। यह सब परिस्थितियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न स्वास्थ्य का विकास करती रहती हैं। इसका कारण भारतीय ग्रामीण जनता की दरिद्रता भी है।

(५) निवास व्यवस्था (Housing)

अच्छे स्वास्थ्य के लिए रहने के अच्छे स्थान का होना अत्यन्त आवश्यक है। समाजकल्याण, स्वास्थ्य और अच्छे घरों में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। हमारी ८३ प्रतिशत जनता गांवों में रहती है। उनके घर अधिकतर मिट्टी के बने होते हैं। उनमें सफाई और रोशनी का कोई उचित प्रबन्ध नहीं होता। शहरों में विशेषकर औद्योगिक नगरों में तो घरों की समस्या और भी विकट रूप धारण कर चुकी है। पिछले १३-१४ सालों में शहरो की जनसंख्या में असाधारण वृद्धि हुई है। सन् १९४१ से ५१ ई० में ही इस वृद्धि का अनुपात ५४ प्रतिशत रहा है। इसके विपरीत घरो की संख्या में मकान बनाने के सामान की कमी और ऊंची कीमतों के कारण कुछ विशेष वृद्धि नही हुई है। इसके अतिरिक्त विभाजन के बाद शरणार्थियों के आगमन के निवास की समस्या को और भी जटिल बना दिया है। शहरों में अधिकांश मजदूर बहुत ही गन्दी बस्तियों में रहते हैं। वहाँ पानी और रोशनी का कोई उचित प्रबन्ध नहीं है। घरों के सामने ही मेला और गन्दा पानी सड़ता रहता है। एक एक छोटे कमरे में पाँच पांच छ: छ: व्यक्ति रहते हैं रहने की यह अवस्था स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकर है। ग्रामीण लोग मकानों को बनाते समय हवा, रोशनी का लेशमात्र भी ध्यान नहीं रखते। एक ही कोठरी में जीवन की समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास करते हैं। लगभग ५ करोड़ ४० लाख मकान ऐसे हैं जिसमें इस बात का लेशमात्र भी ध्यान नहीं रक्खा गया है।

(६) अशिक्षा (Illitracy)

ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा का अखंड साम्राज्य है। आदिकाल से ग्रामीण निरा मूर्ख और अनपढ़ है। इन लोगों को लेशमात्र भी अक्षरज्ञान नहीं होता, इनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है ग्रामीण प्रौढ़ों पर ही नहीं बल्कि बालकों, बालिकाओं की शिक्षा पर भी लेशमात्र ध्यान नहीं दिया जाता। ग्रामीण जीविकोपार्जन की क्रिया में ही इतने संलग्न रहते है कि उनको शिक्षा के लिये अवसर ही नहीं मिलता बड़े आश्चर्य का विषय है कि केवल २ प्रतिशत ग्रामीण शिक्षित हैं। इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण जीवन में अशिक्षा का अखंड साम्राज्य व्याप्त है। इसके अतिरिक्त इनकी सामाजिक आर्थिक दशाओं की विचित्रता ने उन्हें निरक्षर बना रक्खा है।

शिक्षा के अभाव में वे लोग जीवन के अन्य क्षेत्रों में तो प्रगति कर ही नहीं पाते बल्कि उनके मूल व्यवसाय कृषि में भी अत्यन्त अवनति प्रतिलक्षित होती है। अतः यह स्पष्ट है कि अशिक्षा के कारण उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति भी अत्यन्त विघटित है। ग्रामों की वर्तमान सामाजिक, आर्थिक स्थिति अत्यधिक विघटित होने के कारण आने वाली सन्तान को भी इसका सामना करना पड़ता है। पर चूंकि उसे भी शिक्षा नहीं मिल पाती, अतः यह बिगड़ी दशा और बिगड़ जाती है। ग्रामों में शिक्षा का अभाव होने के कारण वे अपने मुख्य व्यवसाय कृषि को आधुनिक साधनों द्वारा उन्नत नहीं बना सकते और न ही इनकी आर्थिक दशा में किसी प्रकार का सुधार आ सकता है। अब अर्थ का सदैव अभाव रहेगा तो विघटन सदैव बना ही रहेगा। अशिक्षा के अभाव से वे अपने जीवन को सुव्यस्थित नहीं बना सकते। उनका जो शोषण किया जाता है उससे वे मुक्ति नहीं पा सकते। आधुनिक साधनों का उपयोग कर उनसे लाभ नहीं उठा सकते हैं। शिक्षा के अभाव के कारण वे अपनी समस्याओं का अवलोकन नहीं कर सकते। यदि कोई प्रशिक्षित पुरुष उन्हें उनकी समस्याओं को समझकर निवारण करता है या करने के उपाय बताता है तो, वे शिक्षा अभाव के कारण रूढ़िवादी होते है और उसके प्रति घृणा और अविश्वास करते हैं। अतः वे अपनी रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास तथा कुसंस्कार में जकड़े रह जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा के अभाव के कारण ग्रामीणों के शारीरिक मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक सभी विकास रुक जाते हैं। बल्कि जब शिक्षा के अभाव के कारण स्वयं एक व्यक्ति अपना जीवन सुव्यवस्थित नहीं बना सकता तो कैसे सम्भव है कि समस्त ग्रामीण व्यक्तियों जिनका जीवन अधिकांश अशिक्षित है, अपने जीवन को सुव्यवस्थित बना सके। अतः शिक्षा का अभाव होना ग्रामीण विघटन का एक प्रमुख कारण बन जाता है।

ग्राम विकास व सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों के अन्तर्गत इस क्षेत्र में उन्नति करने के प्रयास किये जा रहे हैं जिनका अध्ययन हम ग्रामीण पुनर्निर्माण के खण्ड के अन्तर्गत करेंगे।

(७) अस्पृश्यता (Untouchability)

जातिप्रथा और अस्पृश्यता भारत के सामाजिक जीवन का एक अद्वितीय अभिशाप है। विश्व के किसी भी भाग में इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था नहीं पाई जाती जहाँ व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य अस्पृश्यता दृष्टिगोचर होती हो। ग्रामीण समाज व्यवस्था में तो इस कलंक का रूप और भी जटिल पाया जाता है। वहाँ व्यक्तियों में एक दूसरे से इतनी घृणा तथा अस्पृश्यता पाई जाती है तथा दृष्टि पड़ने तक से अपवित्रता उत्पन्न हो जाती है। इस दृष्टि से यह एक अत्यन्त विचारणीय

सामाजिक समस्या है। यह समस्या ग्रामीण विघटन का एक प्रमुख कारण भी बनी हुई।

अस्पृश्यता ग्रामीण सामाजिक समानता का एक नग्न दृश्य उपस्थित करती है। कुछ जातियों के लोग परस्पर समीप आने एवं दृष्टिगोचर होने तक को अपवित्र तथा अशकुन समझते हैं। इस अपवित्रता को बचाने के लिये गांवों में निम्न जातियों की निवास व्यवस्था पृथक हो गई है। प्रत्येक निम्न जातियों के लिये पृथक निवास व्यवस्था तथा कुछ निषेध आज्ञाएं भी प्रचलित हैं अर्थात् निम्न व दलित जाति के लोगों की कुछ अयोग्यताएं तथा निर्योग्यताएं (Disablities) हैं जिनके आधार पर उनको सामान्य सामाजिक एवं आर्थिक स्तर प्रदान नहीं किया जाता है।

वास्तव में देखा जाय तो इस अस्पृश्यता का अभिशाप भारतीय ग्रामों में व्याप्त जाति प्रथा से ही उत्पन्न हुआ है। यदि हम ग्रामीण निम्न जातियों व दलित वर्गों की स्थिति पर विचार करें तो प्रतीत होगा कि इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हैं। ये लोग गांवों से बाहर अलग किनारे पर टूटी फूटी झोपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। इन्हें स्वतन्त्रता पूर्वक गांव के मध्य तक अन्य सार्वजनिक स्थानों पर प्रवेश भी नहीं करने दिया जाता है। इसके अतिरिक्त उन पर विभिन्न रूप से व्यवसायिक नियंत्रण भी हैं। महात्मागांधी ने इनकी अवस्था का वर्णन करते हुए उचित ही लिखा है, "सामाजिक दृष्टि से वे कोढ़ी हैं। आर्थिक दृष्टि से वे गुलामों से भी बदतर हैं। धार्मिक दृष्टि से उन्हें उन स्थानों, जिन्हें हम भ्रम से भगवान का घर कहते हैं, में प्रवेश निषिद्ध है। उन्हें उन्हीं आधारों पर जिन पर कि स्वर्ण हिन्दुओं को सार्वजनिक मार्ग, सार्वजनिक विद्यालय, सार्वजनिक पार्क तथा अन्य इसी प्रकार की वस्तुओं का प्रयोग निषिद्ध हैं। कुछ मालमों में निश्चित दूरी के अन्दर उनका प्रवेश सामाजिक अपराध है तथा कुछ न्यून मामलों में उनका दर्शन भी अपराध है। उन्हें नगरों तथा ग्रामों में अत्यधिक निकृष्ट भवन निवास के लिये दिये जाते हैं। जहाँ पर प्रायः किसी भी प्रकार की सामाजिक सेवाओं का प्रबन्ध नहीं होता। स्वर्ण हिन्दू वकील तथा डाक्टर उनकी सेवा नहीं करते हैं। ब्राह्मण उनके धार्मिक उत्सवों पर पुरोहित नहीं बनते हैं।"[6]

---

1. "Socially they are lepere Economically, they are worse than slaves Religiously, they are denied entrence to places we miscall house of God. They are denied house on the same terms as the caste Hindu of public roads, public schools, public hospitals, public wells, public taps, public parks and the like. In some cases, their approach within a measured distance in a social crime, and in some other rare

इस दृष्टि से यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय ग्रामीण जीवन में अस्पृश्य, दलित, एवंम अन्य जातियों के लोगों की इस अवस्था के उत्थान हेतु शीघ्र प्रयास करने की आवश्यकता है। सन् १९५१ ई० जन-गणनानुसार इनकी संख्या ५१,४३,८५८ थी। अत: इस क्षेत्र में अनेक सेमींनार किये जा रहे हैं। अनुसूचित एवं दलित वर्गों के उत्थान हेतु अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया गया है। इस सम्बन्ध की अन्य विकास योजनाओं का उल्लेख हम भिन्न अध्याय में करेंगे।

(८) नशाखोरी (Intoxication)

आदिकाल से ही मानव किसी न किसी रूप में नशीली वस्तुओं का प्रयोग करता रहा है। कोई भी उत्सव मनाने के अवसर पर वैवाहिक अवसरों पर या अतिथि सत्कार के अवसरों पर मदिरा या अन्य किसी नशीली वस्तुओं का सेवन किया जाता है। वन्य जाति (Tribal) के लोगों द्वारा बनाई गई शराबें, जो प्राय: अनाज से बनाई जाती थी, स्वास्थ्यानुकूल और हल्की होती थी। पर आज औद्योगिक समाजों में तथा उसके वर्गों में नशाखोरी ने एक भयंकर रूप धारण कर लिया।

पाश्चात्य सभ्यता से अति प्रभावित होकर उनके अनुकरण से भारतीयों ने गौरव का अनुभव कर उच्च समाजों (High Society) में मदिरापान एक फैशन बना लिया है। फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से भारत में अन्य देशों की अपेक्षा शराब का प्रचलन कम है।

भारतीय ग्रामों में कृषकों और मजदूरों के असंगठित और अशिक्षित होने के कारण उनकी मजदूरी, रहनसहन तथा काम करने की अवस्था बहुत ही खराब होने के कारण, दिन भर की कार्य की थकान मिटाने और जीवन में पुन:स्फूर्ति लाने तथा अन्य मनोरंजन के साधनों का अभाव होने के कारण उनके सम्मुख एक अस्वस्थ वातावरण उत्पन्न हो जाता है। इससे मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय मद्यपान ही ग्राम जनता का सहारा है, ग्रामीण व्यक्ति अपनी आय का एक बड़ा

---

enough cases their very sight is an offence. They are relegated for their residence to the worst quarters of citis and villages, where they practically get no social services. Caste Hindu lawyers and doctors, will not serve them, Brahmin will not officiate at their religious functions." Mohatma Gandhi quoted in Harijans Today'. The publication Divisions, Ministry of Infcrmation and Broadcasting, Government of India, New Delhi (1985) p. 2.

हिस्सा शराबखोरी में ही लगा देता है। इससे उनके स्वास्थ्य, परिवार और गांव पर हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं साथ ही निर्धनता अपना घर बनाये रखती है ।

धीरे धीरे भारतीय ग्रामों में कृषकों और मजदूरों के अतिरिक्त अन्य निम्न जातियों के लोगों में भी यह आदत अपना घर बनाने में पूर्णरूप से सफल हुई। वहाँ से धीरे धीरे इसने अपना प्रभाव नागरीकरण के द्वारा नगरों के मजदूरों तथा निम्न वर्गों के लोगों पर डाला है। आज इस नशाखोरी की कुटेब ने भारतीय ग्रामों तथा नगरों में एक भीषण सामाजिक समस्या को जन्म दे रक्खा है। इसका स्वरूप दिन प्रतिदिन विशाल होता जा रहा है। इसे रोकने के लिये भारतीय सरकार ने कानून की मदद ली है। तथा भारत के प्रमुख नगरों, बम्बई, मद्रास, आँध्र में तो शराब बन्दी का नियम लागू कर दिया है। ग्रामों में इसे रोकने का प्रयास किया जा रहा है।

ग्रामों में नशाखोरी को रोकने के साधन

ग्रामों में मजदूरों, कृषकों तथा निम्न वर्गों के लोग अधिकतर नशाखोरी करते हैं। कारण स्पस्ट है कि वहाँ पर उनके मनोरंजन हेतु साधनों का अभाव है। अतः नशाखोरी को कम करने तथा रोकने के लिये इसके उपयोग करने वालों को नशे से होनेवाले नुकसानों का ज्ञान कराया जाता है। इसके सेवन के प्रति घृणा पैदा की जाती है। चित्रपटों द्वारा उन्हें शराबियों की वास्तविक दुर्गति का अवलोकन कराया जाता है। उनके मनोरंजन हेतु सुन्दर चलचित्रों की व्यवस्था की जाती है। उनमें खेल, कबड्डी, कुश्ती के प्रति रूचि उत्पन्न की जाती है गांवों में भजन मण्डलियाँ तथा कीर्तन मण्डलियाँ भेजी जाती हैं। जो गाँव वालों का मनोरंजन कर उनकी थकान दूर करने में योग देती है। साथ ही नशाखोरी को भी कम प्रोत्साहन मिलता है और इसके उपयोग में कमी आती है। इस क्षेत्र में सर्वोदय कार्यक्रम व भारत सेवक समाज आदि संस्थायें बड़ी रुचि ले रही हैं। ये संस्थायें ग्रामीणों से इस सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा पत्र भरवा कर उनको नैतिक प्रभावों से सुधारने का प्रयत्न कर रही है ।

इस भाँति हम ने ग्रामीण सामुदायिक विघटन के प्रमुख स्वरूपों का अध्ययन किया, ग्रामीण जीवन के पुर्नसंगठन के लिये यह आवश्यक है कि इन स्वरूपों को नष्ट किया जाय और ग्रामीण व्यक्तियों को उचित शिक्षा, प्रचार आदि के द्वारा संगठन की ओर प्रेरित किया जाय। इस सम्बन्ध भारत सरकार पंचवर्षीय योजनाओं एवं अन्य आयोजनों के द्वारा प्रयत्नशील है। ग्रामीण पुनीनर्माण के प्रयत्न तीव्रगति से चल रहे हैं जिनका विस्तृत वर्णन हम अगले विभाग में करेंगे ।

तृतीय खण्ड

ग्रामीण पुनर्निर्माण
(Rural Reconstruction)

अध्याय २७

ग्रामीण पुनर्निर्माण
(Rural Reconstruction)

ग्रामीण विघटन एवं समस्याओं पर दृष्टिपात करने के उपरांत हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम ग्रामीण पुनर्निर्माण पर विचार करें। इस उद्देश्य से हम इस अध्याय में ग्रामीण पुनर्निर्माण के विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डालकर समझाने का प्रयास करेंगे।

ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य में आज अनेक रूप से प्रयत्न किये जा रहे हैं। यह विचार धारा आज के युग में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए है। ग्रामीण पुनर्निर्माण की विचारधारा को समझने के लिये हमें प्रथम सामाजिक पुनर्निर्माण को समझ लेना आवश्यक है। ग्रामीण पुनर्निर्माण एक दृष्टि से सामाजिक पुनर्निर्माण का ही रूप है। अतः हम यहां प्रथम सामाजिक पुनर्निर्माण पर दृष्टिपात करेंगे।

सामाजिक पुनर्निर्माण
(Social Reconstruction)

सामाजिक पुनर्निर्माण वह विचारधारा है जो समाज में विभिन्न बाधाओं एवं समस्याओं को दूर करके सामाजिक ढांचे को फिर से संगठित और व्यवस्थित करती है। सामाजिक पुनर्निर्माण समाज में व्याप्त संस्थाओं एवं मूल्यों पर आधारित एक नवीन निर्माण है जिसका उद्देश्य उपस्थित विघटित अवस्थाओं को सुधार कर एक उच्चत्तर तथा अधिक सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का विकास करना है। सामाजिक पुनर्निर्माण सामाजिक गतिशीलता के प्रभावों को कम करता है। इसकी धारणा भी स्थिर नहीं बल्कि गतिशील है। इसमें समय, काल और गति की छाप होती है। सामाजिक पुनर्निर्माण सम्बन्धी विचार भी प्रथक् प्रथक् होते हैं। प्रत्येक विचारधारा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण और अनुभव के आधार पर सामाजिक अवस्थाओं, संस्थाओं या समस्याओं का मूल्यांकन करती है। सामाजिक अवस्थाओं के पुनर्निर्माण सम्बन्धी विचार इन्हीं आधारों पर विकसित तथा निर्मित होते हैं और इसी प्रकार ये विचारधारायें एक सिद्धान्त या सम्प्रदाय के रूप में विकसित हो जाती हैं। यदि हम यहाँ सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रमुख सिद्धान्तों का प्रतिवेदन करें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रमुख सिद्धान्त :
(Main Theories of Social Reconstruction)

सामाजिक पुनर्निर्माण एक प्राचीन समष्टि है। दीर्घकाल से इस क्षेत्र में अनेक सिद्धान्त पाये जाते हैं, इनमें से प्रमुख निम्न हैं :—

(१) उपयोगितावाद (Utilitarianism)

यह सिद्धांत उपयोगिता पर बल देता है। इस सिद्धान्त के समर्थकों का कथन है कि किसी भी कार्य व वस्तु की उपयोगिता इसी बात पर निर्भर है कि इसके द्वारा व्यक्ति को कितना आनन्द, सुख, हर्ष अथवा लाभ प्राप्त हो रहा है। तात्पर्य यह है कि समाज में पुनर्निर्माण के हेतु पुरानी और बेकार प्रणालियों, कानूनों एवं विचारधाराओं को परिवर्तित किया जाय।

(२) साम्यवाद (Communism)

सामाजिक पुनर्निर्माण का यह भी एक प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धांत के आधार पर रूस व चीन आदि देशों ने पुनर्निर्माण का कार्य किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज व्यवस्था, समानता एवं वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था तथा आर्थिक शोषण रहित समाज की स्थापना आदि करना है। साम्यवादी पुनर्निर्माण योजना में आत्मा परमात्मा आदि का कोई स्थान नहीं होता है। इस योजना में शिक्षा, दर्शन, इतिहास तथा विज्ञान सभी का एक व्यावहारिक लक्ष्य है।

(३) संघवाद (Guildism)

यह वाद नवीन सामाजिक संगठन का आधार बताता है। अराजकतावाद की भाँति संघवाद राज्य विहीन समाज का समर्थक है। विभिन्न सामाजिक संस्थात्मक संगठनों के निर्माण के द्वारा पुनर्निर्माण किया जाता है।

(४) समाजवाद (Socialism)

समाजवादी विचारधारा भी सामाजिक पुनर्निर्माण में उल्लेखनीय स्थान रखती है। यह भी सरकारी अस्तित्व के विरुद्ध है और स्थानीय संस्थाओं द्वारा समानता एवं आर्थिक सामाजिक सहयोग में विश्वास रखती है।

(५) श्रेणी समाजवाद (Guild Socialism)

श्रेणी समाजवाद समष्टिवाद तथा संघवाद के बीच का मार्ग ग्रहण करके एक नवीन विचारधारा का विकास करता है। यह सामान्य तथा सार्वजनिक हितों की राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक धारणाओं के बीच समन्वय स्थापित करने का एक प्रयास है।

(६) समष्टिवाद (Collectivism)

व्यक्तिवाद के सर्वथा विपरीत समष्टिवाद राज्य को एक लाभप्रद संस्था मानता है। इसी कारण से इसकी यह प्रमुख धारणा है कि राज्य का अधिक से अधिक विस्तृत कार्यक्षेत्र हो। राज्य के माध्यम से ही सामाजिक पुनर्निर्माण की योजनाएं सम्भव है। इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक पुनर्निर्माण के दो प्रमुख आधार हैं। प्रथम प्रजातंत्रीय राज्य द्वारा सामाजिक जीवन का अधिक से अधिक नियमन और द्वितीय सम्पत्ति का उचित वितरण हो।

(७) गांधीवाद : ग्रामीण पुनर्निर्माणवाद
(Gandhism : Rural Reconstructionism)

सामाजिक पुनर्निर्माण के सिद्धान्तों में गांधीवाद का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। गांधी जी के सामाजिक पुनर्निर्माण सम्बन्धी विचारों में ग्रामीण पुनर्निर्माण की योजनाएं ही हैं। इनके विचारों के अनुसार प्रशासन, उत्पादन तथा सामाजिकता आदि की मूल ईकाई गांव ही है। गांधी जी द्वारा प्रस्तावित ग्रामराज्य अथवा रामराज्य की कल्पना स्वावलम्बी व्यक्तियों और गांवों का संघ है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"मेरा ग्राम स्वराज्य का आदर्श यह है कि प्रत्येक गांव एक पूर्ण गणराज्य हो। अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिये वह अपने पड़ौसियों पर निर्भर न रहे। प्रत्येक गांव का यह पहला काम होगा कि वे खाने के लिये अन्न और कपड़े के लिए रूई की फसलों को उत्पन्न करें। पशुओं के लिये चरागाह, खेल कूद के मैदान और रुपया कमानेवाली लाभप्रद फसलें उत्पन्न की जायें। गांजा, अफीम, तम्बाकू, मदिरा से नशा एवम् जुआ, मुकदमेबाजी आदि का लेशमात्र भी स्थान न हो। बुनियादी शिक्षा ग्रामीण जीवन में अनिवार्य शिक्षा होगी। सहकारिता के आधार पर आर्थिक क्रियाएं संचालित हों। अस्पृश्यता, जातियतावाद आदि का स्थान ग्राम समाज में नहीं रक्खा जाय। गांव का शासन पंचायत द्वारा संचालित हो। गांव व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के आधार पर बना पूर्ण लोकतन्त्र हो।"

इस प्रकार गांधीवाद ग्रामीण पुनर्निर्माण के नाम से परिभाषित किया जा सकता है। डा० पट्टाभिसीतारमैया के अनुसार गांधीजी का स्वराज्य ग्राम स्वराज्य की ही पुनःस्थापना है। ग्राम स्वराज्य से समस्त स्थानीय समस्याएं सुलझाई जायंगी। गृह उद्योग तथा हस्त कलाओं की समृद्धि इसी राज्य के अंतर्गत सम्भव है। ग्राम्य यातायात का सुधार और स्वास्थ्य की समस्या का उचित समाधान खोजा जायगा। जनशिक्षा प्रदर्शनियां तथा पुस्तकालय आदि की व्यवस्था होगी। राष्ट्रीय परम्परा, जीवनदर्शन और धार्मिक विश्वास तथा साम्प्रदायिक एकता प्राप्ति के लिये समितियों की स्थापना अनिवार्य है।

अतः यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि सामाजिक पुनर्निर्माण में ग्रामीण पुनर्निर्माण अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त गांधी जी की विचारधाराओं के अनुसार ग्राम पुनर्निर्माण का कार्य बड़ी द्रुतगति से किया जा रहा है।

समाजशास्त्रीय अध्ययन के क्षेत्र में यह विषय अत्यन्त अनिवार्य है। भारत की राष्ट्रीय सरकार भी इस दिशा में विशेष रूप से प्रयत्नशील है। ग्रामीण पुनर्निर्माण की योजना एक नये युग और नयी समाज व्यवस्था की कल्पना है। यह मुख्य रूप से भारतीय समाज को पुनर्संगठित करने की योजना है। भारत की उन्नति एवम् विकास का यदि कोई विशिष्ट मार्ग है, तो वह ग्रामीण पुनर्निर्माण ही हो सकता है। अतः अब हम भारत की अमूल्य निधि को पहचानने की दृष्टि से तथा इसका उचित मूल्यांकन करने के उद्देश्य से प्रथम इसके अर्थ को जानने का यत्न करेंगे।

ग्रामीण पुनर्निर्माण का अर्थ
(The meaning of Rural Reconstruction)

ग्रामीण पुनर्निर्माण गांधीवादी विचारधारा का प्रमुख आधार है। ग्रामीण आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं का अन्त कर समाज की नवीन स्थापना की प्रक्रिया ग्रामीण पुनर्निर्माण के नाम से सम्बोधित की जाती है। ग्रामीण पुनर्निर्माण भारत का पुनर्निर्माण है। यह ग्रामीण जनता में नवीन चेतना लाने वाला अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार है। यह विचार स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अत्यन्त प्रमुखता प्राप्त किये हुए है। यह विचार एफ. ए.ओ. के प्रमुख उद्देश्य पर आधारित है। इस संस्था ने समस्त विश्व में ग्रामीण जनसंख्या की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया है। इस कार्य में अनेक राजकीय, अर्धराजकीय एवम् व्यक्तिगत ग्रामीण संगठनों का सहयोग प्राप्त है। यह कार्य भारत के सात लाख गांवों के ग्रामीण जीवन को उन्नत बनाने में अत्यन्त अग्रणीय है। ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्य एक यांत्रिक तथा प्रावैधिक प्रक्रिया के रूप में कार्यान्वित है। ग्रामीण पुनर्निर्माण की प्रकृति कलात्मक है अर्थात् यह एक कला है। ग्रामीण पुनर्निर्माण का अर्थ नवीन निर्माण एवं दुबारा रचना करना है। पूर्ण रूप से नवनिर्माण के आन्दोलन को ही वर्तमान युग में पुनर्निर्माण (Reconstruction) के नाम से परिभाषित किया जाता है।

यदि हम इस शब्द का शाब्दिक विश्लेषण करें तो इसका अर्थ और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। ग्रामीण शब्द ग्राम में रहने वाले समाज से सम्बन्धित

है। पुनः का अर्थ है फिर से, दुबारा अर्थात् नवीन क्रियाओं से है, और इसी प्रकार निर्माण एक विशेष प्रकार की क्रिया तथा किसी वस्तु को नवीन रूप देने, अर्थात् नव आसन पर बैठाने तथा विशेष वेशभूषाओं से अलंकृत करना है। पुनर्निर्माण और नवनिर्माण सदा समाज के मंच पर होता है। ग्रामीण समाज के मंच पर होने वाली इस प्रक्रिया को ग्रामीण पुनर्निर्माण के नाम से सम्बोधित किया जाता है। स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि ग्रामीण पुनर्निर्माण वह अभिव्यक्ति है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त अभावों, समस्याओं एवं बुराईयों का पूर्ण रूप से निराकरण कर ग्रामीण समाज को नवीन ढांचे में प्रस्तुत किया जाता है। ग्रामीण पुनर्निर्माण शब्द का उद्रेक प्रधानतः हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ है। हमारा देश गांवों का देश है इसलिये इस देश का नव निर्माण ग्रामीण पुनर्निर्माण के नाम से प्रयुक्त किया जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि ग्रामीण पुनर्निर्माण एक वह क्रान्ति है जो ग्रामीण आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे को एक नवीन रूप प्रदान करेगी। हमारे देश भारतवर्ष में इस समय सरकार और जनता का ध्यान ग्रामीण समाज के उत्थान की ओर केन्द्रित है। इस नवीन कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं द्वारा नवीन कल्पना को साकार रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास ही ग्रामीण पुनर्निर्माण है। ग्रामीण पुनर्निर्माण एक अहिंसात्मक एवं शान्तिपूर्ण योजना है जो ग्रामीण जनता के रहन सहन के स्तर, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, उत्पादन तथा उद्योगों की वृद्धि कर जीवन में सुख तथा समृद्धि प्राप्त करने का एक प्रबल कदम है। भारतीय ग्रामीण जनता में व्याप्त दरिद्रता का नाशकर प्रगतिशील देशों की तुलना में समानता प्राप्त करने का एक प्रयत्न है।

प्रत्येक राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय परम्पराओं एवं विश्वासों के आधार पर भविष्य का रूप निर्धारित करता है। राष्ट्रपिता महात्मागांधी ने भारत के भविष्य का निर्माण करने के लिये ग्रामीण पुनर्निर्माण सम्बन्धी इस नवीन योजना का प्रतिवेदन किया है। इसीलिये गांधीवादी प्रयोगों पर आधारित यह शान्तिपूर्ण परिवर्तन जो आर्थिक और सामाजिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रताओं पर आधारित है, ग्रामीण पुनर्निर्माण के नाम से हमारे सम्मुख उपस्थित है। वर्ग संघर्ष, जातिविरोध, शिक्षा, शक्ति और सम्पत्ति के क्षेत्र में यह एक प्रगतिशील कदम है।

ग्रामीण पुनर्निर्माण की आवश्यकता एवं महत्व

(Necessity and Importance of Rural Reconstruction)

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त ग्रामीण पुनर्निर्माण सम्बन्धी विचार धारा का हमारे देश में विशेष रूप से विकास हो रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति

के उपरान्त तो इस विचारधारा का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। यह सर्वविदित सत्य है कि भारत प्राथमिक रूप से एक ग्रामीण देश है और इसकी समृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों की समृद्धि है। अतः स्वतन्त्र भारत की यह प्रथम विचार-धारा है जो ग्रामीण समुदाय के विकास की ओर केन्द्रित है। इसके अतिरिक्त वर्तमान युग जन-साधारण का युग है। समस्त विश्व में ग्रामीण समुदाय की उन्नति के प्रयत्न होते रहे हैं। अन्न और कृषि संगठन (Food and Agricultural Organisation) जो (F. A. O.) के नाम से जाना जाता है, का मुख्य उद्देश्य भी ग्रामीण समाज का विकास ही है। ग्रामीण विकास के उपरान्त ही भारत अन्य देशों की तुलना में समान स्तर प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं कि भारत की ८२.७ प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है जहां कनाड़ा की ४६ प्रतिशत, उत्तरी आयरलैंड की ४९ प्रतिशत, फ्रांस की ५१ प्रतिशत जनसंख्या ही ग्रामीण है। इस तरह अन्य देशों की तुलना में भी ग्रामीण पुनर्निर्माण की आवश्यकता इस देश के लिये राष्ट्रीय समृद्धि में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भरतीय कृषि के रॉयल कमीशन (Royal Commission) ने भी ग्रामीण समस्याओं और विकास पर बल दिया है। इस प्रकार ग्रामीण पुनर्निर्माण की समस्या एक बहुद्देशीय समस्या है। इस समस्या के अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्ये सम्बन्धी आदि सभी समस्याओं को संगठित एवं संस्थात्मक रूप से ग्रामीण पुनर्निर्माण के अन्तर्गत ही दूर किया जा सकता है। ग्रामीण पुनर्निर्माण उन सुविधाओं, प्रयोगों तथा प्रयत्नों का जाल है जो अपेक्षित परिणाम प्रदान कर सकता है। ग्रामीण पुनर्निर्माण में वे ही व्यक्तित्व सफलता प्राप्त करते हैं जो निस्वार्थ भावना से ग्रामीणों का विश्वास प्राप्त कर लेते हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण ग्रामीण समाज का भौतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक एवं सामाजिक-आर्थिक विकास है। इस आन्दोलन के द्वारा न केवल ग्रामीण व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाया जाता है बल्कि उसको आत्म सन्तुष्ट, आत्मविश्वासी तथा आत्माभिमानी के गुण भी प्रदान किये जाते हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण ही ऐसा व्यवस्थित एवं सह-सम्बन्धित प्रयत्न है जो ग्रामीण जीवन में व्याप्त समस्याओं का निवारण कर सकता है। विश्वविख्यात कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर ने इस सम्बन्ध में कहा है कि गांव स्त्रियों के समान हैं जो अपने रक्त सम्बन्धों में ही सम्बन्धित हैं। यह अपने व्यक्तियों की प्राथमिक आवश्यकताओं—अन्न एवं वस्त्र—की पूर्ति करता रहता है। ग्रामीण सौन्दर्य से यह स्त्री अलंकृत है। परन्तु यदि इस स्त्री पर निरन्तर इच्छाओं के आघात बढ़ जाते हैं तो यह संवेगात्मक बन जाती है तथा इसका जीवन एवं मस्तिष्क भी नीरस तथा दरिद्र हो जाता है। भारत के ग्राम इसी स्थिति में हैं। ग्रामीण

जीवन में पुनर्निर्माण आज के युग की प्रथम आवश्यकता बन गई है।

ग्रामीण पुनर्निर्माण की आवश्यकता पर स्पष्ट रूप से विचार करने के लिये हमें पुरातन ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था को नहीं भूलना चाहिये। इसके अतिरिक्त ग्रामीण विघटन तथा व्याप्त समस्याओं का दिग्दर्शन भी हमें सदा अपने सम्मुख रखना चाहिये। भारत के प्राचीन ग्राम आर्थिक अथवा प्रशासनिक इकाई थे। वे संस्कृति एवं सामुदायिक जीवन के केन्द्र थे। उनके अपने त्यौहार, गीत, मनोरंजन, खेल, कूद आदि निरन्तर प्रेरणा के साधन थे। परन्तु विदेशी सांस्कृतिक आघातों ने ग्रामीण जीवन की विशिष्टता को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिक्ख और अंग्रेज शासन व्यवस्थाओं ने भारतीय ग्रामीण जीवन को अस्त व्यस्त किया। ग्रामीण आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों के रूप में संगठित नहीं रह सके। अब यह ग्रामीण गन्दी बस्तियों (Rural slums) के रूप में उपस्थित हैं। दरिद्रता ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वत्र व्याप्त हो गई है। ग्रामीण व्यक्ति, महिला, बालक अत्यन्त दुबले-पतले एवं जीर्ण-क्षीण दिखाई देते हैं। हैजा, महामारी, तपैदिक आदि रोग सर्वत्र व्याप्त हो गये हैं। अन्न, वस्त्र और निवास-स्थान के अभाव में ग्रामीण जन उस समय की प्रतिक्षा में हैं जो इनको इन आवश्यकताओं की पूर्ति करा सकता है। अशिक्षा, जातिवाद, अस्पृश्यता एवं हरिजनों की दुर्दशा आदि सामाजिक वातावरण ग्रामीण दृश्य को खराब किये हुए हैं। प्रत्येक वर्ग एवं जाति के अलग मन्दिर व उसके धार्मिक विश्वास तथा उसकी अन्धभक्ति आदि सामुदायिक विरोध का कारण बनी हुई है। गन्दगी एवं अस्वास्थ्यता, अशिक्षा और रोगों के केन्द्र भारतीय ग्राम अपने रूप को कलुषित किये हुए हैं। अंधविश्वास, अपव्यय, रीतिरिवाज, अनार्थिक कृषि व्यवस्था एवं राजनैतिक अनभिज्ञता आदि से पीड़ित ग्रामीण समाज अपना मस्तक ऊँचा नहीं कर सकता। पारस्परिक घृणा, ऋण-ग्रस्तता, संघर्ष, मदिरा-पान आदि दोष सर्वत्र व्याप्त हो गए हैं। मनोरंजनों के अभाव में नीरसता, जनसंख्या की वृद्धि, पारिवारिक कलह और नागरीकरण के तत्वों ने ग्रामीण जीवन को घेर लिया है।

इस प्रकार यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय ग्रामीण पुनर्निर्माण की आवश्यकता अत्यन्त वांछनीय है। पुनर्निर्माण की क्रांति ही ग्रामीण जीवन की शोचनीय अवस्था का उपचार कर सकती है। ग्रामीण समस्यायें भारत की समस्यायें हैं। अतः हमें राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को कार्यान्वित करना चाहिये। ग्रामीण पुनर्निर्माण के अन्तर्गत इन समस्याओं का निराकरण सम्भव है। इस दृष्टि से भारत के लिये गांधीवादी विचारधाराओं पर आधारित ग्रामीण पुनर्निर्माण अत्यन्त

आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है। अब हम इस शांतिपूर्ण आन्दोलन के उद्देश्यों पर दृष्टिपात करेंगे।

ग्रामीण पुनर्निर्माण का उद्देश्य
(Aims of Rural Re-Construction)

प्रत्येक आन्दोलन व नवीन विचारधारा अपने सम्मुख कुछ उद्देश्य रखती है। इन उद्देश्यों और सिद्धान्तों के आधार पर ही विशिष्ट कार्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं। इसी प्रकार ग्रामीण पुनर्निर्माण के आन्दोलन के कुछ प्रमुख उद्देश्य हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण इतना सरल कार्य नहीं कि जो बिना शान्ति व्यवस्था व सह-सम्बन्धों के हो सके। ग्रामीण पुनर्निर्माण स्वतन्त्र भारत की समस्याओं का मुकाबला करने के लिये प्रस्तुत हुआ है। विशेष रूप से ग्रामीण भारत में विभिन्न समस्याओं का बाहुल्य होने के फलस्वरूप इस आन्दोलन के उद्देश्य अगणित हैं। ग्रामीण जीवन का बहुउद्देशीय विकास करके जीवन को समृद्धि पूर्ण बनाना ही प्रमुख रूप से इस क्रान्ति का लक्ष्य है।

सामान्य रूप से भारतीय ग्रामीण जीवन में पूर्ण परिवर्तन करने की जिज्ञासा से ही ये आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है। इस आन्दोलन के अनेक बहुमुखी उद्देश्य हैं। प्रथम ग्रामीण जनता का आध्यात्मिक विकास करना इस कार्यक्रम का उद्देश्य है। द्वितीय मानसिक एवं शारीरिक विकास करना,तृतीय आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति करना। इस प्रकार ग्रामीण पुनर्निर्माण ग्रामीण जीवन का पंचमुखी विकास करना अपना लक्ष्य समझता है। यह निम्न चित्र से अधिक स्पष्ट हो जायगा:—
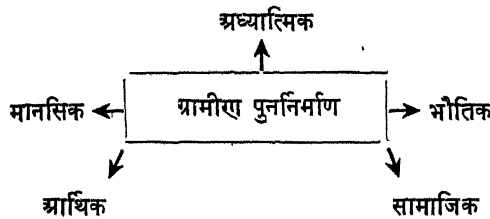
इन सब बातों के अतिरिक्त ग्रामीण पुनर्निर्माण न केवल राजकीय सहायता से ही सुधार कार्यक्रम प्रस्तुत करना चाहता है बल्कि इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में ग्रामीण जनता में स्वयंसेवा की भावना उत्पन्न करना भी निहित है। आत्मविश्वास के द्वारा ग्रामीण जनता स्वयं अपनी सब समस्याओं की पूर्ति कर सके। इस सम्बन्ध में डॉ० स्पेन्सर हैच (Dr. Spencer Hatch) ने लिखा है, "विश्वास इस प्रकार की प्रकृति के कार्यों की समस्त सफलता का

रहस्य है। अनेक संगठन अपने उद्देश्यों में असफल रहे यद्यपि उनके उद्देश्य और आदर्श ठीक हो सकते हैं। इन्होंने कभी भी ग्रामीण जनता से निकट सम्पर्क प्राप्त नहीं किया।"[1]

अब यह स्पष्ट है कि ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य-क्रम का उद्देश्य ग्रामीण जनता से निकट सम्पर्क स्थापित कर उनमें आत्म स्वाभिमान की भावना एवं आत्मविश्वास उत्पन्न करना भी है। आत्मविश्वास से वे भविष्य में अपनी समस्याओं का हल निकाल सकते हैं। .इस प्रकार पुनर्निर्माण के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की सभी प्रमुख समस्याओं का निवारण हो सकता है। योजना आयोग की एक विज्ञप्ति में लिखा है, "अपने इन आयोजनों में पाठशालायें, स्वास्थ्य रक्षा, भारत के गाँवों में नवीन ज्ञान लाना, नवीन धातु के कारखाने उत्पन्न करना, नई सड़कें बनवाना, नये बन्दरगाह और जहाज, नदियों में गति, लाखों एकड़ भूमि की सिंचाई तथा हजारों गांवों और छोटे उद्योगों में शक्ति और विद्युत आदि में भारत निरन्तर विचार विनिमय एवं जन-सहयोग से प्रत्येक कदम आगे उठायेगा।"[2]

इस प्रकार हम ग्रामीण पुनर्निर्माण के उद्देश्यों को बहुमुखी उद्देश्य कह सकते हैं। इस आन्दोलन के अन्तर्गत ग्रामीण जीवन की समस्त समस्याओं का हल निकालने के सभी उद्देश्य हैं। अतः हम यह निश्चय के साथ कह सकते हैं कि ग्रामीण पुनर्निर्माण के उद्देश्य विभिन्न सुधारों द्वारा ग्रामीण भारत को पुनः संगठित करना है। भारत के भविष्यवेत्ता एवं महान् दार्शनिक श्री महात्मा गाँधी ने ग्रामीण पुनर्निर्माण के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा है,

---

1. "Confidence is the secret of all success is the work of this nature. So many organisations fail in their mission, however noble or just their causes may be because they never got close to the village people." Spencer Hatch : quoted in 'Rural Re-construction'. p. 67.
2. "In its plans to bring schools, medical care and new knowledge to India's villages, to create new steel mills, to build roads, ports and ships, to harness the rivers, to irrigate millions of acres and bring light and power to thousands of villages and small industries, India will take each step forward with the concent, the consultation, the participation of the people." The new India; Publication Planning Commission, New Delhi, Dec. 15 (1957) p. 2.

"अहिंसक ग्राम स्वराज्य में कोई किसी का शत्रु नहीं होगा, सब अपना-अपना काम करेंगे, कोई निरक्षर नहीं रहेगा, उत्तरोतर सबके ज्ञान की वृद्धि होती जायेगी सारी प्रजा में कम से कम बीमारियां होंगी, कोई दरिद्र नहीं होगा और परिश्रम करने वाले को बराबर काम मिलता रहेगा। जुआ, मद्यपान, व्यभिचार या वर्ग विग्रह के लिये कोई गुञ्जाइश नहीं होगी। धनी लोग अपने धन का विवेकपूर्ण उपयोग करेंगे, भोगविलास और ऐशोआराम को बढ़ाने में उसे बरबाद नहीं करेंगे। स्वराज्य में यह नहीं होना चाहिये कि मुट्ठीभर धनी लोग रत्नजड़ित प्रासादों में रहें और हजारों, लाखों लोग हवा और प्रकाश से रहित कोठरियों में पशुवत् जीवन बितायें।"[3] अतः ग्राम पुनर्निर्माण की कल्पना का ध्येय यही है कि भारत में एक ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र ग्राम राज्य स्थापित होगा जो अपनी आवश्यकताओं के लिये आत्मनिर्भर, जनसहयोगी एवं विकास की निरन्तर लगन अपने सम्मुख रक्खेगा। अब हम संक्षेप में ग्रामीण पुनर्निर्माण के उद्देश्यों को एक क्रमिक रूप में देखने का प्रयास करते हैं। भारत में ग्रामीण पुनर्निर्माण के निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं:—

(१) ग्रामीण निर्धनता को दूर कर जीवन स्तर को उन्नत बनाना।
(२) ऋण के दोषों को दूर कर ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति को उन्नत करना।
(३) कृषि के साधनों एवं विधियों में आमूलचूल परिवर्तन करना।
(४) कुटीर उद्योगों का पुनरोत्थान कर आत्मनिर्भरता की शक्ति प्रदान करना।
(५) श्रमदान की भावना जागृत कर स्वयं सेवा के भाव पैदा करना।
(६) सामूहिक जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण देकर संगठन की भावना में वृद्धि करना।
(७) शिक्षा एवं संस्कृति का प्रसार करना।
(८) जनस्वास्थ्य एवं ग्राम्य स्वच्छता का ज्ञान कराना।
(९) लोकतन्त्रीय भावना उत्पन्न कर स्थानीय शासन की स्थापना करना।
(१०) मनोरंजन एवं सहकारी संस्थाओं की स्थापना करना।
(११) भूमि व सम्पत्ति का समान वितरण कर वर्गभेद का निवारण करना।
(१२) जाति पाँति एवं छुआछूत को दूर करना।
(१३) ग्रामीण जीवन को समृद्धिशाली बनाना।
(१४) निवास व्यवस्था एवं यातायात के साधनों की उन्नति करना।
(१५) जनसहयोग द्वारा ग्रामों की उन्नति के साथ भारत की उन्नति करना।

---

३. "देखिये गांधीजी द्वारा राजकोट में दिया गया भाषण—'हरिजन सेवक', दिनांक १८-३-३८।"

ग्रामीण पुनर्निमाण का क्षेत्र (Scope of Rural Re-construction)

ग्रामीण पुनर्निर्माण का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि ग्रामीण जीवन का सम्पूर्ण अध्ययन इसी के अन्तर्गत किया जा सकता है। ग्रामीण समाज, सामाजिक समूह, संरचना तथा ग्रामीण संस्थाओं आदि का ज्ञान हमें पुनर्निर्माण के साथ साथ करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन भी हमें पुनर्निर्माण के अन्तर्गत कर लेना आवश्यक है। ग्रामीण पुनर्निर्माण के विषय में प्रकाश डालते हुए श्री लाल (Lal) ने कहा है, "ग्रामीण पुनर्निर्माण की समस्या बहुउद्देशीय है, वह है, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी और स्वास्थ्य एवं सफाई सम्बन्धी आदि।"[4] इस संदर्भ में हम ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन करना आवश्यक समझते हैं। संक्षेप में भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न समस्याएँ पाई जाती हैं:—

(१) ग्रामीण जनता का निराशावादी दृष्टिकोण।
(२) गन्दगी का साम्राज्य।
(३) चिकित्सा एवं कुशल दाइयों का अभाव।
(४) शिक्षा एवं प्रशिक्षण की कमी।
(५) मनोरंजन के साधनों की अव्यवस्था।
(६) कृषि एवं पशुपालन के दोष।
(७) बीज एवं सिंचाई के उन्नत साधनों की कमी।
(८) पशुओं की बीमारियां।
(९) मुकदमेंबाजी एवं ग्रामीण ऋण व्यवस्था।
(१०) सामाजिक रीतिरिवाजों का साम्राज्य।
(११) पंचायतों का पुनर्गठन
(१२) बेकारी एवं निर्धनता।
(१३) सामुदायिक जीवन का अभाव।
(१४) सहयोगिक सहकारिता की अनुपस्थिति।
(१५) राजनैतिक जागृति का अभाव।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि ग्रामीण पुनर्निर्माण ग्रामीण जीवन में व्याप्त सभी समस्याओं का अध्ययन कर उनके निराकरण की वैज्ञानिक पद्धतियों

---

4. "The problem of Rural reconstruction in manifold, that is economic, social, religious, educational and of health and sanitation." Premchand Lal : 'Rural Reconstruction' by Kur Yen Sen, p. 4.

को ढूँढने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त इस आन्दोलन का क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत है क्योंकि पुनर्निर्माण एक नई व्यवस्था का हेतु है। इसका क्षेत्र इतना विशाल है कि ग्रामीण संरचना का रूप भी यही निर्धारित करता है। ग्रामीण सामाजिक मूल्यों, रीति रिवाजों, परम्पराओं एवं मान्यताओं का ध्यान रखकर ग्रामीण सामाजिक समूहों एवं संस्थाओं का पुनर्निर्माण करना इस आन्दोलन का प्रथम कार्य है। इतना ही नहीं, राष्ट्रीय विशेषताओं जैसे सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्तर को बनाये रखने के लिये निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति की आशा इस क्रांति में निहित है। देश के सभी प्रमुख आर्थिक आयोजन, सामुदायिक कार्यक्रम एवं विकास के प्रयत्न ग्रामीण पुनर्निर्माण के अन्तर्गत ही आते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि ग्रामीण पुनर्निर्माण का क्षेत्र अत्यन्त विशाल एवं विस्तृत है। राष्ट्र विशेष की सभी योजनायें पुनर्निर्माण के अन्तर्गत आती हैं।

भारत में ग्रामीण पुनर्निर्माण की आवश्यकता एवं महत्व आदि को दृष्टिगोचर करने से प्रतीत होता है कि गांधीवादी विचारधारा पर आधारित ग्रामीण पुनर्निर्माण एक अत्यन्त अनिवार्य आन्दोलन है। इस आन्दोलन का रूप न केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक ही निश्चित है बल्कि सामाजिक पुनर्निर्माण (Social Reconstruction) के सभी कार्यक्रम इसमें निहित किये जा सकते हैं। भारत का ग्रामीण पुनर्निमणि सम्बन्धी आन्दोलन सामाजिक पुनर्निर्माण का आन्दोलन होगा। इस आन्दोलन का क्षेत्र एवं विषय-सामग्री निर्धारित करने के लिए हम निम्न क्षेत्रों में इसका अध्ययन आवश्यक समझते हैं :—

(१) ग्रामीण आयोजन (Rural Planning) ग्रामीण विकास सम्बन्धी समस्त आयोजनों के उद्देश्य एवं कार्यक्रम की रूपरेखायें बनाना।
(२) सामुदायिक विकास (Community Development)।
(३) कृषि विकास (Agricultural Development)।
(४) ग्रामीण सहकारिता (Rural Co-operation)।
(५) ग्रामीण नेतृत्व (Rural Leadership)।
(६) ग्रामीण शिक्षा (Rural Education)।
(७) ग्रामीण स्वास्थ्य एवं गृहव्यवस्था (Rural Health & Housing)
(८) ग्रामीण समाज कल्याण (Rural Social Welfare)।
(९) ग्रामीण यातायात एवं परिवहन (Rural Transport and Communication)।
(१०) ग्रामीण कुटीर उद्योग (Rural Cottage Industries)।
(११) ग्रामीण संस्कृति एवं मनोरंजन (Rural Culture and Recreation)

इस प्रकार ग्रामीण पुर्ननिर्माण के अन्तर्गत उक्त क्षेत्रों में कार्य किया जाता है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रामीण पुर्ननिर्माण के अन्तर्गत ग्राम व ग्रामीण जीवन के समस्त पहलुओं पर समाजशास्त्रीय अध्ययन व कल्याणकारी कार्यक्रम कार्यान्वित किये जाते हैं।

ग्रामीण पुनर्निर्माण की एतिहासिक पृष्ठभूमि
(Historical Back Ground of Rural Reconstruction)

आज जितने भी वाद, प्रतिवाद एवं विचारधारायें हमें दृष्टिगोचर हो रही हैं, ये सब अपनी पृष्ठभूमि में कोई न कोई पुर्ननिर्माण की कल्पना रखती हैं। उदाहरणार्थ जान लॉक (John Lake) का उपयोगितावाद (Utilitarianism) कार्लमार्क्स की प्राकृतिक अर्थव्यवस्था (Natural Economics) आदि सब पुर्ननिर्माण की विचारधाराएं है। जैसे चार्ल्स फूरियर (१७७२–१८३७), फ्रांसिसी विद्वान लुइब्लां (१८११ से १८८२) आदि प्रगतिशील विचारकों ने जो पुर्ननिर्माण में विश्वास रखते थे, और उन्होंने ग्रामीण पुर्ननिर्माण की कल्पना उपस्थित की।

इस प्रकार संसार के कौने कौने में समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ, समाज सेवक, धार्मिक कार्यकर्ताओं ने पुरातनकाल से अपने विचार ग्रामीण पुर्ननिर्माण के क्षेत्र में रक्खे हैं। भारत में भी प्रारम्भ से इस क्षेत्र में प्रयास होता आया है। इस प्रकार के आन्दोलनों में विशेष तौर से सामाजिक परिस्थितियों की छाप है। पुरातनकाल में गौतमबुद्ध, चन्द्रगुप्त आदि इस क्षेत्र में महान् दार्शनिक हो गये हैं, जिन्होंने अपने काल में सुधार की भावनायें प्रस्तुत की। मुगलकाल में भी जन-कल्याण आन्दोलन हुए, जिनमें शिवाजी, महाराणा प्रताप, तांत्याटोपे, गायकवाड़ आदि उल्लेखनीय हैं। वर्तमान युग में तो ग्रामीण कल्याण की भावनाओं में विशेष प्रगति लक्षित होती है। प्रत्येक समय में कल्याणकारी आयोजन के पीछे प्रचलित समस्यायें होती हैं। वर्तमान युग में शोषणकारी सरकार के होने के कारण इसकी आवश्यकता विशेष अनुभव की जा रही है। इस प्रकार भारतीय ग्रामों की समस्त समस्याओं का निवारण करने के लिये प्रारम्भ से प्रयत्न होते आये हैं।

यह बात हम पूर्ण रूप से जानते हैं कि भारत गांवों का देश है, भारत की उन्नति का क्रीड़ास्थल ग्राम है। इसलिये राष्ट्र पिता महात्मा गांधी का ध्यान इस दिशा में पहले से ही केन्द्रित हो गया था। ग्राम पुर्ननिर्माण की आकांक्षा उनके प्रत्येक प्रयास में लक्षित होती है। खादी ग्रामोद्योग द्वारा जो आत्म-निर्भरता का पाठ उन्होंने हमारे सामने रक्खा है वह अकथनीय है। उसके प्रतीक सर्वोदय,

वर्धा आश्रम, हरिजन उद्धार, बेसिक शिक्षा आदि हैं। ये सब कल्पनायें गांधीजी ने गांवों के पुनर्निर्माण के लिये ही प्रस्तुत की थीं क्योंकि शासन द्वारा ग्रामों को पद्दलित होते उन्होंने देखा था, ग्रामों के ढांचे में एक भीषण अव्यवस्था आ गई थी जिसके उन्मूलन हेतु गांधीजी द्वारा पारित शिक्षा,उद्योग,समाज उत्थान का कार्यक्रम आदि हमारे सामने हैं। गांवों के पुनर्निर्माण के क्षेत्र में गांधीजी के समान अन्य समाज सुधारकों के कार्य भी उल्लेखनीय हैं। श्रीरविन्द्रनाथ ठाकुर ने भी गांवों के पुनर्निर्माण के उद्देश्य से शान्ति निकेतन की स्थापना की थी जिसका वर्तमान रूप ग्राम्य विश्वविद्यालय (Rural University) है। इसके अन्तर्गत उत्तम व विकसित खेती, पशु सुधार आदि कार्य भी प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त ईसाई मिशन के कार्यकर्त्ताओं का कार्य भी इस दिशा में अद्वितीय है। मिशन के कार्यकर्तागण चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं सफाई आदि का कार्य करते आये हैं।

इस क्षेत्र में Servants of Indian Society, आदर्श सेवा संघ, चर्खा उद्योग संघ, स्वदेशी आन्दोलन, सरडेनियल मिल्टन योजना, किसान सभायें आदि संगठनों का कार्य भी उल्लेखनीय है। इस सम्बन्ध में अधिक विवेचन हम आगे और करेंगे।

ग्रामीण पुनर्निर्माण एवं अंग्रेजी शासन
(Rural Reconstruction and British Rule)

ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्यक्रम वर्तमान काल में ही प्रगट नहीं हुआ है बल्कि इस कार्य में प्राचीन काल से ही कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य होते आये हैं। यद्यपि इन प्रयासों में हमें समुचित रूप से जनहित और समाजकल्याण की भावनाएं दृष्टिगोचर नहीं होतीं। उदाहरणार्थ हम ब्रिटिशकाल में किये गए कल्याणकारी कार्यक्रमों पर दृष्टिपात करेंगे।

प्राथमिक रूप से अंग्रेजी शासकों ने ग्रामीण ढांचे को विकसित करने में लेशमात्र भी रूचि नहीं ली। उनकी स्वार्थपरता की नीति ने विद्यमान् विशिष्टताओं को भी समाप्त कर दिया। वे लोग केवल नियम और शान्ति में विश्वास रखते थे। महारानी विक्टोरिया का यह सिद्धान्त था कि केवल लाभप्रद क्रियाओं में ही सम्पत्ति का व्यय किया जाय। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इन दो शताब्दियों में ग्रामीण पुनर्निर्माण एवं सुधार के कार्यक्रमों में कुछ भी नहीं हुआ। सर्वप्रथम बम्बई के भूतपूर्व राज्यपाल सर फैड्रक सेंक्स (Sir Fredrick Sykes) का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने सर्वप्रथम ग्रामीण पुनर्निर्माण का विचार उपस्थित किया। इसी प्रकार डब्लू० एस० बलन्ट (W. S. Blunt)

ने लिखा है, "हम ग्रामीण कृषकों को हिंसा से मृत्यु की सुरक्षा दे चुके हैं, लेकिन शायद हमने भूख से मृत्यु के भय को बढ़ा दिया है।"[5] इसी प्रकार पंजाब के गवर्नर मि० हैली (Hailey) ने भी ग्रामीण जीवन की अवस्थाओं के विकास पर अपने विचार प्रगट किये। उन्होंने सहकारिता, स्वास्थ्य रक्षा आदि बातों पर प्रकाश डाला। सन् १८७६ ई० से सन् १६२४ ई० तक भारत में आठ अकाल पड़े। इस सन्दर्भ में सन् १८८० ई० का फैमिन कमीशन उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त सन् १६०६ ई० में इर्रिगेशन कमेटी (Irrigation Committee), सहकारिता आयोग सन् १९१५ ई० और सन् १६२६ ई० में भारतीय कृषि पर रॉयल कमीशन (Royal Commission on Indian Agriculture) आदि भी उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त बम्बई में सन् १६३३ ई० में ग्रामविकास योजना प्रारम्भ की गई और संयुक्त प्रदेश में ग्राम विकास मंडल का संगठन किया गया। इन आयोजनों में स्वास्थ्य निर्देशन, सफाई आन्दोलन, अनिवार्य शिक्षा, और पाठशालाएं तथा स्वयंसेवी सामूहिक खेती के उद्देश्यों पर बल दिया गया। बंगाल में समाज सेवा संघ और करांची में पुनर्निर्माण कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय योजना समिति आदि इस सम्बन्ध में महत्व रखते हैं। इस कथन से स्पष्ट होता है कि अंग्रेजों ने ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में कुछ सीमा तक रूचि ली है। इस विवेचन का विस्तृत ज्ञान आवश्यक है अत: इस हेतु आगामी अध्याय में हम इसका विशद् विवेचन करेंगे।

स्वतन्त्र भारत में ग्रामीण पुनर्निर्माण
(Rural Re-construction in Free India)

ग्रामीण पुनर्निर्माण और भारत की स्वतन्त्रता अत्यन्त निकट अभिव्यक्तियां हैं। सन् १६४७ ई० में ग्रामीण पुनर्निर्माण की आवाज चारों ओर से गूँज उठी। महात्मा गांधी के विचारों पर आधारित पुनर्निर्माण का कार्यक्रम तीव्र गति से विकसित हुआ। जमींदारी उन्मूलन, ग्राम पंचायतों का पुनरूद्धार, सहकारी आंदोलन, भूदान, पंचवर्षीय योजना और सामुदायिक विकास इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन आयोजनों की विशुद्ध विवेचना हम आगामी अध्यायों में करेंगे। ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में अन्य समाज सेवी संस्थाओं के प्रयत्न भी उल्लेखनीय हैं। इनका विस्तृत अध्ययन भी हम एक स्वतन्त्र अध्याय में प्रस्तुत करने का यत्न करेंगे। यहां हम ग्रामीण पुनर्निर्माण की पद्धतियों पर विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

---

5. W. S. Blunt is equally out spoken. He observes, "we have given the ryot security from death by violence, but we have probably increased his danger of death by starvation."

ग्रामीण पुनर्निर्माण की पद्धतियां

(Methods of Rural Re-construction)

हम इस बात पर पहले ही विचार कर आये हैं कि ग्रामीण समाज निराशावादी दृष्टिकोण रखता है। किसी भी प्रकार की योजना गाँवों में एकाएक कार्यान्वित नहीं होती। हमें ऐसे स्थान पर ग्रामीण मनोविज्ञान का प्रयोग करना पड़ता है। वैज्ञानिक रूप से हम पुनर्निर्माण के कार्य में निम्न अवस्थाओं का प्रतिपादन करते हैं। वैसे प्रत्येक नवीन कार्य के प्रति उत्सुकता उत्पन्न करने हेतु तथा ग्रामीण जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। अधिकारीगण अपने व्यक्तिगत प्रभाव से इस कार्य में जिज्ञासा उत्पन्न कर देते हैं। वे और कार्य निम्न अवस्थाओं में विभाजित कर आरम्भ करते हैं। पद्धति एवं समुचित वितरण, सह सम्बन्ध, तथा संगठन आदि कार्य की उपयोगिता को बढ़ा देते हैं।

नवीन कार्य व आन्दोलन पूर्ण आयोजित होना चाहिये। इस आयोजन में राजनैतिक स्वतन्त्रता एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महत्वपूर्ण स्थान है। पुनर्निर्माण के कार्यों में अत्याधिक शिथिलता होती है। यह वह क्षेत्र नहीं जिससे हम शीघ्र फल प्राप्त कर सकते हैं। ग्रामीण समाज की रूढ़िवादिता, उनमें परम्पराओं का आधिपत्य, जटिल सामाजिक रीति रिवाज आदि ऐसी अनेक समस्यायें हैं जिनमें हम शीघ्र परिवर्तन नहीं ला सकते। साइमन कमीशन (Simon Commission) ने उचित ही लिखा है, "परम्परागत और अत्यन्त स्थाई ऋतुओं, जल, फसलें और पशुओं के स्थायी स्वार्थ और उनके चारों ओर त्यौहार और मेले तथा पारिवारिक उत्सव और अकाल अथवा बाढ़ का भय आदि स्मृतिपूर्ण पूर्व व्यवसायों के स्थान पर, औसत ग्रामीणों में किसी भी साधारण राजनैतिक निर्णय की शीघ्रता और ग्रामीण क्षितिज के विस्तार का परिवर्तन बाध्यरूप से वास्तव में बड़े धीमे आते हैं।"[6]

---

6. "Any quickening of the general political judgement any widening of the rural horizons beyond the traditional and engrossing interest of the weather and water, crops and cattle with the round of festivals and fairs and family ceremonies and the dread of famine or flood—any change from these immemorial pre-occupations of the average villager is bound to come very slowly indeed." Simon Commission's Report.

इस कथन से स्पष्ट है कि हमें सामाजिक पुनर्निर्माण के क्षेत्रों में किसी न किसी वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करना पड़ता है। वैज्ञानिक रीति से प्राप्त किये हुए तथ्यों के आधार पर अर्थात् निरीक्षण, एकत्रीकरण, सारणीयन तथा सामान्यीकरण के उपरांत ही हमें सुधार की योजनायें कार्यान्वित करनी चाहिये। इस दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्रों में सफल विधियों का प्रस्तुत करना यहाँ आवश्यक समझते हैं। पुनर्निर्माण सम्बन्धी सामान्य विधियाँ निम्न हैं :—

(१) प्रचार एवं प्रदर्शन (Publicity and Demonstrations)

ग्रामीण मनोवैज्ञानिकता एवं प्राकृतिक सामाजिक वातावरण के अनुसार सुधारों का प्रचार चलचित्र, व्याख्यान आदि द्वारा करना लाभप्रद है।

(२) विकास समितियों का संगठन
(Organisation of Development Bodies)

ग्रामीण जनता में आत्मनिर्भरता और स्वयंसेवी भावना को जागृत करने के लिये तथा ग्रामीण जनसहयोग प्राप्त करने के लिये इस प्रकार की समितियों का संगठन अत्यन्त लाभप्रद है।

(३) प्रदर्शनी का आयोजन (Arrangement of Exhibitions)

प्रदर्शन तथा प्रदर्शनियों का प्रभाव भी ग्रामीण जनता के मस्तिष्क पर अधिक आकर्षित रूप से पड़ता है। गोष्ठियां, वादविवाद, प्रवचन, व्याख्यान तथा प्रदर्शनियों के द्वारा नवीन विचार सुगमता से फैलाये जा सकते हैं।

(४) ग्रामीण नाटक (Rural Drama)

साक्षात् अभिनय द्वारा तथ्य विशेष एवं सुधार विशेष के नाटकों का आयोजन भी इस क्षेत्र में विशेषता रखता है।

(५) अन्तर्ग्राम प्रतियोगिता (Inter Village Competition)

प्रतियोगिता तथा प्रतिस्पर्धा क्षमता के विकास में अकथनीय स्थान रखती है। ग्रामीण फसलों, पशुओं, स्वास्थ्य व खेल-कूद की विभिन्न प्रतियोगिताओं के द्वारा ग्रामीण जीवन में सर्वतोमुखी चेतना फूँकी जा सकती है।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में विकास को प्रभावित करने वाली अनेक ऐसी विधियां हैं जिनके उपयोग से पुनर्निर्माण के कार्यों की शिथिलता को दूर किया जा सकता है। उदाहरणार्थ भजन मण्डलियां, कीर्तन, कथा, शिक्षालय, पुस्तकालय, वाचनालय, रेडियो आदि के द्वारा नवीन विचार फैलाये जा सकते हैं।

पुनर्निर्माण आन्दोलन में कुछ ऐसी विशेषताएँ भी होनी चाहिये जिससे ग्रामीण रूढ़िवादिता प्रभावित होकर परिवर्तनों को शीघ्र ग्रहण करले। इन विशेषताओं का वर्गीकरण हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

(१) **आध्यात्मिकता** (Spirituality)

आध्यात्मिकता के द्वारा धार्मिक विश्वासों की पृष्ठभूमि में नवीन विचारों का प्रचार किया जा सकता है। इस दिशा में हमें धार्मिक संकीर्णता को दूर रखना चाहिये।

(२) **सामाजीकरण** (Socialization)

सामाजीकरण का यहाँ पर अर्थ यह है कि पुनर्निर्माण के आन्दोलन में सम्पूर्ण ग्राम एक सामाजिक इकाई के रूप में एक नेता के पीछे चले। सहयोग सामाजिक तथा आर्थिक रूप से अत्यन्त वांछनीय है।

(३) **कार्यक्रम की विशिष्टता**
(Comprehensiveness of the Programme)

कार्यक्रम की विशिष्टता एवं उसका रहस्य सर्वव्यापी होना चाहिये। कार्यक्रम के निर्माण में प्रत्येक स्थानीय इकाईयों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी योजना की सफलता उसकी व्यापकता तथा सामान्यता पर निर्भर होती है।

इस प्रकार हमने ग्रामीण पुनर्निर्माण की पद्धतियों एवं सिद्धान्तों पर विचार किया। परन्तु हमें इस सन्दर्भ में यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि नवीन विचारों का एवं पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों का इस रीति से प्रयोग करना है जिससे शीघ्र पुनर्निर्माण सम्भव हो सके। इस दृष्टि से हमें यहाँ पुनर्निर्माण के हेतु निम्न अवस्थाओं (Stages) का ध्यान भी रखना चाहिये।

(१) प्रदर्शन (Demonstration)
(२) संगठन (Organisation)
(३) प्रयोगीकरण (Application)
(४) विश्लेषण (Analysis)
(५) सुधार (Reformation)
(६) समालोचना (Evaluation)

अध्याय २८

ग्रामीण पुनर्निर्माण की विभिन्न संस्थायें

(Various Agencies of Rural Re-Construction)

गत अध्याय में हमने ग्रामीण पुनर्निर्माण की विचारणा और इसके भिन्न भिन्न स्वरूपों को देखा। विश्व के इतिहास में यह विचारणा अत्यन्त प्राचीन है। आदि काल से पुनर्निर्माण के विचारों का अस्तित्व दृष्टिगोचर होता है। समय समय पर भिन्न भिन्न विचारधाराओं ने तत्कालीन समस्याओं के निवारण हेतु प्रयत्न किये हैं। इन प्रयत्नों का स्वरूप संस्थात्मक एवं सम्प्रदायों के रूप में भी विद्यमान रहा है। प्राचीन काल से राजकीय, अर्द्ध राजकीय अर्थात् राज्य से सहायता प्राप्त, स्वयंसेवी संस्थायें पुनर्निर्माण के कार्य में संलग्न रही हैं। यहां हम उन सभी संस्थाओं, विचारधाराओं, सम्प्रदायों एवं व्यक्तियों का विवेचन प्रस्तुत करेंगे। पुनर्निर्माण के प्रयत्न जिन्होंने विशेष रूप से ग्रामीण समाज को प्रभावित किया है, उनका अध्ययन करने हेतु हम इनको तीन भागों में विभाजित करते हैं :—

(१) प्राचीन कालीन संस्थायें (Ancient Period Agencies)

प्राचीन काल में अनेक प्रकार से ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में प्रयत्न हुए हैं। समाज कल्याण अर्थात् जन कल्याण की विचारधाराओं ने भिन्न भिन्न रूप से प्रयत्न किये हैं। इन प्रयत्नों में देशकाल और गति की छाप दृष्टिगोचर होती है। भारत का प्राचीन युग अत्यन्त समृद्धिशाली युग था। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में सन्तुष्ट रहता था परन्तु इस शान्तिपूर्ण जीवन में भी कल्याण और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में सांस्कृतिक महाजागरण के समय से ही भारतवासियों के भीतर एक प्रकार का रहस्यात्मक विश्वास सुगबुगाता रहा। संसार का आध्यात्मिक नेतृत्व प्राप्त करने के लिये विभिन्न कल्याणकारी प्रयत्न किये गये। ज्ञान और आचरण के आधार पर कल्याणकारी योजनायें कार्यान्वित की गईं परन्तु इन सब प्रयत्नों के उपरान्त भी समस्या बहुत ही जटिल है। यही वह स्थल है जहां भारत का उदाहरण संसार का सहायक हो सकता है। भारत में जितनी जनताएं मिलीं, वे एकमत की नहीं थीं; भारत में जितने भी धर्म मिले हैं, वे एक ही प्रकार के धर्म नहीं थे। भारत में जितने विचारों के बीच समन्वय

हुआ वे सभी विचार परस्पर समान नहीं थे और भारत में जितनी संस्कृतियों के मिश्रण से राष्ट्रीय या सामाजिक संस्कृति उद्भूत हुई है, वे संस्कृतियाँ भी परस्पर अविरोधिनी नहीं थीं, किन्तु फिर भी भारत ने इन विभिन्न विचारों, मतों, धर्मों और संस्कृतियों के बीच पूरा सामन्जस्य बिठा दिया और इन्हीं विभिन्नताओं का समन्वित रूप हमारा सबसे बड़ा उत्तराधिकारी है।

इन प्रयत्नों में धार्मिक सहिष्णुता, त्याग, बलिदान और अहिंसा आदि तत्व विशेषता रखते हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक, एवं आर्थिक शक्तियों के बीच सात्विक समन्वय का कार्य इन तत्वों के बिना नहीं चल सकता। सहिष्णुता, उदारता, सामाजिक संस्कृति, अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और अहिंसा ये एक ही सत्य के अलग अलग नाम हैं। असल में यह भारतवर्ष की सबसे बड़ी विलक्षणता है जिसके आधीन यह देश एक हुआ'। जिसे अपनाकर सारा संसार एक हो सकता है। अनेकान्तवादी वह है जो दुराग्रह नहीं करता। अनेकान्तवादी वह है जो दूसरों के मतों को भी आदर से देखना और समझना चाहता है। अनेकान्तवादी वह है जो अपने पर भी सन्देह करने की निष्पक्षता रखता है। अनेकान्तवादी वह है जो समझौतों को अपमान की वस्तु नहीं मानता। अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य और हर्षवर्धन ने अनेकान्तवादिता के कारण समाज को सुखी और समृद्धिशाली बनाया।

वेद, रामायण, महाभारत तथा गीता जैसी अनुभूतियों ने समाज में कर्म और मोक्ष का प्रचार किया। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी और बौद्ध धर्म के संचालक गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व सामाजिक जागरण में अद्वितीय स्थान रखते हैं। इन लोगों ने अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के सिद्धान्तों पर आधारित विचारों का प्रचार किया।

अतः यह स्पष्ट होता है कि प्राचीनकालीन समाज व्यवस्था सत्य, अहिंसा आदि नैतिक गुणों से परिपूर्ण थी। भारतीय समाज आत्म निर्भर ग्रामीण समुदायों में विभक्त था। वर्तमान काल जैसी समस्यायें न व्याप्त थीं और न उनके निराकरण का प्रश्न। भारतीय ग्रामीण समाज के लिये ही यह काल वैभव का काल कहा जाता है। इसलिये ग्रामीण पुनर्निर्माण की संस्थाओं का हमें उस काल में स्वतन्त्र रूप दृष्टिगोचर नहीं होता है। धर्म और नैतिकता के आधार पर किये गये पुनर्निर्माण के प्रयत्न सर्वव्यापी थे और समस्त जनता के द्वारा किये जाते थे। लेकिन इन प्रयत्नों का प्रभाव जिन समुदायों पर पड़ा वे ग्रामीण समुदाय ही थे।

(२) मध्यकालीन संस्थायें (Mediaeval Agencies)

मध्य काल में ग्रामीण समुदाय पर इस्लामी और मुगलकालीन साम्राज्य-वादिता का प्रभाव पड़ा। इस समय में धार्मिक संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता ने

ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को विचलित किया। इस काल में विदेशी आक्रमणों का विशेष बाहुल्य होने के कारण भयंकर अकाल पड़े। हिन्दुओं पर अरब, अफगानिस्तान, मिश्र, रोम, यूनान आदि संस्कृतियों ने अत्याचार किये।

इन सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिवर्तनों ने ग्रामीण समाज को प्रभावित किया इसमें तनिक भी शंका नहीं। परन्तु हमें यहाँ मुगलकालीन विशेषताओं को नहीं भूलना चाहिये। यूनान, मिश्र आदि देशों से कृषि के नये ढंग व अन्य विशेषतायें हमारे देश ने प्राप्त कीं। सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में इस्लामी साहित्य, पुराण व मोहम्मद साहब जैसी अभिव्यक्तियाँ उल्लेखनीय हैं। इमान और तौहीद, शिर्क आदि जैसे तत्व हमें प्राप्त हुए हैं। कुरान में केवल आमुष्मिक धर्म की ही बातें नहीं हैं, प्रत्युत् उसमें मनुष्य के विविध सम्बन्ध, राजनीतिक बर्ताव, न्याय, शासन, सेना संगठन, विवाह, तलाक, शान्ति, युद्ध, कर्ज, सूदखोरी, दान आदि के सम्बन्ध में भी धार्मिक उपदेश हैं जिनका पालन धार्मिक नियमों के समान ही आवश्यक माना जाता है। उदाहरण के लिये इस्लाम सूदखोरी को घृणित पाप समझता है और एक साथ चार पत्नियों[1] से अधिक रखने की इजाजत नहीं देता। इसी प्रकार इस्लाम में शराब पीने की कड़ी मनाही की गई है।

अतः इस्लामी रहस्यवाद से अनेक लाभ हुए। इनमें मौतजली सम्प्रदाय, अलगजाली विचारक व यूनानी दार्शनिक जैसे प्लेटो, पिथेगोरस आदि दर्शनशास्त्रियों का प्रभाव उल्लेखनीय है। शंकराचार्य, सूर और तुलसी जैसे समाज सुधारकों ने इस काल में अकथनीय कार्य किये। इन लोगों ने भारत में सामाजिक-आर्थिक प्रभाव डाले। भक्ति आन्दोलन भी इस क्षेत्र में महत्व रखता है। इस्लामी, पीर पैगम्बर, रामानुज, शंकराचार्य आदि के विचार, कला, साहित्य एवं सामाजिक दृष्टि से महत्व रखते हैं। कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के बीज बोकर अकथनीय कार्य किया। अकबर का दीन-इलाही व गुरु नानक के सामाजिक सुधार उल्लेखनीय हैं। कला और शिल्प के क्षेत्र में मध्यकालीन परिवर्तन ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। जुलाहों, लखारों आदि का प्रादुर्भाव हुआ और ग्रामीण उद्योगों में परिवर्तन आया।

मध्यकालीन पुनर्निर्माण की संस्थाओं में राजपूती प्रयत्नों का उल्लेख भी आवश्यक है। शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह जैसे व्यक्तित्व इस काल में उत्पन्न हुए और समाज की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न किये। हिन्दू-

---

१. ''ए० सी० बुकेट ने ३३ वें सूर का हवाला देकर बताया है कि इस्लाम नौ पत्नियों तक की इजाजत देता है।

मुस्लिम संस्कृतियों के सम्पर्क के परिणामस्वरूप मुसलमानों के पीर अक्सर ग्राम देवता बन बैठे। नगरों की अपेक्षा गांवों में यह सांस्कृतिक एकता अधिक सफल हुई है। मुगलकालीन सम्पर्क से ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न नवीन परिवर्तन हुए। ग्रामीण समाज व्यवस्था में भी नई उथल पुथल हुई। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकाल में इन परिवर्तनों के फलस्वरूप विभिन्न समस्याओं का उद्रेक हो गया। इन समस्याओं के निवारण हेतु विभिन्न प्रयत्न भी हुए हैं।

(३) वर्तमान कालीन संस्थायें (Modern Agencies)

मुस्लिम शासकों के समान अंग्रेजी शासकों ने भी भारत में साम्राज्यवादी नीति अपनाई। पुर्तगाल, डच, हालैण्ड, फ्रांस और अंग्रेजी जातियों के निरन्तर सम्पर्क से भारत का ग्रामीण-आर्थिक सामाजिक ढांचा विघटित हो गया। अंग्रेज व्यापारी थे उन्होंने भारत को अपना व्यापार केन्द्र बनाया फलतः ग्रामीण आर्थिक संस्थाओं का पूर्ण रूप से विनाश हुआ। ग्रामीण संरचना का रूप भी बदल गया। अनेक समस्याओं के केन्द्र भारतीय ग्राम बन गये। इस दृष्टि से ग्रामीण पुनर्निर्माण एवं भारत की सामाजिक सांस्कृतिक एकता को बनाये रखने के लिये विभिन्न विचारधारायें उठ खड़ी हुईं। ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में राजकीय, अर्द्धराजकीय तथा स्वयंसेवी संस्थाओं ने कार्य किये हैं। हम इन प्रयत्नों को निम्न क्रम में देखने का प्रयास करेंगे। इस प्रयास से हम इस नतीजे पर पहुँच जाएंगे कि ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्य केवल सरकार का ही नहीं है। इस कार्य में जन सहयोग अत्यन्त वांछनीय है। कोई भी पुनर्निर्माण का कार्य जब तक सफल नहीं हो सकता तब तक जनता उसे न अपना लें। क्योंकि ग्रामीण जनता राजकीय आज्ञाओं के प्रति बड़ा निराशावादी दृष्टिकोण रखती है चाहे कार्यक्रम कितना ही हितकर क्यों न हो। ब्रिटिश काल में ऐसी कई संस्थाएं गांवों में जाकर ग्रामीण जनता का पुनर्निर्माण के नाम पर शोषण करने का प्रयास करती थी। इसलिये राज्य एवं राजकीय कार्यक्रमों के प्रति उनमें घृणा है। अतः पुनर्निर्माण के कार्य को सर्वव्यापी बनाने के लिये हमें जन प्रतिनिधि संस्थाओं का अध्ययन कर आगामी कार्यों में सहयोग प्राप्त करना होगा। तभी राजकीय संस्थाओं का कार्यक्रम सफलता प्राप्त कर सकेगा। इस दृष्टि से हम यहाँ ग्रामीण पुनर्निर्माण में संलग्न प्रत्येक संस्था का क्रमिक अध्ययन करेंगे। सर्वप्रथम हम स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व राजकीय संस्थाओं के प्रति अपना ध्यान आकर्षित करेंगे।

राजकीय संस्थायें (Governmental Agencies)

जब हम इस बात की स्मृति करते हैं कि अंग्रेजी शासन प्राथमिक रूप से व्यापारिक स्वार्थ में लुप्त था तो हमारे लिये यह प्रश्न ही नहीं उठता कि ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में स्वतन्त्रता से पूर्व कोई राजकीय प्रयत्न भी किये गये होंगे।

परन्तु इसके साथ साथ हम यह भी नहीं भूल सकते कि अंग्रेजों ने भारतीय ग्रामीण जनता का विश्वास प्राप्त करने के लिये कुछ प्रयत्न किये। ये प्रयत्न निम्न प्रकार से हैं:—

(१) भूतपूर्व बम्बई के राज्यपाल सर फ्रेड्रिक के प्रयत्न।
(२) मिस्टर डब्लू. एस. बर्न्ट (W. S. Burnt) के विचार।
(३) पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर ड्व्लू.एच.हेली (W.H.Haily) के प्रयत्न।
(४) सन् १८८०, १८९९ ई० तथा सन् १९०१ के फेमिन कमीशन।
(५) सन् १९१५ ई० का सहकारी आयोग।
(६) सन् १९२६ ई० में रॉयल कमीशन की स्थापना।
(७) सन् १९०३ ई० में सिंचाई समिति की स्थापना।

भारत के विभिन्न राज्यों में ग्रामीण पुनर्निर्माण के प्रयत्न

(Efforts of Rural Reconstruction in various states of India)

(१) उत्तरप्रदेश (U. P.) :—इस राज्य में ग्रामीण पुनर्निर्माण के हेतु एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति हुई। एक प्रान्तीय विकास मण्डल का संगठन किया गया। जिला विकास ग्रामीण समितियाँ, महिला कल्याण प्रशिक्षण सिविल शिविर का आयोजन हुआ।

(२) बम्बई (Bombay):—इस राज्य में सन् १९३३ ई० में सर्वप्रथम ग्राम विकास योजना प्रारम्भ की गई। यह कार्य विभिन्न जिला समितियों को सौंपा गया। कुछ जिलों में ग्रामीण पुनर्निर्माण विभाग खोले गये। यह विभाग कृषि व सहकारिता विभागों से सम्बन्धित थे। इस विभाग में कृषि प्रशिक्षण, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य व शिक्षा आदि अनेक सस्थायें संगठित की गईं।

(३) पश्चिमी बंगाल (West Bengal) :—ग्रामीण पुनर्निर्माण के संचालक के आधीन ग्राम विकास विभाग इस राज्य में भी खोला गया। ग्राम विकास का कार्य केन्द्रीय मण्डल ग्राम विकास व उन्नत निवास (Better Living) समितियों को सौंपा गया। वन, चरागाह, सड़कें, नालियाँ, औषधियाँ, स्वस्थ बीज वितरण व नल कूपों आदि का कार्य इस विभाग के अन्तर्गत किया जाता था।

(४) मद्रास (Madras) :—जिला मण्डलों के आधीन ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्य इस राज्य में भी संचालित हुआ। ग्रामीण पंचायतों के द्वारा स्वास्थ्य, सफाई, यातायात एवं जल वितरण की व्यवस्था की जाती थी। उत्तम बीजों का वितरण, विकसित औजार व ग्रामीण भण्डारों का निर्माण आदि कार्य भी ये मण्डल करते थे।

(५) पञ्जाब (Punjab) :—इस राज्य में श्री एफ. एल. ब्रेयन (F. L. Brayne) के निर्देशन में ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्य संचालित हुआ। सन् १९३१ ई० में भारतीय ग्राम कल्याण समिति, इङ्गलैण्ड की एक शाखा यहाँ भी खोली गई। इस समिति का उद्देश्य प्रचार व प्रदर्शन करना था। भारतीय प्रशासन सेवा के कार्य-मुक्त अधिकारी इस समिति के सदस्य थे। इस राज्य के गुड़गाँव नामक स्थान पर एक विशेष अनुभव किया गया। मिस्टर एफ. एल. ब्रेयन ने ग्रामीण स्वास्थ्य पुरातन कृषि विधियां एवं अशिक्षा को दूर करने का प्रयास किया। इस अनुभव में ग्रामीण सामाजिक रीतिरिवाजों एवं ग्राम विकास के आन्दोलन के क्षेत्र में अत्याधिक प्रगति प्राप्त हुई। ग्रामीण स्वच्छता एवं शिक्षा पर भी विशेष बल दिया गया। मिस्टर ब्रेयन ने इस स्थान पर एक पाठशाला भी खोली, जो ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की शिक्षा देती थी। इस प्रकार यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

अराजकीय संस्थायें

(Non Governmental Agencies)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में जिस प्रकार राजकीय प्रयत्नों का महत्वपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार अराजकीय प्रयत्न भी उल्लेखनीय हैं। अतः हम यहाँ स्वतन्त्रता से पूर्व ग्रामीण पुनर्निर्माण के गैर सरकारी प्रयत्नों का विवेचन करेंगे।

(१) केन्द्रीय सहकारी सभा, बंगाल :—यह सभा सन् १९१९ ई० में डा० चटर्जी द्वारा मलेरिया के निवारण हेतु स्थापित की गई थी। इस सभा ने ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में भी अनेक उल्लेखनीय कार्य किये हैं।

(२) बङ्गाल समाज सेवा समिति सन् १९१५ ई०:—यह संस्था औद्योगिक शिक्षा, सामान्य शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा से सम्बन्धित थी। इस संस्था ने कृषि सम्मेलन, सहकारी प्रचार व अकाल के समय अनेक सेवाओं का कार्य किया।

(३) अखिल भारतीय बुनकर संघ सन् १९२१ ई० तथा अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ :—ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था को पुनः आत्मनिर्भर बनाने के लिये महात्मा गाँधी ने इन संस्थाओं का निर्माण किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ४८ वें अधिवेशन में ग्रामीण पुनर्निर्माण का निश्चय किया गया। इसी के फलस्वरूप इन संस्थाओं का संगठन किया गया। सन् १९३१ ई० में करांची अधिवेशन व सन् १९३६ ई० में फैजीपुर अधिवेशन तथा सन् १९३८ ई० में राष्ट्रीय योजना समिति, सन् १९२९ ई० में मैसूर में प्रस्ताव और सन् १९४२ ई० में पंचवर्षीय योजना विकास आयोजन आदि इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

(४) रामकृष्ण मिशन :—विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन ने भी ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किये हैं। अस्पृश्यता के निवारण तथा जातिवाद के भीषण परिणामों को कम करने के लिये इस मिशन का योग उल्लेखनीय है।

(५) ब्रह्मसमाज :—अंग्रेजी शिक्षा का ज्ञान प्राप्त किये हुए व्यक्तियों ने मिलकर राजा राममोहनराय की अध्यक्षता में इस संगठन का निर्माण किया। सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं राजनैतिक राष्ट्रीयता का विकास करने के लिए इस संस्था ने विशेष प्रयत्न किये। इस समाज ने ग्रामीण सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया।

(६) आर्यसमाज :—आर्यसमाज के प्रवर्तक व सत्यार्थप्रकाश के रचियता स्वामी दयानन्द ने इस समाज की स्थापना की। भारतीय धार्मिक, सामाजिक सुधारों के अतिरिक्त शिक्षा वं ग्रामीण क्षेत्रों में भी इस समाज ने अकथनीय कार्य किये हैं। जाति प्रथा व अस्पृश्यता को दूर करने में आर्यसमाज ने प्रमुख कार्य किये हैं! मूर्ति पूजा के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई।

(७) ब्रह्मविद्या समाज (थियोसाफिकल सोसायटी) :—इस समाज की संचालिका श्रीमती एनी बेसेन्ट थीं। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के लिये इस सभा का संगठन किया। नैतिकतापूर्ण जीवन एवं आध्यात्मिकता का प्रचार करना इस सभा का उद्देश्य था। इस सभा ने लोगों में राष्ट्रीय जागृति का प्रसार किया। ग्रामीण क्षेत्रों में भी इस सभा का कार्य उल्लेखनीय है। गांधीजी के साथ भी एनी बेसेन्ट ने अनेक पुनर्निर्माण के कार्य किये।

(८) दक्षिण शिक्षा सभा (Daccan Education Society)

(९) भारतीय सेवक सभा (Servant of Indian Society)

(१०) Y. M. C. A.

(११) Y. W. C. A.

इन संस्थाओं ने भिन्न भिन्न रूप से ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में कार्य किया है। इन संस्थाओं को लेशमात्र भी राजकीय योग प्राप्त नहीं होता था। प्राथमिक रूप से इन संस्थाओं का कार्य सामाजिक पुनर्निर्माण था। Y. M. C. A. के तत्वावधान में देश के विभिन्न स्थानों पर ग्रामीण पुनर्निर्माण के केन्द्र स्थापित किये गये। इस सम्बन्ध में श्री देवधार ने उचित ही कहा है, "यह एक प्रकार के तीर्थयात्रियों की जगह है जो ग्रामीण पुनर्निर्माण में

रुचि रखते हों।"[2] वास्तव में ये केन्द्र आदर्श केन्द्र थे और इन केन्द्रों में विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी प्रवृत्तियां कार्यान्वित थीं।

(१२) सेवा सदन, पूना :—यह सदन पूना के एक ग्राम में खोला गया। यहाँ व्यायाम, कृषि प्रदर्शन, ग्रामीण दाइयाँ, सिविल कक्षायें व वाचनालय आदि की व्यवस्था होती थी।

(१३) त्रिवेन्द्रम केन्द्र :—Y. M. C. A. के तत्वावधान में मार्टन डम (Marton Dam) केन्द्र ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्य करता था। इस केन्द्र के चारों ओर अनेक ग्राम थे। यह डा० स्पेन्सर हैच (Spencer Hatch) के संचालन में चलता था। इस केन्द्र में ग्रामीण जीवन के उद्धार की पंचमुखी योजना कार्यान्वित थी।

(१४) श्री निकेतन :—विश्वविख्यात कवि श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर ने ग्रामीण वातावरण में इस निकेतन की स्थापना की। ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में श्री रविन्द्र बाबू महात्माजी के साथी रहे हैं। इनका ग्रामीण समुदाय से विशेष सम्बन्ध था। इन्होंने ग्रामीण कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अत्यन्त भीषण जंगल में इसकी स्थापना की थी। इस केन्द्र में ग्रामीण उद्योग, कृषि, पंचायत शिक्षा व ग्रामीण चिकित्सा की व्यवस्था थी। सन् १६२२ ई० में ग्रामीण पुनर्निर्माण विभाग का यहाँ उद्घाटन हुआ जिसमें अनेक यूरोपियन शिक्षाशास्त्री भी सम्मिलित थे। ग्रामीण कल्याण, ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन, कृषि के विकसित उपाय, कुटीर उद्योग, सहकारिता, ग्रामीण स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा व ग्रामीण नेतृत्व आदि क्षेत्रों में इस निकेतन का कार्य उल्लेखनीय है।

(१५) ईसाई मिशनरी (Christian Missionary):—ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में अराजकीय रूप से ईसाई मिशनरियों का कार्य भी विशिष्टता रखता है। यह मिशनरियां गाँवों में जाकर शिक्षा, चिकित्सा व स्वास्थ्य आदि के कार्यक्रमों में विशेष रुचि लेती हैं। ग्रामीण जनता से निकट सम्पर्क स्थापित करके पुनर्निर्माण के कार्य में यह प्रयास काफी सफल रहा है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् ग्रामीण पुनर्निर्माण

(Rural Re-construction after Independence)

समाज की सुरक्षा का दायित्व सरकार पर कितना है, इसका मूल्यांकन करना कठिन है। यह तो सरकार विशेष की नीति, जन-कल्याण की भावना और

2. "It is sort of place for piligrimage for those who interested in Rural Reconstruction." In S. K. Devadhar : quoted in 'Rural Reconstruction'; p. 52.

प्रस्तावित लक्ष्यों पर निर्भर है। भारतीय इतिहास के प्राचीनकालीन, मध्यकालीन तथा वर्तमानकालीन शासकों के प्रयासों को हमने देख लिया है। अब जो विचार करने का प्रश्न है वह राष्ट्रीय सरकार के प्रयत्नों का है। दो शताब्दियों से निरन्तर जकड़ी हुई हमारी कामना १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को पूर्ण हुई। भारत स्वतन्त्र हुआ और ग्रामीण पुनर्निर्माण की आवश्यकता अनुभव हुई। राष्ट्रीय सरकार ने इस कार्य को प्राथमिकता देकर पुनर्निर्माण का प्रस्तावित लक्ष्य निश्चित किया। वर्तमान सरकार का पुनर्निर्माण सम्बन्धित प्रारम्भिक लक्ष्य निम्न था।

(१) जमींदारी का उन्मूलन।
(२) पंचायतों का पुनर्गठन और पंचायती राज की स्थापना।
(३) सहकारी आन्दोलन का समुचित विकास।
(४) कुटीर उद्योगों की वृद्धि।
(५) पंचवर्षीय आयोजनों द्वारा लक्ष्य की पूर्ति।
(६) सामुदायिक विकास योजनाएँ कार्यान्वित करना।
(७) पुनर्निर्माण में कार्य करने वाली संस्थाओं का योग प्राप्त करना।

इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य में प्रस्तावित लक्ष्यों की पूर्ति करने का कार्य शीघ्र प्रारम्भ किया गया। हम यहाँ प्रत्येक लक्ष्य पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

(१) जमींदारी उन्मूलन और ग्रामीण पुनर्निर्माण:—

सन् १९४७ ई० में कांग्रेस ने कृषि सुधार समिति (Agrarian Reform Committee) का संगठन किया। इस समिति ने यह प्रस्ताव रक्खा कि ५ वर्ष की अवधि में सम्पूर्ण देश में जमींदारी का उन्मूलन कर दिया जाय। सर्व प्रथम उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन व भूमि सुधार अधिनियम जनवरी सन् १९५१ में पास किया गया और १ जुलाई सन् १९५२ ई० को लागू किया गया। इस कानून के अन्तर्गत राज्य ने उस समस्त भूमि को जो ३७१.५ लाख एकड़ थी, काश्तकारों को दे दी। छोटे जमींदारों को पुनर्वास अनुदान दिया गया।

विभिन्न राज्यों में जमींदारी उन्मूलन का कार्य बड़ी तीव्र गति से प्रारम्भ होगया। आसाम, उड़ीसा, मैसूर, राजस्थान और केरल में अभी कुछ काम बाकी रहे। गाँव की सामान्य भूमि पर राज्य सरकारों का अधिकार हो गया। इस प्रकार कृषकों की अवस्था व भूमि समस्या का सम्पूर्ण समाधान होगया।

(२) सहकारी आन्दोलन और ग्रामीण पुनर्निर्माण:—

सहकारिता का महत्व न केवल ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में ही स्थान रखता

है बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था में भी यह आन्दोलन उल्लेखनीय है। ग्राम निवासियों की अनेक समस्यायें इस आन्दोलन द्वारा दूर करने के लिये इस पक्ष पर विशेष बल दिया गया। ग्रामीण ऋणग्रस्तता, बिखरे हुये खेतों की समस्या, कृषि उपज की बिक्री की समस्या, ग्रामीण निवास समस्या तथा ग्रामोद्योगों की समस्या आदि इस आन्दोलन के द्वारा दूर करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या भारत की अत्यन्त गम्भीर समस्या है। कृषि सुधार, बीज खरीदना, बैल खरीदना, कुआ खुदवाना, शादी-ब्याह, मृत्यु, रोग, दुर्घटना और जीवन की अन्य सामान्य आवश्यकताओं के लिये भारतीय किसान ऋण लेता है। यदि प्राथमिक कृषि साख समितियाँ (Primary Agricultural Credit Societies) का विकास किया जाय तो समस्या का हल बड़ी सुगमता से हो जाता है। सन् १९५५-५६ ई० में भारत में इस प्रकार की समितियों की संख्या १,५९,९४९ थी। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण (All India Rural Credit Survey) के अनुसार यह संख्या केवल ३ प्रतिशत आवश्यकता को ही पूर्ण करती है। अतः १०,४०० बड़े आकार की साख समितियाँ संगठित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसके अतिरिक्त भूमिबन्धक बैंक (Land Mortgage Bank) के द्वारा भी इस समस्या का हल निकाला जा सकता है। कृषि उत्पादन से सम्बन्धित समस्यायें सिंचाई, उन्नत बीज, कृषि के औजार, पशु, चकबन्दी, सहकारी भंडार, दुग्ध डेयरी व अन्य उद्योगों का समुचित विस्तार व विकास इस आन्दोलन में निहित है। इसके अतिरिक्त सहकारी संयुक्त कृषि, सहकारी उत्तम कृषि व सहकारी काश्तकार कृषि का आयोजन भी निर्धारित किया गया है। सन् १९५९ ई० के प्रारम्भ में देश में कुल २०३० सहकारी समितियाँ थीं। सहकारी दुग्ध तथा डेयरी उद्योग धन्धे सन् १९५४ ई० तक १४७३ की संख्या में खुल चुके थे।

इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सहकारी आन्दोलन का विकास किया गया और भविष्य में ऐसी आशा की जाती है कि इस आन्दोलन के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण पूर्ण रूप से सफल हो सकेगा।

(३) पंचायतों का पुनर्गठन और ग्रामीण पुनर्निर्माण:—

भारत में पंचायतें ग्रामीण गणतन्त्र के रूप में प्राचीनकाल से विद्यमान हैं। गांधीजी ने ग्रामोन्नति का आधार पंचायतों को ही बताया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त पंचायतों के पुनर्गठन के क्षेत्र में अकथनीय परिवर्तन हुए हैं। सन् १९४७ ई० में उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम पास किया गया जिसमें गाँव सभा, गाँव पंचायत और पंचायती अदालत का संगठन किया गया। इसी प्रकार अन्य राज्यों में भी पंचायत अधिनियम पास किये गये। इस

क्षेत्र में राजस्थान ने एक नवीन और आदर्श कल्पना को साक्षात रूप दिया। कांग्रेस ग्राम पंचायत कमेटी की स्थापना कर सन् १९५४ ई० तक ९८,२५६ पंचायतें स्थापित कर दी गईं। इन्होंने ५,८१,१८४ ग्रामों में से २,९४,४९० ग्रामों को अंगीकृत किया। ग्रामीण पंचायतों और पुनर्गठन के क्षेत्र में पंचायती राज की कल्पना ने साकार रूप प्राप्त कर लिया है। तृतीय पंचवर्षीय आयोजन के अन्त तक समस्त देश में पंचायती राज स्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। प्रजातांत्रिक ढंग पर आधारित ये पंचायतें शीघ्र ही देश में व्याप्त हो जायेंगी। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया द्वारा यह कार्य सम्पन्न करने का लक्ष्य है। इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिये ग्रामीण प्रशासन शीर्षक अध्याय अति स्पष्ट है।

(४) पंचवर्षीय आयोजन और ग्रामीण पुनर्निर्माण :—

ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में पंचवर्षीय आयोजनों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन आयोजनों में ग्रामीण पुनर्निर्माण के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। कृषि, सहकारिता, कुटीर उद्योग, यातायात, सिंचाई, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन एवं निवास व्यवस्था आदि पक्षों पर कल्पनाएँ व प्रस्तावित लक्ष्य निर्मित किये गये हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण और आयोजनों के सम्बन्ध में हम आगामी अध्याय में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

(५) सामुदायिक विकास और ग्रामीण पुनर्निर्माण :—

यदि ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में कोई अत्यन्त महत्वपूर्ण राजकीय योजना है तो वह है सामुदायिक विकास का कार्यक्रम। सामुदायिक विकास ग्रामीण पुनर्निर्माण का आधार है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक गाँव में सामुदायिक विकास के केन्द्र खोले जायेंगे। यह योजना संयुक्त राज्य अमेरिका की सहायता से सन् १९४८ ई० में उत्तर प्रदेश के इटावा व पंजाब के लीरोखेरी नामक स्थान पर प्रायोगिक रूप से प्रारम्भ की गई। सामुदायिक विकास योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा नाम की दो पद्धतियाँ इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। इस योजना का प्रमुख लक्ष्य कृषि, शिक्षा, सहकारिता, मनोरंजन आदि समस्याओं का जनसहयोग से निवारण करना है। तृतीय पंचवर्षीय योजना तक भारत का प्रत्येक गाँव इस कार्यक्रम से पूर्णरूपेण प्रभावित होगा।

ग्रामीण पुनर्निर्माण और सामुदायिक विकास कार्यक्रम अत्यन्त सम्बन्धित व पारस्परिक सहयोगिक अभिव्यक्तियाँ हैं। इस कार्यक्रम का विषद वर्णन किये बिना ग्रामीण पुनर्निर्माण का अध्ययन अधूरा है। इस दृष्टि से हम सामुदायिक विकास योजना और ग्रामीण पुनर्निर्माण शीर्षक अध्याय में इसका विवेचन विस्तृत रूप से देखने का यत्न करेंगे।

इस प्रकार भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्यक्रम राजकीय सहयोग से तीव्र गति से बढ़ने लगा है। उक्त संस्थाओं का अध्ययन हमने इसी उद्देश्य से प्रस्तुत किया है कि राज्य किन किन योजनाओं के अन्तर्गत यह कार्य संचालित करता है। इतना ही नहीं, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अनेक ऐसी अर्द्ध-राजकीय संस्थाएं संगठित हो चुकी हैं, जो इस कार्य में प्रयत्नशील हैं। यह संस्थाएँ प्राथमिक रूप से स्वतन्त्र संस्थाएँ हैं। इन संस्थाओं का लक्ष्य भी अपने अपने क्षेत्र में विशिष्टता रखता है। ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में इन संस्थाओं का अध्ययन अति लाभप्रद है। अतः हम यहां इन संस्थाओं का अध्ययन करेंगे।

अर्द्ध-राजकीय संस्थायें
(Semi-Governmental Agencies)

राज्य जन कल्याण के उत्तरदायित्व को पूर्ण करने का प्रयास विभिन्न रूप से करता है। इस हेतु विभिन्न अर्द्धराजकीय संस्थाओं का निर्माण किया गया है। ये संस्थाएं राज्य से सहायता प्राप्त संस्थाएँ कहलाती हैं। इन संस्थाओं के संगठन का दूसरा उद्देश्य यह भी है कि शासन व जनहित के कार्यक्रमों में जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जाय। समाज में स्वशासन एवं आत्मनिर्भरता की भावना का विकास करने हेतु इन संस्थाओं का कार्य उल्लेखनीय है। इन संस्थाओं के संगठन के पीछे यह भी विचार प्रतिलक्षित होता है कि समाज अपनी समस्याओं को स्वयं दूर कर ले। ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यक्रम में ऐसी अनेक संस्थाओं का योग प्राप्त है। अर्द्ध-राजकीय संस्थाओं का वर्णन निम्न प्रकार से किया जाता है।

(१) भारत सेवक समाज (Bharat Sevak Samaj)

यह संस्था ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमदान और समाज सेवा के कार्यक्रम आयोजित करती है। इस संस्था का उद्देश्य ग्रामीण जनता में स्वयंसेवा की भावना को जागृत करना है। श्रमदान द्वारा यह ग्रामीण मार्ग, हथाइयां, चौपाल, पंचायत घर, पाठशालायें, औषधालय आदि के निर्माण कार्यों में ग्रामीण जनता को प्रोत्साहित करती है। यह संस्था राज्य और जनता के मध्य सम्पर्क स्थापित करने का कार्य भी करती है। निर्माण कार्यों में राजकीय योग देना तथा जनता से श्रमदान द्वारा सहयोग प्राप्त करना इसका प्रमुख कार्य है। ग्रामीण जनता में स्थानीय निर्माण कार्य की जागृति उत्पन्न करने के लिये यह ग्रामीण नाटक, प्रदर्शनियां, वाचनालय, उद्योग केन्द्रों आदि द्वारा विकास का कार्य करती है। भारत सेवक समाज का उदय स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त ही हुआ है। प्रत्येक राज्य में इस संस्था का

एक केन्द्र होता है। इसका संचालक प्रदेश-संयोजक कहलाता है। दिल्ली में भारत सेवक समाज का एक सूचना केन्द्र है। पं० जवाहरलाल नेहरू इस संस्था के अध्यक्ष हैं।

(२) खादी ग्रामद्योग आयोग
(Khadi Village Industries Commission)

यह आयोग ग्रामीण उद्योगों एवं खादी के प्रचार का कार्य करता है। इस आयोग के अन्तर्गत ग्रामोद्योग का विकास एवं प्रचार किया जाता है। खादी ग्रामोद्योग आयोग का कार्य छोटे उद्योगों के संचालन हेतु ग्रामीण लोगों को आर्थिक अनुदान भी प्रदान करना है। इस आयोग का मुख्य लक्ष्य खादी का प्रचार एवं कुटीर उद्योग का अधिक से अधिक विकास करना है। इस आयोग के अन्तर्गत खादी ग्रामोद्योग का प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है। इस आयोग का मुख्य कार्यालय बम्बई में है। यह संस्था उद्योगों के विकास हेतु प्रकाशन कार्य भी करती है। बम्बई से खादी ग्रामोद्योग नाम की एक पत्रिका निकलती है।

(३) गांधी अध्ययन केन्द्र (Gandhi Study Centre)

गांधी निधि से संचालित इन केन्द्रों का भी भारत में महत्वपूर्ण स्थान है। ये केन्द्र गांधीजी के विचारों का प्रचार करते हैं। गांधी जी द्वारा प्रतिपादित चर्खा उद्योग व अन्य औद्योगिक प्रवृत्तियों का प्रचार करना भी इन केन्द्रों का प्रमुख लक्ष्य है। प्राथमिक रूप से इन केन्द्रों में गांधी साहित्य का संग्रह है। अब इन केन्द्रों का संचालन समग्र सेवा संघ या भूदान आन्दोलन द्वारा होता है क्योंकि इन कार्यक्रमों को गांधी निधि से ही अनुदान प्राप्त होता है। इन केन्द्रों में साहित्यिक गोष्ठियाँ, प्रवचन, व अनेक शताब्दियाँ मनाना व उत्सवों का आयोजन किया जाता है। भारत के प्रत्येक शहर में इस प्रकार के केन्द्र विद्यमान हैं।

(४) ग्राम विकास मण्डल (Rural Development Board)

प्रत्येक गाँव में ग्राम विकास मण्डल का संगठन भी पाया जाता है। गाँव के प्रगतिशील व्यक्तियों द्वारा संगठित यह मण्डल ग्राम विकास की योजनाओं पर विचार करता है। इस मण्डल का कार्य राजकीय अनुदान प्राप्त कर गाँव में निर्माण कार्य करवाना है। इस मण्डल के आधीन ग्राम पुस्तकालय, वाचनालय व मनोरंजन केन्द्र भी खोले जाते हैं। यह मण्डल विभिन्न प्रशिक्षण शिविरों व श्रमदान शिविरों का भी आयोजन करता है। निर्माण कार्यों के लिये इस मण्डल को ५० प्रतिशत व्यय राज्य सरकार से अनुदान के रूप में प्राप्त होता है।

(५) समाज सेवा संघ (Social Service League)

समाज सेवा संघ के संगठन प्रादेशिक स्तर पर विभिन्न गाँवों में पाये जाते हैं। इस संगठन का प्रमुख कार्य समाज सेवा से सम्बन्धित है। ग्रामीण

सफाई आन्दोलन व पशु विकास आन्दोलन आदि में इस संघ का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस संघ का सर्व प्रथम उदय पश्चिमी बंगाल में बंगाल सेवा संघ के नाम से हुआ था।

(६) **कुटीर उद्योग संघ** (Cottage Industry Board)

इस मण्डल की स्थापना स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व गांधीजी की देख रेख में हुई थी। अब इस मण्डल का विकास कर दिया गया है। यह मंडल विशेष रूप से कुटीर उद्योगों के विकास में संलग्न है। यह तेल घानी उद्योग, गुड़ निर्माण उद्योग व खादी वस्त्र उद्योगों का संचालन करता है। इस मण्डल की एक प्रमुख शाखा वर्धा व सेवा ग्राम में है।

(७) **समग्र सेवा संघ** (Samagra-Seva-Sangh)

गाँधी निधि द्वारा संचालित समग्र सेवा संघ नाम की संस्था भी ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यों में संलग्न है। इस संघ का प्रमुख कार्य भूदान, ग्रामदान व ग्राम राज्य आदि कल्पनाओं को साकार रूप देना है। इस संघ के सदस्य विशेष रूप से भूदानी कार्यकर्त्ता होते हैं। भारत के प्रत्येक राज्य में इस संघ का प्रधान कार्यालय है। ग्राम राज्य नाम की एक मासिक पत्रिका भी इसके तत्वावधान में प्रकाशित होती है।

(८) **भूदान आन्दोलन** (Bhoodan Movement)

गांधी जी के परम शिष्य सन्त विनोबा का भूदान आन्दोलन आज सर्वत्र व्याप्त हो गया है। इस आन्दोलन की उत्पत्ति तेलंगाना नामक ग्राम में हुई थी। यह आन्दोलन गांधीजी के सर्वोदय विचारों पर आधारित है। इस आन्दोलन के अन्तर्गत ग्रामीण अर्थ व्यवस्था तथा सामाजिक अवस्था का पुनर्निर्माण करना, लक्ष्य निर्धारित है। सर्वोदयी नेता श्री जयप्रकाशनारायण, दादा धर्माधिकारी, विमला ठाकुर, गोपाल भाई भट्ट आदि अनेक व्यक्ति इस आन्दोलन में संलग्न हैं। भूमिदान, अर्थदान, अन्नदान, वस्त्रदान, श्रमदान व बुद्धिदान की प्रक्रिया से ग्रामदान की कल्पना पर आधारित यह आन्दोलन सक्रिय रूप से आज भारत में कार्य कर रहा है। पंचायत राज्य और ग्राम स्वराज्य तथा ग्रामीण राम-राज्य आदि अनेक कार्यक्रम इस आन्दोलन के अन्तर्गत आयोजित किये गये हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण में यह संस्था अत्यन्त महत्वशाली बन गई है। आज लाखों की संख्या में कार्यकर्ता इस आन्दोलन में भाग ले रहे हैं। यह आन्दोलन ग्रामीण जीवन में अत्यन्त नवीन व आदर्श परिवर्तन लाना चाहता है। समाजवादी ढंग पर समाज का पुनर्निर्माण इस आन्दोलन का प्रमुख ध्येय है। यह आन्दोलन ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करता है। प्राथमिक रूप से भूदानी विचारधारा ग्रामीण इकाइयों को स्वतन्त्र रूप में पुनः स्थापित करना

चाहती है। कृषि क्षेत्र में व्याप्त सभी समस्याओं का उन्मूलन करने की प्रबल चुनौती के साथ यह कार्यक्रम आगे बढ़ा है। इसके अतिरिक्त ग्राम शिक्षा, ग्राम उद्योग आदि क्षेत्रों में इस कार्यक्रम का प्रयत्न अद्वितीय रहा है। प्रत्येक वर्ष सर्वोदय सम्मेलनों में, प्रदर्शिनियों में तथा साहित्य उत्पादन द्वारा प्रचार का कार्य किया जाता है।

(६) **हरिजन उद्धार मंडल** (Harizan-Welfare Board)

देश में अस्पृश्यता के भीषण अभिशाप को मिटाने हेतु इस संस्था का जन्म हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह संस्था हरिजनों के कल्याण हेतु विभिन्न कार्यक्रम प्रसारित करती है। नाटकों, प्रदर्शनियों व प्रवचनों द्वारा अस्पृश्यता मिटाने का यह एक प्रमुख आन्दोलन है। हरिजनों को व्यावसायिक सुविधा व नवीन उद्योग आदि खुलवाने में यह संस्था योग प्रदान करती है। हरिजन छात्रों को शैक्षणिक छात्रवृत्तियाँ तथा छात्रावास आदि का प्रबंध करना भी इस संस्था का प्रमुख कार्य है।

(१०) **दलित जातीय संघ** (Backward Class Organisation)

ग्रामीण क्षेत्रों में दलित जातीय कल्याण के कार्यक्रम को लेकर इस संस्था का संगठन किया गया है। यह संस्था दलित जाति के लोगों में सामाजिक गौरव उत्पन्न करने हेतु उन्हें अनेक प्रकार की सहायता प्रदान करती है। दलित जाति के छात्रों को राजकीय सेवाओं के योग्य बनाना तथा अन्य व्यावसायिक अनुदान दिलाने के कार्यक्रम इस संस्था की विशेषता है।

(११) **ग्राम पंचायत** (Village Panchayats)

ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में अर्द्ध राजकीय संस्थाओं में इस संस्था को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। अब यह संस्था पूर्ण रूप से ग्रामीण प्रशासन के कार्य को अपनाने जा रही है। प्राथमिक रूप से यह संस्था ग्रामीण अर्थ व्यवस्था व सामाजिक सम्बन्धों की एक सर्वोच्च संस्था के रूप में कार्य करती रही है। ग्रामीण जीवन में इस संस्था का स्थान प्राचीन काल से अद्वितीय है। आधुनिक लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की योजनाओं के अन्तर्गत इस संस्था को राजकीय रूप प्रदान किया जा रहा है। ग्रामीण पुनर्निर्माण की अब यह एक सर्वोचित सस्था के रूप में कार्य करेगी। इस सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन करने के लिये ग्रामीण प्रशासन शीर्षक अध्याय को पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।

इस प्रकार हमने ग्रामीण पुनर्निर्माण की राजकीय सहायता प्राप्त संस्थाओं का विवेचन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार की अनेक संस्थाएँ राज्य से अनुदान प्राप्त कर ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यों में संलग्न हैं। इन संस्थाओं का प्रभाव

ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से व्याप्त है। इस दृष्टि से स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत इन संस्थाओं ने ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यों में अद्वितीय सफलता प्राप्त की है।

अब हम उन संस्थाओं का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे जो बिना सहायता प्राप्त किये स्वयंसेवी भावनाओं से पुनर्निर्माण का कार्य कर रही हैं।

स्वयंसेवी संस्थाएँ
(Voluntary Agencies)

ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में स्वयंसेवी संस्थाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से इस प्रकार की संस्थाओं, सम्प्रदायों तथा जन आन्दोलनों का कार्य इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। स्वयं-सेवी भावनाओं से ओत-प्रोत अनेक राजनैतिक संस्थाओं का कार्य भी इस दिशा में उल्लेखनीय है। अतः हम इस प्रकार की संस्थाओं का वर्णन करना यहाँ आवश्यक समझते हैं।

(१) किसान सभा (Peasants's Association)

किसानों की समस्याओं को लेकर इस संस्था का निर्माण हुआ है। यह संस्था स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विशेष सक्रिय रूप से ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य में अपने कदमों को आगे बढ़ा रही है। इस संस्था का किसान सम्मेलन व अन्य प्रवृत्तियों द्वारा किसानों में नवीन चेतना लाने का कार्य उल्लेखनीय रहा है। इस संस्था ने ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक कार्यालय स्थापित कर लिये हैं। कृषकों के भूमि अधिकार, लगान सम्बन्धी नियमों, राजकीय अनुदान प्राप्त करने, कृषि प्रवृत्तियों को उन्नत बनाने आदि कार्यों में यह संस्था सफलता प्राप्त कर रही है।

(२) बालचर संस्था (Scouting Organisation)

स्वयंसेवी संस्थाओं में बालचर संस्था सर्वोमुखी संस्था है। यद्यपि यह संस्था प्राचीन काल से भारत में स्वयंसेवा, अनुशासन, नैतिकता व संगठन के विचारों का प्रसार कर रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस संस्था ने ग्रामीण कार्यक्रम अपना लिये हैं। बालचर लोग गाँवों में श्रमदान शिविरों का आयोजन कर सफाई, खेती, शिक्षा, मनोरंजन आदि के कार्यक्रम ग्रामीण जनता के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। कुछ गाँवों में इस संस्था के सदस्य बना लिये गये हैं।

(३) रेडक्रास (Redcross)

प्राथमिक चिकित्सा के कार्यक्रम को लेकर इस संस्था का संगठन किया गया है। यह संस्था ग्रामीण स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य का अत्यन्त अभाव है। इस दृष्टि से

इस संस्था ने इस कार्यक्रम को अपनाया है। स्वास्थ्य आन्दोलन, औषधि वितरण तथा दुग्ध वितरण आदि कार्य प्रारम्भ किये गये हैं।

(४) कैथोलिक मिशनरी (Catholic Missionaries)

ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्रों में ब्रिटिश काल से इन मिशनरियों का कार्य उल्लेखनीय है। पूर्ण रूप से स्वयंसेवी भावनाओं से प्रेरित होकर मिशनरी के कार्यकर्त्ता गाँवों में जाते हैं। कुछ विद्वानों ने इन प्रयत्नों की आलोचना की है। इन आलोचनाओं का आधार धार्मिक है। ये लोग कहते हैं कि ईसाई मिशनरियाँ गाँवों में ईसाई धर्म के प्रचार के लिये जाती हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। ये कार्यकर्त्ता जनता से अत्याधिक निकट सम्पर्क स्थापित कर लेते हैं। इनके शिक्षा, चिकित्सा आदि पुनर्निर्माण के कार्य उल्लेखनीय हैं।

(५) विद्यार्थी परिषद् (Student Unions)

समय समय पर विद्यार्थी संघ द्वारा आयोजित ग्रामीण पर्यटन सम्बन्धी कार्यक्रम भी इस संदर्भ में नहीं भुलाये जा सकते। विद्यार्थियों के संगठन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण कार्यक्रमों में रुचि लेने लगे हैं। श्रमदान, शिक्षा प्रचार व मनोरंजन के कार्यक्रम ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। ये कार्यक्रम न केवल ग्रामीण जनता को ही लाभ प्रदान करते हैं बल्कि विद्यार्थियों के हित में भी अत्यन्त उपयोगी हैं।

(६) जन संघ (Jansangh)

जनसंघ यद्यपि एक राजनैतिक पार्टी है। परन्तु ग्रामीण जनता में राजनैतिक भावनाओं (Political Conciousness) की वृद्धि करने हेतु इस संस्था का कार्य उल्लेखनीय रहा है। संस्था के प्रति विश्वास व आदर प्राप्त करने की दृष्टि से इसने पुनर्निर्माण के कार्यक्रम भी कुछ गाँव में प्रस्तुत किये हैं। गाँवों में अनेक जनसंघी कार्यकर्त्ता हैं जो जनहित व पुनर्निर्माण के कार्यों में रुचि लेते हैं।

(७) राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ
(Rastriya Swayam Sevak Sangh)

भारत में यह एक सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य भारतीय संस्कृति को जीवित रखने व हिन्दुस्थान की अखंडता को बनाये रखना है। यह संस्था भारतीय युवकों को अनेक प्रकार का प्रशिक्षण भी देती है। समाज में अनुशासन व संगठन का प्रचार करना इस संस्था का प्रमुख कार्य है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में भी इस संस्था की शाखायें दृष्टिगोचर होती हैं। अनुशासन और संगठन के अतिरिक्त जातिवाद, अस्पृश्यता, वर्ग-संघर्ष आदि क्षेत्रों में इस संस्था की सफलतायें उल्लेखनीय हैं।

(८) प्रजा समाजवादी दल (Praja Socialist Party)

समाजवादी विचारों से प्रेरित यह संगठन है। यदि यह संस्था ग्रामीण क्षेत्रों में पुनर्निर्माण के कार्यक्रम नहीं अपनाती तो इसका समाजवादी लक्ष्य कभी पूर्ण नहीं हो सकता।

(९) हिन्दू महासभा (Hindu Mahasabha)

यद्यपि यह संस्था भी हिन्दू विचारों की राजनैतिक संस्था है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस संस्था का भी प्रचार दृष्टिगोचर होता है। कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में इस संस्था के कार्यालय भी हैं।

(१०) रामराज्य परिषद् (Ram Rajya Parished)

रामराज्य परिषद् भी हिन्दू महासभा और जनसंघ के समान एक साम्प्रदायिक संस्था मानी जाती है। यह संस्था भी ग्रामीण क्षेत्रों में अपना प्रभाव फैलाने का प्रयत्न कर रही है।

(११) कांग्रेस युवक मंडल (Congress Youth Organisation)

कांग्रेस संस्था के तत्वावधान में कांग्रेस युवक मंडल का कार्य भी यहाँ उल्लेखनीय है। कांग्रेस सेवा-दल के कार्यकर्त्ता भी गाँवों में पुनर्निर्माण का कार्य करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। कांग्रेस युवक मंडल के कार्यक्रमों में अनेक शिविर गाँवों में लगाये जाते हैं। इन शिविरों में पुनर्निर्माण, सफाई व शिक्षा के विषयों का प्रचार किया जाता है।

इस प्रकार हमने ग्रामीण पुनर्निर्माण की राजनैतिक, सामाजिक-संस्थाओं का अध्ययन किया। इस दृष्टि से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पुनर्निर्माण का कार्य भारत के लिये अत्यन्त वांछनीय कार्य है। यदि ऊपर वर्णित राजनैतिक संस्थायें इस कार्य में विशेष रूचि लेकर कुछ रचनात्मक कार्य प्रस्तुत करें तो वे भविष्य में भी भारतीय समाज का उत्थान कर सकेंगी। ग्रामीण पुनर्निर्माण की विचारधारा न केवल इन संस्थाओं के कार्यक्रमों में ही प्रतिलक्षित होती है बल्कि इस संदर्भ में कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी उपस्थित हैं जिन्होंने संस्थात्मक एवं असंस्थात्मक (Un-Institutional) रूप से कार्य किया है। हम यहाँ महर्षि ठाकुर, महात्मा गांधी, बालगंगाधर तिलक, बालकृष्ण गोखले, राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महापुरुष अम्मेदकर, श्यामाप्रसाद मुकर्जी, एनीबेसेन्ट, विनोबा भावे, जय प्रकाश नारायण आदि नाम पाते हैं। ये महान् व्यक्तित्व समाज सुधारक के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में आदर प्राप्त किये हुये हैं।

अध्याय २९

ग्रामीण पुनर्निर्माण एवं आयोजन

(Rural Re-construction and Planning)

पिछले अध्याय में हम भारतीय ग्रामीण जीवन की पुनर्निर्माण सम्बन्धी संस्थाओं पर विचार कर आये हैं। इन संस्थाओं के वर्गीकरण में हमने यह देखा था कि राजकीय संस्थाओं के अन्तर्गत पंचवर्षीय आयोजन स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पंचवर्षीय आयोजन नाम की संस्था अब एक अत्यन्त सर्वव्यापी एवं सर्वोच्च संस्था बन गई है। इस संस्था के अन्तर्गत अनेक पुनर्निर्माण की योजनायें बनाई जाती हैं। इन योजनाओं का ध्येय न केवल ग्रामीण पुनर्निर्माण ही है, अपितु भारतीय सामाजिक पुनर्निर्माण के अनेक कार्यक्रम निहित करना हैं। इन योजनाओं का प्रमुख भाग ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों से सम्बन्धित है। इसका कारण यह है कि भारत एक ग्रामीण देश है। भारत की उन्नति ग्रामों की उन्नति के उपरान्त ही सम्भव है।

भारत की सम्पूर्ण समृद्धि ग्रामों की समृद्धि के उपरान्त ही प्राप्त की जा सकती है। ये विचार भारत के भविष्यवेत्ता महात्मा गांधी ने कहे थे। इसलिये उन्होंने अफ्रीका से लौटकर अपने आप को ग्रामीण सुधार और पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों में जुटा दिया। इसलिये स्वाधीनता प्राप्त होते ही राष्ट्रीय सरकार का ध्यान गाँवों तथा देश की अन्य समस्याओं की ओर आकर्षित हुआ। इस सरकार के तत्वावधान में देश के सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण की पंचवर्षीय योजनायें तैयार की गईं और इनमें अन्य समस्याओं के साथ ग्रामीण पुनर्निर्माण को प्रमुख स्थान दिया गया।

देश में उपलब्ध साधनों को सोच विचार कर संगठित और एकत्रित करके उनको उचित रूप से उपयोग में लाने और तद्द्वारा सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति के एक निश्चित मार्ग पर आगे बढ़ने की धारणा का जन्म अभी हाल में ही हुआ है। सन् १९२८ ई० में सर्वप्रथम रूस ने निश्चित रूप से देश के पुनर्निर्माण के हेतु अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना आर्थिक क्षेत्र में रखी जिसने आश्चर्यजनक प्रगति की है, और जिससे समस्त संसार आश्चर्यचकित रह गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतवर्ष का जो खोखला ढाँचा अंग्रेज हमें सौंप गये थे उसको फिर से किसी योग्य बनाने के लिये पंचवर्षीय योजनाओं को अपनाने के

अतिरिक्त और कोई भी उपाय नहीं था। इस प्रकार पंचवर्षीय योजनायें भारत की पुनर्निर्माण योजनायें हैं। अतः हम इस अध्याय में पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण, प्रस्तावित लक्ष्य, उपलब्ध साधन तथा प्राप्त सफलताओं को ग्रामीण पुनर्निर्माण की पृष्ठभूमि में देखने का प्रयास करेंगे। पूर्व इसके कि हम प्रथम पंचवर्षीय योजना पर दृष्टिपात करें हम इस सम्बन्ध की सामान्य बातों पर विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं :—

आयोजन की विचारणा (Concept of Planning)

देश में सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण और प्रगति करने के उद्देश्य से उपलब्ध साधनों को एकत्रित तथा व्यवस्थित करके समुचित रूप में उपयोग में लाने की योजना को आयोजन तथा नियोजन कहते हैं। भारत सरकार की योजना आयोग की विज्ञप्ति के अनुसार, "आयोजन वास्तव में समुचित सामाजिक लक्ष्यों की दृष्टि से अधिकतम लाभ उठाने के लिये अपने साधनों को संगठित करने तथा उपयोग में लाने की पद्धति है।"[1]

इस प्रकार आयोजन के दो प्रमुख आधार हैं। प्रथम प्रस्तावित लक्ष्य, द्वितीय उपलब्ध साधन। आयोजन के समक्ष प्रस्तावित लक्ष्य को निर्धारित करने के उपरान्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये उपलब्ध साधनों का सदुपयोग करने का प्रश्न उपस्थित होता है। इस प्रश्न के उपरान्त प्राप्त सफलताओं का विश्लेषण किया जाता है। भारत के आयोजन सामाजिक-आर्थिक आयोजन हैं। इनमें कृषि, वन, खनिज, यातायात, संचार तथा उद्योग आदि से सम्बन्धित लक्ष्यों की पूर्ति निहित है। इसके साथ साथ सामाजिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रम भी सम्मिलित किये गये हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज-कल्याण, अस्पृश्यता निवारण तथा नशा-निषेध आदि की अनेक योजनायें इनमें व्याप्त हैं।

भारत में पंचवर्षीय आयोजन (Five Year Plans in India)

विश्व के अनेक प्रगतिशील देशों के साथ साथ भारत में भी आयोजनों का महत्व अनुभव किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में अनेक सामाजिक-आर्थिक जटिलतायें व्याप्त हो गई थीं। इन जटिलताओं को दूर करने के लिये सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में पुनर्निर्माण करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। ये जटिलतायें वैज्ञानिक पद्धतियों पर आधारित आयोजनों के द्वारा ही दूर की जा सकती थीं। इसके अतिरिक्त भारत प्राकृतिक साधनों

1. "Planning is essentially a way of organising and utilising resources to maximum advantage in terms of defined social ends," —Planning Commission (Govt. of India).

से भरापूरा देश है। यह देश एक ग्रामीण देश होने के साथ साथ कृषिप्रधान देश भी है। इस दृष्टि से प्राकृतिक साधनों का अधिक से अधिक उपयोग उठाना तथा वैज्ञानिकता के आधार पर व्यवस्थित आयोजनों का निर्माण करना आवश्यक है। इन सब बातों से प्रेरित होकर यह निश्चय किया गया है कि वैज्ञानिक विधियों पर आधारित आयोजनों के द्वारा भारत की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का हल सम्भव है। भारत की पंचवर्षीय योजनायें आर्थिक-सामाजिक उपलक्षणों का एक समन्वय है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में अतीत का लेखा जोखा और भविष्य के लिए आह्वान भी दृष्टिगोचर होता है। भारत समाजवादी ढंग से समाज को पुनः स्थापित करना चाहता है। इन योजनाओं में समाज के पुर्नानिर्माण के कार्यक्रम हैं। भारत के सभी गाँव इस पुर्ननिर्माण की योजना में सम्मिलित किये गये हैं। इन आयोजनों में गाँवों के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पुर्ननिर्माण का पूरा ध्यान रक्खा गया है। शिक्षा, चिकित्सा, सफाई, जलपूर्ति, पौष्टिक भोजन, महिला व शिशु कल्याण, परिवार नियोजन, गृह निर्माण, जनजातियों तथा हरिजनों का कल्याण, अपराधियों का पुनर्वास, समाज-शिक्षा, अस्पृश्यता, नशा निषेध, पंचायतों का पुनर्गठन, कृषि का विकास, सहकारिता आदि से सम्बन्वित योजनायें इसमें सम्मिलित हैं।

योजना आयोग (Planning Commission)

सन् १९५० ई० में भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक योजना आयोग का निर्माण हुआ। इस आयोग में श्री कृष्णमाचार्य, गुलजारीलाल नन्दा, श्रीमन्नारायण अग्रवाल आदि विद्वान् पुरुष सदस्य बनाये गये। इस आयोग ने निरन्तर १६ माह तक विचार विमर्श करने के उपरांत सन् १९५१ ई० में प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूप रेखा प्रकाशित की। दिसम्बर सन् १९५२ ई० में इस योजना का संशोधित-रूप लोक सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इस आयोग ने प्रथम योजना की रूप रेखा बनाने के लिये ६ भागों में कार्य विभाजित किया। यह कार्य साधन और आर्थिक प्रशिक्षण के रूप में संचालित किया गया जो वित्त, कृषि व अन्न उद्योग, व्यापार और यातायात, प्राकृतिक साधनों का विकास एवं समाज सेवा आदि पर आधारित था। इस आयोग ने इस योजना के प्रत्येक पक्ष पर विचार किया और निम्न उद्देश्य निर्धारित किये।

अतः अब हम प्रत्येक आयोजना के उद्देश्य, साधन व सफलताओं पर स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे।

प्रथम पंचवर्षीय योजना
(First Five Year Plan)

विश्व युद्ध और देश के विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों में देश की आर्थिक व्यवस्था को मजबूत करने, सामाजिक क्षेत्र में संस्थागत परिवर्तन करने तथा भविष्य में पुनर्निर्माण सुविधाओं को बढ़ाने के उद्देश्य से प्रथम पंचवर्षीय आयोजन प्रस्तुत हुआ।

(१) रूप रेखा (Out Line)

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन में २,३५६ करोड़ रुपये के व्यय की व्यवस्था की गई, इस आयोजन की रूप रेखा निम्न रूप में निर्धारित की गई।

विकास योजना	कुल व्यय (करोड़ रुपये।)	कुल व्यय का प्रतिशत
१. कृषि और सामुदायिक विकास	३५७	१५.१
२. सिंचाई और बिजली	६६१	२८.१
३. उद्योग और खान	१७९	७.६
४. परिवाहन और संचार	५५७	२३.६
५. सामाजिक सेवायें	५३३	२२.६
६. विविध	६९	३.०

इस योजना ने तीन क्षेत्रों में अपने आपको विभाजित किया, अर्थात् इस योजना की प्रकाशित रूप रेखा तीन भागों में विभाजित है। प्रथम खंड में आयोग के उन प्रयत्नों का उल्लेख है जो योजना के निर्माण में किये गये हैं। द्वितीय खंड में· योजना की प्रमुख विशेषताओं (Salient Features) का और तृतीय खंड में नीति और शासन की समस्याओं का वर्णन है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा दो बातों पर आधारित है। प्रथम उत्तम रहन-सहन का स्तर, द्वितीय सामाजिक न्याय (Social justice) अर्थात् भारत की जनता को समान अवसर व कार्य करने का अधिकार दिया जाय तथा प्रत्येक नागरिक को सामाजिक सुरक्षा का पूर्ण अवसर प्रदान किया जावे।

(२) प्रस्तावित लक्ष्य (Proposed Aims)

आर्थिक विकास की दृष्टि से इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त उद्योग, कृषि एवं सिंचाई के विकास का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसके साथ साथ उद्योग के क्षेत्र में व्यक्तिगत उत्पादन व विभाजन को कार्यान्वित रखते हुए, नवीन औद्योगिक क्षेत्रों के विकास पर भी बल दिया गया है। संक्षेप में, हम इस योजना के निम्न प्रस्तावित लक्ष्य निर्धारित करते हैं :—

(क) कृषि (Agriculture)

द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व भारत १.५ लाख टन अन्न प्रतिवर्ष बाहर से मंगाता था। विभाजन व युद्ध की परिस्थितियों ने खाद्य की समस्याओं को अधिक गम्भीर बना दिया। अतः इस योजना में यह लक्ष्य निर्धारित किया गया कि ७.२ लाख टन अन्न, २.१ लाख जूट, १.२ लाख कपास, ०.३७८ लाख टन तिलहन तथा ०.६९ लाख टन गन्ना अतिरिक्त रूप से उत्पन्न किया जाये। इस हेतु अधिक भूमि को उर्वरा बनाने का प्रयास भी निश्चित किया गया, और २३ हजार ७३८ एकड़ भूमि को अतिरिक्त रूप से कृषि के योग्य बनाया जाये। इसके अतिरिक्त कृषि की प्रविधियों में परिवर्तन लाने के साथ साथ सिंचाई व भूमि कर आदि की व्यवस्था में परिवर्तन करने का निश्चय किया गया। इस हेतु ४५० करोड़ रुपये के व्यय से सिंचाई व शक्ति के साधनों के विकास का लक्ष्य निर्धारित किया गया। यह लक्ष्य निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है —

वर्ष	व्यय (करोड़ रुपयों में)	अतिरिक्त सिंचाई (एकड़ में)	अतिरिक्त शक्ति (के.ड्ब्लू. में)
१९५१:५२	९९	१.५५९,०००	१४४,०००
१९५२:५३	११२	२.७१०,०००	३७३,०००
१९५३:५४	१००	४.५२५,०००	८८९,०००
१९५४:५५	७७	६.७२५,०००	१,०००,०००
१९५५:५६	५३	८.८३२,०००	१,१२४,०००
अन्तिम लक्ष्य		१६,५०१,०००	१,९३५,०००

कृषि की समस्याओं में सिचाई की समस्या का प्रमुख स्थान है। स्वतन्त्र राष्ट्र की सबसे पहली आवश्यकता यह है कि वह अन्न में आत्म निर्भर हो। इस हेतु सिंचाई की बहुद्देशीय योजनाओं का लक्ष्य निर्धारित किया गया। भाखरा नागल (Bhakra Nagal), हीराकुन्ड (Hirakund), दामोदर घाटी (Damodar Valley), तुंगभद्रा (Tungabhadra), भवानी सागर (Bhawani Sagar) का निर्माण किया गया। इसी क्षेत्र में सिन्दरी (Sindri) नामक स्थान पर एक उर्वरक कारखाने का निर्माण किया गया।

(ख) उद्योग (Industry)

यद्यपि उद्योग को कृषि के समान महत्ता प्रदान नहीं की गई, परन्तु फिर भी इस क्षेत्र में १०१.० करोड़ रुपये व्यय करने का निश्चय किया गया था। इस व्यय का निम्न तालिका में विवरण दिया जाता है :—

विशाखापट्टम जहाज का निर्माण का कारखाना (Vishakha Pattam Ship Building Yard) भी उल्लेखनीय है।

(घ) **समाज सेवायें** (Social Services)

समाज सेवा के पक्ष को भी प्रथम पञ्चवर्षीय योजना में स्थान दिया गया है। शिक्षा, स्वास्थ्य, निवास, श्रम व श्रम कल्याण, जनजातीय व पिछड़ी जाति कल्याण आदि क्षेत्रों में २५४.२ करोड़ रुपये व्यय करना निश्चित किया गया। इस व्यय का विवरण इस प्रकार है :—

प्रथम पंचवर्षीय योजना १९५१ : ५६

समाज सेवाओं के लक्ष्य	करोड़ रुपयों में
१. शिक्षा	१२३.१
२. स्वास्थ्य	८३.६
३. निवास	२२.८
४. श्रम तथा श्रम कल्याण	६.७
५. पिछड़ी परिगणित एवं जनजातीय कल्याण	१८.२
योग	२५४.२

३. **योजना के साधन** (Resources of Plan)

प्रथम पञ्चवर्षीय योजना के वित्तीय पक्ष पर यदि हम विचार करें तो हमें यह प्रतीत होगा कि यह आयोजन इस दृष्टि से भी दो भागों में बंटा हुआ है। इस आयोजन का प्रथम भाग १,९५३ करोड़ रुपये की व्यय का भाग है। इस राशि को पूर्ण करने हेतु वित्तीय व्यवस्था इस प्रकार है :—

योजना के साधन	करोड़ रुपयों में
१. केन्द्रीय सरकार	७३४
२. 'ए' श्रेणी के राज्य	५५९.६
३. 'बी' श्रेणी के राज्य	१७१
४. 'सी' श्रेणी के राज्य	२८.२

इस वित्तीय व्यवस्था में, सिंचाई की, बहुद्देशीय योजनाओं के लिये अलग व्यवस्था की गई है। ये योजनाएं स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले ही कार्यान्वित थी। इन योजनाओं के व्यय के लिये भी राज्य व केन्द्र में वित्तीय विभाजन किया गया। इस व्यय के साथ पुनर्वास योजनाओं का व्यय भी सम्मिलित किया गया। इस योजना में विभाजन के फलस्वरूप आये हुए शरणार्थियों की

समस्या के समाधान को स्थान दिया गया। पुनर्वास की समस्या से सम्बन्धित समस्त व्यय केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन किया जाना निश्चित हुआ। यदि शरणार्थियों को किसी प्रकार का अनुदान देने की व्यवस्था की गई तो वह राज्यों में ६७५ करोड़ रुपये तक की वृद्धि की जायगी। भाखरा नांगल, दामोदर, हीराकुंड आदि योजनाओं तथा पुनर्वास की योजनाओं हेतु व्यय के लिये निम्न साधन निर्धारित किये गये।

केन्द्र द्वारा—केन्द्र निम्न साधनों से धन की व्यवस्था करेगा—

१.	अतिरिक्त भू-कर द्वारा	१३० करोड़ रुपये
२.	ऋण द्वारा	३५ करोड़ रुपये
३.	लघु बचत योजना द्वारा	२५० करोड़ रुपये
४.	रेल्वे द्वारा	३० करोड़ रुपये
५.	अन्य साधन	१३० करोड़ रुपये

राज्य द्वारा: ४८० करोड़ रुपये की व्यवस्था राज्य सरकारें करेंगी।

इस प्रकार समस्त साधनों से १,१२१ करोड़ रुपये की आय का अनुमान लगाया गया। इसके अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कोलम्बो योजना से ८२ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। बचे हुए २९० करोड़ रुपये अन्य साधनो से प्राप्त करना निश्चित हुआ। इस प्रकार प्रथम पंचवर्षीय आयोजन में ऐसा अनुमान लगाया गया कि देश की कृषि सम्बन्धी आवश्यकतायें पूर्ण हो जायेंगी। पाकिस्तान से आयात जूट की दर ३.३ करोड़ से १.२ करोड़ रुपया हो जायगी। इसके अतिरिक्त तिलहन और गन्ने में काफी वृद्धि होगी जो निर्यात भी हो सकेंगे। इस योजना में परिवार नियोजन तथा जन्म-नियंत्रणों पर भी बल दिया गया।

(४) योजना की सफलताएं (Achievements of The Plan)

भारत के सम्मुख रूस की योजना प्रेरणा के रूप में उपस्थित थी। रूस योजना के द्वारा विश्व का समृद्धिशाली देश बन सकता है तो भारत भी प्रयत्नों में क्यों पीछे रहेगा। यद्यपि रूस की तुलना में भारत में अनेक असमानताएं हैं। भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक चिन्तायें विभाजन के बाद और अधिक गम्भीर रूप में सम्मुख हैं। जातिवाद, धर्मवाद व पारस्परिक वैमनस्यता रखने वाले राज्य आदि होने के उपरान्त भी इस आयोजन ने निम्न सफलतायें प्राप्त कीं:—

(क) राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Increase in National Income)

प्रथम पंचवर्षीय योजना से राष्ट्रीय आय में १८ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सन् १९५२-५३ ई० के मूल्यों को देखते हुए यह अनुमान है कि राष्ट्रीय आय सन् १९५०-५१ ई० में ९,११० करोड़ रुपये से बढ़कर सन् १९५५-५६ ई० में १०,८०० करोड़ रुपया हो गई। प्रति व्यक्ति की आय में ११ प्रतिशत वृद्धि और प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय में ९ प्रतिशत वृद्धि हुई। अन्न का उत्पादन २० प्रतिशत बढ़ा। सिंचाई के बड़े कार्यों द्वारा लगभग ६० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि को और छोटे कार्यों द्वारा एक करोड़ एकड़ भूमि को लाभ पहुँचा। रासायनिक खाद और बीज की बढ़ी हुई व्यवस्था और राष्ट्रीय विस्तार आन्दोलन के प्रसार के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि की निश्चित आशा थी।

(ख) **औद्योगिक विकास** (Industrial Improvement)

औद्योगिक क्षेत्र में प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अनेक रूपों में विकास हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र में कई नवीन औद्योगिक योजना कार्य पूरे हुए। इस समय में इस्पात के ३ कारखानों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। चितरन्जन के रासायनिक खाद के कारखाने की व्यवस्था हुई। एन्जिन व जहाजरानी के क्षेत्रों में भी औद्योगिक विकास उल्लेखनीय है। बिजली उद्योग के एक भारी यंत्र को लगाने के सम्बन्ध में प्रारम्भिक कार्य पूरा किया गया।

इस प्रकार कृषि व सिंचाई के क्षेत्र में प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में अनुमानित लक्ष्य को पूरा किया गया। खाद्यान्नों की वृद्धि, उत्तम बीजों का वितरण, खेती के योग्य भूमि का विकास व रासायनिक खादों के वितरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। सहकारिता, कुटीर उद्योग व पंचायतों के पुनर्गठन का प्रश्न भी हल किया गया। इस प्रकार ग्रामीण व्यक्तियों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में पंचवर्षीय योजनाओं ने काफी सफलता प्राप्त की। ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी पाठशालायें, चिकित्सा गृह, कच्ची-पक्की सड़कें तथा निवास व्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया गया।

इन सफलताओं के होने पर भी योजना आयोग ने स्वीकार किया है कि, "भारत में जीवन का मापदण्ड (Standard of Living) संसार भर में अब भी सबसे नीचा है। लोगों की औसत खुराक स्वीकृत पोषण स्तर (Nutritional standard) से नीची है। प्रति व्यक्ति वस्त्र का उपभोग सन् १९५५-५६ ई० में केवल १६ गज प्रतिवर्ष की व्यवस्था समुचित नहीं है। ६ से ११ साल की आयु समूह (Age group) के केवल ५० प्रतिशत और ११ से १४ वर्ष की आयु समूह के केवल २० प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते हैं। देश की जनसंख्या का लगभग आधा भाग उपभोग की वस्तुओं पर औसतन १३ रुपये प्रति माह खर्च करता है। आबादी की वृद्धि कुछ अन्य उन्नत देशों की तुलना में बहुत अधिक

नहीं है, लेकिन ४५ से ५० लाख तक प्रति वर्ष जनसंख्या की वृद्धि इसलिये हो जाती है कि देश में ऐसे साधन नहीं हैं, जिनसे वर्तमान जीवन स्तर को भी यथावत् रक्खा जाये, देश में श्रमिकों की संख्या जितनी बढी है, रोजी रोजगार के अवसर उतने नहीं बढ़े। पहली योजता की पूंजी की लागत इतनी यथेष्ट नहीं रही है कि श्रमजीवियों को खपाया जा सके।'' उपरोक्त विषय को ध्यान में रखते हुए सन् १९५६ ई० में द्वितीय पंचवर्षीय योजना बनाई गई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना सन् १९५६—६१ ई०
(Second Five Year Plan 1956—61)

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन की सफलता अधिक प्रोत्साहित रही। अन्य अविकसित एशियाई राष्ट्रों में इस योजना का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। जनता व सरकार में नवीन आशाओं के भाव एवं विश्वास इस योजना से उत्पन्न हो गये। लेकिन यह योजना एक प्रकार से पुर्ननिर्माण के कार्यक्रमों की प्रारम्भिक योजना कही जा सकती है। पुर्ननिर्माण का समस्त कार्य दूसरी पंचवर्षीय योजना को सौंपा गया है। यह योजना निम्न प्रकार से निर्मित हुई।

(१) द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन की रूपरेखा
(Outline of the Second Five Year Plan)

दूसरे पंचवर्षीय आयोजन को लोक सभा ने सितम्बर सन् १९५६ ई० को स्वीकृत किया। इस आयोजन में कृषि, ग्राम विकास, सिंचाई, शक्ति, उद्योग, खनिज, यातायात व परिवाहन के साधनों में विकास लाने के साथ साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, निवास व वन्य जातियों के कल्याण आदि का विकास भी निर्धारित किया गया। केन्द्रीय राज्य सरकारों ने इस योजना में ४८ सौ करोड़ रुपया खर्च करने का निश्चय किया। इस व्यय की तालिका निम्न प्रकार से है:—

द्वितीय पंचवर्षीय योजना सन् १९५६ : ६१ ई०
व्यय - तालिका

विकास योजना	पहली योजना		द्वितीय योजना	
	कुल व्यय करोड़ रु०	प्रतिशत	कुल व्यय करोड़ रु०	प्रतिशत
१. कृषि और सामुदायिक विकास	३५७	१५.१	५६८	११.८
२. सिंचाई और बिजली	६६१	२८.१	९१३	१९.०
३. उद्योग और खान	१७९	७.६	८९०	१८.५
४. परिवहन और संचार	५५७	२३.६	१,३८५	२८.९
५. सामाजिक सेवायें	५३३	२२.६	९४५	१९.७
६. विविध	६९	३.०	९९	२.१
योग	२,३५६	१००	४,८००	१००

इस प्रकार सन् १६६१ ई० तक निम्न उद्देश्य पूर्ण करने का निश्चय किया गया है :—

(i) राष्ट्रीय आय में २५ प्रतिशत वृद्धि हो।

(ii) शीघ्र औद्योगीकरण किया जाय तथा विशेष रूप से बुनियादी उद्योगों का विकास किया जाय।

(iii) बेकारी को दूर करने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाय।

(iv) आय व सम्पत्ति के आधार पर असमानता को शीघ्रातिशीघ्र मिटाया जाये।

(v) प्रत्येक समूह को आर्थिक व सामाजिक न्याय प्राप्त हो।

(२) प्रस्तावित लक्ष्य (Proposed Aims)

द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत अनेक पुनर्निर्माण के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। द्वितीय आयोजन अत्यधिक विस्तृत आयोजन बनाया गया। इस योजना में निम्न लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं :—

(क) कृषि और ग्रामोन्नति का लक्ष्य
(Aims in Agriculture and Rural Development)

कृषि व ग्राम विकास के क्षेत्र में ३४१ करोड़ रुपया तथा २०० करोड़ रुपया क्रमानुसार व्यय करने का निश्चय किया गया अर्थात् कृषि के विकास के लिये ३ अरब ४१ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई। इस योजना में उत्पादन के निम्न लक्ष्य निर्धारित किये गये।

उत्पादन लक्ष्य (द्वितीय पंचवर्षीय योजना)

उत्पादित वस्तुएँ		प्रतिशत वृद्धि होगी
१.	खाद्यान्न	२४
२.	तिलहन	२८.२
३.	गन्ना (गुड़)	३४.५
४.	कपास	५५
५.	पटसन (जूट)	५५
६.	नारियल (तेल)	३७.५
७.	सुपारी	६२
८.	लाख	२३
९.	काली मिर्च	३३
१०.	काजू	३३
११.	चाय	९

देश में खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि के लिये इस योजना में फूड फाउन्डेशन (Food Foundation) को स्वीकार कर कार्य रूप में परिणित करने का निश्चय किया गया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास समिति (National Development Council) का संगठन किया गया।

सिंचाई कार्यक्रम के अन्तर्गत २ करोड़ १० लाख एकड़ और अधिक भूमि में सिंचाई करने की व्यवस्था की गई। इसमें की १ करोड़ २० लाख एकड़ भूमि में बड़ी और मध्य सिंचाई योजनाओं से और ६० लाख एकड़ भूमि में छोटी योजनाओं से सिंचाई की जायगी। सन् १९५५ ई० में ६,१०,००० टन नत्रजन उर्वर खाद (Fertilisers) की खपत हुई थी। सन् १९६० ई० में इसे बढ़ाकर १८ लाख टन करने का विचार है। नगरों के कूड़े कचरे, हरीखाद, खली और दूसरी देशी खादों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जायेगा।

भूमि को फिर से खेती योग्य बनाने के कार्यक्रम के अन्तर्गत दूसरी योजना में केन्द्रीय और राज्य ट्रेक्टर संगठनों, किसानों और अन्य साधनों की सहायता से १५ लाख एकड़ भूमि में खेती करने और २० लाख एकड़ भूमि को सुधारने का विचार है। जल और भूमि संरक्षण के लिये छोटे बांध बनाने को प्रोत्साहित किया जायेगा। पौधों को कीड़ों आदि से बचाने का काम और भी तेजी से करने के लिये वर्तमान केन्द्रों को सुदृढ़ किया जायेगा और पांच नये केन्द्र खोले जायेंगे। खेती के सुधरे हुए औजारों के प्रयोग की भी व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त २००,०० एकड़ भूमि में नये बगीचे लगाने तथा १४ करोड़ रुपये शोध व कृषि शिक्षा व भूमि सुधार के क्षेत्र में उन्नति करने का आयोजन है।

(ख) उद्योग (Industries)

दूसरी योजना का प्रमुख लक्ष्य अधिक से अधिक रोजगार (Employment) की सुविधाओं को बढ़ाना है। इस दृष्टि से इस योजना में लघु व कुटीर उद्योगों के विकास पर बल दिया गया है। खादी ग्रामोद्योग, हाथ करघा उद्योग, रेशम व अन्य छोटे उद्योगों के विकास का कार्यक्रम निर्धारित किया गया है। इस सम्बन्ध में ग्रामोद्योग व लघु उद्योग समिति की नियुक्ति की गई तथा इस समिति की सिफारिशों के अनुसार इस क्षेत्र में विकास करने का निश्चय किया गया।

द्वितीय आयोजन में बड़े उद्योगों में इस्पात का उद्योग तथा इस्पात के द्वारा निर्मित उत्पादन को निश्चित किया गया। सरकार ऐसे कदम उठायेगी कि छोटे पैमाने के उद्योग बड़े पैमाने के उद्योग का मुकाबला करने में समर्थ हो सकें। लघु उद्योगों के लिये व्यय निम्न प्रकार से किया जायगा।

१. हाथ करघा उद्योग	५६.५ करोड़ रु०
२. खादी उद्योग	१६.५ करोड़ रु०
३. ग्रामोद्योग	३८.८ करोड़ रु०
४. अन्य उद्योग	६.० करोड़ रु०
५. प्रकाशन शोध, शिक्षा आदि	१५.० करोड़ रु०

इस राशि में अम्बर चर्खा के कार्यक्रम के लिये कोई विशेष व्यवस्था नहीं क़ी गई है, परन्तु अम्बर चर्खे को पूरा प्रोत्साहन दिया जायगा। ग्रामोद्योगों में चावल की कुटाई, घाणियां, चमड़े की रंगाई, गुड़ व शक्कर उद्योग, दियासलाई, मधुमक्खी, ताड़-गुड़, कागज व मिट्टी के बर्तन आदि उद्योगों को प्रोत्साहन प्राप्त होगा। छोटे उद्योगों की बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली में चार शाखाएं खोली जायेंगी। इसके अतिरिक्त देश में औद्योगिक बस्तियां बनाने के लिये इस योजना में १० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

(ग) यातायात (Transport)

यातायात और परिवाहन तथा संचार के कार्यक्रमों में प्रायः ढाईगुना अधिक व्यय होगा। यह राशि दूसरी योजना के कुल व्यय का २९ प्रतिशत है। १०० प्रतिशत बिजली तथा ५८ प्रतिशत कोयले की शक्ति में वृद्धि करने का लक्ष्य है। १६००० मील पक्की सड़कें इस योजना काल में अतिरिक्त रूप से बनाने का आयोजन है। सिंचाई और बाढ़ नियन्त्रण के लिये ४८६ करोड़ रुपये की व्यवस्था है। विद्युत विकास के लिये ४२७ करोड़ रुपये व्यय होंगे। इसके अतिरिक्त ३५ प्रतिशत माल ढोने तथा १५ प्रतिशत सवारी गाड़ियों का विकास होगा।

(घ) सामाजिक सेवाएं (Social Services)

सामाजिक सेवाओं पर कुल व्यय का २० प्रतिशत अर्थात् ९४५ करोड़ रुपये व्यय होंगे। इसमें शिक्षा के लिए ३०७ करोड़, स्वास्थ्य के लिए २७४ करोड़, आवास के लिये १२० करोड़, पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिये ९१ करोड़, समाजकल्याण के लिये २९ करोड़, श्रम और श्रमकल्याण के लिये २९ करोड़, पुनर्वास के लिये ९० करोड़ और शिक्षित बेकारों के लिये विशेष योजनाओं पर ५ करोड़ रुपया व्यय होगा। सभी धनराशि पहिली योजना से कहीं अधिक है। उदाहरणार्थ दूसरी योजना में शिक्षा पर व्यय होने वाली धनराशि पहली योजना में निर्धारित राशि के दुगुने से कुछ ही कम है। ऐसा ही स्वास्थ्य के सम्बन्ध में है।

इसके अतिरिक्त ८ लाख स्कूल खोले जायेंगे जिनमें ६ से ११ वर्ष की आयु के बच्चों को शिक्षा प्रदान की जायगी। ३ करोड़ छात्रवृत्तियां भी प्रदान

करने का निश्चय हुआ है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में १२५० डाक्टर व ३००० प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र ग्रामीण क्षेत्रों में खोले जायेंगे। इतना ही नहीं, भूमि-हीन मजदूरों की समस्या व भूमि-सुधार के क्षेत्र में भी प्रस्तावित लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। १५०० विक्रय गोदाम व ४००० ऋण समितियों के गोदाम बनाये जायेंगे। इस योजना में २,४४,५६४ पंचायतों का निर्माण होगा।

(३) योजना के साधन (Resources of the Plan)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना ४८,०० करोड़ रुपये का व्यय करेगी। यह राशि पहली पंचवर्षीय योजना की तुलना में ढ़ाईगुनी है। इस राशि का आधा भाग राज्य सरकार और बाकी आधा भाग केन्द्रीय सरकार व्यय करेगी। ४८०० करोड़ रुपये की राशि के अतिरिक्त २४०० करोड़ रुपये व्यक्तिगत उद्योगों के क्षेत्र से प्राप्त होने की आशा है। इस योजना का व्यय केन्द्र व राज्य के मध्य निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेगा।

योजना पर व्यय (केन्द्र व राज्य द्वारा)

	कुल व्यय (करोड़ रुपये)		
विकास योजना	केन्द्र	राज्य	कुल योग
१. कृषि और सामुदायिक विकास	६५	५०३	५६८
२. सिंचाई और बिजली	१०५	८०८	९१३
३. उद्योग और खान	७४७	१४३	८९०
४. परिवाहन और संचार	१,२०३	१८२	१,३८५
५. सामाजिक सेवायें	३९६	५४९	९४५
६. विविध	४३	५६	९९
कुल योग	२,५५९	२,२४१	४,८००

इस प्रकार इस योजना में ८२०० करोड़ रुपया व्यय होगा। यह व्यय उद्योग, कृषि, यातायात, समाज सेवा आदि पर किया जायगा। वैसे संशोधित व्यय की तालिका में ६२०० करोड़ रुपये इस योजना के अन्तर्गत खर्च होना निश्चित् हुआ है जिसमें ३८०० करोड़ रुपया केन्द्रीय सरकार व्यय करेगी। २४०० करोड़ रुपये व्यक्तिगत साधनों से प्राप्त होंगे। इन २४०० करोड़ रुपयों का व्यय कृषि व सामुदायिक योजना में १७० करोड़, सिंचाई में १०० करोड़, बड़े व खनिज उद्योगों में ६१७ करोड़, छोटे उद्योगों में १०० करोड़, यातायात व संचार में ८३ करोड़ तथा सामाजिक सेवाओं में ९२५ करोड़, व्यक्तिगत उद्योगपतियों द्वारा

खर्च होंगे। इस राशि की आय के साधन विभिन्न हैं जिनमें टैक्स, भूमिकर, ऋण व बचत योजनाएँ तथा विदेशी सहायता से प्राप्त धन होगा। यह कथन निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगा :—

आय जो योजना पर व्यय की जायगी

	वास्तविक अनुमानित मई १९५६ (करोड़ रुपये)
१. कर	
नये करों द्वारा	४५०
प्राचीन करों द्वारा	३५०
	८००
२. अन्य भूमिकर, पैंशनकोष, रेल्वे लाभ, इत्यादि	४००
३. ऋणों और लघु बचत	
ऋण	७००
लघु बचत	५००
	१२००
४. कमी	१२००
५. विदेशी सहायता	८००
रिक्त	४००
योग	४८००

(४) योजना की सफलताएँ (Achievements of Plan)

दूसरी पञ्चवर्षीय योजना इतनी अधिक सफल नहीं हुई और इस असफलता के कारणों को विद्वानों ने विभिन्न रूपों से प्रतिपादित किया है। प्रथम समाजवादी व्यवस्था का ठोस प्रयास नहीं किया गया। द्वितीय पूंजीवादी आर्थिक ढांचे का परिवर्तन नहीं किया गया। तृतीय राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर अत्यधिक काल्पनिक और आशावादी है। चतुर्थ परिवाहन तथा संचार के विकास में २९ प्रतिशत व्यय अधिक है जबकि 'कृषि और सामुदायिक विकास की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये था। पंचम कुटीर उद्योगों हेतु ४.१ प्रतिशत धनराशि की व्यवस्था अत्यधिक कम है।

फिर भी सामान्य रूप से दूसरी योजना में ग्रामीण पुनर्निर्माण करने हेतु औद्योगिक तथा ग्रामीण उन्नति की नींव को दृढ़ किया गया है। इसके अतिरिक्त

इस योजना के अन्तर्गत ३२५ लाख व्यक्ति ग्रामीण विकास की योजना से लाभ उठा रहे हैं। ग्रामीण साख व्यवस्था में सहकारी सेवाओं की वृद्धि की गई है। कृषि उत्पादन के क्षेत्र में २८ प्रतिशत वृद्धि का अनुमान लगाया जाता है। ग्रामीण डाक, तार आदि सेवाओं का भी विकास हुआ है। राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण निवास व्यवस्था में पुनर्निर्माण किया गया है।

इस योजना की यह भी सफलता मानी जाती है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक विकास के कार्यक्रम में अत्यधिक वृद्धि की गई है। ग्रामीण शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा का विकास किया गया है। कुछ राज्यों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के आधार पर पंचायतों का पुनर्गठन किया गया है।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजन
(Third Five-Years Plan)

अविकसित राष्ट्रों में भारत एशिया का प्रथम राष्ट्र है जिसने इन आयोजनों में सफलता प्राप्त की है। यह कार्य इस देश के प्रथम व द्वितीय पंचवर्षीय आयोजनों के द्वारा हुआ। पहली योजना में आर्थिक व्यवस्था को दृढ़ करने के साथ साथ संविधान में दिये हुए तत्वों के अनुरूप सामाजिक व आर्थिक नीतियां भी ग्रहण की गईं। दूसरी योजना में पहली योजना की ही नीतियों को जारी रखते हुये पैदावार बढ़ाने, विकास में अधिक रुपया लगाने और अधिक लोगों को रोजगार देने की कोशिश की गई। परन्तु विश्व के अन्य प्रगतिशील देशों की तुलना में भारत को बढ़ने के लिये अभी और परिश्रम, त्याग तथा बलिदान की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से तीसरी पंचवर्षीय योजना का सूत्रपात हुआ।

(१) आयोजन की रूपरेखा (Out line of Plan)

६ जुलाई सन् १९६० ई० को तृतीय पंचवर्षीय आयोजन की रूपरेखा प्रकाशित हुई। इस योजना में अन्य योजनाओं को भांति सर्व प्रथम कृषि की ओर ध्यान दिया गया है। कुटीर उद्योग, शक्ति तथा यातायात के साधनों के विकास हेतु भी इस योजना में प्रयत्न किया गया है। उद्योग के क्षेत्र में सार्वजनिक व व्यक्तिगत क्षेत्रों का विकास करने का पूरा मौका दिया जायेगा। इसके लिये वैज्ञानिक अनुसंधान प्रविधि, शिक्षा व कला तथा हस्त उद्योगी शिक्षा पर बल दिया गया है। तीसरी योजना में व्यक्तिगत व सामुदायिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ साथ बचत के पक्ष पर आवश्यक प्रकाश डाला गया है। इस योजना में १०,२०० करोड़ रुपये खर्च करने का निश्चय हुआ है। इस व्यय का विवरण निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगा।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजन १९६१-६५

व्यय विभाजन तालिका

शीर्ष	व्यय (करोड़ रुपयों में)
१. कृषि, लघु सिंचाई और सामुदायिक विकास	२,४७५
२. प्रमुख तथा सामान्य सिंचाई	६४०
३. शक्ति	९७५
४. ग्राम तथा लघु उद्योग	४३५
५. उद्योग एवं खाद	२,५००
६. यातायात तथा परिवाहन	१,६५०
७. समाज सेवाएं	१,७२५
८. आविष्कार	८००
योग	१०,२००

(२) प्रस्तावित लक्ष्य (Proposed Aims)

तृतीय पंचवर्षीय आयोजन में प्रथम व द्वितीय योजनाओं के अनुभवों व कमियों को ध्यान में रखते हुए निम्न प्रस्तावित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं।

(i) राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने की दृष्टि से इस योजना में प्रथम योजना के ३.५ प्रतिशत तथा दूसरी के ४ प्रतिशत के स्थान पर ५ प्रतिशत की दर से वृद्धि करने का निश्चय किया गया है।

(ii) खाद्यान्नों में उत्पादन वृद्धि के लक्ष्य में १०.५ करोड़ टन वृद्धि की आशा की जाती है जबकि गत योजनाओं में लगभग ७ करोड़ टन की सम्भावना थी। कपास व कपड़े के उत्पादन में ८.४५ अरब गज वृद्धि निर्धारित की गई है।

इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में निम्न लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं :—

(क) कृषि (Agriculture)

इस योजना में कृषि को अत्यन्त प्राथमिक स्थान दिया गया है। खाद्यान्नों में पूर्ण रूप से आत्मनिर्भरता लाने के लिये १२५ करोड़ रु० की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त सिंचाई की बड़ी और मध्यम योजना के लिये ६५० करोड़ रुपये रक्खे गये हैं। निजि क्षेत्र से कृषि के कार्य में ८०० करोड़ रुपये खर्च होंगे। इस प्रकार ऐसा अनुमान है कि खाद्यान्नों के उत्पादन में ३०.३३ प्रतिशत वृद्धि होगी।

कृषि सहायक उद्योगों में विकास करने की दृष्टि से बादाम, फल, सब्जियां, तम्बाकू, चमड़ा, लकड़ी आदि की पैदावार बढ़ाने की कोशिश की जायगी। तीसरी योजना के अन्त तक ६ करोड़ एकड़ भूमि में सिंचाई होने लगेगी। रासायनिक खादों के प्रचार एवं प्रयोग की दृष्टि से यह अनुमान है कि १० लाख टन रासायनिक खाद प्रयोग में आने लगे। इसके अतिरिक्त संक्षेप में हम कृषि उत्पादन के लक्ष्य को निम्न तालिका से समझने का प्रयास करेंगे।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजन

मदें	कृषि उत्पादन
अनाज	१,००० लाख टन
तिलहन	९२ लाख टन
गन्ना (गुड़)	९० लाख टन
कपास	७२ लाख गाँठ
पटसन	६५ लाख गाँठ

(ख) शक्ति एवं उद्योग (Power and Industry)

इस आयोजन में उद्योगों के विकास हेतु विशेष बल दिया गया है। उद्योग आर्थिक व्यवस्था को उन्नत बनाने में सहयोग देते हैं। इसलिये इस्पात और मशीन निर्माण के उद्योग को स्वयंपूर्ति उद्योग बनाया जायगा। भिलाई, रूरकेला तथा दुर्गापुर के इस्पात के कारखाने १५.५ लाख टन इस्पात उत्पन्न करेंगे। मशीन निर्माण के क्षेत्र में कोयला खनिज, व भारी मशीन के औजारों के निर्माण पर बल दिया जायेगा। बंगलौर, भोपाल आदि स्थानों पर कारखानों का विकास होगा। कपड़ा, गन्ना, सीमेन्ट और कागज की मशीनों के उद्योगों को विकसित किया जायगा। इस योजना के अन्तर्गत ऐसी आशा की जाती है कि रासायनिक खादों के उत्पादन में १ लाख टन की वृद्धि हो जायगी। इसी प्रकार तेल, कोयला तथा अन्य उद्योगों में वृद्धि की सम्भावना है।

शक्ति के क्षेत्र में ऐसी आशा की जाती है कि ११.८ लाख किलोवाट का उत्पादन होगा। इसके अतिरिक्त १५ हजार शहर तथा ३४ हजार गांवों में बिजली लगाई जायेगी। कुटीर उद्योग के सम्बन्ध में हाथ करघे व शक्ति करघे बनाने से २८० करोड़ गज कपड़े बनाने का लक्ष्य रक्खा गया है। ग्रामोद्योग और छोटे उद्योगों में ५८ लाख व्यक्तियों को रोजगार दिया जायगा।

(ग) यातायात एवं परिवाहन (Transport and Communication)

ऐसी आशा की जाती है कि सवारी गाड़ियों के साथ साथ मालगाड़ियों की क्षमता २३५ लाख टन भार खेंच सकेंगी। इसके अतिरिक्त ऐसा भी

निश्चय किया गया है कि १२०० मील लम्बे नवीन रेल्वे मार्गो का उद्घाटन होगा। इस योजना में २०,००० मील लम्बी पक्की सड़कें व १४४ हजार कच्ची सड़कों का विकास होगा। ६०० हजार जी.आर.टी. जहाजरानी की क्षमता बढ़ेगी।

(घ) समाजसेवाएं (Social Services)

समाजसेवाओं का अधिक जनसंख्या में प्रचार किया जायगा। ६ से ११ वर्ष के समस्त भारत के बच्चों को शिक्षा निःशुल्क व अनिवार्य रूप से प्रदान की जायगी। स्कूल जाने वाले बच्चे ४१ लाख से बढ़कर ६५ लाख हो जायेंगे। वैज्ञानिक शिक्षा में रूचि रखने वाले विद्यार्थियों की संख्या ३० से ४० प्रतिशत हो जायेगी। प्रादेशिक व यांत्रिक शिक्षा के क्षेत्र में यह संख्या ३७०० हजार के स्थान पर ५२५०० हो जायगी।

चिकित्सा व स्वास्थ्य के क्षेत्र में डाक्टरो की संख्या ८४ हजार से बढ़ा कर १०३ हजार कर दी जायेगी और रोगी शैया की संख्या १६० हजार से बढ़ कर १९० हजार हो जायेगी। गाँवों में प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों की संख्या ५००० हो जाने की सम्भावना है। परिवार नियोजन के कार्यक्रम को बढ़ावा देने के लिये इनकी संख्या १८०० के स्थान पर ८२०० कर दी जायेगी। निवास व्यवस्था के क्षेत्र में भी विभिन्न प्रकार के अनुदान देने की सम्भावना है।

(च) ग्रामीण पुनर्निर्माण (Rural Re-construction)

ग्रामीण क्षेत्रों में पुनर्निर्माण के कार्यक्रम के अन्तर्गत स्थानीय कार्यो को महत्ता प्रदान की जायेगी। प्रत्येक गांव में समुचित पीने के जल की व्यवस्था, यातायात व्यवस्था तथा स्कूल, सामुदायिक केन्द्र एवं ग्रामीण पुस्तकालय खोले जायेंगे। आर्थिक क्षेत्र में भारत स्वयंपूर्ति का स्थान प्राप्त कर लेगा, ऐसी आशा की जाती है।

इस प्रकार हमने भारत के तीनों आयोजनों पर दृष्टिपात किया है। ग्रामीण पुनर्निर्माण की समस्त योजनाएं इन आयोजनों के विशेष भाग सामुदायिक योजनाओं में निहित हैं। इस दृष्टि से ग्रामीण पुनर्निर्माण की वर्तमान गतिविधियों को समझाने के लिये हम आगामी अध्याय में विवेचना करेंगे।

अध्याय ३०

ग्रामीण पुनर्निर्माण एवं सामुदायिक विकास

(Rural Reconstruction and Community Development)

ग्राम पुनर्निर्माण की विचारणा पर विवेचन करते हुए हमने इसके विभिन्न स्वरूपों एवं प्रमुख तत्वों पर विचार किया। इसके साथ साथ हमने इस कार्य में लगी हुई विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी सस्थाओं की पृष्ठभूमियों पर विचार किया। इसके अतिरिक्त हमने यह भी देखने का प्रयास किया कि भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में इस विषय का कितना महत्व है। इतना ही नहीं हमने यह भी निश्चय कर लिया है कि ग्रामीण पुनर्निर्माण में सामुदायिक विकास योजनाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से हमारे लिये यह आवश्यक ही नहीं परन्तु अनिवार्य है कि हम सामुदायिक विकास योजना का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करें। अतः यहाँ हम सामुदायिक विकास की विचारणा, उद्देश्य, कार्यक्रम, संगठन एवं सफलताओं पर .विचार करेंगे। प्रथम हम सामुदायिक विकास की विचारणा की ओर अपना ध्यान आकर्षित करते हैं।

सामुदायिक विकास की विचारणा

(Concept of Community Development)

सामुदायिक विकास का अर्थ बड़ा व्यापक है। यह एक महान आदर्श क्रांति है। स्पष्ट शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सामुदायिक विकास समाज की समाज के द्वारा और समाज के लिये विकास योजना है। श्री देसाई का कथन है, "सामुदायिक विकास योजना एक प्रणाली के रूप में है जिसके द्वारा पंचवर्षीय आयोजन ग्रामों के सामाजिक और आर्थिक (Social and Economic) जीवन के परिवर्तन के लिये एक प्रक्रिया का निर्माण करते हैं।"[1]

इस प्रकार ग्रामीण जीवन का पुनर्निर्माण करने वाली विभिन्न योजनाओं का केन्द्र (Centre) सामुदायिक योजना ही है। वास्तव में देखा जाय तो ग्राम एक

---

1. "The Community development projects as the method through which five year plan seeks to initiate a process of transformation of the social and economic life of the villages." A. R. Desai : Reproduced from Sociological Bulletin, Vol. VII, Sept., 1958.

सामाजिक और आर्थिक इकाई के रूप में परिवर्तित किये जायेंगे। विस्तृत रूप से यदि इस ओर विचार करें तो सामुदायिक विकास योजनाओं का अर्थ समाज का सर्वांगीण विकास है। सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाने वाली सामाजिक प्रक्रिया ही है। बलवन्तराय कमेटी रिपोर्ट में कहा गया है, "सामुदायिक शब्द एक धार्मिक अथवा जातीय समूह को कई शताब्दियों से प्रदर्शित करता आया है अथवा कुछ अवस्थाओं में आर्थिक समूह को भी। यह आवश्यक नहीं कि यह एक क्षेत्र में रहते हों। लेकिन इस देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के उद्घाटन से यह आकांक्षा है कि इसका प्रयोग ग्रामीण समुदाय की एक इकाई के रूप में परिभाषित किया जाय और जाति, धर्म, आर्थिक असमानताओं का नाश हो।"[2]

यू० एन० ओ० (U. N. O.) रिपोर्ट के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इसमें समुदाय के प्रयत्नों और प्रेरणाओं का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाता है। यह एक वैज्ञानिक प्रणाली है जो समय-समय पर ग्रामीण जनता को ग्राम विकास के कार्य में प्रोत्साहित करती है। यह समुदाय से व्यक्ति की ओर विकास को केन्द्रित करती है। प्रत्येक व्यक्ति के विकास की सम्भावना इसमें निहित है, जिससे यह ग्रामीण इकाई का उत्तरदायी अंग बन कर इसके कल्याण के क्षेत्र में सफल हो सके। पं० नेहरू ने बताया है कि सामुदायिक विकास योजना का अर्थ मौलिक परिवर्तनों के कार्यों से नहीं प्रयुक्त किया जाता है। इसका ध्येय कहीं अधिक है। यह समुदाय एवं व्यक्ति का पूर्ण विकास करती है जिससे वह गाँव का विकास कर सके। अतः यह कहा जा सकता है कि सामुदायिक विकास एक ग्रामीण पुनर्निर्माण के आधार स्तम्भ कार्यक्रमों को सम्पादित करता है जिसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक पुनर्निर्माण करने के लिये विशेष कार्यक्रम निहित हैं। योजना आयोग के शब्दों में, "सामुदायिक विकास वह विधि तथा राष्ट्रीय विस्तार का वह साधन है जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजना गाँवों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के कार्य को

---

2. "The word 'Community' has for the past many decades denoted religious or caste groups or in some instances economic groups not necessary by living in one locality. But with the inauguration of the community devolopment programme in this country, it is intended to apply it to the concept of the village community as a whole and cutting across caste, religious and economic differences." 'Balvant Rai Committee report.'

प्रारम्भ करना चाहती है।"[3] इससे यह स्पष्ट होता है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण पुनर्निर्माण का कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम की यह भी विशेषता है कि इसमें ग्रामीण जनता को आत्मनिर्भर बनाया जाता है। एक मासिक पत्रिका इण्डिया (India) में उचित लिखा है, "स्वयं ग्रामवासियों द्वारा आयोजित तथा कार्यान्वित किया हुआ एक अनुदान प्राप्त आत्मनिर्भर कार्यक्रम है, सरकार तो केवल टेकनीकल मार्ग-प्रदर्शन और आर्थिक सहायता प्रदान करती है।"[4] अतः यह स्पष्ट है कि सामुदायिक विकास योजना स्वयं ग्रामीण जनता द्वारा आयोजित वह कार्यक्रम है जो कि उस गाँव में उपलब्ध हो सकने वाले समस्त भौतिक तथा मानवी साधनों को इस प्रकार काम में लाता है जिससे पूरे गाँव के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन का उत्थान हो सके। "सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम का केन्द्रीय उद्देश्य गाँव के जीवन के सम्पूर्ण स्तर को वहाँ के निवासियों के सामूहिक श्रम से ही क्रियाशील करके उन्नत करना है।"[5] इस प्रकार यह कार्यक्रम जनता के सहयोग से ग्रामीण जीवन के सर्वव्यापी विकास में आस्था रखता है। श्री जी. मजूमदार ने लिखा है, "यह ग्रामीण समुदाय के सर्वव्यापी जीवन को उन्नत करने के लिये विशेषतया आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक विकास के लिये है।"[6] अतः इस कार्यक्रम में ग्रामीण समुदाय का प्रत्येक क्षेत्र विकसित करना निहित है। यह कार्यक्रम एक अत्यन्त विस्तृत कार्यक्रम है जो ग्रामीण समुदाय की धार्मिक, जातीय और आर्थिक

---

3. "First Five Year Plan, Planning Commission, Govt. of India." p. 223.

4. "It is programme of aided self-help to be planned and implemented by the villagers themselves, Government offering only technical guidance and financial assistance." 'India'; 1959; p. 214.

5. "The central object of the community development programme is to mobilise local menpower for a concerted and co-ordinated effort at raising the whole level of rural life." First Five Year Plan.

6. "To promote the all sided development of the village community, including their economic, political, social, cultural and moral development in particular." Majumdar : 'Artical C. D. Approach Needs Orientation', published in Kurukshetra, March 1961. p. 16.

भिन्नताओं को काटता है। इस सम्बन्ध में श्री एल. एल. रायना ने लिखा है, "सामुदायिक विकास ने एक रहस्यपूर्ण विचारणा का प्रतिनिधित्व किया है। इसके नये अर्थों में सामुदायिक विकास एक सह-सम्बन्धित कार्यक्रम है और ग्रामीण समुदाय के एक रूप में समस्त क्षेत्रों को स्पर्श करता है। धार्मिक, जातीय, सामाजिक और आर्थिक भिन्नताओं को काटता हुआ पार करता है।"[7]

अतः यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि सामुदायिक विकास योजना जनता द्वारा स्वयं अपने प्रयत्नों से ग्रामीण जीवन में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाने का एक गम्भीर प्रयास है। इसमें ग्रामीण जीवन के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के सभी कार्यक्रम उपस्थित हैं। इसमें ग्रामीण जनता को अपनी समस्त समस्याओं को हल करने का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है। योजना आयोग के अध्यक्ष श्री जवाहरलाल नेहरू ने एक स्थान पर कहा है, "पहली बार यह सत्य कहा जा सकता है कि हमने वास्तविक रूप से ग्रामीण समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया।"[8] इस प्रकार सामुदायिक विकास समस्त ग्रामीण समस्याओं को सुलझाने का एक अत्यन्त प्रगतिशील और सर्वोच्च कार्यक्रम है।

सामुदायिक विकास का सूत्रपात
(Origin of Community Development)

इस आन्दोलन को अनेक कल्याणकारी कार्यक्रमों से प्रेरणा प्राप्त हुई। प्राथमिक रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S. A.) की कृषि विकास सेवाओं से इस कार्यक्रम की उत्पत्ति में योग प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम सन् १९४७ ई० में एक सामुदायिक विकास प्रशासक (Community Project Administrator) की नियुक्ति की गई। उसके बाद सन् १९४८ ई० में

---

7. "The Community Development represented a comprehensive concept in its new meaning, Community development is an integrated Programme touching on all aspect, and intended to apply to the village community as a whole, cutting across religion, caste, social and economic differences." L.N. Raina : Artical;'Community development and peoples participation'; published in 'Kurukshetra'; (April 1961) p. 20.

8. "For the first time, it may be said with truth that we tackled the rural problem in a realistic way," said by the Prime Minister Shri Nehru in 1955.

उत्तरप्रदेश के इटावा और गोरखपुर जिलों में प्रयोग योजना (Pilot Project) के रूप में कार्य प्रारम्भ किया गया। इसके बाद कुछ अमेरिकन विशेषज्ञों की सहायता से पंजाब प्रान्त के निलोखेरी स्थान पर परीक्षण किये गये। यह परीक्षण श्री एस. के. दे, जो एक विद्युत और यांत्रिक इन्जिनियर (Engineer) थे, की देखरेख में पूर्ण किया गया। इस परीक्षण में पारिवारिक कृषि तथा लघु उद्योग कार्यकर्ताओं के सहकारी संगठन किये गये। इसी प्रकार एक और योजना देहली के समीप फरीदाबाद नामक स्थान पर शरणार्थियों के पुनर्वास हेतु श्री सुधीर घोष की देखरेख में संचालित की गई।

इन अनुभवों के आधार पर इस विचारधारा का विकास दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। श्री एलवर्ड, अमेरिकन नगर आयोजक के निरीक्षण में इटावा जिले का परीक्षण अत्यन्त सफल हुआ। इस परीक्षण में सर्वप्रथम बहुउद्देशीय विकास योजनाएं निर्मित की गयीं और ग्राम-सेवक को इनका केन्द्र निर्धारित किया गया। इस योजना में बीज, रसायनिक खाद, हरी खाद आदि के नवीन प्रयोग किये गये। कृषि विकास के साथ साथ स्वास्थ्य, शिक्षा तथा यातायात के साधनों में सफल प्रयोग किये गये। इसी के समान मद्रास सरकार ने ग्रामीण कल्याण योजना को फिरका विकास योजना के नाम से पारित किया। इस योजना का सम्पूर्ण कार्य महात्मा गांधी के आदर्शों के अनुसार संचालित किया गया। इसमें जन-सहयोग और स्थानीय साधनों के प्रयोग किये गये। यह योजना कालान्तर में अधिक विकसित हुई और इसका संगठनात्मक रूप निर्मित किया गया। यह योजना शिक्षा, उद्योग, कृषि, यातायात आदि के क्षेत्रों में एक आदर्श योजना मानी जाती है।

इन प्रयोगों ने सामुदायिक विकास योजना को अत्यधिक उच्चकोटि की प्रेरणा प्रदान की। इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी, रविन्द्रनाथ ठाकुर व अन्य ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में कार्य करने वाले समाज सुधारकों का योग उल्लेखनीय है। इस प्रकार ग्रामीण जीवन के सामान्य क्षेत्रों में विकास करने हेतु इस योजना को प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्रमुख स्थान दिया गया है। इस कार्यक्रम में अमेरिका के भूतपूर्व प्रेसिडेंट के चौथे सिद्धान्त के अनुसार भारत और अमेरिका के बीच सन् १९५२ ई० में एक समझौता Indo. - U. S. Technical Co-operation Agreement हुआ, जिसके अनुसार भारत में सामुदायिक विकास योजना को कार्यान्वित करने के लिये अमेरिका ने आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त अमेरिका की Ford Foundation संस्था से भी इस कार्य के लिये सहायता मिली।

इन सब यत्नों के उपरान्त गांधी जयन्ती के शुभ अवसर पर २ अक्टूबर सन् १९५२ ई० को ५५ सामुदायिक विकास खण्डों में सर्वप्रथम कार्य प्रारम्भ किया गया। इसी समय अधिक अन्न उपजाओ जांच समिति (Grow More Food Enquiry Committee, 1952) ने गाँवों के सर्वांगीण विकास के लिये अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं। इन सिफारिशों के अनुसार अप्रेल सन् १९५३ ई० में सरकार ने राष्ट्रीय विकास सेवा (National Extension Services) की योजनाओं को प्रारम्भ किया। २ अक्टूबर सन् १९५३ ई० में २०० खंड, १००, १०० गाँवों के प्रारम्भ किये। इन योजनाओं में सामुदायिक विकास की तुलना से सीमित कार्य अपनाये गये।

इस प्रकार सामुदायिक विकास कार्यक्रम के दो रूप निर्धारित कर दिये गये। सामुदायिक विकास के प्रारम्भिक प्रायोगिक खंडों में कृषि उत्पादन, समाज शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य तथा अन्य विकास कार्यक्रमों पर बल दिया गया। केन्द्रीय सरकार ने इन प्रयोगों के परिणाम आने से पूर्व ही अनेक नवीन खंड प्रारम्भ कर दिये। परिणामस्वरूप दिसम्बर, सन् १९५२ ई० में ही १५५ नवीन खंड प्रारम्भ कर दिये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना तक २३६५ ग्रामों की २१.५ लाख जनता को इस कार्यक्रम का परिचय प्राप्त हो गया। केन्द्रीय सरकार ने योजना आयोग के अन्तर्गत सामुदायिक विकास का एक स्वतन्त्र विभाग खोल दिया। राष्ट्रीय विस्तार खंडों में कृषि और सिंचाई को अधिक बल दिया गया और ये दोनों योजनायें केन्द्र में सामुदायिक विकास प्रशासन तथा राज्यों में विकास आयुक्तों के अधीन कर दी गयीं। इस प्रकार प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक ७४ लाख जनता १२० हजार गाँवों में सामुदायिक विकास से लाभान्वित होने लगी। इस प्रकार सामुदायिक विकास योजना का दिन प्रतिदिन विकास होता गया और इससे ग्रामीण जनता में नवीन प्रेरणा उत्पन्न हो गई। अब हम इस योजना के प्रमुख उद्देश्यों और सिद्धान्तों पर विचार करेंगे।

सामुदायिक विकास योजना का ध्येय

(Aims of Community Development Programme)

सामुदायिक विकास योजना के अर्थ से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण समुदाय का सर्वांगीण विकास करना ही इस आन्दोलन का प्रमुख ध्येय है। प्रो० दूबे के अनुसार, सामुदायिक विकास योजना का उद्देश्य, "देश की कृषि सम्बन्धी उत्पत्ति तथा यातायात के साधनों में पर्याप्त वृद्धि करना तथा ग्राम स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के साथ ही साथ शिक्षा में भी उन्नति करना है।

गाँवों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में परिवर्तन करने के लिए सम्बन्धित सांस्कृतिक परिवर्तनों की प्रक्रिया को प्रेरित व प्रदर्शित करना है।"[9] इसी तरह बी. एच. एवं जॉह्न बी. (Belshow H. and John B.) के कथनानुसार इस योजना का उद्देश्य यह था कि "ग्रामीणों को पूर्ण प्रसन्नता, तथा अधिक सम्पन्न एवं पूर्ण जीवन के लिए संगठित करना है जिससे प्रत्येक ग्रामीण को व्यक्तिगत एवं एक पूर्ण ग्रामीण समाज के सदस्य के रूप में विकास करने का अवसर प्राप्त होगा।"[10]

इस शासन यंत्र का मुख्य व्यक्ति जनसेवक है क्योंकि गाँव में काम होने की जिम्मेदारी उसी पर है। प्रत्येक ग्रामीण जनसेवक है,वह अपनी सेवा स्वयं करने की कोशिश करता है। सामुदायिक विकास योजना एक प्रकार की शिक्षा क्रांति है जो स्थानीय समस्याओं के निवारणार्थ स्थानीय स्रोतों से ही पूर्ण होती है। मि० फ्रांसिस बी० ने कहा है, "सामुदायिक विकास योजना स्वयं प्रदर्शन एवं स्वयं विकास का साधन है और उसके पीछे एक राजनैतिक एवं आर्थिक आकांक्षा है।"[11] इससे यह स्पष्ट है कि सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम का केन्द्रीय उद्देश्य गाँवों के सम्पर्क के सम्पूर्ण स्तर को वहाँ के निवासियों के सामूहिक श्रम से ही क्रियाशील करके उन्नत करना है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य गाँवों के सर्वांगीण विकास द्वारा ग्रामवासियों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में क्रांति

---

9. "To provide for a substantial increase in the country's agricultural production, and for improvements in the system of communications, in rural health and hygiene and in village education. To initiate and direct of process of integrated cultural change aimed and transforming the social and economic life of the village." S.C. Dube,'India's Changing Villages', p. 8.
10. "To organise the villagers for a happier, fuller and more prosperous life in which the individual villager will have the opportunity to develop both as an individual and as a member of well integrated society." Belshow H. and Grant John B :'Report of the mission of community organisation and development in South East Asia, United Nations (1955)';p.118.
11. "Community development is a means of self expression and self growth and behind it there is political and economic urge." Francis. V. :'Thadikarans Rural India', p. 39 (Reproduced from Autobiography of Pt. Nehru.)

उत्पन्न करना है। ग्रामीण जनता के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करके उन्हें स्वयं सेवा की प्रेरणा देना है। इसके अतिरिक्त इन योजनाओं का ध्येय ग्रामीण नेतृत्व को अधिक उत्तरदायित्व और क्रियाशील बनाना भी है। समस्त ग्रामवासियों के आर्थिक व सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाते हुए जीवन स्तर में उन्नति लाना है। इन सुधारों को व्यावहारिक रूप देने के लिये ग्रामीण स्त्रियों और परिवारों की दशा को भी उन्नत करना है। ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य में प्रगति करते हुए बीमारियों के कारण व प्रभावों को भी कम करना है।

इन सब बातों के अतिरिक्त सामुदायिक विकास के कुछ आधारभूत उद्देश्य इस बात पर भी बल देते हैं कि सुधार के लिये जनता में स्वयं सेवा की भावना जागृत करनी होगी। इसके अतिरिक्त सामाजिक आर्थिक जीवन में तथा दृष्टिकोणों में परिवर्तन लाने के लिये कृषि उत्पादन, ग्रामीण आय आदि के साधनों को सामुदायिक स्तर पर विकसित करना है। इन समस्त कार्यों में ग्रामीण जनता का सहयोग प्राप्त करना भी इस योजना का प्रमुख लक्ष्य है।

ग्रामीण सामुदायिक विकास का कार्यक्रम उस उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ा है जो भारत की लाखों जनता का कल्याण कर राष्ट्र के सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक विकास में सहायक होंगे। इस कार्यक्रम का लक्ष्य एक अद्भुत संगठन के द्वारा जनता में आत्म विश्वास जागृत करने हेतु शिक्षालय, सड़कें, सामुदायिक केन्द्र व स्वास्थ्य तथा शुद्धता के विचार प्रदान करना है। सामुदायिक विकास के कार्यक्रम ने यह भी लक्ष्य निर्धारित किया है कि ग्रामीण पुनर्निर्माण की सभी योजनाओं को सम्मिलित करके कार्यरूप में परिणित किया जाय। इसीलिये प्रत्येक सामुदायिक खण्ड ग्रामीण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सह-सम्बन्धित प्रयत्नों से आगे बढ़ते हैं।

इस कार्यक्रम का तत्व आत्मनिर्भरता, स्वयं प्रेरणा, स्वयं सेवा तथा जनसहयोग पर आधारित है। ग्रामीण पुनर्निर्माण के समस्त प्रारम्भिक प्रयत्नों से यह स्पष्ट रूप से अनुभव किया गया था कि जब तक जनता स्वयं इन कार्यक्रमों को अपना कार्यक्रम न समझ ले तब तक वांछनीय परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते। ग्रामीण जनता में इस उत्साह और परिवर्तन को उत्पन्न करने के लिये ग्रामीण लोकतन्त्रीय शक्तियों को पुनर्गठन करने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सामुदायिक विकास का कार्यक्रम ग्रामीण पुनर्निर्माण के सभी प्रमुख उद्देश्यों को लेकर आगे बढ़ा है।

इसके अतिरिक्त सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कुछ आवश्यक सिद्धांत हैं जिनका उल्लेख करना भी हम यहां आवश्यक समझते हैं। ये सिद्धान्त निम्न हैं :—

(१) सुधार के लिये प्रधान प्रेरणा जनता की ओर से आनी चाहिये। ग्रामीण भारत में अनन्त जन-शक्ति सुप्तावस्था में पड़ी है। रूढ़िवादिता एवं निष्क्रियता का नाश कर जन-शक्ति का रचनात्मक उपयोग करना चाहिये।

(२) सामान्य समस्याओं के निवारण हेतु सहकारिता के सिद्धान्त को व्यवहार में लाना चाहिये।

(३) ग्रामीण दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिये वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग कर कृषि, आत्म-सहायता, कुटीर उद्योग एवं मनोरंजन केन्द्रों आदि का संगठन शीघ्र प्रारम्भ करना चाहिये।

(४) सामुदायिक विकास का कार्यक्रम हमारे देश में एक अद्भुत संगठन के रूप में प्रारम्भ किया जाना चाहिये जो ग्रामीण पर्यावरण के अनुकूल हो।

(५) समुदाय का संकीर्ण अर्थ मिटाकर समुदाय को एक केन्द्रित इकाई में अनुभव करते हुए धार्मिक, जातीय, सामाजिक और आर्थिक भिन्नताओं को भुला देना चाहिये।

(६) ग्रामीण विकास आन्दोलन जनता आन्दोलन के रूप में कार्यान्वित होना चाहिये।

(७) जन सहयोग का तत्व समूह के रूप में भी शीघ्र अपनाना चाहिये। अमेरिका के एक मान्य समाजशास्त्री ने लिखा है, "भारत का सामुदायिक विकास व विस्तार कार्यक्रम विकसित रीतियों के ज्ञान पर आधारित है जो व्यक्तिगत आधारों पर अधिक प्रगतिशील होगा, यदि संगठित समूह इन रीतियों के प्रचार की जिम्मेदारी को ग्रहण कर ले।"[12] इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि सामुदायिक विकास एक अत्यन्त क्रांतिकारी कार्यक्रम है जो समाज के पुनर्निर्माण के उद्देश्यों को लेकर आगे बढ़ा है। अब हम सामुदायिक विकास के क्षेत्र पर दृष्टिपात करेंगे।

---

12. "India's community development and extension programme is based on the knowledge that adoption of improved practices by individuals will be more rapid if organisation groups assume responsibility for the spreed of this practices.

A critical Analysis of Indias Community Development Programme. Dr. Carl C. Taylor: Community Projects Administration, July 20 and 26, (1956).

सामुदायिक विकास का क्षेत्र
(Scope of Community Development)

ग्रामीण सामुदायिक विकास के दोनों रूप सामान्य विस्तार व विकास के कार्यों में संलग्न हैं। ये अपने कार्यों के क्षेत्रों में निम्न अवस्थाओं का प्रयोग करते हैं। पहली अवस्था में चुने हुए विकास के क्षेत्र में गहन सर्वेक्षण का कार्य चलता है। इस सर्वेक्षण के आधार पर कार्य व क्षेत्रों का निश्चय किया जाता है। दूसरी अवस्था में निर्धारित क्षेत्रों में कार्यक्रम को कार्य रूप में परिणित करने का कार्य किया जाता है। यह कार्यक्रम व्यक्तिगत गाँवों में सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रेरणाओं से किया जाता है। क्षेत्र में आवश्यक कार्यकर्ता व भण्डार आदि का आयोजन होता है। चतुर्थ अवस्था में विशिष्ट प्रवृत्तियों द्वारा कार्यक्रम को कार्यान्वित करते हैं जिनमें कृषि विस्तार, पशु व स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षाशाला का विकास, कुओं तथा तालाबों आदि में सुधार होता है। इस अवस्था में कुछ प्रमुख क्षेत्रों में निर्माण कार्य भी किया जाता है। पंचम अवस्था में विकास की प्रवृत्तियों की सफलताओं व विफलताओं का सामान्यीकरण किया जाता है। इस प्रकार सामुदायिक विकास के कार्यक्रम में विचारणा, प्रेरणा, कार्यारम्भ, एकीकरण तथा सामान्यीकरण की प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में इस कार्यक्रम का प्रसार किया जाता है। यह क्षेत्र निम्न प्रकार से हैं :—

(क) कृषि एवं इससे सम्बन्धित क्षेत्र :

(१) अयोग्य एवं अन-उत्पादक भूमि को सुधार कर खेती योग्य करना।
(२) सिंचाई की व्यवस्था।
(३) ग्रामों में बिजली द्वारा प्रकाश करना, तथा खेती में विद्युत प्रयोग।
(४) रसायनिक खादों की व्यवस्था।
(५) उन्नत बीजों की व्यवस्था।
(६) उन्नत कृषि विशेषताओं का प्रचार।
(७) पशु चिकित्सा एवं कृत्रिम गर्भाधान।
(८) कृषि सम्बन्धी शिक्षण एवं प्रशिक्षण।
(९) कृषि विकास की प्रदर्शनी व चलचित्र।
(१०) वैज्ञानिक औजारों का प्रयोग।
(११) ग्रामीण बाजार एवं ऋण व्यवस्था में सुधार।
(१२) मछली पकड़ना आदि उद्योगों का विकास।
(१३) साग सब्जी उगाने की प्रेरणा।
(१४) प्राकृतिक व गले (Compost) खाद का प्रयोग।

(ख) यातायात एवं परिवहन का क्षेत्र :

(१) नये मार्गों की खोज ।
(२) मार्गों की मरम्मत एवं निर्माण ।
(३) यांत्रिक यातायात की वृद्धि ।
(४) पशुओं का परिवहन बढ़ाना ।

(ग) शिक्षा क्षेत्र :

(१) प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क एवं अनिवार्य करना ।
(२) ग्रामीण उद्योगों से युक्त बुनियादी शिक्षा का प्रसार ।
(३) माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था ।
(४) प्रौढ़ एवं समाज-शिक्षा की व्यवस्था ।
(५) महिला एवं बालिका शिक्षा का प्रचार ।

(घ) स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का क्षेत्र :

(१) नालियाँ, पिट, हौज, पाखाने, पेशाब-घर आदि बनाना ।
(२) मलेरिया एवं अन्य संक्रामक रोगों का निवारण ।
(३) आरोग्यिक कुओं का निर्माण व स्वच्छ जल की व्यवस्था ।
(४) प्राथमिक चिकित्सा, औषधि वान की व्यवस्था ।
(५) कुशल दाइयां व मिडवाइफ आदि की व्यवस्था ।
(६) परिवार नियोजन की व्यवस्था ।
(७) ग्रामीण जन स्वास्थ्य की योजना बनाना ।

(ङ) ग्रामीण प्रशिक्षण क्षेत्र

(१) कृषि व उन्नत खेती की विधियों से अवगत कराना ।
(२) अन्य उद्योगों के प्रशिक्षण केन्द्रों का संगठन ।
(३) ग्राम नेता शिविरों का आयोजन ।
(४) स्वयं सेवा एवं श्रमदान सम्मेलन ।

(च) समाजकल्याण के क्षेत्र में—

(१) सामुदायिक मनोरंजन के केन्द्रों की स्थापना ।
(२) चलचित्र व रेडियो की व्यवस्था करना ।
(३) क्रीड़ा प्रतियोगिता व खेलों का आयोजन ।
(४) विकास मेलों की व्यवस्था ।
(५) छात्रवृत्तियों का वितरण
(६) सहकारी भंडारों का निर्माण ।
(७) शिशु कल्याण केन्द्र एवं दूध वितरण ।

(८) महिला आश्रमों का संगठन
(६) दलित जाति छात्रावास।
(१०) व्यवस्थित आश्रम केन्द्र।
(११) उत्तर रक्षागृह

(छ) **कुटीर उद्योग एवं बेकारी निवारण के क्षेत्र :**
(१) करघा व मुड्डा निर्माण केन्द्र।
(२) गृह उद्योगों की स्थापना हेतु सहायता।
(३) अन्य उद्योगों का प्रदर्शन।
(४) मुर्गी पालन केन्द्र।
(५) मधुमक्खी उद्योग।

(ज) **ग्रामीण मकान व्यवस्था के क्षेत्र में :**
(१) विकसित व सस्ते मकानों का प्रदर्शन।
(२) दलित जाति बस्तियाँ।
(३) मकानों हेतु तकावी व ऋण।

इस प्रकार सामुदायिक योजना का क्षेत्र विस्तृत है। इस कार्यक्रम को बहुउद्देशीय व बहुक्षेत्रीय कार्यक्रम कहा जा सकता है। इन उद्देश्यों एवं क्षेत्रों को कार्यान्वित करने के लिये इसका एक रहस्यपूर्ण संगठन है। प्रत्येक योजना की सफलता समुचित प्रशासनिक व्यवस्था पर आधारित है। इसलिये अब हम इस योजना के कार्य, संगठन एवं प्रशासन की ओर भी अपना ध्यान आकर्षित करना आवश्यक समझते हैं। सामुदायिक विकास योजना ग्राम जीवन के सभी मोर्चों पर एक साथ समग्र रूप से आगे बढ़ना चाहता है। इसमें कृषि और उससे संबंधित विषयों का पूर्ण रूप से पुनर्निर्माण किया जाता है। समाज कल्याण के लिये स्थानीय प्रतिभा और सांस्कृतिक आधार पर सामुदायिक मनोरंजन की व्यवस्था, शिक्षा और मनोरंजन के लिए रेडियो, वाचनालय, प्रदर्शनियाँ, विकास मेले तथा प्रतियोगितायें आदि का आयोजन किया जाता है। इस कार्यक्रम को समाज-शास्त्रीय भाषा में अष्टांक विकास का कार्यक्रम कहते हैं। अर्थात् सामुदायिक विकास का कार्यक्रम प्रमुख रूप से आठ भागों में विभाजित है। क्रमानुसार (१) कृषि तथा उससे सम्बन्धित कार्य (२) यातायात के साधन (३) शिक्षा प्रचार (४) स्वास्थ्य और सफाई (५) प्रशिक्षण (६) कुटीर उद्योगों का विस्तार (७) मकानों की व्यवस्था तथा (८) सामाजिक कल्याण। इस प्रकार सामुदायिक विकास का कार्यक्रम ग्रामीण जीवन के सभी क्षेत्रों पर निर्माण कार्य करने की अभिलाषा रखता है। इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम के क्षेत्र की यह भी व्यवस्था है कि यह समस्त क्षेत्र परस्पर सह सम्बन्धित है।

योजना आयोग के तत्वावधान में संचालित मूल्यांकन विभाग (Evaluation Development) के अध्यक्ष श्री घोष का कहना है कि सामुदायिक विकास का क्षेत्र समाज विकास तक है। इस कार्यक्रम को विकसित करने की आवश्यकता है। लेखक स्वयं इस क्षेत्र का अनुसन्धान कर रहा है। अतः ऐसी कल्पना निर्धारित की जाती है कि सामुदायिक विकास का सम्बन्ध न केवल ग्रामीण पर्यावरण से होना चाहिये बल्कि इस कार्यक्रम का क्षेत्र नगरों की ओर विकसित किया जा सकता है। अर्थात् नागरिक सामुदायिक विकास (Urban Community Development) की विचारणा का विकास सम्भव है। हमें खुशी है कि दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता म्यूनिसिपल कारपोरेशन के अधीन इस विचारणा का विकास किया गया है। हमारे अनुसन्धान के आधार पर हम इस बात का प्रयत्न करेंगे कि नागरिक सामुदायिक विकास कहीं अधिक जनकल्याण का कार्य कर सकेगा। ग्रामीण समस्याओं से कहीं अधिक गम्भीर नागरिक समस्यायें हैं। अतः नागरिक सामुदायिक विकास योजना की विचारणा शीघ्र रचनात्मक क्षेत्र प्राप्त कर सकती है।

सामुदायिक विकास की विचारणा, आवश्यकता, उद्देश्य तथा क्षेत्र पर विचार कर लेने के उपरान्त हमारे लिये आवश्यक हो जाता है कि हम इसके संगठन एवं प्रशासन की गतिविधियों से भी परिचित हो जायें। सामुदायिक विकास के कार्यक्रम की यह विशिष्टता है कि इसका संस्थात्मक (Institutional) रूप अत्यन्त आकर्षक और रहस्यपूर्ण है। अतः हम अब सामुदायिक विकास के इस पक्ष पर विचार करेंगे।

सामुदायिक विकास का संगठन एवं प्रशासन
(Organisation & Administration of C. D.)

किसी भी कार्यक्रम को जनता की अनुसंधानशाला में डाले बिना उसकी उपयोगिता एवं सफलता का भास नहीं हो सकता। समाजशास्त्रीय कार्यक्रम समाज की अनुसंधानशाला में सदा तभी खरे उतरते हैं जब कि उनका संगठनात्मक रूप आकर्षित हो। सामुदायिक विकास में ही यह आकर्षण निहित है क्योंकि इस आन्दोलन का उद्देश्य ग्रामीण जन सहयोग प्राप्त करना सर्वप्रथम निर्धारित किया गया है। अतः हम अपने विषय सामुदायिक विकास के संगठनात्मक व प्रशासनिक रूप को देखें। कार्यक्रम का प्रमुख भाग उसकी प्रशासनिक प्रक्रिया है। इसलिये भारत सरकार ने इस क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी कार्यकर्ताओं को प्रशासनिक प्रशिक्षण देने के साथ साथ कार्यक्रम से सम्बन्धित विशिष्ट प्रशिक्षणों का भी आयोजन किया है। आन्दोलन तभी सफल होता है जब कि कार्यकर्तागण एक प्रशासनिक इकाई (Official unit) के रूप में ही कार्य न करें बल्कि इस

प्रकार के आन्दोलनों में समाज सेवा, जन सेवा तथा त्याग और बलिदान की भावना लेकर भी कार्य करें। फिर भी हम सामुदायिक विकास के संगठन को निम्न तालिका के द्वारा पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

राज्य स्तर पर सामुदायिक विकास के संगठनात्मक स्वरूप की रूपरेखा हम संलग्न चार्ट में देखेंगे।

इस प्रशासनिक तथा संगठनात्मक चित्रण से स्पष्ट हो गया होगा कि प्रोजेक्ट स्तर पर विकास खंड ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यक्रम की इकाई है। विकास खंड वास्तविक रूप से निर्धारित कार्य को प्रत्यक्ष रूप से कार्यान्वित करता है। केन्द्र स्तर पर समस्त देश की सामान्य नीतियाँ निर्धारित की जाती हैं और विभिन्न अध्ययनों एवं सर्वेक्षणों द्वारा नवीन मान्य तथ्य निकाले जाते हैं। इस कार्य में केन्द्र स्तर पर विभिन्न विशेषज्ञों की समितियाँ बनी हुई हैं। सामुदायिक विकास के क्रियात्मक क्षेत्र का समस्त उत्तरदायित्व राज्य के कन्धों पर है। राज्य विकास समिति का अध्यक्ष राज्य का मुख्य मंत्री होता है तथा अन्य मंत्रीगण सदस्य और विकास आयुक्त मंत्री का कार्य करते हैं।

इस स्तर पर राज्य की स्थानीय आवश्यकताओं व समस्याओं पर विचार किया जाता है। इस कार्य के लिये प्रत्येक राज्य में विकास आयुक्त एक विशेषज्ञ के रूप में राज्य के समस्त जिलों (Districts) का कार्य निर्धारित करता है तथा निरीक्षण करता है। जिलास्तर पर जिलाधीश की अध्यक्षता में जिला विकास समिति का संगठन किया जाता है और जिला विकास अधिकारी इसका संचालक होता है। सामुदायिक विकास का प्रमुख स्तर क्षेत्र योजना (Project) स्तर है। प्रत्येक खंड का एक अधिकारी होता है जो कृषि, सहकारिता, पशुपालन, कुटीर उद्योग, शिक्षा आदि के विशेषज्ञ विस्तार अधिकारी (Extension Officers) की सहायता से कार्य करता है। इसके अतिरिक्त महिला समाज शिक्षा संगठक (Women Social Edu. Organiser) महिला क्षेत्र में उद्योग व शिक्षा के कार्य का संचालन करती है। प्रत्येक योजना खंड में निर्माण कार्य के लिये सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं निर्माण कार्यों के लिये चिकित्सक तथा ओवरसीयर होते हैं। ग्राम स्तर का प्रमुख व वास्तविक कार्यकर्ता ग्राम सेवक होता है। इस व्यक्ति के अन्तर्गत १० गाँवों का कार्य क्षेत्र होता है। ग्रामसेवक ग्राम स्तर पर समस्त योजनाओं को कार्यान्वित करता है। इस व्यक्ति को इस कार्य के लिये विशेष शिक्षा दी जाती है।

सामुदायिक विकास के संगठन में नवीन परिस्थितियों के अनुकूल कुछ परिवर्तन कर दिये गये हैं। यह परिवर्तन खन्ड व ग्राम स्तर पर किये गये हैं। लोकतंत्रीय विकेन्द्रीकरण की योजनाओं के अनुसार प्रत्येक जिले में एक जिला परिषद् का संगठन किया गया है। यह परिषद् तहसील स्तर पर विकास की योजनाओं का निर्माण तथा संचालन करती है। प्रत्येक तहसील में पंचायत समिति का आयोजन है। समितियाँ विकास खन्डों के आधार पर ही संगठित की गई हैं। प्रत्येक समिति में ग्राम स्तर के सरपंच तथा एक प्रमुख होता है। यह समिति तहसील स्तर पर ग्राम स्तर की समस्त विकास योजनाओं

का निर्माण तथा संचालन करती हैं। पंचायत समिति एक प्रकार से पूर्व-कालीन योजना खन्ड तथा विकास खन्ड ही है। इस समिति का प्रमुख कार्यकर्त्ता विकास अधिकारी होता है। इस प्रकार १०० गाँवों की एक तहसील में एक विकास समिति होती है। इस प्रकार ग्राम स्तर पर सभी योजनाएं इसी के द्वारा निर्मित तथा संचालित होती हैं।

प्रत्येक योजना को कार्यान्वित करने के लिये यह आवश्यक है कि जनता तथा सरकार का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। जन समुदाय अपना भाग श्रमदान द्वारा प्रदान कर देता है। राज्य और केन्द्रीय सरकार राजनीति निर्देशक सिद्धान्तों के अनुसार वित्तीय विभाजन कर लेती हैं। खंडों में राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त किये गये कर्मचारियों पर खर्च होने वाले व्यय का आधा भाग केन्द्रीय सरकार उठाती है। सितम्बर सन् १९५८ ई० तक जनता से प्रायः ६६ करोड़ रुपये अनुदान के रूप में प्राप्त हुए थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास व राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम पर कुल ९० करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था थी। परन्तु वास्तव में केवल ५२.४ करोड़ रुपया व्यय किया गया। दूसरी पंचवर्षीय योजना में २०० करोड़ रुपये की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त अमेरिका से उपकरणों (Equipments) के आयात के लिये १८२.८ लाख डालर(Dollars) की सहायता प्राप्त हुई है। योजना के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए फोर्ड फाउन्डेशन (Ford Foundation) से भी सहायता मिली थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अक्टूबर, सन् १९५२ ई० में सामुदायिक विकास का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। यह लक्ष्य निर्धारित किया गया था कि इस समय में आठ करोड़ जनता को इससे लाभ होना चाहिये। इसी प्रकार दूसरी योजना में ४० प्रतिशत राष्ट्रीय विकास खन्डों को सामुदायिक विकास खन्डो में परिवर्तित कर देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसके अतिरिक्त ३ हजार ८०० नए विकास खंड खोलने का निश्चय हुआ। १,१२० विकास खंडों को सामुदायिक विकास खंडों में विभाजित करने की योजना निर्धारित की गई। इस कार्य के लिए इस योजना में २०० करोड़ रु० खर्च करने की व्यवस्था की गई थी। इस खर्च का विवरण निम्न प्रकार से दिया जाता है।

	करोड़ रुपये
१. खण्ड कार्यालयों के कर्मचारी और साज सामान	५२
२. कृषि (पशु पालन, सिंचाई, कृषि-विस्तार आदि)।	५५
३. संचार	१८
४. ग्राम्य कलाएँ और दस्तकारी	५
५. शिक्षा	१२
६. सामाजिक शिक्षा	१०
७. स्वास्थ्य और ग्रामों की सफाई	२०
८. गृह	१६
९. सामुदायिक विकास की अन्य मदें (केन्द्र)	१२
योग	२००

इस योजना के अन्तर्गत कृषि के उत्पादन को सबसे प्रमुख स्थान देने का निश्चय किया गया है। इसके अतिरिक्त सहकारिता का विकास, पंचायतों का पुनर्गठन, ग्रामोद्योगों का विकास, ग्रामवासियों को रोजगार दिलाना तथा महिला व जनजातीय कल्याण के कार्यक्रम निर्धारित किये गये। इस योजना में यह भी निर्धारित किया गया कि कार्यकर्ताओं के लिए विशिष्ट प्रकार के प्रशिक्षण (Special Training) की व्यवस्था हो।

सामुदायिक विकास की प्रगति एवं मूल्यांकन
(Progress and Evaluation of C. D.)

अक्टूबर सन् १९५२ ई० से लेकर जब से सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ, सन् १९५६ ई० तक १२०० विकास खण्ड (प्रत्येक में लगभग १०० गाँव थे), स्थापित किये गये। इनमें से ३०० खण्ड सामुदायिक योजना तथा बाकी ९०० खण्ड राष्ट्रीय विस्तार के अन्तर्गत थे। बाद के खण्डों से से ४०० खण्ड अपेक्षाकृत विकास की उच्च और तेज स्थिति पर पहुँच गये हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार खण्डों से प्रभावित जनसंख्या और गाँवों का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है :—

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत स्थापित विकासखंड

	१९५२ : ५३	१९५३ : ५४	१९५४ : ५५	१९५५ : ५६	योग
१. विकास खंड					
सामुदायिक विकास	२४७	५३	....	....	३००
राष्ट्रीय विस्तार सेवा		२५१	२५३	३९६	९००
योग	२४७	३०४	२५३	३९६	१,२००
२. ग्रामों की संख्या					
सामुदायिक विकास	२५,२६४	७,६९३	....	....	३२,९५७
राष्ट्रीय विस्तार सेवा		२५,१००	२५,३००	३९,६००	९०,०००
योग	२५,२६४	३२,७९३	२५,३००	३९,६००	१,२२,९५७
३. जनसंख्या (लाखों में)					
सामुदायिक विकास	१६४	४०	....	....	२०४
राष्ट्रीय विस्तार सेवा		१६६	१६७	२६१	५९४
योग	१६४	२०६	१६७	२६१	७९८

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार के कार्य ने लगभग १,२३,००० गाँवों तथा लगभग ८ करोड़ जनता अर्थात् २५ प्रतिशत अंश को प्रभावित किया है।

दूसरी योजना के अन्तर्गत प्रगति

(Progress under Second Five Year Plan)

१ जनवरी सन् १९५९ ई० तक इस कार्यक्रम के अन्तर्गत २,४०५ खण्ड थे जिनमें ३,०२,९४७ गाँव और लगभग १६.५ करोड़ जनसंख्या थी, अर्थात् जनसंख्या का ५६ प्रतिशत अंश शामिल था। अतः सन् १९५९ ई० के प्रारम्भ तक देश के विभिन्न भागों में २४०५ खण्ड खोले गये थे और इनसे भारत के ३,०२,९४७ गाँवों में रहने वाली १६.५ करोड़ जनता अर्थात् भारतीय ग्रामीण जनसंख्या के प्राय: ५६ प्रतिशत अंश को लाभ पहुँच रहा है। संक्षेप में सामुदायिक विकास की प्रगति निम्न है :—

(क) कृषि (Agriculture)

उत्तम बीजों का वितरण	प्राय १५८ लाख मन
रासायनिक खादों का वितरण	३६० ,,
उत्तम उपकरणों की पूर्ति	१२ लाख एकड़
कृषि योग्य बनाई गई भूमि	२४ ,,
सिंचाई के अंतर्गत लाया गया नया क्षेत्र	३६ ,,

(ख) पशुपालन (Animal Husbandry)

उत्तम पशुओं की पूर्ति	४६ हजार
उत्तम पक्षियों की पूर्ति	६ लाख

(ग) स्वास्थ्य और सफाई (Health and Sanitation)

ग्राम शौचालयों का निर्माण	५ लाख
नालियों का निर्माण	१८६ लाख गज
पीने के पानी के कुओं का निर्माण	१२६ लाख
मरम्मत किये गये कुवे	१६५ लाख
प्रारम्भिक स्वास्थ्य केन्द्र	३,८५६ लाख
प्रसूति तथा शिशु कल्याण केन्द्र	१,२५६

(घ) शिक्षा (Education)

नये स्थापित स्कूलों की संख्या	२५००० हजार
बेसिक स्कूलों में परिवर्तित स्कूल	१०,३२५
प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र	८७,०००
वाचनालय	४५,१००
सूचना केन्द्र	१६,६६
साक्षर बनाये गये प्रौढ़ों की संख्या	प्राय: ३० लाख

(ङ) सड़कें (Transport)

नई कच्ची सड़कों का निर्माण	प्राय: ७८ हजार मील
पुरानी कच्ची सड़कों की मरम्मत	,, ६१ हजार मील
पुलियों का निर्माण	,, ५१ हजार

(च) सहकारिता (Co-operation)

नई स्थापित सहकारी समितियाँ	१,२७,१२५
बनाये गये सदस्य	८७.८ लाख

इन सफलताओं के साथ हम सामुदायिक विकास योजना की उन्नतिशीलता में सफलताओं का विश्लेषण करना आवश्यक समझते हैं। विशेष विवरण के लिए परिशिष्ट 'स' में दिये गये आंकड़े देखे जा सकते हैं।

सामुदायिक विकास और जनसहयोग
(Community Development and People's Participation)

प्रारम्भ में सामुदायिक विकास योजना ग्रामीण जनता के लिये अत्यन्त नवीन योजना थी। इस योजना ने जनता के पुनर्निर्माण के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन कर दिया। सामुदायिक तत्वों का विकास होने के साथ-साथ उनमें स्वयं सेवा के विचार भी काफी हद तक विकसित हो चुके हैं। जिन क्षेत्रों में विकास खंड स्थापित किये गये उनका खंड के कार्यकर्ताओं व ग्राम सेवक से सम्बन्ध स्थापित हो गया है। इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम में जनता की आस्था भी उत्पन्न हो गई है। सरकार का वर्तमान कदम कुछ राज्यों में सफलता प्राप्त कर रहा है। पंचायतों व पंचायत समितियों को विकास का कार्य सौंप देने से ये लोग स्थानीय समस्याओं की पूर्ति करने में अधिक सक्रिय रूप से रुचि ले रहे हैं। ग्रामवासियों की सम्मति से गाँव के विकास और उनके निजि कल्याण के लिये जो महत्वपूर्ण कार्य किये गये हैं उनसे भी उन लोगों का विश्वास अधिक अटल हो गया है। वास्तव में ग्रामीण व्यक्ति,ग्रामीण परिवार व ग्रामीण समुदाय के सहयोग का प्रश्न अत्यन्त अनिवार्य है। ३१ मार्च सन् १९६० ई० तक के आंकड़ों से प्रतीत होता है कि ग्रामीण जनता ने ८७ करोड़ रुपये का कार्य जनसहयोग के रूप में कर दिया है। अतः हम इस सफलता को भौतिक सफलता के आधार पर सोचें तो अतिआकर्षित प्रतीत होती है परन्तु वास्तविक रूप से जन-सहयोग की धारणा अभी और विकसित करने की आवश्यकता है। ग्रामीण समुदाय में सामुदायिक कार्यों के प्रति वांछनीय जागृति की आवश्यकता है।

मूल्यांकन (Evaluation)

भारतीय सामुदायिक विकास के कार्यक्रम की सफलता का मूल्यांकन करने के लिये 'कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन' का आयोजन, योजना-आयोग के अन्तर्गत, आरम्भ से ही कर दिया गया था। इस संगठन का कार्यक्रम निरन्तर मूल्यांकन, प्रशिक्षण तथा प्रमाणित करने की गतिविधियों से सम्बन्धित है। इस संगठन ने विभिन्न ग्रामीण समाजशास्त्रियों, विस्तार विशेषज्ञों (Extension Specialists) तथा सरकारी व गैर सरकारी व्यक्तियों के अध्ययनों के आधार पर भी मूल्यांकन करने का निश्चय किया है। कुछ विदेशी पर्यटकों ने भी इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है, ''यह कार्यक्रम आर्थिक विकास और सामाजिक प्रगति का इस समय एशिया का अत्यत महत्वपूर्ण अनुभव

है।"[13] इसी प्रकार प्रो० टोयनबी (Toynbee) ने लिखा है, "इस महान भारतीय प्रयत्न का क्रियात्मक आदर्शवाद कृषि जीवन में अत्यन्त लाभप्रद क्रांति लाने जा रहा है जो अब तक इतिहास में जानी गई।[14] "प्रधान मन्त्री ने भी एक स्थान पर कहा है, "कुछ जीवन प्रदान करने वाला उन्हें अनुभव हुआ, जो पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में प्रविष्ट हुए।"[15]

सामुदायिक विकास योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए भारत सरकार के मूल्यांकन-संगठन (Evaluation Organisation) ने सन् १६५६ ई० तक की मूल्यांकन रिपोर्ट में लिखा है कि इस मूल्यांकन रिपोर्ट में सामुदायिक परियोजनाओं और राष्ट्रीय प्रसार सेवाओं के अध्ययन-दल बलवन्तराय कमेटी (Balwant Rai Committee) की रिपोर्ट सन् १६५७ की शिफारिशों का भी उल्लेखनीय स्थान है। अतिरिक्त मानवशास्त्र के विशेषज्ञ डा० श्यामाचरण दुबे का विश्लेषण भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन समस्त विश्लेषणों के आधार पर सन् १६५६ ई० तक का मूल्यांकन योजना आयोग ने प्रकाशित किया है। इस विवरण में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं।

(१) अनेक स्थानों पर प्रोजेक्ट कार्यों की प्रगति अनेक अवस्थाओं पर रुकी रही, परिणामतः कुछ स्थानों पर कार्यक्रम के विषय में जनता का विश्वास कम हो गया।

(२) कलक्टर को अपने जिले के विकास कार्य का दायित्व वहन करना चाहिये। सिद्धान्ततः तो इसे स्वीकार कर लिया गया है पर बिना प्रशासनात्मक पुनर्गठन के यह सम्भव नहीं है। पर साथ ही उन खण्डों का जहाँ कार्यकारिणी (Executive) और विकास अफसर एक रहे हैं, अनुभव बड़ा निराशाजनक रहा है।

(३) चूंकि लोकप्रिय प्रयत्न का सिद्धान्त व्यवहार में बहुत मन्द गति से चलता है, अतः सरकारी प्रेरणा के पक्ष में अधिकारियों की राय बन रही है। पर प्रस्तुत कार्यक्रम का लोकप्रिय होना अनिवार्य है।

---

13. "The most significant experiment in economic development and social improvement in Asia at the present time."
14. "The Practical idealism of this great Indian enterprise may be going to bring about one of the most beneficient revolution in peasantry's life that have been known so far in history."
15. "Something life giving went to them......A process of rejuvenation". The New India : Planning Commission, India, New Delhi, Dec. 15, 1957, p. 175.

(४) निम्न सरकारी स्तर पर भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति और खण्डों को धड़ाधड़ बढ़ाने पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है और वह प्रमुख विकास और कल्याण अधिकारी के रूप में कलक्टर की भूमिका (Role) नहीं समझ पा रहे हैं। विकास और राजस्व (Revenue) अधिकारी कलक्टरी में जाकर मिल जाते हैं, पर निम्न स्तर पर उनका सर्वथा पृथक रहना आवश्यक है।

(५) कृषि अधिकारियों के रूप में खण्ड विकास अधिकारी नियुक्त करने की प्रथा को अधिकाधिक अपनाने की आवश्यकता है।

(६) विकास कार्य के परिमाण (Quantity) के स्थान पर उसके गुण (Quality) पर जोर देने की भी आवश्यकता है।

(७) बहुत से ऐसे ग्राम सेवक हैं जो प्रशिक्षित नहीं हैं, या जिनका प्रशिक्षण अपर्याप्त है और बहुत से ग्राम सेवक गाँव की अवस्थाओं के अनुकूल अपने को नहीं ढ़ाल पाते, तथा उनमें से बहुत से कृषि कार्यक्रम को पूरी तरह नहीं समझ पाते। विकास अधिकारी स्वयं इन कमियों को अनुभव करते हैं। इन कमियों को शीघ्र ही दूर करने की आवश्यकता है।

(८) अधिकांश स्थानों में प्रोजेक्ट सलाहकार समितियां प्रभावशून्य हैं और बहुत से क्षेत्रों में तो वह बनी ही नहीं हैं। अच्छा हो यदि उनमें प्रधान पद कलक्टर तक सीमित न कर उसे स्थानीय आयोजन और कार्यपूर्ति के लिये उत्तरदायी स्थानीय जिला बोर्ड के अध्यक्ष को प्रदान कर दिया जाये।

(९) सहकारी संस्थाओं के क्षेत्र में परिमाणात्मक (Quantitative) दृष्टि से बहुत ही कम प्रगति हुई है। बहुउद्देशीय प्रकार की समिति लोकप्रिय हो रही है। इस बात के स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि बहुउद्देशीय समिति सर्व-उद्देशीय नहीं है। उत्पादन, भवन् निर्माण और व्यापार में इन्हें हाथ नहीं डालना चाहिये। यह वस्तुतः खेद का विषय है कि अधिकांश राज्यों में सहकारिता, यहां तक कि अधिक परिचित ग्राम्य ऋण के क्षेत्र में भी बहुत कम कार्य हुआ है। बहुतसी सहकारी समितियां अभी भी खाते पीते लोगों के हाथ में सरकारी सहायता और विशेषाधिकार प्राप्त समितियों की भांति कार्य कर रही हैं। जब तक कि ऋण और उससे सम्बन्धित कार्यों के संस्थात्मक ढाँचे को पूर्ण रूपेण मजबूत नहीं किया जाता, विस्तार कार्य गाँवों के उच्च वर्गों में से नीचे नहीं पहुँचेगा।

(१०) स्वशासन की बुनियादी इकाई के रूप में विकास मंडल जैसे तदुउद्देशीय समितियों (Adhoc Bodies) की अपनी उपयोगिता पर सरकारी तौर से निर्मित बहुउद्देशीय समितियां अनिवार्यतः विभिन्न ५ विरोधी समूहों के

सदस्यों को साथ रखने में असमर्थ रही हैं और अनेक स्थानों पर उन्होंने विभेद और विवाद के नये कारणों की सृष्टि की है। सहज और जनता द्वारा संचालित समितियों का लोकतंत्रीय प्रगति की संस्थाओं में स्वीकृत स्थान है। किन्तु जहां गैर सरकारी समितियों के निर्माण के पीछे स्वयं अधिकारियों का हाथ रहता है और वह सरकारी कार्यों की रस्सी साधने के रूप में उसका प्रयोग करते हैं तो वह एक मात्र धोका है।

(११) प्रायः सभी राज्यों में अब वैधानिक पंचायतें स्थापित हो गई हैं। विकास के कार्यों के प्रशासन का दायित्व इनके हाथों में देना सर्वथा उचित है।

(१२) सामुदायिक कार्यों के लिये सरकारी नेतृत्व और सहयोग का हम सर्वथा बहिष्कार नहीं कर सकते और सरकारी पहल, प्रोत्साहन और संगठन को जबरदस्ती कहना भी ठीक नहीं है।

(१३) बीजों और रसायनिक खादों के वितरण के मार्ग में स्टोर घरों की सन्तोषजनक सुविधाओं का अभाव बड़ी बाधा है।

(१४) प्रारम्भिक अवस्था में समाज शिक्षा की भूमिका के सम्बन्ध में पर्याप्त गलत धारणा रही है। यह अब स्पष्ट हो चुका है कि प्रौढ़ शिक्षा महत्वपूर्ण होते हुये भी प्रौढ़ों में जागृति फैलाने का सबसे उपयोगी साधन नहीं है। समाज शिक्षा के लिये सबसे उचित भूमिक सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार के कार्य में वास्तव में स्वयं हिस्सा लेना और उसे लोकप्रिय बनाना है।

(१५) योजना क्षेत्र में दस्तकारी की उन्नति की दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ है। जहां तक ग्राम उद्योगों का सम्बन्ध है, उनकी सर्वथा उपेक्षा हुई है। इसका कारण भी है। इस दिशा में कृषि, स्वास्थ्य या शिक्षा की भांति कोई पूर्व सिद्ध कार्यक्रम सामने नहीं है। अतः अब तक ग्राम उद्योगों के उत्पादन को रोजगार, विनियोग (Investment) और उत्पादन के राष्ट्रीय कार्यक्रम से संयुक्त नहीं किया जाता था। ग्रामों में औद्योगिक विस्तार और सहकारिता का विकास सम्भव नहीं है।

(१६) वैसे ही राष्ट्रीय विस्तार सेवा में संक्रमण का समय निकट आता जा रहा है। यदि समस्त विकास क्षेत्र में पंचायत और सहकारी समितियों का संस्थात्मक ढांचा नहीं बन जाता तो विकास की प्रक्रिया में बहुत कम सहजता और निरन्तरता रह पायेगी बल्कि सदा इस बात का खतरा रहेगा कि अब तक का किया हुआ कार्य भी बेकार न चला जाये।

(१७) जहां तक उक्त कार्यक्रम के प्रभाव का सम्बन्ध है, यह देखा गया है कि कल्याण की उन सब योजनाओं में, जिनमें कि विभिन्न वर्गों पर बराबर

भार पड़ा और बराबर लाभ रहा है, जनता का सहयोग अच्छा रहा है। जहां तक सहयोग के प्रकार का सम्बन्ध है, उन कार्यों में जिनमें श्रम के दान का अधिक अंश रहा है, अधिक सहयोग मिला है तथा उन कार्यों में जिनमें धन के दान का अधिक अंश रहा है, कम सहयोग मिला है।

(१८) स्त्रियों और बच्चों के लिये विशिष्ट कार्यक्रम बहुत थोड़े खंडों में ही शुरू किये जा सके हैं। अधिकांश स्थानों पर तो स्त्रियों के लिये स्पष्ट पृथक कार्यक्रमों का अभाव ही है। केवल उन क्षेत्रों को छोड़कर जहां कि स्त्रियां पुरुषों से सर्वथा दूर रहती हैं, सामान्य कार्यक्रम जैसे स्वास्थ्य, आरोग्य और शिक्षा के कार्यक्रम को स्त्रियों द्वारा विशेषरूप से अपनाया और पसन्द किया गया है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ग्रामीण सामुदायिक योजनाएं गाँवों के बौद्धिक, सामाजिक और आर्थिक रूपान्तरण में महत्वपूर्ण भाग ले रही हैं किन्तु समस्त भागों और वर्गों को प्रभावित करने के लिये और अपनी ही संस्थाओं द्वारा उत्थान की प्रक्रिया में जनता को प्रभावित करने के लिये अभी पर्याप्त प्रयत्न की आवश्यकता है।

सामुदायिक विकास का भविष्य

(Future of Community Development)

उपर्युक्त सिफारिशें उचित हैं, इन्हें शीघ्र दूर करने का तथा कार्यान्वित करने का प्रयास किया जा रहा है। ज्यों ज्यों कार्यक्रम के आकार और उसके प्रभावों का क्षेत्र विस्तृत होता जायगा त्यों त्यों प्रत्येक स्थानीय क्षेत्र के लोगों का विश्वास एवं सहयोग भी बढ़ता जायगा। कुछ साधारण आवश्यकताएं जैसे गाँव की सड़कों का निर्माण, जल व्यवस्था, सफाई और शिक्षा आदि का कार्य अधिक विस्तृत रूप से करने की आवश्यकता है। उत्पादन की वृद्धि से बेकारी की समस्या को भी दूर किया जा सकेगा। योजना आयोग ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "संक्षेप में यह समस्या देहातों में रहने वाले ७ करोड़ परिवारों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की समस्या है। यह समस्या उनमें नए ज्ञान और जीवन के नए तरीकों के प्रति उत्साह जगाने की और अच्छी तरह से जीवन यापन की आकांक्षा और इच्छा शक्ति उत्पन्न करने की समस्या है। विस्तार सेवाएं और सामुदायिक विकास संगठन लोकतांत्रिक आयोजन के मुख्य जीवनदायी अंग हैं। ग्राम विकास कार्य वे साधन हैं जिनके द्वारा स्थानीय तौर पर आपस में मिल जुल कर सहकारी काम करते हुए ग्रामीण जनता और ग्राम, सामाजिक

७० हजार टन के स्थान पर ४० हजार टन फोस्पेटिक खाद में वृद्धि होगी। इतना ही नहीं, ५० लाख एकड़ भूमि में हरी खाद का विकास होगा।

(४) सन् १९६५—६६ ई० तक ३५०० लाख गज कपड़ा उत्पन्न किया जायगा।

(५) तृतीय योजना में ११२० मील लम्बी रेल्वे तथा १६४ हजार मील समतल सड़कें बनाई जायेंगी और ऐसा अनुमान है कि ३०० हजार व्यापारिक मार्गों में वृद्धि की जायगी।

(६) इस योजना के अन्त तक ३१०० ग्राम खण्ड खोले जायेंगे जो ४०,००० गाँवों का आलिंगन करेंगे।

इस प्रकार तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में सामुदायिक विकास का कार्यक्रम निर्विघ्न रूप से निरन्तर रहेगा। इस योजना में स्वयं-सेवा और आत्म-विश्वास के तत्व को अधिक विस्तृत करने का प्रयास किया जायेगा। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तृतीय पंच वर्षीय योजना में सामुदायिक विकास का भविष्य उज्जवल होने के साथ-साथ ग्रामीण भारत का भविष्य भी उज्जवल हो जायगा।

अध्याय ३१

भारतीय ग्रामीण जीवन का नवीन स्वरूप

(New Phase of Indian Rural Life)

गत अध्यायों में हमने भारतीय ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात करते हुए इस जीवन विशेष की आत्मा और समस्याओं पर विचार करने के साथ साथ इसके नवनिर्माण की कल्पना का भी साक्षात्कार किया। शताब्दियों से यह जीवन विभिन्न संस्कृतियों एवम् सभ्यताओं के थपेड़े खाता हुआ एक अत्यन्त विकृत स्वरूप में आज से बीस वर्ष पूर्व हमारे सन्मुख था। निरन्तर भीषण विपदाओं का सामना करने के उपरान्त भारत के साथ साथ यहां के ग्रामीण जीवन को भी अपने त्याग और बलिदानों के बदले केवल एक ठण्डी सांस ही मिली। प्राकृतिक रूप से भारत के इस सर्वव्यापी जीवन का पहला अधिकार था कि यह अपने स्वरूप का नवनिर्माण करे। फलतः स्वतन्त्र भारत के संविधान में जहां सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, वैचारिक स्वतन्त्रता, अवसरों एवं स्थितियों की समानता, व्यक्तिगत गरिमा और राष्ट्र के नवनिर्माण की शपथ लेकर प्रयत्नशील हुआ, वहां यह भी आवश्यक था कि इन समस्त प्रयत्नों का क्रीड़ास्थल प्रमुख रूप से भारतीय ग्रामीण जीवन हो।

देश के महान कर्णधारों ने यह सोचा कि यदि भारत का सामाजिक-आर्थिक विकास (Socio-Economic Development) करना हो तो हमें सर्वप्रथम भारतीयों के उन समूहों में चेतना और विकास की प्रवृत्तियों को जागृत करना होगा, जो ग्रामीण पर्यावरण में निवास करते हैं। उन्हें यह पूर्ण रूप से अवगत था कि भारत का यह जनसमुदाय अनेक आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से घिरा हुआ है। इस सम्बन्ध में श्री दुबे ने सही चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखा है, "देश का राजनैतिक विभाजन अनेक अधूरे प्रश्न छोड़ गया था जिससे विचारणीय रक्तक्रांति और झगड़े तथा देश में बहुसंख्यक उखड़े हुए लोग आये।[1]

---

1. "The political division of the country had left numerous tangled questions unsolved, caused considerable bloodshed and roting and brought into the country of large number of uprooted people." S. C. Dube, 'India's changing village', p. 1.

इतना ही नहीं, मुगलकालीन और अंग्रेजी शासन की शोषणकारी नीतियों ने इनके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक, भौतिक और अभौतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में ऐसे कीटाणुओं को जन्म दे दिया था जिन्होंने इस जीवन की प्रत्येक जड़ को खोखला करने के साथ साथ पूर्ण रूप से धराशाही भी कर दिया था। कहने का तात्पर्य यह है कि सन् १९४७ ई० के पूर्व भारतीय ग्रामीण जीवन में विघटन की प्रत्येक स्थिति दृष्टिगोचर हो रही थी। गरीबी, भूख, कलह, जुआ, नशा, अपराध, बेकारी आदि कारकों ने ग्रामीण समाज के मनोवैज्ञानिक जगत में एक असहनीय कम्पन को उत्पन्न कर दिया था। कितना भीषण स्वरूप था हमारे ग्रामीण जीवन का अर्थात् भारतीय जीवन का। कितनी नाजुक और गम्भीर स्थिति थी हमारे देश की। कितनी विशाल और लम्बी मंजिल को हमें पार करना था, हमने सोचा, विचारा, तय किया और मनन करके अपनी शक्ति को तोला। पुनर्निर्माण करने के लिए इस अवनत, पीड़ित भारतीय जनसमुदाय को स्वतन्त्रता के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा हमने ग्रामीण पुनर्निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य करने का निश्चय किया। इस प्रकार वह समय दूर नहीं जिसके प्रत्येक अंग को हमने अपनी कल्पना से देखा है। यहां हम इसी महान् कार्य की प्रक्रिया का सिंहावलोकन करेंगे और देखेंगे कि आज भारतीय ग्रामीण जीवन का क्या नवीन स्वरूप हमें दृष्टिगोचर हो रहा है। यह प्रगति का इतिहास बहुमुखी विकास का इतिहास है। हमें इसका व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करने के लिये एक क्रम को अपनाना पड़ेगा। हम सर्वप्रथम आर्थिक क्षेत्र में हुए विभिन्न परिवर्तनों पर विचार करेंगे।

आर्थिक क्षेत्र
(Economic Field)

समाजशास्त्रियों ने भारतीय ग्रामों को आर्थिक इकाईयां कहकर पुकारा है। प्राचीन काल में ये आर्थिक इकाईयां पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर थीं। जनसंख्या का घनत्व पूर्ण रूप से अप्रभावित था। वहाँ का आर्थिक जीवन पूर्ण रूप से सन्तोषप्रद एवं खुशहाली से परिपूर्ण था। कुछ प्राकृतिक एवं राजनैतिक गतिविधियों ने इस आत्मनिर्भरता एवं खुशहाली पर कुठाराघात करके,ग्रामीण आर्थिक जीवन को बेकारी, भूख, मुकदमें, ऋणग्रस्तता, पशुहत्या आदि अनेक भयंकर सामाजिक रोगों से परिपूर्ण कर दिया। ग्रामीण जनता नगरों के औद्योगीकरण से प्रभावित हो ग्राम छोड़-कर भागने लगी। ग्रामीण आर्थिक जीवन में एक प्रकार से भीषण विघटन उपस्थित हो गया। विदेशी सरकारों की शोषणकारी नीति व जमींदारों के अत्याचारों ने कृषकों को सांस भी नहीं लेने दिया। फलतः भारत का सर्वोन्नत आर्थिक जीवन जो सोने की चिड़िया के नाम से विश्व में प्रसिद्ध था अब निरा मूर्ख, गरीब, भूखा,

असहयोगिक, कलहपूर्ण और पूर्ण रूप से अव्यवस्थित हो गया था। कृषि की अवस्था पूर्ण रूप से अवनत हो गई थी। कृषि ही ग्रामीण जीवन का प्रमुख आधार-स्तम्भ है। इसकी अवनति ने समस्त भारतीय जीवन को अवनत कर दिया। इसलिये सर्वप्रथम नवनिर्माताओं का ध्यान इस ओर ही केन्द्रित हुआ।

कृषि में प्रगति (Development in Agriculture)

कृषि की उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रक्रियाओं में अनेक समस्याओं का उद्रेक होने के कारण इसे उन्नत करना अत्यन्त अनिवार्य था। उत्पादन की विधियों में एक क्रान्ति की आवश्यकता थी। परिणामस्वरूप दीर्घकाल से शाही आयोग (Royal Commission) और वाई. एम. सी. ए. (Y.M.C.A.) के प्रयत्नों का प्रभाव भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त किये हुए परिवर्तनों का दर्शन करने के लिये इस प्रगति को हम भिन्न भिन्न कालांशों (Periods)—सन् १९५१ से १९५६ ई० और सन् १९५६ ई० से १९६१ ई० में बाँट कर देखेंगे।

सन् १९५१ से सन् १९५६ ई० तक निम्नांकित क्षेत्रों में प्रगति की गई :

(क) खाद्यवृद्धि (Food Production)

इस काल के आरम्भ में देश में खाद्य समस्या (Food Problem) विशेष रूप से व्याप्त थी। इस काल में इस समस्या के निवारण के कार्य को प्राथमिकता दी गई। परिणामस्वरूप २० प्रतिशत वृद्धि अनाजों के उत्पादन में हो गई। भारत की भूमि का अधिकांश भाग उत्पादन और सिंचाई के अन्तर्गत कर दिया गया। इस काल में कृषि विकास के कार्य को आधारभूत (Fundamental) कार्य मान कर प्रयास प्रारम्भ किया गया था और इसे भारत के प्रत्येक गाँव तक फैलाने का प्रयत्न उल्लेखनीय है। ८० लाख ग्रामीण जो १२३००० हजार गाँवों में रहते थे इस प्रगति से प्रभावित हुए।

(ख) भूमि-सुधार (Land Reforms)

समस्त भारत में जमींदारी का उन्मूलन कर दिया गया। भूमि-कर को सामान्य रूप से कम कर दिया। यद्यपि कुछ राज्यों में कुछ भिन्नता रह गई परन्तु फिर भी इस काल में इस महत्वपूर्ण कार्य में उल्लेखनीय प्रगति हुई।

(ग) सिंचाई (Irrigation)

इस काल में १६ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई के कार्य को विकसित कर दिया गया। भारत की सम्पूर्ण भूमि का चतुर्थ भाग उत्पादन करने में लग गया।

(घ) भूमि की पुनः प्राप्ति (Land Reclaimation)

यद्यपि इस कालांश के प्रथम भाग (१९५०—१९५१) में एक भी एकड़ नवीन भूमि हल के नीचे नहीं लाई गई परन्तु इस काल के उत्तरार्द्ध तक ७४ लाख एकड़ भूमि पर खेती आरम्भ कर दी गई। इसमें जंगली, पहाड़ी, पथरीली एवं अन्य जड़ों वाली भूमि सम्मिलित है। इतना ही नहीं, २४ करोड़ एकड़ भूमि पर उत्पादन की वृद्धि कर दी गई। इसके अतिरिक्त भूमिहीन कृषको को भी कई एकड़ भूमि का वितरण किया गया, जिसकी संख्या उपलब्ध नहीं है। ५०.५ लाख एकड़ भूमि में भोजन की फसलें तथा व्यापारिक फसलों के उत्पादन की वृद्धि कर दी गई। भूदान आन्दोलनों के द्वारा अनेक भूमिहीन कृषकों को भूमि दी गई। सन् १९६० ई० तक देश में ४४,११,१९१ एकड़ भूमि ग्रामदान में मिली जिसमें ८,७२,६०९ एकड़ भूमि बाँटी जा चुकी थी। इसके अतिरिक्त ४६४३ ग्राम ग्रामदान में मिले।

(च) उन्नत कृषि विधियां (Improved Farm Techniques)

विशेष रूप से ग्राम विकास क्षेत्रों में उन्नत बीजों के उपयोग व विकसित कृषि विधियों का प्रसार किया गया। चावल उत्पादन में जापानी विधियों का प्रयोग २१ लाख एकड़ भूमि में किया गया जिससे इस खाद्यान्न में ८० प्रतिशत वृद्धि हो गई। अच्छी खादों के प्रयोग के क्षेत्र में भी इस काल में उल्लेखनीय प्रगति की गई। ६१०,००० लाख टन नवीन व रसायनिक खादों का प्रयोग इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

(छ) कृषि शिक्षा और अनुसन्धान (Agricultural Education and Research)

कृषि शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण प्रयास इस काल की विशेषता है। ग्रामीण कृषकों को उनकी आवश्यकता तथा विस्तार का प्रशिक्षण देकर कृषि विकास किया गया।

इस प्रकार सन् १९५१ से १९५६ ई० तक कृषि के क्षेत्र का नवीन स्वरूप निर्माण करने में विभिन्न प्रयत्नों के फलस्वरूप काफी प्रगति की गई। नव-निर्माताओं का ध्यान कृषि की उन्नति पर केन्द्रित था। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समुदाय में नवीन चेतना का उद्रेक किया गया। इसका अर्थ यह नहीं कि इस क्षेत्र में कोई समस्या रह ही नहीं गई है। अनेक समस्याओं के निवारण के प्रयत्न निरन्तर चलते रहे, जो हम सन् १९५६ ई० से १९६१ ई० की अवधि के शीर्षक में देखेंगे। सन् १९५१ ई० से १९५६ ई० तक की अवधि में सुधारों के प्रति

ग्रामीणों में नवीन भावना का उद्रेक होना अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है इसे हम गौण रूप नहीं दे सकते।

सन् १९५६ ई० से सन् १९६२ तक की अवधि में ग्रामीण आर्थिक क्षेत्र के इस महान स्तम्भ (कृषि) के विकास को एक नवीन उत्साह प्रदान किया। इस संबंध में उचित लिखा गया है, 'द्वितीय योजना विस्तृत होनी चाहिए। इतनी विस्तृत और इतनी शक्तिशाली होनी चाहिए कि भारतीय आर्थिक व्यवस्था को विकसित राष्ट्र के रूप में ऊंचा उठाने के लिये जो भी द्वार का पत्थर सामने आये उसे पार करलें।''[2]

अतः सन् १९५६ ई० से १९६१ ई० तक निम्नांकित क्षेत्रों में प्रगति की गई :

(क) खाद्य वृद्धि (Food Production)

सन् १९५६ ई० से १९६१ ई० तक की अवधि में १६ प्रतिशत कृषि उत्पादन में वृद्धि की गई। यह हम निम्न सारणी से स्पष्ट करेंगे।

नाम वस्तु	उत्पादन (लाख टनों में)
१. अनाज	७८
२. गन्ना (गुड़)	८.०
३. कपास	५.१
४. जूट	४.०

(ख) कृषि सुधार (Agricultural Reforms)

इसी प्रकार कृषि के अन्य क्षेत्रों में सन् १९५६ से १९६२ ई० तक की अवधि में हुई वृद्धि निम्न सारणी से स्पष्ट हो जायगी:—

क्र. सं.	कार्यक्रम	राशि	नाप व तोल
१.	मध्यम व विशाल सिंचाई के साधन	६.६	लाख एकड़
२.	छोटे सिंचाई के साधन	९.०	,,
३.	भूमि परिवर्तन	२.०	,,
४.	भूमि पुनः प्राप्ति	१.२	,,

2. "The Second Plan must be big-big enough and powerful enough to begin to lift the Indian economy across the 'threshold' to a developed nation". 'The new India'; Progress through Democracy; Planning Commission; Govt. of India Publication 1956, p. 40.

क्र. सं.	कार्यक्रम	राशि	नाप व तोल
५.	उन्नत बीजों के अंतर्गत	५५	लाख एकड़
६.	नाईट्रोजन खाद का उपयोग	२३०	हजार टन
७.	रसायनिक खाद	७०	,,
८.	नागरिक खाद	३	लाख टन
९.	हरी खाद	११.८	,,
१०.	ग्रामीण खाद	८३	,,

अतः स्पष्ट है कि कृषि के क्षेत्र में इस अवधि के मध्य अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन एवं विकास के कार्य सम्पन्न हुए जिससे ग्रामीण कृषि के स्वरूप में अकथनीय परिवर्तन हो गए।

(क) भूमि सुधार (Land Reform)

अब भारत ने भूमि व्यवस्था और पुनर्संगठन की समस्या को अपने सम्मुख रक्खा। इसमें चार पहलू प्रमुखतः उल्लेखनीय हैं। (१) भूमि स्वामित्व का एकीकरण, (२) भूमि व्यवस्था की उत्तम विधियों व सम्बन्धित नियमों का निर्माण, (३) सहकारी कृषि और (४) उन लक्ष्यों को कार्यरूप में परिणित करना जो ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का पुनर्गठन और सहकारी भूमि व्यवस्था को प्रोत्साहन दें।

(ख) सिंचाई (Irrigation)

सन् १९५६ से १९६१ ई० तक की अवधि में २१ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई उपलब्ध हुई जिसमें १२ लाख बड़ी सिंचाई योजनाओं से तथा ९ लाख लघु योजनाओं के अन्तर्गत। इस प्रकार गत वर्ष तक भारत की सम्पूर्ण भूमि के २६ प्रतिशत भाग को सिंचाई की विशेष सुविधायें उपलब्ध हो गईं जिससे ४.९ लाख टन अनाज के उत्पादन में वृद्धि की जा सकी।

(ग) भूमि की पुनः प्राप्ति (Land Reclaimation)

१½ लाख एकड़ भूमि इस अवधि में हल के नीचे आ गई। इसके अतिरिक्त भूसंरक्षण के अन्तर्गत २.० लाख एकड़ भूमि की मिट्टी में परिवर्तन कर उसे उपजाऊ बना दिया गया।

(घ) उन्नत कृषि विधियां (Improved Farm Techniques)

केन्द्रों एवं राज्य स्तरों पर इस दिशा में अकथनीय उन्नति हुई। इस सम्बन्ध में विकसित व वैज्ञानिक हलों का प्रयोग और अन्य औजारों का उपयोग उल्लेखनीय है। ४ लाख एकड़ भूमि पर जापानी विधियों का प्रयोग सफल

कर दिया गया। परिणामस्वरूप सन् १९५९ ई० की तुलना में सन् १९६१ ई० में २.५ लाख टन उत्पादन में वृद्धि हो गई।

(ङ) कृषि, शिक्षा एवं अनुसन्धान
(Agricultural, Education and Research)

विकसित और उन्नत पौधों एवं बीजों की श्रेणियों के सम्बन्ध में अनेक अनुसन्धान हुए। इन अनुसन्धानों में यह विश्लेषण निकाला गया कि वास्तविक रूप में कृषक इस दिशा में कैसी विचारधाराओं का निर्माण करते हैं। इस अवधि में १४ करोड़ रुपये इस प्रकार के अनुसन्धानों पर व्यय किये गये।

ग्रामीण साख एवं सहकारी प्रवृत्तियाँ
(Rural Credit and Co-operative Activities)

कृषि के विकास का सिंहावलोकन कर हमने वर्तमान समय के ग्रामीण कृषि के विकसित स्वरूप का दर्शन किया। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जहाँ आज से १६ वर्ष पूर्व भारतीयों की भोजन समस्या थी वहाँ आज हम अनाज बाहर भेजने योग्य हो गये हैं। इस तथ्य ने भारतीय अर्थव्यवस्था (Indian Economy) की स्थिति काफी दृढ़ कर दी है। अब हम आर्थिक क्षेत्र के द्वितीय प्रमुख अंग साख व्यवस्था पर विचार करते हैं।

यद्यपि भारत का इतिहास यह बतलाता है कि सन् १९०४ ई० में सहकारी आन्दोलन ने भारत में जन्म लिया। उस समय इसका स्वरूप कोपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी एक्ट (Co-operative Credit Society Act) के रूप में था। इसके उपरांत सन् १९१२ ई० और सन् १९१९ ई० के एक्टों ने इसे तरुण अवस्था में बदला। इसके उपरांत सन् १९३५ ई० और १९४७ ई० के अधिनियमों ने भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय कार्य किया। सन् १९५०–५१ ई० में इन संस्थाओं की संख्या १८१००० थी।

सर्वप्रथम सन् १९५१–५६ ई० की अवधि में इसमें एक महान क्रांति आई। इस समय सहकारिता के पुनर्गठन की आवश्यकता समझी गई। इस सम्बन्ध में उचित ही लिखा है, "लोकतन्त्र में यह व्यवस्थित आर्थिक व्यवस्था की क्रिया का एक महत्वपूर्ण यन्त्र है और यह भी बल दिया गया है कि ग्रामीण आर्थिक विकास सहकारी संस्थाओं के कन्धों द्वारा संगठन एवं वित्त सहायता के लिये एक बढ़ता हुआ उत्तरदायित्व का प्रयास है।"[3] परिणामस्वरूप

3. "An indispensable instrument of planned economic activity via democracy, and urged that an increasing measure of responsibility for organising and financing rural economic development be shouldered by co-operatives." 'The New India';Govt.of India Publication,p. 203.

सन् १९५४ ई० में अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण (All India Rural Credit Survey) किया गया। इस प्रकार सन् १९५६ ई० तक ५९००० हजार नवीन संस्थाओं की स्थापना ग्रामीण भारत में कर दी गई। इम्पीरियल बैंक को स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया बना दिया गया। इसी प्रकार सन् १९६१ ई० तक भारत में सहकारी संस्थाओं की संख्या २.१० लाख हो गई और इनमें सदस्यता की संख्या १७० लाख हो गई। गत वर्ष तक के प्राप्त आंकड़ों के अनुसार लगभग २३ करोड़ रुपयों से २०० करोड़ की साख व्यवस्था इन सहकारी संस्थाओं में कर दी गई। इसके अतिरिक्त सन् ६०–६१ ई० तक १८६९ बाजार सहकारी संस्थायें, ३० शक्कर उद्योग सहकारी संस्थायें, ३७८ सहकारी प्रक्रिया इकाइयाँ (Co-operative Processing Units), ३२०० सहकारी खेती संस्थायें, ७१६८ उपभोक्ता सहकारी केन्द्र एवं औद्योगिक सहकारी संस्थायें तथा श्रम और निर्माण सहकारी संस्थायें (Labour and Construction Cooperatives) तथा मकान सहकारी संस्थायें एवं बिना साख सम्बन्ध की अनेक संस्थाओं का जाल भारत के ग्रामीण क्षेत्र में बिछा दिया गया।

कुटीर उद्योग (Cottage Industries)

ग्रामीण आर्थिक क्षेत्र में कृषि के उपरांत कुटीर व लघु उद्योगों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय जनता का २९ प्रतिशत भाग इस क्षेत्र में संलग्न है। यह उद्योग भारत की उत्पत्ति का १/१२ भाग उत्पन्न करता है। कृषि से बचे हुए समय में कृषक तथा अन्य उद्योगकारी लोग सीमित व्यय में इन उद्योगों का संगठन कर लेते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार के उद्योगों की दो श्रेणियाँ हैं। प्रथम श्रेणी में लघु उद्योग तथा द्वितीय श्रेणी में गृह और कुटीर उद्योग आते हैं। लघु उद्योगों (Small Scale Industries) में कुछ सीमा में मशीनों व शक्ति का प्रयोग किया जाता है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांशतः कुटीर उद्योग ही पाये जाते हैं। इन उद्योगों में कपड़ा बुनना, खादी ग्रामोद्योग व अन्य गृह उद्योग सम्मिलित हैं।

सन् १९५१ से १९५६ ई० की अवधि में इन उद्योगों के विकास का प्रशंसनीय कार्य किया गया, जिसके फलस्वरूप १४ प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि हो गई। इस क्षेत्र में सरकार ने इस अवधि में ४९.९ करोड़ रुपये का व्यय किया। सन् १९५१ से १९५६ ई० तक निम्नांकित उद्योगों ने जो प्रगति की उसका विवरण निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगा :—

उद्योग का नाम	उत्पादन में वृद्धि (लाख गज)	प्रतिशत वृद्धि
१. हाथ करघा	१४५० गज कपड़ा	७५
२. खादी	७० गज कपड़ा	६२
३. अन्य उद्योग	५ लाख व्यक्तियों को रोजगार दिया।	

इस सन्दर्भ में प्रगति करने का श्रेय अखिल भारतीय उद्योग मण्डल (All India Industry Board) को है। इस बोर्ड ने कुटीर व ग्रामीण उद्योग के विकास का कार्यक्रम प्रस्तुत कर इसे विकसित करने का प्रयत्न किया। जिससे ७००,००० हाथ करघों का निर्माण सहकारी रूप में संचालित किया गया। बाद में सन् १९६० ई० में इनकी संख्या १.३ करोड़ हो गई। इसी प्रकार पहली अवधि में अम्बर चरखों का काफी प्रचार किया गया। इससे भी खादी के उत्पादन में १०.९ लाख गज की वृद्धि हो गई।

इसी प्रकार सन् १९५६ ई० से ६१ ई० तक के काल में ग्रामीण उद्योगों को उन्नत करने का विशेष प्रयत्न किया गया है। सन् १९५१-५६ ई० की तुलना में चौगुना व्यय किया गया जो निम्न सारणी से स्पष्ट होगा :—

क्र सं०	उद्योग	व्यय करोड़ में
१.	हाथ करघा	२९.७ करोड़
२.	शक्ति करघा	२.० करोड़
३.	खादी	८२.४ करोड़
४.	गृह उद्योग	२०.० करोड़
५.	रेशमी कीड़े	३.१ करोड़
६.	रस्सी	२.० करोड़
७.	हस्त उद्योग	४.८ करोड़
८.	लघु उद्योग	४४.४ करोड़
९.	औद्योगिक एसटेड	११.६ करोड़
	योग	१८० करोड़

इस व्यय के फलस्वरूप ही हाथ करघा उद्योग से १.७०० लाख गज कपड़ा सन् ५१-५६ ई० की तुलना में अधिक उत्पन्न हुआ। इस प्रकार सहकारी रूप से चलने वाले हाथ करघों की संख्या १॥ करोड़ हो गई। खादी का उत्पादन भी इस अवधि में ३०० लाख गज तक बढ़ गया। इस काल की यह भी

विशेषता रही कि चावल, मूंगफली, गुड़ के उद्योग के उत्पादन की प्रणालियों में क्रान्ति उत्पन्न कर दी गई।

ग्रामीण यातायात (Rural Transport)

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के साथ साथ यातायात और परिवाहन की आवश्यकता का अनुभव होना अवश्यम्भावी है। इस दृष्टि से ग्रामीण जीवन की एकान्त व पृथकता की प्रवृति में परिवर्तन लाने का प्रयत्न दीर्घ काल से अनुभव हो रहा था। यातायात के साधनों के विकास से आर्थिक उन्नति के साथ साथ सामाजिक व सांस्कृतिक उन्नति भी सम्भव है। यदि हम भारत के ग्रामीण जीवन की समस्याओं पर दृष्टिपात करें तो हमें यातायात की समस्या अनेक समस्याओं के आधार के रूप में प्रतिलक्षित होगी।

सन् १९५१-५६ ई० की अवधि में २४००० मील कच्ची तथा ४४००० मील पक्की सड़कों का जाल बिछा दिया गया। इससे ग्रामीण जीवन का स्वरूप एक दम परिवर्तित हो गया है। गाँवों में एक नई चेतना जागृत हो गई। अतः आर्थिक दृष्टि से उन्हें सुविधायें तो उपलब्ध हुईं ही बल्कि सामाजिक व सांस्कृतिक उन्नति के अवसर भी उनको प्राप्त हुए जिनका द्वार शताब्दियों से बन्द था। इस काल में सड़कों के निर्माण में सन्तोषजनक प्रगति की गई। इस सम्बन्ध में यह बात विचारणीय है कि जब अमेरिका के देहाती क्षेत्रों में ११ मील सड़कें प्रत्येक मील के घन क्षेत्र में उपलब्ध होती हैं तब सन् १९५१-५६ ई० की अवधि में भारत में २१४३७ मील सड़कें प्रत्येक १०००,००० के घनक्षेत्र में उपलब्ध हो गईं। एक और बात उल्लेखनीय है कि उक्तांकित सड़कों का अधिकांश भाग स्वयं ग्रामीणों द्वारा बनाया गया। सन् १९५६-६१ ई० के काल में इस दिशा में एक नई योजना का प्रयोग किया गया जो नागपुर योजना के नाम से विख्यात है। इसके अन्तर्गत ऐसी सम्भावना व्यक्त की गई है कि १९६३ ई० तक कोई भी कृषि क्षेत्र बिना सड़क के नहीं रहेगा। अतः सन् १९६०-६१ ई० में पक्की सड़कों की लम्बाई १४४,००० मील हो गई और कच्ची सड़कों की लम्बाई २५०,००० मील हो गई। भारत में ९॥ लाख गाड़ियों की संख्या में भी वृद्धि हुई।

वन (Forest)

भारत की अधिकांश भूमि को हल के नीचे लाने के कार्यक्रम से सम्बन्धित वन समस्या भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस समय भारत के सम्पूर्ण भू भाग का २२ प्रतिशत भाग वन के अन्तर्गत है। औद्योगिक व रोजाना के काम में आने वाली लकड़ी के उत्पादन के सम्बन्ध में दीर्घकाल से उन्नति की

योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं। इस समय ४-५ लाख टन लकड़ी की आवश्यकता है। सन् १६५१-६१ ई० की अवधि में इस दिशा में की गई उन्नति विचारणीय रही है। ५५,००० हज़ार एकड़ भूमि में माचिस में काम में आनेवाली लकड़ी तथा ३३०,००० हजार एकड़ भूमि में अन्य औद्योगिक उपयोगी लकड़ी के वनों का विस्तार कर दिया गया है।

पशु (Animals)

ग्रामीण आर्थिक क्षेत्र में पशुओं का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह ग्रामीणों की सम्पत्ति माने जाते हैं। पशुओं का जहाँ शक्ति की दृष्टि से उपयोग है, वहाँ खाद, चमड़ा, दूध, मास, ऊन, सींग व हड्डियों आदि की दृष्टि से भी बड़ा उपयोगी स्थान है। अतः पशु व्यवस्था एवं दुग्धशालाओं द्वारा भारत की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को उन्नत किये जाने की भावना की दृष्टि से इस दिशा के प्रयत्न उल्लेखनीय हैं। पशु ग्रामीण भारत का बहुमूल्य धन होने के साथ साथ अनेक दृष्टि से उपयोगी है।

सन् १६५१ से ५६ ई० तक की अवधि में अनेक गौशालायें खोली गईं पशुओं की नस्लें सुधारने की दृष्टि से २५ उत्तम भारतीय नस्लों का चुनाव किया गया तथा ६ किस्म की उत्तम भैंसों की नस्लें छाँटी गईं। दूध के उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से किये गये प्रयत्न भी उल्लेखनीय हैं। इस अवधि में ३० से ४० प्रतिशत दूध के उत्पादन में विकास हुआ। ग्रमीण क्षेत्रों से दूध को एकत्रित करने के लिये दुग्ध बोर्डों की स्थापना की गई। पशुओं की चिकित्सा के लिये ६५० नये चिकित्सा केन्द्र खोले गये। भेड़ों के पालन में विकास एवं उत्तम पद्धतियों का प्रयोग करने के लिये ऊन विस्तार केन्द्रों की स्थापना की गई। मुर्गीपालन के उद्योग को प्रोत्साहन देकर ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में प्रगति की गई। इसके अतिरिक्त पशु चिकित्सा, अनुसन्धानशाला की स्थापना आदि अन्य किये गये प्रयास भी उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार प्रगति की गति निरन्तर बढ़ती गई और सन् १६५६ से ६१ ई० तक के मध्य भी पशुओं की उन्नति के लिये अनेक उल्लेखनीय प्रयास किये गये। इस अवधि में गाँवों में "की स्कीम" (Key-Scheme) खोली गई। इसके अतिरिक्त २४३ नई गौशालाओं की स्थापना हुई। दूध, माँस और अन्डों के उत्पादन में भी वृद्धि की गई। २०० करोड़ पशुओं के लिये चरागाहों की व्यवस्था का अन्दाज लगाया गया। पशु वध की रोक थाम के लिये प्रयत्न किये गये। इस अवधि में स्थापित किये गये 'की-स्कीम' के गाँवों की संख्या १२५८ है। इस

काल में ऐसा भी अनुमान लगाया गया कि सन् १९६१ ई० तक २२००० की संख्या में साँड और ९५० हज़ार अच्छे बैल एवं १००००० के लगभग दूध देने वाली गायों को उन्नत बनाया गया है।

अब हम ग्रामीण भारत के नवीन आर्थिक स्वरूप में गत दस वर्षीय प्रगति का एक दृष्टि में सिंहावलोकन करेंगे।

१० वर्षीय आर्थिक प्रगति का चित्रण

१. कृषि

समय	वृद्धि (करोड़ रु० में)	प्रतिशत
१९५०-५१	४,४५०	४८.८
१९५५-५६	५,२३०	४८.४
१९६०-६१	६,१७०	४५.८

२. व्यापार, यातायात एवं परिवाहनः—

समय	वृद्धि (करोड़ रु० में)	प्रतिशत
१९५०-५१	१,६५०	१८.१
१९५५-५६	१,८७५	१७.४
१९६०-६१	२,३००	१७.१

३. व्यवसाय, सेवा और राजकीय प्रशासन आदिः—

समय	वृद्धि (करोड़ रु० में)	प्रतिशत
१९५०-५१	१,४२०	१५.६
१९५५-५६	१,७००	१५.७
१९६०-६१	२,१००	१५.६

४. दीर्घ एवं मध्यम उद्योग

समय	वृद्धि (करोड़ रु० में)	प्रतिशत
१९५०-५१	५९०	६.५
१९५५-५६	८४०	७.८
१९६०-६१	१,३८०	१०.२

५. लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योग

समय	वृद्धि (करोड़ रु० में)	प्रतिशत
१९५०-५१	७४०	८.१
१९५५-५६	८४०	७.८
१९६०-६१	१,०८५	८.०

६. निर्माण

समय	वृद्धि (करोड़ रु० में)	प्रतिशत
१९५०-५१	१८०	२.०
१९५५-५६	२२०	२.०
१९६०-६१	२९५	२.२

७. खनिज

समय	वृद्धि (करोड़ रु० में)	प्रतिशत
१९५०-५१	८०	०.९
१९५५-५६	९५	०.९
१९६०-६१	१५०	१.१

योग समय	
१९५०-५१	९,११० करोड़ रु०
१९५५-५६	१०,८०० करोड़ रु०
१९६०-६२	१३,४८० करोड़ रु०

इस प्रकार उपरोक्त चित्र में हमने देखा कि विभिन्न क्षेत्रों में १९६१ ई० तक हुई प्रगति से कुल मिलाकर ३३,३९० करोड़ रु० की वृद्धि हमारे देश में हुई इससे हमारी राष्ट्रीय आय एवं व्यक्तिगत आय की वृद्धि में भी प्रभाव पड़ा। इससे स्पष्ट है कि भारत की आर्थिक स्थिति का वर्तमान स्वरूप पहले से काफी विकसित और उन्नत है। इससे यहां के ग्रामीण जीवन का रहन सहन भी ऊँचा उठा है। इस प्रगति देश की अन्न समस्या के निवारण के साथ साथ ग्रामीण अर्थ व्यवस्था भी सुदृढ़ हुई है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये हम निम्न सारिणी में राष्ट्रीय आय एवं व्यक्तिगत आय के आंकड़ों को देखेंगे:—

राष्ट्रीय आय सारिणी

शीर्षक	१९५०:५१	१९५५:५६	१९६०:६१	प्रतिशत वृद्धि १९५० से ६१तक
१. राष्ट्रीय आय वर्तमान मूल्यों के आधार पर (करोड़ रुपयों में)	१०,२४०	१२,१३०	१४,५००	४२ प्रतिशत
२. व्यक्तिगत आय वर्तमान मूल्यों के आधार पर (,,)	२८४ रु०	३०६ रु०	३३० रु०	१६ प्रतिशत

सामाजिक क्षेत्र
(Social Field)

यह तो हम पहले भी लिख चुके हैं कि ग्रामीण जीवन अनेक सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण की समस्याओं से घिरा हुआ है। अतः देश का नवनिर्माण करने के लिये प्रमुखतया इन दो क्षेत्रों के प्रति ही अपना ध्यान आकर्षित कर नवनिर्माण की आर्थिक और सामाजिक योजनाएं बनाई गई। इन योजनाओं से समाज का रूप बदल गया। आर्थिक क्षेत्र में किये गये उल्लेखनीय प्रयासों का सिंहावलोकन करके हमने यह देखा कि इन आर्थिक सुधारों से ग्रामीण भारत का सामाजिक जीवन अत्यधिक प्रभावित हुआ है। समाज की अर्थव्यवस्था से प्रभावित भारत का ग्रामीण जीवन विश्व में अपनी विशेषता रखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत के ग्रामीण जीवन में अर्थ व्यवस्था नाम की कोई संस्था काम नहीं करती। यह जीवन तो सामाजिक-आर्थिक (Socio-Economic) जीवन है अर्थात् इनकी आर्थिक क्रियाओं और सामाजिक क्रियाओं में इतना घनिष्ट सामन्जस्य है कि हम उनको अलग अलग नहीं देख सकते। उदाहरण के लिये खेत पर बनी हुई किसान की वह झोंपड़ी जो उसके सामाजिक जीवन का केन्द्र है वहां वह आर्थिक जीवन की भी एक इकाई है।

अतः ग्रामीण क्षेत्रो में किये गये विभिन्न आर्थिक प्रयासों का प्रभाव सामाजिक जीवन पर भी पड़ा। आर्थिक उन्नति से ग्रामीण जीवन के स्वरूप में जो परिवर्तन आया है उसका प्रतिबिम्ब हम वहाँ के सामाजिक जीवन में भी देखते हैं। यद्यपि इस दिशा में जितने भी प्रयास किये गये हैं उनको समाजशास्त्री आर्थिक आयोजन (Economic Planning) ही कहते हैं। वास्तव में नवनिर्माण की ये योजनाएं केवल आर्थिक योजनायें ही नहीं हैं बल्कि इनमें सामाजिक जीवन के उत्थान की भी अनेक प्रवृत्तियाँ हैं। परिणामस्वरूप सामाजिक क्षेत्र में अर्थात् सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत किये गये प्रयासों से भारत के ग्रामीण जीवन का रूप प्राचीन काल से आज हमें भिन्न दिखाई दे रहा है। अब हम यहां सामाजिक क्षेत्र के उन विभिन्न अंगों पर दृष्टिपात करेंगे जिनसे ग्रामीण जीवन के स्वरूप में तथा दर्शन में नवीन परिवर्तन हो गया है।

शिक्षा (Education)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय ग्रामीण भारत की शिक्षा की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। इस सामाजिक संस्था के संख्यात्मक एवं गुणात्मक विकास की आवश्यकता थी। इस दिशा में प्रथम कार्य यह था कि शिक्षा के सर्वव्यापी प्रसार द्वारा जन साधारण को शिक्षित किया जावे। अतः भारत के संविधान ने यह निश्चय किया

कि भारत में अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी। इस बात का भी कार्यक्रम निश्चित हुआ कि ग्रामीणों को वैचारिक स्वतन्त्रता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रशिक्षण देकर उनमें राष्ट्रीय भावनाओं का उद्रेक किया जायेगा।

इस दृष्टि से सन् १९५१–५६ ई० की अवधि में विद्यार्थियों की संख्या में ६० प्रतिशत वृद्धि की गई। स्कूलों में १८,६८०,००० की संख्या ६ से ११ वर्ष की आयु के, ५०,६५,००० की संख्या ११ से १४ वर्ष की आयु के और २,३०३,००० की संख्या १४ से १७ वर्ष की आयु वाले बालकों की वृद्धि हुई। इसके साथ साथ राज्य स्तरों पर बुनियादी शिक्षा का प्रसार किया गया। इस काल में माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission) की सिफारिशों के आधार पर माध्यमिक शिक्षा का रूप निर्मित किया गया। फलतः ३३४ नवीन बहुउद्देशीय स्कूल खोले गये। इसके अतिरिक्त ग्रामीण उच्च शिक्षा (Rural Higher Education) की प्रवृत्तियों को बदलकर इसे ग्रामीण उपयोगी बनाया गया। इसी आधार पर ग्रामीण विश्वविद्यालयों (Rural Universities) की योजना निर्धारित की गई। बालिकाओं की शिक्षा में भी इस काल में उत्तम प्रगति की गई जिससे प्राथमिक स्तर पर प्रत्येक तीन में से एक बालिका स्कूल जाने लग गई है। ३ प्रतिशत वृद्धि बालिकाओं की उपस्थिति में माध्यमिक स्तर पर हो गई है। समाज व प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत २४ प्रतिशत वृद्धि का श्रेय भी इसी काल को मिला।

इसी प्रकार सन् १९५६ से ६१ ई० तक की अवधि में शिक्षा की प्रगति के आंकड़े इस प्रकार रहे।

१. ६ से ११ वर्ष की आयु के ३२,५४०,००० बालक।
२. ११ से १४ वर्ष की आयु के ६,३८७,००० बालक।
३. १४ से १७ वर्ष की आयु के ३,०७०,००० बालक।

इस भाँति कुल १२९९७,००० बालक स्कूलों में प्रविष्ट हो गये। इस काल में ८० लाख नवीन प्राथमिक स्कूल खोले गये। १२७१ हजार बहुउद्देशीय स्कूल और ६० प्राविधिक स्कूल (Technical Schools) तथा १० नवीन ग्रामीण उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की गई।

इस प्रकार १९५१:६१ ई० तक कुल विद्यार्थियों की संख्या में २३०·५ लाख में ४३.५ लाख की वृद्धि और हो गई जिससे ६.११ वर्ष की आयु के ७९ प्रतिशत, ११ से १४ वर्ष की आयु के १०२ प्रतिशत तथा १४से १७ वर्ष की आयु के १३९ प्रतिसत बालकों की वृद्धि हुई। इस दस वर्ष की अवधि में स्कूलों की संख्या में ७३

प्रतिशत वृद्धि हुई जिनमें प्राथमिक ६२ प्रतिशत, माध्यमिक १६.१ प्रतिशत और उच्चविद्यालय १२.८ प्रतिशत बढ़ गये ।

स्वास्थ्य (Health)

सन् १६५१ से ५६ ई० तक और सन् १६५६:६१ ई० तक स्वास्थ्य के क्षेत्र में अत्यन्त उल्लेखनीय प्रगति हुई है । इस अवधि में ग्रामीण क्षेत्रों से मलेरिया रोग का उन्मूलन कर दिया गया । इसके अलावा टी. बी. (Tuberculosis), कोढ़ तथा लैंगिक रोगों (Veneral Diseases) के उन्मूलन में भी अकथनीय प्रगति की गई । भारत के सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्रों में पीने के शुद्ध जल की व्यवस्था की गई । इससे इस अवधिकाल में मृत्यु दर में काफी ह्रास हो गया । सन् १६४१:५१ ई० में मृत्यु दर २७.४ प्रतिशत थी, जबकि १६५१:५६ में २५.६ प्रतिशत तथा १६५६.६१ में केवल २१.६ प्रतिशत ही रह गई है । स्वास्थ्य के क्षेत्र में किए गये विभिन्न प्रयत्नों के विकास का ब्यौरा निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जायगा ।

क्र. सं.	सुविधायें	संख्या		
		१६५०-५१	१६५५-५६	१६६०-६१
१.	अस्पताल	८६००	१००००	१२,६००
२.	रोगी शैया	११३०००	१२५,०००	१८५,६००
३.	प्राथमिक केन्द्र	—	७२५	२८००
४.	चिकित्सक	५६०००	६५,०००	७०,०००
५.	नर्सें	१५०००	१८,५००	२७,०००
६.	मिडवाइफ	८०००	१२,७८०	१६६,००
७.	हैल्थविजीटर	५२१	८००	१५००
८.	शिशु-कल्याण केन्द्र	१६५१	१८५६	४५००
९.	स्वच्छता-निरीक्षक	३५००	४०००	६०००
१०.	परिवार-नियोजन केन्द्र	—	२१	११००

निवास-व्यवस्था (Housing)

ग्रामीण सामाजिक क्षेत्र में निवास व्यवस्था का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामीण निवास व्यवस्था का कार्य यद्यपि स्थानीय ग्राम एवं खण्ड स्तर पर संचालित किया गया है परन्तु इस सम्बन्ध में एक सामान्य नीति अपनाई गई है। ग्रामीण पुनर्निर्माण के अन्तर्गत मकानों के लिये विशिष्ट समितियों का गठन किया गया है। उन्नत, प्रकाशयुक्त व हवादार मकानों को प्रोत्साहन देने हेतु प्रदर्शन एवं क्रियात्मक रूप प्रदान किये गये। सन् १९६१ ई० तक २००० गांवों का सर्वेक्षण करके १६०० गावों में मकानों की योजनायें बनाई गई। कुल मिलाकर १५,४०० मकानों के लिए ऋण प्रदान किये गये। इनमें से इस अवधि में ३००० ग्रामीण मकान बनकर तैयार हो गये। भूमिहीन कृषकों को ५ करोड़ रुपये की राशि वितरित कर उन्हें कृषि भूमि के समीप मकान बनाने के लिये प्रोत्साहित किया गया। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार सन् १९५१—५६ ई० में ७४२,००० नवीन मकानों का निर्माण हुआ है। सन् १९५६-६१ में १० करोड़ रुपये के व्यय की व्यवस्था की गई जिसके फलस्वरूप १,०७५,००० नवीन मकान बनाये गये। इस अवधि में मकानों की एक राष्ट्रव्यापी योजना कार्यान्वित की गई है।

सूचना व मनोरंजन (Information and Recreation)

ग्रामीण समुदायों में सहयोग की भावना को जागृत करने के लिये सन्देश-वहन के साधनों का होना भी आवश्यक है। इस दृष्टि से सन् १९६१ ई० तक गांवों में डाकघरों की संख्या सन् १९५० ई० की तुलना में दुगनी कर दी गई। इस दिशा में यह भी प्रयत्न किया गया कि प्रत्येक ४ मील के ग्रामीण जनसंख्या वाले क्षेत्र में कम से कम एक डाकघर की व्यवस्था अवश्य होगी, जहां प्रायः २,००० व्यक्ति निवास करते हों।

ग्रामीण क्षेत्रों में रेडियो एवं सूचना के विकास की दृष्टि से कम से कम प्रत्येक १००० जनसंख्या वाले गांव में रेडियो की व्यवस्था की गई। इस भांति ६०,००० रेडियो बांटे गये।

सामुदायिक विकास (Community Development)

ग्रामीण समाजशास्त्रियों ने ग्रामीण जीवन के सामाजिक क्षेत्र में सामुदायिक जीवन के अध्ययन पर बड़ा बल दिया है। इसी दृष्टि से हमने कुछ अध्यायों में इस शान्त-क्रान्ति का विवरण प्रस्तुत किया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गांवों में सामुदायिक जीवन के विकास को काफी सीमा तक प्रोत्साहित किया है। सन् १९५६ ई० तक ६९००० ग्राम संगठनों (Village clubs) की स्थापना की गई। सन् १९६१ ई० तक भारत के सभी गांव इस कार्यक्रम के अन्तर्गत आ गये। सन् १९५६

ई० तक इनकी संख्या १२०० थी वह सन् १९६१ ई० में इनकी संख्या ५००० हो गई। इस कार्यक्रम में सन् १९५६ ई० में १५,४६५ व्यक्ति गावों में कार्य करने के लिये प्राप्त हो गये और सन् १९६१ ई० तक २००,००० व्यक्तियों ने और इस कार्यक्रम को अपना लिया और गावों में कार्य करने लग गये।

इस प्रकार भारत के ग्रामीण जीवन के सामाजिक-आर्थिक विकास (Socio-Economic Development) का दिग्दर्शन हमने किया। इस विश्लेषण में हमने देखा कि इस जीवन की कहां वह एकान्त एवं अपरिवर्तनशील प्रकृति थी और कहां इन दस वर्षों की अवधि में इस जीवन विशेष के प्रत्येक क्षेत्र को मानवीय कारकों (Human Factors) ने प्रभावित किया है। इन प्रभावों से भारत के ग्रामीण जीवन का वर्तमान स्वरूप नवनिर्माण की ओर अग्रसर हुआ है। यद्यपि इस परिवर्तन की प्रक्रिया बड़ी जटिलताओं से गुजरी है। लेकिन भारत के कर्णधारो ने इस महान् कार्य से अपने आपको हटाया नहीं। उत्तांकित विवरण के आंकड़ों से पता चलता है कि भारत के ग्रामीण जीवन का कोई क्षेत्र नहीं छोड़ा गया है,जिसमें क्रान्ति लाने के प्रयत्न न किये गये हों। दस वर्ष के निरन्तर प्रयास से ग्रामीण जनता ने इस क्रान्ति को स्वीकार कर नवनिर्मित स्वरूप में अपने आपको सुखी बनाने का प्रयत्न किया है तथापि इस क्षेत्र में प्रगति अभी बाकी है। अन्य देशों के समकक्ष पहुंचने के लिए हमें ग्रामीण क्षेत्रों की प्रगति पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना होगा। अभी भी ग्रामीण भारत में अनेक समस्यायें व्याप्त हैं जिनका निराकरण करना अत्यन्त आवश्यक है। ग्रामीण जीवन के पुनर्निर्माण का कार्य पूर्ण नहीं हो गया है वरन् विकास की प्रक्रिया में है और इसे पूर्णता तक पहुँचाने के लिये हमें और अधिक प्रयत्न करने होंगे तभी हम भारत में वास्तविक स्वतन्त्रता एवं आत्मनिर्भरता लाने में सफल हो सकेंगे।

अध्याय ३२

ग्रामीण समाज कल्याण
(Rural Social Welfare)

भारत ने समाज कल्याण की विस्तृत परिभाषा को अपनाया है। भारत ने अपने आपको कल्याणकारी राज्य घोषित किया है। इसलिये यहां समाज कल्याण की प्रवृत्तियों का क्षेत्र बढ़ गया है। यद्यपि समाज कल्याण एक गतिशील विचारधारा है। मानव जीवन सदा विभिन्न प्रकार की ज्ञात एवं अज्ञात आपत्तियों तथा असुरक्षाओं से परिपूर्ण है। समाज कल्याण और समाज सुरक्षा की प्रत्येक स्थान पर आवश्यकता पड़ती है। भारत ने इस क्षेत्र में अपने आपको पहचाना इसलिये समाज कल्याण के क्षेत्र में विशिष्ट साधनों का एकीकरण किया गया। समाज कल्याण के क्षेत्र में महिला कल्याण (Women Welfare), बालकल्याण (Child Welfare), असहाय (Handicaped), भिक्षा (Beggary), बाल अपराध (Juvenile Delinquency), वन्य जातीय कल्याण (Tribal Welfare), हरिजन कल्याण (Harijan Welfare), तथा विस्थापितों का पुनर्वास (Rehabilitation), नशाबन्दी (Prohibition) आदि कार्य आते हैं। इन कार्यों का लाभ ग्रामीण जीवन को भी हुआ है। उपरोक्त समस्याओं से ग्रामीण अछूते नहीं हैं।

इस दृष्टि से भारत में इस क्षेत्र पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया गया है। इस महान् कार्य के लिये विशिष्ट विधि की व्यवस्था की गई। इन समस्याओं के उन्मूलन हेतु यद्यपि गत ४० वर्षों से अनेक समाज सेवी संस्थाएं प्रयत्न कर रही हैं। अतः सर्वप्रथम भारत सरकार ने इन संस्थाओं को सहायता प्रदान करने के लिये एक केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड (Central Social Welfare Board) की स्थापना की। इस बोर्ड ने राज्यों का सहयोग प्राप्त कर राज्य स्तर पर भी राज्य कल्याण बोर्डों (State Welfare Boards) की स्थापना कर दी। समाज कल्याणकारी प्रवृत्तियों पर सन् १९५१ से १९५६ की अवधि के लिए ५ करोड़ रुपये तथा सन् १९५६ से १९६१ ई० में २९ करोड़ रुपया स्वीकृत किया गया। सन् १९५१ से ५६ ई० की अवधि में २,१२८ स्वयंसेवी संस्थाओं को इस कार्य के लिये अनुदान दिया गया। इन संस्थाओं ने समाज सुरक्षा (Social Security), नैतिक स्वास्थ्य (Moral Hygiene) तथा

उत्तर सेवाओं (After-care Services) के कार्यक्रमों को अपनाया। इस समय भारत के कोने कोने में ६००० इस प्रकार की संस्थायें कार्य कर रही हैं। हम यहां प्रथम ग्राम महिला कल्याण के कार्यों का सिंहावलोकन करेंगे।

ग्रामीण महिला कल्याण (Rural Women Welfare)

ग्रामीण पुनर्निर्माण की समस्या अपने आप भारत में महिला उत्थान पर समाप्त हो जाती है। भारत के ग्रामीणों को जब तक महिलाओं का योग प्राप्त नहीं होगा, कभी भी स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगारी और जीवन के सुखों के साधनों को नहीं अपनायेंगे। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला जाति की अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। वह समय गया जब कि वह पुरुष के लिये एक बुद्धिमान निर्देशिका (Intellectual guide) के रूप में सम्मिलित की जाती थी। इस सम्बन्ध में डा० सहरिब ने उचित लिखा है, "वे दिन गये जब महिलाओं के पास समाज में सम्मानित स्थान था। वे समान शिक्षा, ज्ञान और स्वतन्त्रता का उपभोग करती थी। महिलायें अपने पतियों की ज्ञानवान् साथिन मानी जाती थीं। वे उनकी जीवन यात्रा की मित्र एवं सर्व प्रिय सहयोगी थीं। वे उनकी धार्मिक तरक्की में सहयोगी थी। वे सम्पत्ति पर अधिकार रखती थी। वे राजनीति और जन प्रशासन में अपने प्रभाव का स्वतन्त्र उपयोग करती थी। वे शिव की शक्ति और सिंहासन की शक्ति के रूप में देखी जाती थीं।"[1]

ग्रामीण महिला कल्याण की आवश्यकता (Need of Rural Women Welfare)

श्री एफ. एल. ब्रेयन ने उचित लिखा है कि महिला का निराकरण अन्य सामाजिक कार्यों की तत्परता को नाश कर देता है। यह बिल्कुल सही बात है। परिवार सामाजिक संस्कृति की प्रमुख चट्टान है। यदि समाज का पुनर्निर्माण करना

---

1. "In days gone by, women had an honoured position in society. They enjoyed equal education, enlightenment and freedom. Women were considered as the intellectual companions of their husbands. They were their friends and loving helpers in the Journey of life. They were also partners in their religious duties. They inherited and possessed property. They exercised their legitimate influence on politics and public administration. They were looked on as the "Shakti of Siva" and the power behind the throne." Dr. Jahur-ul-Hussain Sharib: 'Problem of Rural Reconstruction in India'; Local Self Govt. Institute, Bombay; p.169.

चाहते हैं तो हमें प्रथम परिवार का उत्थान करना होगा। एक सुखी गृहस्थ जीवन अपराध निवारण का प्रमुख साधन है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महिला कल्याण अत्यन्त आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। यदि ग्रामीण महिलाओं की कल्याण आवश्यकता पर थोड़ा और अधिक विचार करें तो हमें प्रतीत होगा कि यहाँ महिलाओं के कार्यो (Roles) में काफी सैद्धान्तिक भिन्नता है जो हम सामान्य रूप से प्रतिलक्षित नहीं कर सकते। कारण इसका यह है कि ग्रामीण महिला अपने पति के साथ में अधिक से अधिक समय व्यतीत करती है, जितना अन्य कोई महिला नहीं करती है। अतः जहां हमने ग्रामीण कृषक के जीवन एवं विचारों में परिवर्तन लाने के लिये गत अध्याय में विभिन्न योजनायें देखी वहां महिला कल्याण की योजना भी कम महत्व नहीं रखती। सम्भव है इस दिशा में प्राप्त प्रगति के आंकड़े हमें कुछ सन्तोषप्रद नहीं लगते। अब हम इस क्षेत्र में हुई प्रगति पर अपनी दृष्टि डालते हैं।

महिला कल्याण कार्य (Women Welfare Activities)

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में सन् १९५१-५६ ई० की अवधि में महिला कल्याण विस्तार क्षेत्रों (Women Welfare Extension Areas) का निर्माण किया गया, जिनमें २५,२५ गांव सम्मिलित किये गये। इस समय प्रत्येक जिले में इस प्रकार के विस्तार खण्डों की स्थापना हो चुकी है। इन खण्डों में श्रमिक महिलाओं के बालकों के नरसरी (Nursery) का कार्य होने के साथ-साथ सीवण कला तथा अन्य उद्योगों का प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है। सन् १९६१ ई० तक इन केन्द्रों की संख्या प्रत्येक जिले में चार कर दी गई है। इस प्रकार ५० हजार गावों में यह योजना कार्यान्वित हो गई है। इसके अतिरिक्त समाज की पीड़ित महिलाओं के लिये एक नई योजना बनाई गई है जिसमें इन महिलाओं को पुनः स्थापित किया गया है जो अपराधी व सुधार संस्थाओं में निश्चित अवधि तक रह चुकी हैं। इस प्रकार उत्तर सेवाओं एवं सुधार संस्थाओं (Correctional Institutions) की भी काफी संख्या में स्थापना की गई है। इन संस्थाओं में महिलाओं एवं युवतियों को नैतिक पतन से बचाया गया है। देश में फैली हुई वैश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देने वाले सभी कारकों का उन्मूलन करने का प्रयत्न किया गया है।

जैसा कि हमने पहले बताया कि इस कार्य की महत्ता को दृष्टि में रखें तो उक्तांकित प्रगति सन्तोषजनक प्रतीत नहीं होती। इसका कारण यह है कि इस क्षेत्र में विभिन्न समस्याएं अभी भी व्याप्त हैं।

महिला उत्थान की समस्यायें (Problems of Women Uplift)

महिला उत्थान के मार्ग में आने वाली विभिन्न समस्यायें हैं जो निम्नांकित है :—

(१) ग्रामीण महिलायें रीतिरिवाजों तथा परम्पराओं की विशेष रूप से पोषक हैं। वे अपने दृष्टिकोण को बदलने के लिये तैयार नहीं हैं।
(२) इस कार्य को करने के लिये प्रशिक्षित महिलाओं का विशेष अभाव है।
(३) महिला जगत में शिक्षा का अत्यधिक अभाव है।
(४) महिलायें किसी नवीन विचार धारा, कार्यक्रम, व योजना को बड़ी शंकाओं की दृष्टि से देखती हैं।
(५) ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाली महिलाओं का अभाव है।
(६) महिला कल्याण कार्य पूर्ण रूपेण असंगठित है। इस कार्य में स्पष्ट रूपरेखा न होने से जटिलता व्याप्त है।
(७) इन कार्यों के मध्य परस्पर सामंजस्य एवं निरीक्षण का अभाव है।
(८) सहकारी महिला कार्यकर्त्ताओं का अभाव है।
(९) महिला संगठनों की कमी है।
(१०) महिलाओं पर समाज का एकाधिकार पाया जाता है।

महिला कल्याण के क्षेत्र में यद्यपि उपरोक्त अभाव व्याप्त है तथापि यदि हम इन कार्यों को करने की जिज्ञासा रखते हैं तो हमें इस पक्ष पर भी बल देना चाहिये कि महिलायें स्वयं अपना उत्थान कर सकती हैं। जब प्रशिक्षित महिलाओं का अभाव है तो स्वयं महिलाओं को आगे आना चाहिये। इस सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों का सुझाव है कि विधवा महिला संस्थाओं—जैसे (Western sisters of Mercy) आदि को यह कार्य देना चाहिये। गाँवों में ग्राम पंचायतें इस कार्य को सरलता से कर सकती हैं। महिलाओं का एक विभाग (Department of Women's Affairs) की स्थापना की जानी चाहिये। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में महिला संस्थाओं का निर्माण आवश्यक है। कुछ देशों में इस प्रकार की महिला संस्थायें कार्य कर रही हैं। ये संस्थायें गांवों में जाकर ग्रामीण महिलाओं का उत्थान करती हैं।

भिक्षावृत्ति (Beggary)

भिक्षावृत्ति भारत की प्राचीन सामाजिक समस्या है। यह समस्या वर्तमान युग में भी समाज में अनैतिक वातावरण को उत्पन्न करने में संलग्न है। कुछ राज्यों में स्वयंसेवी संस्थाओं ने इस दिशा में प्रयत्न किया है। बाल-भिक्षकों की समस्या के लिये हमें अत्यधिक सचेत होने की आवश्यकता है। अयोग्य एवं वृद्ध

भिक्षुकों के कल्याण के लिये कुछ प्रयत्न हुए हैं किन्तु वे सन्तोषजनक नहीं हैं। जिला स्तर पर भारत सेवक समाज ने रैन-बसेरों की स्थापना की है। योग्य शरीर वाले भिक्षकों के लिये कार्य शिविरों (Work Camps) की आवश्यकता है। योग्य शरीर भिक्षुकों पर नियन्त्रण की भी आवश्यकता है। भारत में भिक्षा-विरोधी नियमों का सामान्य रूप से प्रतिपादन एवं प्रसार नहीं हुआ है। उत्तर प्रदेश ने भिक्षा विरोधी अधिनियम पारित करने का निश्चय कर लिया हैं।

असहाय व्यक्ति (Handicaped Persons)

इस कार्य की आवश्यकता की तुलना में सन्तोषजनक प्रयत्न तो उल्लेखनीय नहीं है, बल्कि प्रयास अवश्य हुए हैं। भारत में इस प्रकार के ६ स्कूलों की स्थापना की गई। यह कार्य राज्य एवं स्थानीय संस्थाओं को दिया गया है। इससे पूरे आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार के समस्यापूर्ण अयोग्य व्यक्तियों की संख्या तो प्राप्त नहीं होती परन्तु फिर भी ग्रामों में इनकी संख्या अधिक है। उदाहरण के लिये विश्व में भारत से सबसे ज्यादा अन्धे हैं। सन् १९५५ ई० में शिक्षा मन्त्रालय ने एक सलाहकार समिति संगठित की है जो अन्धों, बहरों, गूंगों के स्कूलों की स्थापना एवं छात्रवृत्तियों के लिए गत ७ वर्षों से प्रगति कर रही है।

नशाबन्दी (Prohibition)

समाज कल्याण के क्षेत्र में नशा विरोधी कार्यक्रम का भी उचित स्थान है। भारत में इस कार्यक्रम के पीछे जनता का भावात्मक सहयोग है। धार्मिक नियन्त्रण व गांधीजी के विचारों के प्रभावों ने इस कार्यक्रम को बदल दिया है। यद्यपि इस पक्ष के प्रति अभी ध्यान आकर्षित नहीं किया गया है कि इस सामाजिक अपराध से गरीब ग्रामीण जनता को कैसे बचाया जाय। इसका एक यह मनोवैज्ञानिक आधार है कि ग्रामीण जनता के पास मनोरंजन के साधनों का अभाव होने से वे इस अपराध की ओर आकर्षित हो जाते हैं। द्वितीय कुछ जातियों में इसे सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में ग्रहण कर लिया गया हैं, जिससे भी इस अपराध की वृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है। यद्यपि सितम्बर सन् १९५५ ई० में नशाबन्दी समिति (Prohibition Enquiry Committee) की स्थापना से इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किये गये। इस समय भारत की ⅓ जनसंख्या प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से नशाबन्दी आन्दोलन से प्रभावित है। सन् १९६० ई० में एक केन्द्रीय समिति का भी संगठन किया गया है। अतः अन्त में यही कहा जा सकता है कि इस आन्दोलन की सन्तोषजनक प्रगति प्राप्त करने के लिए राज्यों के समाज कल्याण विभाग स्वयं-सेवी-संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करे।

बाल्य-कल्याण (Child Welfare)

बाल कल्याण की विभिन्न योजनाओं में यह बात उल्लेखनीय है कि २५,२५ गांवों में मध्य विस्तार केन्द्रों में बालकों के लिए दूध व नाश्ते की व्यवस्था प्रारम्भ कर दी गई है। इन केन्द्रों में नरसरी की व्यवस्था भी है। इन कक्षाओं में बालकों के मनोरंजन तथा शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था है। बाल निरीक्षण व नरसरी के लिये महिलाओं की प्रशिक्षण व्यवस्था में भी प्रगति की जा रही है, जो उल्लेखनीय है। कस्तूरबा ट्रस्ट के अन्तर्गत भी अनेक स्वयं-सेवी-संस्थाओं को इस कार्य के लिये सहायता दी गई है।

बाल-अपराध (Juvenile Delinquency)

भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में संयुक्त परिवार प्रणाली के टूटने से बाल-अपराधों की संख्या बढ़ गई है। इन बाल-अपराधों में अधिकांशतः चोरी के अप-राध सामान्य रूप से पाये जाते हैं। गृह मन्त्रालय ने इस क्षेत्र में २ करोड़ रुपये की व्यवस्था की है जिससे राज्यों में सुधार संस्थाओं(Correctional Institution) को सहायता प्रदान की गई है। इस सम्बन्ध में कारागृहों में बाल-वाडी, बाल-निकेतन, बाल-विभाग खोले गये हैं। प्रोबेशन अधिकारियों के कार्य भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। यह प्रगति सन्तोषजनक नहीं है। इसमें विशेष रूप से कार्यक्रम के पुनर्संगठन की आवश्यकता है। बाल-अपराधी-छात्रगृह की स्थापना कर इस कार्य में अच्छी प्रगति प्राप्त की जा सकती है। बाल-अधिनियम सन् १९६० ई० (Children's Act of 1960) के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में समस्त भारत में समानता लाने का प्रयत्न करना चाहिये। सामाजिक सुरक्षा की विचारधारा को सामने रखकर समाज कल्याण विभागों को सामुदायिक व पारिवारिक स्तर पर इस कार्यक्रम को संचालित करना चाहिये।

पिछड़ी जाति कल्याण (Welfare of Backward classes)

भारत के संविधान की धारा ४६ के अन्तर्गत यह उद्देश्य निर्धारित किया गया है कि पिछड़ी व परिगणित जातियों को समाज के अन्य समुदायों के समान ऊंचा उठाना है। इनके शैक्षणिक व आर्थिक स्तर के उत्थान के कार्यक्रम इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। इस कार्य के लिये सन् १९५१ से ५६ ई० की अवधि में ३० करोड़ रुपया और सन् १९५६ से ६१ ई० की अवधि में ४७ करोड़ रुपया व्यय किया गया। आगे ४२ करोड़ शिक्षा में, ४७ करोड़ अर्थ व्यवस्था में तथा २५ करोड़ स्वास्थ्य में और खर्च होने की सम्भावना है।

हरिजन कल्याण (Harijan Welfare)

भारत में ५१० लाख हरिजन हैं। ये समाज की अन्तिम परिधि में हैं। यह भारत की जनसंख्या का १३ प्रतिशत भाग है। भारत का संविधान अस्पृश्यता का निवारण करने पर बल देता है। फलत: सन् १९५५ ई० में अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया गया। भारत की इस प्राचीन संस्था में सुधार लाने की अभी और आवश्यकता है। इन लोगों की शिक्षा एवं आर्थिक स्थिति में विकास करने के लिये सन् १९५६ से ६१ ई० की अवधि में २७.५ करोड़ रुपया व्यय किया गया। यह राशि ग्रामीण क्षेत्रों में हरिजनों के लिये मकान व कुएं बनाने में व्यय की गई। १,२९,००० मकान तथा २४,००० कुएं बनाये गये हैं। इस अवधि में २४,००० हरिजनों को उद्योगों का प्रशिक्षण देकर समाज उपयोगी बनाने का प्रयास भी उल्लेखनीय है। इसके अलावा भूमिहीन हरिजनों को भूमि वितरण करने का कार्यक्रम भी अपनाया गया है। ३० लाख हरिजन विद्यार्थियों को वजीफे देकर उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया गया है। इतना ही नहीं, हरिजन बालकों को शिक्षा सुविधा प्रदान करने के लिये कई स्थानों पर हरिजन छात्रालय भी काफी संख्या में स्थापित किये गये हैं।

वन्य जातीय कल्याण (Tribal Welfare)

कल्याणकारी सेवाओं की विभिन्न योजनाओं में से आदिम व वन्य जातीय कल्याण की योजनाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित आदिमजाति (संशोधन) आदेश सन् १९५६ ई० के अन्तर्गत व संशोधित नियमों के अनुसार भारत में इस समय अनुसूचित आदिमजातियों की संख्या २.२५ करोड़ है। निरधिसूचित (Denotified) आदिम जातीय लोगों की संख्या लगभग ४० लाख है।

यह भारत की जनसंख्या का ८ प्रतिशत भाग है। ये भारत के प्राचीन-तम निवासी माने जाते हैं। ये जातियां भारत के केन्द्रीय भाग में बम्बई राज्य, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी आसाम में फैली हुई हैं। कुछ राज्यों में ये जातियां जनसंख्या का अधिक भाग घेरे हुए हैं, जैसे आसाम में २५ प्रतिशत, मध्यप्रदेश में २३ प्रतिशत आदि आदि।

भारत के संविधान में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों का शैक्षणिक तथा आर्थिक दृष्टि से उत्थान करने और उन पर लादी गई परम्परागत सामाजिक असमर्थताओं का निराकरण करने के उद्देश्य से आवश्यक सुरक्षा तथा संरक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की गई है।

संविधान में कहा गया है, "अस्पृश्यता का उन्मूलन किया जाए तथा किसी भी रूप में अस्पृश्यता का आचारण करना निषिद्ध कर दिया जाए। (अनुच्छेद १७)। इन जातियों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों की रक्षा की जाए तथा सामाजिक अन्याय और शोषण के सब रूपों से उन्हें बचाया जाए। (अनुच्छेद ४६)। हिन्दुओं के सार्वजनिक स्थानों के द्वार समस्त वर्गों के हिन्दू धर्मावलम्बियों के लिये मुक्त रखे जायं। (अनुच्छेद २५)। इन जातियों को कोई भी धन्धा या व्यापार अपनाने का अधिकार दिया जाए। (अनुच्छेद १६)। इनके कल्याण तथा हितों की सुरक्षा के प्रयोजन से राज्यों में सलाहकार परिषदों और पृथक विभागों की स्थापना की जाए तथा केन्द्र में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जाए। (अनुच्छेद १६४,३३८ और ५ अनुसूचि)। अनुसूचित और आदिमजातीय क्षेत्रों के प्रशासन तथा नियन्त्रण के लिये विशेष व्यवस्था की जाए। (अनु० २४४ तथा ५, ६ अनुसूची)"[2]।

वन्यजातीय कल्याण कार्य
(Tribal Welfare Activities)

संविधान के अनुच्छेद ३३८ के अन्तर्गत संविधान में की गई सुरक्षा-संबंधी व्यवस्था की जांच पड़ताल करने तथा इनको कार्यरूप देने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को अवगत कराने के लिये राष्ट्रपति ने एक विशेष आयुक्त की नियुक्ति की है। इस आयुक्त की सहायता के लिए इस समय २० सहायक आयुक्त भी हैं। भारत सरकार ने एक आदिम जाति कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की है जो आदिम जातीय लोगों में हुए कार्य की समीक्षा करके भारत सरकार को विवरण उपस्थित करता है।

बिहार तथा मध्यप्रदेश में वन्यजातीय एक एक मन्त्री के अधीन कल्याण विभाग स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। इन राज्यों के अलावा आसाम, आन्ध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश, केरल, जम्मू व काश्मीर, गुजरात, पंजाब, पश्चिम बंगाल, मणिपुर, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश तथा त्रिपुरा में भी वन्यजातीय कल्याण विभाग स्थापित किए जा चुके हैं।

इन जातियों को शिक्षा की अधिक से अधिक सुविधाएं देने के लिए उपाय किये जा रहे हैं। अधिक जोर व्यावसायिक तथा प्रावैधिक प्रशिक्षण पर दिया गया है। विद्यार्थियों को निःशुल्क पढ़ाई, छात्रवृत्तियां, पुस्तकों एवं

---

2. भारत (वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ) १९६२, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार के गन्वेषणा और सन्दर्भ विभाग द्वारा अंग्रेजी में संकलित।

लेखन सामग्री आदि की सुविधाएं दी जा रही हैं। अनेक स्थानों पर दोपहर का भोजन देने की भी व्यवस्था है।

१९४४–४५ ई० में छात्रवृत्तियों की योजना बनाई गई और यह १९५९–६० ई० में विकेन्द्रित कर दी गई। १९५९–६० ई० में १.४४ करोड़ और २३.८९ लाख रुपये की छात्रवृत्तियाँ दी गई। इसके अतिरिक्त सन् १९५३–५४ ई० में इन वर्गों के सुपात्र विद्यार्थियों को विदेशां में अध्ययन करने के लिए भी छात्रवृत्तियाँ देने की योजना आरम्भ की गई। प्रावैधिक संस्थाओं तथा शिक्षालयों में इन वर्गों के विद्यार्थियों के प्रवेश के लिए स्थान सुरक्षित रखे हैं। राज्यों में वन्य जातीय कल्याण कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये हैं। समाज शिक्षा संगठकों (Social Education organisers) प्रशिक्षण केन्द्र इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। ४००० ऐसी पाठशालायें खोली जा चुकी हैं जिनमें विभिन्न प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था है। वन्यजातियों के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिये ३,१४४ अस्पताल खोलकर मलेरिया, टी. बी., चेचक तथा चमड़ी व सांस की बीमारियाँ जो इन जातियों में विशेष रूप से पाई जाती हैं, के इलाज की व्यवस्था की गई है। ४१,००० शुद्ध जल कूपों का निर्माण व ४६००० नये मकान बनाये गये हैं।

२.२५ करोड़ आदिमजातीय लोगों में से लगभग २६ लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष २२,५५,८१६ एकड़ भूमि में स्थान बदल बदल कर खेती करते हैं। यह समस्या असम, आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, बिहार तथा मणिपुर के ग्रामीण क्षेत्रों और मणिपुर तथा त्रिपुरा संघोय क्षेत्रों में व्यापक रूप से विद्यमान है। सन् १९५१ से ५६ ई० की अवधि में इस प्रकार की कृषि पर नियन्त्रण रखने की योजना बनाई गई। इस सिलसिले में अब तक असम में १६ मार्गदर्शक परियोजना केन्द्र तथा आन्ध्रप्रदेश में ४ बस्ती योजनाएं प्रारम्भ की गई हैं। इन योजनाओं के अन्तर्गत उड़ीसा में २,४९६ परिवार, बिहार में ४६० परिवार बसा दिये गये हैं।

आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, गुजरात, बिहार, महाराष्ट्र तथा मद्रास में सिंचाई की सुविधाओं में सुधार करने व बेकार भूमि का पुनरुद्धार करके उसे कृषि योग्य बनाने तथा अनुसूचित आदिम जातियों में बांट देने की कई योजनायें बनाई जा चुकी हैं। इसके अतिरिक्त उर्वरक, पशु, कृषियन्त्र, उन्नत बीज आदि खरीदने के लिए भी उन्हें सुविधाएं दी जा रही हैं। पशुपालन व मुर्गी पालन के उद्योग को भी प्रोत्साहित किया गया है। कुछ राज्यों में ऋण, आर्थिक सहायता तथा प्रशिक्षण केन्द्रों के माध्यम से कुटीर उद्योगों का विकास किया जा रहा है।

सन् १९६१ से ६२ ई० की अवधि में वन्यजातीय क्षेत्रों में ३,१८७

स्कूल और छात्रावास, २०० सामुदायिक और सांस्कृतिक केन्द्र तथा ३ लाख छात्रों को छात्रवृत्तियां प्रदान करने का कार्य पूर्ण हो जायेगा । इन क्षेत्रों में १०,२०० मील लम्बे पहाड़ी मार्ग तथा ४५० पुल-पुलियां बनकर तैयार हो जाएंगी। केन्द्रीय सरकार के आधीन ४५० मील लम्बी मोटर चलने योग्य सड़कें तथा ७२० मील लम्बे पहाड़ी मार्ग बनाने का प्रस्तावित लक्ष्य पूर्ण हो रहा है । इसके अतिरिक्त ४१००० जलकूप, २ जलाशय तथा ४५,८०० नवीन मकान बनकर तैयार हो रहे हैं। इस अवधि में १२००० परिवारों को १८६ बस्तियों में तथा निराधिसूचित जातियों के १५,२४६ परिवारों का पुनर्वास हो जायगा।

पुनर्वास (Rehabilitation)

सन् १९६० ई० के अन्त तक ८८.५७ लाख विस्थापित व्यक्ति भारत में आए । इनमें से १७००० परिवार कृषक परिवार थे। १,१५५ कृषक परिवार उत्तर प्रदेश में बसाये जा चुके हैं । असम तथा पश्चिम बंगाल में ग्रामीण बस्तियों की योजना स्वीकृत की जा चुकी है । बस्तियां बसाने की इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक परिवार को १० एकड़ भूमि निःशुल्क तथा पहली फसल की कटाई तक ७० रु० मासिक जीविका भत्ता दिया जाता है । इसके अतिरिक्त मार्ग व्यय के २१० रु०, तथा मकान निर्माण, पशु, बीज, बर्तन आदि खरीदने के लिये प्रत्येक परिवार को १७३० रु० दिये जाते हैं। अब तक लघु एवं कुटीर उद्योगों की १४२ योजनाएं स्वीकार की जा चुकी हैं जिनके फलस्वरूप १५०० व्यक्तियों को काम मिल जाएगा । पूर्वी पाकिस्तान से आये १८५५ परिवारों को अब तक गांवों में बसाया जा चुका हैं। १९६० ई० के अन्त तक २,६९,४७४ व्यक्तियों को ८८.०९ करोड़ रुपये के मूल्य की १९,५७,७११ एकड़ भूमि पर स्थायी अधिकारी दे दिये गये हैं। जम्मू तथा काश्मीर से आये व्यक्तियों को जो कृषि भूमि पर बसे हैं प्रत्येक को १००० रु० दिया गया है ।

बाढ़, मकान तथा भूकम्प आदि जैसी परिस्थितियों में सहायता पहुँचाने के लिए लगभग सभी राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों में संकट-कालीन-सहायता-संगठन स्थापित कर दिए गए हैं । उड़ीसा की बाढ़ के कारण क्षति उठाने वाले लोगों के लिए २ करोड़ रुपया प्रदान किया गया है ।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में किए गए कल्याण कार्यों का हमने सिंहावलोकन किया । आगामी योजनाओं में यदि इसी प्रकार प्रयत्न होते रहे तो स्थिति सन्तोषप्रद होने की सम्भावना है । परन्तु विशेष रूप से ग्रामीण महिला कल्याण व शिशु कल्याण के क्षेत्र में प्रगति अत्यन्त ही सीमित है । दिये गए सुझावों के अनुसार यदि भविष्य में प्रयत्न किये गये तो ग्रामीण जीवन का यह प्रमुख अंग विकसित व उन्नत हो जायगा ऐसी पूर्ण आशा है ।

अध्याय ३३

ग्रामीण समुदाय : भविष्य
(Rural Community : Future)

शताब्दियों से भारत गांवों में रहता है। आज भी ग्रामीण जीवन यहां के विभिन्न राज्यों में व्याप्त है। प्रत्येक राज्य के ग्रामीण जीवन में भिन्नता है। जाति, वर्ग, धर्म, कला, संस्कृति, उद्योग, भाषा आदि क्षेत्रों में सर्वत्र विशिष्टता पाई जाती है। अब भी गांवों में प्राचीन सभ्यता व्याप्त है, जिसका घनिष्ट सम्बन्ध प्रजातीय जंगलीपन से है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे कई भाग हैं जहां सभ्यता ने अपना लेश मात्र भी प्रभाव नहीं दिखाया है। यदि कोई आज भी भारत के गांवों का ही नहीं बड़े-बडे कस्बों का भ्रमण करे तो उसे व्यक्तियों की वन्यजातीय दशा प्रत्यक्ष होगी। कलकत्ता के समीप ही संथालों (Santhals) की एक अर्धसभ्य वन्य-जाति मिलेगी जो राजमहल की पहाड़ियों में निवास करती है। पंजाब के जंगलों में जिप्सी साँसी (Gipsy Sansis) जाति के लोग मिलेंगे जो पूर्ण नग्न रहते हैं और जो अपना तथा कुछ सीमित पशुओं का भरणपोषण करते हैं। हजारों गांवों में कोली, भील और महार जातियों का विस्तार हुआ है। मद्रास शहर के समीप कारम्बर (Carambers), टिरूलरस (Triulars), और प्लीआस (Pliass) लोगों का निवास है जो प्रजातीय अवस्था में रहते हैं। अंडमान द्वीप के जंगलों में अब भी पशुवत् जीवन व्यतीत करने वाले लोग हैं।

इस संक्षिप्त वर्णन करने से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि भारत के ग्रामीण जीवन में विकास नहीं हुआ है अथवा वहां सभ्यता का प्रसार नहीं हुआ है। भारत के ग्रामीण जीवन के नवीन स्वरूप को हम गत अध्यायों में देख चुके हैं। बल्कि हमारा तात्पर्य यह है कि आज भी ग्रामीण समुदाय के पुनर्निर्माण (Rural Reconstutction of Rural Community) की आवश्यकता है। ग्रामीण समुदाय अभी पूर्ण रूप से पुनः संगठित नहीं हुआ है। इसमें आज भी ऐसी अनेक समस्यायें हैं जो शीघ्र समाधान चाहती हैं। भारत के ग्रामीण समुदाय के पुनर्निर्माण की योजनाओं के क्रम की अब भी आवश्यकता है। प्रगतिशील देशों के समान भारत के किसान भी अपनी समुचित आवश्यकतायें प्राप्त कर अपने रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाना चाहते हैं। ग्रामीण समुदायों में व्याप्त गरीबी, अन्धविश्वास, अशिक्षा, बेकारी, प्राकृतिक निर्भरता, आदि दोष अब भी बाकी हैं।

हमें विकास की प्रक्रिया निरन्तर रखकर भविष्य की कल्पनाओं को साकार रूप देना है। वस्तु स्थिति यह है कि अब हमें ग्रामीण समुदाय के भविष्य की योजनाओं पर विचार करना है। अब हम यह देखेंगे कि आगामी कुछ वर्षों में अर्थात् सन् १९६५ तक भारत के ग्रामीण समुदाय का क्या रूप होगा।

भविष्य की योजनायें (Future Plans)

गत सन् १९५१–६१ तक के विकास ने ग्रामीण समुदाय की सामाजिक आर्थिक (Socio-economic) आत्म-निर्भरता की जड़ों को मजबूत कर दिया है। यह हमने गत अध्यायों में देख लिया है। भविष्य की योजना भारतीय संविधान के सामाजिक सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणित करने की कल्पना अपने सामने रखती है। इस योजना की रूपरेखा का निर्माण सन् १९५८ में प्रारम्भ हुआ और यह सन् १९६० में बनकर तैयार हुई। इस योजना में ग्रामीण कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, निवास व्यवस्था तथा भूमि सुधार आदि के कार्यक्रमों में देश के महान् विद्वानों ने, व्यावसायिक संगठनों ने तथा विशेषज्ञो ने अपने सुझाव दिये हैं। सन् १९६५ तक की अवधि में भविष्य के १५ वर्षो की कल्पना का निर्माण कर लिया गया है। ग्रामीण समुदायों में कृषि का विकास करने से उनके आर्थिक जीवन में विकास होगा जिससे ही उनका जीवन स्तर उन्नत होकर वे विश्व के अन्य ग्रामीण समुदायों के समान हो सकते हैं। कृषि का विकास उपलब्ध मानवीय शक्ति व प्रावैधिक तथा उन्नत विधियो पर आधारित है। इससे भारत का प्रत्येक ग्रामीण रचनात्मक कार्यों में संलग्न होकर अपने जीवन की उन्नति कर सकेगा। स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि सन् १९६०–६१ में राष्ट्रीय आय १४,५०० करोड़ हुई जो क्रमानुसार बढ़कर १९६१–६२ में १९००० करोड़ रुपये, १९६२–६३ में २५००० करोड़ रुपये, और १९६३–६४ में ३३,००० करोड़ रुपये तथा १९६५–६६ में ३४०००करोड़ रुपये हो जायगी। इसी प्रकार व्यक्तिगत आय भी सन् १९६१-६५ में ३३० रुपये से बढ़कर सन् १९६६ में ५३० रुपये हो जायगी। अतः यह कल्पना की जाती है कि भारत का सामुदायिक जीवन कुछ वर्षों में पुनः आत्मनिर्भर हो जायगा, इसको किसी विदेशी सहायता की आवश्यकता नहीं रहेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में भविष्य के विकास के सभी क्षेत्रों में लक्ष्य निर्धारित कर लिये हैं। अतः हम ग्रामीण समुदाय में भविष्य में होने वाले कार्यक्रमों पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे जिससे इसका आगामी स्वरूप निर्धारित हो जायगा।

(१) कृषि तथा ग्रामीण अर्थ व्यवस्था (Agriculture and Rural Economy)

कृषि का विकास ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के पुनर्गठन पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से सन् १९६१–६५ की अवधि का निर्धारित कार्यक्रम इस दिशा में

विशेष रूप से प्रयत्नशील है। इसके अलावा सिंचाई के साधनों का विकास, भूसंरक्षण कार्यक्रम, उत्पादकों का समुचित मात्रा में वितरण, उन्नत बीजों और साख सुविधाओं के विकास भी कृषि उत्पादन में वृद्धि करते हैं। इस अभिप्राय से इस अवधि में ग्रामस्तर पर ये कार्यक्रम रख दिये गये हैं। संक्षेप में १९६१–६५ की अवधि में कृषि क्षेत्र में विकास के निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं:—

प्रस्तावित कार्यक्रम—	लाख एकड़ भूमि में वृद्धि—
१. मध्यम व विशाल सिंचाई साधन	१२·८ लाख एकड़ भूमि
२. छोटे सिंचाई साधन	१२·८ ,,
३. भूसंरक्षण व भूमि पुनः प्राप्ति	३६·८ ,,
४. उन्नत बीजों के अन्तर्गत क्षेत्र	१४८·० ,,
५. रसायनिक एवं हरी खादों का वितरण	२४४·० ,,
६. पौधों की सुरक्षा	५०·० ,,

अतः १९६६ तक १२८१ करोड़ रुपये की पैदावार में वृद्धि होने की सम्भावना है। अतः इस अवधि के उपरान्त अनाज में ३१·६ लाख, तेल बीजों में ३८·५ लाख, गन्ने में २५·० लाख, कपास में ३७·२ लाख, सूत में ४५·० लाख, नारियल में १७·२ लाख, तम्बाकू में ८·३ हजार तथा चाय में २४·१ हजार टन की वृद्धि होगी।

(२) पशुपालन एवं दुग्ध उद्योग
(Animal Husbandry and Dairying)

कृषि उत्पादन के कार्यक्रमों की सफलता पशुपालन एवं दुग्ध उद्योगों पर निर्भर है। इस दिशा में उन्नति करने की दृष्टि से भविष्य में सम्मिलित कृषि (Mixed Farming) पर बड़ा बल दिया जायगा जिससे कृषि के अन्य उत्पादनों (Bye-products) का सद्उपयोग एवं भूमि की उर्वरा शक्ति में विकास किया जा सके। तृतीय पंचवर्षीय योजना में पशुपालन के क्षेत्र में ५४ करोड़ रुपये खर्च करने की व्यवस्था है। भारत में पशुओं की संख्या कम नहीं है लेकिन उनका दुग्ध उत्पादन बड़ा कम है। इस समय दुग्ध उत्पादन २२ लाख टन है जो बढ़ाकर २५ लाख टन कर दिया जावेगा। पशुपालन के क्षेत्र में अबतक 'की विलेज स्कीम' (Key Village Scheme) पारित की, इसमें अब कॉसट्रेशन प्रोग्राम (Costration programme) और सम्मिलित कर दिया जायेगा। इसके अलावा नस्ल सुधार हेतु नस्ल समितियां (Breeding Societies) का गठन किया जावेगा। भारत में कुल मिलाकर ८००० पशु चिकित्सा केन्द्र हो जायेंगे और १९६३–६४ तक सभी पशुओं के टीके लगा दिये जायेंगे।

(३) **वन एवं भूसंरक्षण** (Forest and Soil Conservation)

भारत में वनों का उत्पादक एवं सुरक्षात्मक महत्व है। इस समय भारत की सम्पूर्ण भूमि के २२ प्रतिशत भाग में वन हैं। औद्योगिक लकड़ी एवं अन्य गृह उपयोग में आने वाली लकड़ी का उत्पादन इस समय बहुत कम है। इस समय ४·५ लाख टन लकड़ी की आवश्यकता है जो सन १९६५ में बढ़कर ९·५ लाख टन हो जायगी। तृतीय पंचवर्षीय योजना में वनों के विकास हेतु ५१ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। अतः ऐसी आशा की जाती है कि सन् १९६६ तक ७००,००० एकड़ भूमि पर नये वृक्ष लगा दिये जायेंगे। इस कार्य में ग्राम पंचायतों का सहयोग लिया जायगा। वन उत्थान के कार्यक्रम में १५००० नये वन-पथ बनाये जायेंगे। वनों का सर्वेक्षण एवं चिन्ह लगाने के कार्यक्रम में ६००,००० एकड़ भूमि के वन लिये जायेंगे। वन विभागों में ४८० अधिकारी तथा १५२० रेंजरों (Rangers) को प्रशिक्षित किया जावेगा। भूसंरक्षण कार्यक्रम में २२ लाख एकड़ भूमि में सूखी खेती (Dry Farming) की सुविधाओं का विकास किया जावेगा। भूसंरक्षण के लिये तृतीय योजना में ११ करोड़ रुपये की व्यवस्था की है। भूमि पुनः प्राप्ति हेतु २००,००० एकड़ भूमि का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

(४) **भूमि सुधार** (Land Reforms)

भूमि सुधार के क्षेत्र में मध्यस्थों का निराकरण (Abolition of Intermediaries) सबसे महत्वपूर्ण है। इस दिशा में ऐसा लक्ष्य है कि १९६६ तक सभी क्षेत्रों में मध्यस्थों, जिनमें जमींदार, जागीरदार, इनामदार आदि हैं, का पूर्ण रूप से निराकरण कर दिया जायगा। कर सुधारों में भी विकास करने हेतु ऐसा निश्चय किया गया है कि सभी राज्यों में भूकर में अत्यधिक कमी कर दी जायगी जिससे कृषकों की आर्थिक दशा में विकास हो सकेगा। इसके अलावा कृषि भूमि पर कृषक का अधिक से अधिक अधिकार व निरन्तरता रखी जायगी।

भूमि एकीकरण के सम्बन्ध में १९५९-६० में ३३ लाख एकड़ भूमि का एकीकरण किया जा चुका है और आगे भी इसमें ३० लाख एकड़ की वृद्धि कर दी जायगी। भूमि व्यवस्था के अधिनियमों का सुधार एवं विस्तार भी किया जायगा। यह कार्य ग्राम पंचायतों तथा पंचायत समितियों को दिया गया है। योजना आयोग की संरक्षता में भूमि सुधारों का सर्वेक्षण कर सुधार अधिनियमों का अधिकाधिक प्रसार किया जायगा।

(५) **ग्रामीण श्रमिक** (Rural Labourers)

ग्रामीण श्रमिक समस्या में सामाजिक तत्व विशेष रूप से स्थान रखता है। अधिकांशतः गाँवों में पिछड़ी व परिगणित व अनुसूचित जातियों के लोग भूमिहीन

कृषि श्रमिक हैं। इस दृष्टि से ग्रामीण श्रमिक कल्याण कार्यक्रमों में ग्रामीण समुदाय के प्रत्येक विभाग को उद्योग व कृषि हेतु भूमि की अनेक सुविधाएं प्रदान करने का लक्ष्य विकसित किये जाने का निश्चय किया गया है। गांवों में जहाँ हमें प्रत्यक्ष रूप में कृषि श्रमिकों का अभाव प्रतीत होता है वहां परोक्ष रूप से भूमिहीन कृषकों में बेकारी की समस्या व्याप्त है। इस हेतु सन् १९६१–६६ तक की अवधि के लिये १७०० करोड़ रुपये खर्च किये जायेंगे। यहां कृषि, सामुदायिक विकास, सिंचाइ आदि की सुविधाओं में वृद्धि कर बेकारी का नाश कर दिया जायगा। इतना ही नहीं, कुटीर उद्योग, गाँवों में विद्युत व्यवस्था, गाँवों में पानी की व्यवस्था, ग्रामीण निवास व्यवस्था, और पिछड़ी जातियों के कल्याण के कार्यक्रमों का विकास किया जायगा। इसके अलावा कृषि श्रमिकों हेतु एक सलाहकार समिति का हाल ही में गठन कर दिया गया जो ७ लाख कृषि श्रमिक परिवारों के लिये ५ लाख एकड़ भूमि की व्यवस्था करेगा।

(६) सिंचाई एवं शक्ति (Irrigation and Power)

१३५६ लाख एकड़ उपलब्ध नदी-पानी में से १६० एकड़ पानी के उपयोग में वृद्धि हो जाने की संभावना है। इसके अलावा कुल मिलाकर ९०० लाख एकड़ भूमि पर नदी सिंचाई की सुविधायें बढ़ा दी जायेगी।

इस समय भारत में बिजली की जनरेटिंग शक्ति (Generating Capacity) ५·७ लाख किलोवाट है। इसमें प्रति वर्ष १·४० किलोवाट की वृद्धि करके ऐसा अनुमान है कि सन् १९६६ तक १४·४० किलोवाट हो जायेगी। इसी अवधि में ऐसी योजना भी है कि निम्नांकित जनसंख्या वाले कस्बों एवं ग्रामों में बिजली का प्रबन्ध कर दिया जावेगा।

क्रम	जनसंख्या क्रम	मार्च सन् १९६६ तक विद्युत की व्यवस्था वाले ग्राम
१.	१००,००० और अधिक	७३
२.	५०,००० से १००,०००	१११
३.	२०,००० से ५०,०००	४०१
४.	१०,००० से २०,०००	८५६
५.	५,००० से १०,०००	३१०१
६.	५,००० से कम	३८४५८
	योग	४३०००

(७) ग्राम व लघु उद्योग (Village and Small Industries)

भविष्य में ग्राम व लघु उद्योगों पर विशेष महत्व दिया जायगा। इनके द्वारा गत वर्षों में भी ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इन उद्योगों के संगठन में विशेष विकसित प्रविधियों का अनुसरण किया जावेगा, जिससे ऐसी आशा की जाती है कि सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर बन जाय। इस दृष्टि से इस बात पर बल दिया जावेगा कि श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने हेतु उन्हें प्रावैधिक प्रशिक्षण एवं साख व्यवस्था की अधिक सुविधायें प्रदान की जावें। उद्योगों के विक्रय में मध्यस्थों का पूर्ण रूप से निराकरण कर दिया जायेगा। उद्योगकारियों में सामूहिक व सहयोगिक भावनाओं की वृद्धि कर दी जायेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में इस क्षेत्र के कुछ आदर्श सफल केन्द्रों की स्थापना होगी। इस दृष्टि से इस कार्य हेतु २६४ करोड़ रु. के खर्च होने का लक्ष्य है। इसके अलावा ९०० से ९५०० तक की संख्या में शक्ति करघे (Power Looms) संचालित किये जायेंगे, जिससे ऐसा अनुमान है कि ३५०० लाख गज कपड़े के उत्पादन में वृद्धि होगी। खादी ग्रामोद्योगों की ३००० इकाईयों का संगठन होगा। इसी प्रकार रस्सी व ताड़ गुड़ एवं हस्त उद्योगों (Handicrafts) के विकास के प्रबल प्रयत्न किये जायेंगे और इन्हें सहकारी ढंग से संगठित किया जायेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योगों के विकास हेतु उन्हें बड़े उद्योगों से सम्बन्धित किया जायगा। इसमें प्रावैधिक समितियां, समुचित आर्थिक सहायता, प्रशिक्षण सुविधायें व मशीनों का वितरण होगा। बाजार सुविधाओं का विकास आदि का विस्तार किया जायेगा। इसके अतिरिक्त ३०० नये उद्योग क्षेत्रों (Industrial Estates) की स्थापना होगी। इस तरह ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि ८ लाख अस्थायी व ९ लाख स्थायी व्यक्तियों को काम मिल जायेगा।

(८) सहकारिता (Co-operation)

व्यवस्थित अर्थ व्यवस्था जो समाजवाद और प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित है, में सहकारिता का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। सहकारिता अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में संगठनात्मक तत्वों को उत्पन्न करती है। विशेष रूप से कृषि, सिंचाई, कुटीर उद्योग, विक्रय व्यवस्था, विद्युतिकरण तथा निवास व्यवस्था आदि में इसका कार्य बड़ा उल्लेखनीय है। इस दृष्टि से सहकारिता के विकास हेतु ८० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। अतः तृतीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में २३०,००० प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियां हो जाएंगी। ऐसा अनुमान है कि इनकी सदस्य संख्या भी ३७ लाख हो जायगी। ये समितियां लघु व दीर्घ अवधि के लिए ६८० करोड़ रु० का ऋण दे सकेंगी। इसी प्रकार ६०० बाजार सहकारी नवीन समितियों का गठन होगा। इसके अलावा ऐसा भी लक्ष्य है कि तृतीय योजना काल

में ३२०० सहकारी कृषि समितियों का गठन होगा। उपभोक्ता सहकारी समितियों के विकास हेतु भी ऐसा लक्ष्य निर्धारित किया गया है कि इस अवधि में २२०० ऐसी समितियों का गठन होगा। इस प्रकार सहकारिता पर बड़ा बल दिया जायगा और इस क्षेत्र में प्रशिक्षण हेतु १३ नये शिक्षा केन्द्र खोले जायेंगे।

(६) यातायात (Transport)

तृतीय योजना में सड़कों के विकास के लिये २६७ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। यातायात नीति एवं सामंजस्य निर्धारित करने के लिये १९५९ में एक समिति का निर्माण कर दिया गया है। इस समिति की शिफारिशों के आधार पर ऐसा निश्चय किया गया है कि भारत का कोई गांव पक्की सड़कों से ४ मील तथा कच्ची से १।। मील दूर न रहे। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि १९८१ तक २५२००० मील की पक्की सड़कें तथा ४०५,००० मील की कच्ची सड़कें और बन जायेंगी। ऐसा भी तय किया गया है कि सन् १९६६ तक २५००० मील पक्की सड़कें और बनाई जावेंगी। इस क्षेत्र में विकास करने हेतु ग्रामीण सड़कों का कार्य ग्राम स्वशासन की इकाईयों को भी सौंपा गया है। सड़कों पर सवारी गाड़ी की व्यवस्था का विकास करने के उद्देश्य से यह तय किया गया है कि सन १९६६ तक ३६५,००० सवारी गाड़ियों (लारियों) की व्यवस्था की जायगी। इसके अलावा ५०,००० से ८०,००० की संख्या में ट्रकों की संख्या में वृद्धि कर दी जायगी।

इस प्रकार उपरोक्त शीर्षकों में हमने ग्रामीण जीवन में भविष्य के आर्थिक कार्यक्रमों को देखा। ये प्रस्तावित लक्ष्य ग्रामीण जीवन में आर्थिक आत्मनिर्भरता उत्पन्न करेंगे। इससे ग्रामीण समुदाय में खुशहाली का विकास होगा। उनका जीवन स्तर भी उच्च होगा। बेकारी, भुखमरी व असहयोगिक जीवन का नाश होगा। आर्थिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण होगा। इससे ऐसी आशा की जाती है कि भारत के ग्रामीण समुदायों में गरीबी का नाश हो जायगा। प्रत्येक कृषक के पास जीवन की समस्त आवश्यकताएं उपलब्ध हो जायेंगी। आर्थिक विकास के साथ साथ सामाजिक बुराइयां दूर हो जायेंगी। ग्रामीण जीवन का सामाजिक जीवन आर्थिक व्यवस्था से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। अतः यह निश्चित है कि आर्थिक पुनर्निर्माण से सामाजिक पुनर्निर्माण भी हो जायगा। फिर भी सामाजिक पुनर्निर्माण हेतु अनेक योजनायें कार्यान्वित करदी गई हैं। यहां हम उनके भविष्य पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक समझते हैं।

सामुदायिक विकास : भविष्य

(Community Development : Future)

ग्रामीण जीवन में जहाँ आर्थिक विकास की योजनाओं का अत्यधिक महत्व है वहाँ साथ ही सामुदायिक विकास की योजनायें भी उल्लेखनीय स्थान रखती

हैं। वैसे यह माना जाता है कि आर्थिक समस्याओं के उन्मूलन से सामाजिक व्यवस्था का स्वतः ही सुधार हो जाता है क्योंकि भारत के ग्रामीण जीवन की प्रमुख समस्या यहाँ का विघटन ही है। आर्थिक इकाइयों का रूप बिगड़ जाने से अनेक सामाजिक समस्याओं का उद्रेक हो गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम सामाजिक तथा सामुदायिक उत्थान का प्रयत्न ही नहीं करें। इस खंड के गत अध्यायों में हमने स्वतन्त्र रूप से सामाजिक क्षेत्र में हुई पुनर्निर्माण की योजनाओं पर विचार कर इसके नवीन स्वरूप का दर्शन किया है। इस दृष्टि से सामुदायिक विकास की योजनाओं का भविष्य दर्शन हमारे लिए एक अत्यन्त महत्व का विषय है।

हमें यह भी याद रखना होगा कि जिस प्रकार आर्थिक व्यवस्था सामाजिक व सामुदायिक जीवन को प्रभावित करती है, उसी प्रकार सामुदायिक विकास का लक्ष्य भी आर्थिक जीवन का उत्थान करना ही है। ग्रामीण जीवन की यही एक विशेषता है। यहाँ सामाजिक-आर्थिक जीवन की क्रियायें स्वतन्त्र रूप से संचालित नहीं हैं। ये दोनों संस्थायें एक सम्बन्धित रूप में ही यहाँ कार्य करती हैं।

इस समय भारत में ३१०० सामुदायिक खंड ३७०,००० गाँवों में कार्य कर रहे हैं। अब ऐसा लक्ष्य है कि भारत का कोई गाँव इन कार्यक्रमों से वंचित नहीं रहे, इस दृष्टि से सन् १९६३ तक इनका विस्तार कर दिया जायेगा। इस भांति इस कार्यक्रम हेतु २९४ करोड़ रुपयों की व्यवस्था की गई है। अब ये विकास खंड ग्राम स्तर पर कृषि विकास की योजनाओं का संचालन करेंगे। सामुदायिक विकास योजनाओं का द्वितीय लक्ष्य यह भी निर्धारित कर दिया गया है कि सहकारिता आन्दोलन को भारत के प्रत्येक ग्रामीण परिवार तक पहुँचा दें। इसके अलावा पंचायतराज की स्थापना, शिक्षा का प्रसार, स्वास्थ्य वृद्धि, निवास सुविधाओं की उन्नति, उद्योग का विकास, पिछड़ी जातियों का उत्थान तथा अन्य सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों से परिपूर्ण सामुदायिक विकास की योजनायें पारित कर दी गई हैं। संक्षेप में इन योजनाओं का भविष्य निम्नांकित प्रकार से है।

(१) पंचायत राज (Panchayat Raj)

पंचायत राज की स्थापना का कार्य राज्यों के उत्तरदायित्व में दिया है। ये राज्य अपनी क्षेत्रीय पंचायत समितियों (Panchayat Samities) और जिला परिषद (Zila Parishads) स्तर पर पंचायत राज्य की स्थापना करेंगे। पंचायत-राज द्वारा ऐसा लक्ष्य है कि ग्रामीण जनता स्वयं अपने विकास योजना का निर्माण तथा प्रयोग करे। पंचायतों को भविष्य में निम्नांकित कार्य करने होंगे।

प्रशिक्षण विद्यालयों की संख्या में २००,००० की वृद्धि हो जायगी। माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत ४.६ लाख बालक शिक्षा पायेंगे। ऐसे विद्यालयों की संख्या में ६३६० की वृद्धि की जायेगी। माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण केन्द्रों की संख्या ३१२ हो जायगी। समाज व प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों के विकास के लिये ६.०० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

(४) स्वास्थ्य (Health)

तृतीय योजना में जनस्वास्थ्य पर बड़ा बल दिया गया है। इस अवधि में वातावरण स्वच्छता (Environmental Sanitation) और ग्रामीण नागरिक जल व्यवस्था तथा संक्रामक रोगों के निवारण आदि पर विशेष बल दिया जायगा। इस योजना में परिवार नियोजन (Family Planning) को प्राथमिकता दी गई है। इस हेतु इस काल में ३४२ करोड़ रुपया व्यय किया जायगा। इस क्षेत्र में विकास का लक्ष्य निम्नांकित सारणी से स्पष्ट होगा।

क्र सं.	कार्यक्रम	संख्या में सन् १९६६ तक वृद्धि
१.	चिकित्सा संस्थायें	१४६,००
२.	रोग शैया	२४०,०००
३.	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	५०००
४.	चिकित्सक	८१०००
५.	नर्सें	४५०००
६.	मिडवाईफ	४८,५००
७.	हेल्थविजिटर	३५००
८.	स्वच्छता निरीक्षक	१९,२००
९.	संक्रामक रोग निरोधक	४८
१०.	लैंगिक उपचार केन्द्र	१८९
११.	प्रसूति व बालकल्याण केन्द्र	१००,००

ग्राम जल व्यवस्था के लिये ६७ करोड़ रुपये की व्यवस्था गई है। ये कार्यक्रम ग्राम स्तर पर पंचायत समितियों के आधीन संचालित होगा। ग्राम स्वच्छता की दृष्टि से ग्राम शौचालयों का विकास पाठशाला ग्राम शिविरों तथा संयुक्त परिवारों में स्थापित करने का लक्ष्य है। परिवार नियोजन के अन्तर्गत ५० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है जिससे ग्रामों में ६१०० केन्द्रों की स्थापना होजायगी।

(५) मकान व्यवस्था (Housing)।

यह तो हम जानते हैं कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि का अनुपात अन्य देशों की तुलना में अधिक है। इस प्रतिशत वृद्धि में गावों का स्थान प्रमुख है। ऐसा अनुमान है कि सन् १९६१ में ४१० लाख, १९७१ में ४६० और १९८१ में ५२० लाख व्यक्तियों की वृद्धि होगी। इस वृद्धि हेतु निवास, अन्न, वस्त्र व्यवस्था में विकास होना चाहिये। सन् १९६१ तक १६०० गावों में १५,४०० मकानों के लिये ऋण दिया गया जिससे ३००० मकान तैयार हुये हैं, बाकी होने हैं। ग्राम मकान व्यवस्था के व्यय में से ५ करोड़ रुपया भूमिहीन कृषकों के मकान व्यवस्था के लिये ही व्यय किया जायगा।

(६) पिछड़ी व अनुसूचित वन्य जातीय कल्याण
(Welfare of Backward and Scheduled Tribes)

पिछड़ी जातियों के कल्याण हेतु तृतीय योजना में ११४ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। जिसमें से ४२ करोड़ शिक्षा, ४७ करोड़ आर्थिक कल्याण तथा २५ करोड़ स्वास्थ्य व निवास व्यवस्था पर खर्च किया जायगा। इसी प्रकार वन्य जातीय कल्याण हेतु ३०० विकास खण्ड खोले गये हैं। ३० करोड़ रुपये अनुसूचित जातियों के आर्थिक व सामाजिक विकास हेतु व्यय किये जायेंगे, जिससे हरिजनों के मकान व उनके कार्यों की प्रकृति में परिवर्तन लाया जायगा।

(७) समाज कल्याण (Social Welfare)

समाज कल्याण कार्यक्रमों हेतु तृतीय योजना में २८ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त शिक्षा के अन्तर्गत ३ करोड़ रुपया बालकल्याण हेतु खर्च किया जायगा। इस दिशा में अयोग्य व वृद्धों की सहायता का भी प्रबन्ध किया गया है। प्रत्येक राज्य में एक आदर्श बाल कल्याण केन्द्र की स्थापना की जायगी। इसके अतिरिक्त समाजकल्याण योजनाओं के अन्तर्गत बालअपराध (Juvenile delinquency), सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य (Social and moral Hygiene) महिलाओं और लड़कियों में व्याप्त अनैतिक क्रियाओं का निराकरण किया जायगा।

(८) भिक्षावृत्ति (Beggary)

देश में व्याप्त भिक्षावृत्ति के उन्मूलन हेतु भी कार्यक्रम प्रस्तावित किये गये हैं। तीर्थस्थानों, भ्रमण के स्थानों एवं बड़े नगरों से प्रथम भिक्षावृत्ति समाप्त की जायगी। बाल-भिक्षार्थियों की समस्या पर अधिक बल दिया जायगा। अयोग्य एवं वृद्ध भिक्षुकों को निवास संस्थाओं (Residencial Institutions)

में भर्ती किया जायगा। इन संस्थाओं के अलावा अन्य भिक्षुकों को अध्यापन, उद्योग व मनोरंजन की सुविधायें प्रदान की जाएंगी।

(६) नशाबन्दी (Prohibition)

गांवों में नशे का भी अत्यधिक प्रचार है। मदिरा, गांजा, सुलफा, तम्बाकू आदि का नशा यहां बहुत पाया जाता है। विकास की विभिन्न योजनाओं में नशावरोध को भी स्थान दिया गया है। इस हेतु से प्रथम जनता में नशाविरोधी भावनाओं का उद्रेक किया जायगा। स्वयंसेवी संस्थाओं को सुविधा देकर विरोधी आन्दोलनों एवं शिक्षा कार्यक्रमों का विकास किया जायगा। मनोरंजन एवं खाद्य सुविधाओं की वृद्धि की जायगी।

इस प्रकार हमने ग्रामीण समुदाय के विकास की प्रस्तावित योजनाओं पर विचार किया। इसका अर्थ यह नहीं है कि इसी रूपरेखा पर कार्य करने से ग्रामीण समुदाय का भविष्य उज्जवल हो जायगा। यद्यपि इसमें देश के महान् दार्शनिकों, विशेषज्ञों, आयोजकों एवं समाजशास्त्रियों की सम्मतियां प्राप्त हुई हैं। यह एक व्यवस्थित विकास (Planned development) की प्रक्रिया है। क्योंकि उत्थान व सुधार कार्यक्रमों में व्यवस्था और आयोजन का बड़ा महत्व है। इसलिये व्यवस्थित अर्थव्यवस्था (Planned economy) के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। तो भी हमें इस सारगर्भित रूपरेखा से जिसमें ग्रामीण समुदाय के प्रत्येक अंग को छूकर विकसित करने का प्रयास किया है, अन्य समाजसेवी, व्यक्तिगत व अर्द्धराजकीय संस्थाओं के सहयोग को गौण रूप नहीं देना है। भारत का ग्रामीण जीवन शताब्दियों से पिछड़ा है। प्रथम तो सभ्यता के अंकुर यहाँ नहीं फूटे, द्वितीय पाश्चात्य संस्कृतियों ने इसके रूप को और भी विकृत कर दिया। इस हेतु ग्रामीण पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को अभी निरन्तर रखना होगा। तृतीय योजना में यद्यपि कई क्षेत्रों की आगामी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और निर्धारित कर लिये गए हैं लेकिन हमें जन सहयोग के तत्व को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन और पुनर्निर्माण की महान् क्रांति को सफल बनाना है, जब तक अन्य देशों की तुलना में भारत के किसान भी अग्रणीय न हो जायें।

परिशिष्ट अ

अनुसूची–संख्या १.

ग्राम का आर्थिक–सामाजिक सर्वेक्षण

नीचे हम ग्राम के आर्थिक-सामाजिक सर्वेक्षण के लिए एक अनुसूची दे रहे हैं। अनुसूची में प्रमुख एवं सामान्य आधारों को लिया गया है। अन्वेषणकर्त्ता अपने विषय, स्थान एवं दृष्टिकोण आदि के आधार पर इन आधारों को विकसित कर सकते हैं।

परिवार के मुखिया का नाम·········· आयु··········लिंग······ जाति······
व्यवसाय············। विवाहित / अविवाहित। शिक्षा············।

१– परिवार का आकार एवं शिक्षाः—

व्यक्ति	आयु	शिक्षा का स्तर	मुखिया से संबंध
पुरुष			
(अ) वयस्क–			
१.			
२.			
३.			
४.			
(ब) बालक–			
१.			
२.			
३.			
४.			
स्त्रियाँ			
(अ) वयस्क–			
१.			
२.			
३.			
४.			
(ब) बालिकायें–			
१.			
२.			
३.			
४.			

२—पारिवारिक आय:—   माह............१९   .

क्रम सं०. परिवार के सदस्य	मुख्य आय		गौण आय		योग
	साधन	राशि	साधन	राशि	(राशि)
१.					
२.					
३.					
४.					
५.					

३—पारिवारिक व्यय:—   माह............१९   .

क्रम सं.	व्यय की मदें	राशि		विस्तार	प्रतिशत (कुल व्यय का)
		रू०	न० पै०		
१.	भोजन				
२.	प्रकाश एवं लकड़ी, कोयला आदि				
३.	वस्त्र				
४.	मकान				
५.	शिक्षा				
६.	स्वास्थ्य (रोग)				
७.	मनोरंजन				
८.	कृषि सम्बन्धी व्यय (बीज, पशु आदि)				
९.	पशु				
१०.	मादक वस्तुएं				
११.	अन्य				
	योग				

४—बजट:— न्यून/अधिक/समान

(क) यदि न्यून है तो कारण बताइये।

(ख) यदि अधिक है तो अधिक राशि का क्या उपयोग करते हैं ?

(ग) क्या आप बजट योजना पूर्वक बनाते हैं ? हाँ/नहीं

(घ) यदि नहीं, तो व्यय को किस भांति से नियंत्रित करते हैं ?

५—ऋण:—

क्रम सं. ऋण लेने के कारण	राशि	स्त्रोत	ब्याज दर	जमानत	लौटाने की शर्तें	विवरण
१—विवाह						
२—त्यौहार						
३—रोग-चिकित्सा						
४—बेकारी						
५—पैतृक ऋण देने के लिए						
६—मृत्यु/जन्म						
७—अन्य						
(अ) पशु क्रय						
(ब) बीज						
(स) कृषि सम्बन्धी-सामग्री						
योग :						

६—पशु:—

	भेड़ें	गाय		बैल	भैंस		बकरी	घोड़े	अन्य
		दूध देने वाली	दूध न देने वाली		दूध देने वाली	दूध न देने वाली			
संख्या उपयोग									

(क) पशुओं की नस्ल कैसी है ?

(ख) क्या आप कृत्रिम गर्भाधान की विधि का प्रयोग करते हैं ? हां/नहीं

(ग) पशुओं की चिकित्सा की क्या सुविधायें आपको उपलब्ध हैं ?

७—कृषि:—

(१) जोत में भूमि............भूमि घेरी................

(२) भूमि की कोटि..................

(३) सिंचाई की व्यवस्था............

(४)प्रमुख फसलें	गन्ना	गेहूँ	चना	जौ	मटर	मकई	कपास	अन्य	कुल उपज
(५)प्रति एकड़ उपज									कुल-व्यय
(६)प्रति एकड़ व्यय									कुल-लाभ
(७) लाभ									
(८) बीज व खाद									

(९) कृषि व्यय तालिका प्रति एकड़

वस्तु उत्पादिता	बीज	खाद	सिंचाई	लगान	मजदूरी	कुल क्षेत्रफल	अन्य	योग प्रति एकड़
१—गन्ना								
२—गेहूँ								
३—चना								
४—जौ								
५—मटर								
६—मकई								
७—कपास								
८—अन्य								
योग :								

(१०) आपके कृषि यन्त्र नये हैं या पुराने ? नये/पुराने/अन्य

(११) क्या आप फसल रोटेशन पद्धति से बोते हैं ? हाँ/नहीं

(१२) क्या आपकी कृषि भूमि की मिट्टी का मिश्रण ठीक है ? हाँ/नहीं

(१३) जमींदारी उन्मूलन का प्रभाव ?

(१४) कृषि में सहायक संस्थायें ?

(१५) खेतों की दूरी ?

(१६) खेतों का क्षेत्रफल ?

(१७) आपको इनसे क्या हानि हुई है : (क) टिड्डियां एवं पशु
(ख) चोरी
(ग) बाढ़
(घ) सूखा
(ङ) पाला
(च) अतिवृष्टि
(छ) अन्य

८—उद्योग धन्धे:—

(क) विनियोजित पूँजी
(ख) प्रयुक्त आधुनिक यन्त्र तथा विधि
(ग) प्राप्त सहायता
(घ) सहायता देने वाली संस्थायें
(ङ) उद्योग के प्रकार

९—गृह व्यवस्था:—

(क) गृह की सामान्य परिस्थिति संतोषजनक/असंतोषजनक/असह्य
(ख) गृह का क्षेत्रफल (भूमि का)
(ग) गृह का सामान्य वर्णन (निर्माण में प्रयुक्त सामग्री)
(घ) गृह कच्चा/पक्का
(ङ) गृह अपना/किराये का/किराये की राशि
(च) मरम्मत की स्थिति
(छ) सफाई
  १—घर में संतोषजनक/असंतोषजनक
  २—पड़ौस में संतोषजनक/असंतोषजनक
  ३—ग्राम में संतोषजनक/असंतोषजनक
(ज) गृह का फर्श एवं कमरे
(झ) वायु एवं सूर्य के प्रकाश की व्यवस्था संतोषजनक/असंतोषजनक
(ट) प्रकाश व्यवस्था बिजली/लालटेन/दीपक/अन्य
(ठ) गृहों की संख्या पशुओं के कमरे/निवास के कमरे—
(ड) स्थान :—

क्रम सं०	विवरण	संख्या	क्षेत्रफल (घनफुट में)	अन्य
१.	कमरे			
२.	बरामदा			
३.	आंगन			
४.	रसोई			
५.	स्नानागार			
६.	शौचालय			
७.	अन्य			

१०—भोजनः—

(क) आपका भोजन सामिष है या निरामिष ? सामिष/निरामिष

(ख) परिवार का प्रमुख भोजन : १. २. ३. ४. ५.

(ग) महत्वपूर्ण भोजन

(घ) हरी सब्जी का प्रयोग

(ङ) हरी सब्जी की पैदावार

(च) क्या आपको भोजन-संतुलन का ज्ञान है ? हाँ/नहीं

(छ) क्या किसी सार्वजनिक संस्था की ओर से भोजन सम्बन्धी ज्ञान कराया जाता है ? हाँ/नहीं

(ज) किस संस्था द्वारा तथा किस अवसर पर

(झ) आपका दैनिक भोजन क्या है ?

क्रम सं०	वस्तुएं	सामान्य मात्रा जो प्रयोग की जाती है	स्तरीय मात्रा
१.	दूध		
२.	दाल		
३.	अन्न		
४.	फल		
५.	सब्जी		
६.	अन्डे		
७.	मांस		
८.	मछली		
९.	अन्य		

११—स्वास्थ्य: —

(क) क्या कोई सदस्य दीर्घ कालीन बीमारी से पीड़ित है ?

हाँ/नहीं रोग—

(ख) पिछले वर्ष आपके परिवार में कितने व्यक्ति बीमार हुए ?

(ग) इन व्यक्तियों को किन रोगों ने पीड़ित किया ?

(घ) बीमारी किस माह में अधिक रही ?

(ङ) कुल बीमारी का समय कितना रहा ?

(च) आप रोगों की चिकित्सा कैसे करते हैं ?

प्राकृतिक/होमियोपेथी/डाक्टरी/
जादू-टोनों/मन्त्रों-झाड़ों/अन्य

(छ) आपके पास चिकित्सा की क्या सुविधायें प्राप्त हैं ?

१२—स्वच्छता :—

(क) गृह-स्वच्छता : (१) प्रमुख स्थानों को दिन में कितनी बार झाड़ू लगाई जाती है ?

(२) सम्पूर्ण घर की सफाई कितने समय में की जाती है : वर्ष में/मास में/अन्य

(३) डी० डी० टी० या अन्य कीटाणुनाशक औषधियों का प्रयोग किया जाता है या नहीं ?

हाँ/नहीं

(४) कितने समय के पश्चात् प्रयोग होता है ?

(ख) पशु स्थानों की स्वच्छता की व्यवस्था

(ग) भोजन बनाने के स्थान की स्वच्छता

(घ) वस्त्रों की स्वच्छता

(ङ) बच्चों की स्वच्छता का प्रबन्ध

(च) निकट स्थान, मार्ग आदि की स्वच्छता का प्रबन्ध

(छ) विवरण (अन्वेषणकर्त्ता स्वयं व्यक्तिगत निरीक्षण से स्वच्छता का विवरण लिखें) ।

१३—शिक्षा :—

(क) आपके बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा के सम्बन्ध में आपका क्या मत है ?

(ख) आप कैसी शिक्षा उपयुक्त समझते हैं ?

प्रौढ़/बुनियादी/यांत्रिक/विज्ञान सम्बन्धी/व्यावसायिक

(ग) क्या आप अपने सभी बच्चों को शिक्षित करना चाहते हैं ? हाँ/नहीं

(घ) क्यों ?

(ङ) उद्देश्य पूर्ति में क्या बाधायें हैं ?

(च) शिक्षा की सुविधायें ?

शिक्षा संस्थायें		संख्या	अध्यापक संख्या	बालकों की संख्या
राजकीय	जनता की			

१४—मनोरंजन:—

(क) आप तथा आपके परिवार के सदस्य अपना अवकाश का समय कैसे बिताते हैं ?

(ख) मनोरंजन के क्या साधन हैं ? गायन/खेल/भजन/कीर्तन/नृत्य

(ग) मनोरंजन की व्यवस्था:—

क्रम संख्या	खेल जो पसन्द हैं		खेल का स्थान	व्यय की राशि
	बच्चों को	युवकों को		

१५—सामाजिक संगठन:—

(क) विवाह का प्रकार जाति/अंर्तविवाह/बहिर्विवाह

(ख) विवाह की आयु पुरुष——स्त्री——

(ग) विवाह विच्छेद की सुविधा है या नहीं ? हाँ/नहीं

(घ) विवाह विच्छेद की प्रणाली

(ङ) विवाह विच्छेद का अधिकार किसे है ? स्त्री/पुरुष/दोनों

(च) विवाह विच्छेद के आधार

(छ) क्या विधवा विवाह प्रचलित है ? हाँ/नहीं

(ज) यदि हाँ तो विधवा विवाह की प्रणाली

(झ) विधवा विवाह को क्या आप उचित समझते हैं ? हाँ/नहीं
(ञ) क्यों ?
(ट) विधवा-विवाह किस आयु तक आप उचित समझते हैं ?
(ठ) क्या आपके यहां निम्न विवाह प्रथा प्रचलित हैं ?
एक विवाह/बहु-विवाह/अधिक पति/अधिक स्त्रियां
(ड) विवाह का व्यय क्या है ? लड़का—लड़की—
(ढ) क्या दहेज, वरमूल्य, कन्या मूल्य प्रचलित है ?
दहेज/वरमूल्य/कन्या मूल्य
(ण) राशि— दहेज—वरमूल्य—कन्या मूल्य—
(त) क्या आप दहेज/वरमूल्य को उचित समझते हैं ? हाँ/नहीं
(थ) आपके मुख्य त्यौहार क्या हैं ?
(द) आप इन्हें किस भांति मानते हैं ?
(ध) क्या आप इनमें परिवर्तन चाहते हैं ? हां/नहीं
(न) क्या परिवर्तन चाहते हैं ?
(प) आप किन वस्त्रों को पहनते हैं ?
(फ) स्त्रियों के वस्त्र क्या हैं ?
(ब) क्या आप शहरी वस्त्रों को पसन्द करते हैं ? हाँ/नहीं
(भ) आपके गांव में फैशन का क्या रूप प्रचलित है ?
(म) क्या आपके यहां सौंदर्य-प्रसाधनों का प्रयोग होता है ? हाँ/नहीं
(य) क्या वस्तुयें प्रयोग होती हैं ?
(र) आपका परिवार कैसा है— व्यक्तिगत/संयुक्त/मिश्रित
(ल) आप व्यक्तिगत परिवार पसन्द करते हैं या नहीं ? हाँ/नहीं
(व) क्यों ?
(ह) आपकी स्त्रियों की क्या स्थिति है ?
(श) स्त्रियों का कार्य ?

कार्य का समय			अन्य साधन से स्त्रियों की आय	बालकों का प्रशिक्षण
अन्य कार्य	घर में	खेत में		

१६—व्याधिकीय अवस्थाः—

(१) क्या अस्पृश्यता में आपका विश्वास है ? हाँ/नहीं
अथवा क्या आप इससे पीड़ित हैं ? हाँ/नहीं

(२) यदि ऐसा है तो क्यों है ?
इससे आपके जीवन में क्या बाधायें उत्पन्न हुई हैं ?

(३) क्या आपके परिवार में मद्यपान होता है ? हाँ/नहीं

(४) इसके कितने व्यक्ति अभ्यस्त हैं ?

(५) क्या इसे आप उचित समझते हैं ?

(६) मद्यपान किस अवसर पर होता है ?
उत्सव/मेहमान आने पर/विवाह/दैनिक/कभी-कभी

(७) क्या आपके यहां जुआ या सट्टा खेला जाता है ? हां/नहीं

(८) कौन अभ्यस्त है ?

(९) क्या नर और पशुबलि का प्रचलन है ? हाँ/नहीं
नरबली/पशुबली

(१०) क्या मठ पूजा का प्रचलन है ? हाँ/नहीं

(११) क्या भूत-प्रेतों में आपका विश्वास है ? हाँ/नहीं

(१२) क्या आपके यहां अतिरिक्त यौन-सम्बन्ध उचित समझे जाते हैं ?
हाँ/नहीं
विवाह से पूर्व/पश्चात

(१३) क्या आपके परिवार में अवैध यौन सम्बन्धों का कोई व्यक्ति अपराधी है ? हाँ/नहीं

(१४) कौन व्यक्ति है ?

(१५) क्या आपके यहां कभी चोरी हुई है ? हाँ/नहीं

(१६) हानि की मात्रा

(१७) क्या आपका पारिवारिक आधार पर किसी परिवार से संघर्ष है ?
हाँ/नहीं

(१८) किस आधार पर यह संघर्ष है ?

(१९) क्या आपके परिवार में किसी को सजा मिली है ? हाँ/नहीं

(२०) उसने क्या अपराध किया था ?

(२१) अपराध का कारण ?

(२२) क्या आपका कोई मुकदमा चल रहा है ? हाँ/नहीं

(२३) किस विषय पर ?

(२४) किस स्तर पर ?

(२५) क्या आप प्रयोग करते हैं ?
अफीम/गांजा/चरस/भांग/सिगरेट/बीड़ी/अन्य

(२६) क्या आपको किसी सार्वजनिक कार्यकर्ता के विरुद्ध शिकायत है ? हाँ/नहीं

(२७) क्या शिकायत है व किस पर है ?

१७—प्रशासकीय व्यवस्थाः—

क—क्या आपके ग्राम में कोई ग्राम पंचायत है ? हाँ/नहीं

ख—पंचायत ने क्या कोई उपयोगी एवं कल्याण सम्बन्धी कार्य किये हैं। हाँ/नहीं

ग—किस प्रकार के कार्य किये हैं ? शिक्षा/स्वास्थ्य/मनोरंजन/अन्य

घ—पंजायत के सदस्यों की संख्या कितनी है ?

ङ—पंचायत ने अपराधियों को किस प्रकार दण्डित किया है ?

च—पंचायत से आपको क्या विशेष लाभ प्राप्त हुआ है ?

छ—पंचायत के द्वारा सुलझाये गये झगड़ों की संख्या—

ज—क्या आप पंचायत के कार्यों से सन्तुष्ट हैं ? हाँ/नहीं

झ—पंचायत के सम्बन्ध में आपकी क्या सम्मति है ?

ञ—पंचायत ने ग्रामोत्थान के लिए क्या विशेष योजना बनाई है ?

ट—पंचायत के चुनावों में क्या आपने सक्रिय भाग लिया ? हाँ/नहीं

ठ—क्या आपके परिवार में कोई पंचायत का कार्यकर्त्ता है ? हाँ/नहीं

ड—क्या कार्य अथवा पद वह व्यक्ति उपयोग करता है ?

ढ—आप पंचायत व्यवस्था में क्या सुधार चाहते हैं ?

१८—क्या विकास तथा सहायता कार्य हुए हैं। यदि हाँ, तो निम्न में से कौन-कौन से ?

१—शिक्षा	५—कृषि
२—स्वास्थ्य	६—आवागमन
३—सहकारिता	७—मनोरंजन
४—उद्योग	८—संचार

१९—सामाजिक परिवर्तनः—

(१) क्या आपने दृष्टिकोण में किसी परिवर्तन का अनुभव किया है ? हाँ/नहीं

(२) राजकीय आयोजनों से क्या आप सन्तुष्ट हैं ? हाँ/नहीं

(३) यदि नहीं तो क्यों ?

(४) आप इनमें क्या सुधार चाहते हैं ?

(५) सहयोगी कृषि के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

(६) आप अपने गांव में पिछले दस वर्षों से कुछ सुधार पाते हैं या नहीं ? हाँ/नहीं

२०—अन्य विशेष विवरणः यदि कोई हो।

अनुसूची संख्या २

गांव पर नागरीकरण के प्रभावों का अध्ययन

यहां पर ग्रामीण जीवन पर नागरीकरण के प्रभावों के अध्ययन के लिए अनुसूची में सामाजिक-आर्थिक अनुसूची के भी अनेक अंश सम्मिलित किये जायेंगे जिन्हें अन्वेषणकर्त्ता सुविधानुसार उपयोग कर सकता है। पुनरावृत्ति के दोष से बचने के लिए हम केवल विषय से सम्बन्धित आधारों को ही निम्न अनुसूची में स्थान देंगे।

१—सामाजिक जीवन :—

(१) क्या आप समझते हैं कि आपके सामाजिक रीतिरिवाज एवं त्यौहार परिवर्तित हो गये हैं ? हां/नहीं

(२) बच्चे का जन्म पहले किस भांति मनाया जाता था ?

(३) आधुनिक युग में यह कैसे मनाया जाता है ?

(४) यह परिवर्तन कैसे आया ?

(५) आपके परिवार का क्या रूप है ? संयुक्त/वैयक्तिक/अन्य

(६) परिवार में स्त्रियों की क्या स्थिति है ? बराबर/निम्न/उच्च

(७) पहले आपके परिवार में किन कार्यों को किया जाता था ?

(८) आजकल किन कार्यों को किया जाता है ?

(९) अन्य कार्य कैसे सम्पादित किये जाते हैं ?

(१०) आपके परिवार के विभिन्न सदस्य क्या कार्य करते हैं ?

(११) विवाह किस भांति सम्पादित होते थे ?

(१२) आजकल किस भांति सम्पादित होते हैं ?

(१३) आप विवाह किस अवस्था में उचित समझते हैं ?
कमाने योग्य होने पर/युवा होने पर/पढ़ जाने पर/अन्य

(१४) आपके नवयुवक क्या अपने माता-पिता का किसी बात में विरोध करते हैं ? हां/नहीं

२—स्वास्थ्य :—

(१) आप स्वस्थ रहने के लिए क्या उपाय अपनाते हैं ?

(२) चिकित्सा की क्या सुविधायें आपके गांव में उपलब्ध हैं ?

(३) आप किस चिकित्सा पद्धति में विश्वास रखते हैं ?
झाड़ फूंक/मंत्र/आयुर्वेद/डाक्टरी/होमियोपैथी/अन्य

(४) ग्रामीणों के स्वास्थ्य सुधारने के क्या उपाय आपकी किये जाने चाहिये ?

(५) स्वच्छता के क्या क्या साधन आपको उपलब्ध हैं ?

(६) क्या आप अपने घरों में कीटाणुनाशक औषधि (डी० डी० टी०) आदि का छिड़काव कराते हैं ? हां/नहीं

३—व्यक्तिगत पूछताछ—

(१) कृषि—

(क) क्या आप कृषि के नये औजारों का उपयोग पसन्द करते हैं ? हाँ/नहीं

(ख) क्या आप सिंचाई के नये साधनों का उपयोग पसन्द करते हैं ? हाँ/नहीं

(ग) यांत्रिक कृषि, व्यावसायिक कृषि, सहयोगी कृषि, चकबन्दी के सम्बन्ध में आपका क्या मत है ?

(घ) आपका सहकारी साख समितियों के सम्बन्ध में क्या मत है ?

(ङ) आपका उत्तम बीज, उत्तम खाद के प्रयोग के सम्बन्ध में क्या मत है ?

(च) आप आवागमन एवं यातायात के किन साधनों का प्रयोग उचित समझते हैं ? बस/रेल/अन्य

(२) धर्म:—

(क) क्या आप जादू-टौने में विश्वास रखते हैं ? हाँ/नहीं

(ख) यदि हाँ, तो क्यों ?

(ग) क्या आप लोक कथा या धर्म में विश्वास रखते हैं ? हाँ/नहीं

(घ) यदि हाँ, तो क्यों ?

(ङ) क्या आप हिन्दू धर्म के कर्म सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं ? हाँ/नहीं

(च) क्या आप हिन्दू धर्म के पुनः जन्म के सिद्धांत में विश्वास रखते हैं ? हाँ/नहीं

(छ) क्या आपके विचार में हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है ? हाँ/नहीं

(ज) क्या आप मानते हैं कि भाग्य में जो होता है वही होता है। हाँ/नहीं

(झ) क्या आपका विश्वास है कि आपत्तियां ईश्वर का प्रकोप हैं ? हाँ/नहीं

(ञ) क्या आप मानते हैं कि जाति प्रथा की उत्पत्ति भगवान ब्रह्मा ने की है ? हाँ/नहीं

(ट) क्या आपका वर्तमान जाति-प्रथा में विश्वास है ? हाँ/नहीं

(३) सामाजिक जीवनः—

(क) आपके जीवन के प्रति मान्यताओं एवं विचारों पर नागरीकरण का क्या प्रभाव हुआ है ?

(ख) नागरीकरण ने ग्रामीण जीवन के प्रति आपके दृष्टिकोण में क्या परिवर्तन किया है ?

(ग) आप गांव में रहना अधिक पसंद करते हैं या शहर में ? ग्राम/नगर

(घ) यदि नगर में तो क्यों ?

(ङ) नागरीकरण से आपके सामाजिक सम्पर्क पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

(च) नागरीकरण से आपके ग्रामीण जीवन में क्या विघटन आया है ?

(छ) आपका ग्रामीण नेतृत्व के विषय में क्या विचार है ?

(ज) आपने सुखी पारिवारिक जीवन के निर्माण में क्या प्रयत्न किये हैं ?

(४) शिक्षा :—

(क) क्या आप वर्तमान शिक्षा पद्धति को उपयुक्त समझते हैं ? हाँ/नहीं

(ख) यदि नहीं तो क्यों ?

(ग) बुनियादी शिक्षा के प्रति आपके क्या विचार हैं ?

(घ) क्या आपके गाँव में समाज शिक्षा की सुविधायें हैं ? हाँ/नहीं

(ङ) ग्रामीण निरक्षरता को समाप्त करने में समाज शिक्षा किस सीमा तक उपयोगी है ?

(च) क्या आप स्त्री शिक्षा को उपयोगी समझते हैं ? हां/नहीं

(छ) आप किस स्तर तक स्त्री शिक्षा को उचित समझते हैं ?

(ज) क्या आपके विचार में शिक्षित स्त्रियां परिवार के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होती हैं ? हां/नहीं

(झ) यदि हां, तो किस भांति से ?

(ञ) स्त्रियों के लिए आप कैसी शिक्षा उपयुक्त समझते हैं ?

(ट) क्या आपके विचार में सह-शिक्षा की व्यवस्था उचित है ? हां/नहीं

(ठ) यदि नहीं, तो क्यों ?

(ड) यदि हां, तो किस स्तर तक ?

(ढ) आप अपने गांव में शिक्षा की दृष्टि से क्या सुधार चाहते हैं ?

(ण) आपके विचार में ग्रामीण शिक्षा का क्या रूप होना चाहिए ?

(त) आप अपने बालकों को शिक्षा किस उद्देश्य से दिलाना चाहते हैं ?

(५) मनोरंजन

(क) आप किस खेल को पसन्द करते हैं ?

(ख) क्या आप सिनेमा देखना पसन्द करते हैं ? हां/नहीं

(ग) क्या आपके गांव में सिनेमा की सुविधा है ? हां/नहीं

(घ) यदि नहीं है, तो क्या आप अपने गाँव में सिनेमा-सुविधा चाहते हैं ? हां/नहीं

(ङ) आपके विचार में सिनेमा के क्या अच्छे प्रभाव पड़ते हैं ?

(च) आपके विचार में सिनेमा के क्या बुरे प्रभाव पड़ते हैं ?

(छ) क्या आप जब शहर जाते हैं तो सिनेमा अथवा अन्य मनोरंजन के साधनों पर व्यय करते हैं ? हां/नहीं

(ज) क्या सिनेमा के अतिरिक्त अन्य मनोरंजन के साधनों पर आप व्यय करते हैं ? हां/नहीं

(६) निवास:—

(क) क्या आप शहर में रहना पसन्द करते हैं ? हां/नहीं

(ख) यदि हां तो क्यों ?

(ग) यदि नहीं तो क्यों ?

(घ) आप एक माह में कितनी बार शहर जाते हैं ?

(ङ) आपके शहर जाने का उद्देश्य क्या होता है ?

४—आपके विचार में नागरीकरण के क्या विशेष प्रभाव पड़े हैं ?

५—अन्य विशेष विवरण ।

अनुसूची संख्या ३

ग्रामीण समाज में सामुदायिक विकास के अन्तर्गत शिक्षा का विकास

सरपंच के निमित्त पत्र

प्रश्न पत्र संख्या　　　　　　　　　　　　　　दिनाँक

१　नाम

२　पंचायत का नाम

३　पंचायत की स्थापना

४　पंचायत के क्षेत्र में ग्राम संख्या

५　आप कितनी अवधि से सरपंच हैं

१. पंचायत के क्षेत्र में विद्यालयों की संख्या निम्नलिखित सारिणी के अनुसार दीजिए ।

क्र० संख्या	स्थान का नाम	प्राथमिक पाठशाला	माध्यमिक पाठशाला	उच्च विद्यालय	योग
योग					

२. सन् १९६०–६१ में सहकारिता के आधार पर कितने स्कूल भवन निर्मित हुए । कृपया निम्नलिखित सारिणी के माध्यम से प्रकट कीजिये ।

क्र० संख्या	स्कूल मय स्थान के नाम	धनराशि में सरकार द्वारा प्राप्त सहायता	समुदाय की ओर प्राप्त सहायता			योग
			धनराशि	श्रमदान	अनाज आदि के रूप में	
योग						

३. नवीन योजना के अनुसार विद्यालयों को पंचायत के अधीन किया जाना आपकी राय में कैसा है ?　　　　अच्छा / बुरा / अनिश्चित

अच्छे अथवा बुरे को निम्न सारिणी के द्वारा सप्रयोजन स्पष्ट कीजिए ।

क्र० सं०	अच्छा है, तो क्यों ?	क्र० सं०	बुरा है, तो क्यों ?

४. क्या विद्यालयों के सुधार सम्बन्ध में आपकी पंचायत की कोई नवीन योजना है ? हां/नहीं
यदि हाँ, तो निम्न सारणी के माध्यम से प्रकट कीजिए ।

क. सं	स्कूल का नाम स्थान सहित	सुधार सम्बन्धी योजना का नाम

५. क्या स्कूल की पढ़ाई और अध्यापकों से आपको पूरा संतोष है ? हां/नहीं
यदि हां तो निम्न सारणी के द्वारा सप्रयोजन स्पष्ट कीजिये ।

क. सं.	हां तो क्यों ?

यदि नहीं है, तो दोष तथा उनको दूर करने के उपायों को निम्न रूप में प्रकट कीजिए ।

क. सं.	स्कूल का नाम	दोषों के नाम	उनको दूर करने के उपाय

६. आप किस प्रकार से स्कूल के कार्यों में सहायता दे सकते हैं ?
कृपया आप जिन्हें प्राथमिकता देते हैं उनके सामने १, २, ३, आदि संख्या लगा कर स्पष्ट कीजिए ।

क. सं.	कार्य सूची	संकेत	क्रम संख्या प्राथमिकता के अनुसार
१	विद्यार्थियों को स्कूल भेजकर		
२	गरीब छात्रों को आर्थिक सहायता देकर		
३	फर्नीचर,टाटपट्टी आदि का प्रबन्ध करके		
४	अच्छे पढ़ने वाले छात्रों को पारितोषिक के द्वारा प्रेरणा देकर		
५	खेल कूद एवं टूर्नामेंट का प्रबन्ध करके		
६	स्कूल के उत्सव एवं समागमों में भाग लेकर		

७. गाँव के मुख्य-मुख्य व्यवसाय कौन-कौन से हैं ?

क्र. सं.	नाम व्यवसाय	संकेत	क्र. सं.	प्राथमिकता के अनुसार
१.	खेती			
२.	पशुपालन			
३.	मजदूरी			
४.	नौकरी			
५.	व्यापार			
६.	अन्य			

८. क्या इन व्यवसायों में विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है ?

हाँ/नहीं/अनिश्चित

९. उद्योग प्रशिक्षण के बारे में गाँव वालों की मुख्य राय क्या है ?

अनुकूल/प्रतिकूल/तटस्थ

१०. कितने गाँवों में पुस्तकालय हैं ?

क्र. सं.	गाँव का नाम	पुस्तकालयों की संख्या	पुस्तकों की संख्या		योग
			हिन्दी	अन्य	

११. आपके विचार से गाँव वाले किस प्रकार की पुस्तकें पसन्द करते हैं ?

कृपया आप जिन्हें प्राथमिकता देते हैं उनके सामने १, २, ३ आदि संख्या लगाकर स्पष्ट कीजिये ।

क्र. सं.	विषयों के नाम	संकेत	क्रम संख्या प्राथमिकतानुसार
(१)	मनोरंजन सम्बन्धी		
(२)	ज्ञान वर्द्धक सम्बन्धी		
(३)	शिक्षा सम्बन्धी		
(४)	विकास कार्य सम्बन्धी		
(५)	धार्मिक		

१२. क्या आपके पुस्तकालय में निम्न विषयों पर पुस्तकें हैं ?

क्र० सं०	विषय	हां	नहीं	यदि हां, तो संख्या
(१)	ग्राम रूचि			
(२)	कृषि			
(३)	संगीत			
(४)	ग्राम उद्योग			
(५)	पशु चिकित्सा			
योग				

१३. आपका पुस्तकालय कौन चलाता है ?

अध्यापक / पंचायत / ग्राम सेवक / अन्य व्यक्ति

१४. क्या पुस्तकालय हेतुं भवन व्यवस्था है ? यदि हाँ, तो निम्न विवरण दें।

क्र० सं०	स्थान का नाम जहां मकान बनाया	मकानों की संख्या	सरकार द्वारा प्राप्त सहायता	समुदाय की ओर से प्राप्त सहायता श्रमदान, धनराशि, अनाज अथवा अन्य सामान के रूप में	योग

१५. क्या पंचायत ने कभी पुस्तक-दान अभियान मनाया है ? हाँ/नहीं

१६. स्कूल ने गत तीन वर्षों में सामुदायिक विकास के लिए क्या-क्या काम किये हैं ?

कृपया आप जिन्हें प्राथमिकता देते हैं उन्हें क्रमानुसार १, २, ३ आदि संख्या लगाकर स्पष्ट कीजिये।

क्र० सं०	कार्य सूची	संकेत	क्रम संख्या प्राथमिकता अनुसार
(१)	सार्वजनिक भवन अथवा स्कूल बनाने में श्रमदान		
(२)	सड़क एवं मार्ग मरम्मत में सहायता		
(३)	ग्राम सफाई के कार्य में सहायता		

(४) छुआछूत दूर करने में सहयोग
(५) आपत्तिकाल (टिड्डी, बाढ़, आग) के समय सहायता
(६) स्कूल चलो अभियान
(७) अन्य समाज सुधार के कार्य

---

१७. छात्रों द्वारा समुदाय विकास के कार्यों एवं श्रमदान के सम्बन्ध में लोगों की क्या राय है ?

भाग लेना चाहिए / नहीं लेना चाहिए / तटस्थ

१८. क्या आप अपने गांव की विकास योजना में स्कूल के अध्यापकों, हैडमास्टर का सहयोग अथवा सलाह लेना उचित समझते हैं।

हां / नहीं / तटस्थ

यदि हाँ, तो आपने किन किन कार्यों में अभी तक सलाह ली है ?

क्र० सं०	स्थान का नाम	कार्यों की सूची

परिशिष्ट ब

प्रश्नावली संख्या १

१. जिले का नाम ....

२. क्षेत्रफल का योग ....

३. ग्राम का नाम ....

४. जन संख्या ....

५. ग्राम की भूमि का योग ....

६. साधारण वर्णन
   (क) भौतिक स्वरूप
   (ख) भौगोलिक स्थिति
   (ग) बाजार केन्द्र में स्थिति
   (घ) स्थानीय विशेषता
   (ङ) जलवायु आदि

आर्थिक व्यवस्था :

(१) ग्राम का मुख्य व्यवसाय

(२) कृषि—जन संख्या का प्रतिशत कृषि व्यवस्था में
   (क) कृषि में ग्राम का क्षेत्रफल
   (ख) सूखी खेती में क्षेत्र
   (ग) कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल जिस पर कृषि नहीं होती
   (घ) खाद्य फलों में प्रयुक्त भूमि का क्षेत्रफल
   (च) सुरक्षात्मक फसलों में प्रयुक्त भूमि का क्षेत्रफल
   (छ) क्षेत्रफल जो द्रव खेती में प्रयोग होता हो
   (ज) सिंचाई व खाद के साधन व स्वरूप

(३) भूस्वामित्व की व्यवस्था
   (क) खेतों के नाप का सामान्य अनुपात
   (ख) खेतों के टुकड़े व बिखरेपन की संख्या
   (ग) कृषि की विधियां
   (घ) कृषि औजारों के नाम
   (च) विक्रय सुविधायें
   (छ) प्रति एकड़ उत्पादन
   (ज) प्रति व्यक्ति आय
   (झ) भूमिहीन कृषकों की संख्या

(४) पशुधन

(क) पशुओं की संख्या व प्रकार
(ख) गायों की संख्या व दुग्ध उत्पादन का अनुपात
(ग) भैंसों की संख्या व दुग्ध उत्पादन का अनुपात
(घ) अन्य पशुओं के प्रकार व संख्या
(ङ) चरागाहों का क्षेत्रफल
(च) पशुभोजन की फसलों के नाम
(छ) पशु शक्ति व कार्य क्षमता का अनुपात

(५) अन्य उद्योग

(क) कुटीर उद्योगों के नाम
(ख) उद्योगकारियों का जनसंख्या में अनुपात
(ग) अन्य उद्योगों के संचालन का समय
(घ) प्रति व्यक्ति आय
(च) प्रमुख कुटीर उद्योग
(छ) स्थानीय विशिष्ट कुटीर उद्योग सम्बन्धी उत्पादन
(ज) कुटीर उद्योग उत्पादन के विक्रय की व्यवस्था

(६) वन

(क) क्षेत्रफल
(ख) प्रकार
(ग) उपयोग
(घ) आवश्यकता

(७) सहकारिता

(क) सहकारी कृषि समितियां हैं या नहीं — हाँ/नहीं
(ख) सहकारी साख समितियां हैं या नहीं — हाँ/नहीं
(ग) सहकारी बीज भंडारों की संख्या

(८) ग्रामीण ऋण

(क) ऋण के रूप
(ख) ऋण की आवश्यकता के कारण
(ग) ऋण की व्यवस्था
(घ) ऋण लौटाने की विधियां

सामाजिक जीवन

१ परिवार

(क) ग्राम में कुल परिवारों की संख्या
(ख) प्रत्येक परिवार में औसत सदस्यों की संख्या
(ग) संयुक्त परिवारों व व्यक्तिगत परिवारों की संख्या
(घ) परिवार में पीढ़ियों की संख्या
(ङ) परिवार में पिता, दादा की सन्तानों के अतिरिक्त सदस्य
(च) परिवार में कृषि के अतिरिक्त व्यवसाय, यदि हो तो
(छ) परिवार में आने वाले तथा जाने वाले सदस्यों का अनुपात
(ज) परिवार की आय, धर्म, सामाजिक स्तर का मालिक

(२) सामाजिक प्रथायें

(क) वर्ष में उत्सव
(ख) वर्ष में भोज (सामाजिक)
(ग) वर्ष में मृत्यु भोज
(घ) धार्मिक जलसे
(च) अन्य पारिवारिक रीतिरिवाज

(३) विवाह्

(क) विवाह् के प्रकार
(ख) विवाह् सम्बन्ध का आधार
(ग) बाल विवाहों की संख्या
(घ) विधवा विवाह् व नातों की संख्या
(ङ) विधवाओं व विधुरों की संख्या
(च) परिवार में वैवाहिक सम्बन्ध
(छ) विवाहों में दहेज का लेन देन
(ज) कन्या मूल्य जो दिया गया
(झ) विवाह् के पूर्व लिंग सम्बन्ध

(४) जन्म व मृत्यु दर

(क) प्रथम सन्तान के समय स्त्री पुरुष की आयु
(ख) एक वर्ष में कुल सन्तानों की उत्पति संख्या
(ग) मृत्युदर
(घ) मृत्यु का कारण
(च) मृत्यु से बचाने के उपाय

(छ) दस वर्ष के पहले मृत्युदर
(ज) औसत आयु एक वर्ष की

(५) मुकदमे
(क) मुकदमे के कारण
(ख) वंशानुगत मुकदमों की संख्या
(ग) मुकदमों पर व्यय
(घ) मुकदमे जो पंचायत द्वारा तय हुए
(ङ) मुकदमे जो मेल जोल में पूर्ण हुए

(६) जातीय विचार
(क) जाति पंचायतों की सदस्यता
(ख) जातीय भोजों की संख्या
(ग) जाति पंचायतों को दिया गया अनुदान
(घ) जाति पंचायतों द्वारा दण्ड, यदि मिला हो

(७) स्वास्थ्य सुविधायें—प्रकार एवं उपयोग

(८) जल व्यवस्था—प्रकार एवं उपयोग

(९) धर्म
(क) मन्दिरों की संख्या
(ख) देवताओं के प्रकार
(ग) पारिवारिक देवता
(घ) धार्मिक मेले

सांस्कृतिक जीवन

(१) शिक्षा
(क) पाठशालाओं की संख्या
(ख) पढ़े लिखों की संख्या
(ग) प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या
(घ) कृषि शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या
(ङ) प्राविधिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या
(च) शिक्षित महिलाओं की संख्या
(छ) महिला उद्योग प्रशिक्षण केन्द्रों में जाने वाली महिलाओं की संख्या

(२) मनोरंजन
(क) भजन-कीर्तन मण्डलों की संख्या
(ख) रेडियो सुनने वालों की संख्या

(ग) संगीत व कला में रूचि रखने वालों की संख्या

(घ) ग्राम लोक गीतों के प्रकार

(ङ) लोक नृत्यों की व्यवस्था का आधार

(च) दंगल व अन्य प्रतियोगिताओं के प्रकार

(छ) सामाजिक मेलों की संख्या व नाम

(ज) सामुदायिक केन्द्रों की संख्या व सदस्यों की संख्या

(ज) वाचनालय व पुस्तकालयों की संख्या

(य) समाचार पत्र के प्रकार व रूचि लेने वालों की संख्या

(र) ग्रामीण खेलों के प्रकार व व्यवस्था

(३) कला

(क) नाटक जो खेले गये

(ख) नाटक में भाग लेने वालों की संख्या

(ग) संगीत व नृत्यों के प्रकार

(४) भाषा व साहित्य

(क) कौनसा साहित्य विशेषतः पढ़ा जाता है ?

(ख) साहित्यिक रचना जो की गई हो

(ग) भाषा जिसमें विशेष रुचि हो

(घ) अन्य भाषाओं के नाम, जिनमें रुचि हो।

परिशिष्ट 'स'

विकास के आंकड़े

जन संख्या की वृद्धि और कृषि उत्पादन[1]

1961—1981

वर्ष	जन संख्या (लाखों में)	कृषि उत्पादन की आवश्यकता (वार्षिक टन लाखों में)	वार्षिक कृषि उत्पादन (वार्षिक टन लाखों में)
1961	410	850	150
1971	460	960	260
1981	520	1080	380

1. Source—Census of India, Vol. I, India Part I-A Reporte. p. 194.

कृषकों की ऋण सहायता

1948-49 से 1957-58

वर्ष	करोड़ रुपयों में		वितरण
	अग्रिम	पुनः प्राप्ति	
1948-49	11.1	3.7	7.4
1949-50	15.5	5.3	10.4
1950-51	14.0	7.6	6.4
1951-52	17.1	8.5	8.6
1952-53	20.7	10.4	10.3
1953-54	21.0	12.4	8.6
1954-55	25.5	12.8	12.7
1955-56	33.1	14.6	18.5
1956-57	32.8	21.2	11.6
1957-58	21.5	21.4	0.1

प्रमुख बहुद्देशीय नदी घाटी योजनाओं से वार्षिक लाभ एवं व्यय[2]

योजना	कुल व्यय (करोड़ रु. में)	वार्षिक लाभ: सिंचाई (लाखों एकड़ में) — प्रथम योजना काल में	सिंचाई — योजना की समाप्ति पर	विद्युत शक्ति (1000 kw. में) — द्वितीय योजना काल में	विद्युत शक्ति — योजना की समाप्ति पर
भांकरा नांगल	170·02‡	2·026	3·604	·546	594
दामोदर घाटी	105·38‡	0·849	1·326	100	254
हीराकुंड	85·70‡	1·023	2·267	123	123
तुंग भद्रा	60·36‡	0·563	0·830	45	45
कुल	421·06‡	4·461	8·027	814	1,016

‡Includes out lay on power portion.
2. Source: India, A Reference Annual, 1958, pp. 307 & 316

विकास कार्य में विशिष्ट कार्यकर्त्ताओं की संख्या[3]
(अगस्त १९५)

कार्यकर्त्ताओं के नाम	खण्ड संख्या	कार्यकर्त्ता संख्या
ग्रामसेवक (Integrated course)*	84	35,134
ग्राम सेविकायें‡	27	1,266
मुख्य सेविकायें	10	1,447
सामाजिक शिक्षा संगठक (पुरुष)	7	2,848
,, ,, (जन जातीय)	1	300
एक्सटेनशन आफीसर (स्त्रियां) (स्त्रियों एवं बाल कार्यक्रमों के लिए)	10	1,285
खण्ड विकास अधिकारी	7	2,690
स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता*	3	1,889
सहकारिता(Block level Extention Officer)§	8	2,062
एक्सटेन्शन आफीसर्स (उद्योग)	11	1,367

*As on March 1959. ‡As on June 1959. §As on July 1959.
3. Source: Kurukshetra, Vol 8, No.1, Oct. 1, 1959, pp. 78–79.

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की प्रगति[4]

	नियोजित खंडों की संख्या 1	खंडों की संख्या जहां कार्य प्रारंभ हो चुका है। 2	प्रभावित ग्राम-संख्या 3	प्रभावित जनसंख्या का प्रतिशत 4
1. सामुयिक योजना खंड १९५२–५३	167*	167	27,388	16·7
2. सामुदायिक विकास खंड १९५३–५४	53	53	8,682	4·4
3. ,, १९५५–५६ (परिवर्तन के बाद)	152	152	20,817	12·1
4. राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंड १९५३–५४	112‡	112	15,336	8·4
5. ,, १९५४–५५	245	245	34,704	17·4
6. ,, १९५५–५६	259	259	33,220	11·5
बाद में जोड़े गये	172§	—	17,200	18·3
योग	1,160	988	1,57,347	88·8

*In term of area and population covered, this number was considered to be equivalent of 247 Blocks.

‡ 88Blocks of the 1953-54 series and 98 Blocks of the 1954-55 series were converted into intensive Community Development Blocks.

§ Although allotted in January 1956,programme of work was scheduled to be taken up on April 1, 1958.

4. Source: Review of the First-Five-Year-Plan, 1957, p. 110.

भारत में सहकारिता आन्दोलन का विकास[5]

५ वर्षों का औसत	समितियों की संख्या (हजारों में)	सदस्यों की संख्या (लाखों में)	पूंजी (करोड़ों में)
1910-11—1914-15	11·79	5·48	5·48
1915-16—1919-20	28·5	11·29	15·18
1920-21—1924-25	57·70	21·55	36·36
1925-26—1929-30	93·94	36·89	74·89
1930-31—1934-35	105·70	43·22	94·61
1935-36—1939-40	116·96	50·77	104·6
1940-41—1944-45	149·89	72·18	124·35
1945-46—1949-50	159·18	107·32	188·73
1950-51—1954-55	194·83	146·05	330·32
1955-56	240·39	176·22	468·82
1956-57	244·77	193·73	567·67

5. Source: Statistical Statements relating to the Co-operative Movement in India, 1956-57, Reserve Bank of India, pp. 2-3 and 50.

भूदान के अन्तर्गत भूमि की प्राप्ति एवं वितरण[6]

(जून, १९५८)

राज्य	प्राप्त भूमि (एकड़)	वितरित भूमि (एकड़)
आसाम	23,196	225
आन्ध्र प्रदेश	2,41,950	83,090
उड़ीसा	4,24,635	1,11,785
उत्तर प्रदेश	5,87,630	77,768
केरल	29,021	2,126
तामिलनाड	70,823	5,349
दिल्ली	396	157
पंजाब-पेप्सू	19,929	2,653
बिहार	21,68,857	2,94,448
बम्बई	2,28,348	68,493
पश्चिमी बंगाल	12,681	3,463
मध्यप्रदेश	1,78,816	62,450
मैसूर	14,164	1,152
राजस्थान	4,21,118	44,319
हिमाचल प्रदेश	1,568	21
योग	44,23,132	7,61,499

6. Source: Harijan, 21st July, 1958.

भारत में पंचायतें[7]

(३० सितम्बर, १९५७)

राज्य	गांवों की संख्या	पंचायतों की संख्या	पंचायतों के अन्तर्गत गांवों की संख्या एवं प्रतिशत	प्रति पंचायत औसत जनसंख्या
आन्ध्र प्रदेश	25,450	8,613	—	—
आसाम	25,327	422	17,598 (69·8)	14,277
बिहार	71,378	7,410	49,312 (69·0)	3,434
बम्बई	54,281	17,745	24,385 (45·0)	1,231
जम्मू तथा कश्मीर	6,956	948	6,717 (96·5)	2,575
केरल '	1,633	894	1,248 (76·4)	12,019
मध्यप्रदेश	71,751	12,580	42,155 (58·7)	1,163
मद्रास	17,363	7,147	9,000 (51·8)	2,448
मैसूर	28,770	15,154	20,277 (70·0)	—
उड़ीसा‡	51,311	2,343	32,114 (62·0)	—
पंजाब	20,855	10,905	20,855(100·0)	1,198
राजस्थान	31,951	3,490	31,450 (98·4)	—
उत्तर-प्रदेश	1,11,722	72,409	1,11,722(100·0)	754
पश्चिमी बंगाल	35,063	राज्य में	पंचायत	नहीं है।
दिल्ली	336	राज्य में	पंचायत	नहीं है।
हिमाचल प्रदेश	14,491	468	14,491(100·0)	2,274
योग	5,68,515	1,52,337	3,98,922	—

*Figures in Brackets indicate percentage of village covered to the total.

‡Information for Districts only.

@ ·35 were deserted

N. B. There are no Gram Panchayats in Manipur, Tripura, NEPA, Andaman & Nicobar & Pondicharry.

7. Source: Kurukshetra, Vol. 7. No. 3, Dec., 1958, p. 276.

आय एवं विनियोग में वृद्धि[8]

(१९५१–१९७६)

	प्रथम योजना 1951–56	द्वितीय योजना 1956–61	तृतीय योजना 1961–66	चतुर्थ योजना 1966–71	पंचम योजना 1971–76
1. राष्ट्रीय आय काल की समाप्ति पर (करोड़ रु.)	10,800	13,480	17,260	21,680	27,270
2. कुल विनियोग	3,100	6,200	9,900	14,800	20,700
3. काल की समाप्ति पर राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में विनियोग	7·3	10·7	13·7	16·0	17·0
4. जनसंख्या (लाखों में)	384	408	434	465	500
5. वृद्धि योग्य पूंजी का अनुमानित अनुपात	1·88:1	2·30:1	2·62:1	3·36:1	3·70:1
6. काल की समाप्ति पर प्रति व्यक्ति आय (रु. में)	281	331	396	466	546

8. Source: Report of the Second-Five-Year-Plan, p. 11